हिन्दी महाभारत

(सटीक और सचित्र)

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

महाभारत

(सचित्र तथा सरल हिन्दी भाषा में अनुदित)

लेखक

पंडित महावीर प्रसाद मालवीय वैद्य 'वीर'

प्रकाशक

बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग ।

प्रथम बार] [मूल्य ३)

Allahabad:

Printed at THE BELVEDERE PRESS, by E. Hall.

प्रस्तावना ।

महर्षि वेदव्यास प्रणीत महाभारत के सम्बन्ध में अधिक परिचय कराने की आवश्यकता नहीं है, यह पाँचवाँ वेद कहा जाता है और भारतवासी मात्र से इसका महत्व छिपा नहीं है । इसमें विविध प्रकार के सत्कर्म, वर्णाश्रम धर्म, महापुरुषों के जीवन चरित्र, ज्ञान, वैराग्य, उपासना, योग, नीति और सदाचार का विस्तृत वर्णन किया गया है ।

कौरव और पाण्डवों की वंशावली का वर्णन महाभारत से बढ़ कर दूसरे किसी ग्रन्थ में नहीं है । समस्त पुराणों की ऐतिहासिक कथाएँ न्यूनाधिक रूप से इसमें वर्णित हुई हैं । प्रधान विषय के अतिरिक्त यदि इसके अन्यान्य उपाख्यानों का विस्तार से कथन किया जाय तो एक बहुत बड़ी पुस्तक तैयार हो सकती है । हमने अठारहों पर्व की कथा का सार इस ढंग से संग्रह किया है कि कहीं भी कथा का क्रम टूटने नहीं पाया है और उदाहरणीय आख्यानों का भी संक्षेप में कहीं कहीं दिग्दर्शन कराने का प्रयत्न किया है । जहाँ तक हो सका है कथा भाग को रोचक बनाने की चेष्टा की गई है ।

इस पुस्तक के लिखने में हमने पण्डित हरीराम जी से सहायता लेनी चाही थी, पर वह कारण वश पूरी नहीं हो सकी । इसी से पुस्तक समय पर न निकल कर तीन मास के अनन्तर पाठकों की सेवा में पहुँच रही है ।

अन्त में हिन्दी के मर्मज्ञ विद्वानों से प्रार्थना है कि यदि मेरे भ्रम अथवा छापे के दोष से कुछ अशुद्धियाँ दिखाई पड़ें तो उसे सुधार लेने की कृपा करेंगे ।

सज्जनों का कृपा कांक्षी—

महावीर प्रसाद मालवीय वैद्य 'वीर'

ज्ञानपुर-बनारस स्टेट ।

मि० आश्विन शुक्ल ६ भौमवार

सम्वत् १९८१ विक्रमाब्द ।

महाभारत के कथा-प्रसङ्ग की सूची।

श्रीहरिः

अथ महाभारत

आदिपर्व

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥

सम्राट् परीक्षित के स्वर्गारोहण करने पर जब जनमेजय सिंहासनासीन हुए तब सर्प के काटने से पिता की मृत्यु होने के कारण उन्होंने एक सर्पयज्ञ किया था। उस में बड़े बड़े महर्षि, देवता और मनुष्यादि एकत्रित हुए थे। यज्ञ के समाप्त होने पर भगवान् वेदव्यास की आज्ञा से उनके शिष्य वैशम्पायन ने जनमेजय को महाभारत की कथा विस्तार-पूर्वक सुनाई।

जनमेजय ने कहा—हे द्विजराज! मुझे अपने पूर्वपुरुषों के रमणीय चरित्र सुनने की बड़ी उत्कंठा है, आप कृपा कर कहिये कि सब लोग पांडवों की बड़ी प्रशंसा करते हैं; किन्तु उन धर्मज्ञ महापुरुषों ने जिन्हें न मारना चाहिये ऐसे स्वजनों की हत्या किस कारण की थी? अपराध रहित शक्तिशाली पांडवों ने निर्बल दुराचारियों के दिये हुए कष्ट को क्यों सहन किया? दस सहस्र हाथी के बलवाले वीरशिरोमणि भीमसेन ने क्रोध करके दुष्टों को तत्क्षण उनकी करनी का फल क्यों नहीं चखाया? सतीकृष्णा ने धृतराष्ट्र के दुराचारी पुत्रों से अपमानित होने पर भी उन्हें भस्म क्यों नहीं कर दिया? वे पाँचों वीर द्रौपदी को साथ लिये हुए निर्बल की तरह पहाड़ और जंगलों में क्यों मारे मारे फिरे थे और अन्त में किसकी सहायता से विजयी होकर राज्यसिंहासन पर विराजे? मैं वह सारी कथा एक एक करके विस्तार-पूर्वक सुनना चाहता हूँ।

वैशम्पायन ने गुरु को प्रणाम कर कहा—राजन्! सुनिये, सत्यवती के पुत्र तेजस्वी कृष्णद्वैपायनजी ने एक लाख श्लोकों में यह पवित्र कथा निर्माण की है, उसको क्रमशः मैं आप से वर्णन करता हूँ।

कौरव और पाण्डवों की वंशावली

वैशम्पायन ने कहा—हे परीक्षित कुमार! पूर्व में एक वसु राजा उपरिचर बड़े धार्मिक और प्रतापी थे। उन्हें आखेट से बड़ा प्रेम था। एक बार वे आखेट खेलते हुए ऋषि आश्रम में आ पहुँचे और वहाँ की रमणीयता पर मुग्ध होकर अस्त्र शस्त्र त्याग कुटी में निवास करते हुए तप करने लगे। इन्द्र को भय हुआ कि इस प्रकार की तपश्चर्या से राजा इन्द्रासन पा सकते हैं। वे डर से राजा के समीप आये और बहुत तरह धर्मोपदेश देकर उन्हें राज्य करने की सम्मति दी। राजा उपरिचर इन्द्र के समझाने से पुनः अपनी राजधानी में आये और राज्य करने लगे। उनके बृहद्रथ, प्रतिग्रह, मणिवाहन, मावेल्य और यदु, ये पाँच पुत्र हुए इन पाँचों ने अपने अपने नाम के देश बसाये।

राजा उपरिचर के राज्य में शुक्तिमती नाम की नदी थी। वह चेतनायुक्त कोलाहल नामक पर्वत के कामोद्वेग से रुद्ध हो गई. राजा ने लात मार कर पहाड़ में छेद कर दिया जिससे नदी बाहर निकल आई। पर्वत के संगम से उस नदी के एक पुत्र और एक कन्या हुई; उसने दोनों को प्रसन्नता से राजा को प्रदान किया। उस पुत्र को राजा ने अपना सेनापति बनाया और कन्या को अपनी रानी बनाकर राजमहल में रक्खा और उसपर बड़ी प्रीति रखने लगे। वह नदी की कन्या (गिरिका) भी पति भाव से राजा पर पूर्ण प्रेम रखती थी। एक बार गिरिका ऋतुमती हुई और उसी दिन पितरों की आज्ञा से राजा को आखेट के लिये वन में जाना पड़ा; किन्तु गिरिका के ऋतुकाल का स्मरण उन्हें बना रहा। वसन्त की शोभा देख कर राजा कामदेव के वश में हो गये और उनका वीर्यपात हुआ। अपने वीर्य को निष्फल न जानेवाला विचार कर उन्होंने एक बाज़ से गिरिका के पास भेजा। मार्ग में एक दूसरे बाज़ ने मछली के भ्रम में पड़ कर उस पर आक्रमण किया। दोनों की छीनाझपटी में वह वीर्य यमुना नदी के जल में गिर पड़ा। अद्रिका नाम की अप्सरा ब्राह्मण के शाप से मछली हुई थी, उसने झपट कर उस वीर्य को खा लिया। दस मास बीतने पर दैवयोग से मछुओं ने उस मछली को पकड़ा और चीरा तो उसके पेट से एक पुत्र और एक कन्या निकली। यह देख कर मछुओं को बड़ा अचरज हुआ. उन्होंने राजा वसु को दिखाया। राजा ने पुत्र को ले लिया। बढ़ने पर वही मत्स्य नामक प्रतापी राजा हुआ। कन्या को राजा उपरिचर ने मछुओं को दे दिया, वह मत्स्यगन्धा यौवन-काल प्राप्त होने पर अत्यन्त सुहावनी हुई, इससे सत्यवती कहलाने लगी।

एक दिन वह पिता की आज्ञा से नाव खे रही थी और तीर्थयात्रा करते हुए वहाँ पराशर ऋषि आ गये। उसके रूप यौवन को देखकर ऋषि ने काम से मोहित होकर सहवास की इच्छा प्रकट की। उसने कहा—ऋषिवर! नदी के किनारे कितनेही मुनि और मनुष्य देख रहे हैं, उनके देखते रहने पर सम्भोग कैसे हो सकता है? तब पराशर मुनि ने योगबल से कुहरा उत्पन्न कर दिया जिससे दिशाओं में अन्धकार छा गया। यह देख कर मत्स्यगन्धा चौंकी और कहा—महाराज! मैं क्वारी हूँ, आप की आज्ञा पालन करने से मैं दोषी समझी जाऊँगी। पराशर ने कहा—तू क्वारी ही बनी रहेगी और जो कुछ तुझे वर माँगना हो मुझसे माँग ले। उसने कहा—मेरे शरीर की दुर्गन्धि दूर हो जाय। मुनि के आशीर्वाद से वैसा ही हुआ। पराशर के सहवास से उसे एक पुत्र हुआ और वह जन्म लेते ही माता के आदेश से तप करने चला गया। जाते समय माता से कह गया कि काम पड़ने पर मेरा स्मरण करना मैं तुरन्त आ जाऊँगा। द्वीप में जन्म लेने से उसका नाम द्वैपायन पड़ा।

व्यासजी बड़े उग्र तपस्वीहुए, ये विष्णु के चौबीस अवतारों में माने जाते हैं। उन्होंने विचारा कि एक ऐसे ग्रन्थ का निर्माण करना चाहिए जिसमें सम्पूर्ण वेद, वेदाङ्ग, पुराण तथा लौकिक व्यवहारों की सारी बातें आ जाँय। उसी समय ब्रह्माजी उनके समीप आये। व्यासजी ने अपने विचार उनसे प्रकट किये। विधाता ने अनुमोदन करते हुए कहा—मुनिश्रेष्ठ! तुम जो कुछ वर्णन करोगे वह अभूतपूर्व काव्य होगा। इसे लिखने के लिये गणेशजी का स्मरण करो, वे उसे लिखेंगे। व्यासजी ने ब्रह्माजी के आदेशानुसार गणेशजी का स्मरण किया और उनके द्वारा इस अद्भुत ग्रन्थरत्न का लेखनकार्य्य सम्पन्न हुआ।

प्रसिद्ध भरतवंशी राजाओं के आदिपुरुष ययाति थे। शुक्राचार्य की कन्या देवयानी और वृषपर्वादैत्य की पुत्री शर्मिष्ठा यह दोनों उनकी रानी थीं। देवयानी से यदु और शर्मिष्ठा से पुरु का जन्म हुआ था।



महाभारत-लेखन।

ग्रन्थ महाभारत रुचिर, वीर सरस इतिहास।
लिखत गजानन चाव से, लिखवावत मुनि व्यास॥

पृष्ठ २

बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग।

जनमेजय ने पूछा—हे वैशम्पायन! शुक्राचार्य (ब्राह्मण) की कन्या से ययाति (क्षत्रिय) का विवाह कैसे हुआ? वैशम्पायन ने कहा—राजन्! एक बार स्थावर और जंगम वस्तुओं की प्राप्ति के लिये देव दानवों में परस्पर संग्राम होने लगा। देवों ने विजयी होने के लिये बृहस्पति को और दैत्यों ने शुक्र को अपना पुरोहित बनाया। उन दोनों में परस्पर बड़ी ईर्ष्या रहा करती थी। लड़ाई में देवता जिन असुरों को मारते थे उन्हें संजीवन मंत्र के द्वारा शुक्राचार्य जिला देते थे, पर देवताओं के मरने पर बृहस्पति वैसा न कर सकते थे। देवताओं ने सम्मति करके बृहस्पति के पुत्र कच से निवेदन किया कि आप हमलोगों की रक्षा के लिये वृषपर्वा की राजधानी में जाकर शुक्राचार्य से मिल कर किसी प्रकार संजीवन विद्या को जान लीजिए तो देवताओं की रक्षा हो सकती है। यदि इस कार्य को आप सम्पन्न कर सकेंगे तो हमलोग आप को यज्ञ में भाग देंगे। दूसरे में यह सामर्थ्य नहीं है, आप देवयानी (शुक्र की कन्या) को प्रसन्न कर उससे अवश्य सीख सकते हैं।

देवताओं की प्रार्थना से कच वृषपर्वा दैत्य की राजधानी में जाकर शुक्राचार्य से मिले और उनसे कहा—मैं बृहस्पति का पुत्र हूँ, आप के समीप विद्याध्ययन करने की इच्छा से आया हूँ। शुक्र ने प्रसन्नता पूर्वक उन्हें शिक्षा देना स्वीकार करके अपने यहाँ रख लिया। वहाँ देवयानी और शुक्र को प्रसन्न करते हुए ब्रह्मचर्य से कच रहने लगे। इस बात का पता दानवों को कहीं से लग गया। कच वन में गुरु की गौएँ चरा रहे थे, असुरों ने डाह से उन्हें मार डाला। जब गौएँ घर आ गईं और कच नहीं लौटे तो देवयानी को सन्देह हुआ, उसने जाकर पिता से कहा। शुक्र ने मृत कच का आह्वान किया और वह जीवित होकर गुरु के समीप आ गया, संजीवनी विद्या को देख कर कच को बड़ी प्रसन्नता हुई। देवयानी के पूछने पर उन्होंने कहा—मैं वन में गौएँ चरा रहा था, वहाँ दैत्यों ने मुझे पहचान लिया और वध कर टुकड़े टुकड़े करके सियार तथा भेड़ियों के आगे डाल दिया, पर गुरुजी की कृपा से मैं फिर तुम्हारे पास आ गया।

असुरों को बड़ी इर्ष्या हुई उन्होंने दूसरी वार वैसा ही किया पर शुक्राचार्य के अनुग्रह से कच जी उठे। तीसरी वार दैत्यों ने कच को मार कर भून डाला और मदिरा में मिला कर शुक्राचार्य को पिला दिया। इस कार्य से सब मन में प्रसन्न हुए कि देखें गुरुजी अब कैसे कच को जीवित करते हैं? देवयानी कच के न लौटने से घबराई हुई पिता के पास गई और कच को बुलाने के लिये प्रार्थना की। जब शुक्राचार्य ने कच का आह्वान किया तो गुरु के मरने के भय से कच ने उनके पेट में से ही धीरे धीरे कहा। सारा वृत्तान्त कह जाने पर निवेदन किया कि मेरे जीने से आप की मृत्यु होना अनिवार्य है। तब शुक्र ने देवयानी से कहा कि अब मैं मरूँ तो कच निकल सकता है। इस पर देवयानी ने विनती की कि आप सब करने में समर्थ हैं ऐसा कीजिये कि कच भी जीवित हो और आप भी न मरें। शुक्राचार्य ने कच को सञ्जीवनी विद्या सिखा कर बाहर निकाल दिया फिर कच ने गुरु को जिला दिया। शुक्र ने मदिरा के साथ कच को पान कर लिया था इससे क्रुद्ध होकर उन्होंने शाप दिया कि आज से जो ब्राह्मण मदिरा पान करेगा वह धर्मभ्रष्ट होकर ब्रह्महत्या का भागी बनेगा और नरकगामी होगा।

जब गुरु की आज्ञा पाकर कच देवलोक को जाने लगे तब देवयानी ने उनसे अपने विवाह की इच्छा प्रकट की। गुरुकन्या होने के कारण कच राज़ी न हुए। इससे क्रुद्ध होकर देवयानी ने शाप दिया कि जाओ तुम्हारी सञ्जीवनी विद्या तुम्हें सफल न होगी। कच ने कहा—मेरा कुछ अपराध न होते हुए तू ने व्यर्थ ही मुझे शाप दिया, अतः मेरी विद्या तो निष्फल कदापि न होगी, चाहे वह मेरे काम की भले ही न हो। पर याद रख, तुझे भी कोई ऋषिकुमार न व्याहेगा। यह कह कर कच इन्द्र के यहाँ चले गये।

कच का समाचार पाकर देवगण बहुत प्रसन्न हुए सब ने मिल कर इन्द्र से निवेदन किया कि अब आप को पराक्रम दिखाने का समय आ गया, शत्रुओं का संहार कीजिये।

उधर दैत्यराज वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा और शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी अपनी अन्यान्य सखियों के साथ एक मनोहर वाटिका की बावली में जलक्रीड़ा कर रही थीं। इन्द्र ने वायु का रूप धारण करके उनके वस्त्रों को उड़ाकर इकट्ठा कर दिया। सब जल से निकल कर अपना अपना वस्त्र पहनने लगीं। भ्रम से शर्मिष्ठा ने देवयानी का वस्त्र पहन लिया और देवयानी ने शर्मिष्ठा की साड़ी पहन ली। इस पर दोनों में कहा सुनी होने लगी। देवयानी ने कहा तू ने शिष्य होकर मेरा वस्त्र क्यों पहना? शर्मिष्ठा ने कहा—तू मेरी आश्रिता है, बहुत बढ़ कर बातें न कर। इस प्रकार की कहासुनी में शर्मिष्ठा रुष्ट होकर देवयानी को कुएँ में ढकेल कर अपनी सखियों के साथ महल में चली गई।

इसी बीच आखेट करते हुए जल की इच्छा से राजा ययाति उस कुएँ पर आये, उसमें देवयानी को देख कर दया वश उन्होंने उसे कुएँ से बाहर निकाल दिया और जलपान करके अपनी राजधानी को चले गये। देवयानी ने घर जाकर एक दासी से अपने पिता के पास सन्देशा भेजा कि अब मैं वृषपर्वा के राज्य में नहीं आना चाहती। दासी से सारी कथा सुन कर शुक्राचार्य उसके पास गये, तब देवयानी ने क्रोध से शर्मिष्ठा की सारी धृष्टता कह सुनाई। शुक्र ने कहा—पुत्री! तू दान लेनेवाले या भाट की लड़की नहीं है, तू परमतेजस्वी ब्राह्मण शुक्र की कन्या है। क्रोध का जीतनेवाला सब को जीत सकता है इसलिये तू क्रोध शान्त कर; क्योंकि क्रोध पाप का मूल है। फिर देवयानी ने हाथ जोड़ कर कहा—पिताजी! आप का कहना सत्य है, पर जहाँ अपमान हो उस देश में रहने की अपेक्षा मृत्यु अच्छी है। कन्या की बात सुन कर शुक्राचार्य वृषपर्वा के पास गये और उससे कहा कि अब मैं आप के यहाँ नहीं रह सकता, आप की कन्या ने मेरी पुत्री का बड़ा अनादर किया है। इससे वृषपर्वा चिन्तित हुआ और शुक्र की आज्ञानुसार उसने देवयानी से क्षमाप्रार्थना की। पर देवयानी ने कहा कि यदि शर्मिष्ठा अपनी एक सहस्र दासियों के सहित सदा मेरी सेवा शुश्रूषा करे तो मैं मान सकती हूँ। इस पर वृषपर्वा राज़ी हो गया और शर्मिष्ठा को एक हज़ार दासियों के सहित देवयानी की सेवा के लिये नियत कर दिया।

कुछ दिन बाद समस्त दासियों के साथ देवयानी उसी वन में गयी। दैवयोग से ययाति फिर आखेट खेलते हुए उधर ही आ निकले। उन कुमारियों से पूछा तुम सब कौन हो? देवयानी और शर्मिष्ठा ने अपना परिचय देकर राजा से प्रश्न किया कि आप कौन हैं? ययाति ने भी अपना परिचय दिया। देवयानी ने पूर्व का उपकार स्मरण करके उनसे अपने विवाह की इच्छा प्रकट की। ब्राह्मण की कन्या समझ कर ययाति मन में डरे इससे स्वीकार नहीं किया; परन्तु शुक्राचार्य की आज्ञा से देवयानी का पाणिग्रहण कर लिया। शुक्र ने कहा—राजन्! मेरी कन्या का सत्कार करना और यह ध्यान रखना कि शर्मिष्ठा इसके साथ जायगी उसको अपने बिस्तर पर कभी न बुलाना।

देवयानी को लेकर राजा अपनी राजधानी में आये और सुख से निवास करने लगे। कुछ काल बीतने पर देवयानी के एक पुत्र हुआ। शर्मिष्ठा भी ऋतुमती हुई और बिचारने लगी कि मेरा विवाह तो हुआ नहीं, अब क्या करूँ? अस्तु, मैं भी राजा को ही अपना पति बनाऊँ। एकान्त में उसकी ययाति से भेंट हो गयी और उसने अपना मनोरथ प्रकट किया। पहले तो राजा हिचकिचाये परन्तु धर्म विचार कर उचित समझा और शर्मिष्ठा की इच्छा पूर्ण की। उससे उसके दो पुत्ररत्न हुए जिनका नाम यदु और तुर्वसु हुआ। यह वृत्तान्त जानकर देवयानी रूठ कर पिता के पास चली गई



शान्तनु और गंगा।

बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग।

और सब हाल उनसे कह सुनाया। सुनते ही शुक्राचार्य को क्रोध हो आया, उन्हों ने राजा ययाति को शाप दिया कि तुमने मेरी आज्ञा भङ्ग करके अधर्म किया इससे शीघ्र ही जर्जरवृद्ध हो जाओगे। राजा के क्षमाप्रार्थना करने पर शुक्र ने कहा कि तुम अपनी बुढ़ाई किसी पुत्र को देकर फिर युवा हो सकते हो और जो पुत्र तुम्हारी आज्ञा का पालन करेगा वही यशस्वी राजा होगा। इस प्रकार देखते ही देखते राजा ययाति वृद्ध होकर घर लौट आये।

राजा की कामेच्छा पूरी नहीं हुई थी, क्रमशः उन्हों ने अपने सब पुत्रों से अपनी युवावस्था देने को कहा, पर अधर्म समझ कर किसी ने उनकी बात स्वीकार न की। सब से छोटे पुत्र पुरु ने पिता की आज्ञा मान कर अपना यौवन उन्हें दे दिया और बुढ़ापा ले लिया। बहुत काल तक विषय भोग कर तृप्त हो राजा ययाति ने पुरु को युवावस्था लौटा दी तथा राज्याधिकार उन्हें समर्पण कर आप तप के लिये बन को चले गये। चलते समय अन्यपुत्रों को आज्ञा न मानने के कारण राजा ने शाप दिया और यदु से कहा कि तेरी प्रतिष्ठा संसार में क्षत्रिय के समान न रहेगी और न तू राज्य का अधिकारी ही होगा। यद्यपि ययाति ने यदु को घोर शाप दिया, फिर भी यदुकुल में अनेक महापुरुष उत्पन्न हुए जिनका सुयश अबतक धरती पर जगमगा रहा है। पुरु के वंश में महाप्रतापी भरत उत्पन्न हुए जिनके नाम से यह देश भारत कहलाता है। इस प्रकार धर्म-पूर्वक राज्य करते हुए भरत-वंश में अनेक राजा हो गये, उन्हीं के कुल में महाप्रतापी कुरु राजा हुए जिनसे यह वंश कौरव कहलाया।

कुरु राजा के कई पीढ़ी बाद प्रतीप के पुत्र प्रतापवान् शान्तनु राजा हुए। द्वापर के अन्त में इनका राज्यकाल था। राजा शान्तनु आखेट के बड़े प्रेमी थे। एक दिन वन में शिकार करते हुए गंगाजी के तट पर जा पहुँचे। वहाँ जाकर देखा कि एक परम रूपवती एवं कमल के समान नेत्रवाली स्त्री मुस्कुराती हुई उनकी ओर निहार रही है। उस सुन्दरी को देख कर राजा बड़े आश्चर्यित हुए और उसके रूपलावण्य पर मोहित होकर मधुर वाणी से बोले—हे शुभानने! तुम देवी, दानवी, गन्धर्वी, अप्सरा अथवा मानुषी कौन हो? उत्तर देकर मेरी उत्कंठा दूर करो और साथ ही मेरी यह भी प्रार्थना है कि तुम मेरी पत्नी हो जाओ। उस अनिन्दित चरितवाली गङ्गा ने कहा—राजन्! मैं आप की भार्या होना स्वीकार करती हूँ पर मेरी प्रतिज्ञा आप को पूरी करनी पड़ेगी। यदि आप उस प्रतिज्ञा को भंग करेंगे तो उसी क्षण मैं आप को छोड़ कर चली जाऊँगी। अपनी सन्तान के विषय में मैं जो चाहूँगी करूँगी, आप मुझे रोक न सकेंगे। जब तक आप ऐसा न करेंगे तबतक बराबर मैं आप के पास रहूँगी। विपरीत आचरण करने पर मैं निश्चय ही चली जाऊँगी। राजा मुग्ध थे ही, सब बातों को स्वीकार करके गंगादेवि को अपने राजमहल में ले आये और आनन्द के साथ दिन बिताने लगे।

कुछ काल बीतने पर गंगा को एक पुत्र हुआ। उन्होंने हँसते हँसते उसे गंगानदी में बहा दिया। पुत्र को जल में फेंकते समय यह भी कह दिया कि तुम्हारी प्रसन्नता के लिये मैं ऐसा करती हूँ। इसी प्रकार सात पुत्रों को उन्होंने गंगाजल में जन्मते ही डाल दिया। यह देख कर राजा शान्तनु को बड़ा दुःख होता था, किन्तु प्रतिज्ञा के भय से कुछ कह नहीं सकते थे। जब आठवाँ पुत्र हुआ और उसको जल में बहाने के लिये गंगाजी तैयार हुईं तब शान्तनु से नहीं रहा गया, वे दुखी मन से कहने लगे—हे पुत्रघातिनी! तुम कौन हो और क्यों पुत्रों को मारती हो? मैं चाहता हूँ कि वंश-वृद्धि के हेतु इस पुत्र को मत मारो, इसको जीने दो।

गंगा ने कहा—हे पुत्र चाहनेवाले राजन्! आप की आज्ञानुसार इस पुत्र को मैं न मारूँगी, पर आपने हमारे साथ वचनबद्ध होकर जो नियम किया था वह भंग हो गया। अब मैं आप के पास न रहूँगी, अन्तर्हित हो जाऊँगी। आपके सहवास से मैं बहुत प्रसन्न हूँ, आप दुखी न हों। मैं जह्नु मुनि की कन्या गङ्गा हूँ। महा तेजस्वी आठों वसुओं को वशिष्ठजी ने मनुष्ययोनि में जन्म लेने का शाप दिया था। द्यु नामक वसु ने उनकी गौ नन्दिनी को चुरा ली थी। मर्त्यलोक में मुझे छोड़कर उनको धारण करने में कोई भी स्त्री समर्थ नहीं थी। इस कारण आठों वसु मेरे पास आये और मुझ से विनय की कि आप मेरी माता बनें। साथ ही यह भी निवेदन किया कि जन्म लेते ही मर्त्यलोक में रहने के दुःख से हमें मुक्त करने की कृपा करना। मैंने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और भरतवंश को ही उनके जन्म के योग्य समझा। अतएव मानवी रूप धारण कर मैं आप के पास आई। वसुओं के पिता होने के कारण आप अपने को धन्य समझें। जिस द्यु नामक वसु के अपराध से महर्षि वशिष्ठ ने शाप दिया था, आपका यह आठवाँ पुत्र वही वसु है। यह आप के वंश की कीर्त्ति बढ़ावेगा और मैं स्वयं इसका पालन पोषण करूँगी। आप किसी बात का शोक न करें। इतना कहकर पुत्र को लिये हुए गङ्गा अन्तर्हित हो गईं। राजा पत्नी और पुत्र के वियोग से मन में बहुत दुखी हुए। उसको दूर करने के लिये राजकार्य में मन बहलाने लगे।

सम्राट शान्तनु बड़े धर्मात्मा और बुद्धिमान् थे। उनके गुणों से प्रसन्न होकर सब देश के राजाओं ने उन्हें अपना राजराजेश्वर बनाया। शान्तनु के राजत्वकाल में किसी को किसी प्रकार का दुःख, शोक और भय न था। वे हस्तिनापुर में रहते हुए नीति-पूर्वक शासन करते थे।

एक बार राजा शान्तनु शिकार खेलने बन में गये और एक मृग को बाण बेध कर उसके पीछे दौड़ रहे थे कि सहसा पास ही में बहनेवाली गङ्गानदी की ओर उनकी दृष्टि गई। देखा कि गङ्गा सूखी पड़ी हैं। यह देख कर आश्चर्य से वे खड़े हो गये और विचारने लगे कि नदियों में सब से बड़ी गङ्गा की ऐसी दशा किस कारण हुई है? अवश्य ही इसमें कुछ रहस्य की बात है। उसका कारण जानने के लिये अग्रसर हुए तो क्या देखते हैं कि इन्द्र के समान तेजस्वी अत्यन्त सुन्दर एक कुमार ने बाणों की वर्षा करके जल की धारा रोक दी है। उस बालक के अनन्त और अद्भुत पुरुषार्थमय कौशल को देख कर राजा बहुत ही चकित हुए। राजा ने पुत्र को उत्पन्न होते समय देखा था, इससे पहचान नहीं सके। इस प्रकार राजा को आश्चर्य में डाल कर वह कुमार अन्तर्धान हो गया। राजा ने गङ्गाजी से कहा—जो बालक अभी अन्तर्हित हुआ है वह कौन है? और उसको एक बार हमें दिखा दो।

गङ्गा ने सुन्दर रूप धारण कर दाहिने हाथ से उसी सुसज्जित कुमार को पकड़े हुए राजा के सामने आकर कहा—राजन्! मेरे आँठवें गर्भ से जो पुत्र हुआ है, वह आप का तनय देवव्रत यही है। इसको महर्षि वशिष्ठ, असुरों के गुरु शुक्राचार्य, देवताओं के गुरु बृहस्पति और महाप्रतापी परशुराम आदि ने वेद वेदाङ्ग तथा शस्त्रास्त्र की शिक्षा दी है। अब मैं इसे आप को सौंपती हूँ। आप प्रसन्नता से कुमार को घर ले जाइये, यह आप की वंशवृद्धि करेगा। राजा शान्तनु प्रतापी पुत्र को पाकर बड़े प्रसन्न हुए और देवव्रत को युवराज बनाया। कुमार के चरित्र को देख कर राजा मन ही मन अपने को धन्य मानते थे।

एक दिन राजा शान्तनु यमुनाजी के किनारे बन में घूम रहे थे, वहाँ उनको परम सुहावनी गन्ध मालूम हुई जिससे राजा मन में बहुत ही प्रसन्न हुए और उसकी तलाश में घूमने लगे कि यह

गन्ध कहाँ से आ रही है। कुछ दूर जाने पर उन्हें एक अत्यन्त रूपवती स्त्री दिखाई दी। राजा को निश्चय हो गया कि यह मनोहर गन्ध इसी ललना के शरीर से निकल रही है। समीप में जाकर उससे पूछा—हे शोभने! तू किसकी कन्या है और नदी के किनारे अकेली नौका पर किस लिये बैठी है? उसने कहा—महाराज! मैं मल्लुओं के राजा की लड़की हूँ और पिता की आज्ञा से बिना कुछ लिये हुए पथिकों को नदी के पार नाव पर बैठा कर उतारती हूँ। राजा उसकी महान् सुन्दरता पर मुग्ध होकर उसे पाने का उपाय मन में सोचने लगे। मत्स्यगन्धा के पिता के पास जाकर उससे इच्छा प्रकट की कि तुम अपनी कन्या का विवाह मेरे साथ कर सकते हो या नहीं?

मत्स्यराज ने कहा—नरनाथ! यह तो पुत्री के जन्मते ही निश्चय हो चुका है कि किसी न किसी के साथ इसका विवाह अवश्य ही होगा। इसके सम्बन्ध में मेरी जैसी हार्दिक कामना अथवा संकल्प है उसको पहले सुन लीजिये। आप सत्यवादी हैं, यदि मेरी कन्या को आप अपनी धर्मपत्नी बनाने के लिये माँगते हैं तो यह मेरे बहुत बड़े सौभाग्य की बात है। मैं सहर्ष उसे देने को तैयार हूँ, परन्तु आप को यह प्रतिज्ञा करनी पड़ेगी कि इसके गर्भ से जो पुत्र होगा उसी को आप राजगद्दी का अधिकारी बनावें और किसी पुत्र को राज्याधिकार न दें। यद्यपि राजा शान्तनु कामाग्नि से जल रहे थे तो भी मल्लुए की बात से सहमत नहीं हुए और अपने राजमन्दिर में लौट आये पर सत्यवती की चिन्ता से वे दिनोदिन खिन्न होने लगे, किसी काम काज में उनका जी नहीं लगता था, यहाँ तक दुर्बलता बढ़ गई कि राजा को डोलने फिरने की शक्ति न रह गई।

पिता की दशा को देखकर देवव्रत को बड़ी चिन्ता हुई उन्होंने पूछा—पिताजी! सब प्रकार कुशल होते हुए भी आप इतने दुखी क्यों मालूम हो रहे हैं? जान पड़ता है आप मेरे लिये सोचा करते हैं पर मुख से कहते नहीं हैं। आप को क्या कष्ट है? मैं उसको तुरन्त छुड़ाना चाहता हूँ, कृपा कर मुझसे साफ़ साफ़ कहिये।

राजा शान्तनु ने कहा—हे पुत्र! हमारे इस बड़े वंश में तुम्हीं एक सन्तान हो, मुझे इस बात का शोक है कि मनुष्य के जीवन का कुछ ठिकाना नहीं। कदाचित तुम पर कोई आपदा आई तो हमारा वंश ही निर्मूल हो जायगा तुम अकेले सौ पुत्रों के समान हो इसलिये मैं फिर विवाह करना नहीं चाहता।

देवव्रत को राजा के इस उत्तर से सन्तोष नहीं हुआ, उनके मन में तरह तरह के विचार उठने लगे। अन्त में उन्होंने मंत्री से जाकर पूछा, उसने सारा वृत्तान्त देवव्रत से कह सुनाया और कहा कि राजा आप ही के कारण असमंजस में पड़ कर इतने दुखी हो रहे हैं इसका निवारण करना सर्वथा आप के आधीन है। मंत्री की बात सुनते ही वे धीवर के पास गये और उससे पिता के लिये कन्या को माँगा। धीवर ने उनका स्वागत करके कहा—महात्मन्! सुनिये, ऐसे उत्तम सम्बन्ध को पाकर कौन उसे छोड़ सकता है? इससे मैं धन्य हो जाऊँगा; परन्तु कठिनता जिस बात की है उसे दूर करने का दारमदार आप ही पर है। यदि आप उस के मिटाने में समर्थ हों तो मैं आप की आज्ञा पालने के लिये सहर्ष तैयार हूँ। महर्षि पराशर ने इस कन्या से विवाह करने की इच्छा प्रकट की थी पर मैं ने स्वीकार न की और कन्या का सम्बन्ध राजा ही से करना उचित समझा। हे भरतकुलदीपक! इसके साथ राजा का सम्बन्ध होने से आप के राज्याधिकार में बाधा पड़ेगी, सौतेले भाइयों से विद्रोह होना अनिवार्य है। इस विवाह में यही बड़ा दोष है। ऐसी दशा में मुझे कन्या देना चाहिये या नहीं, आप ही विचारिये आप राजा शान्तनु के एकमात्र पुत्र हैं, मैं नहीं

चाहता कि आप के स्वत्व पर किसी तरह की हानि पहुँचे। इन बातों को सोच समझ कर जैसी आज्ञा कीजिये वह मुझे स्वीकार होगी।

महात्मा देवव्रत मल्लुए के कहने का तात्पर्य समझ गये और अपने सुख की अपेक्षा पिता को आनन्द पहुँचाना श्रेष्ठ जान कर अपने स्वार्थ का त्याग करना मन में ठान लिया। वृद्ध क्षत्रियों के सामने देवव्रत ने हाथ उठाकर कहा—हे धीवरराज! तुम्हारे मन की बात मैं समझ गया। मैं सब तरह से तुम्हारी इच्छा पूरी करूँगा, भय का कोई कारण नहीं है। तुम्हारी कन्या से जो पुत्र होगा वही राज्य का अधिकारी होगा और मैं राज्यासन पर कदापि न बैठूँगा! मैं जो प्रतिज्ञा करता हूँ, उसको तुम अक्षरशः सत्य ही समझो। इसमें कुछ भी अन्तर नहीं पड़ सकता।

यह सुन कर धीवर प्रसन्न हो कहने लगा—हे देवव्रत! संसार जानता है कि आप सत्यवादी हैं। जब आप सत्यवती के पुत्र को राज्य देने की प्रतिज्ञा करते हैं तो इस विषय में किसी को कुछ भी सन्देह नहीं हो सकता। यदि आप अनुचित न समझें और मुझे क्षमा करें तो एक बात मैं और कहना चाहता हूँ, कदाचित किसी समय आप का कोई वंशज आप की प्रतिज्ञा भंगकर उसके विपरीत आचरण करे तब क्या होगा?

इस के उत्तर में देवव्रत ने कहा—हे धीवरराज! सुनो, राज्याधिकार त्याग देने का पण तो हम पहले ही कर चुके हैं। अब तुम्हारे हृदय का सन्देह दूर करने के लिये दूसरी अटल प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं जीवन पर्यन्त अपना विवाह ही न करूँगा, आजन्म ब्रह्मचारी ही रहूँगा। न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी, जब मेरे कोई पुत्र ही न होगा तब तो किसी तरह की शंका नहीं है। ऐसी दशा में सत्यवती के पुत्र को राज्य प्राप्त करने में कोई बाधा न रहेगी।

इस प्रकार देवव्रत ने स्वार्थत्याग करके उदारता की चरम सीमा दिखा दी। राज्य तो छोड़ा ही, पिता को प्रसन्न रखने के लिये जन्म भर अपना विवाह न करने की प्रतिज्ञा भी कर डाली। उनकी इस प्रतिज्ञा को सुन कर चारों ओर से धन्य धन्य का शब्द सुनाई पड़ने लगा। देवता आकाश से फूल बरसाने और बड़ाई करने लगे। ऐसी भीषण प्रतिज्ञा करने के कारण उनका नाम भीष्म पड़ा। तब से वे भीष्म कहलाने लगे।

धीवर बड़ा प्रसन्न हुआ, उसके मन की बात विना किसी उद्योग और कठिनता के भीष्म ने पूरी कर दी। सत्यवती को उसने देवव्रत के हवाले कर दिया। उन्हीं ने उसे लाकर पिता के साथ विवाह कराकर इस प्रकार पिता को निश्चिन्त किया। देवव्रत पिता का दुःख दूर करने में कृतकार्य हुए इससे उनके मन में अपार आनन्द हुआ। राजा शान्तनु देवव्रत के अनुपम कार्य पर बहुत प्रसन्न हुए और आशीर्वाद दिया कि तुम्हें इच्छा करने पर मृत्यु प्राप्त हो।

सत्यवती के गर्भ से चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य दो पुत्र उत्पन्न हुए। दोनों पुत्रों के बाल्यकाल ही में राजा शान्तनु का स्वर्गवास हो गया। सत्यवती की सम्मति से भीष्म ने चित्राङ्गद को राज्य पर बिठाया। चित्राङ्गद बड़े पराक्रमी और लोकविजयी राजा हुए। एकबार एक महाबली गन्धर्व से उनका युद्ध ठन गया और उस मायावी गन्धर्व ने राजा चित्राङ्गद को संग्राम में मार डाला। राजा चित्राङ्गद की अन्त्येष्टिक्रिया करके भीष्म ने बालक विचित्रवीर्य को राज्यासन पर बिठाया। विचित्रवीर्य भीष्म की सम्मति से राज्यकार्य चलाने लगे।

विचित्रवीर्य के बड़े होने पर भीष्म ने उनके विवाह का विचार किया। उन्होंने सुना कि काशिराज के तीन कन्याएँ हैं, वे अपना विवाह स्वयम्बर की रीति से करना चाहती हैं। माता की

आज्ञा लेकर महात्मा भीष्म काशी गये। वहाँ बहुत से राजा महाराजा विवाह की इच्छा से इकट्ठे हुए थे। भीष्म ने मन में सोचा कि जब इतने राजे एकत्रित हुए हैं तब कौन जाने मेरी अभिलाषा पूरी हो या न हो। ऐसा विचार कर वे अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका तीनों कन्याओं को स्वयम्बरभूमि से बलात् अपहरण कर रथ में बिठा कर चले। स्वयम्बर में आये हुए राजाओं से भीष्म की यह धृष्टता सहन न हो सकी। अपना घोर अपमान समझ कर उनसबों ने युद्ध के लिये भीष्म का पीछा किया और ललकारा। भीष्म भी लौट पड़े और घमासान संग्राम होने लगा, पर रणकुशल भीष्म के बाणों की वर्षा के आगे कोई ठहर न सका। सब राजा हिम्मत हार गये और भीष्म की वीरता सराहते हुए अपने अपने देश को लौट गये तथा तीनों कन्याओं को लिये हुए भीष्म हस्तिनापुर आये। विचित्रवीर्य के साथ उनके विवाह की धूमधाम से तैयारी होने लगी। यह देख कर काशिराज की सब से बड़ी कन्या अम्बा भीष्म के पास आई और लज्जा से सिर नीचे करके बोली—महात्मन्! मैं ने अपना विवाह शाल्वराज के साथ करना पूर्व ही में निश्चय कर लिया है। उनकी भी इच्छा मुझ से विवाह करने की थी, मेरे पिता भी इससे सहमत थे। इस दशा में मेरा विवाह दूसरे के साथ कर देना क्या आप को उचित है?

उसकी बात सुन कर भीष्म मन में बहुत चिन्तित हुए। उन्हों ने धर्म का विचार करके बड़े सोच विचार के अनन्तर अम्बा को शाल्वराज के पास जाने की अनुमति दे दी। अम्बिका और अम्बालिका के साथ विचित्रवीर्य का विवाह हो गया।

अम्बा एक ब्राह्मण और अपनी धाई के साथ शाल्वराज के पास गई और उनसे सविनय निवेदन किया कि मैं ने पहले ही आप को अपना पति वरण कर लिया था। अपाने भी इसके लिये मुझ से प्रार्थना की थी। भीष्म से यह सारी बातें मैं ने कहीं, तब उन्हों ने मुझे मुक्त किया और मैं सीधे आप की सेवा में उपस्थित हुई हूँ, अब अपनी बात को प्रमाणित करने की कृपा कीजिये।

राजा शाल्व ने स्वयम्बर के अवसर पर भीष्म द्वारा हरी जाने के कारण उसको दूसरे की भार्या समझ कर कुछ हँसते हुए कहा—तुमने स्वयम्बर में जिसे पति बनाया अब उसी के पास जाओ मैं दूसरे की स्त्री हो जानेवाली ललना का पाणिग्रहण नहीं कर सकता।

इस प्रकार शाल्वराज की कठोर बात सुन कर अम्बा के हृदय में बड़ा दुःख हुआ। क्रुद्ध होकर वहाँ से चल पड़ी, परन्तु अभिमान और ग्लानि से भरी हुई न तो वह अपने पिता के घर गई और न भीष्म के यहाँ जाना उचित समझा। निरुपाय होकर भीष्म, शाल्वराज और अपने तई धिक्कारती अनाथ की तरह रोती हुई इधर उधर घूमने लगी। इस सारे अनर्थ का भीष्म को ही कारण समझ कर मन ही मन उन पर बहुत क्रुद्ध हुई और उनसे बदला लेने का विचार मन में पक्का करके ऋषियों के आश्रम में आने जाने लगी। किसी समय एक आश्रम में उस ने तपस्वियों के सामने रो रो कर अपनी सारी दुर्दशा का वृत्तान्त कहा और उनसे प्रार्थना की कि आप लोग बतावें अब मुझे क्या करना चाहिये? इसी अवसर पर उसके नाना राजर्षि होत्रबाहन वहाँ आ गये। उन्हों ने अम्बा की कथा सुनी और वे उससे बड़े दुखी हुए। होत्रबाहन ने कहा—हे पुत्री! तू महर्षि परशुराम के शरण में जा, वे तुझ पर अवश्य दया करके अपराधी को दंड देंगे। इतना कह कर अम्बा को साथ लिये हुए वे परशुरामजी के समीप गये अम्बा परशुरामजी के चरणों में अपना मस्तक रख कर रोने लगी। राम ने उसे आश्वासन देकर उठने को कहा, तब वह हाथ जोड़ कर विनीत भाव से अपनी सारी दुर्गति कह कर और गिडगिड़ा कर निवेदन करने लगी—भगवान्! मुझे इस भीषण दुःख और शोक-सागर से उबारिये।

इस प्रकार अम्बा के मुख से दीनता युक्त दुःख भरी बातें सुन कर परशुरामजी दया और स्नेह से विह्वल हो गये। उन्हों ने प्रेम के साथ गम्भीर वचन कहा—हे राजकुमारी! तू क्या चाहती है? मुझ से स्पष्ट कह। अम्बा ने कहा—महाराज! मैं ने सारी घटना सत्य सत्य आप से निवेदन की, अब आप ही जो उचित समझें करें।

परशुरामजी बोले—बेटी! यदि तू चाहे तो मैं शाल्वराज से तेरा विवाह करा सकता हूँ अथवा भीष्म को क्षमा माँगने के लिये विवश करूँ, इन दोनों में जो तू कहे मैं वही करूँगा।

अम्बा ने कहा—प्रभो! जब शाल्वराज ने मेरे साथ विवाह करने से इनकार कर दिया तब मैं उनसे विवाह करना नहीं चाहती। भीष्म ही मेरे दुःख के कारण हैं। आप उन्हें प्राणदंड दें तो मेरा शोक दूर हो सकता है।

महर्षि जामदग्न्य पहले तो बड़े असमंजस में पड़े, पर अन्त में उन्हें अपने वचन के अनुसार विवश होकर अम्बा की प्रार्थना करने पर भीष्म को दंड देने के लिये उद्यत होना पड़ा। अम्बा को साथ लिए वे हस्तिनापुर आये। गुरु का आगमन सुन कर भीष्म को बड़ी प्रसन्नता हुई। जिन ब्राह्मणों ने यह समाचार सुनाया, उन्हें बहुत सा दान देकर उन्होंने सन्तुष्ट किया। गुरु के दर्शनार्थ उनके समीप बड़ी उत्कंठा से गये और विधि पूर्वक पूजन करके दंडवत प्रणाम किया। नम्रता पूर्वक पूछा—स्वामी का आगमन किस कार्य के निमित्त हुआ है?

परशुरामजी ने कहा—भीष्म! तुम ने इस कन्या को बलात् अपहरण करके बड़ा अन्याय किया। अब इस दोष के कारण इसके साथ कोई विवाह करना नहीं स्वीकार करता जिससे यह अत्यन्त दुःखी है। तुम इसके साथ अपना विवाह करके इसे घोर अपमान से बचाओ।

गुरु के इस तरह कहने पर भीष्म सविनय निवेदन करने लगे। स्वामिन्! मैं आजन्म ब्रह्मचारी रह कर विवाह न करने की प्रतिज्ञा कर चुका हूँ, अतएव उसको भङ्ग कर क्षत्रियधर्म का नाश न करूँगा। और ऐसी दशा में आप की आज्ञा का पालन होना किसी प्रकार संभव नहीं है।

भीष्म का उत्तर सुनकर परशुराम अत्यन्त क्रुद्ध होकर बोले—भीष्म! यदि तुम मेरी बात न मानोगे तो मैं तुम्हें प्राणदंड दूँगा। भीष्म ने प्रार्थना कर उन्हें शान्त करना चाहा और बहुत विनती की कि आप मेरे गुरु हैं, गुरु शिष्य से युद्ध ठानना उचित नहीं। युद्ध के लिये आपको मुझे बाध्य न करना चाहिये। परशुराम ने कहा—यदि तुम मुझे गुरु मानते हो तो मेरी आज्ञा का उल्लंघन क्यों करते हो?

गुरु की आज्ञा से अपनी प्रतिज्ञा को श्रेष्ठ समझ कर भीष्म अपनी बात पर दृढ़ रहे। उन्हों ने कहा—महाराज! आप ब्राह्मण और मेरे गुरु हैं, इसलिये युद्ध न करने की मैं बार बार प्रार्थना करता हूँ। परन्तु जब आप युद्ध के लिये आह्वान कर रहे हैं और बिना युद्ध के किसी प्रकार न मानेंगे तब आप के साथ युद्ध करने में अब मैं किसी प्रकार दोषी नहीं ठहराया जा सकता।

भीष्म के ऐसा कहने पर दोनों महापुरुषों का कुरुक्षेत्र के मैदान में युद्ध होने लगा। बहुत काल तक घोर संग्राम हुआ। बलशाली भीष्म युद्धविद्या में पूर्ण पंडित थे, उनसे बार बार परशुराम पराजित होने लगे; परन्तु गुरु समझ कर भीष्म ने उन्हें मारा नहीं। भीष्म की वीरता और युद्ध-कौशल को देख कर परशुराम बड़े प्रसन्न हुए और युद्ध करना त्याग दिया। महर्षि परशुरामजी ने अम्बा को बुलाकर कहा—देख तुझसे जो मैंने कहा था उसे पूरा करने के लिये यथाशक्ति प्रयत्न किया पर भीष्म जीते न जा सके। अब तू दूसरे की सहायता से अपनी इच्छा पूरी करने का प्रयत्न कर।

परशुराम की बात सुनकर अम्बा ने कहा—हे देव! जब भीष्म के जीतने में आप असमर्थ हैं तब उन्हें देवतागण भी नहीं जीत सकते। अब मैं दूसरे की सहायता से सफल मनोरथ नहीं हो सकती। भीष्म के संहार के हेतु मैं शिवजी की आराधना करूँगी, बिना त्रिपुरान्तक की सहायता के इस दुर्गम कार्य को कोई भी करने में समर्थ नहीं है। यह कह कर वह परशुरामजी को प्रणाम कर वन में चली गई और तपस्या करने लगी।

उसने अनशन व्रत करके बहुत काल पर्यन्त उग्र तप किया। उसकी तपस्या से शिव भगवान् ने प्रसन्न होकर उसे दर्शन दिया और बोले—अम्बा! तेरी जो इच्छा हो वह वरदान माँग, मैं तेरी तपस्या से सन्तुष्ट हूँ जो तू माँगेगी वही देने को प्रस्तुत हूँ। अम्बा ने हाथ जोड़ कर कहा—हे उमापते! मुझे यही वर दीजिये कि मैं भीष्म का वध करूँ। शिवजी ने प्रसन्न होकर कहा—जा, ऐसाही होगा। इतना कह कर शंकरजी अन्तर्धान हो गये और अम्बा चिता बना कर उसमें भस्म होगई। वह राजा द्रुपद की कन्या शिखंडिनी होकर जन्मी और एक दानव के वरदान से स्त्री से पुरुष हो भीष्म के मृत्यु का कारण हुई।

इधर विचित्रवीर्य सात वर्ष तक अम्बिका और अम्बालिका के साथ सुख से रहे, फिर उन्हें राजयक्ष्मा रोग हो गया। बहुतेरा उपचार किया गया किन्तु कुछ भी फल न हुआ, अन्त को वे युवावस्था ही में शरीर त्याग कर स्वर्गगामी हो गये। पुत्रशोक से सत्यवती बहुत ही व्याकुल हुई। वंश-विच्छेद की चिन्ता से वह सदा व्यग्र रहने लगी। एक बार उसने भीष्म को बुलाकर कहा—पुत्र! कुरु-वंश का गौरव और पिण्डदान अब तुम्हारे ही शरीर तक है। तुम सब शास्त्रों के जाननेवाले धर्मज्ञ और कुलदीपक हो, इसलिये मैं तुमसे एक काम करने का अनुरोध करती हूँ। आशा है कि कुलवृद्धि के हेतु तुम मेरे प्रस्ताव से सहमत होगे। मेरे दोनों पुत्र अकाल ही में काल के ग्रास हो गए, पर दोनों में से किसी एक को भी सन्तान नहीं। तुम्हारे भाई की स्त्रियाँ पुत्र की कामना रखती हैं। वंश परम्परा कायम रखने के लिये तुम उन बहुओं से पुत्र उत्पन्न करके धर्म की रक्षा करो।

यह सुन कर भीष्म ने कहा—हे माता! आप मेरी प्रतिज्ञा को जानती हैं। यदि त्रैलोक्य का भी राज्य मिल जाय तो भी मैं सत्य को नहीं छोड़ सकता। आप जान बूझ कर मेरे सत्य को नष्ट करनेवाली बात के लिये मुझ से न कहें। सत्यवती के बहुत तरह समझाने बुझाने पर जब भीष्म किसी प्रकार राजी नहीं हुए तब सत्यवती ने कहा—हे पुत्र! मैं जब क्वारी थी उस समय पराशर ऋषि के द्वारा मेरे एक बड़ा तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ था और वह जन्मते ही तप करने चला गया। जाती बेर उसने कहा था कि जब तुम्हें आवश्यकता हो तो मेरा स्मरण करना, मैं तुरन्त आ जाऊँगा। यदि तुम्हारी सम्मति हो तो इस कार्य के लिये मैं उस पुत्र का आह्वान करूँ। इस पर भीष्म बड़े प्रसन्न हुए और सहर्ष अनुमोदन किया कि आप अवश्य ही उन्हें बुलावें।

सत्यवती ने व्यासजी का स्मरण किया और वे तुरन्त आ पहुँचे। पुत्र को देख कर सत्यवती मन में बहुत प्रसन्न हुई और अपने संकट का सारा वृत्तान्त कह कर वेदव्यासजी से उसने अनुरोध किया कि तुम मेरी बहुओं के साथ नियोग करके सन्तान उत्पन्न करो जिससे इस वंश का नाम न डूबने पावे। माता की आज्ञा को धर्म जान कर व्यासजी ने स्वीकार किया और कहा कि कोई स्त्री बिना व्रत किये मुझ से पुत्र की इच्छा से मिल नहीं सकती इसलिये आप बहुओं को व्रत करने का आदेश कर दें। सत्यवती ने दोनों पतोहुओं को समझा कर व्रत कराया। व्यासजी का शरीर काला रूपरंग और डील डौल अच्छा न था इसलिये उन्होंने माता से कहा कि मेरी भाभी मेरे रूप को देख कर डरेंगी नहीं और

उचित सत्कार करेंगी तो शीघ्रही उनके प्रतापी गुणवान् पुत्र होगा, इसमें सन्देह नहीं । यह सुन कर सत्यवती बहुत प्रसन्न हुई और अम्बिका के पास गई । अनेक प्रकार के धार्मिक इतिहासों को कह कर समझाया और कहा कि—बेटी ! इस बड़े वंश की रक्षा के लिये तुम अपने जेठे से सन्तान उत्पन्न करो जिससे कुल का अन्त न हो । सत्यवती के समझाने पर अम्बिका राज़ी हो गई । ऋतुकाल से निवृत्त होकर वह शृङ्गार करके रङ्गमहल में गई और सोचने लगी कि मेरे जेठे राजाओं के समान स्वरूपवान् होंगे । वह बड़ी प्रसन्नता से व्यासजी को खुश करने की तैयारी करने लगी । जब रात में व्यासजी आये मन्दिर में दीपक जल रहा था, जटाधारी कृष्ण रूप तपस्वी को देख कर अम्बिका घबरा गई । उसने भय से आँखें बन्द करलीं । यद्यपि उसके इस बर्ताव से व्यासजी मन में अप्रसन्न हुए, पर माता से प्रतिज्ञाबद्ध होने के कारण उन्होंने सहगमन किया । चलती वेर माता से उन्होंने कह दिया कि इसके अन्धा पुत्र होगा; क्योंकि इसने मेरे रूप से घिना कर मेरा कुछ भी सत्कार न करके आँखें बन्द कर ली थीं । समय पर अम्बिका के अन्धा पुत्र हुआ जिसका नाम धृतराष्ट्र पड़ा ।

अन्धा पुत्र होने से सत्यवती को बड़ी चिन्ता हुई, उसने छोटी बहू अम्बालिका को बहुत समझा बुझा कर इस कार्य के लिये सन्नद्ध किया । वह साहस कर रंगमहल में जाकर व्यासजी की बाट जोहने लगी । जब वेदव्यासजी पधारे तब उनकी डरावनी सूरत देख कर उसका साहस छूट गया । मारे डर के अम्बालिका का मुँह पीला पड़ गया । उसने व्यासजी के समागम से किसी प्रकार की प्रसन्नता नहीं प्रकट की । इससे व्यासजी उस पर भी प्रसन्न नहीं हुए । उन्होंने कहा—इसे जो पुत्र होगा वह पाण्डुवर्ण का होगा । वही हुआ, अम्बालिका से उत्पन्न पुत्र का नाम पाण्डु पड़ा ।

दोनों ही पुत्रों को सुन्दर न देख कर सत्यवती सन्तुष्ट नहीं हुई । उसने कृष्णद्वैपायन से एक पुत्र और उत्पन्न करने के लिये कहा, उन्होंने माता की बात स्वीकार कर ली और स्मरण करने पर आने का वचन देकर चले गये । जब जेठी बहू ऋतुमती हुई तब सत्यवती ने फिर उसे ऋषि से मिलने के लिये आग्रह किया । प्रत्यक्ष में बहू ने सास की बात मान ली, पर उसने महाऋषि के भयावने स्वरूप को स्मरण कर जाने का साहस नहीं किया । सास से छिपा कर अपनी एक दासी जो अप्सरा के समान सुन्दर रूपवाली थी, उसको अपने गहनों से सजाकर रङ्गमन्दिर में भेज दिया । उसने ऋषि के आने पर उठ कर प्रणाम किया और सत्कार करके उनकी आज्ञानुसार सेज पर जा विराजी । व्यासजी उसके समागम से बहुत ही प्रसन्न हुए और चलते समय कहा कि अब तुझे दासी होना न पड़ेगा और तेरे गर्भ से जो पुत्र उत्पन्न होगा वह धर्मात्मा, बुद्धिमान् और सर्वाङ्गसुन्दर लोकप्रसिद्ध महात्मा होगा । यह कहकर व्यासजी चले गये और समय पर उसके गर्भ से एक पुत्र हुआ जिसका नाम विदुर पड़ा । उन तीनों पुत्रों का साथ ही पालन पोषण होने लगा । व्यासजी ने चलते समय माता सत्यवती से कह दिया कि इस बार मेरे पास दासी भेजी गई थी । मैंने आप की आज्ञा का पालन किया । मांडव्य ऋषि के शाप से धर्म को जन्म लेना पड़ेगा । वही इस दासी के गर्भ से उत्पन्न होकर विदुर कहलायेंगे । अब मैं धर्मपूर्वक आप से उऋण हो चुका । यह कह प्रणाम करके वे अन्तर्हित हो गये ।

कुमारों के जन्मते ही कुरुवंश, कुरुजाङ्गल और कुरुक्षेत्र की उत्तरोत्तर उन्नति होने लगी । समय पर वर्षा होने से खेतों में पर्याप्त अन्न उपजने लगा । वृक्ष फूलते फलते थे, देश में शिल्पकला और व्यापार की अच्छी वृद्धि हुई । सत्य, धर्म का आचरण करती हुई प्रजा सुख से निवास करने लगी । कुमारों की शिक्षा का प्रबन्ध पिता की भाँति भीष्म करने लगे । युवावस्था प्राप्त होने के पूर्व ही वे तीनों कुमार सम्पूर्ण शास्त्र और शस्त्रास्त्रविद्या में निपुण हो गये ।

जन्मान्ध होने के कारण धृतराष्ट्र को और शूद्री से उत्पन्न होने से विदुर को राज्य नहीं मिला। पाण्डु राज्य के अधिकारी हुए।

एक दिन नीतिकुशल भीष्म ने विदुर से कहा—पुत्र! यह सब से बड़ा राजकुल नष्ट होता देख कर सत्यवती वेदव्यास तथा मेरे प्रयत्न से कुल की रक्षा करनेवाले तुम तीनों उत्पन्न हुए हो, अतः हम सब को अब ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि यह कुल वृद्धि को प्राप्त हो। जिससे इस कुल का नाश न हो, इस हेतु मैंने तुम तीनों के विवाह करने का निश्चय किया है। इस विषय में तुम्हारी क्या सम्मति है?

विदुर ने कहा—आप ही हमारे माता, पिता, गुरु सब कुछ हैं। इसलिये आप स्वयं विचार कर जो उचित समझिये वही कीजिये।

भीष्म ने ब्राह्मणों से सुना कि राजा सुबल की सर्वलक्षणसम्पन्ना कन्या गान्धारी है। उसके साथ धृतराष्ट्र का व्याह निश्चित कर उन्होने सुबल के पास दूत भेजा।

राजा सुबल धृतराष्ट्र को अन्धा जान कर पहले असमञ्जस में पड़े। फिर कुरुवंश के नाम, प्रतिष्ठा और चरित्र को विचार कर धृतराष्ट्र के साथ गान्धारी का विवाह करना उन्होंने स्वीकार कर लिया। जब गान्धारी ने सुना कि जिसके साथ मेरा व्याह होनेवाला है वे अन्धे हैं, तो उसने पतिव्रता होने के कारण पति का अनुकरण आँखों में पट्टी बाँध कर किया। और मृत्यु समय तक उसे नहीं खोला।

सुबल के पुत्र शकुनि अपनी बहिन गान्धारी को साथ लेकर पिता की आज्ञा से हस्तिनापुर गया। वहाँ भीष्म की अनुमति से गान्धारी का विवाह धृतराष्ट्र के साथ शास्त्रविधि से कर दिया। पतिव्रता गान्धारी अपने सद्व्यवहार से कौरवकुल को प्रसन्न करने लगी। कभी कोई उससे अप्रसन्न न होता था और न कभी उसने किसी का अप्रिय किया।

यदुकुल में वसुदेव के पिता शूर नामक एक महात्मा थे। उनके पृथा नामकी एक कन्या थी। वह परम सुन्दरी थी। उन्होंने राजा कुन्तिभोज से प्रतिज्ञा की थी कि मैं अपनी पहली सन्तान को तुम्हें दूँगा। तदनुसार शूर ने कुन्तिभोज को कन्या दे दी। पृथा पालक पिता के घर में रह कर अपने आचरण से सब को प्रसन्न करने लगी। एक दिन महर्षि दुर्वासा को उसने अपनी सेवा से प्रसन्न किया। उन्होंने उसे देवताओं के आवाहन करने का मंत्र बता दिया और यह भी कहा कि यदि तुझे पुत्र की कामना हो तो उनके प्रभाव से पुत्र भी जनेगी। पृथा ने मुनि की आश्चर्य भरी बात सुन कर कुमारी अवस्था में ही सूर्य का आवाहन किया। वे आये और कुन्ती से कहने लगे, हे शोभने! मैं आ गया हूँ, मुझसे तुम कौन कार्य चाहती हो?

पृथा ने कहा—हे भगवन्! एक ब्राह्मण ने मुझे वरदान दिया था, उसी की परीक्षा के लिये हमने ऐसा किया। इस अपराध के लिये मैं आप से क्षमा चाहती हूँ।

सूर्य ने कहा— हे भीरु! मेरे दर्शन का फल अवश्य होगा। मैं तुझको एक पुत्र देता हूँ, साथ ही यह भी कहता हूँ कि तेरे क्वारेपन में कोई दोष न आवेगा। भगवान् सूर्य की कृपा से कवच कुण्डल धारण किये हुए कर्ण उत्पन्न हुए, जो आगे चल कर बड़े प्रतापी वीर हुए। पृथा पुत्र को देख दुखी हो सोचने लगी कि अब क्या करना चाहिये। स्वजनों के भय से इस काम को छिपाने के लिये पृथा ने शिशु कर्ण को जल में प्रवाहित कर दिया। राधा के पति सूतपुत्र ने उस बच्चे को पाया और पत्नी को दे अपना पुत्र बना लिया। बड़े होने पर यह ऐसे दानी हुए कि आज तक उनका नाम अमर है। एक

दिन ब्राह्मण रूप बनकर इन्द्र अर्जुन के लिये कवच माँगने आये। उन्होंने प्रसन्नता-पूर्वक कवच उतार कर ब्राह्मण रूपधारी इन्द्र को दे दिया। इन्द्र ने प्रसन्न होकर उसके बदले में एक अमोघ शक्ति दी और कहा कि तुम इससे जिस किसी एक को मारना चाहोगे, मार सकोगे।

कुछ काल बीतने पर पृथा जब सयानी हुई तो राजा कुन्तिभोज ने स्वयम्बर रचा। उसमें देश देशान्तर के राजा एकत्रित हुए। वहाँ पृथा ने राजा पाण्डु को देखा और उनपर मोहित हुई। उन्हीं के गले में जयमाल डाल दिया और बड़े धूम धाम से राजा पाण्डु के साथ कुन्ती का विवाह हुआ।

आगे चलकर महात्मा भीष्म ने पाण्डु के एक और विवाह का निश्चय किया। वे मंत्रियों, महर्षियों तथा सेना के साथ मद्र देश को गये। मद्रनाथ ने भीष्म का बहुत स्वागत किया और आने का कारण पूछा।

भीष्म ने कहा—हे राजन्! मैं आपके यहाँ कन्या की भिक्षा के लिये आया हूँ। मैंने सुना है कि माद्री नामक आप की बहिन बड़ी सौभाग्यवती है, उसे मैं पाण्डु के लिये चाहता हूँ। यह सुन कर शल्य बहुत प्रसन्न हुआ और उसने कहा—हे महात्मा! आपसे बढ़ कर मुझे दूसरा कौन श्रेष्ठ सम्बन्ध सकता है? मैं बड़ी प्रसन्नता से आपको अपनी बहन देता हूँ। भीष्म उसे लेकर हस्तिनापुर आये और पाण्डु के साथ उसका विवाह कर दिया। उन दोनों रानियों के साथ पाण्डु बड़े आनन्द से दिन बिताने लगे।

कुछ काल बीत जाने पर पाण्डु दिग्विजय के लिये निकले। अपने पराक्रम से सम्पूर्ण देशों को जीत कर और असंख्य धन लेकर हस्तिनापुर को लौटे। भीष्म ने उनका हृदय से स्वागत कर गले लगाया।

महात्मा भीष्म ने यादवराज देवक की कन्या से विदुर का विवाह करा दिया।

कौरव और पाण्डवों की उत्पत्ति

एक समय वेदव्यास भूख और थकाई से विकल होकर गान्धारी के पास आये और उसने खिला पिलाकर उन्हें प्रसन्न किया। इस पर गान्धारी के माँगने से व्यास ने उसे वरदान दिया कि तेरे सौ पुत्र होंगे। समय पर धृतराष्ट्र से गान्धारी को गर्भ रहा। दो वर्ष बीत जाने पर गान्धारी चिन्तित हुई। उसने यह भी सुना कि कुन्ती के बड़ा तेजस्वी पुत्र हुआ है, तब उसने धृतराष्ट्र से बिना कहे अपने पेट में ज़ोर से धक्का दिया जिससे दो वर्ष के गर्भ का मांसपिण्ड बाहर निकल आया। गान्धारी उसे फेंकनाही चाहती थी कि तपस्वी व्यासजी ने आकर रोका और कहा कि तू यह क्या कर रही है? तब गान्धारी ने सारा हाल उनसे कह दिया। व्यासने कहा कि शीघ्र सौ घड़े घी भर कर किसी एकान्त स्थान में रखवा दो और ठण्डे जल से इस मांसपिण्ड को नहलाओ। गान्धारी ने वैसाही किया। उस पिण्ड से अङ्गुष्ठमात्र एकसौ एक भाग हो गये। उनको अलग अलग घड़ों में रख कर उन पर पहरा बैठा दिया गया। व्यासजी ने गान्धारी से कहा कि दो वर्ष के बाद इसे खोलना। ऐसा कह कर वे हिमालय को चले गये। ठीक समय पहुँचने पर एक घड़े से सबसे पहले दुर्योधन ने जन्म लिया, पर युधिष्ठिर इनसे पहले ही उत्पन्न हो चुके थे, इसलिये वे जेठे ठहरे।

दुर्योधन जन्म लेते ही गदहे की तरह चिल्लाया था और बहुत से अशकुन हुए थे जिससे मंत्रियों को बड़ी चिन्ता हुई। जिस समय दुर्योधन जन्मा था, उसी दिन कुन्ती से भीम भी पैदा हुए थे।

अशकुन को देख कर धृतराष्ट्र बहुत घबराये और भीष्म, विदुर आदि से पूछने लगे। विदुर ने कहा—हे महाराज! इन अशुभ चिन्हों से सूचित होता है कि इस पुत्र से राज्य का बड़ा अनिष्ट होगा। आप इसे त्याग कर राज्य की रक्षा कीजिये। परन्तु पुत्र स्नेह के कारण धृतराष्ट्र ऐसा करने में समर्थ न हुए।

अनन्तर दुःशासन, विकर्ण आदि सौ पुत्र उत्पन्न हुए। मांसपिण्ड अलगाते समय एक सौ एक भागों में विभक्त होगया था और गान्धारी की भी इच्छा एक कन्या की थी, व्यास के आशीर्वाद से वैसाही हुआ। एक दुःशला नाम की कन्या भी उत्पन्न हुई।

राजा पाण्डु को आखेट का बड़ा शौक था। शिकार खेलते हुए वन में उन्होंने क्रीड़ा करते हुए एक मृग का जोड़ा देखा और उसे बाण से विद्ध कर दिया। वह एक ऋषिकुमार मृग बन कर अपनी स्त्री के साथ विहार कर रहे थे। बाण की चोट से वे दोनों पृथ्वी पर गिर पड़े और मनुष्य वाणी में विलाप करते हुए पाण्डु से कहने लगे। हे राजा! काम, क्रोध से पूर्ण मनुष्य भी ऐसा निर्दय काम नहीं करता। तुम धर्मात्मा के कुल में उत्पन्न होकर धर्म जानते हुए भी ऐसा अधर्म करने में क्यों प्रवृत्त हुए?

पाण्डुने कहा—हे मृग! राजाओं का शिकार करना धर्म है, वही मैं ने भी किया तुम मोह में पड़कर मुझे क्यों डाँट रहे हो?

मृग ने कहा—हे राजा! मैं पुत्रकामना से अपनी स्त्री के साथ विहार कर रहा था, उसको आपने निष्फल कर दिया। आपने उच्चकुल में जन्म लिया है, यह कार्य आपने उचित नहीं किया। आपने बड़ी निर्दयता का काम किया है मैं कन्दमूल खानेवाला मुनिकुमार हूँ, बिना अपराध मुझे मार कर आपने बड़ा अनर्थ किया। अब मैं आप को इस अपराध पर शाप देता हूँ। ज्यों ही आप काम के वश में होंगे, त्यों ही आप के प्राण छूट जाँयगे। आपने मुझे पहचाना नहीं इसलिये आपको ब्रह्महत्या का दोष न लगेगा। यह सुन कर राजा पाण्डु बड़े दुखी हुए।

राजा पाण्डु उस दुःख से विलपने लगे। उन्हों ने कहा—जो लोग स्थिरबुद्धि नहीं होते वे अच्छे कुल में जन्म लेकर भी कामना के जाल में फँस कर अपने कर्म के दोष से दुर्गति को प्राप्त होते हैं। मैं क्रीड़ा में फँसकर खोटी बुद्धिवाला हो गया हूँ। पुत्र के न होने से स्वर्ग का मार्ग भी रुका हुआ है। अब मैं इस भवबन्धन को छोड़ ब्रह्मचारी बन अपना मन तपस्या में लगाऊँगा।

इस प्रकार सोचते हुए पाण्डु ने जाकर सारा वृत्तान्त अपनी रानियों से कहा। रानियाँ भी उनके साथ चलने को तैयार हो गईं और कहने लगीं, हे स्वामी! हम आप ही की भाँति पवित्र आचरण से तपस्या करेंगी, क्योंकि आप के वियोग से हम पलभर भी न जी सकेंगी। राजा पाण्डु ने अपने आभूषणादि उतार ब्राह्मणों को दे दिये और स्त्रियों को साथ ले बन को चले। साथ के लोगों से कहा तुम लोग हस्तिनापुर लौट जाओ और वहाँ जाकर कह देना कि मैंने पत्नियों के साथ सन्यास ले लिया।

यह सुनकर उनके साथ के लोग बड़े विकल हुए, बड़े दुःख के साथ पाण्डु से बिदा हो हस्तिनापुर आये और सत्यवती, भीष्म तथा धृतराष्ट्र से सब वृत्तान्त कहा यह सुन कर भाई के बिछोह से धृतराष्ट्र बहुत विकल हुए और बहुत काल तक उनका चित्त अशान्त बना रहा।

राजा पाण्डु घोर तपस्या में लीन हुए। इन्द्रियनिग्रह कर उन्होंने ऐसी तपस्या की कि ब्रह्मर्षि के समान हो गये। उनके सारे पाप भी छूट गये।

एक दिन अमावस्या तिथि में महर्षि लोग ब्रह्मलोक को जाते थे। उनको देख पाण्डु ने उनसे पूछा—हे महर्षियो! आप लोग कहाँ जा रहे हैं? ऋषियों ने कहा आज ब्रह्मलोक में देव ऋषि तथा पितरों का मिलन होगा, वहाँ स्वयम्भुको देखने के लिये हम लोग जा रहे हैं।

शतशृङ्ग पर्वत से उत्तर की ओर मुनियों के साथ चलने की इच्छा पाण्डु ने प्रगट की और पत्नियों के साथ महर्षिगण के समीप गये। मुनियों ने उनको जाने योग्य न समझ कर कहा कि पर्वतीय देश का मार्ग बड़ा बीहड़ है, हम लोग उसे जानते हैं। आप वहाँ चल न सकेंगे। इस प्रकार मार्ग की कठिनाई दिखाकर मुनियों ने असली कारण नहीं बतलाया, पर बुद्धिमान् पाण्डु जान गये कि मैं निःसन्तान हूँ इसीसे तपस्वी लोग मुझे साथ ले जाने से इनकार कर रहे हैं, क्योंकि पुत्र हीन पुरुष को स्वर्गप्राप्ति में भी सदेह नहीं होती।

इस प्रकार उदास मन राजा लौट आये और सन्तान न होने का दुःख रानियों से कहा। कुन्ती को यह सब सुन कर बड़ा दुःख हुआ और वह पति से इस प्रकार कहने लगी।

हे नाथ! बाल्यकाल में जब पिता के घर थी तब वहाँ अतिथि ब्राह्मणों की सेवा में बड़े शुद्ध मन से किया करती थी। दैवयोग से एक दिन दुर्वासा ऋषि आगये, मैंने उनकी विधि-पूर्वक पूजा की। उन्हों ने प्रसन्न होकर देवताओं के आह्वान करने तथा अभीष्ट प्राप्त करने का मंत्र मुझे बतला दिया था। उनकी बात कभी असत्य हो नहीं सकती। आप की आज्ञा हो तो मैं देवता को बुला कर सन्तान पाने के लिये प्रार्थना करूँ।

कुन्ती की बात सुन कर पाण्डु बड़े प्रसन्न हुए और कहा—हे सुन्दरी! धर्मराज सब देवताओं से बढ़ कर धर्मात्मा हैं, तुम उन्हीं को बुलाओ।

कुन्ती ने पति की आज्ञा से धर्मराज का आवाहन किया। वे आये और कुन्ती पर प्रसन्न हो कर उन्होंने एक पुत्र दिया जो बड़े धर्मात्मा चक्रवर्त्ती राजा हुए उनका नाम युधिष्ठिर पड़ा।

कुछ काल बाद पाण्डु की इच्छा एक बलवान् पुत्र प्राप्त करने की हुई। उन्होंने कुन्ती से कहा—हे प्रिये! पण्डित लोग कहते हैं कि क्षत्रिय बल में सबसे बड़े हैं, इसलिये तुम पवनदेव की पूजा कर उनसे एक बलवान् पुत्र माँगो। कुन्ती ने ऐसाही किया। पवनदेव की कृपा से महा बलशाली पुत्र भीम उत्पन्न हुए।

अब पाण्डु को यह इच्छा हुई कि मेरे एक ऐसा पुत्र हो जो सब लोगों से बड़ा हो। उन्होंने सोचा—सुनते हैं इन्द्र देवताओं में सब से प्रधान हैं। तपस्या कर उन्हें प्रसन्न करूँ तो वे मुझे अवश्य ऐसा पुत्र देंगे जो सर्वश्रेष्ठ हो। पाण्डु ने कुन्ती से भी अपना विचार प्रगट किया। दोनों तपस्या करने लगे। उनकी तपस्या से प्रसन्न हो इन्द्र उनके पास आये और उन्हों ने अपने समान बलशाली पुत्र दिया जिसका नाम अर्जुन हुआ। अर्जुन के उत्पन्न होने पर आकाश से दुन्दभी बजने लगी, चारों ओर से पुष्प वृष्टि होने लगी, महर्षिगण स्वस्तिवाचन करने लगे। सब ओर से शुभ-सूचक चिन्ह दिखाई पड़ने लगे। अर्जुन को देखने के लिये सप्तर्षि, ब्रह्मर्षि नारद, देवता और गन्धर्व आये। इससे कुन्ती को बड़ी प्रसन्नता हुई।

अनन्तर राजा पाण्डु को पुत्र पाने का इतना लोभ बढ़ गया कि उन्हों ने कुन्ती से फिर पुत्र प्राप्ति के लिये कहना आरम्भ किया।

इस पर कुन्ती ने उनसे कहा—धर्मवेत्ता लोग आपत्काल में भी चौथी सन्तान जनने की प्रशंसा नहीं करते; क्योंकि चौथे पुरुष से सहवास करने से स्त्री व्यभिचारिणी कहलाती है। हे नाथ!

इस धर्म को जान कर भी आप उसका उल्लंघन कर क्यों फिर मुझे सन्तान उत्पन्न करने के लिये बाध्य कर रहे हैं ?

इस प्रकार कुन्ती से उत्तर पाने पर राजा चुप हो रहे। एक दिन एकान्त में माद्री ने पाण्डु से कहा—हे नरनाथ ! आप मुझे सुन्दरी होने पर भी ओछी समझें तो भी दुःख नहीं, गान्धारी के सौ पुत्र हैं इसका भी मुझे खेद नहीं। खेद मुझे इस बात का है कि मैं और कुन्ती दोनों ही आपकी धर्मपत्नी हैं। पर कुन्ती के तीन पुत्र हैं और मेरे एक भी नहीं। इसीसे मैं सन्तप्त हो रही हूँ। कुन्ती से—सौत होने के कारण—मैं कोई प्रार्थना नहीं करना चाहती। यदि आप दुर्वासा ऋषि के मन्त्र द्वारा मुझे पुत्र प्राप्त कराने की आज्ञा कुन्ती को दें तो बड़ा अनुग्रह हो।

पाण्डु ने कहा—हे माद्री ! इस बात को मैं भी मन ही मन सोचा करता हूँ, किन्तु तुम्हारे मन की बात बिना जाने मैंने सहसा प्रगट नहीं किया। अब मैं इसका प्रयत्न करूँगा।

एक दिन राजा ने कुन्ती से कहा—हे प्रिये ! मेरी प्रीति की रक्षा के लिये तुम मेरे हित का एक काम करो। देखो, देवराज ने भी यश पाने के लिये यज्ञ किया था। इसलिये यश प्राप्त करने के हेतु तुम भी मेरा हितकर कार्य करो। माद्री पर दया कर उसे भी पुत्रवती बनाओ। इससे माद्री की इच्छा पूरी होगी और तुम्हारा यश बढ़ेगा।

यह सुन कुन्ती ने माद्री से कहा कि तुम एक बार किसी देवता को मन में लाओ। ऐसा करने से तुम्हें उसी के समान निश्चय ही पुत्र मिलेगा। माद्री ने दोनों अश्विनी कुमारों का स्मरण किया। इससे उनकी कृपा से माद्री के साथ ही अत्यन्त सुन्दर दो पुत्र उत्पन्न हुए जिनका नाम नकुल और सहदेव हुआ।

कुछ काल बीतने पर पाण्डु ने कुन्ती से माद्री के लिये फिर विनय की। तब कुन्ती ने कहा महाराज ! मेरे एक बार कहने से माद्री के दो पुत्र हो गये। वह बड़ी चतुर है उसने एक बार ही दो देवताओं का स्मरण कर दो पुत्र पा लिया, मैं पहले यह न जानती थी अब आप मुझ से विनय न करें।

पाण्डु को पाँच ही पुत्र पर सन्तोष करना पड़ा। वे पाँचों बड़े पराक्रमी, कीर्त्तिमान् और धनुर्धारी वीर हुए।

उन पाँचों पुत्रों के साथ राजा पाण्डु शतशृङ्ग पर्वत पर सुख से दिन बिताने लगे। एक समय परम सुहावने वसन्त ऋतु के आने पर वन में पत्नी के साथ राजा पाण्डु विचर रहे थे। चारों ओर आम, चम्पा, केसर, अशोक, माधवीलता आदि अनेकों प्रकार के वृक्ष, गुल्म फूलों से शोभित हो रहे थे। उन पर गुञ्जारते हुए भौंरे परम सुहावने मालूम होते थे। कहीं झील में कमल खिले हुए थे। ऐसी परम मनोहारिणी वन की शोभा को देख पाण्डु काम के वश में हो गये। सुन्दरी माद्री सुसज्जित हो आनन्द के उमङ्ग में उनके पीछे पीछे जा रही थी। उसे देख राजा मोहित हो गये—ऋषि के शाप का स्मरण जाता रहा—अपने को रोक न सके। माद्री ने उन्हें बहुत रोकने की चेष्टा की पर सफल न हो सकी। निदान ऋषि के शाप के कारण उनका प्राणान्त हो गया। राजा की यह गति देख माद्री बहुत दुखी हो रुदन करने लगी। कुन्ती रोना सुन कर झट पुत्रों के साथ वहाँ आई। माद्री ने कुन्ती से कहा—बच्चों को वहीं छोड़ तुम अकेली यहाँ आओ। कुन्ती रोती हुई वहाँ गई और माद्री से कहने लगी, रीमाद्री ! ऋषि के शाप के कारण मैं इनकी बराबर रक्षा किया करती थी आज यह क्या हो गया !

माद्री ने कहा—मैंने इन्हें बहुतेरा समझाया; क्योंकि मैं भी ऋषि के शाप को जानती थी। पर काल वश होने के कारण राजा अपने को सँभाल न सके। कुन्ती ने कहा—मैं जेठी पत्नी हूँ। धर्म के

अनुसार पति के साथ सती होना मेरा कर्तव्य है । अब मैं इनके साथ सती हाती हूँ । तू मुझे इस काम से न रोक । इनको छोड़ कर उठ और बच्चों को पाल ।

माद्री ने कहा—हे कुन्ती ! तुम मेरे पुत्रों को पाल सकोगी सम्भव है मैं तुम्हारे पुत्रों का उचित रीति से पालन न कर सकूँ और मेरे ही कारण ये परलोक सिधारे हैं, इसलिये मेरा ही सती होना उचित है । ऐसा कह कर देखते देखते पति के साथ माद्री ने प्राण विसर्जन कर दिया ।

राजा के परलोकगामी होने पर वहाँ रहनेवाले महर्षियों ने विचार किया कि पाण्डु ने इस वन में हमारे ही आश्रम में निवास किया है । इसलिये उनकी स्त्री, पुत्र और मृत शवों को हस्तिनापुर पहुँचा देना हमारा धर्म है । ऐसा निश्चय कर दम्पति का शरीर और उनके स्त्री पुत्रों को साथ ले उन लोगों ने हस्तिनापुर की ओर प्रस्थान किया । विधवा कुन्ती पुत्रों का मुँह देख कर अपने मन को शान्त करती थी । कुटुम्बियों के देखने की उत्सुकता से पुत्रों के साथ आगे आगे चली । शीघ्र ही हस्तिनापुर पहुँच कर ऋषियों ने राजसभा में सूचना करायी । यह सुन कर भीष्म, सत्यवती और बड़े लोग तथा प्रजागण सब घबराये हुए ऋषियों से मिलने आये । भीष्म ने ऋषियों का यथाविधि सत्कार किया । सब के शान्ति पूर्वक बैठने पर ऋषियों ने पाण्डु का बनवास, पुत्रों का जन्म और उनकी मृत्युकथा सुनायी । पाण्डु का मृत देह और पुत्रों को भीष्म को सौंप कर ऋषि अपने आश्रम को लौट गये ।

राजा धृतराष्ट्र की आज्ञा से विदुर ने पाण्डु और माद्री की अंत्येष्टिक्रिया का प्रबन्ध किया । जाति के लोग तथा सब मन्त्रीगण एकत्रित हुए । पाण्डु और माद्री का शरीर फूलों से सजाया गया । एक उत्तम रथीपर बहुमूल्य वस्त्र बिछा कर शव उसके ऊपर रक्खा गया । बड़ी श्रद्धा के साथ सबलोग अपने कन्धों पर दाहकर्म के स्थान पर लेकर चले । चँवर, छत्र आदि से सुशोभित कर महाराज पाण्डु की रथी बड़े धूम धाम से जा रही थी । आगे आगे श्वेत वस्त्रधारी ब्राह्मण वेद के मंत्रों से अग्नि में आहुति देते जाते थे । हज़ारों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र नरनाथ की रथी के साथ गये । गङ्गा तटपर जहाँ चिता की तैयारी हो चुकी थी, रथी रक्खी गई । मृत देह को स्नान कराकर सफ़ेद वस्त्र पहनाया गया । अगर, केसर, कस्तूरी, चन्दन आदि का लेप लगाया गया । ब्राह्मणों द्वारा प्रेतकृत्य हो जाने पर घी से नहला कर प्रधान प्रधान सुगन्धियों से युक्त अच्छे चन्दन की लकड़ी द्वारा दाहकर्म किया गया । दाहकर्म हो जाने पर सबने विधि से तर्पण किया । दश दिन के बाद दशाह कृत्य समाप्त कर सूतक दूर हो जाने पर भीष्म, धृतराष्ट्र आदि पाण्डवों को लेकर हस्तिनापुर लौट आये ।

पाण्डु का श्राद्ध हो जाने पर महर्षि व्यासने आकर देखा कि सब बड़े दुःख में पड़े हैं और वे मोह में पड़ी हुई माता सत्यवती से बोले—हे माता ! अब सुख के दिन जाते रहे । बड़ा कठिन समय आ गया है । दिन दिन पाप की वृद्धि होगी । पृथ्वी की युवावस्था पूरी हो गई । अब पहले की भाँति अन्न न उपजेगा । धर्म, कर्म आचार भ्रष्ट हो जायगा । कौरवों की अनीति बढ़ेगी और इस वंश का नाश हो जायगा, तुम अपनी आँखों इसका नाश न देखो बन में जाकर योगाभ्यास करो ।

यह सुनकर सत्यवती दोनों बहुओं को साथ लेकर बन में चली गई और वहाँ तपस्या कर दिव्यलोक को गई ।

पाण्डवों और कौरवों का बाल्यचरित

पाण्डवों का वेद विहित संस्कार हो जाने पर वे पिता के घर में सुख-पूर्वक निवास करने लगे, धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन आदि के साथ खेलते थे और प्रत्येक खेल में अपने प्रभाव से सब से श्रेष्ठ हो गये।

फुर्ती से काम करने में, नियत वस्तु के लूटने में, धूल उड़ाने में भीमसेन धृतराष्ट्र के पुत्रों को हरा देते थे। जब दुर्योधन आदि आनन्द से खेलने लगते, तब वे पाण्डुपुत्र उनको एक दूसरे से अलग कर और एक के सिर को पकड़ कर दूसरे के सिर से ठोंक देते थे। इस प्रकार तंग आकर दुर्योधन आदि रोने लगते। जल में खेलते खेलते वे दश लड़कों को हाथ से पकड़ पानी में डुबा देते और कुछ देर बाद छोड़ देते थे। जब धृतराष्ट्र के लड़के वृक्षों पर चढ़कर फल तोड़ने लगते तब भीम लात मारकर डालियों को हिला देते और वे सब गिर जाते थे।

इस प्रकार भीम के बल को देख दुर्योधन उनसे डाह करने लगा। उसने सोचा कि यह भीम सब से बलवान् है, इसी को छल से मार डालें तो मेरा कण्टक दूर हो जाय। बाकी चार कर ही क्या सकते हैं। उन सब को पकड़कर बाँध देंगे तभी सुख-पूर्वक राज्य कर सकेंगे।

इस प्रकार पापी दुर्योधन भीम के मार डालने की घात ढूँढ़ने लगा। उसने जल में खेलने के बहाने गङ्गाजी के प्रमाणकोटी नामक स्थान में कपड़े और कम्बलों का एक बड़ा भवन बनवाया और बहुत से तम्बू खड़ा कर एक नगर सा बनवा दिया। वहाँ अनेक प्रकार की भोजन-सामग्री प्रस्तुत की गई। तब पापी दुर्योधन ने पाण्डवों से कहा कि चलो हम सब भाई मिल कर सुन्दर उपवनों से शोभित गङ्गा के तट पर जल में खेलें।

सरलचित्त युधिष्ठिर के स्वीकार कर लेने पर सब वहाँ गये। वहाँ की सजावट देख कर बड़े प्रसन्न हुए। वहाँ की चित्रकारी बड़ी ही मनोमुग्धकर थी। कहीं जंगल लगे हुए हैं, कहीं फव्वारे चल रहे हैं। कहीं बनी हुई झीलों में कमल खिले हुए हैं जगह जगह अनेकों प्रकार के फूल शोभित हैं। खेलते हुए सब लोग आनन्द मनाने लगे।

इसी समय दुर्योधन ने भीम को मारने के लिये उनके खाने की वस्तुओं में विष मिला दिया, भीम ने भी न जान कर उसे खा लिया। तब नीच दुर्योधन अपना कार्य सिद्ध हुआ जान मनमें हँसने लगा। पाण्डव और कौरव प्रसन्न हो जलमें खेलने लगे। खेल से थक जाने पर सब पटभवन में लौट आये और भीम थक जाने के कारण वहीं तटपर सो गये। विष का असर होने पर एक दम चेतना शून्य हो गये। दुर्योधन ने अवसर पाकर लता से बाँध भीम को जल में डुबो दिया।

बेहोश भीम जलमें डूब कर नागलोक में पहुँच गये। वहाँ सर्पों ने उन्हें डसना आरम्भ किया। सर्पों के विष से उनका पहला विष शान्त हो गया और वे उठ बैठे। भीम ने सर्पों को पकड़ पकड़ कर मारना आरम्भ किया। भय से कुछ सर्पों ने भाग कर नागराज वासुकि से कहा कि हे सर्पराज ! एक मनुष्य किसी से बाँधा जाकर जल में डाला गया था, जान पड़ता है उसे विष दिया गया था; क्योंकि जब वह आया तो चेतना शून्य था, जब हम लोग डसने लगे तो वह जाग उठा, झटपट अपने बन्धनों को तोड़कर हम लोगों को मारने लगा। अब आप उसे देखें कि वह महावीर कौन है ? वासुकि ने जाकर भीम को देखा और अपना सम्बन्धी जानकर गले लगाया। भीम को बहुत धन और रत्न देकर उनका सत्कार किया। अमृतपूर्ण घट से वासुकि ने उन्हें रस पिलाया,

जिससे उनका सारा क्लेश दूर हो गया। तब नागों ने उन्हें दिव्य आसन पर सुलाया और भीम निद्रा के वश में हो गये।

उधर सब कौरव और भीम को छोड़ कर पाण्डव बहुतेरे खेलों को खेल कर हस्तिनापुर को लौटे, चलते समय वे कहने लगे कि भीम हमलोगों से पहले ही चले गये होंगे।

दुर्योधन भीम को न देख प्रसन्न होकर नगर में पहुँचा। धर्मात्मा युधिष्ठिर माता कुन्ती के पास जाकर पूछने लगे कि क्या भीम यहाँ आ गये हैं? वह तो यहाँ नहीं दिखाई पड़ते हैं। हे माता! भीम के बिना हमारा जी घबरा रहा है। स्मरण होता है कि वह सो रहे थे, किसी ने मार तो नहीं डाला?।

यह सुन कर कुन्ती घबराई हुई बोली—पुत्र! वह मेरे पास तो नहीं आये। अपने भाइयों के साथ शीघ्र जाकर खोजो और पता लगाओ। युधिष्ठिर से इस प्रकार कह कर कुन्ती ने विदुर से भीम के न आने का हाल कहा।

विदुर ने कहा—हे कुन्ती! निश्चिन्त रहो, भीम अवश्य आते होंगे। दुर्योधन से और पुत्रों की रक्षा करो, क्योंकि वह बार बार हारने के कारण इन लोगों से जला करता है। विदुरजी यह कह कर अपने घर चले गये।

उधर आठ दिन सोकर भीम जागे। नागों ने उन्हें ढाँढ़स दिया और कहा कि हे वीर! तुमने जिस रस का पान किया है उससे तुम दस हज़ार हाथियों के समान बलवान् होगे। अब अपने घर जाओ क्योंकि तुम्हें न देख कर तुम्हारे भाई लोग घबराते होंगे।

भीम स्नान कर, शुद्ध वस्त्र पहन, सर्पों से सत्कार पाकर सर्पलोक से उठे। सर्पों ने उन्हें उसी बन में पहुँचा दिया जहाँ दुर्योधन ने खेलने का जाल रचा था।

भीम दौड़ते हुए माता के समीप गये और माता तथा भाइयों को प्रणाम किया। कुन्ती और युधिष्ठिर आदि उन्हें पाकर परम आनन्दित हुए। भीम ने सारा वृत्तान्त माता और भाइयों को सुनाया।

युधिष्ठिर ने कहा—यह विष देनेवाली बात दूसरों पर न प्रगट होने पावे, अब से सचेत हो हम लोग एक दूसरे की रक्षा का ध्यान रक्खें। तब से पाण्डव बड़ी सावधानी से रहने लगे।

कृप और द्रोण की कथा

महर्षि गौतम के शरद्वान् नामक पुत्र थे। वे शर को साथ लेकर उत्पन्न हुए थे। उनकी शस्त्रविद्या में अधिक रुचि थी। तपस्या करके उन्होंने सब अस्त्रों को सीख लिया। इन्हीं ऋषि से कृप और कृपी का जन्म हुआ। तप भङ्ग होने के भय से बालक, बालिका को वहीं सरकण्डे के वन में छोड़ तथा धनुष, बाण, मृगचर्म भी उसी आश्रम में रख शरद्वान् चले गये।

शिकार खेल कर घूमते हुए महाराज शान्तनु के एक सेनापति ने वन में उस बालक, बालिका तथा धनुष, बाण, और मृगचर्म को देख कर सोचा कि ये बच्चे किसी धनुर्विद्या के जाननेवाले ब्राह्मण की सन्तान होंगे। इसलिये उनको लाकर राजा को दिखाया। राजा ने उन बच्चों को लेकर राजभवन में अपनी सन्तान के समान पालन पोषण किया और उन्हें उत्तम शिक्षा दिलायी। शरद्वान् ने भी वन से आकर धनुर्विद्या की शिक्षा दी। राजाने उन दोनों का नाम कृप और कृपी रक्खा। आगे चल कर वे कौरव और पाण्डव के धनुर्विद्या के आचार्य हुए।

गङ्गा के तट पर भरद्वाज नामक एक महर्षि रहते थे, उन्हीं से आचार्य द्रोण की उत्पत्ति हुई। द्रोण ने पिता से ही वेद वेदाङ्ग की शिक्षा पाई। महर्षि भरद्वाज के आश्रम में राजपुत्रों को भी शिक्षा दी जाती थी। उन्हीं राजकुमारों के साथ द्रोण ने भी शस्त्रास्त्र की विद्या सीखी। पाञ्चाल (पाञ्जब) देश के राजकुमार द्रुपद से इनकी बड़ी घनिष्ठता हो गई थी। गुरुकुल की शिक्षा समाप्त कर द्रुपद तो अपने देश को चले गये और पिता के मरने पर सिंहासनासीन हुए। इधर द्रोण भी पिता के परलोकगामी होने पर आश्रम का कार्य चलाने लगे। समय पाकर कृपी के साथ द्रोण का विवाह हो गया। उससे महा पराक्रमी अश्वत्थामा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

आचार्य द्रोण ने सुना कि महात्मा परशुराम अपनी सारी सम्पत्ति ब्राह्मणों को दे देना चाहते हैं। इसलिये धनुर्वेद तथा नीति जानने की इच्छा से उनके समीप गये। महेन्द्रपर्वत पर जाकर द्रोण ने परशुराम को प्रणाम कर अपना नाम बतलाया। महात्मा परशुराम ने उनके आने का कारण पूछा। इस पर द्रोण ने अपना सारा मनोरथ कह सुनाया। महात्मा परशुराम ने द्रोण को सब अस्त्रविद्या और नीति सिखला कर अपना सम्पूर्ण शस्त्रास्त्र उन्हें दे दिया।

आचार्य द्रोण सफल मनोरथ हो अपने मित्र द्रुपद के समीप चले। वहाँ जाकर उन्होंने इत्तला कराई और द्रुपद से मित्र कह कर अपना परिचय दिया। धन से मतवाले द्रुपद को यह बहुत बुरा लगा कि एक भिक्षुक ब्राह्मण मुझे मित्र बना रहा है।

द्रुपद ने कहा—हे ब्राह्मण! तुम मुझे बड़े अनभिज्ञ जान पड़ते हो। राजाओं के समीप जाकर कैसे बातचीत की जाती है, नहीं जानते। सहसा आकर तुमने मुझे मित्र बना डाला। तुम जैसे दरिद्रों के मित्र भला राजा हो सकते हैं?

इस प्रकार अपमानित तथा तिरस्कृत होकर द्रोण वहाँ से हस्तिनापुर की ओर चले। वहाँ पहुँच कर कृपाचार्य के घर में छिप कर रहने लगे। उनके पुत्र अश्वत्थामा कृपाचार्य से सीख कर पाण्डवों को अस्त्रविद्या सिखाते थे।

एक दिन पाण्डव तथा कौरव और भी राजकुमारों को साथ लेकर नगर के बाहर गेंद खेल रहे थे। खेलते खेलते उनका गेंद एक कुएँ में जा गिरा। सब लड़कों ने मिल कर उसके निकालने का अनेकों प्रयत्न किया पर वह न निकल सका। विफल प्रयास हो वे सब एक दूसरे को देख रहे थे, कि इतने में सन्ध्योपासनादि से निपट कर एक साँवला ब्राह्मण उधर से आता हुआ दिखाई पड़ा। उनको देख कर लड़कों ने चारों ओर से घेर लिया और गेंद के गिरने की कथा कह सुनाई। इस पर हँसते हुए द्रोण ने कहा—तुम्हारे क्षत्रियपन पर धिक्कार है। भरतकुल में जन्म लेकर अस्त्रविद्या की शिक्षा पाकर भी तुम लोग इस गेंद को न निकाल सके। तुम लोग मुझे उत्तम भोजन कराओ तो मैं इन मुट्ठी भर तिनकों से गेंद निकाल दूँ।

यह कह कर, द्रोण ने मुट्ठी भर सींक ले पहले एक सींक से गेंद को छेद दिया। फिर दूसरी सींक से पहली सींक के ऊपरी भाग को छेदा। इसी प्रकार कुएँ के मुँह तक सींकों की रस्सी बना दिया और उसी के सहारे गेंद को बाहर निकाल लिया।

सब लड़के आश्चर्य से आँखें फाड़ फाड़ कर उस कार्य को देख सराहना करने लगे।

राजकुमारों ने कहा—हे ब्राह्मणदेव ! ऐसी विद्या हमने किसी में नहीं देखी, हम लोग आप को प्रणाम करते हैं। आप यह बतलावें कि आप कौन हैं ? और आपका नाम क्या है ?।

द्रोण ने कहा—तुम लोग भीष्म के पास जाकर मेरे स्वरूप और गुण की बात कहो, वे मुझे जान लेंगे।

राजकुमारों ने यह बात मानकर भीष्म के समीप जा उनसे सब हाल कह सुनाया। वे समझ गये कि वे ब्राह्मण द्रोण हैं और वही आचार्य होने के योग्य हैं।

अनन्तर भीष्म स्वयं उनके पास गये और आदर के साथ लाकर आने का कारण पूछा।

द्रोण ने कहा—हे महात्मा भीष्म ! मैं पहले धनुर्वेद और अस्त्रों को सीखने के लिये महर्षि अग्निवेश के यहाँ गया था। वहाँ ब्रह्मचर्य से रह कर गुरु की सेवा करते हुए अनेक वर्ष बिताये। उन दिनों पाञ्चाल के राजकुमार द्रुपद भी अस्त्रों को सीखने के लिये वहीं रहते थे। राजकुमार द्रुपद के साथ मेरा बड़ा स्नेह हो गया और हम दोनों मित्र की भाँति रहने लगे। मित्रता के कारण वे बारबार मुझसे कहा करते कि जब मैं पाञ्चाल देश का राजा होऊँगा तब तुम भी राज्य भोगोगे, यह मैं सच्ची प्रतिज्ञा करता हूँ। जब विद्या सीख चुके तब वे अपने घर चले गये। मैंने भी पिता की आज्ञा से विवाह किया। कृपी के गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ उसका नाम अश्वत्थामा है। मेरा पुत्र एक दिन धनियों के पुत्रों को दूध पीता देख रोने लगा, जिससे मैं बहुत ही मर्माहत हुआ और गौ पाने के लिये देश में घूमने लगा, पर मुझे एक भी गौ न मिली। लड़कों ने उसे चावल का आटा घोल कर पिलाया और अश्वत्थामा प्रसन्न होकर कहने लगा—मैंने भी दूध पिया है, यह देख कर लड़के हँसने लगे। मैं दु:ख से जल उठा। लोग मुझे धिक्कारने और सेवावृत्ति करने का आदेश करने लगे। वह सुन कर मैं सोचने लगा कि निन्दा सह कर रहूँगा, पर सेवावृत्ति रूपी पापकर्म न करूँगा। ऐसा विचार कर मैं द्रुपद की मित्रता का स्मरण करके पत्नी और पुत्र को साथ लिये हुए उनके पास गया। उनको मैंने अपना परिचय दिया। इस पर ओछे मनुष्यों की तरह उसने मेरी हँसी उड़ा कर तिरस्कार किया और कहा कि तुमसे मेरी मित्रता किस कार्य के लिये हुई थी ? मुझे तो यह स्मरण नहीं कि मैंने तुम से मित्रता कर राज्य करने की प्रतिज्ञा की थी। हाँ-एक रात के लिये जो कुछ खाना चाहो वह मैं दे सकता हूँ। इस प्रकार उससे अपमानित होकर क्रोध से मैं वहाँ से चला आया। यहाँ मैं गुणी शिष्य पाने तथा द्रुपद से बदला लेने की इच्छा से आया हूँ, आप जो कहिये वह करूँ।

द्रोण की बात सुन कर भीष्म ने कहा कि आप इन कुमारों को शिक्षा दीजिये और इनसे पूजित होकर यथेच्छ भोगों को भोगिये। इन्हीं शिष्यों से आप की इच्छा पूरी होगी। यह सम्पूर्ण राज्य आप का है। हे ब्राह्मणदेव ! अब आप धनुष की डोरी खोल दीजिये।

इस प्रकार भीष्म से आदर पाकर द्रोण बहुत प्रसन्न हुए और राजकुमारों को शिक्षा देना उन्होंने स्वीकार कर लिया। द्रोण ने कहा—यदि ये कुमार मुझे प्रसन्न रक्खेंगे तो मैं इन्हें उत्तमोत्तम शिक्षा दूँगा जिसको कि मैंने महात्मा परशुराम से सीखा है।

भीष्मने द्रोण को राजभवन में रहने का स्थान दिया और बहुत धन सम्पत्ति देकर राजकुमारों को उन्हें सौंपदिया।

पाण्डव तथा कौरव गुरु द्रोण को प्रणाम कर जब शिक्षा लेने लगे तब द्रोण ने कहा—हे छात्रो ! मैं तुम लोगों को सब शास्त्रों तथा शस्त्रों की उत्तम शिक्षा दूँगा। तुम लोग इस बात की प्रतिज्ञा करो कि शिक्षा पूर्ण होने पर हमारा एक आवश्यक काम करोगे। यह सुन सब चुप रहे, पर अर्जुन ने बड़े उत्साह के साथ आचार्य की आज्ञा को स्वीकार कर ली।



एकलव्य ।

गुरु द्रोणहि आवत निरखि, सङ्गि शिष्य समुदाय ।
उठत प्रणामी वीर द्रुत, एकलव्य हरषाय ॥

बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग ।

इस पर द्रोणाचार्य बहुत प्रसन्न हुए और अर्जुन की शिक्षा की ओर विशेष ध्यान देने लगे। आचार्य से शिक्षा पाने को और और देशों के राजकुमार भी आये, कर्ण भी आकर धनुर्विद्या सीखने लगे। गुरु द्रोण प्रत्येक शिष्यों को छोटे मुँह का घड़ा देते, जिससे देर में जल लावें और अश्वत्थामा को बड़े मुँह का घड़ा देते जिससे वह जल्द जल लेकर आ जावे और उन्हें अन्य छात्रों की अपेक्षा विशेष बात बताते थे। गुरु के इस व्यवहार को अर्जुन ने जान लिया और वारुणास्त्र से शीघ्र अपना घड़ा भर कर आ जाने लगे। इससे अश्वत्थामा से वे किसी बात में घट कर न हुए।

अर्जुन की दत्तचित्तता और भक्ति देख कर गुरुने रसोइये से कहा कि अर्जुन को कभी अँधेरे में भोजन न कराया जाय। एक दिन अर्जुन भोजन कर रहे थे कि हवा चलने से दीपक बुझ गया। उन्होंने अन्धेरे में ही भोजन किया। अर्जुन ने विचारा कि अभ्यास से भोजन जब मुख में ही जाता है तो कोई कारण नहीं कि अँधेरे में लक्ष्य भेद न हो सके। अर्जुन अँधेरे में ही धनुष लेकर बाण चलाने का अभ्यास करने लगे। गुरु द्रोण रात्रि में धनुटङ्कार सुन वहाँ गये और अर्जुन को गले लगाकर कहने लगे पुत्र अब मैं यह प्रयत्न करूँगा कि तुम्हारे समान धनुर्धारी पृथ्वी में दूसरा न दिखाई दे।

अनन्तर आचार्य ने अर्जुन को सब प्रकार की युद्धविद्या में पण्डित बना दिया।

एक दिन बहेलियों के सरदार का पुत्र एकलव्य शिक्षा के लिये द्रोण के समीप आया। उन्होंने राजकुमारों की ओर देख कर उसको शिष्य न बनाया। एकलव्य उन्हें प्रणाम कर बन में चला गया और वहाँ द्रोण की एक मट्टी की मूर्त्ति बनाकर उसी को आचार्य मान कर एकाग्र मन हो नियम से धनुर्वेद सीखने लगा। सच्ची श्रद्धा होने के कारण उसे सारी विद्या आगई।

एक दिन कौरव तथा पाण्डव गुरु की आज्ञा से शिकार खेलने गये। वहाँ आखेट खेलने योग्य जाल आदि के साथ एक आदमी उनके पीछे पीछे चला। राजकुमार लोग जब इधर उधर घूमने लगे तो उनके साथ आये हुए शिकारी कुत्ते ने काला मृगचर्म पहने हुए कराल रूप बहेलिये को देख भोंकना शुरू किया। इस पर एकलव्य ने क्रोध कर और अपनी विद्या को प्रगट करने का अवसर जान उस कुत्ते के खुले हुए मुँह में सात बाण मार कर उसका भोंकना बन्द कर दिया। उसी भाँति कुत्ता राजकुमारों के समीप लौट गया। कुत्ते को इस भाँति देख पाण्डवों को बड़ा आश्चर्य हुआ और उस बाण चलानेवाले को ढूँढ़ने लगे। एक ओर उन लोगों ने देखा कि एक पुरुष बाण चला रहा है। उसके समीप जाकर पूछा कि तुम कौन हो?

एकलव्य ने उत्तर दिया—मैं हिरण्यधनु नामक बहेलियों के सरदार का पुत्र हूँ, द्रोणाचार्य का शिष्य होकर धनुर्वेद सीखने में सदा परिश्रम किया करता हूँ।

यह सुनकर सब राजकुमार हस्तिनापुर लौट आये और गुरु द्रोण से सब वृत्तान्त कहा। अर्जुन ने एकान्त में, गुरु से कहा—महाराज! पहले आपने मुझे ही प्रेम से गले लगाकर कहा था कि मेरा कोई भी शिष्य तुमसे बढ़कर न होगा; फिर क्यों उस बहेलिये को सबसे बढ़कर शिक्षा दी!

द्रोण कुछ देर सोच कर अर्जुन के साथ उस बहेलिये के समीप गये। एकलव्य ने आचार्य को देख सादर प्रणाम किया और हाथ जोड़ कर खड़ा हुआ। उसने कहा—हे भगवन! आज्ञा हो, मैं कौन सी वस्तु आप को दूँ।

द्रोण ने कहा—यदि तुम मुझे सब कुछ देना चाहते हो तो अपने दाहने हाथका अँगूठा देदो। एकलव्य ने तुरत बिना कुछ दुःख माने अँगूठा काट कर गुरु को दे दिया। इस प्रकार अँगूठा के कट

जाने से बाण चलाने की उसकी योग्यता कम हो गई। अर्जुन की समानता करनेवाला एकलव्य ही था, उसकी यह दशा होने से अर्जुन के समान धनुर्धर अब दूसरा न रह गया। भीम और दुर्योधन गदा की लड़ाई में सुयोग्य हुए। एक दूसरे से सदा ईर्षा रहा करती थी। युधिष्ठिर रथ पर चढ़कर युद्ध करने में प्रवीण हुए। अस्त्रों के चलाने के भेदों का ज्ञान अश्वत्थामा को सबसे बढ़ कर था। नकुल और सहदेव तलवार चलाने में सिद्धहस्त हुए।

एक दिन द्रोण ने अस्त्रविद्या को सीखे हुए अपने सब छात्रों को इकट्ठा किया तथा परीक्षा लेने का प्रबन्ध किया। पहले राजकुमारों के अनजान में उन्होंने बढ़ई से एक कृत्रिम गिद्ध बनवाकर लक्ष्य करने के लिये एक वृक्ष के ऊपर रखवा दिया। अनन्तर सब राजकुमारों को बुला कर उस पक्षी को दिखाया और कहा—तुम लोग इस लक्ष्य को बाण से बेधने के लिये तैयार हो जाओ। आज्ञा पाते ही उस पक्षी के सिर को बाण से छेद दो।

पहले द्रोण ने युधिष्ठिर से कहा—पुत्र निशाना ठीक करो, मेरी बात पूरी होते ही तीर चला देना। जब युधिष्ठिर निशाना ठीक कर खड़े हुए तब द्रोण ने कहा—राजकुमार! वृक्ष पर बैठे हुए गिद्ध को देख रहे हो न?

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया—जी हाँ, देखता हूँ। फिर आचार्य ने प्रश्न किया—तुम इस वृक्ष को, मुझे, तथा अपने भाइयों को देख रहे हो?।

युधिष्ठिर ने कहा—हाँ, इस वृक्ष को, आपको, भाइयों को और पक्षी को देख रहा हूँ।

आचार्य के बार बार पूछने पर उन्होंने वैसा ही उत्तर दिया। इस पर उन्होंने डाँट कर कहा—तुम यहाँ से हट जाओ यह लक्ष्य भेद करना तुम्हारा काम नहीं है।

अनन्तर दुर्योधन आदि सब शिष्यों से वैसाही प्रश्न किया और प्रत्येक ने वैसे ही उत्तर दिया। इस पर आचार्य ने तिरस्कार कर सब को हटा दिया। फिर कुछ मुसकुरा कर अर्जुन से कहा—पुत्र! अब तुम्हें इस निशाने को मारना होगा, उसे देखो। गुरु की बात सुन अर्जुन निशाना साध कर खड़े हुए। द्रोण ने पहले की भाँति उनसे भी प्रश्न करना आरम्भ किया।

आचार्य ने कहा—तुम वृक्ष पर बैठे हुए पक्षी, वृक्ष, तथा मुझे देख रहे हो न?।

अर्जुन ने उत्तर दिया—वृक्ष और आपको नहीं देखता हूँ केवल पक्षी को देख रहा हूँ।

द्रोण ने पूछा—तुम यदि पक्षी को देख रहे हो तो बतलाओ उसका रूप कैसा है?।

अर्जुन ने कहा—मैं केवल उसके सिर को देख रहा हूँ।

इस उत्तर पर द्रोण बहुत प्रसन्न हुए और कहा कि अब बाण चलाओ।

अर्जुन ने लक्ष्य पर बाण चलाया। देखते देखते पक्षी का सिर पृथ्वी पर आ गिरा। इस पर द्रोणाचार्य बहुत प्रसन्न हुए और अर्जुन को गले से लगाया तथा मन में निश्चय किया कि राजा द्रुपद अब अवश्य हार खायगा।

कुछ दिन के बाद द्रोणाचार्य शिष्यों के साथ गङ्गाजी में स्नान करने के लिये गये। वे जल में नहा रहे थे कि इतने में एक घड़ियाल ने उनके पैर को पकड़ लिया। स्वयं बचने की सामर्थ्य रखते हुए भी आचार्य ने घबरा कर शिष्यों से कहा कि तुम लोग शीघ्र इस जलचर को मार कर मुझे बचाओ। यह सुन कर अर्जुन ने पाँच तीखे बाणों से उसे बेध दिया। बाणों से विद्ध हो घड़ियाल मर गया। दूसरे शिष्य जड़ की तरह जहाँ के तहाँ खड़े रह गये। अर्जुन के इस कार्य को देख गुरु जी बहुत प्रसन्न हुए।

द्रोण ने कहा—हे पुत्र! मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ इसलिये यह ब्रह्मशिरा नामक अस्त्र देता हूँ। मनुष्यों पर इसे न चलाना, क्योंकि मनुष्य इसके तेज़ को सह न सकेगा और इसके तेज़ से सारा संसार जल उठेगा। यह अस्त्र त्रैलोक्य में अप्राप्य है, इसे बड़े यत्न से रखना और सुनो, मनुष्य को छोड़ कर और कोई तुमसे युद्ध करे तो उसके मारने के लिये इसे चलाना। अर्जुन ने हाथ जोड़ नम्रता के साथ उस दिव्य अस्त्र को ले लिया।

राजकुमारों की शिक्षा पूर्ण हुई जान कर द्रोणाचार्य ने सब मन्त्री तथा सभासदों के सामने धृतराष्ट्र से कहा—महाराज! आपके पुत्रों ने विद्या सीख ली, आप आज्ञा दीजिये कि वे अपनी अपनी विद्या की परीक्षा दें।

यह सुन कर धृतराष्ट्र बोले—हे विप्रदेव! आप ने बड़ा भारी कार्य किया है। आप जो समय नियत कर दें उसी समय के लिये प्रबन्ध कराया जाय। आज मुझे आँखों के न रहने से बड़ा सन्ताप है, अस्तु कानों से ही सुन कर सन्तुष्ट होऊँगा। हे विदुर! गुरुजी जैसी आज्ञा दें उसे पूरा करो। विदुर आज्ञा पाकर प्रबन्ध करने लगे।

द्रोणाचार्य ने एक ऐसा चौरस स्थान निश्चित किया, जहाँ वृक्षादि नहीं थे और जलाशय निकट था।

नगर में डुग्गी पिटवा दी गई। चतुर शिल्पकारों ने राजा, सभासद तथा मन्त्रियों और स्त्रियों के बैठने योग्य भिन्न भिन्न उत्तम स्थान बनाये।

जब कुमारों की परीक्षा का दिन आया तब राजा धृतराष्ट्र मन्त्रियों के साथ भीष्म और कृपाचार्य को आगे करके उस स्थान पर गये। वहाँ चारों ओर सोने के कलश लगे हुए थे, जगह जगह मोतियों की झालरें लटक रही थीं, ठौर ठौर नीलम मणि जड़ी हुई थी। महारानी गान्धारी और कुन्ती भी अपने स्थान पर जा विराजीं। दूसरी रानियाँ भी बहुमूल्य वस्त्र पहने हुए दासियों को साथ लिये सुसज्जित चबूतरों पर बैठी ब्राह्मण आदि चारों वर्णों के लोग कुमारों की अस्त्रविद्या की योग्यता देखने के लिये झुण्ड के झुण्ड आये। वहाँ सुन्दर बाजे बज रहे थे जो मन को अपनी ही ओर खींच रहे थे।

इतने में द्रोणाचार्य, जिनकी दाढ़ी और सिर के बाल सफ़ेद थे, सफ़ेदवस्त्रवाले और श्वेत चन्दन धारण किये हुए, सूर्य के समान तेजस्वी, उस सभामण्डप में पधारे। आचार्य ने ठीक समय पर देवपूजन किया और ब्राह्मणों से मङ्गलाचरण कराया।

मङ्गलाचरण हो जाने पर नौकर लोग भाँति भाँति के शस्त्रास्त्र अखाड़े में लाये। युधिष्ठिर आदि राजकुमार पेटी बाँध, अंगुलित्राण पहनकर तरकस, धनुष और बाणों को लेकर तैयार हुए। सब राजकुमार क्रम से आश्चर्यजनक अस्त्रविद्या का परिचय देने लगे। दर्शकों में से कितनों ही ने बाणों के गिरने से आँखों को मूँद लिया। राजकुमार लोग वेगवान् घोड़ों पर चढ़ कर नामाङ्कित बाणों से निशानों को बेधने लगे। उन लोगों के अद्भुत बाण कौशल को देख लोग धन्य धन्य कहने लगे। बलवान् राजकुमार लोग धनुर्विद्या में, रथ हाँकने में, हाथी पर चढ़ने में, घोड़ा दौड़ाने में और मल्लयुद्ध में, बार बार बड़ी बड़ी चालें दिखा कर फिर ढाल, तलवार का युद्ध दिखाने लगे। दर्शक लोग उन कुमारों की चतुराई, धैर्य और दृढ़ता की प्रशंसा कर रहे थे।

फिर गदायुद्ध होने लगा। भीम और दुर्योधन गदा लेकर अखाड़े में आये। हाथी के समान गरजते हुए दोनों युद्ध करने लगे। एक दूसरे को बाईं ओर पैतरा बदल कर युद्ध करते थे। बिदुरजी कुमारों के इस युद्ध कौशलको धृतराष्ट्र तथा गान्धारी से सुनाते जाते थे।

दोनों के गदायुद्ध की भयङ्करता बढ़ती देख द्रोण डरे कि कहीं ऐसा न हो कि वीरता के जोश में दोनों का ख़ून खौल उठे और परिणाम भयङ्कर हो जाय। इससे गदायुद्ध को बन्द कराने के लिये द्रोण ने अश्वत्थामा को भेजा। उनके समझाने से गदायुद्ध बन्द हुआ, दोनों ने अपनी अपनी गदायें रख दीं।

फिर द्रोण की आज्ञा से अर्जुन अपनी धनुर्विद्या का विशेष कौशल दिखाने लगे। वे अग्निअस्त्र से आग, वारुणास्त्र से जल, वायव्यास्त्र से पवन, पर्जन्यास्त्र से बादलों को बनाने लगे तथा भूमिअस्त्र से पृथ्वी में जा घुसे; पर्वतास्त्र से पर्वत बना और अन्तर्धान अस्त्र से देखते देखते गायब हो गये। क्षण में प्रगट होते, छिपते और छोटे तथा बड़े आकार से दिखाई देते थे। कभी रथ पर बैठे दिखाई देते कभी पलक मारते भर में पृथ्वी पर आ जाते। अनन्तर वह महावीर बाणों से फूल आदि कोमल, घुँघची आदि छोटी वस्तु तथा पत्थर आदि भारी वस्तुओं को अनायास ही वेधने लगे। वे लोहे के बने कृत्रिम सूअर के मुँह में पाँच बाणों को एक बाण के समान जोड़ कर चलाते थे। इस प्रकार और भी अनेकों बारीकियाँ अर्जुन ने दिखाईं।

जब यह कृत्रिमयुद्ध समाप्त हो चुका तथा बाजों का बजना और कोलाहल भी कम हुआ, तब फाटकपर बड़े जोरों से किसी के ताल ठोंकने का शब्द सुनाई पड़ा। सब लोग आश्चर्य के साथ उसी ओर देखने लगे। द्रोणाचार्य युधिष्ठिर आदि पाँचों भाइयों के साथ रङ्गभूमि में खड़े थे, उनकी भी दृष्टि उसी ओर गई।

अनन्तर दर्शकों ने उस वीर को भीतर आने के लिये इधर उधर हट कर रास्ता कर दिया। सूर्यपुत्र कर्ण, जो कवच कुण्डल धारण किये हुए पैदा हुए थे, उससे अपने शरीर की शोभा बढ़ाते हुए रङ्गभूमि में आ विराजे। सब लोग आश्चर्य के साथ एक टक हो उस तेजस्वी वीर को देखने लगे।

कर्ण ने गर्व से इधर उधर देख कर, द्रोण तथा कृप को तिरस्कार के साथ प्रणाम किया।

बोलने की अच्छी योग्यता रखनेवाले कर्ण ने, यह बिना जाने कि अर्जुन मेरे ही सहोदर भाई हैं, अर्जुन से कहा—हे कुन्तीकुमार! यह मत समझो कि मैंने बड़े आश्चर्य का काम किया है। मैं इससे बढ़कर दर्शकों को अद्भुत कौशल दिखाऊँगा।

ऐसी गर्वोक्ति सुन सब लोग उत्सुक हो गये और विचारने लगे कि देखें इस नवीन घटना का क्या परिणाम होता है।

दुर्योधन भाइयों के साथ बड़ा प्रसन्न हुआ और कर्ण को गले लगा कर कहने लगा कि हे वीर श्रेष्ठ! आपका आना अच्छा हुआ। मेरा यह सम्पूर्ण राज्य आप ही का है।

कर्ण ने कहा—मुझे और कुछ न चाहिये मैं केवल आपकी मित्रता चाहता हूँ।

दुर्योधन अर्जुन की प्रशंसा सुनने से बहुत जल रहा था। अब उसे एक साथी मिल जाने से बड़ी प्रसन्नता हुई।

उसने कहा—हे कर्ण! आप सारे ऐश्वर्य को भोगते हुए मित्र का हित कीजिये तथा शत्रु के मस्तक पर लात मारिये। हे वीर! मैं आपके कौशल को देख परम प्रसन्न हूँ।

कर्ण ने कहा—हे दुर्योधन! अर्जुन ने जो जो कार्य किये थे उन सब को मैंने दिखला दिया। अब मैं अर्जुन से युद्ध कर यह जानना चाहता हूँ कि हम दोनों में कौन बड़ा है।

कर्ण की इस प्रकार गर्व भरी बातें सुन कर तथा दुर्योधन की मार्मिक बातों से अर्जुन मारे क्रोध के लाल हो गये। दुर्योधन को सुना कर उन्होंने कर्ण से कहा—हे सारथी के लड़के! जो लोग

बुलाये न जाकर आते हैं, बिना पूछे बकने लगते हैं, उनकी जो गति होती है, तुम मुझ से मारे जाकर वही गति पाओगे। कर्ण ने कहा—हे अर्जुन! यह अखाड़ा सबके लिये समान है, फिर मेरे आने से तुम्हारी क्या हानि हुई? क्षत्रिय लोग बल से बड़े गिने जाते हैं, कायर डींग हाँकते हैं। जब तक गुरु के सामने तुम्हारा सिर न काट लूँ, तब तक बाणों से बातचीत करो।

अर्जुन भी गुरु की आज्ञा ले भाइयों से उत्साह पाकर कर्ण के सामने आगये। उधर कर्ण भी दुर्योधन आदि से उत्साह पा युद्ध के लिये खड़ा हुआ। जिधर कर्ण था उधर दुर्योधन आदि थे और जिधर अर्जुन थे उधर द्रोण, भीष्म और कृप बैठे हुए थे। स्त्री पुरुष दो भागों में बँट गये। कुन्ती अपने दोनों पुत्रों को युद्ध के लिए उद्यत देख बहुत विकल हुई और परिणाम की भयङ्करता को सोच कर मारे दुःख के अचेत हो गई। धर्मज्ञ कृपाचार्य ने दोनों के युद्ध का अनर्थकारी परिणाम समझ कर रोकना चाहा। दोनों को धनुष उठाते देख उन्होंने कर्ण से कहा।

हे कर्ण! ये अर्जुन कुरुवंशी राजा पाण्डु के तीसरे पुत्र हैं और युद्ध के लिये खड़े हुए हैं। तुम भी कहो कि तुम से किस राजवंश की शोभा बढ़ी है और तुम्हारे माता पिता का क्या नाम है? उसे सुन कर अर्जुन विचार करेंगे कि तुम से युद्ध करें या नहीं, क्योंकि राजकुमार लोग नीच कुल में जन्मे हुए और सदाचार हीन पुरुषों से युद्ध नहीं करते।

यह सुनकर कर्ण का मुँह लाज के मारे नीचे हो गया। तब दुर्योधन ने कहा—हे आचार्य! शास्त्रों में यह निश्चय है कि राजकुल में जन्म लेनेवाले, वीर और सेनापति ये तीनों राजा हो सकते हैं। यदि अर्जुन राजा के अतिरिक्त और किसी से युद्ध करना न चाहें तो मैं अभी कर्ण को अङ्ग राज्य की राज्य गद्दी पर बिठाता हूँ।

यह कहकर दुर्योधन ने सोने का सिंहासन मँगवाकर वेदपाठी ब्राह्मणों से मङ्गलाचार करवा कर्ण को सिंहासन पर बैठा कर अङ्गदेश का राजा बनाया। दुर्योधन ने कर्ण को अपमान से बचा लिया। इससे कर्ण दुर्योधन का बड़ा कृतज्ञ हुआ। उसने दुर्योधन से कहा—हे नरनाथ! आपने जो मुझे यह राज्य दिया, उसके बदले में कहिये मैं आपको क्या दूँ? आप जैसा कहेंगे मैं वैसा ही करूँगा।

दुर्योधन ने कहा—आपसे हमारी यही विनय है कि आप मेरे मित्र बनें।

कर्ण ने आजन्म मित्रता निबाहने की प्रतिज्ञा की और एक दूसरे के गले लग कर प्रसन्न हुए।

कर्ण के पालक पिता अधिरथ ने सुना कि अर्जुन और कर्ण से युद्ध हो रहा है। कर्ण के स्नेह से वह तुरत दौड़ा हुआ रङ्गभूमि में आया। वृद्धावस्था के कारण सारथि हाँफने लगा और पसीने से तर होगया। उसको देखते ही पिता के प्रेम से कर्ण का जी भर आया।

उन्होंने धनुष बाण छोड़ उसके आगे माथा नवाया। अधिरथ ने देखा कि कर्ण के शरीर में कहीं चोट नहीं है, इससे उसे सन्तोष हुआ। अभिषेक के जल से कर्ण का मस्तक अभी तक गीला था, प्रेम से गले लगा कर उसने प्रेमाश्रु से और गीला कर दिया। राज्यप्राप्तकर्ण को अधिरथ ने 'पुत्र' कह कर पुकारा।

यह देख कर पाण्डवों ने जाना कि कर्ण सारथि का पुत्र है और भीम ने हँसी उड़ा कर कहा—

हे सूतपुत्र! तुम इस योग्य नहीं हो कि अर्जुन तुम्हें युद्ध में मारें, तुम युद्ध न कर अपने कुल का काम करो। घोड़ा हाँकने का कोड़ा हाथ में लो। रे नीच! कुत्ता जैसे यज्ञ की आग के पास जाकर घी को चाट नहीं सकता, तू भी वैसे ही अङ्गदेश का राजा नहीं हो सकता।

इस बात को सुन कर कर्ण का ओठ काँपने लगा, लम्बी साँस लेकर उस ने सूर्य की ओर देखा और बड़ी कठिनाई से अपने को सँभाला। बलवान् दुर्योधन इस बात को न सह सका। मद मत्त हाथी की तरह खड़ा हो कर उसने कहा—

हे भीम! तुमको ऐसी बात न कहनी चाहिये बल ही क्षत्रियों की बड़ाई है। क्षत्रिय यदि ओछे कुल का भी हो तो उससे लड़ना चाहिये। यह तो कभी हो ही नहीं सकता कि जो कुण्डल और कवच पहने हुए जन्मे थे, जिन में सभी अच्छे लक्षण मौजूद हैं, वे बाघ के समान पुरुष मृगी के पेट से जन्मे हों। सच्ची बात यह है जब तक इन कर्ण की भुजाओं में बल है, जब तक मैं उनकी बात मान कर चलूँगा, तब तक अङ्ग राज ही क्या ये सारी पृथ्वी के अधीश्वर हो सकते हैं। पर हाँ, मेरा यह काम किसी से न सहा जाता हो तो वह रथ पर चढ़ कर मेरे सामने आवे। यह सुन कर सब धन्य, धन्य, कहने लगे और इतने ही में सूर्यास्त भी हो गया।

तब दुर्योधन कर्ण का हाथ पकड़ कर बाहर चले और पाण्डव लोग भी आचार्य द्रोण, कृप और भीष्म के साथ अपने अपने घर गये। सन्ध्या हो जाने से सभा भङ्ग हो गई। दर्शक लोग भी, कोई अर्जुन की प्रशंसा करते हुए कोई कर्ण, कोई दुर्योधन की प्रशंसा करते हुए अपने अपने घर गये। अर्जुन की बराबरी करनेवाला वीर पाकर दुर्योधन बहुत प्रसन्न हुआ, पर युधिष्ठिर को बड़ी चिन्ता हुई, क्योंकि ये जानते थे कि कर्ण बड़ा ही विक्रमशाली वीर है।

जब धृतराष्ट्र और पाण्डु के पुत्रों ने अस्त्रविद्या सीख ली, तब द्रोण ने शिष्यों को बुलाया और कहा—हे शिष्यो! तुम्हारी विद्या पूर्ण हो गई, अब मेरी गुरुदक्षिणा मिलनी चाहिये, पाञ्चाल के राजा द्रुपद को युद्ध में हरा कर मेरे पास पकड़ लाओ बस यही दक्षिणा मेरे लिये सब कुछ है।

यह सुन कर सब शिष्योंने अस्त्र शस्त्र बाँध रथों पर चढ़ कर गुरुदक्षिणा चुकाने के लिये पाञ्चाल देश पर धावा किया। दुर्योधन अपने सब भाइयों तथा कर्ण को साथ ले आगे चला। अर्जुन द्रोण की आज्ञा से भाइयों के साथ पीछे चले।

द्रुपद ने सुना कि बड़ी भारी सेना चढ़ आई है, तब वह तुरत भाइयों के साथ सज कर राजभवन से निकला और पहले दुर्योधन आदि से युद्ध होने लगा। भयङ्कर बाण वर्षा दोनों ओर से होने लगी। राजा द्रुपद ने बाण बरसा कर दुर्योधन आदि को विकल कर दिया। सेना भाग चली। यह समाचार पाण्डवों को मिला। अर्जुन गुरु की आज्ञा ले रथ पर बैठ तथा नकुल सहदेव को चक्र रक्षक बना आगे बढ़े। भीम गदा ले कर आगे आगे चले। मैदान में पहुँच कर भीम ने गदा की चोट से कितने ही हाथी, घोड़े, रथ, पैदल का संहार किया। अर्जुन ने बाण की वर्षा कर द्रुपद की सेना को ढँक दिया एक एक करके सब सेनापतियों को परास्त कर अर्जुन ने द्रुपद के अङ्गरक्षकों को मार गिराया। तब द्रुपद से घोर युद्ध होने लगा। द्रुपद बहुत काल तक अर्जुन का सामना न कर सके। उस वीर अर्जुन ने द्रुपद के रथ की ध्वजा काट गिराई और उनके धनुष को भी काट दिया। अनन्तर उनके सारथि तथा घोड़ों को भी मार गिराया। तब द्रुपद तलवार लेकर युद्ध करने लगे। अर्जुन भी तलवार लेकर द्रुपद के समीप पहुँचे और उन्हें पकड़ लिया। द्रुपद को बन्दी हुआ देख कर कौरव लोग नगर का विनाश करने लगे। यह देख अर्जुन ने कहा—हे भाई भीम! राजा द्रुपद हम लोगों के सम्बन्धी हैं उन से कोई वैर नहीं केवल गुरु की प्रतिज्ञा पूरी करने तथा गुरुदक्षिणा चुकाने के लिये हम लोगों ने ऐसा किया है। नगर का नाश करने तथा व्यर्थ हत्या करने से क्या लाभ। आइये इन्हें आचार्य के पास पहुँचा दें।

सब ने इस बात को मान लिया और द्रुपद को द्रोणाचार्य के समीप ले गये और कहा—हे महाराज! आप की आज्ञा का पालन कर हम गुरुदक्षिणा ले आये हैं। द्रुपद को बन्दी के समान आगे खड़ा हुआ देख कर द्रोण ने कहा—हे द्रुपद! मैंने बलपूर्वक तुम्हारे राज्य का सत्यानाश किया है। अब भी मेरे हाथ में आकर अपने जीवन को पाकर मेरे मित्र बने रहना चाहते हो? कुछ देर ठहर कर हँसते हुए द्रोण ने फिर कहा—हे द्रुपद! मृत्यु का भय तुम न करो; हम ब्राह्मण हैं, इसलिये हम में क्षमा है। हे राजा द्रुपद! तुम मेरे लड़कपन के मित्र हो, इसलिये मैं चाहता हूँ कि तुम फिर मेरे मित्र बने रहो।

यह सुन कर द्रुपद बहुत लज्जित हुए, उन्होंने सिर नीचे कर लिया और कुछ उत्तर न दिया।

आचार्य द्रोण ने फिर कहा—हे द्रुपद! मैं तुम को आधा राज्य देता हूँ। बिना राजा हुये राजा से मैत्री नहीं होता, अतएव आधा राज्य मैं लेता हूँ। अब हम तुम दोनों ही राजा हैं। राजा होने के कारण हम दोनों मित्र हो सकेंगे, क्योंकि तुमने यही कहा था कि राजा के साथ सामान्य पुरुष मित्रता नहीं कर सकता, राजा ही राजा का मित्र होता है।

द्रुपद विवश थे, लाचार होकर उन्हें द्रोण की आज्ञा माननी पड़ी। पर द्रोण की शत्रुता उनसे सही न गई। वे द्रोण के विनाश का उपाय खोजने लगे। महर्षियों के आश्रम में गये, पर कहीं से उन्हें द्रोण के मारने का उपाय न मालूम हो सका। निदान महर्षि याज और उपयाज की सहायता से द्रुपद ने पुत्रेष्टियज्ञ किया। उस यज्ञ की अग्नि में से धृष्टद्युम्न नामक पुत्र और कृष्णा नाम की एक परम रूपवती कन्या उत्पन्न हुई। धृष्टद्युम्न ने ही आगे चल कर द्रोण का वध किया। इसी यज्ञ से काशिराज की कन्या अम्बा शिखण्डिनी होकर जन्मी, जो भीष्मपितामह के वध का कारण हुई।

इधर द्रोणाचार्य अपने शिष्यों से विदा होकर तथा अर्जुन पर प्रसन्न हो उन्हें अनेकों दिव्यास्त्र दे उत्तर पाञ्चाल में सुख से राज्य करने लगे।

समय आने पर धृतराष्ट्र ने पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर को युवराज बनाया। युधिष्ठिर अपने शासन से इतने प्रजाप्रिय हो गये कि उनकी कीर्त्ति के आगे इनके पिता राजा पाण्डु का यश फीका जान पड़ने लगा। अर्जुन ने सब देशों को जीत हस्तिनापुर में बड़ी सम्पत्ति भेजी। चारों ओर पाण्डवों के पराक्रम की प्रशंसा होने लगी। पाण्डवों की प्रशंसा धृतराष्ट्र से न सहन हो सकी और वे रात दिन चिन्तित रहने लगे।

पाण्डवों का वारणावत गमन

वीर्यवान् पाण्डवों का तेज बढ़ता हुआ देख कर धृतराष्ट्र ने महामात्य कणिक को बुलवाया और उनसे कहा—हे द्विजराज! पाण्डवों की बढ़ती देख मुझे अपने पुत्रों के राज्य पाने में सन्देह हो रहा है। आप कोई ऐसी युक्ति बतलाइये कि मेरे मन का यह सन्देह दूर हो और पाण्डवों से मेरे पुत्रों को कोई भय न रह जाय।

बुद्धिमान् कणिक ने कहा—महाराज! राजाओं का धर्म है कि अपने राजदण्ड से अपनी बड़ाई फैलावें और अपने से कोई भूल न कर निरन्तर दूसरे की भूलों को खोजा करें। पाण्डव लोग अवश्य आप के पुत्रों के लिये कण्टक हो रहे हैं। उनका उन्मूलन करना बहुत आवश्यक है शत्रु को कभी छोटा करके न गिनना चाहिये क्योंकि ऐसा करने से पीछे पछतावा होता है। शत्रु को जिस समय असहाय

और कमज़ोर देखें उसी समय उसको उखाड़ दे। यही राजनीति है। अपने पुत्रों से भी सलाह लेकर पाण्डवों के साथ जो उचित समझिये वह उपाय किया जाय।

राजा धृतराष्ट्र पाण्डवों पर अन्याय करने के लिये सहमत न हुए, क्योंकि वे सब ऐसे धर्म प्रिय थे कि धृतराष्ट्र स्वभाव से ही उन पर प्रीति रखते थे। इसलिये पाण्डवों पर अत्याचार करना उन्होंने बुरा समझा, पर पुत्रों की स्वार्थपरता ने उन्हें व्याकुल कर दिया।

इधर राजसभा में तथा प्रजा में पाण्डवों की प्रतिष्ठा बढ़ती देख दुर्योधन भीतर ही भीतर जल रहा था। उसने अपने मामा शकुनि, भाई दुःशासन तथा कर्ण से सलाह कर पाण्डवों को प्राण से मारडालने का निश्चय किया। दुर्योधन धृतराष्ट्र के पास जाकर कहने लगा—हे पिताजी! प्रजा भीष्म तथा आपका तिरस्कार कर युधिष्ठिर को राजगद्दी पर बैठाना चाहती है। सुना है भीष्म भी इससे सहमत हैं। इन अनुचित बातों को सुन कर मैं बहुत दुखी हूँ। पहले अपने भाइयों से जेठे हो कर भी आप राज्य से वञ्चित हो गये थे। प्रजा ने पाण्डु को राज्यासन दिया था। जब भाग्य से राज्यासन पर विराजे तो फिर आपके साथ षड्यंत्र रचा जा रहा है। यदि इस समय पाण्डव राजा हो गये तो सदा उन्हीं के वंशधर राज्य के अधिकारी होंगे। आपके पुत्रों की कुछ भी गिनती न रह जायगी। वे पराधीन होकर नरक के समान यातनाएँ भोगेंगे। इसलिये ऐसा उपाय कीजिये कि हम लोगों का भला हो यही आपका धर्म है। चुप रहने से सर्वनाश हुआ चाहता है।

पुत्र के मर्मपूर्ण वचन को सुन कर धृतराष्ट्र का चित्त चञ्चल हो गया। परन्तु अन्याय और अधर्म के भय से मनकी बात मनही में रख कर शान्त रहे।

दुर्योधन फिर कहने लगा—पिताजी! यदि आप किसी युक्ति से पाण्डवों को कुछ दिन के लिये कहीं बाहर भेजदें तो आनेवाली विपत्ति से बचने का उपाय हम करलें।

तब धृतराष्ट्र ने कहा—सुनो पुत्र! मेरे भाई पाण्डु बड़े धर्मज्ञ थे। उन्होंने कभी मेरे साथ या और किसी के साथ बुरा व्यवहार नहीं किया। वे मुझ पर बहुत स्नेह रखते थे। राज्य सम्बन्धी सारा काम वे मुझसे पूछ कर करते थे। मेरी आज्ञा के बिना वे कोई काम न करते थे। उनके पुत्र भी वैसे ही हैं। राज्य के अधिकारी भी वही हैं उनके सहायक भी बहुत हैं यदि मैं बल से उन्हें राज्य से अलग करने का प्रयत्न करूँगा तो प्रजा बिगड़ कर हम लोगों के प्राण की गाहक हो जायगी।

दुर्योधन ने कहा—पिताजी! आपका कहना सत्य है। परन्तु आदर सम्मान करके और धन देकर मैं प्रजा को प्रसन्न कर सकता हूँ। फिर पाण्डवों की कुछ बुराई करने का इरादा तो है नहीं। आप किसी युक्ति से उन्हें वारणावत नगर में भेज दीजिये। इस समय सम्पूर्ण कोष और मन्त्री मेरे वश में हैं। इसी अवसर पर उचित उपाय से प्रजा तथा पुरवासियों को अपने वश में करके मैं राज्य को अपने हाथ में कर लूँगा। तब पाण्डवों को यहाँ बुला लूँगा।

धृतराष्ट्र ने कहा--देखो दुर्योधन! तुम्हारे उपाय को मैंने भी कई बार मन में सोचा है, परन्तु अन्याय और पाप समझ कर मैंने किसी से कहा नहीं। इस विचार को त्याग दो। पाण्डवों को बाहर भेजने के लिये भीष्म, द्रोण, कृप, बिदुर आदि सलाह न देंगे। इन लोगों की इच्छा के बिना मैं कैसे उन्हें राजधानी से हटा सकूँगा।

दुर्योधन ने कहा—हे पिताजी! भीष्म पाण्डवों पर और हम लोगों पर समान प्रेम रखते हैं। अश्वत्थामा हमारे पक्ष में हैं, इससे विवश होकर द्रोण और कृप भी हमारी ही ओर होंगे। विदुर हमारे धन के जाल से बँधे हैं। सुनते हैं, पाण्डवों ने गुप्त रूप से उन्हें अपने वश में कर रक्खा

है। यदि ऐसा हो भी तो अकेले विदुर हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते। इससे आप कोई चिन्ता न करें पाण्डवों के कारण मैं शोकाग्नि में रात दिन जल रहा हूँ।

धृतराष्ट्र इन बातों पर मन ही मन विचार करते थे कि दुर्योधन जिस प्रकार राज्य लेना चाहता है, वह सफल होगा या नहीं। उधर दुर्योधन कार्यसिद्धि का उपाय करने लगा, धन और सम्मान देकर प्रजा को अपने वश में करता था। जब उसने अनुकूल परिस्थिति बना ली तब एक चाल चली। एक चतुर धूर्त मन्त्री को सब बातें पहले ही से समझा चुका था। सूचना पाकर राजसभा में एक दिन उसने सब से कहा—

वारणावत बहुत बड़ा नगर है। वह बहुत मनोहर और रमणीक स्थान है। वहाँ भगवान् शिवजी विराजमान हैं उनकी पूजा और दर्शन के लिये इस समय सब देशों से लोग वहाँ आ रहे हैं।

इस प्रशंसा को सुन पाण्डवों की इच्छा वहाँ जाने की हुई। धृतराष्ट्र ने देखा कि पाण्डव वारणावत जाने के लिये उत्सुक हैं तब उन्होंने कहा—हे पुत्रो! सब लोग मुझसे वारणावत की प्रशंसा करते हैं। इच्छा हो तो तुम लोग वहाँ जाकर रह सकते हो। सुख से वहाँ रह कर जब जी चाहे तब हस्तिनापुर चले आना।

युधिष्ठिरने धृतराष्ट्र के मन की बात जान ली और यह विचार कर कि मेरा तो कोई सहायक है नहीं उन्होंने कहा—आप जो आज्ञा देते हैं वही करूँगा।

धृतराष्ट्र के वारणावत जाने की आज्ञा देने पर दुरात्मा दुर्योधन बहुत प्रसन्न हुआ। वह पहले ही से एक घोर पाप करने का निश्चय कर चुका था। अवसर जान कर उसने एक महादुष्ट मन्त्री पुरोचन को बुलाकर उससे कहा—

हे पुरोचन! यह धन धान्यपूर्ण पृथ्वी मेरे हाथ में है; यह जैसे मेरी है वैसी ही तुम्हारी भी है; इसलिये तुम्हारा धर्म है कि उसे अपने हाथ में रक्खो। देखो तुमको छोड़ कर मेरा एक भी ऐसा सहायक नहीं जिस पर विश्वास किया जाय। मेरे तुम्हीं एक विश्वास पात्र हो। अब छिप कर ऐसा उपाय करो कि मेरे शत्रुओं का मूलोच्छेद हो जाय। वारणावत में पशुपति महोत्सव होनेवाला है। पाण्डव लोग वहाँ जाँयगे और वहाँ कुछ काल निवास करेंगे। तुम एक तीव्र वेगवाले रथ पर चढ़ कर आज ही वारणावत जाओ। वहाँ जाकर नगर के किनारे खूब धन लगा कर चारों ओर से भली भाँति घिरा हुआ एक महल बना रक्खो। पटुआ, लाख, सन, राल आदि से ही वह घर बने। ऐसी लकड़ी उसमें लगाना कि आग छूते ही जल उठे। मिट्टी में घी, तेल, लाख चर्बी आदि मिला कर उस घर को और दीवालों को लिपवा देना। प्रत्येक घर में स्फोटक वस्तुओं को बड़ी सावधानी से रखवा देना।। ध्यान रहे, इस बातको पाण्डव लोग जाँच पड़ताल करके भी न जान सकें। इस प्रकार घर बनाकर कुन्ती सहित पाण्डवों को उस घर में सत्कार के साथ रखना और वहाँ अच्छे बिछाने, आसन, सवारियों का प्रबन्ध उचित रीति से पाण्डवों के लिये कर देना। जब पाण्डव लोग निश्चिन्त हो उस घर में रहने लगें तब किसी रात्रि में उनके सो जाने पर उसके द्वार में आग लगा देना, जिसमें पाण्डव लोग जल कर उसी में भस्म हो जाँय। प्रजा को या पिता को मेरे ऊपर कोई सन्देह न हो कि दुर्योधन ने यह सब किया है! इसलिये इस बात की विशेष सावधानी रखना!

दुष्ट पुरोचन ने दुर्योधन की बात मान कर वारणावत को प्रस्थान किया। बारणावत पहुँच कर उसने लाक्षागृह बनवाना आरम्भ कर दिया।

पाण्डव लोग भी शुभ मुहूर्त्त में वारणावत जाने को तैयार हुए। अच्छे घोड़ों से जुते हुए रथ पर चढ़ने के पूर्व उन लोगों ने भीष्म, द्रोण, धृतराष्ट्र आदि गुरुजनों को प्रणाम किया और उनसे आशीर्वाद लिया। सब से यथायोग्य मिल कर माताओं से प्रणाम कर आज्ञा ली। पाण्डवों को इस षड्-यन्त्र पर सन्देह हो गया था, पर उन लोगों ने किसी से कुछ न कहा। सब से विदा होकर रथ पर सवार हो हस्तिनापुर से प्रस्थान किया।

अचानक पाण्डवों को हस्तिनापुर से जाते देख लोगों के मन में सन्देह हुआ! उनमें से कितने ही निर्भय और साहसी ब्राह्मण लोग कौरवों को धिक्कारने लगे।

वे परस्पर खुल्लमखुल्ला कहते थे कि महाराज पाण्डु के शासनकाल में कोई भी दुखी न था। उन्होंने सबके साथ न्याय, प्रेम, और दया का व्यवहार किया। उनके पुत्रों के साथ बड़ा अन्याय हो रहा है। हम लोग इस निर्दय व्यवहार को कदापि न सहेंगे। युधिष्ठिर जहाँ चलेंगे, हम लोग भी इस नगर के घर द्वार को छोड़ वहीं जाँयगे। पुरवासियों की यह बात सुन कर और मन में विचार कर युधिष्ठिर ने कहा—

हे पुरवासियो! राजा धृतराष्ट्र हमारे पूज्य पिता के समान हैं, उनकी आज्ञा का पालन करना हमारा धर्म है। आप लोग हमारे मित्र हैं; आप लोग हम पर दया दिखावें और आशीर्वाद देकर अपने अपने घर लौट जाँय। जब आप लोगों से होने योग्य मेरा कोई काम आवेगा; तब हमारी हितकामना से आप लोग उसे पूरा करें।

पुरवासी युधिष्ठिर की यह बात सुन उनकी प्रदक्षिणा कर आशीर्वाद देते हुए दुखी मन से अपने घर लौट गये। उनके चले जाने पर नीतिज्ञ बिदुर युधिष्ठिर को सचेत कर कहने लगे। बिदुर म्लेच्छ भाषा के ज्ञाता थे, इसलिये सङ्केत से उन्होंने उसी भाषा में युधिष्ठिर को उपदेश देना आरम्भ किया।

विदुर ने कहा—जो मनुष्य नीतिशास्त्र के सहारे शत्रु की चेष्टा को जान सके, उसे बुद्धि से ऐसा काम करना चाहिये कि विपद से बच जाय। मनुष्य का शरीर पाँच तत्त्वों से बना हुआ है, उसके नाश के लिए बड़े बड़े तीखे अस्त्र मनुष्यों ने निर्माण किये हैं, जो पुरुष उन अस्त्रों के भेद तथा उनसे बचने का उपाय जानता है, वह सदा शत्रु से सुरक्षित रहता है। वह वस्तु जो फूस और ओस का नाश करती है, बड़े भारी बन में कन्दरा के भीतर रहनेवाले जीवों को जला नहीं सकती; उसे जान कर जो मनुष्य अपने को बचाता है, वह जीवित रहता है। जो आँखों से नहीं देखता वह न पथ को, न दिशाओं को जान सकता है; जिस मनुष्य में धीरज नहीं वह सम्पत्ति नहीं पा सकता तुम मेरे इन उपदेशों को भली भाँति अपने जी में रखना। जो मनुष्य शत्रुओं से बनाये हुए उस के अस्त्र के फेर में पड़ जाता है कि जो लोहे से बना हुआ नहीं है, वह साही के बिल की भाँति दोनों ओर निकलने के पथवाली बिल के सहारे आग से बच जा सकता है। घूमने से ही सब पथ जाने जा सकते हैं नक्षत्र के उजाले से भी दिशाओं का निश्चय हो सकता है, जो पाँच इन्द्रियों को वश में कर सकता है शत्रु उसको पीड़ा नहीं पहुँचा सकते। विज्ञ विदुर के इस उपदेश को सुन युधिष्ठिर ने उसी भाषा में उत्तर दिया 'हाँ मैं समझ गया'।

विदुर युधिष्ठिर को यह उपदेश देकर आशीर्वाद देते हुए लौट गये। सबके लौट जाने पर कुन्ती ने युधिष्ठिर से पूछा—पुत्र! विदुरजी ने म्लेच्छभाषा में तुमसे क्या कहा और तुमने क्या उत्तर दिया? यदि इसके बताने में कोई हानि न हो तो मुझसे कहो।

युधिष्ठिर ने कहा—विदुरजी ने यह कहा है कि घर में आग लगेगी; तुम सावधान रहना; ऐसा मार्ग भी कोई नहीं है कि जिसे तुम लोग न जानते हो, इसलिये सावधानी से रहना। मैंने उसी भाषा में उत्तर दिया कि मैं समझ गया।

आठवें दिन पाण्डव माता के साथ वारणावत पहुँचे। उनके आने का समाचार सुन नगर वासी हज़ारों की संख्या में हाथी, घोड़ा और रथ पर सवार होकर उनकी अगवानी के लिये जय, जय करते हुए आगे से पाण्डवों से मिले और उनका अभिवादन किया। उन लोगों के साथ पाण्डवों ने नगर में प्रवेश किया। सब जाति के लोगों ने पाण्डवों का उचित आतिथ्य किया। अनन्तर उन लोगों के लिये जो महल सजाया गया था, उसमें जाकर उतरे। पुरोचन ने पाण्डवों की बड़ी आव-भगत की। उसने उनके खाने, पीने, सोने आदि का प्रबन्ध पहले ही से कर रक्खा था। सारा राजसी ठाठ बाट एकत्रित था। प्रजा ने भी पाण्डवों का खूब आदर सत्कार किया, दस दिन तक पाण्डव उस महल में रहे।

पुरोचन के कहने से ग्यारहवें दिन पाण्डवों ने लाक्षागृह में प्रवेश किया। वहाँ ले जाने के लिये पुरोचन ने बड़ा हठ किया और वह बड़े आग्रह से वहाँ ले गया। इसपर युधिष्ठिर के मन में बड़ा सन्देह हुआ। उस दिन से वे बड़ी सावधानी से रहने लगे; सब बातों को बड़े ध्यान से देखते थे। उस घर में जाते ही भीम से युधिष्ठिर ने कहा—भीम! हमें इस घर में लाख मिली हुई चर्बी की दुर्गन्धि मालूम हो रही है। कुछ चाल चली गई है, इसमें सन्देह नहीं। चाचा विदुर ने चलते समय जो उपदेश हमें दिया था, वह अब एक एक करके हमारी आँखों के सामने आ रहा है। यह देखो, किसी चतुर कारीगर ने घी से भीगे हुए बाँस, मूँज, आदि तत्काल जल जानेवाले पदार्थों से यह घर बनाया है। हाय! दुष्ट दुर्योधन कितना कठोर हृदय है, कैसा घोर पाप करने का आयोजन किया है? निस्सन्देह पुरोचन की सहायता से इस घर के सहित हम लोगों को जला डालने का उसने विचार किया है।

भीम ने कहा—हे तात! यदि सचमुच यह घर ऐसा है कि आग छूते ही जल उठे तो यहाँ रहना उचित नहीं है। चलिये, जिस घर में पहले थे उसी में रहें।

युधिष्ठिर ने कहा—हे भीम! उस घर में लौट कर जाना उचित नहीं है। दुष्ट पुरोचन को यदि मालूम हो जायगा कि हम लोग उसकी माया को समझ गये हैं तो वह उसी क्षण हम लोगों को जला देगा, क्योंकि उस नराधम को न धर्म का भय है, न लोकनिन्दा का। यदि हम लोग यहाँ से भाग गये तो भी राज्यलोभी दुर्योधन हम लोगों को खोज कर मरवा डालेगा। इससे इसी घर में सावधानी से रहना अधिक अच्छा है। अवसर मिलने पर दुर्योधन और पुरोचन के बिना जाने यहाँ से भाग चलेंगे। इसी में कल्याण है। इस समय शिकार के बहाने हमें सब ओर घूमना चाहिये। ऐसा करने से यह मालूम हो जायगा कि किस मार्ग से हम लोग यहाँ से भाग सकते हैं। विदुर ने उपदेश देते समय जो सङ्केत किया था, उसके अनुसार इस घर में हम लोगों को एक कन्दरा खोदनी चाहिये और रात को उसी के भीतर छिप कर रहना चाहिये। ऐसा करने से इस घर के जलने पर भी हम लोग बच जाँयगे।

इसी समय विदुर का भेजा हुआ एक विश्वासी सुरङ्ग बनानेवाला युधिष्ठिर के पास आया, उसने पाण्डवों से एकान्त में कहा—हे युधिष्ठिर! मैं सुरङ्ग बनानेवाला हूँ। आपके हितैषी विदुर ने मुझे भेजा है। उन्हों ने सुना है कि कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को पुरोचन इस घर में आग लगावेगा। आपके विश्वास के लिये विदुरजी ने जो आपसे म्लेच्छ भाषा में बातचीत की थी, उसे आपसे कहने के लिये मुझसे भी कहा है। आज्ञा दीजिये क्या करूँ।

युधिष्ठिर ने कहा—हे प्रिय! मैं जान गया कि तुम मेरे हितचिन्तक चाचा विदुर के भेजे हुए हो। तुम उन्हीं के समान मेरे प्यारे हो। अब तुम प्रयत्न से हम लोगों की रक्षा करो। यह देखो,

दुरात्मा पुरोचन ने यहाँ अस्त्र शस्त्र रक्खे हैं। यह घर इस प्रकार बनाया गया है कि कहीं से निकलने का मार्ग नहीं है। पुरोचन रात दिन यहीं डटा रहता है। हम भागना चाहें तो अस्त्रों से वह हमारा संहार कर डालेगा। इसलिये हमारी रक्षा का कोई उपाय करो।

अच्छी तरह देख भाल कर उस चतुर कारीगर ने एक भारी सुरङ्ग बनाना आरम्भ किया। उस घर के भीतर ऐसा सुरङ्ग बनाया कि देखने पर भी कोई जान न सके। उसके मुँह पर एक किवाड़ लगा दिया। पुरोचन के भय से वह हरघड़ी बन्द रहता था। पुरोचन के विश्वास के लिये दिन में पाण्डव लोग शिकार खेलते और रात में छिपे रूप से शस्त्रास्त्र लिये हुए उसी कन्दरा में सोने लगे। इस प्रकार एक वर्ष बीत गया। पुरोचन ने समझा कि पाण्डवों का विश्वास मेरे ऊपर खूब जम गया है। अपना पाप-कर्म साधन करने में उसे अब कोई सन्देह न रह गया। उसे प्रसन्न देख कर युधिष्ठिर भाइयों से कहने लगे—

हे भाइयो! पुरोचन को अपने कार्य में असफल करने की हमारी चाल अब की बार सिद्ध हो गई है। वह दुष्ट समझ रहा है कि हमलोगों को उसके पाप का पता नहीं है। यहाँ से भाग चलने का यही अवसर अच्छा है। हमी लोग शस्त्रागार में, जहाँ पुरोचन रहता है, आग लगा कर उसे भस्म करदें और इस सुरङ्ग से निकल चलें। जिस दिन यह विचार हुआ उसी दिन कुन्ती ने छल से ब्राह्मण भोजन कराया और बहुत सा दान दिया। इसमें स्त्रियाँ भी बहुत बुलाई गईं थीं। सब तो सायं-काल तक चली गईं परन्तु संयोग से एक चिड़ीमारनी अपने, पाँच पुत्रों के साथ वहाँ रह गई। रात्रि में जब हवा बड़े वेग से चल रही थी, नगर के सब लोग सो रहे थे, इतने में भीमने चुपके से जाकर जिस घर में पुरोचन सोया था, उसमें आग लगा दी देखते ही देखते लाख के घर के द्वार को जलाकर उन्होंने उसके चारों ओर आग लगाई। यह सब करके पाण्डव लोग सुरङ्ग के मार्ग से निकल कर घने बन में चले गये। इस प्रकार पुरोचन का सर्वनाश कर पाण्डव लोग उस घर के बाहर हुए।

पुरोचन अपने किये का फल पा गया। उसी घर में जल कर भस्म हो गया। अपने पाचों पुत्रों के साथ चिड़ी मारनी भी उसी में जल मरी। अग्नि के प्रचण्ड रूप धारण करने पर नगरवासी चारों ओर से दौड़ कर आये। वहाँ की दशा देख सब बहुत दुखी हुए और विलपने लगे। वे सब कहने लगे—कुरु कुल में दुर्योधन महाकलङ्क उपजा है। उसी ने यह सब कराया है। दुष्ट पुरोचन ने उसी के कहने से यह घर बनाया था। वह नीच पुरोचन भी अपने पाप का फल पा गया। वह भी इस में जल मरा। पुरवासी लोग दुर्योधन को धिक्कारते हुए इसी प्रकार बहुत विलाप करते थे।

पाण्डव लोग माता के साथ सुरङ्ग से निकल कर जल्दी जल्दी आगे बढ़े। किन्तु वे सब नींद से झूम रहे थे और घबराये हुए थे, इससे जल्दी न चल सकते थे। तब भीम माता और भाइयों को अपने ऊपर ले कर चलने लगे। इस तरह सब को धीरज देते हुए कुछ दूर निकल गये।

ऐसेही समय में विदुर ने उस वन में एक सदाचारी मनुष्य को भेजा, जिससे कि पाण्डवों को कुछ सहारा मिल जाय। उसने वहाँ पहुँच कर पाण्डवों को देखा, बुद्धिमान् विदुर को दुर्योधन की सब चालों का पता लगता जाता था, इसीलिये उस चतुर गुप्तचर को भेजा था। वह विदुर का बहुत विश्वासी चर था। पाण्डव लोग गङ्गा तट पर पहुँच कर पार जाने का उपाय सोच रहे थे। युधिष्ठिर के चलते समय विदुर ने म्लेच्छ भाषा में जो उपदेश दिया था, उसी बात को कह कर उसने अपना परिचय दिया।

अनन्तर वह इस प्रकार कहने लगा—हे युधिष्ठिर! विदुरजी ने आपको आशीर्वाद कहा

है। दुर्योधन, कर्ण, शकुनि, दुःशासन आदि ने मिल कर आपके साथ विश्वासघात किया है। इस समय आप लोग इस नाव पर चढ़ कर शीघ्र से शीघ्र विपत्ति से बच कर किसी निर्भय स्थान में चले जाइये। ऐसा कह कर उन लोगों को नाव पर बैठा कर उसी मनुष्य ने नाव खे कर गङ्गा के पार पहुँचा दिया। गङ्गा पार पहुँच कर पाण्डवों ने उसी मनुष्य से अपना कुशल समाचार तथा प्रणाम विदुरजी से कहलाया। वह भी उनलोगों को आशीर्वाद देकर हस्तिनापुर को लौट गया।

रात बीतने पर वारणावत नगर के सब लोग लाक्षागृह में पाण्डवों को देखने के लिये एकत्रित हुए। आग बुझने पर उस घर में जला हुआ पुरोचन का शरीर मिला। दूसरे स्थान में छः मनुष्यों की और जली हुई राख मिली। यह देख नगरवासी बहुत विलाप करने लगे। उन लोगों को निश्चय हो गया कि पाण्डव लोग अवश्य इसमें जल कर मर गये। सब एक स्वर से कहने लगे कि यह काम धृतराष्ट्र, विदुर, भीष्म, दुर्योधन आदि की सलाह से हुआ है। चलो हम लोग यह समाचार दुरात्मा धृतराष्ट्र के पास भेजदें कि तुम्हारा मनोरथ सिद्ध हो गया। पाण्डव जल मरे। अब खूब आनन्द मनाओ।

नगरबासियों द्वारा यह समाचार हस्तिनापुर पहुँचा, सबलोगों को दुर्योधन की दुष्टता मालूम हो गई। हस्तिनापुर वासी यह सब समाचार सुन कर बहुत विकल हुए। पर दुर्योधन ने पहले ही से अपनी चतुरता से सबको वश में कर रक्खा था, इससे किसी की कुछ कहने की हिम्मत न पड़ी। धृतराष्ट्र बहुत विलाप करने लगे। उन्होंने कहा—हा! पाँचों कुमार माता समेत स्वर्ग सिधारे। मेरे लिये मानों आज भाई पाण्डु मरे हैं। हे अमात्यो! तुम लोग वारणावत जाकर उन लोगों की उचित रीति से अन्त्येष्टिक्रिया करो, जिससे उनकी अच्छी गति हो और स्वर्गलोक का प्राप्त हो जाँय। जो होना था सो हो गया। उन लोगों का परलोक बनाने में कोई कमी न की जाय। जाति के लोगों ने विलाप कर जलाञ्जलि दी। विदुर ने भी लोकाचार दिखाने के लिये कुछ विलाप किया।

पाण्डवों का वन-दुःख और हिडिम्ब-कथा

पाण्डव लोग गङ्गा पार होकर अँधेरे में ही दुर्योधन के भय से जल्दी जल्दी चले। अँधेरी रात होने के कारण दिशा भ्रम हो गया पर युधिष्ठिर ने तारागणों को देख कर निश्चय कर लिया कि कौन दिशा किस ओर है। वे लोग दक्षिण की ओर जल्दी जल्दी बढ़ रहे थे। भीम इतने वेग से चले कि उनके और भाई लोग पीछे पड़ने लगे। तब भीम फिर पहले की भाँति सबको अपनी पीठ पर लाद कर चले। इस प्रकार दूसरे दिन सन्ध्या को वे लोग एक घने वन में पहुँच गये। वह ऐसा विकट वन था कि वहाँ खाने को फल फूल भी न मिल सकता था। यहाँ तक कि जल का भी अभाव था। चारों ओर से भयावने पशु पक्षियों के शब्द सुनाई पड़ रहे थे। नींद और भूख से पाण्डव बड़े दुखी थे। सब इतने थक गये थे, कि वहीं अचेत होकर पड़ रहे। कुन्ती प्यास से व्याकुल होकर विलाप करने लगी। हा! मैं पाँचों पाण्डवों की माता हूँ और उन्हीं के बीच में बैठ कर प्यास से तड़प रही हूँ।

माता की करुणा से भरी हुई बात सुन कर भीम बहुत घबरा उठे और झट पानी खोजने के लिये इधर उधर घूमने लगे। घूमते हुए उन्होंने एक छायादार सुहावने बट-वृक्ष को देखा, वहीं

सबको ले जाकर कहा कि आप लोग यहाँ विश्राम कीजिए। मैं जल का पता लगाऊँ। वह सुनिये सारस पक्षी के शब्द सुनाई पड़ रहे हैं, जान पड़ता है वहाँ अवश्य कोई तालाब है।

अनन्तर युधिष्ठिर की आज्ञा लेकर भीम उसी ओर चले जिधर से पक्षियों का शब्द आ रहा था। वहाँ पहुँच कर भीम ने स्नान किया और जल पिया, इससे उनकी थकावट कुछ दूर हो गई। अपना डुपट्टा भिगो कर माता और भाइयों के लिये उन्होंने जल लिया और शीघ्र उस बरगद के नीचे लौट आये। लौट कर उन्होंने देखा कि माता तथा भाई लोग पृथ्वीपर लेट कर सो गये हैं, तब उनके शोक और दुःख का पार न रहा। वे यह कह कर विलाप करने लगे—

हा! मैं बड़ा अभागा हूँ। मेरी माता और भाई लोग इस प्रकार अनाथ की तरह धरती पर सो रहे हैं। दूध की तरह सफ़ेद बिछौने पर सोनेवाले गुलाब के फूल की भाँति कोमल भाई लोग ज़मीन पर लोट रहे हैं। बड़ा कष्ट है! विजयी कुन्तिभोज की पुत्री, वसुदेव की बहन, विचित्रवीर्य की पतोहू, राजा पाण्डु की रानी, हम लोगों की माता कुन्ती, जो सदा राजभवनों में निवास करती थी, भूमि पर लोट रही है। इससे अधिक और क्या दुःख देख सकता हूँ। रे कुबुद्धि दुर्योधन! अब तू मौज मना। इसमें सन्देह नहीं कि देवता तुझ पर प्रसन्न हैं। क्या करूँ? राजा युधिष्ठिर तुझे मार डालने की आज्ञा नहीं दे रहे हैं इसी से तू अभी तक बच रहा है नहीं तो आज ही मन्त्रियों तथा भाइयों के सहित तुझे यमसदन का पाहुना बना देता। इसी प्रकार बहुत देर तक भीम बकते रहे। क्रोध के मारे वे पागल से हो गये थे। भाइयों को तथा माता को नींद में देख उन्होंने जगाना उचित नहीं समझा। उन्होंने सोचा कि स्वयं जब ये लोग जगें तब इन्हें जल पीने को दें।

वे लोग जहाँ सो रहे थे वहाँ से थोड़ी दूर साखू के वृक्ष पर हिडिम्ब नामक एक राक्षस रहता था। वह मनुष्य का मांस खानेवाला तथा बड़े ही भयावने रूप का था। बहुत दिनों से उसे मनुष्य का मांस न मिला था और इसके लिये वह लालायित हो रहा था। उसकी दृष्टि यकायक पाण्डवों पर जा पड़ी। उन लोगों के शरीर से उसे मनुष्य मांस की गन्ध मालूम हुई। उसने अपनी बहन हिडिम्बा से कहा। आज बहुत दिनों के बाद मेरे बड़े ही प्यारे भोजन की वस्तु आ पहुँची है। उस को देख कर मेरे मुँह में लार आ रहा है। आज मैं अपने तीखे दाँतों को मनुष्य के मांस में धँसाकर गरम गरम रक्त पीना चाहता हूँ। तुम उस वृक्ष के नीचे के मनुष्यों को मार कर जल्द ले आओ, जिसमें हम दोनों उनके मांस को भर पेट खाकर आनन्द से नाचें। भाई की आज्ञा से हिडिम्बा उस बरगद के नीचे गई। उसने देखा कि वहाँ भीम पहरा दे रहे हैं, उनकी माता और चारों भाई सो रहे हैं। भीम के यौवन, सौन्दर्यपूर्ण रूप को देख कर हिडिम्बा मोहित हो गई। उसके मनमें भीम को पति बनाने की इच्छा जागृत हुई। पाण्डवा के मारने का विचार उसके मनसे जाता रहा। अपना राक्षसी रूप बदल कर वह परम रूपवती सुन्दरी बन गई। सुन्दर वस्त्राभूषण से सुसज्जित होकर मन्दगति से चलती हुई भीम के पास वह आई और लज्जा से सिर नीचा करके मधुर स्वर में बोली।

हे पुरुषश्रेष्ठ! आप कौन हैं? कहाँ से आये हैं? और ये देवता के समान जो पुरुष सो रहे हैं वे कौन हैं? यह सुकुमारी स्त्री जो निश्चिन्त होकर सो रही है, आपकी कौन होती है? क्या इन लोगों को यह नहीं मालूम कि इस घने वन में राक्षस रहते हैं? यहाँ हिडिम्ब नामक पापी राक्षस रहता है। वह मेरा भाई है। आप लोगों का मांस खाने के लिये वह लालायित हो रहा है। पर मैं आप के सौन्दर्य को देख कर मोहित हूँ और आप को अपना पति बनाना चाहती

हूँ। भाई की आज्ञा मान कर मैं आप लोगों को मारना नहीं चाहती। आप मेरा मनोरथ पूरा करें। आप लोगों की रक्षा मैं अपने भाई से कर लूँगी। जल, स्थल और आकाश सर्वत्र मेरी गति है। मेरे साथ आपको बहुत आनन्द मिलेगा।

भीम ने कहा—हे राक्षसी! धर्मात्मा भाइयों को तथा माता को मैं कैसे छोड़ सकता हूँ। तेरे दुरात्मा भाई के डर से सुख से सोते हुए भाइयों को नहीं जगा सकता। तू मुझे बड़े नीच विचार की मालूम हो रही है। मैं मनुष्य राक्षस, गन्धर्व किसी से डरनेवाला नहीं। मेरे रहते तेरे भाई की सामर्थ्य नहीं कि कुछ कर सके। तुम रहो चाहे चली जाओ और मनुष्य भक्षी अपने भाई को भेजदो।

हिडिम्बा को बड़ी देरी करते देख हिडिम्ब स्वयं वृक्ष से उतरा और पाण्डवों के पास चला। उसे आते देख हिडिम्बा बहुत डरी और भीम से कहने लगी। देखिये वह मेरा भाई क्रोध से भरा हुआ आ रहा है। अब बचना कठिन है। मेरा कहना मानिये। मैं आप लोगों को लेकर आकाश में उड़ सकती हूँ।

भीम ने कहा—हे भीरु! तुम मत डरो। मुझे निश्चय जान पड़ता है कि मेरे सामने वह राक्षस कुछ नहीं है। मैं अभी उसे मार गिराता हूँ।

क्रोध से भरे हुए हिडिम्ब ने दूर से ही यह सब बातें सुन लीं। हिडिम्बा को परम सुन्दरी मानवी स्त्री बनी हुई देख कर वह क्रोध से जल उठा। वह उसे बहुत धिक्कारने लगा। उसने कहा—री हिडिम्बा! क्या तू मेरे क्रोध से न डर कर मनुष्य के प्रेम में फँस गई है? और मेरे भोजन में विघ्न डालना चाहती है। अरी सतीत्व को नष्ट करनेवाली तुझे धिक्कार है। तुझे भी इन लोगों के साथ ही जमपुर भेजता हूँ।

यह कह कर राक्षसराज दाँतों को पीसता हुआ पाण्डवों की ओर उनको मारने के लिये दौड़ा।

भीम ने डाँट कर कहा—रे राक्षसाधम! ठहरजा। सुख से सोये हुए मेरे भाइयों और माता की नींद में विघ्न न डाल। निरपराध बहन के मारने का भी पाप क्यों ले रहा है? यदि तुझमें कुछ बल है तो आ मुझसे युद्ध कर। भीम की बात सुन कर वह और भी क्रोधित हुआ और हिडिम्बा को छोड़ भीम की ओर लपका और बोला—

रे नीच! पहले तेरे ही घमण्ड को चूर कर तेरा खून पीऊँगा। पीछे इन सबों को मार कर तब हिड़िम्बा को भी उसके किये का फल चखाऊँगा। यह कह कर दोनों हाथ फैलाये हुए वह भीम की ओर बढ़ा। भीम उसके हाथों को पकड़ भाइयों के जागने के भय से उसे बत्तीस हाथ दूर खींच ले गये। भीम के बल को देख उसे बड़ा अचम्भा हुआ। मतवाले हाथी की तरह गरजते हुए दोनों घोर युद्ध करने लगे।

उन दोनों का गर्जन सुन कर माता सहित पाण्डव लोग जाग गये और सामने परम सुन्दरी हिडिम्बा को देखा। उसे देख सब चौंके। कुन्ती ने प्रेम के साथ हिडिम्बा से पूछा—हे सुन्दरी! तुम कौन हो? किस काम के लिये यहाँ आई हो। हिडिम्बा ने कहा—नीले बादल के समान जिस बड़े वन को आप देख रही हैं; वह हिडिम्ब नामक राक्षस और मेरे रहने का स्थान है। हिडिम्ब मेरा भाई है। उसी ने आपको तथा आपके पुत्रों को मारने के लिये मुझे यहाँ भेजा था। परन्तु यहाँ आकर आप के पुत्र को देख मैं मोहित होगई। आप सब को लेकर आकाश में उड़ जाने के लिये मैंने उनसे कहा। पर आप के पुत्र ने इसे स्वीकार न किया। अब मेरे भाई के साथ आपके पुत्र का युद्ध हो रहा है

उसकी बात सुनकर युधिष्ठिर, अर्जुन, नकुल, सहदेव उठ खड़े हुए और युद्ध स्थान पर जा पहुँचे। भीम को विकट युद्ध करता हुआ और कुछ थका हुआ देखकर अर्जुन ने कहा—हे वीर भैया भीम! डरियेगा नहीं। आप को सहारा देने के लिये मैं खड़ा हूँ। मेरी इच्छा है कि मैं ही इस राक्षस को मारूँ।

भीम ने कहा—डरने की कोई बात नहीं। तुम इसमें न फँसो। मैं अकेले ही इसे मार गिराऊँगा। भीम ने दूने क्रोध से उसे ऊपर उठा लिया और चारों ओर घुमाकर पृथ्वी पर पटक दिया और पशु की तरह मार डाला। यह देख कर भीम के भाई लोग बहुत प्रसन्न हुए और उनकी प्रशंसा करने लगे।

पाण्डव लोग वहाँ से चले हिडिम्बा भी उनके पीछे पीछे चली। उसको आती देख भीम ने क्रोध से कहा—

री राक्षसी! राक्षस लोग मोहनेवाली माया रचकर पहले वैर को स्मरण रखते हैं, इस लिये तेरा भाई जहाँ गया है वहाँ तू भी जा।

युधिष्ठिरने कहा—हे भीम! स्त्री को मारना धर्म नहीं, फिर यह निरपराधिनी है।

इन बातों को सुन कर दुखी हिडिम्बा दोनों हाथ जोड़ कर कुन्ती से कहने लगी—

हे माता! मैंने भीम को मन से पति बना लिया है आप मेरे ऊपर दया करें। भीम को विवाह करने की आज्ञा दें। कुछ काल स्वच्छन्द विहार कर फिर उन्हें आपके पास पहुँचा दूँगी।

यह सुन कर युधिष्ठिर ने कहा—हे हिडिम्बा! तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध हो पर तुमको एक प्रतिज्ञा करनी होगी वह यह कि दिन भर भीम को लेकर चाहे जहाँ घूमो पर सन्ध्या होते ही नित्य हमारे पास पहुँचा दो। युधिष्ठिर की आज्ञा से हिडिम्बा के साथ भीम का विवाह होगया। हिडिम्बा विवाह हो जाने पर भीम को लेकर आकाश में उड़ी। बड़े आनन्द के साथ भीम के साथ विहार करती हुई कभी देवपुरी में, कभी स्रोतास्विनी नदियों में, कभी खिले हुए कमलों से युक्त झीलों में, कभी मनोहर वाटिकाओं में, कभी महर्षियों के आश्रमों में, कभी द्वीपों में घूमने लगी। वह दिन भर भीम के साथ आनन्द से रहती और रात में भाइयों तथा माता के पास उन्हें पहुँचा देती। कुछ काल बीतने पर भीम से उसे एक बड़ा पराक्रमी, भयङ्कर रूपवाला पुत्र हुआ। उसका घटोत्कच नाम पड़ा। वह पाण्डवों पर बड़ा स्नेह रखता था। पाण्डव लोग भी उस पर बड़ा प्रेम रखते थे। घटोत्कच ने कहा—जब आप लोगों को कोई काम पड़े मेरा स्मरण कीजियेगा। ऐसा कह कर वह उत्तर दिशा की ओर चला गया।

पाण्डवों से व्यासजी की भेंट और ब्राह्मण गृह निवास

इसके अनन्तर पाण्डव लोग बन में मृगों का शिकार करते हुए मत्स्य, त्रिगर्त, पाञ्चाल, कीचक आदि देशों में घूमते हुए चले। उन लोगों ने जटा बढ़ा कर तपस्वी रूप धारण कर लिया। एक दिन भगवान् वेदव्यास से उन लोगों की भेंट हो गई, पाण्डवों की दुरवस्था देख उन्हें बड़ा दुःख हुआ। व्यासजी ने उन लोगों को बहुत धीरज दिया और पास ही एकचक्रा नामक नगरी में ले गये। वहाँ एक ब्राह्मण के घर उन लोगों को रख कर युधिष्ठिर से कहा जब तक मैं फिर न आऊँ तब तक यहाँ सुख से रह कर तुम मेरी बाट देखते रहना। यह कह कर व्यासजी चले गये।

माता के साथ पाण्डव लोग एकचक्रा नगरी में उस ब्राह्मण के घर रहने लगे। पाण्डव लोग दिन में भीख माँगते थे; सन्ध्या समय उसे माता को ला कर सौंप देते थे। कुन्ती आधा भीम को देती और आधे में पुत्रों सहित स्वयं निर्वाह करती थी। एकदिन माता के पास भीम घरमें रह गये और चारों भाई भीख माँगने चले गये, अचानक उस ब्राह्मण के घरमें रोने का शब्द सुन पड़ा। करुणापूर्ण रोदन सुनकर कुन्ती को बड़ी दया लगी। वह भीम से कहने लगी। हे पुत्र! हम लोग सुख से इस ब्राह्मण के घर में रहते हैं, इसलिये इसके दुःखको दूर करने का उपाय करना चाहिये।

भीम ने कहा—हे माता! आप जाकर पता लगावें कि इस ब्राह्मण पर क्या सङ्कट आ पड़ा। उसको जान कर वह चाहे कठिन से कठिन क्यों न हो मैं उसके दूर करने का प्रयत्न करूँगा।

इतने में फिर रोने का शब्द सुन पड़ा, सुनते ही कुन्ती दौड़ कर घर के भीतर चली गई। उन्होंने देखा कि ब्राह्मण दुखी मन होकर स्त्री, पुत्र और कन्या को साथ लिये हुए बैठा है और अपने जीवन को धिक्कार रहा है। वह कह रहा है कि इस संसार में दुःख के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। सुख केवल शास्त्रों में लिखा है। जीवित रहने से बड़ा दुःख और बड़ी पीड़ा सहनी पड़ती है। एक ही आत्मा अर्थ, धर्म, काम इन तीनों के बिना विरोध के नहीं निबाह सकता। मोक्ष मिल नहीं सकता, क्योंकि हम संसार में फँसे हुए हैं। अर्थ पाने के लिये अनेकों प्रकार का दुःख झेलना पड़ता है। किसी प्रकार विपत्ति से छूटने का उपाय नहीं। हे ब्राह्मणी! तुम सोच कर देखो, मैंने एक स्थान पर जाना चाहा था, किन्तु उस समय तुमने मेरी बात न मानी। तुमने कहा कि यह हमारा पुश्तैनी घर है, इसे न छोड़ना चाहिये। हाय! तुम्हारे हठ के कारण यह दुःख देखना पड़ता है। तुम्हारे बूढ़े माता पिता को स्वर्ग सिधारे बहुत दिन बीत गये, तो भी न जाने क्यों तुम ने यहाँ रहना चाहा था। अब इस समय इस विपत्ति से कैसे बचूँ। पुत्र के बिना मैं जी नहीं सकता। कन्या भी मुझे वैसी ही प्यारी है। यदि मैं जाऊँ तो तुम लोग घोर सङ्कट में पड़ जाओगे। हा! इस विपत्ति से कैसे पार होऊँ? मुझे धिक्कार है।

ब्राह्मणी ने कहा—आप साधारण मनुष्यों की तरह शोक न करें, क्योंकि आप विद्वान् हैं। ऐसी बातों का शोक अज्ञानी लोग करते हैं। पृथ्वी पर जन्म लेकर एक न एक दिन सब को मरना होगा। हमारे एक पुत्र और एक कन्या है, इसलिये हम पितृऋण से उऋण हो चुकी हैं। शास्त्र का वचन है कि स्त्री, पुत्र, कन्या, सब स्वामी के हैं। इसलिये आप मुझे जाने की आज्ञा दें। मेरे जाने पर आप सब का पालन कर सकेंगे, परन्तु आपके न रहने से हम लोगों की बड़ी दुर्गति होगी। लोग मेरा निरादर करेंगे।

माता पिता की करुणापूर्ण बात को सुनकर कन्या कहने लगी—आप लोग अनाथों की तरह क्यों रो रहे हैं? मेरी बात सुनकर जो करना हो, कीजिये। धर्म मानकर किसी न किसी समय आप लोगों को अवश्य ही मुझे अपने यहाँ से अलग करना पड़ेगा; इससे मुझको ही भेजकर सब को बचाइये।

कन्या की बात सुनकर ब्राह्मण ब्राह्मणी फिर रोने लगे। सब को रोते देख शिशु पुत्र कहने लगा—

तुतला कर उसने कहा—इस तिनके से मैं उस राक्षस को मारूँगा।

कुन्ती ने बोलने का उचित अवसर देख कहा—मैं भी जानना चाहती हूँ कि आप क्यों इतने दुखी हैं? यथाशक्ति मैं आपका दुःख दूर करने का यत्न करूँगी।

ब्राह्मण ने कहा—हे तपस्विनी! मेरा दुःख दूर करना मनुष्य की शक्ति से बाहर है। इस नगर के पास बक नामक राक्षस रहता है। मनुष्य का मांस खाकर वह इस नगर की रक्षा करता है। उसके बदले राक्षस की भेंट में एक गाड़ी अन्न, दो भैंसे एक मनुष्य प्रति दिन बारी बारी से प्रत्येक घर को देना पड़ता है। यदि कोई इस नियम का पालन न करे तो वह उसके घर भर को मार कर खा जाता है। इस बार हमारे घर की पारी है। हमें उससे बचने का कोई उपाय नहीं सूझ रहा है, इससे विचार कर रहा हूँ कि सब स्वजनों के साथ राक्षस के पास जाऊँ, जिससे हम सब को एक साथ ही वह खा ले।

कुन्ती ने कहा—हे ब्राह्मण देव! आप इस भय से दुखी न हूजिये। मैंने उस राक्षस से बचने का उपाय ठहरा लिया है। आपके एक ही छोटा बच्चा और एक कन्या है, मैं समझती हूँ कि न आपको

रात बीतने पर भीम खाने की वस्तुओं को लेकर राक्षस के पास गये। वहाँ जाकर खाने की वस्तुओं को आप खाते हुए राक्षस का नाम लेकर उन्होंने पुकारा। राक्षस आया और यह कौतुक देख क्रोध से लाल होकर गरजने लगा।

उसने कहा—रे नीच! तू कौन है? जो मेरे भोजन को खा रहा है।

भीमसेन इस बात को सुनकर हँसे और उसकी ओर पीठ कर डट के भोजन करने लगे। तब वह चिल्ला कर दोनों हाथ फैलाये हुए भीम को मारने के लिये दौड़ा। महाबली भीम ने उसके हाथों को पकड़ कर ज़ोर से अपनी ओर खींच लिया। दोनों में घोर युद्ध होने लगा। आस पास के वृक्ष टूट कर गिरने लगे और पृथ्वी हिलने लगी। भीम की मार से वह राक्षस थक गया। उसको थका हुआ जान भीम उसे पृथ्वी पर पटक कर मारने लगे। अन्त में घुटनों से पीठ को दबाकर दायें हाथ से गले को और बायें हाथ से कमर के कपड़े को पकड़कर यों तोड़ डाला कि वह दो टुकड़ा हो गया। वक के मारे जाने पर उसके भाई बन्धु डर के मारे इधर उधर भाग गये।

बक के मरने की खबर नगर में पहुँची तो लोगों ने बड़ा आनन्द मनाया। घर घर मङ्गलाचार होने लगा। लोगों ने देवी देवताओं का पूजन किया। जाँचने पर जब यह मालूम हुआ कि आज इस ब्राह्मण की पारी थी, तब लोग उसके यहाँ पहुँच भाँति भाँति के प्रश्न करने लगे। पाण्डवों के रोकने के कारण ब्राह्मण ने यथार्थ बात छिपा कर कहा—सकुटुम्ब दुःख समुद्र में डूबा हुआ देख एक तेजस्वी ब्राह्मण ने हमें धीरज दिया और दया कर इस विपत्ति से बचाया। उन्होंने इस राक्षस का वध किया है।

बक राक्षस को मार कर पाण्डव लोग पूर्ववत् ब्राह्मण के घर में रह कर वेदाध्ययन करने लगे। कुछ दिन बाद एक ब्राह्मण रहने के लिये उस ब्राह्मण के घर आया। ब्राह्मण ने बड़े सत्कार से उन्हें टिकाया। पाण्डव लोग भी देश देशान्तर की बात सुनने के लिये उसका बड़ा आदर करते थे। इससे प्रसन्न हो उस ब्राह्मण ने क्रम से अपने भ्रमण का वृत्तान्त सुनाया। उन्होंने देशों, नगरों, तीर्थों, नदियों और अनेकानेक राजाओं के आश्चर्य भरे वृत्तान्त को सुनाया। प्रसङ्ग आने पर ब्राह्मण ने पाञ्चाल देश में द्रौपदी के आश्चर्यजनक स्वयम्बर, धृष्टद्युम्न और शिखण्डी के जन्म तथा राजा द्रुपदके बड़े भारी यज्ञ से द्रौपदी के बिना योनि के जन्म का समाचार सुनाया। उसने कहा कि परम सुन्दरी द्रौपदी का स्वयम्बर बड़े धूम से हो रहा है। यह सब सुन कर पाण्डवों का मन डोल गया अपनी दशा पर विचार कर उदास मन वे सब चिन्तित हुए। कुन्ती ने पुत्रों को चिन्तित देख कर कहा—हे पुत्र! ब्राह्मण के घर रहते बहुत दिन बीत गये। इस सुन्दर नगर में भीख माँग कर बहुत काल बिताया। वन उपवन जो कुछ देखने योग्य था सब हम लोगों ने देख लिया। बार बार वही दृश्य देखने को जी नहीं चाहता है। भीख भी कम मिलने लगी है। यदि तुम लोगों की इच्छा हो तो पाञ्चाल नगर में चल कर ब्राह्मण की कही हुई सब बातें अपनी आँखों देखें। इस प्रकार बातचीत हो रही थी कि अपनी प्रतिज्ञानुसार वेदव्यासजी फिर आ गये। उन्होंने भी पाण्डवों को पाञ्चाल जाने की अनुमति दी। माता के साथ पाण्डव लोग प्रसन्न हो द्रुपद देश की ओर चले। व्यासजी भी आशीर्वाद दे कर अपने स्थान को लौट गये। माता के साथ जाते हुये पाण्डव लोग गङ्गा के किनारे सोमश्रयण तीर्थ में पहुँचे। सन्ध्या हो जाने के कारण अन्धेरा हो चला था। अर्जुन ने मार्ग दिखाने के लिये एक जलती हुई लकड़ी ले कर सब के आगे आगे प्रस्थान किया। इस समय गङ्गाजी के निर्मल जल में गन्धर्वराज अङ्गारपर्ण स्त्रियों के साथ जलक्रीड़ा कर रहे थे। उन्होंने पाण्डवों के पैर की आहट सुनी। रङ्ग में भङ्ग होता देख उन्हें बुरा लगा और अपना धनुष चढ़ा कर अर्जुन से बोले—

सायङ्काल से लेकर सवेरे तक यक्षों, गन्धर्वों और राक्षसों को विचरने के लिये यह स्थान ठहराया गया है। बाकी समय मनुष्यों के कार्य्य के लिये निश्चित है। यदि मनुष्य लोग लोभ में पड़ कर हमारे समय में विघ्न डालते हैं तो हम उन मूर्खों को मार डालते हैं। इसलिये जो लोग रात के समय जल में जाते हैं वे बलवान् राजा भी हों तो वेदज्ञ ब्राह्मण उनकी निन्दा करते हैं। तुमने हमारी क्रीड़ा में क्यों विघ्न डाला? शीघ्र हमारे सामने आकर अपने आने का कारण बताओ?

अर्जुन ने कहा—रे दुष्ट! क्या समुद्र, हिमालय की छोर और गङ्गा ये स्थान भी दिन रात अथवा सन्ध्या के समय किसी के लिये रुक सकते हैं? अरे कुटिल! जो शक्तिहीन हैं वे ही लोग तेरे बनाये हुए इस नियम का पालन कर तेरे आगे हाथ जोड़ते हैं। हम डरनेवाले मनुष्य नहीं। वेदव्यास जीने कहा है कि गङ्गाजी में जाने के लिये किसी को किसी समय निषेध नहीं है। इसलिये गङ्गाजी के जल को स्पर्श करने में तू रोकनेवाला कौन है?

इस बात को सुनते ही क्रोध के मारे धनुष को तान कर अङ्गारपर्ण तीखे बाणों की वर्षा करने लगा। अर्जुन ने ढालपर उन बाणों को रोक लिया और उसके सारे प्रयास को व्यर्थ कर दिया। अर्जुन ने क्रोध से लाल होकर उस महा तेजोमय दिव्य अस्त्र को लिया जिसे प्रसन्न होकर गुरु द्रोण ने दिया था। उसको फेंक कर उन्होंने गन्धर्वराज के रथ को जला दिया। अङ्गारपर्ण पृथ्वी पर गिरा ही चाहता था कि चोटी पकड़ कर फूल की तरह अर्जुन ने उसे उठा लिया और भाइयों के पास ले आये।

अनन्तर गन्धर्व की स्त्री कुम्भीनसी ने पति की रक्षा के लिये युधिष्ठिर के शरण में आ कर कहा—हे धर्मात्मा! मैं गन्धर्वी हूँ। आपके शरण में आई हूँ। मेरे पति को जीवन दान दीजिये।

युधिष्ठिर ने कहा—हे अर्जुन! जो शत्रु लड़ाई में हार जाय और उसकी स्त्री बचाने की प्रार्थना करे, उसे मारना उचित नहीं। इसकी स्त्री शरण में आई है, इसलिये इसको छोड़ दो।

अर्जुन ने गन्धर्व से कहा—हे गन्धर्व! जाओ, तुमको जीवन दान दिया जाता है। राजा युधिष्ठिर ने तुम्हें अभय दान देने की आज्ञा दी है।

गन्धर्व ने कहा—हे वीर अर्जुन! मैं आपसे अपने पराजय को स्वीकार करता हूँ। दिव्यास्त्र धारण करनेवाले आपको मित्र बनाना चाहता हूँ और गन्धर्वी माया की विद्या देता हूँ। रथ हीन हो जाने के कारण अपने बेगवान् घोड़े भी देता हूँ। इसके बदले आप अपने आग्नेयास्त्र को मुझे दीजिए।

अर्जुन ने इस बात को स्वीकार कर कहा—इस समय घोड़ों को अपने ही पास रक्खो, आवश्यकता होगी तब मैं ले लूँगा। अर्जुन और गन्धर्वराज में मित्रता हो गई और यह सदा दृढ़ बनी रही।

गन्धर्व ने कहा—हे अर्जुन! बिना पुरोहित के मनुष्य का कोई कार्य उत्तमता से सिद्ध नहीं होता इसलिये आप भी किसी को अपना पुरोहित बना लें।

अर्जुन ने कहा—हे गन्धर्व! तुम्हीं बतलाओ कि कौन वेदज्ञ ब्राह्मण पुरोहित बनाने के योग्य है।

गन्धर्व ने कहा—उत्कोचक नामक तीर्थ में देवल के छोटे भाई धौम्यऋषि तपस्या कर रहे हैं। यदि आप चाहें तो उनको अपना पुरोहित बना लें। पाण्डवों ने उत्कोचक तीर्थ में धौम्यऋषि के आश्रम में जाकर उनको अपना पुरोहित बनाया। उनकी आज्ञा से द्रौपदी का स्वयम्बर देखने के लिये उन्होंने पाञ्चालदेश की ओर प्रस्थान किया।

द्रौपदी स्वयम्बर

पाण्डव लोग पाञ्चालराज के उत्सव और द्रौपदी के स्वयम्बर को देखने चले। मार्ग में जाते हुए बहुत से ब्राह्मणों से उनकी भेंट हो गई। ब्राह्मणों ने पाण्डवों से पूछा—आपलोग कहाँ जाँयगे और कहाँ से आ रहे हैं ?

युधिष्ठिर ने कहा—हे ब्राह्मणो! हम पाँचों भाई माताके साथ घूमा करते हैं। इस समय एकचक्रा नगरी से आ रहे हैं।

ब्राह्मणों ने कहा—आपलोग हमारे साथ पाञ्चाल देश को चलें, वहाँ द्रौपदी का स्वयम्बर है और बड़ा उत्सव होनेवाला है। वहाँ अनेक देशों के राजकुमार और अस्त्र शस्त्र के जाननेवाले वीर लोग आवेंगे, क्योंकि उस कन्या की बड़ी प्रशंसा सुनी जाती है। वह राजा द्रुपद के यज्ञ की वेदी से उत्पन्न हुई है। उसका रूप, सौन्दर्य और गुण अनुपम है और भी वहाँ जगह जगह नट, ताल देने वाले, स्तुति पाठ करनेवाले, पुराणों की कथा कहनेवाले, कवि और नर्तक लोग इकट्ठे होंगे और अपने अपने गुण को दिखावेंगे।

पाण्डवों को ब्राह्मणों का साथ मिल जाने से बड़ी प्रसन्नता हुई और वे लोग उन्हीं के साथ पाञ्चाल नगर को चले। वहाँ पहुँच कर देश देश से आये हुए राजकुमार, योद्धा लोग और गुणियों को तथा नगर को देख कर ब्राह्मण की भाँति पाण्डव लोग एक कुम्हार के घर पर उतरे।

पाञ्चाल राज की प्रतिज्ञा थी कि जो सर्वोत्तम धनुर्वेद का जाननेवाला होगा उसी को मैं अपनी कन्या दूँगा। द्रुपद का विचार अर्जुन को ही कन्या को देने का था, किन्तु इस बात को उन्होंने किसी से प्रगट नहीं किया था। इसी विचार से उन्होंने एक ऐसा धनुष बनवाया जिसे अर्जुन को छोड़ कर कोई न चढ़ा सके और आकाश में एक बनावटी यन्त्र बना कर उसमें एक निशाना धर दिया। उन्होंने कहा—जो राजा उस धनुष की डोर चढ़ाकर सुसज्जित बाण से उस यन्त्र को पारकर निशाने को मार सकेगा वही मेरी लड़की को पावेगा।

स्वयम्बर की सूचना सारे नगर में दे दी गई। इसके लिये नगर से बाहर समतल भूमि पर मण्डप बनाया गया मण्डप के चारों ओर खाँई खोद कर दीवाल बना दी गई। उस में चारों ओर बड़े बड़े फाटक भी बना दिये गये। रत्नजटित सोने के खम्भे बनाकर उस पर चँदवा तान दिया गया। चारों ओर एक से एक बढ़ कर अनेकों मणियों से जड़े हुए सुवर्ण के सिंहासन रक्खे गये। चबूतरों पर चढ़ने के लिये सुन्दर सीढ़ियाँ बना दी गईं। चारों ओर फूल, माला और वन्दनवार से मण्डप की शोभा अपूर्व हो गई।

द्रौपदी के स्वयम्बर को सुन कर सब देशों के राजा आये। दुर्योधन के साथ कर्ण तथा और कुरुबंशी राजे आये, बहुत से यादवों के साथ श्रीकृष्ण और बलदेवजी भी आये। बड़े बड़े ब्राह्मण महर्षि भी इस उत्सव में सम्मिलित हुए। राजा द्रुपद ने सब के यथायोग्य सत्कार का प्रबन्ध किया।

स्वयम्बर का नियत दिन आने पर रङ्गभूमि में सुगन्धित चन्दन के जल का छिड़काव किया गया। चारों ओर से झुण्ड के झुण्ड लोग वहाँ आकर विराजने लगे। राजा लोग तथा वीर लोग वस्त्रा-भूषण और अस्त्र शस्त्र से सज कर रङ्गभूमि में आ विराजे। पाण्डव लोग भी ब्राह्मणों के झुण्ड में बैठ कर द्रुपदराज के ऐश्वर्य को देखने लगे। इतने में सोलहों आभरणों से सजी हुई उत्तम रेशमी साड़ी पहने हुए अनुपम सौन्दर्यशालिनी द्रौपदी रङ्गभूमि में आई। उसके हाथों में सुवर्ण की वरमाला

शोभित हो रही थी । सोमवंश के पुरोहित ने यथाविधि अग्नि में आहुति दी और ब्राह्मणों ने स्वस्ति-वाचन किया । बाजे जो उत्तम स्वर से बज रहे थे बन्द करा दिये गये तब द्रौपदी को ले कर उसके भाई धृष्टद्युम्न बीच में खड़े हो गये और गम्भीर तथा अर्थ से भरा हुआ बचन बोले ।

हे नरेशो ! सुनिये, यह जो धनुष, और तीखे पाँच बाण रक्खे हैं, उसीसे आकाश यन्त्र के बीच के सूराखसे जो लक्ष्य भेद करेगा, मेरी बहन कृष्णा उसी को जयमाला पहनावेगी ।

प्रतिज्ञा सुन कर राजा लोग एक दूसरे को घमण्ड दिखाते हुए अस्त्रों से सुसज्जित होकर उठे । सब की दृष्टि द्रौपदी की ओर ही थी । यदुवंशियों में श्रेष्ठ श्रीकृष्णचन्द्र की दृष्टि सहसा पाण्डवों पर जा पड़ी । उन्होंने बलदेवजी से कहा—मुझे जान पड़ता है कि ब्राह्मण वेषधारी ये ही पाँचों पाण्डव हैं । बलदेवजी भी उन लोगों को देख कर प्रसन्न हुए ।

इधर राजकुमार लोग द्रौपदी को पाने के लिये अपना बल विक्रम दिखाने लगे । दुर्योधन, शाल्व, शल्य, अश्वत्थामा, कलिङ्ग नरेश, वङ्ग नरेश, विदेहराज, पाण्ड्य, पौण्ड्र, पवनराज आदि राज-कुमार, मुकुट, हार, कुण्डल आदि गहनों से सजेहुए अपने अपने पराक्रम दिखाये । पर उस धनुष की प्रत्यञ्चा चढ़ाना तो दूर रहा, उसके झुकाने का प्रयत्न करते ही उसकी चोट से इधर उधर गिर गये और उनके मुकुट, कुण्डल हार टूट कर बिखरने लगे । इससे लज्जित होकर उन सबों ने हार मान द्रौपदी के पाने की आशा छोड़ दी ।

सब राजाओं को हारा हुआ देख कर्ण वहाँ गया, धनुष को शीघ्र उठा कर उसने उसमें डोरी चढ़ायी, देखते देखते बाणों को लेकर निशाने के पास पहुँचा । कर्ण लक्ष्यवेध करने को तैयार हुआ । सबके मन में निश्चय हो गया कि यह अवश्य लक्ष्यवेध करके बरमाला प्राप्त कर लेंगे । पाण्डवों के मन में सबसे अधिक चिन्ता बढ़ी । इतने ही में द्रौपदी ने कर्ण को देख कहा—

"मैं सूतपुत्र से विवाह न करूँगी ।"

कर्ण ने क्रोध की हँसी हँस कर धनुष बाण रख दिया और सूर्य की ओर देखने लगा ।

इसके बाद शिशुपाल ने धनुष पर डोर चढ़ाने का उद्योग किया पर वह भी दूर जाकर गिर पड़ा और भी बड़े बड़े क्षत्रियों ने लक्ष्यवेध का उद्योग किया, पर सब विफलमनोरथ हुए । जरासन्ध, शाल्व, मद्रराज आदि सबकी यही दशा हुई ।

जब सब राजा लोग हार मान गये, तब वीर वर अर्जुन के मन में लक्ष्यवेध करने की इच्छा हुई । वे उठ खड़े हुए जहाँ से लक्ष्यवेध किया जाता था, वहाँ पहुँच गये । इस पर ब्राह्मणों में बड़ा कोलाहल मचा । कोई अर्जुन को बढ़ावा देने लगा । कोई उदास मन हो कहने लगा—

हे ब्राह्मणो ! कर्ण, शल्य आदि नामी वीर जिस धनुष को झुका नहीं सके, उसी में डोर चढ़ाने के लिये अस्त्रविद्या का न जानने वाला यह ब्राह्मण कमर कस रहा है । यदि अनजान में यह इस काम को कर रहा है तो सब ब्राह्मणों की हँसी करावेगा । इसको रोकना चाहिये कि इस काम में हाथ न डाले ।

किसी ब्राह्मण ने कहा—यह युवा ब्राह्मण भारी कन्धावाला गजराज के समान जङ्घा और भुजा-वाला सिंह के समान गति और परक्रमवाला जान पड़ता है, इसके उत्साह से मालूम होता है कि अवश्य इस काम को कर लेगा । यदि वह समझता कि मैं इस काम को न कर सकूँगा तो कदापि वहाँ न जाता । फिर तीनों लोक में ऐसा कोई काम नहीं जिसे ब्राह्मण लोग न कर सकें वे फल खा कर, वायु खाकर अथवा कुछ न खाकर रहें तो भी अपने तेज़ को बनाये रख सकते हैं । देखो, यमदग्नि के पुत्र

राम ने युद्ध में क्षत्रियों को हराया था; अगस्त्य ऋषि ने ब्रह्मतेज से अपार समुद्र को पी लिया था। इसलिये आप लोग शीघ्र आज्ञा दीजिये कि यह ब्राह्मण धनुष में डोर चढ़ावे। ब्राह्मण लोग ऐसी भाँति भाँति की बातें करते थे।

अर्जुन ने धनुष के पास जाकर उसकी प्रदक्षिणा कर वर देनेवाले शिवजी को प्रणाम किया और मन ही मन श्रीकृष्णजी का स्मरण कर धनुष को उठा लिया। बड़े बड़े धनुर्धारी वीर जिस धनुष के डोर को न चढ़ा सके थे, उस में अर्जुन ने देखते ही देखते डोर चढ़ा कर पाँच बाणों से निशाने को काट डाला। निशाना विध कर यन्त्र के छेद के भीतर से पृथ्वी पर आ गया। चारों ओर से बड़ा कोलाहल मचा। आकाश से देवता लोग अर्जुन के मस्तक पर फूल बरसाने लगे। ब्राह्मण लोग अपने डुपट्टे को पताका की भाँति उड़ाते हुए हर्ष प्रकाश करने लगे। जो लोग निशाने को वेध नहीं सके थे, उनका सिर मारे लज्जा के नीचे हो गया। अनेकों प्रकार के बाजे मधुर स्वर से बजने लगे, भाट लोग विरुदावली पढ़ने लगे। अर्जुन को परम तेजस्वी और सुन्दर देख द्रौपदी ने बरमाला उनके गले में डाल दी। राजा द्रुपद ने उस ब्राह्मण को कन्यादान देना चाहा। ब्राह्मणकुमार को कन्या देने की तैयारी देख राजा लोग बहुत क्रोधित हुए और एक दूसरे को देख इस प्रकार कहने लगे—

राजा द्रुपद ने हम लोगों का तृण के समान तिरस्कार कर एक ब्राह्मण को अपनी कन्या देना विचारा है इससे हम लोगों का बड़ा अपमान होगा। क्या देवताओं के समान राजाओं में एक भी उसके पाने योग्य नहीं। ऐसे विवाह में ब्राह्मणों का अधिकार नहीं, स्वयम्बर क्षत्रियों के लिये है। यदि द्रुपद हम लोगों की बात न मानें तो उन्हें युद्ध में मार डालना चाहिये। कन्या यदि हम लोगों को पसन्द न करे तो उसे आग में डाल कर अपने राज्य को लौट चलेंगे। क्रोधान्ध होकर अनेकों अस्त्र शस्त्र ले कर द्रुपद की ओर वे दौड़े। द्रुपद भय से ब्राह्मणों के शरण में चले गये। भीम और अर्जुन यह देख कर द्रुपद की रक्षा के लिये खड़े हुए। भीम ने पास के एक वृक्ष को उखाड़ उसी से गदा का काम लिया। अर्जुन ने परीक्षा के लिए रक्खे हुए धनुष को उठा कर लड़ने की तैयारी की।

ब्राह्मणों ने भी मृगछाला और कमण्डलु हिला हिला कर कहा—डरो मत, हम शत्रुओं के साथ लड़ेंगे।

अर्जुन ने ब्राह्मणों की बात सुन कर हँस करके कहा कि आप लोग एक ओर खड़े होकर देखते रहिये, मैं अभी बाणों से इन लोगों को तितर बितर किये देता हूँ।

महा पराक्रमशाली कर्ण अर्जुन से और मद्रराज शल्य भीम से घोर युद्ध करने लगे। अर्जुन के बाणों की वर्षा से कर्ण घबरा गया। अर्जुन के अद्भुत युद्धकौशल को देख कर्ण ने कहा—हे ब्राह्मण! तुम्हारे हाथों का बल और अस्त्रचालन देखकर मैं प्रसन्न हुआ। मैं समझता हूँ कि तुम मूर्त्तिमान् धनुर्वेद, परशुराम अथवा इन्द्र हो। क्योंकि इन्द्र या अर्जुन को छोड़कर मेरे साथ कोई नहीं लड़ सकता।

कर्ण की बात सुन कर अर्जुन ने कहा—मैं धनुर्वेद, इन्द्र परशुराम विष्णु कोई नहीं हूँ। मैं अस्त्रधारी एक ब्राह्मण हूँ। तुमको मारने के लिये युद्ध में खड़ा हूँ।

इस बात को सुन कर कर्ण ने विचारा कि ब्राह्मण के तेज को कोई नहीं मार सकता, युद्ध से हट गया। दूसरी ओर मतवाले हाथी की भाँति भीम और शल्य लड़ रहे थे। खूब घूँसों की मार हो रही थी। अन्तमें भीम ने शल्य को एकायक ऊपर उठा कर अखाड़े में पछाड़ा। सब ब्राह्मण यह देख कर हँसने लगे। शल्य बहुत लज्जित हुआ और उसने हार कर स्वीकार ली। यह देख कर राजा लोग आपस

बातचीत करने लगे—ये दोनों ब्राह्मण सबसे बड़े हैं। अब यह जान लेना चाहिए कि ये कहाँ रहते हैं। किसके पुत्र हैं?

इतने में श्रीकृष्णजी बीच में आकर कहने लगे कि इस ब्राह्मण ने धर्म से ही द्रौपदी को पाया है इससे हमलोगों को ईर्ष्या न करनी चाहिये।

इस बात को सुनकर सब राजे लड़ाई से मुँह मोड़ अपने अपने घर चले गये।

भीम और अर्जुन मृगछाला ओढ़े हुए वहाँ से चले, पीछे पीछे द्रौपदी भी चली। उधर कुन्ती पाण्डवों के आने में विलम्ब देख कर बहुत चिन्ता करने लगी। वह सोचने लगी कि कहीं धृतराष्ट्र के पुत्रों ने मेरे बेटों को पहचान कर मार न डाला हो, क्योंकि भीख माँग कर लौटने में इतनी देर कभी नहीं होती थी। न जाने महात्मा व्यासजी को कैसी कुटिलबुद्धि आगई? उन्होंने क्यों हमें यहाँ आने की आज्ञा दी? कुन्ती इस प्रकार सोच ही रही थी कि पाण्डव लोग द्रौपदी को साथ लिये हुए कुम्हार के घर में आ पहुँचे। वहाँ पहुँच कर अर्जुन ने कुन्ती से कहा—

हे माता! आज यही भीख मिली है।

कुन्ती उस समय कुटी के भीतर थी, बिना देखे ही उसने कहा कि तुम सब भाई मिलकर उसे बाँट लो। जब उसने द्रौपदी को देखा तब कहा—हाय! मैंने कैसी अनुचित बात कह डाली! अधर्म के भय से घबरा कर द्रौपदी का हाथ पकड़ युधिष्ठिर के यहाँ गई और उनसे कहने लगी—हे पुत्र! बिना जाने मेरे मुँह से वैसी बात निकल गई कि सब लोग मिलकर बाँट लो। अब कहो कि कैसे मेरी बात झूठ न होने पावे और द्रौपदी अधर्म से बचे।

बुद्धिमान् युधिष्ठिर ने कुछ देर सोच कर कहा—हे अर्जुन! तुमने इस राजकुमारी को जीता है, इससे तुम्हारे साथ इसका विवाह होना उचित है।

अर्जुन ने कहा—हे नरनाथ! आप मुझे अधर्म में मत डालिये। सबसे पहले बड़े भाई का विवाह होना चाहिये। जिससे राजा द्रुपद और हम लोगों का हित हो वही करना चाहिये। हम लोगों में कोई ऐसा नहीं है जो आपकी आज्ञा न माने।

अर्जुन की भक्ति और प्रेम से भरी हुई बात सुन कर और भाइयों के रंग ढंग को देख कर युधिष्ठिर ने उनके मन की बात जानली। उन्होंने कहा—सुलक्षणा द्रौपदी हम सब की स्त्री होगी। ऐसा करने से माता की बात रह जायगी और हम लोगों में भी किसी प्रकार का मनमुटाव न होगा।

इसी समय कृष्णजी भी यह विचार कर कि वे ही पाण्डव हैं, बलदेवजी के साथ खोजते हुए कुम्हार के घर में पहुँच गये। वहाँ पाण्डवों को बैठा हुआ देख बहुत प्रसन्न हुए और सब के साथ प्रेम से मिले।

अनन्तर युधिष्ठिर ने पूछा—हे वासुदेव! हम लोग यहाँ छिप कर टिके थे, आपने हमको कैसे जान लिया?

कृष्ण ने हँस कर कहा—हे महाराज! आग छिप नहीं सकती। पृथ्वी पर पाण्डवों के अतिरिक्त कौन ऐसा पराक्रम दिखा सकता था? हम लोगों के भाग्य से धृतराष्ट्र के पापी पुत्र और उसके मन्त्री अपने मनोरथ को पूरा न कर सके। उनका कपट जाल व्यर्थ गया और आप लोग जलने से बचगये। आप लोग बढ़ती हुई आग की भाँति बढ़ते रहिये। अब आज्ञा दीजिये कि हम लोग अपने डेरे पर चले जाँय, जिससे कोई राजा आप लोगों का यहाँ रहना न जानने पावे। इतना कह कर कृष्ण जी बलदेवजी के साथ चले गये।

भीम और अर्जुन द्रौपदी को साथ लिये हुए जब कुम्हार के घर जा रहे थे तब उन लोगों को जानने के लिये छिप कर धृष्टद्युम्न उनके पीछे पीछे चले और पास ही एक स्थान में छिप गये। वहाँ से उनलोगों की सब बात सुन कर पिता से कहने के लिये लौट आये।

राजा द्रुपद इस सोच में बैठे हुए थे कि द्रौपदी न जाने किस अज्ञात कुल शील के हाथ में पड़ी। धृष्टद्युम्न के आते ही उन्होंने उनसे पूछा—कहो पुत्र! कृष्णा को कौन ले गया? वह कहाँ गई? मन मोहनेवाली माला कहीं मरघट में तो नहीं जा गिरी? पिता की बात सुनकर धृष्टद्युम्न ने कहा—

हे पिता! आप चिन्ता न करें। मैंने छिप कर उनकी बातचीत से जान लिया कि वे क्षत्रिय हैं। कुछ दिनों से यह ख़बर चारों ओर फैल रही है कि पाण्डव लोग लाक्षागृह में जले नहीं बच गये और गुप्तरूप से घूम रहे हैं। द्रौपदी को ले जानेवाले वही हैं, इसमें अब सन्देह नहीं है। अर्जुन को छोड़कर कर्ण का सामना करनेवाला दूसरा कौन है? शल्य को नीचा दिखाने में भीम को छोड़ कर और कोई समर्थ हो सकता है? बड़े बड़े राजाओं का मानमर्दन करने में पाण्डव ही समर्थ हैं। उन लोगों की बातें सुनकर मैं इस निश्चय पर पहुँचा हूँ।

राजा द्रुपद के मन का सारा सन्देह यह सुन कर जाता रहा। उन्होंने पुरोहित को बुला कर उनलोगों का परिचय पाने के लिये भेजा। पुरोहित ने जाकर पहले उनलोगों की खूब प्रशंसा की, तब बुद्धिमानी के साथ कहने लगा—

महाराज पाण्डु द्रुपद के ऐसे प्यारे मित्र थे कि उन दोनों में कुछ भी अन्तर न था, राजा द्रुपद की यह इच्छा थी कि उनकी लड़की पाण्डु की पतोहू हो। वे सदा यह चाहते थे कि अर्जुन के साथ द्रौपदी का व्याह हो।

पुरोहित की बातें सुनकर युधिष्ठिर ने भीम को आज्ञा दी कि इनकी उचित पूजा करो। भाई की आज्ञा से भीम ने पुरोहित का यथोचित सत्कार किया।

तब युधिष्ठिर ने पुरोहित से कहा—हे ब्राह्मण देव! राजा द्रुपद को कोई चिन्ता न करनी चाहिये। उनकी प्रतिज्ञा ही तो पूरी हुई है।

यह बातें हो ही रही थीं कि पाञ्चालराज का भेजा हुआ दूत यह समाचार देने को आया कि वहाँ भोजन तैयार है। आपलोगों को ले चलने के लिये उत्तम घोड़ों को जोत कर यह सोने का रथ मैं ले आया हूँ। अब देरी न होनी चाहिये। महाराज द्रुपद ने द्रौपदी के विवाह के लिये आपलोगों को महल में बुलाया है।

यह सुन कर उन्होंने पहले पुरोहित को विदा किया फिर एक रथ पर माता कुन्ती और द्रौपदी को बैठाया और दूसरे रथ पर स्वयं बैठ कर राजमहल की ओर चले।

पुरोहित ने पहलेही से जाकर पाण्डवों का परिचय दे दिया था, इसलिये राजा द्रुपद ने उनके आदर सत्कार का यथोचित प्रबन्ध कर रक्खा था। पाण्डवों को देने के लिये उन्होंने अच्छी अच्छी मालाएँ, ढाल, कवच, आसन, गौ, रस्सी, बीज, खेती की और और वस्तुएं, शिल्पविद्या के अनेकों यन्त्र, खिलौने, तलवार, धनुष, बाण, बन्दूक, तथा उत्तम उत्तम ओढ़ने बिछाने के वस्त्र, तरह तरह के बहुमूल्य गहने और भी कितनी ही वस्तुएँ एकत्रित कर रखवाया था। पाण्डवों को जब ये वस्तुएं भेंट की गईं तब उन लोगों ने युद्ध सामग्री के अतिरिक्त और कुछ न लिया। पाण्डवों को मृगचर्म धारण किये हुए देख सब लोग बहुत प्रसन्न हुए। कुन्ती द्रौपदी के साथ अतःपुर में गईं और

वहाँ उनका यथोचित सत्कार हुआ। पाण्डव लोग भी घर के भीतर गये और उनको बहुमूल्य आसन दिया गया। सुन्दर धोती और साड़ियाँ पहनकर दास दासियों ने तरह तरह के स्वादिष्ट भोजन परस कर उनको प्रसन्न किया। भोजन परान्त युधिष्ठिरने अपनी सारी ग्रहदशा कह सुनायी। पाञ्चाल लोगों ने धृतराष्ट्र के पुत्रों को धिक्कारा और पाण्डवों को उनका राज्य दिलाने के लिये सहायता देना स्वीकार किया। राजा द्रुपद ने द्रौपदी को लाकर युधिष्ठिर से कहा—आज शुभ मुहूर्त्त है, इससे आजही अर्जुन के साथ द्रौपदी का विवाह होना चाहिये।

युधिष्ठिर ने कहा—हे पाञ्चालराज! मैं अपने भाइयों में ज्येष्ठ हूँ, मेरा विवाह बिना हुए अर्जुन का विवाह कैसे हो सकता है?

द्रुपद ने कहा—हे वीर! तुम्हीं विधि-पूर्वक मेरी कन्या से विवाह करलो, अथवा जिसके साथ तुम चाहो कर सकते हो।

युधिष्ठिर ने कहा—हे राजा! द्रौपदी हम सब की रानी होगी; क्योंकि मेरी माता ने पहले ऐसी हीं आज्ञा दी है। अभी तक मेरा और भीमसेन का विवाह नहीं हुआ है, यद्यपि अर्जुन ने आपके रत्न रूपी कन्या को जीता है तो भी हम लोगों का यह नियम है कि हम जिस वस्तु को पाते हैं उसको इकट्ठे होकर भोगते हैं। हम उस नियम के तोड़ने का साहस नहीं कर सकते। आप अग्निको साक्षी कर हम सब के साथ उसका विवाह करें।

राजा द्रुपद ने कहा—हे कुरुकुमार! शास्त्र की विधि से एक पुरुष को बहुत स्त्रियाँ हो सकती हैं, किन्तु यह तो कभी नहीं सुना कि एक स्त्री को बहुत से पति हों। हे धर्मात्मा! तुम धर्मज्ञ होकर लोक और वेद के विरुद्ध क्यों अधर्म करना चाहते हो?

युधिष्ठिर ने कहा—महाराज! धर्म का पथ बड़ा ही सूक्ष्म है, उसको गति सब लोग नहीं जान सकते; किन्तु हम पूर्व के महात्माओं का पदानुसरण करेंगे। एक तो मेरी माता ने वैसी आज्ञा दी है, दूसरे मेरा मन भी यही करने की प्रेरणा करता है; क्योंकि मेरी वाणी कभी झूठ नहीं कहती और मेरा मन कभी अधर्म में नहीं फँसता। हे नरनाथ! इसलिये बिना कुछ विचार किये आप यही कीजिये।

द्रुपद ने कहा—हे कुन्तीपुत्र! तुम, कुन्ती और मेरे पुत्र धृष्टद्युम्न तीनों मिल कर विचारो, कि क्या करना चाहिये जो निश्चित होगा, वह कल मैं करूँगा।

तीनों मिल कर इस विषय पर बातचीत कर रहे थे कि इतने में महर्षि व्यास अपनी इच्छा से वहाँ आगये। पाण्डव लोग राजा द्रुपद तथा वहाँ के और लोगों ने उठ कर उन्हें प्रणाम किया और सोने के आसन पर बैठाया। व्यासजी की आज्ञा से सब लोग बैठ गये। थोड़ी देर बाद पाञ्चाल-राज ने द्रौपदी के विवाह के विषय में पूछा—

हे भगवन्! एक स्त्री कई पुरुषों की पत्नी हो तो वर्णसंकरता का दोष होता है कि नहीं? युधिष्ठिर का कहना है कि द्रौपदी पाँचों भाइयों की पत्नी हो।

व्यास ने कहा—लोकाचार और वेदविरुद्ध होने से यह धर्म नहीं है, किन्तु इस विषय में कौन क्या कहना चाहता है सो मैं सुना चाहता हूँ।

धृष्टद्युम्न ने कहा—हे ब्राह्मणदेव! कहिये तो सही, जेठा भाई सदाचारी हो तो वह कैसे छोटे भाई की स्त्री से मिल सकता है? धर्म बड़ा ही सूक्ष्म है, किसी प्रकार उसकी गति हमारी समझ में नहीं आती। इसलिये हम साहस के साथ कह नहीं सकते कि द्रौपदी पाँच मनुष्यों की स्त्री हो।

युधिष्ठिर ने कहा—मेरी बात कभी झूठी नहीं होती, मेरा मन कभी अधर्म की ओर नहीं दौड़ता, इस विषय में मेरा मन और वचन दोनों ही इसे धर्म समझते हैं। पुराणों में भी सुना है कि जटिला नाम की गौतम गोत्र की धर्म और तपस्या करनेवाली एक कन्या थी, सात ऋषियों ने उससे विवाह किया था। पूर्वकाल में तपस्या करनेवाले प्रचेता दस भाई थे, उन दसों का विवाह वर्क्षी नाम की एक मुनिकन्या से हुआ था। इसके अतिरिक्त कहा जाता है कि गुरु जो कहें वही धर्म है और माता सब गुरुओं से बढ़कर है। उसीने आज्ञा दी है कि तुम सब मिल कर भिक्षा से मिली हुई वस्तु की भाँति द्रौपदी को भोगो? हे द्विजराज! इसीसे यह काम मेरे विचार में बड़ा भारी धर्म है।

कुन्ती ने कहा—युधिष्ठिर ने जो कुछ कहा, सही है। हे ब्राह्मणदेव! मैं बहुत डर रही हूँ कि कहीं मेरी बात झूठ न हो। इसलिये ऐसा उपाय कीजिये कि मैं असत्य से बच जाऊँ।

व्यासजी ने कहा—हे कुन्ती! तुम्हारी बात बनी रहेगी, तुमने जो बात कहा है वही सनातन धर्म है। हे राजा पाञ्चाल! इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि जो युधिष्ठिर ने कहा है, वही धर्म है। इसके रहस्य को मैं तुमसे कहता हूँ सुनो। व्यासजी राजा द्रुपद को एकान्त में ले गये और कहने लगे—

हे राजन्! देश, काल और अवस्था के अनुसार धर्म में भेद हुआ करता है। जो बात आज धर्म है कल वही अधर्म हो जाती है। द्रौपदी का पाँचो पाण्डवों के साथ विवाह कैसे धर्म है, सुनिये—नैमिषारण्य के समीप गङ्गातट पर एक बड़ी ही सुन्दर ऋषिकन्या रहती थी। विवाह के योग्य होने पर अच्छा पति पाने के लिये उसने शिवजी की बड़ी तपस्या की। शिवजी प्रसन्न हुए और वरदान देना चाहा। तब वह कन्या बोली—

हे भगवन्! मुझे ऐसा पति दीजिये जो सर्वगुण सम्पन्न हो।

शिवजी ने कहा—हे पुत्री! तूने पाँच बार पति के लिये प्रार्थना की है। इसलिये अगले जन्म में तुझे पाँच पति मिलेंगे।

हे द्रुपद! वही ऋषिकन्या तुम्हारे यहाँ पैदा हुई है, द्रौपदी अपने ही कर्मों के फल से पाण्डवों की स्त्री होगी। इसलिये इस बात को अधर्म समझ कर तुम दुखी न हो।

व्यासजी की बातों से द्रुपद का सन्देह जाता रहा। उन्हों ने कहा—हे महात्मा! मैं इस बात को न जानता था इसलिये सन्देह किया था। अब आपकी बातों से मेरा सन्देह दूर हो गया, द्रौपदी का विवाह पाण्डवों से मैं अवश्य करूँगा।

अनन्तर सभा में आकर राजा द्रुपद ने सबके सामने कहा—पाण्डव लोग विधिपूर्वक द्रौपदी का विवाह करें हमारी कन्या उन्हीं के लिये उत्पन्न हुई है।

व्यासजी ने युधिष्ठिर से कहा—चन्द्रमा आज पुष्य नक्षत्र में जाँयगे, पहले तुम द्रौपदी से विवाह करो।

इसके बाद बहुमूल्य गहनों और वस्त्रों से सजाकर बहुत सी कन्याओं के साथ द्रौपदी लाई गई। मन्त्री, इष्ट, मित्र, पुरवासी और ब्राह्मण लोग झुण्ड के झुण्ड द्रौपदी का विवाह देखने आये। पुरोहित धौम्य ने पाण्डवों के अभिषेक और मङ्गल कर्मों को किया। फिर भाँति भाँति के मूल्यवान् गहने कपड़े से सजकर विवाह मण्डप में आये। धौम्यजी ने अग्निस्थापन कर वेद मन्त्र से पहले युधिष्ठिर के साथ द्रौपदी का विवाह किया। फिर क्रम क्रम से सब पाण्डवों के साथ विवाह संस्कार किया गया।

विवाह हो जाने पर राजा द्रुपद ने पाण्डवों को चार घोड़ेवाले सोने के एक सौ रथ, सजे हुए एक सौ हाथी, वस्त्राभूषण से सजी हुई एक सौ दासियाँ और बहुत धन सम्पत्ति दे कर सत्कार किया।

पाण्डव लोग लक्ष्मी के समान स्त्रीरत्न पाकर राजा पाञ्चाल के राजभवन में इन्द्र के समान आनन्द मनाने लगे।

राजा द्रुपद का सम्बन्ध हो जाने पर पाण्डव लोग निर्भय हो गये। द्रुपदराज को भी शत्रुओं से भय न रह गया।

कुछ दिन बाद राजाओं ने गुप्तचरों द्वारा जान लिया कि द्रौपदी ने पाण्डवों को पति बनाया है। यह खबर हस्तिनापुर में भी पहुँच गई।

विदुर ने यह सुन कर कि पाण्डवों ने द्रौपदी को पाया है और दुर्योधन आदि घमण्ड के टूटने पर लौट आये तथा बहुत लज्जित हुए हैं, उन्होंने धृतराष्ट्र से कहा—हमारे सौभाग्य से द्रौपदी के स्वयम्बर में कौरव विजयी हुए हैं।

राजा धृतराष्ट्र विदुर की बात सुन कर चौंके और उन्हों ने समझा कि दुर्योधन ने ही द्रौपदी को पाया है। धृतराष्ट्र ने प्रसन्न होकर कहा बड़े सौभाग्य की बात है, हे विदुरजी! इसी घड़ी दुर्योधन से कहिये कि मेरी पतोहू द्रौपदी को लेकर आवें।

फिर विदुर ने उन्हें समझा कर कहा—हे महाराज! पाण्डव लोग कुशल से हैं, उन्हीं के साथ द्रौपदी का विवाह हुआ है। द्रौपदी ने उन्हीं को बरमाला पहनाई। वे राजा द्रुपद के यहाँ सुख से निवास कर रहे हैं।

धृतराष्ट्र ने कहा—हे विदुरजी! यह भी अच्छा ही हुआ। युधिष्ठिर आदि जैसे पाण्डु के प्यारे थे, उससे भी अधिक हमारे प्यारे हैं। द्रुपद के समान उनके सहायक मिल जाने से मेरी प्रसन्नता और भी बढ़ गई है।

इस बात को सुन कर कर विदुर ने कहा—महाराज! सौ वर्षों तक सदैव आपकी ऐसी ही बुद्धि बनी रहे। यह कह कर विदुरजी चले गये।

इसके बाद कर्ण और दुर्योधन ने आकर कहा—हम विदुर के सामने आपको कोई दोष दिखा नहीं सकते थे, अब विदुर के चले जाने पर एकान्त पाकर आप से कुछ कहते हैं, सुनिये।

हे पिता! आप क्या शत्रुओं की वृद्धि से अपनी वृद्धि समझते हैं? हे नरनाथ! क्या आप विदुर से विरोधियों को सराह रहे थे? जहां जैसा काम करना चाहिये आप उसका उलटा करते हैं। हे पिता! अब सदैव यह चेष्टा करनी चाहिये कि उन लोगों का बल घटे। जैसा समय आ पड़ा है उसमें यही युक्ति करनी चाहिये, कि वे हमको, हमारे पुत्रों को और मित्रों तथा सेनाओं को न ग्रस सकें।

धृतराष्ट्र ने कहा—तुम लोग जो चाहते हो वही मैं भी करना चाहता हूँ, विदुर के सामने अपने मन की बात कहना नहीं चाहता था; इससे पाण्डवों की प्रशंसा कर रहा था। हे दुर्योधन! हे कर्ण! तुमलोगों ने भी जो विचारा हो उसे कहो।

दुर्योधन ने कहा—मेरा विचार है कि विश्वासी और सुयोग्य ब्राह्मण लोग छिप कर जावें और कुन्ती तथा माद्री के लड़कों में द्रौपद के लिये विद्रोह उत्पन्न करदें; अथवा द्रुपद को खूब धन सम्पत्ति देकर अपने वश में कर लिया जाय, जिससे वे पाण्डवों के शत्रु हो जाँय; अथवा कृष्णा को फुसलाकर उसका पतिप्रेम मिटा दिया जाय, क्योंकि उसके कई पति होनेसे ऐसा करना कठिन नहीं है; अथवा चतुर लोगों को भेज कर भीम मरवा डाला जाय, क्योंकि वही अधिक बलवान है। उसके न रहने से पाण्डव कुछ न कर सकेंगे; अथवा यहाँ बुलाकर वशमें कर लिये जाँय, तब नीतिशास्त्र से उन्हें दण्ड दिया जाय। इन सब उपायों में जो उचित जान पड़े वह कीजिये।

कर्ण ने कहा—हे दुर्योधन! तुमने जो सोचा है मुझे वह ठीक नहीं जान पड़ता। पहले तुमने उनके मारने के कई उपाय किये; किन्तु एक में भी सफलता न मिली। पाँचो भाइयों की प्रीति द्रौपदी में एक सी है, इससे उनमें बिगाड़ हो नहीं सकता। पाञ्चालराज बड़े धर्मात्मा हैं वे धन के लोभ से वश में नहीं किये जा सकते और न उनका पाण्डवों से वैमनस्य ही हो सकता है। भीम का मारा जाना सहज काम नहीं है। हे महाराज! मेरा तो यह कहना है कि झटपट उन पर चढ़ाई कर दी जाय और उन्हें सहायता मिलने के पहलेही उनका नाश कर दिया जाय। वीरता से ही शत्रु पर विजय होती है और सब उपाय व्यर्थ हैं।

धृतराष्ट्र ने कर्ण की बात सुनकर उसको सराहा और कहा—हे सूतपुत्र। तुम बड़े बुद्धिमान और अस्त्रों के जाननेवाले हो। वीरता की बात तुम्हारे योग्य ही हुई है; किन्तु ऐसा न कर भीष्म, द्रोण, विदुर, तुम दोनों जने मिल कर ऐसी युक्ति करो कि हमारा भला हो। अनन्तर धृतराष्ट्र ने भीष्म आदि को बुलवाया और उनसे सलाह पूछी।

भीष्मने कहा—हे धृतराष्ट्र! पाण्डवों से लड़ने की इच्छा मुझे कभी नहीं होती; क्योंकि मेरे लिये तुम जैसे हो, पाण्डु भी वैसे ही थे। कुन्ती और गान्धारी के पुत्रों पर मेरा एकसा स्नेह है। हे महाराज! उन वीरों से सन्धि कर उन्हें आधा राज्य दे दो। इसी में दोनों का कल्याण है। हे पुत्र दुर्योधन! तुम जैसे इसे अपने पितरों का राज्य विचारते हो, पाण्डव भी वैसे ही अपने पितरों का राज्य मानते हैं। यदि तुम यह सोचते हो कि धर्म से राज्य पानेवाला मैं हूँ तो पाण्डव पहले ही से इसके अधिकारी हैं। इसलिये मेरी सम्मति यह है कि प्रसन्न होकर उनको आधा राज्य दे दो। यदि ऐसा न करोगे तो तुम्हारी बड़ी निन्दा होगी और निन्दित होकर जीने की अपेक्षा मृत्यु अच्छी है।

द्रोण ने कहा—हे राजा! हमने सुना है कि मन्त्री लोग जब परामर्श देने लगें तब उन्हें अर्थ, धर्म, यशवाली बात निःशंक होकर कहनी चाहिये। हे नरनाथ! महात्मा भीष्म की जो सम्मति है वही मेरी भी है। पाण्डवों को राज्य का भाग दे देना चाहिये, इससे धर्म की रक्षा होगी, मधुरभाषी मनुष्यों को आज्ञा दीजिये कि वे पाण्डवों के लिये बहुमूल्य रत्नों को लेकर जाँय, द्रुपद से सम्बन्ध होने की प्रशंसा कर पाण्डवों के आने की बात चलावें। जब राजा द्रुपद उनको आने देने के लिये सहमत हो जाँय तब आपके पुत्र स्वागत कर ले आवें। इसी में दोनों का कल्याण है और यही मेरी भी सम्मति है।

भीष्म और द्रोण की बात सुन कर कर्ण ने क्रोध से कहा—भीष्म और द्रोण आपके सब कामों को जानते हैं और आप के दिये हुए धन तथा मान से बढ़े हुए हैं, तिसपर आपके हित का परामर्श न दें तो इससे बढ़कर आश्चर्य क्या हो सकता है? हे महाराज! जो मनुष्य मनमें मित्रों से शत्रुता रखता और शत्रुओं के हित का परामर्श देता है उस से भलाई की आशा करना व्यर्थ। है निर्धन मित्र का विश्वास न करना चाहिये, क्योंकि वह धन का मित्र है परामर्श दाताओं की बात समझ कर तब कुछ कीजियेगा।

द्रोण ने कहा—तुम्हारे जी में दोष भरा है, इसी से ऐसा कह रहे हो। पाण्डवों से तुमको डाह है, इसीसे तुम उनका दोष दिखाया करते हो। मैंने कुरुकुल की वृद्धि और भलाई की बात कही है, तुम्हारे मन में न जँचे तो तुम वही करो जिससे भला हो।

विदुर ने कहा—हे महाराज! आपके स्वजन लोग निश्चय ही अच्छी बात कह रहे हैं; किन्तु आप उस पर विचार ही न करें तो वह व्यर्थ है। भीष्म और द्रोण ने जो बातें कही हैं, वह

सब आपके हित की हैं, किन्तु राधा के पुत्र कर्ण उन बातों को हितकारी नहीं समझते, मैं सोचकर भी यह नहीं समझता कि भीष्म और द्रोण से बढ़ कर आपका हितकारी कौन है? इसे आपही विचार कर देखिये। पाण्डवों के रुष्ट होने पर उन्हें देवता लोग भी नहीं जीत सकते! और जिन पुरुषों में धीरज दया, क्षमा, सत्य और पराक्रम—ये सब विराज रहे हैं उन पाण्डवों को कौन जीतने में समर्थ है। विशेष करके राजा द्रुपद जिनके ससुर हैं, धृष्टद्युम्न आदि जिनके साले हैं, बलदेवजी और सात्यकि जिनकी ओर हैं और कृष्ण जिनके मन्त्री हैं उन्हें कौन जीत सकता है, इससे पुरोचन से की हुई अपकीर्त्ति की कालिख जो आपको लग चुकी है उसे इस समय पाण्डवों पर दया दिखाकर धो डालिये। दुर्योधन, कर्ण शकुनि धर्म नहीं मानते, उनकी बात सुनने योग्य नहीं।

धृतराष्ट्र ने कहा—भीष्मपितामह, आचार्य द्रोण और तुमने जो कहा है, वह बहुत ठीक है। कुन्तीकुमार जैसे पाण्डु के पुत्र हैं वैसे ही मेरे भी हैं। हे बिदुर तुम जाओ और माता के साथ पाण्डवों और देवी द्रौपदी को आदर के साथ ले आओ।

धृतराष्ट्र की आज्ञा से विदुरजी भाँति भाँति के रत्न और धन सम्पत्ति लेकर चले और द्रुपद के यहाँ पहुँचे। राजा द्रुपद और पाण्डव लोग बड़े आदर से मिले विदुरजी ने सबसे आलिङ्गन किया और कुशल प्रश्न पूँछा। इसके बाद धृतराष्ट्र के दिये हुए धन,रत्न को सब यथायोग्य दिया। तब विदुरजी ने द्रुपद से कहा—

हे महाराज! राजा धृतराष्ट्र आपके सम्बन्ध से बहुत प्रसन्न हुए हैं और उन्हों ने बार बार आपका कुशल पूछा है। शान्तनुकुमार भीष्म तथा आचार्य द्रोण ने आपकी मङ्गलकामना की है। कुरुकुल आपके सम्बन्ध से अपने को धन्य मान रहा है। सब लोग वहाँ पाण्डवों को देखने के लिये उत्सुक हैं, इसलिये मैं चाहता हूँ कि आप द्रौपदी के साथ पाण्डवों को वहाँ जाने की आज्ञा दीजिये। जब आप पाण्डवों को वहाँ जाने की आज्ञा देंगे तब मैं धृतराष्ट्र के पास जाकर आपकी सेवा में दूत भेजवाऊँगा और वे पाण्डव, कुन्ती तथा द्रौपदी को साथ लेकर जाँयगे।

पाण्डवों की राज्यप्राप्ति

द्रुपद ने कहा—हे बुद्धिमान् विदुर! आपने जा इस समय कहा वह ठीक है। इस विवाह सम्बन्ध के होने से मैं भी बड़ा प्रसन्न हुआ हूँ, अब इन महात्माओं का घर जाना ही सब प्रकार से ठीक है पर आप और मैं इस बात को नहीं कह सकता। यदि पाण्डव लोग स्वयं जाना चाहें और उन के परमहितैषी बलदेव और श्रीकृष्णजी जाने की अनुमति दें तो वे जा सकते हैं।

युधिष्ठिर ने कहा—हे महाराज इस समय मैं भाइयों के साथ आपके वश में हूँ। आप प्रसन्न होकर जो कुछ कहेंगे, उसेही हम मान लेंगे।

श्रीकृष्णजीने जाने की अनुमति दी और द्रौपदी तथा माता के साथ पाण्डवों ने हस्तिनापुर को प्रस्थान किया।

राजा धृतराष्ट्र ने उनके आने की खबर सुन कर स्वागत के लिये विकर्ण, द्रोण, कृप आदि महापुरुषों को भेजा। उनसे घिर कर शोभा पाते हुए वीर पाण्डव लोगों ने धीरे धीरे हस्तिनापुर में प्रवेश किया। उनको देखकर नगरवासी बहुत प्रसन्न हुए उनका शोक और दुःख मिट गया। पुरवासी प्रसन्न मन हो परस्पर कहने लगे—

स्वजनों की भाँति हमारी रक्षा करनेवाले पाण्डव आज फिर आ रहे हैं, इससे बढ़ कर आनन्द की बात और क्या हो सकती है ? हमने यदि दान और हवन किया हो, अथवा यदि हममें तपस्या का बल हो तो उसके फलसे पाण्डव लोग इस नगर में सौ वर्ष तक विराजें।

पण्डवों ने धृतराष्ट्र महात्मा भीष्म और दूसरे गुरुजनों के पैर छुये। नगर के लोगों से भी कुशल पूछकर धृतराष्ट्र की आज्ञा से वे राजभवन में जाकर रहने लगे।

पाण्डव लोग जब कुछ काल तक आराम कर चुके तब राजा धृतराष्ट्र और महात्मा भीष्म ने उनको बुला भेजा। उनके आने पर धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर से कहा—

हे कुन्तीपुत्र ! मैं जो कहूँ उसे तुम भाइयों के साथ सुनो, मैं आधा राज्य तुम लोगों को देता हूँ इसे लेकर तुम खाण्डवप्रस्थ में अपनी राजधानी बनाओ और सुखसे वहाँ राज्य करो। ऐसा करने से दुर्योधन आदि से फिर कोई झगड़ा न रह जायगा। तुम लोग अपनी रक्षा अपने बाहुबल से करने में समर्थ ही हो।

पाण्डवों ने राजा धृतराष्ट्र की बात मान कर और राज्य से आधे भाग को पाकर उनको प्रणाम किया और खाण्डवप्रस्थ की ओर चले। वहाँ पहुँच कर पाण्डवों ने व्यासजी से शान्ति कर्मों को करा कर एक बहुत उत्तम नगर बसाया। नगर के चारों ओर खाईं खुदवा दी गई। ऊँचे ऊँचे सफ़ेद महलों से नगर सुहाने लगा। नगर में चारों ओर खूब चौड़ी सड़कें बनाई गईं। असंख्य मनोहर महलों से उसकी शोभा इन्द्रपुरी के समान होगयी। इस कारण उस नगर का नाम इन्द्रप्रस्थ रक्खा गया। उस नगर के ऐश्वर्य को देख कर चारों ओर से विद्वान् ब्राह्मण, वनियें और करीगर लोग आकर बसने लगे। नगर में चारों ओर स्थान स्थान पर बगीचे बनाये गये। उनमें आम कदम्ब अशोक, चम्पा, पुन्नाग, बकुल आदि के वृक्ष तथा भाँति भाँति के पुष्प और लताकुञ्जों से मनोहारिणी शोभा बढ़ाई गई। नगर को सर्वश्रेष्ठ बनाने में कोई कसर बाकी नहीं रहगई।

एक दिन पाण्डव लोग राजसभा में बैठे हुए थे कि इतने में देवर्षि नारद अपनी इच्छा से वहाँ आ पहुँचे। राजा युधिष्ठिर ने उनको आते देख बैठने के लिये अपना आसन छोड़ दिया। ऋषि के बैठ जाने पर राजा ने स्वयं उन्हें अर्घ्य दिया और राज काज की सारी बातें कह सुनाईं। द्रौपदी ने भी ऋषि के आने का समाचार सुना और शुद्ध होकर पवित्र वस्त्र पहन राजसभा में आकर मुनि के चरणों में प्रणाम किया। महर्षि ने द्रौपदी को अशीर्वाद देकर जाने को कहा द्रौपदी के चले जाने पर देवर्षि एकान्त में पाण्डवों से कहने लगे—

हे वीर पाण्डव ! अकेली द्रौपदी तुम पाँचों की धर्मपत्नी हुई है। इस दशामें तुम भाइयों में झगड़ा खड़ा हो सकता है। इसलिये ऐसा नियम करलो कि ऐसा अवसर ही न आवे। पूर्व काल में सुन्द उपसुन्द नामक दो भाई थे। वे एकही रज्य में राजा थे। उन दोनों में इतना प्रेम बढ़ गया था कि एक साथ खाते और एक ही विस्तर पर सोते थे, यहाँ तक कि विहार करते समय भी एक साथ ही रहते थे। अन्त में तिलोत्तमा नामक एक अप्सरा पर वे आसक्त होगये। इसमें उनमें इतना विवाद बढ़ा कि एक ने दूसरे को मार डाला।

इसलिये ऐसे उपाय से रहो कि तुम्हारे भाइयों में फूट न पैदा हो और द्रौपदी के लिये कोई विवाद न खड़ा हो।

नारद की इस बात को सुन कर पाण्डवों ने एक दूसरे की सम्पति से देवर्षि के सामने ही यह नियम कर लिया कि हममें से कोई भाई जब द्रौपदी के पास रहेगा और यदि दूसरा कोई भाई देख

लेगा तो उसे बारह वर्ष तक ब्रह्मचारी बन कर बनमें रहना पड़ेगा। इस नियम को सुनकर नारदजी बहुत प्रसन्न हुए और अपने स्थान को चले गये।

नियम से रह कर पाण्डव लोग उत्तम रीति से प्रजा का शासन करने लगे। उन्हों ने बहुत से राजाओं को जीत कर अपने बश में कर लिया। कुछ दिन बीतने पर कुछ चोरों ने एक ब्राह्मण की गायें चुरालीं। ब्राह्मण क्रोध से जल कर खाण्डवप्रस्थ में आये और दुःख के मारे चिल्लाकर पाण्डवों को पुकारते हुए कहने लगे—

हे पाण्डवो! आज तुम्हारे राज्य में पापी नीच लुटेरों ने मेरी गौओं को चुरालिया है, शीघ्र मेरी रक्षा करो। जो राजा प्रजा की रक्षा न कर उनसे छठाँ भाग उगाहता है पण्डित लोग उसे सब से बढ़ कर पापी समझते हैं।

अर्जुन ने ब्राह्मण के बिलाप को सुन कर उसे ढारस दिया और कहा डरोमत डरने की कोई बात नहीं। किन्तु जिस घर में अस्त्र शस्त्र रक्खे हुए थे, उसमें युधिष्ठिर द्रौपदी के साथ विराज रहे थे। इस कारण नियम-भङ्ग कर वहाँ जाने में अर्जुन बहुत चिन्तित हुए। एक ओर ब्राह्मण का दुःख और राजधर्म, दूसरी ओर नियम-भङ्ग और बारह वर्ष वनवास। बहुत सोच विचार के बाद धर्म को सबसे बढ़ कर समझ उन्हों ने नियम-भङ्ग कर बनवास का दुःख सह लेना ही उचित जाना।

ऐसा निश्चय कर वे अस्त्रागार में गये और युधिष्ठिर से बातें कर उनकी आज्ञा से धनुष को ले प्रसन्न मन से बाहर निकले। ब्राह्मण की सहायता के लिये चोरों का पीछा कर उन्हें मार कर ब्राह्मण की गायें लौटा नगर में आये। इस काम के लिये सबने अर्जुन की प्रशंसा की।

कुछ देर बाद अर्जुन ने युधिष्ठिर से कहा—हे प्रभु! मैंने नियम-भङ्ग किया है; इसलिये मुझे व्रतपालन करने की आज्ञा दीजिये।

अर्जुन की इस बात को सुन कर युधिष्ठिर बहुत दुखी हुए और उन्होंने कहा—हे बीर! द्रौपदी के साथ रहते समय तुमने वहाँ जाकर नियम-भङ्ग किया है, पर उस विषय में मुझे कुछ भी आपत्ति नहीं है। फिर तुमने ब्राह्मण की सहायता के लिये मेरी आज्ञा से वैसा किया है, और सुनो यदि स्त्री के साथ छोटा भाई घरमें हो और बड़ा भाई वहाँ जाय तो अवश्य अधर्म है, पर बड़ा भाई स्त्री के साथ घर में हो और छोटा भाई जाय तो कोई अनुचित नहीं है। इसलिये न तुम्हारा धर्म बिगड़ा है न मेरा निरादर हुआ है तुम हमारी बात मानो, बनमें मत जाओ।

अर्जुन ने कहा—हे प्रभो! मैंने आप से सुना है कि छल से धर्म करना ठीक नहीं है, इस लिये मैं सत्य से हट नहीं सकता। आप स्नेह के वश होकर मुझे न रोकें! अर्जुन ने राजा युधिष्ठिर की आज्ञा ले कर बारह वर्ष वन में काटने के लिये प्रस्थान किया।

जब वीर अर्जुन वन को चले तब उनके साथ बहुतेरे महात्मा और वेदों के जाननेवाले ब्राह्मण भी गये। इन लोगों के साथ जाते हुए अर्जुन बहुतेरे तालाबों, नदियों समुद्रों और पुण्य तीर्थों को देखते हुए गङ्गाजी के तट पर पहुँचे और वहाँ रहना निश्चित किया। वहाँ ब्राह्मणों और महात्माओं के अग्निहोत्र करने से बड़ी शोभा हुई। गङ्गाजी में स्नान कर फूल मालाएँ धारण किये हुए वेद मन्त्र का पाठ करनेवाले ब्राह्मणों से गङ्गा तट अत्यन्त मनोहर मालूम होता था। एक दिन अर्जुन नहाने के लिये आश्रम के पास गङ्गाजी के जल में उतरे और नहाकर पितरों का तर्पण कर अग्निहोत्र करने के लिये जल से निकलना चाहते थे कि इतने में उलूपी नाम की नागराज की कन्या उन पर मोहित हो उन्हें पकड़ जल के भीतर ले चली। वहाँ पहुँचने पर नागराज के भवन

में अर्जुन ने अग्नि देखा और मन को एकाग्र कर हवन किया। अग्निहोत्र करके अर्जुन ने हँसते हुए उलूपी से पूछा—

हे सुन्दरी! तुमने यह क्या साहस का काम किया है। हे सौभाग्यवती! इस देश का क्या नाम है? तुम कौन हो? मुझे यहाँ क्यों ले आई हो?

उलूपी ने कहा—हे कुरुकुमार! ऐरावत के वंश में जन्मे हुए कौरव्य नामक एक सर्पराज हैं। मैं उन्हीं की लड़की उलूपी हूँ। मैं आपके सौन्दर्य पर मोहित होकर आपसे विवाह करना चाहती हूँ। मेरा विवाह नहीं हुआ है, न मैंने अभी तक किसीसे प्रेम किया है। मेरी अभिलाषा पूरी कर आप मेरे आनन्द को बढ़ावें।

अर्जुन ने कहा—हे शोभने! मेरी भी इच्छा तुमसे विवाह करने की है, पर इस समय धर्म-राज की आज्ञा से मैं ब्रह्मचर्यव्रत का पालन कर रहा हूँ। इस कारण मैं विवश हूँ।

उलूपी ने कहा—हे पाण्डव! मैं जानती हूँ कि क्यों आप पृथ्वी में घूम रहे हैं, आपने अपने ही बनाये हुए नियम के कारण यह व्रत धारण किया है, सो मेरे विवाह से धर्म-भङ्ग न होगा। यदि मेरे साथ विवाह करने से आपके धर्म में कुछ हानि भी होगी तो वह हानि उस आनन्द के पुण्य से खण्डित हो जायगी, जो आपसे मुझे मिलेगा। सहवास चाहनेवाली स्त्री का मनोरथ पूरा करना शास्त्रसम्मत है। यदि आप ऐसा न करेंगे तो मैं प्राण दे दूँगी।

उलूपी की युक्तिपूर्ण बात सुनकर अर्जुन ने उसकी चाह पूरी की। उसके साथ विवाह कर लिया। वह रात कौरव्य राजा के घर में बिताकर सबेरा होने पर उलूपी के साथ अर्जुन अपने स्थान पर लौट आये। कुछ दिन बाद सती उलूपी अर्जुन को यह वरदान देकर अपने घर को लौट गई कि जल के भीतर आपको कोई जलचर जीत न सकेगा।

गङ्गा के तट पर कुछ दिन निवास करने के बाद अर्जुन हिमालय की तराई में घूमते हुए भागलपुर, वङ्गाल, कलिङ्ग देशों (गोदावरी और वैतरणी नदी के बीच का प्रदेश) के तीर्थों का दर्शन करते हुए कलिङ्ग देश को पार करके मणिपुर के राजा चित्रवाहन के यहाँ गये। उनके चित्राङ्गदा नाम की एक परम सुन्दरी कन्या थी। एक दिन वह सुन्दरी अपनी इच्छा से उस नगर में घूम रही थी। उसको देखकर अर्जुन को विवाह की इच्छा हुई। राजा के पास जाकर उन्होंने कहा—

हे महाराज! मैं क्षत्रिय सन्तान हूँ, मेरा अर्जुन नाम है, मेरी इच्छा आपकी कन्या से विवाह करने की है। यह सुनकर राजा ने पूछा—तुम किसके पुत्र हो? अर्जुन ने कहा—मैं कुन्ती का पुत्र पाण्डव हूँ।

तब राजा ने कहा—हे पाण्डव! इस वंश में प्रभञ्जन नामक एक नरेश ने जन्म लिया था। सन्तान न होने से उन्होंने बड़ी भारी तपस्या की। शिवजी ने उनकी तपस्या से प्रसन्न हो वरदान दिया कि तुम्हारे वंश में जितने पुरुष होंगे, सबके एकही एक सन्तान होगी। इसलिये हमारे कुलमें सदा से एकही सन्तान जन्म लेती है। मेरे पुरुषों में सबके तो पुत्र हुए थे; किन्तु मेरे यह एक कन्या जन्मी है। मैं इसेही पुत्र समझता हूँ। इसके गर्भ और तुम्हारे वीर्य से जो पुत्र होगा, वह मेरा वंशज समझा जायगा। यदि यह नियम तुम्हें स्वीकार हो तो विवाह करलो।

अर्जुन ने इस नियम को मानकर उसके साथ विवाह किया और तीन वर्ष वहीं रहे। चित्राङ्गदा से एक पुत्र हुआ। उसको गले लगाकर फिर वे अन्य देशों में घूमने के लिये चले।

इसबार अर्जुन दक्षिण समुद्र के तट पर ऋषियों से सुहावने पवित्र तीर्थों को गये। वहाँ से

घूमते हुए वे प्रभासतीर्थ (गुजरात) में आये। श्रीकृष्ण ने सुना कि उनके सखा अर्जुन आये हैं, वे उनसे मिलने के लिये पधारे और अर्जुन को गले लगा कर बड़े प्रेम से मिले। अर्जुन से वनवास की कथा सुनकर कृष्ण ने कहा—जो कुछ तुमने किया वह ठीक ही हुआ है। वहाँ से कृष्णजी अर्जुन को रैवतक पर्वत पर ले आये, उस पर पहले ही से आमोदप्रमोद का सामान किया गया था। उस परम मनोहर स्थान में दिन को नाच रङ्ग होता रात में दोनों एक साथ ही सुन्दर बिस्तर पर सो जाते। अर्जुन अपने देखे हुए देश देशान्तरों के वृत्तान्त को सुनाते। इस तरह बातें करके दोनों जने सुख से सो जाते और सवेरे मनोहर गान वाद्य के साथ जगते थे। कुछ दिन इसी प्रकार रैवतक पर्वत पर निवास कर दोनों मित्र सोने के रथ पर चढ़कर द्वारका को गये। वहाँ यादवों ने अर्जुन का खूब सत्कार किया। अर्जुन के सत्कार के लिये नगर खूब सजाया गया था। प्रसिद्ध वीर अर्जुन को देखने के लिये सड़कों पर असंख्य मनुष्य इकट्ठे हुए थे। स्त्रियाँ भी ऊँची ऊँची अटारियों पर से अर्जुन को देखने के लिये खड़ी थीं। अर्जुन ने सब से यथायोग्य मिलकर एक सुन्दर राजभवन में निवास किया।

कुछ दिन बाद रैवतक पर्वत पर वृष्णि, अन्धक वंशवालों का उत्सव होने लगा। पर्वत खूब सजाया गया। भाँति भाँति के बाजे बजते थे, नर्तक, नर्त्तकी नृत्य करते थे, गवैये गाते थे। राजकुमार लोग उत्तम उत्तम सवारियों में घूमते थे। कोई पैदल ही घूमकर मनोहर दृश्य देखते थे। मद्य पान से मतवाले होकर सब लोग स्त्रियों के साथ उत्सव मनाते थे। अर्जुन और कृष्ण एक साथ घूम रहे थे। अर्जुन ने घूमते हुए देखा कि वसुदेव की लड़की सुभद्रा वस्त्राभूषणों से सजी हुई सहेलियों के साथ घूम रही है। अर्जुन को देख कर कृष्णजी समझ गये कि इनका मन बहन की ओर आकर्षित हो गया है। उन्होंने हँसते हुए कहा—

अजी! वनमें घूमनेवाले के मन में भी क्या कामदेव डाँवाडोल मचा देता है? सुनो, अर्जुन! यह लड़की सारण की सगी बहन और मेरी भी बहन है, इसका नाम सुभद्रा है, यह मेरे पिता की प्यारी लड़की है। यदि इससे तुम्हारी इच्छा विवाह करने की हो तो मैं पिता से कहूँ।

अर्जुन ने कहा—ऐसा कौन मनुष्य है कि जिसे वसुदेव की लड़की, तुम्हारी बहन रूप सौन्दर्य से न मोह ले। इसके साथ सम्बन्ध करने की मुझे अवश्य इच्छा है, हे जनार्दन! इसके मिलने का कोई उचित उपाय बताओ।

कृष्ण ने कहा—हे कुन्ती पुत्र! क्षत्रियों में स्वयम्बर से विवाह होना ठीक है, किन्तु उसमें शङ्का उठ सकती है; क्योंकि स्त्रियों का स्वभाव ऐसा है कि उनका मन वीरता, पण्डिताई आदि से नहीं फँसता, वे ऊपरी सौन्दर्यवाले पुरुष के प्रेम में फँस जाती हैं। धर्म के जाननेवाले कहा करते हैं कि वीर क्षत्रियों के लिये कन्या को बल से हर लेना भी अच्छा है। इसलिये तुम मेरी बहन को हरलो; कौन जाने कि सुभद्रा क्या चाहती है।

अर्जुन ने कृष्ण से सलाह करके दूत के द्वारा युधिष्ठिर की आज्ञा मँगाली। इसके बाद उत्सव के समाप्त होने पर जब सुभद्रा रैवतक पर गई, तब अर्जुन कृष्ण की सम्मति से तलवार, कवच, ढाल, अंगुलित्र आदि धारण कर रथ पर चढ़कर आखेट के बहाने चले। सुभद्रा रैवतक की पूजाकर द्वारका की ओर लौटना ही चाहती थी कि इतने में अर्जुन ने दौड़ कर सुभद्रा को पकड़ रथ पर बैठा लिया और अपनी राजधानी की ओर चले।

यादवों ने सुभद्रा के हरे जाने का समाचार सुन बिगुल बजाकर सबको सूचना दी। भोज, वृष्णि, अन्धक वंश के बड़े बड़े वीर सभा में आ पहुँचे और मणिजटित सुवर्ण सिंहासन पर बैठ दूतों

से सब समाचार सुना। अर्जुन के इस व्यवहार से सब बड़े क्रोधित हुए। उन लोगों ने अर्जुन का पीछा करने के लिये रथ सजाने की आज्ञा दी। उस समय बलदेवजी ने कहा—

हे वीरो! कृष्ण से बिना कुछ पूछे क्यों उतावले हो रहे हो? उनकी बात सुनकर जो उचित जान पड़े, करना। इतना क्रोध करके गरजना व्यर्थ है।

यह सुनकर सब चुप होगये। बलदेवजी ने कृष्ण से कहा—हे कृष्ण! तुम क्यों नहीं कुछ कहते? तुम्हारे ही कारण हमलोगों ने अर्जुन का इतना सत्कार किया था। वह कुलाङ्गार इसके योग्य न था। उसने हमारा बड़ा अपमान किया है। क्या हम इसे चुपचाप सहलें? आज अकेले मैं इस पृथ्वी पर से कौरवों का नाम मिटा दूँगा।

अन्य यादव वीरों ने भी गरज कर इस बात का समर्थन किया। अनन्तर धर्म और अर्थ से भरी हुई बात कृष्णजी बोले—

अर्जुन ने जो काम किया है उससे हमारे कुल का अपमान नहीं हुआ है। उन्होंने हमारे मान को और भी बढ़ा दिया है। वे जानते हैं कि हम धन के लोभी नहीं हैं, इसलिये धन देकर विवाह करने का प्रयत्न नहीं किया और स्वयम्बर में भी शङ्का देख कर उन्होंने वह भी नहीं किया। इन सब कारणों से उन्होंने सुभद्रा का हरण ही उत्तम समझा। यह हमारे कुल के योग्य ही हुआ है। अर्जुन सामान्य पुरुष नहीं हैं। भरतकुल उन्हीं से शोभा पा रहा है। आप लोग किसी प्रकार की चिन्ता न करें। मेरी बुद्धि में यही आ रहा है कि आप सब शीघ्र जाकर प्रसन्न मन से अर्जुन को ढारस देकर लौटा लावें। यदि वे अपनी राजधानी में पहुँच जाँयगे तो हम लोगों की बड़ी अपकीर्त्ति होगी।

कृष्ण की बात सुन कर यादवों ने वैसा ही किया, अर्जुन ने वृष्णिवंशवालों से सत्कार पाकर द्वारकापुरी में लौट करके सुभद्रा से विवाह किया और वहाँ एक वर्ष तक रहे। फिर पुष्करतीर्थ में जाकर उन्होंने शेष दिन बिताये। बारह वर्ष पूरे होने पर सुभद्रा को लेकर अर्जुन खाण्डवप्रस्थ में आये। पहले राजा के पास गये, उन्हें प्रणाम कर ब्राह्मणों की पूजा की। फिर जल्दी से द्रौपदी के पास पहुँचे। द्रौपदी ने स्त्री स्वभाव के अनुसार बनावटी क्रोध दिखा कर कहा—

जहाँ सुभद्रा हो वहीं पधारिये, रस्सी से दृढ़ बँधी हुई वस्तु पर उससे भी दृढ़ किसी और बन्धन के देने से पहले का बन्धन ढीला हो जाता है। उसी तरह पहले की भाँति आपका प्रेम अब मेरे ऊपर नहीं है।

इस प्रकार द्रौपदी की मार्मिक बातें सुन कर अर्जुन ने उसे बहुत ढाढ़स दिया और क्षमा माँगी। उन्होंने सुभद्रा के पास जा झटपट उसे गोपी के कपड़े पहना कर रनिवास में भेजा दिया। गोपी के वेश में सुभद्रा और भी सुन्दरी मालूम होने लगी। सुभद्रा ने वहाँ जाकर कुन्ती के पैर छुये। कुन्ती ने प्रसन्न होकर सुभद्रा के मस्तक को सूँघ कर बड़े बड़े अशीष दिये। वहाँ से जाकर सुभद्रा ने द्रौपदी को प्रणाम किया और कहा—मैं आपकी दासी हूँ।

द्रौपदी ने उठ कर सुभद्रा को गले लगाया और आशीर्वाद दिया कि तुम्हारे पति का कोई शत्रु न रहे।

श्रीकृष्ण ने जब सुना कि अर्जुन सशकुल इन्द्रप्रस्थ पहुँच गये, तब वे बलदेवजी, अक्रूर, उद्धव, सात्यकि, प्रद्युम्न, कृतवर्मा आदि प्रधान पुरुषों के साथ दहेज लेकर खाण्डवप्रस्थ में आये। युधिष्ठिर ने जब कृष्ण का आगमन सुना तो अगवानी के लिये नकुल और सहदेव को भेजा। वे दोनों महात्मा वृष्णिवंशियों का स्वागत कर नगर में ले आये।

कृष्णजी के स्वागत के लिये नगर खूब सजाया गया, चारों ओर सुगन्धित चन्दन के जल का छिड़काव कराया गया, मकानों पर झण्डे और पताकाएँ फहरा रही थीं, सड़कों के किनारे और छतों पर झुण्ड के झुण्ड लोग कृष्ण के दर्शन के लिये खड़े थे । इस प्रकार बड़े आदर के साथ यादवों को लिये हुए कृष्णजी राजभवन में गये ।

युधिष्ठिर ने सबका यथोचित सत्कार कर कृष्ण को गले लगाया । सब लोगों के बैठ जाने पर कृष्णजी ने पाण्डवों को दहेज दिया ।

सुयोग्य सारथी के साथ सोने के चार घोड़ेवाले एक सहस्र रथ, दस सहस्र गायें, हज़ारों दासियाँ और बहुत सा धन रत्न दिया ।

कुछ दिन बाद बलदेवजी और यादवों के साथ द्वारका को लौट गये और कृष्णजी अर्जुन के साथ इन्द्रप्रस्थ में रह गये ।

यथासमय सुभद्रा के महातेजस्वी अभिमन्यु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । अभिमन्यु के उत्पन्न होने पर युधिष्ठिर ने दस सहस्र गौएँ और दस सहस्र अशर्फियाँ ब्राह्मणों को दान दिया । बालक का वेदविधि से संस्कार किया गया । अर्जुन ने उन्हें अस्त्रविद्या की शिक्षा दी ।

द्रौपदी के भी पाँच पतियों से पाँच पुत्र उत्पन्न हुए । युधिष्ठिर से प्रतिविन्ध्य, भीम से सुत सोम, अर्जुन से श्रुतकर्मा, नकुल से शतानीक, सहदेव से श्रुतसेन उत्पन्न हुए ।

उत्तम रीति से प्रजा का शासन करते हुए पाण्डवों का दिन बड़े सुख से बीतने लगा । एक दिन अर्जुन ने कृष्ण से कहा—

हे कृष्ण ! अब गर्मी का दिन आगया । यदि आप की इच्छा हो तो यमुना के तट पर चल कर रहा जाय। कृष्णजी को यह बहुत पसन्द हुआ और दोनों जने युधिष्ठिर की आज्ञा लेकर यमुना तट की ओर चले । वहाँ पहुँच कर बड़े आनन्द से विहार करने लगे । इतने में प्रातःकाल के सूर्य के समान कान्तिवाला एक वृद्ध ब्राह्मण वहाँ आया और कहने लगा—

मैं बहुत भोजन करनेवाला ब्राह्मण हूँ, आप लोगों से भीख माँगता हूँ कि मुझे भोजन देकर मेरा पेट भर दीजिये।

अर्जुन और कृष्णजी ने भोजन देना स्वीकार कर उस ब्राह्मण से कहा—आप किस प्रकार का भोजन पाने से प्रसन्न होंगे, हम उसका प्रबन्ध करें ।

ब्राह्मण ने कहा—मैं अन्न खाना नहीं चाहता । मैं अग्नि हूँ । जो भोजन मेरे योग्य हो वही दो । यह खाण्डव बन बड़ा भारी वन है, इस को जलाकर इसमें के जीवों को खाकर मैं तृप्त होना चाहता हूँ; किन्तु इन्द्र का मित्र तक्षक इसमें निवास करता है, उसके जल जाने के भय से इन्द्र जलवृष्टि कर मेरा मनोरथ सिद्ध नहीं होने देते । इसलिये आप लोगों से सहायता माँगता हूँ । खाण्डव वन के जलाने में सहायक होकर मुझे भोजन कराइये । अस्त्र लेकर न जीवों को भागने दीजिये न इन्द्र को जल बरसाने दीजिये ।

अर्जुन ने कहा—मैं आपकी इच्छा अवश्य पूरी करूँगा, पर मेरे पास ऐसा धनुष नहीं है जो मेरे हाथ के वेग को सह सके और न मेरे पास ऐसा रथ ही है कि जिस पर प्रयोजन के अनुसार सामान रक्खा जाय । कृष्ण के पास भी कोई ऐसा अस्त्र नहीं है ।

अग्निदेव ने अर्जुन की बात सुनकर वरुणदेव का स्मरण किया । उनके आने पर अग्नि ने कहा—हे वरुणदेव ! आपको राजा सोमने जो तरकस धनुष, और कपिध्वजवाला रथ दिया था उसे शीघ्र ला दीजिये । अर्जुन उससे बड़ा भारी काम करेंगे ।

वरुण ने अग्नि की बात मानकर सदा बाणों से भरे रहनेवाले तरकस के साथ गाण्डीव नामक प्रसिद्ध धनुष और तीव्रगामी घोड़ों से जुता हुआ कपिध्वज रथ लाकर अर्जुन को दिया।

अग्नि ने कृष्ण को सुदर्शन चक्र दिया। कृष्णजी को चक्र देकर उन्हों ने कहा—हे मधुसूदन! यह अस्त्र आप जिस पर चलावेंगे, वह चाहे देव, दानव, मनुष्य कोई हो बच न सकेगा। शत्रु को मार कर फिर यह आपके हाथ में लौट आवेगा।

अस्त्र शस्त्र धारण कर दोनों वीरों ने अग्नि से कहा—हे हुताशन! अब आप निःशङ्क होकर खाण्डव वन को जलायें।

उन लोगों की बात सुनकर अग्नि ने उस वन को जलाना आरम्भ किया। कृष्ण और अर्जुन दोनों ओर खड़े होकर जीवों को भागने से रोकने लगे। पशु, पक्षी कोई भी उन लोगों के कारण भाग न सका। सरोवरों के जल खौलने लगे। उनमें की मछलियाँ छटपटा कर मर गईं। जब अग्निज्वाला बढ़ कर आकाश चुम्बन करने लगी और देवता जलने लगे, तब इन्द्रने जलवृष्टि आरम्भ करदी। परन्तु अग्नि की भयङ्करता से जल ऊपर का ऊपर ही सूख गया। यह दशा देख कर इन्द्र बहुत क्रुद्ध हुए और सहस्रों बादलों को इकट्ठा कर मोटी धार से जल बरसाने लगे। खाण्डव बन पर धारा पड़ती देख अर्जुन ने उसके ऊपर बाणों का छत्र लगा दिया, इससे एक बूँद भी जल अग्नि तक न पहुँच सका। उस समय तक्षक वहाँ नहीं था वह कुरुक्षेत्र गया था। उसका पुत्र अश्वसेन वहाँ था। उसने आकाश के पथ से बचने के लिये बहुत प्रयत्न किया, पर अर्जुन के बाणों से निकल न सका। उसकी माता ने उसे बचाने का प्रयत्न किया, इसमें उसने अपनी ही जान गँवाई। इन्द्र ने यह देख कर अश्वसेन को बचाने के लिये पवन के थपेड़े से अर्जुन को मोह लिया जिससे अश्वसेन बच कर भाग गया।

अर्जुनने इन्द्रके इस छल से क्रुद्ध हो बाणों से आकाश को ढक दिया और इन्द्र से युद्ध आरम्भ किया

इन्द्र की आज्ञा से बड़े बड़े बादल गड़गड़ाते हुए घनघोर वर्षा करने लगे। बिजली चमकने लगी। ऐसा मालूम होने लगा कि अब प्रलय हुआ चाहता है। किन्तु उनके रोकने की शक्ति रखने वाले अर्जुन ने वायव्यास्त्र छोड़ा जिस से बादल छिन्नभिन्न होगये, आकाश फिर निर्मल हो गया। इन्द्र अर्जुन के पराक्रम को देख कर और उनका जीतना कठिन समझ कर लौट गये। अर्जुन और कृष्ण के अस्त्रों से कोई न बच सका। अग्निदेव प्रचण्डवेग से दानव, राक्षस, सर्प, पशु, पक्षी आदि को भस्म करने लगे। उनके आर्त्तनाद से चारों दिशाएँ गूँज उठीं।

अग्नि की ज्वाला से विकल होकर तक्षक का मित्र मय नामक दानव भागने लगा, कृष्ण ने उसको देख लिया और चक्र लेकर मारने दौड़े। प्राणों के भयसे मय कहने लगा—हे अर्जुन! शीघ्र आकर मेरी रक्षा कीजिये। मैं आपके शरण में हूँ। अर्जुन बड़े दयालु थे। उन्हों ने कहा—डरो मत। मैंने तुम्हें जीवन दान दिया। अर्जुन की बात रखने के लिये कृष्ण ने उसे छोड़ दिया। अग्नि ने भी उसे नहीं जलाया।

उस वन को जलाते समय अग्नि ने उसमें रहनेवाले अश्वसेन, मय और शार्ङ्गक नामक चार पक्षियों को नहीं जलाया। इनको छोड़ कर कोई भी नहीं बचा, सब जल कर खाक हो गये। वे चारों शार्ङ्गक नामक पक्षी मन्दपाल ऋषि की सन्तान थे।

अग्निदेव ने प्रचण्डरूप धारण कर खाण्डव बन को जलाया। कृष्ण और अर्जुन की सहायता से असंख्य जीवों का भक्षण कर वे सन्तुष्ट हुए और प्रसन्न हो अर्जुन के निकट आये। अनन्तर इन्द्र ने भी देवताओं के साथ आकाश से उतर कर कृष्ण और अर्जुन से कहा—जिस काम को देवता भी

सहसा नहीं कर सकते, आप दोनों महापुरुषों ने उसे कर दिखाया। मैं आप लोगों, पर बहुत प्रसन्न हूँ। वरदान माँगिये।

अर्जुन ने कहा—हे देवराज ! मुझे दिव्य अस्त्र दीजिये, इन्द्र ने अस्त्रों के देने का समय निश्चित कर कहा—हे पाण्डुपुत्र ! तपस्या से जब तुम भगवान् शङ्कर को प्रसन्न करोगे, तब तुम्हें सब दिव्य अस्त्र प्राप्त हो जाँयगे।

कृष्णजी ने इन्द्र से यही वरदान माँगा कि अर्जुन से मेरी सदा मित्रता बनी रहे। इन्द्र 'तथास्तु' कह कर देवताओं के साथ अपने लोक को चले गये।

अग्निदेव भी पन्द्रह दिन तक खाण्डव बन को जलाकर और असंख्य जीवों का भक्षण कर तृप्त हो चुके थे, उन्हों ने प्रसन्न होकर कृष्ण और अर्जुन को वरदान दिया कि आप दोनों पुरुषों में सर्व श्रेष्ठ हों, तीनो लोकों में आप लोगों की गति हो। अग्निदेव इस प्रकार आशीर्वाद देकर अन्तर्धान होगये।

कृष्णजी अर्जुन और मय दानव को साथ लेकर फिर यमुनाजी के तटपर लौट आये और वहाँ बैठ कर आनन्द से बातें करने लगे।

इति

सभापर्व

मयद्वारा सभानिर्माण तथा पाण्डवों का राजसूययज्ञ

मय दानव ने कृष्ण और अर्जुन के सामने हाथ जोड़ कर कहा—

हे अर्जुन ! आपने मारने के लिये उद्यत श्रीकृष्णजी तथा अग्नि से मेरी रक्षा की है। शरण देकर मुझे बचाया है, इस उपकार के बदले में मैं आपका कौनसा कार्य करूँ, आज्ञा दीजिये।

अर्जुन ने कहा—हे मय ! मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ। मुझे तुमसे कुछ भी चाहना नहीं है।

मय ने कहा—हे वीर ! आपको जैसा कहना चाहिये वैसाही कह रहे हैं। फिर भी; प्रेमसे मैं आपका कुछ हित करना चाहता हूँ। मैं दानवों का विश्वकर्मा हूँ। इसलिये आपका कुछ कार्य करने की अभिलाषा है।

अर्जुन ने कहा—तुम अपने को मुझसे बचाया हुआ समझ कर ऐसा कह रहे हो; किन्तु मुझे उसका बदला लेनेकी कुछ भी इच्छा नहीं है। यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो कृष्णजी जो कहें वह करो।

मय ने कृष्णजी से अपनी प्रार्थना सुनाई। उन्होंने कुछ देर सोच कर कहा—हे मय ! धर्मराज युधिष्ठिर के योग्य एक सभाभवन बनाओ, वह ऐसा सुन्दर बने कि संसार में उसकी बराबरी का स्थान न हो, और न फिर वैसा कोई बनाना चाहे तो बना सके।

मय ने कृष्ण की आज्ञा मान ली। तब कृष्णजी और अर्जुन मय को साथ लेकर युधिष्ठिर के पास गये। वहाँ खाण्डव बन के जलने की सारी कथा कह सुनाई। मय का अग्नि से बचना और उसके द्वारा सभा बनाये जाने का वृत्तान्त भी कहा। युधिष्ठिर ने प्रसन्न हो मय का बहुत सत्कार किया। धर्मराज की भी अनुमति मिल जाने पर मयदानव ने सभा बनाने के प्रबन्ध के लिये प्रस्थान किया।

उतर दिशामें कैलासपर्वत के समीप मैनाकपर्वत पर दैत्यों के राजा वृषपर्वा ने पूर्वकाल में बड़ा भारी यज्ञ किया था। वहाँ विन्दुसर के किनारे एक उत्तम सभामण्डप भी बनाया गया था। उस सभा का दिव्य आश्चर्यमय सामान वहाँ पड़ा हुआ था। मय वही सब सामान लाने के लिये वहाँ गया। वह वहाँ से मनमाना सामान लेकर खाण्डवप्रस्थ में आया और सभा बनाना आरम्भ कर दिया।

कृष्ण की आज्ञा से दस हज़ार हाथ ज़मीन नाप कर ठीक की गई। उस पर मय ने कुछ स्थान कृष्णजी की रुचि के अनुसार, कुछ देवताओं और कुछ दानवों तथा मनुष्यों की रुचि के अनुकूल बनाया। अनुपम मणियों से जड़ कर उसकी छत बनायी, चारों ओर सुवर्ण के खम्भे बनाये, जिन पर रङ्ग विरङ्गी मणियों से अनेकों प्रकार के फूल शोभा दे रहे थे। आँगन और दीवार पर मणियों के ऐसे झाड़दार वृक्ष बनाये कि जिनका शीघ्र पहिचान लेना कठिन था। सभा-भवन के मध्य में एक परम रमणीय सरोवर बनाया, जिसमें स्फटिकमणि की सीढ़ियाँ लगी हुई थीं। उसके कीचड़ रहित जलमें मोतियों के समान बूँद लहरा रहे थे। सरोवर के चारों ओर नीलमणि की वेदियाँ बनी हुई थीं। उनकी झलक जलमें पड़ कर परम सुहावनी मालूम हो रही थी। मण्डप के बाहर भी भाँति भाँति के कमलों से युक्त सरोवर बनाया। अनेक प्रकार के फूलों और वृक्षों से युक्त वाटिकायें बनाईं।

खाण्डवप्रस्थ में कुछ काल निवास कर कृष्णजी ने पिता के दर्शन के लिये द्वारका जाने की इच्छा प्रगट की। युधिष्ठिर की आज्ञा लेकर कुन्ती को प्रणाम कर और उनसे आशीर्वाद लेकर सुभद्रा के समीप गये। सुभद्रा को गृहस्थाश्रम का उपदेश देकर तथा उनसे माता और कुटुम्बियों के लिये सन्देश लेकर चले। उनके चलते समय मुनि धौम्य तथा और ब्राह्मणों ने स्वस्तिवाचन किया। सोने के रथ पर चढ़ कर कृष्णजी बिदा हुए। युधिष्ठिर और अर्जुन मारे प्रेम के उनके साथ बैठ कर पहुँचाने चले और पाण्डव लोग तथा पुरवासी लोग रथों पर चढ़ कर पीछे पीछे चले। कुछ दूर जाने पर कृष्णजी ने पाण्डवों से लौट जाने की प्रार्थना की। कृष्णजी ने युधिष्ठिर के चरणों में वन्दना की। उन्होंने उठा कर गले लगा लिया। फिर सब पाण्डवों और पुरवासियों से कृष्णजी मिले और सबको प्रेम से गले लगाया। सबसे मिलकर कृष्णजी ने प्रस्थान किया। पाण्डव लोग वहीं खड़े तब तक देखते रहे जब तक कृष्णजी का रथ आँख से ओझल नहीं हो गया। प्रेम से कृष्णजी के गुणों का कीर्तन करते हुए पाण्डव लोग अपने नगर में लौट आये।

इधर चौदह महीने में मय ने सभा का निर्माण पूरा किया। राजा युधिष्ठिर से उसमें प्रवेश करने की प्रार्थना की। युधिष्ठिर सभा के बन जाने का समाचार सुन बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने ब्राह्मणभोजन करा कर और बहुत सा अन्न वस्त्र दान देकर सभा में प्रवेश किया। वेदपाठी ब्राह्मणों ने मङ्गल पाठ किया। युधिष्ठिर ने वहाँ पहुँच कर विधिपूर्वक देवताओं की पूजा की और माङ्गलिक क्रियाओं को करके सभा के बीच उत्तम सिंहासन पर विराजे। इतने ही में महर्षियों के साथ देवर्षि नारदजी आगये। राजा ने उठ कर उनका सत्कार किया और आसन पर बिठाया। नारदजी ने अनेक कथाओं को कह कर युधिष्ठिर को राजधर्म का विविध प्रकार से उपदेश दिया। तब सभा के अनुपम सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुए नारदजी ने कहा—हे युधिष्ठिर! तुम्हारी इस सभा की मनोहरता बहुत ही अच्छी है, मैंने मनुष्यलोक में दूसरी ऐसी कोई सभा नहीं देखी। यह देवलोक की सभा के समान है। मैं तीनों लोकों में घूमा करता हूँ। मैंने राजाओं से सुशोभित यम की सभा, नाग तथा दैत्यों से शोभित वरुण देव की सभा, आनन्द के साथ विहार करनेवाले यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, अप्सराओं से युक्त कुबेर की सभा देखी है तथा महर्षि और देवगणों से परमरम्य ब्रह्मा की सभा भी देखी है। सौ योजन विस्तीर्ण परम ज्योतिर्मय इन्द्र की सभा जिसमें देवता बड़े बड़े तपस्वी निवास करते हैं और जहाँ महादानी सत्यस्वरूप राजा हरिश्चन्द्र निवास करते हैं, उसे देखी है।

युधिष्ठिर ने पूछा—हे देवर्षि! इन्द्र की सभा में आपने और बड़े बड़े राजाओं का नाम न लेकर केवल हरिश्चन्द्र ही का नाम क्यों लिया? मेरे पिता पाण्डु किस लोक में निवास करते हैं?

नारदजी ने कहा—हे राजा! सुनो, राजा हरिश्चन्द्र ने शस्त्रबल से सब राजाओं को जीतकर राजसूययज्ञ किया था, इससे इन्द्रलोक में पहुँचे। जो राजा राजसूययज्ञ करता है, वही इन्द्रलोक में जाने का और इन्द्र के पद का अधिकारी होता है। तुम्हारे पिता पाण्डु ने तुमसे कहने के लिये मुझसे कहा है कि मेरे पुत्र युधिष्ठिर राजसूययज्ञ करें, जिससे मुझे भी हरिश्चन्द्र के के समान पद मिले। तुम उस यज्ञ के करने के योग्य हो, इसलिये पिता के हित के लिये उसका आयोजन करो।

यह कह कर नारदजी ने द्वारकापुरी को प्रस्थान किया।

महर्षि का बचन सुन कर युधिष्ठिर के मन में राजसूययज्ञ करने की इच्छा प्रबल हो उठी। इसके लिये वे प्रजा का और भी उत्तम रीति से शासन करने लगे। अपने अधीन राजाओं के साथ

युधिष्ठिर ने ऐसा उत्तम व्यवहार करना आरम्भ किया कि जिससे वे लोग उनका मुँह जोहा करते और सदा प्राण देने को तैयार रहते थे। भीम का प्रजापालन, अर्जुन द्वारा शत्रुओं का नाश, नकुल का प्रेम व्यवहार, सहदेव का धर्मोपदेश आदि उन लोगों के भिन्न भिन्न कार्यों से सारी प्रजा प्रशंसा करती थी। प्रजा को चोर, ठग तथा दुष्टों से किसी प्रकार का भय नहीं रह गया। चारों वर्ण एक दूसरे पर प्रेम रख कर अपना अपना व्यवहार करते थे। किसी को किसी प्रकार का कष्ट नहीं रह गया, देश धन और वैभव से परिपूर्ण हो गया।

एक दिन भाई लोग तथा मन्त्रियों के साथ बैठे हुए राजा युधिष्ठिर ने राजसूययज्ञ करने की बात चलाई, मन्त्रियों ने प्रसन्न होकर समर्थन करते हुए कहा—

हे महाराज! आप सम्राट् होने के योग्य हैं, प्रसन्नतापूर्वक सब राजा लोग आपकी आज्ञा को शिरोधार्य करते हैं, सम्पूर्ण देश तथा प्रजा आपसे प्रसन्न है और बलवान् क्षत्रिय राजा ही राजसूययज्ञ कर सकता है। आपका तथा आपके वीर भाइयों का मुकाबला करनेवाला संसार में इस समय कोई नहीं है। इसलिये हम लोगों की राय है कि आप अवश्य राजसूययज्ञ करें।

भाइयों ने भी युधिष्ठिर को राजाधिराज बनाने में अपनी सम्मति दी।

मन्त्रियों और भाइयों द्वारा अपनी बात समर्थित होते देख कर राजा को बड़ी प्रसन्नता हुई; किन्तु इतने से ही उन्हें सन्तोष न हुआ और भगवान् कृष्णजी से सलाह लेने के लिये उन्होंने एक दूत द्वारका में भेजा।

इन्द्रसेन नामक दूत शीघ्र द्वारकापुरी में पहुँचा और उसने कृष्णजी से युधिष्ठिर का सन्देशा कहा—हे भगवन्! राजा युधिष्ठिर आपके दर्शन के लिये उत्सुक हैं।

कृष्णजी दूत की बात सुनकर तुरन्त चले और इन्द्रप्रस्थ में आये। कुछ काल विश्राम करने के बाद युधिष्ठिर उनके समीप आये और कहने लगे—

हे प्रभो! हमारी अभिलाषा राजसूययज्ञ करने की है; किन्तु बिना आपकी सहायता के उसका होना असम्भव है। वह यज्ञ सम्पूर्ण संसार का अधीश्वर ही करने में समर्थ होता है। यद्यपि हमारे बन्धुवर्ग और मन्त्रीलोग इसका अनुष्ठान करने को कह रहे हैं, तथापि मैं आपकी अनुमति को ही सर्वोपरि समझूँगा और वही करूँगा जो आप कहेंगे।

श्री कृष्ण बोले—हे राजा! आप सर्वथा राजसूययज्ञ करने के योग्य हैं, इसमें सन्देह नहीं; किन्तु मैं कुछ विशेष बात उसके सम्बन्ध में आपसे कहना चाहता हूँ।

परशुराम ने सम्पूर्णक्षत्रिय वंशका नाश कर दिया उसके बाद अब जो नया क्षत्रिय वंश चला है उनमें ऐल और इक्ष्वाकु दोनों वंश के राजे जरासन्ध के अधीन रह कर अपना दिन काट रहे हैं। महाप्रतापी जरासन्ध पूर्वदिशा में राज्य कर रहा है और सब राजा उससे डरा करते हैं। आप जानते हैं कि कंस ने यादवों पर जब बहुत अत्याचार करना आरम्भ किया और धर्म का एक दम लोप सा होने लगा, तब मैंने बलदेवजी की सहायता से उसका वध किया। जरासन्ध की कन्या कंस को व्याही थी; इससे वह मुझ से बड़ी शत्रुता मानता है। उसीके कारण हम लोग मथुरा छोड़ कर द्वारका में रहते हैं। कभी कभी वहाँ से भी हट कर उसकी दुष्टता के कारण हम लोग रैवतक पर्वत पर चले जाते हैं। महाबली शिशुपाल भी उससे पराजित होकर उसका सेनापतित्व करता है। आपके पिता के मित्र राजा भगदत्त पूर्वदिशा के राजाओं के साथ उसके अधीन होकर उसे कर देते हैं और उत्तर दिशा के राजा लोग, पाञ्चाल नरेश, दक्षिण देश के राजा तथा और और देशों के

राजाओं ने उसकी अधीनता स्वीकार करली है। इतना ही नहीं, उसने बहुतेरे राजाओं को पकड़ कर अपने यहाँ बन्दी कर रक्खा है और शिवजी के सामने उनका बलिदान करना चाहता है। इसलिये मेरा कहना है कि जरासन्ध पर बिना विजय प्राप्त किये राजसूययज्ञ करना व्यर्थ है। यही नियम भी है कि सम्पूर्ण राजाओं पर विजय प्राप्त कर पहले सम्राट बनले, तब इस प्रकार के यज्ञ का आयोजन करे। जब तक आप जरासन्ध पर विजय न प्राप्त करलें, तबतक इस यज्ञ में सफल होने की आशा दुराशा मात्र है। जरासन्ध का भी विचार राजसूय करने का है, इससे उसने सब राजाओं को जीता है और अब बचे हुए राजाओं पर विजय पाने का प्रबन्ध कर रहा है। पहले आप उसके वध का उपाय करें और उसके यहाँ बन्दी हुए राजाओं को छुड़ावें, तब इस श्रेष्ठ यज्ञ का विधान करें।

श्रीकृष्ण की इन बातों को सुनकर युधिष्ठिर कहने लगे—हे कृष्ण! आपने सन्देह को दूर करनेवाली परम हितकारी बात कही है। इसीलिये मैं बिना आपकी सलाह के यज्ञ करना नहीं चाहता था। जरासन्ध के अद्भुत पराक्रम की बात आज तक मैंने नहीं सुनी। जब उससे आपही को भागना पड़ा तो भला मैं कैसे उसे जीत सकता हूँ? मैं अपने भाई भीम और अर्जुन को उस दुरात्मा से युद्ध करने के लिये न भेजूँगा।

यह सुन कर भीम नीति युक्त गम्भीर वचन बोले—बलवान् राजा बिना उद्योग किये न बढ़ सकता है, न सुख सम्पत्ति ही पाता है। कमज़ोर राजा यदि उद्योगी हो तो भारी से भारी प्रबल शत्रु को जीत सकता है। कृष्ण की नीति अर्जुन का रणकौशल और हमारा शारीरिक बल, मगधेश्वर जरासन्ध पर विजय और सब कार्य साधन करने में समर्थ है।

श्रीकृष्ण बोले—शत्रु का बल न समझ कर अज्ञानी लोग कार्यारम्भ कर दिया करते हैं। मान्धाता विजय से, भगीरथ प्रजा पालन से, बलवान् कार्त्तवीर्य तपस्या से, मरुत धनके बल से और भी कितने ही राजा इसी प्रकार सम्राट हो चुके हैं; किन्तु राजा युधिष्ठिर में सब गुण वर्तमान हैं और सब राजा लोग भी आदर की दृष्टि से देखते हैं। ध्यान रहे, जो राजा बल से सम्राट होना चाहता है, उसकी सत्ता चिरकाल तक नहीं कायम रह सकती। जरासन्ध बल से राजाओं को वश में रख कर अनीति का आचरण कर रहा है। इसलिये उसका वध करना आवश्यक है, जो उस अन्यायी का वध कर सकेगा, वही सम्राट होगा।

युधिष्ठिर ने कहा—हे श्रीकृष्ण! स्वार्थ के लिये मैं आप लोगों को नहीं भेजना चाहता। क्योंकि भीम, अर्जुन मेरे दोनों नेत्र हैं और आप मेरे मन हैं। नेत्र और मन के बिना मनुष्यजीवन व्यर्थ है। अब मैं राजसूययज्ञ का विचार त्याग देता हूँ।

अर्जुन ने कहा—क्षत्रिय कुल में जन्म लेकर वीरता दिखाना ही क्षात्रधर्म है। अन्याय को दूर कर अधर्मी को दण्ड देना और अपनी भुजाओं के बल से सार्वभौम साम्राज्य स्थापित करना क्षात्रधर्म है। जिस क्षत्रिय से यह न करते बने उसे चाहिये कि सन्यास लेकर बन में चला जाय।

अर्जुन की बात सुन कर वासुदेव बोले—हे राजा! बलवान् अर्जुनने अपने योग्य ही वचन कहे हैं। मृत्युलोक में आकर कोई अमर नहीं हुआ। रात दिन में सुयशी अयशी दोनों मरही जाते हैं। बलवान् शत्रु पर नीति के साथ चढ़ाईकरके चतुर लोग विजयी होते हैं। जरासन्ध से युद्धघोषणा करके युद्ध करने की हमारी राय नहीं है। अपने छिद्र को छिपा कर उसके छिद्रों के सहारे ही उसे पराजित करना है। यदि शत्रु पर विजय हुई तो प्रशंसा होगी, हार गये तो स्वर्गद्वार खुला हुआ है। क्षत्रिय के लिये इससे बढ़ कर उत्तम कार्य नहीं।

जरासन्ध और किसी भाँति नहीं मारा जा सकता। केवल मल्लयुद्ध ही उसके मारने का उपाय है। इसलिये गुप्तरूप से हमलोग उसके यहाँ जाकर मल्लयुद्ध करके उसका बध करेंगे। ललकारने पर वह इससे पीछा न दिखावेगा और मेरे उपदेश से उससे युद्ध कर भीम अवश्य पछाड़ेंगे। इसलिये भीम और अर्जुन को मेरे साथ जाने की आज्ञा दीजिये।

यह सुन कर युधिष्ठिर ने कहा—हे माधव! आपही हमलोगों के स्वामी हैं। हम तो आपकी आज्ञा पालन करनेवाले सेवक हैं। आप जो कुछ करेंगे वह उत्तम ही होगा। इसलिये आपको जो रुचे वही कीजिये।

युधिष्ठिर की अनुमति पाकर कृष्णजी भीम और अर्जुन को साथ लेकर मगध को चले। उन तीनों ने अपना रूप मुनि के समान बना लिया। तीनों वीर अनेक देश, नद, नदी पार करते हुए जरासन्ध की राजधानी के निकट पहुँच गये। वहाँ देखा कि एक चबूतरा फाटक के पास बना हुआ है और लोग उसे पूज रहे हैं। उसी के समीप वृषासुर को मार कर उसी के चमड़े से जरासन्ध ने तीन भेरी बनवाकर रखवा दी है। उन भेरियों को और चबूतरे को तोड़ फोड़कर तीनों वीर नगर में घुसे और मगधनरेश को देखने के लिये उसके राजभवन की ओर चले। रास्ते में ज़बर्दस्ती मालियों से तीन मालायें ले कर तीनों ने पहनलीं।

इन लोगों के पहुँचते ही जरासन्ध को अनेक अशुभ अशकुन हुए। पुरोहितों और ब्राह्मणों ने ग्रह की शान्ति के लिये राजा को हाथी पर चढ़ा कर अग्नि की प्रदक्षिणा करायी। शान्ति के लिये जरासन्ध ने व्रत किया और बहुत बच कर एकान्त में रहने लगा।

इतने ही में निरस्त्र, ब्रह्मचारी का वेष धारण किये हुए अनेक फाटकों को लाँघ कर कृष्णजी भीम और अर्जुन के साथ मगधराज के पास राजभवन में पहुँच गये।

ब्राह्मण वेषधारी इन लोगों को देख कर जरासन्ध उठा और बड़े आदर से बैठा कर कुशल प्रश्न पूछा।

भीम, अर्जुन तो चुप रहे, किन्तु नीतिविशारद कृष्णजी बोले—हे राजन्! इन दोनों महापुरुषों ने मौनव्रत लिया है बिना अर्ध रात्रि के आये ये नहीं बोलते। तब राजा जरासन्ध उन लोगों को यज्ञशाला में रहने का प्रबन्ध करके चला गया।

आधी रात होने पर वह फिर इन लोगों के समीप आया। उससे वे लोग इस प्रकार कहने लगे—

हमलोग दूर से यहाँ आये हैं और तुम्हारे अतिथि हुए हैं। हम जो तुमसे माँगे वह दान हमें दो। क्योंकि दानी पुरुष को कुछ भी अदेय नहीं है।

जरासन्ध ने कहा—आप लोगों का वेष देख कर मुझे शङ्का हो रही है, पहले उसका निवारण कीजिये। आप लोग स्नातक का वेष धारण किये हुए हैं किन्तु उसके विपरीत माला और लाल वस्त्र धारण किये हैं। क्षत्रियों की तरह आप के कन्धे पर प्रत्यञ्चा के चिह्न दिखाई पड़ रहे हैं और शरीर में सुगन्धित चन्दन का लेप लगा हुआ है। सच सच कहिये, कपट वेषधारी आप लोग कौन हैं? मैंने सुना है कि नगर में प्रवेश करते हुए आप लोगों ने हमारे देवालय और भेरियों को तोड़ फोड़ डाला है। इन बातों से मुझे अनुमान होता है कि आप लोग क्षत्रिय हैं पर क्षत्रिय का काम भुजबल है। आप लोग छिप कर हमारे राजमहल में घुस आये हैं, इसका क्या मतलब है? अतिथि की तरह हमारी पूजा लेने से क्यों इनकार कर रहे हैं?

श्रीकृष्ण बोले—हे राजा! सुनो, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, ये तीनों स्नातक का व्रत ले सकते हैं। सब के नियम भिन्न भिन्न हैं। क्षत्रिय भुजाओं के बल से होता है यह तुम्हारा कहना सही है। भुजाओं के बल को भी आज तुम देख लोगे। यदि देखने की अभिलाषा है तो शत्रु के घर में छिप कर और मित्र के घर में प्रगट रूप से जाना यही नीति है। भावी कार्य का विचार करके हमने तुम्हारी पूजा नहीं ग्रहण की।

जरासन्ध इन बातों को न समझ सका और बोला—मैंने आप लोगों से कौन शत्रुता या कौन अपराध किया है? मुझे स्मरण नहीं हो रहा है और आप लोग व्यर्थ विवाद बढ़ा रहे हैं।

तब श्रीकृष्ण ने स्पष्ट करते हुए कहा—जब तुम अपने वंश के क्षत्रियों को ही बाँध कर पशु के समान उनका बलिदान करना चाहते हो तो सम्पूर्ण क्षत्रिय तुम्हारे शत्रु हैं। तुम अपने को सब क्षत्रियों से श्रेष्ठ समझते हो यह तुम्हारी भूल है। तुमने महा अत्याचार करके समस्त राजाओं और प्रजावर्ग को सताया है। इस कारण राजा युधिष्ठिर ने तुम्हें दण्ड देने के लिये हमलोगों को भेजा है। हमलोग स्नातक नहीं हैं। मैं कृष्ण हूँ और ये भीम तथा अर्जुन हैं। आज या तो सब राजाओं को छोड़ दो, या स्वयं यमलोक का मार्ग देखो।

जरासन्ध ने कहा—बिना जीते मैं किसी राजा को नहीं ले आया हूँ। मुझसे युद्ध करके कौन ऐसा है जो काल का कौर नहीं हुआ? मैं किसी से डरनेवाला नहीं हूँ। तुम तीनों एक साथ अथवा अलग अलग मुझसे युद्ध करो।

श्रीकृष्ण ने कहा—हे राजन्! मैं अधर्मयुद्ध करना नहीं चाहता। हम तीनों में से किसके साथ तुम युद्ध करना चाहते हो, कहो।

जरासन्ध ने कहा—मैं भीम से युद्ध करना चाहता हूँ, तुम तो भीरु हो। मथुरा छोड़ कर कई बार भाग चुके हो। अर्जुन अभी बच्चा है, वह मेरे साथ क्या युद्ध करेगा। भीम ही मुझ से लड़ने के योग्य हैं।

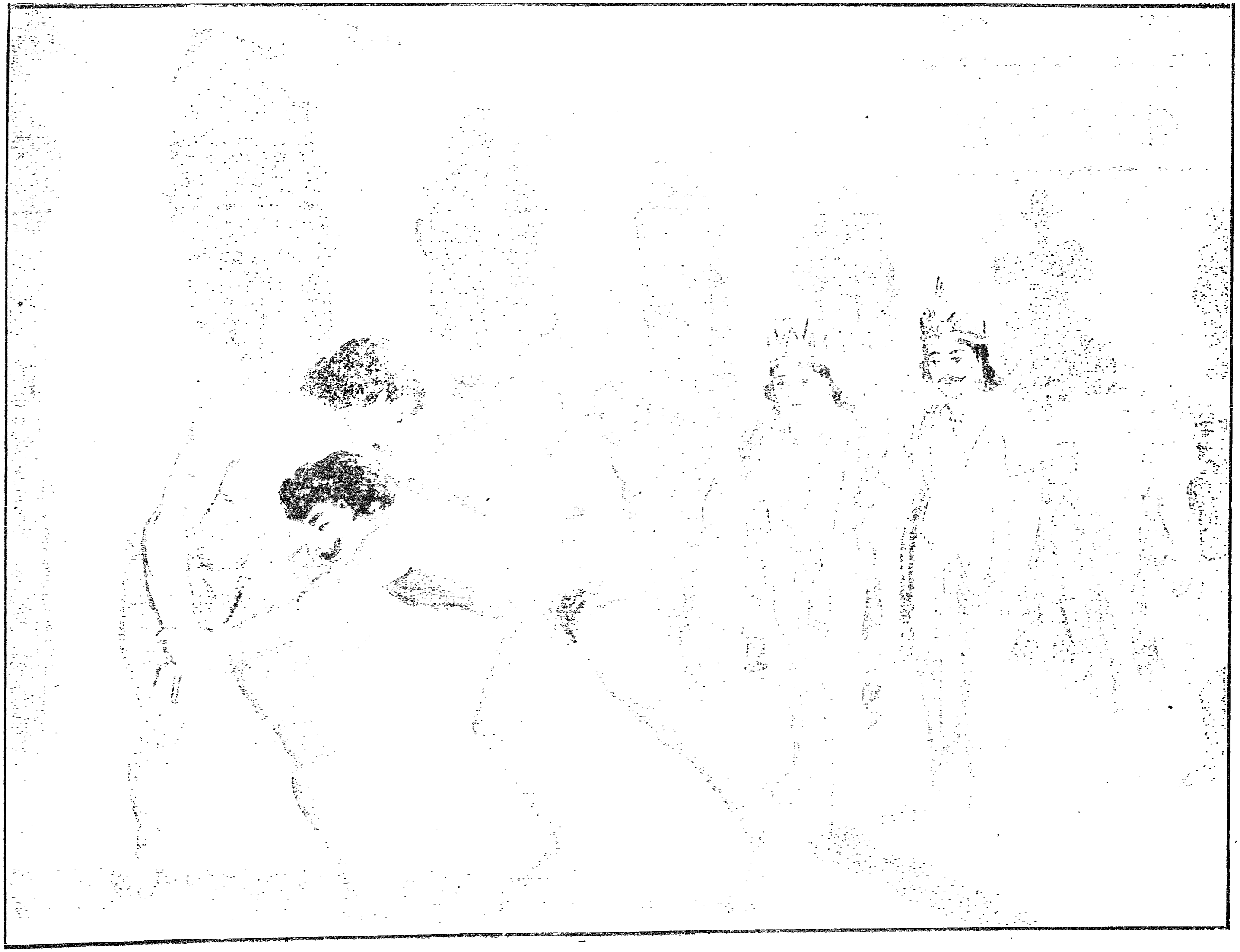
इसके बाद गन्धमाला धारण करके और चोट लगने पर औषधोपचार का प्रबन्ध करके किरीट को उतार मल्लयुद्ध करने का वस्त्र पहन कर जरासन्ध अखाड़े में आया। भीमसेन भी कृष्ण की आज्ञा और सलाह लेकर भयङ्कर युद्ध करने के लिये जरासन्ध के समीप पहुँच गये।

दोनों ने एक दूसरे का हाथ छूकर अपने इष्टदेव का स्मरण किया। दोनों रण में मतवाले होकर और ताल ठोंक कर भिड़ गये। तरह तरह के दाँव पच चलने लगे। एक दूसरे को दाब लेने की कोशिश करने लगा। सिंह के समान गरज कर एक दूसरे से चिपट गये। चारों ओर से नगरवासी इकट्ठे होकर इस महायुद्ध को देखने लगे। कार्तिक कृष्ण प्रतिपदा से चतुर्दशी तक युद्ध होता रहा। जरासन्ध को थका हुआ देख कृष्णजी ने कहा—

हे कौन्तेय! थके हुए शत्रु को पीड़ित करना अच्छा नहीं। यह कह कर और तृण तोड़ ज़मीन पर गिरा दिया।

जरासन्ध को थका हुआ देख कर और कृष्ण की बात सुन कर तथा उनके किये हुए संकेत को समझ कर भीम अधिक सावधानी के साथ युद्ध करने लगे। भीम उसके मारने के लिये अत्यन्त क्रुद्ध हो कर सिंह की भाँति गरजे। उन्होंने जरासन्ध को उठा लिया और चक्र की तरह घुमाया। कई बार घुमाकर उसे ज़मीन पर पटक दिया और घुटनों से दबा कर कमर तोड़ डाली। हाथ से एक पैर पकड़ उसके दो टुकड़े कर दिये। जरासन्ध की जीवनलीला समाप्त हो गई।

जरासन्ध के मृतशरीर को राजद्वार पर रख कर तीनों वीरों ने बन्दीख़ाने में जाकर बन्दी राजाओं को मुक्त कर दिया।



बेलवेडियर प्रेस प्रयाग।

भीम-जरासन्ध युद्ध ।

जरासन्धनृप भीमभट, भरि भरि हृदय उछाह, मल्लयुद्ध तत्पर युगल, वीर बली, अवगाह ॥

पृष्ठ ६६

राजा लोग मुक्त होकर बहुत प्रसन्न हुए और कृष्णजी से निवेदन किया। हे वीरश्रेष्ठ! इस उपकार के बदले में हम लोग आपका कौन सा कार्य करें? आज्ञा हो।

श्रीकृष्णने कहा—हे महिपालगण! राजा युधिष्ठिर राजसूययज्ञ करना चाहते हैं, इस कार्य में तुम लोग उनकी सहायता करो।

राजाओं ने प्रसन्न होकर स्वीकार किया और बहुत से रत्नों की भेंट दी।

श्रीकृष्णने मगध में जरासन्ध के पुत्र को राज्यासन पर बिठाया और बहुत सा धन रत्न लेकर इन्द्रप्रस्थ को लौट आये वहाँ से चलते समय जरासन्ध का प्रसिद्ध रथ भी साथ ले आये।

इन्द्रप्रस्थ में पहुँचकर कृष्णने युधिष्ठिर से जरासन्ध के बध की सारी कथा कह सुनायी और राजाओं के मुक्त करने का हाल भी कहा। यह सुनकर युधिष्ठिर बहुत प्रसन्न हुए और बड़े आदर से कृष्ण को गले लगाया। कृष्णजी भी सबसे यथायोग्य मिलकर द्वारका को चले गये।

इसके अनन्तर सार्वभौम राजा होने के लिये तथा यज्ञ के अर्थ धन रत्न संग्रह करने के हेतु युधिष्ठिर ने चारों भाइयों को दिग्विजय के लिये भेजा।

अग्नि के दिये हुए रथ पर चढ़ कर तथा गाण्डीव धनुष को लिये हुए अर्जुन उत्तरदिशा को गये। वहाँ राजाओं को जीतते हुए प्राग्ज्योतिष देश (कामरूप) में पहुँचे। भगदत्त नामक महाबलशाली राजाको जीता। उलूकपति बृहन्त को और काश्मीर, वाल्हीक आदि बड़े बड़े राजाओं को अपने अधीन कर लिया। इसके बाद उत्तर कुरु नामक गन्धर्वों की नगरी जीतने के लिये आगे बढ़े! तब एक बड़े डीलडौल वाले द्वारपाल ने आकर कहा—

हे अर्जुन! इस नगर को आप नहीं जीत सकते। जो मनुष्य इस नगर में जाता है, वह जीता हुआ नहीं लौटता। माया के प्रभाव से जीतने योग्य यहाँ आपको कुछ न दिखाई पड़ेगा और जो आपकी इच्छा हो कहिये, हम उसे पूर्ण कर देंगे।

अर्जुन ने कहा—राजा युधिष्ठिर को सम्राट बनाने के लिये युद्ध करता हुआ मैं घूम रहा हूँ। यदि तुम करस्वरूप मुझे कुछ दे दो, तो तुम्हारे नगर में न जाऊँ।

उस द्वारपाल ने इस बात को मान कर दिव्यगहने, वस्त्र और मणियाँ अर्जुन को भेट में दी। वह लेकर तथा और भी विजय से प्राप्त बहुतसा धन-सम्पत्ति लेकर उत्तर दिशा को जीत अर्जुन इन्द्रप्रस्थ में लौट आये।

भीम ने पूर्व दिशा में जाकर बंगाल, तिरहुत आदि देशों को जीता और बहुत धन, रत्न संग्रह करके चेदिराज शिशुपाल के पास पहुँचे। शिशुपाल ने उनका बहुत सत्कार किया और कुशल प्रश्न पूछकर बहुत सा धन रत्न करस्वरूप दिया। भीमसेन मित्र की तरह उसके यहाँ तेरह दिनतक रहे और शिशुपाल को राजसूययज्ञ की सूचना देकर लौटे। कोशलनरेश बृहद्बल, काशिराज, मत्स्य, मलय, बङ्ग आदि बड़े बड़े राजाओं को जीतकर तथा उनसे कर ले कर इन्द्र प्रस्थ में आये।

चतुरङ्गिनी सेना लेकर सहदेव दक्षिण दिशा की ओर गये! वहाँ मत्स्यराज, दन्तवक्र, निषादराज, महाराष्ट्राधिपति आदि राजाओं को जीतते हुए किष्किन्धापुरी में पहुँचे। वहाँ मयन्द द्विविद आदि बानरों से घोर युद्ध हुआ। सहदेव की वीरता पर बानर बहुत प्रसन्न हुए और बोले—

हे पाण्डव! हम आप से बहुत प्रसन्न हैं, इसलिये यह करस्वरूप रत्न लो और अपने स्थान को लौट जाओ। इसके बाद समुद्र के निकटवर्त्ती देशों को जीतते हुए वहीं से रावण के भाई विभीषण से भी दूत भेज कर करमें बहुत सा रत्न मँगाया। द्वीप में रहनेवाले म्लेच्छ, राक्षस, यवन आदि राजाओं

से दण्ड में धन रत्न का संग्रह किया। दक्षिण दिशा पर पूर्ण विजय पाकर प्रसन्न मन सहदेव इन्द्रप्रस्थ को लौट आये।

नकुल बड़ी भारी सेना के साथ पश्चिम दिशा की ओर गये रोहितकपुर के मयूरों से उनका घोर युद्ध हुआ। उनको युद्ध में हराकर नकुल ने उनसे कर लिया। फिर सैरीसक, दशार्ण, शिवित्रगर्त्त मालव आदि देशों को जीतकर कर लिया। अनन्तर यादवों की राजधानी में श्रीकृष्ण के पास दूत भेज कर उनसे भी कर लिया। सिन्धु नद के किनारे के देशों को जीतते हुए म्लेच्छ राजाओं को जीत कर दस हज़ार ऊँटों पर धन रत्न लाद कर इन्द्रप्रस्थ में लौट आये।

चारा भाइयों ने चारों दिशाओं को जीत कर और बहुत सा धन इकट्ठा करके युधिष्ठिर को समर्पण किया। इससे वे बहुत प्रसन्न हुए। भाइयों ने धन रत्न से उनका भाण्डार भर दिया और चक्रवर्ती राजा बना दिया।

अच्छा समय और शुभमुहूर्त्त देख कर मन्त्रियों ने कहा—हे महाराज! अब यज्ञ करने का समय आ गया है, इसलिये यह शुभकाम शीघ्र आरम्भ होना चाहिये।

यह बातचीत हो ही रही थी कि द्वारपाल ने ख़बर दी भगवान् श्रीकृष्णजी आ रहे हैं।

राजा युधिष्ठिर उनकी अगवानी करके ले आये। उन के साथ चतुरङ्गिनी सेना लिये हुए वसुदेवजी भी अनन्त धन रत्न देने को लेकर आये थे। सब के सुखपूर्वक बैठ जाने पर महर्षि व्यास, धौम्य आदि से सुशोभित सभा में युधिष्ठिर जी बोले—

हे भगवन् कृष्ण! केवल आपकी कृपा से सम्पूर्ण भूमण्डल का आधिपत्य मुझे मिला है और धन रत्न से मेरा ख़ज़ाना भर गया है। इसे मैं विधिपूर्वक ब्राह्मणों को देना चाहता हूँ। इसलिये मेरा विचार राजसूययज्ञ करने का है। यदि आप मेरे भाइयों के साथ आज्ञा दें तो मैं इस यज्ञ को करके पितृऋण से मुक्त होऊँ।

श्रीकृष्ण ने सम्राट् युधिष्ठिर के गुणों का वर्णन करके कहा—हे महाराज! अब आप राजसूय-यज्ञ करने में समर्थ हैं। मैं हरप्रकार से आपकी सहायता करने को तैयार हूँ। आप अवश्य इस यज्ञ को आरम्भ करें।

श्रीकृष्ण की अनुमति पाकर युधिष्ठिर यज्ञ की सब वस्तुओं का संग्रह कराने में तत्पर हुए। उन्होंने सहदेव को आज्ञा दी कि महर्षि धौम्य, ब्राह्मणों और मन्त्रियों से सलाह लेकर यज्ञ की सब सामग्री एकत्रित करो।

सहदेव ने राजा से कहा—हे आर्य! आपकी आज्ञा के अनुसार हमने सब तैयार कर रक्खा है।

उस यज्ञ के ब्रह्मा स्वयं महर्षि व्यासजी हुए। सुसामा धनञ्जय होकर सामवेद का गान करते थे। याज्ञवल्क्य मुनि अध्वर्यु, पौल और धौम्य होता हुए। इनके शिष्य यज्ञ के और और कार्यकर्त्ता हुए। ब्राह्मणों ने विधि पूर्वक पुण्याहवाचन किया। मनोहर कुण्ड वेदी के समीप बैठ कर राजा युधिष्ठिर ने यज्ञ का सङ्कल्प किया और शास्त्र विधि से यज्ञशाला की पूजा की। इसके बाद राजा की आज्ञा से चतुर शिल्पियों ने यज्ञशाला के समीप ही उत्तम उत्तम घर रहने के लिये बनाये।

अनन्तर युधिष्ठिर ने सहदेव को आज्ञा दी कि चारों दिशाओं में दूतों को भेज कर ब्राह्मण, राजा, वैश्य, शूद्र, इन सब को बुलालो।

सहदेव ने राजा की आज्ञानुसार शीघ्रगामी दूत चारों ओर भेज दिये, वे दूत चारों वर्णों को निमन्त्रण देकर लौट आये।

हस्तिनापुर से भीष्म, द्रोण, धृतराष्ट्र, विदुर, कृप, दुर्योधन आदि को बुलाने के लिये युधिष्ठिर ने नकुल को भेजा। उन्होंने जाकर सब को बड़े आदर से निमन्त्रित किया। वे लोग यज्ञ की ख़बर पाकर बहुत प्रसन्न हुए और शीघ्र चलकर इन्द्रप्रस्थ में पहुँच गये।

भीष्म, धृतराष्ट्र, भाइयों के साथ दुर्योधन, कर्ण, विदुर, शल्य, भूरिश्रवा, सोमदत्त, अपने पुत्र के साथ द्रोणाचार्य, जयद्रथ, धृष्टद्युम्न, द्रुपद, विराटराज, काश्मीर नरेश, शिशुपाल, बलरामजी, और भी द्वीप द्वीपान्तरों के राजा यज्ञ में सम्मिलित हुए। सबने राजा को भाँति भाँति के उपहार भेंट दिये।

युधिष्ठिर ने आगत राजाओं का यथोचित सन्मान किया। सब को रहने के लिये अलग अलग सजे हुए सुन्दर घर दिये। राजाओं ने राजसी ठाठबाट से सजे हुए मकानों में जाकर विश्राम किया। फिर वे लोग अमरावती के समान शोभावाली यज्ञशाला को देखने गये। सब ने धर्मराज युधिष्ठिर का दर्शन कर उनकी सराहना की।

राजा युधिष्ठिर ने स्वयं जाकर गुरु द्रोण और पितामह भीष्म तथा राजा धृतराष्ट्र के चरणों की बन्दना की और बोले—

इस यज्ञ में और मुझपर आपलोग सब प्रकार से अनुग्रह करें। यह सब कुछ आपलोगों की कृपा पर ही निर्भर है।

इस के बाद यथायोग्य विचारकरके राजा ने आये हुए सब राजाओं को यज्ञ का कार्य सौंप दिया। दुःशासन को भोजन का अश्वत्थामा को ब्राह्मणों के सत्कार का, सञ्जय को राजाओं की सेवा करने का तथा और और राजाओं को इसी प्रकार कार्य बाँट दिया। बाहुलीक, धृतराष्ट्र, जयद्रथ, सोमदत्त, इन लोगों को सब के ऊपर शासन करने का अधिकार दिया गया। दुर्योधन को आये हुए राजाओं से भेंट लेने का, विदुर को ख़र्च करने का और कृष्णजी ने ब्राह्मणों के पैर धोने का काम लिया। इस यज्ञ को देखने के लिये देवता लोग आकाश में विमानों पर बैठ कर आये।

राजा ने विधिपूर्वक यज्ञ आरम्भ किया। हज़ारों ब्राह्मण असंख्य राजाओं से घिरकर युधिष्ठिर इन्द्र के समान शोभा पा रहे थे। यज्ञवेदी पर बैठे हुए युधिष्ठिर के ऊपर वेदमन्त्र पढ़ कर महर्षि लोग जलसे अभिषेक करने लगे। अभिषेक कार्य समाप्त होने पर विचित्र विवाद हुआ। कोई बड़े को छोटा कोई छोटे को बड़ा कह कर एक दूसरे का मत खण्डन करने लगे।

इतने में भीष्मपितामह सभा के बीच खड़े होकर बोले—हे युधिष्ठिर! अब सब राजाओं के सत्कार करने का समय आ गया है। आचार्य, ऋत्विक्, सम्बन्धी, स्नातक, राजा और स्नेही ये छः प्रकार के लोग पूजा पाने के योग्य हैं। क्रमसे हर एक की तुम पूजा करो। पर आज इन लोगों में जो सर्वश्रेष्ठ हो पहले उसकी पूजा करके तब औरों का सत्कार करना।

युधिष्ठिर ने कहा—हेपितामह! आपही बतलावें कि पहले किसकी पूजा की जाय।

भीष्मने कुछ देर विचार कर युधिष्ठिर से कहा—सबसे बढ़ कर पूजा करने योग्य कृष्ण को छोड़ कर दूसरा कौन है? बुद्धि, बल, पराक्रम में वे ही सबसे श्रेष्ठ हैं। इसलिये राजाओं के बीच वेही पहले अर्घ्य पाने के योग्य हैं।

भीष्म की आज्ञा पाकर सहदेव ने शास्त्रविधि से श्रीकृष्ण को अर्घ्य दिया। कृष्ण ने उसे प्रेम से ग्रहण किया।

श्रीकृष्ण को सबसे पहले पूजे जाते देख कर शिशुपाल मारे क्रोध के लाल हो गया। भीष्म की निन्दा कर वह इस प्रकार कहने लगा—

हे पाण्डव ! बड़े बड़े राजाओं का तिरस्कार कर पहले कृष्ण को पूजना तुम लोगों का यह कार्य बहुत ही अनुचित हुआ है। तुम सब अभी बालक हो, इसलिये तुम्हें कर्त्तव्य नहीं समझ पड़ा। भीष्म तो वृद्ध होने के कारण हतबुद्धि हो गये हैं, फिर वे अच्छी सलाह कहाँ से दे सकते हैं। वृष्णिवंशवालों की गिनती राजाओं में नहीं है, फिर यादवों को ही पूजना था तो वसुदेव के उपस्थित रहते हुए उनके लड़के को क्यों अर्घ्य दिया ? मैं जानता हूँ कि कृष्ण तुम्हारी हाँ में हाँ मिलानेवाले हैं, वे सदा तुम लोगों को प्रसन्न रखने की चिन्ता में रहते हैं। फिर भी; उनसे बढ़कर तुम्हारा उपकार करनेवाले द्रुपद वर्त्तमान हैं, उनसे बढ़ कर हितैषी और आत्मीय कृष्ण नहीं हैं। तुम लोगों ने उनका भी अनादर किया ? यदि आचार्य मान कर अर्घ्य देना था तो तुम्हारे गुरु द्रोण मौजूद हैं। ऋत्विक् महर्षि व्यास से बढ़ कर दूसरा नहीं, तुमने उनका भी तिरस्कार कर दिया। कुरुवृद्ध भीष्म, सब शास्त्रों के ज्ञाता अश्वत्थामा, राजों के राजा दुर्योधन, वीराग्रणी कर्ण, आचार्य कृप जहाँ मौजूद हैं, वहाँ कृष्ण का पूजा जाना महा अनर्थ हुआ है। कृष्ण न ऋत्विक् हैं, न आचार्य हैं, न तो राजाओं में ही उनकी गिनती है। केवल तुमने अपने स्वार्थवश होकर उनकी पूजा की है। देश देश के राजाओं को बुला कर तुमने अपने यहाँ उनका अपमान किया। डर या लालच के कारण हमलोगों ने तुम्हारी अधीनता नहीं स्वीकार की है; किन्तु धर्म समझ कर इसमें योग दिया है। अपूज्य कृष्ण को पूज कर तुमने हम सब का अपमान किया है।

इस धर्महीन कृष्ण की कौन अज्ञानी पूजा कर सकता है ? अन्याय और छलसे इसने जरासन्ध का वध कराया। हे कृष्ण ! भीरु युधिष्ठिर ने तुमको पूज कर अपना धर्म गँवा दिया। तुमने किस घमण्ड में आकर इस पूजा को ग्रहण कर लिया ? एकान्त पाकर जैसे कुत्ता घी चाट कर अपनी प्रशंसा करै वही दशा तुम्हारी है। तुम इस पूजा के योग्य कदापि नहीं हो। पाण्डवों के अज्ञान से ऐसा हो गया। तुम यह न समझो कि हम राजाओं की इससे हँसी हुई है, बल्कि पूजा के बहाने पाण्डवों ने तुम्हारी हँसी उड़ायी है। जैसे नामर्द को सुन्दरी स्त्री मिल जाय वही दशा तुम्हारी इस पूजा के पाने से हुई है।

यह कह कर शिशुपाल ने अपने पक्ष के राजाओं के साथ उठना चाहा। उसके क्रोध को और राजाओं के क्षोभ को देख कर युधिष्ठिर उसके समीप गये और शान्तिपूर्वक विनय करने लगे।

उन्होंने कहा—हे चेदिराज ! जैसा परुष वचन आपने कहा वह आपके कहने योग्य नहीं था। भला ऐसा कौन कह सकता है कि धर्मात्मा भीष्म धर्म और नीति नहीं जानते। आपकी ही बातें अधर्म से भरी हुई, कड़वी और व्यर्थ हैं। देखिये, आप से बलवान्, धर्म के जाननेवाले बड़े बड़े वृद्ध और राजा बैठे हुए हैं, सबने कृष्ण की पूजा पर अपनी प्रसन्नता प्रगट की है। कृष्ण के तत्व को जैसा भीष्म जानते हैं, वैसा आप नहीं जानते। उनको पहचानने की कोशिश कीजिये। अज्ञानी मूर्ख ही कृष्ण की पूजा पर आक्षेप कर सकते हैं, बुद्धिमान् नहीं। इन्होंने अनेकों बार क्षत्रियों को जीत कर कृपा करके छोड़ दिया है। इस सभा में कौन राजा उनकी बराबरी करने में समर्थ है ? तीनों लोक में इनसे बढ़ कर पूजा पानेवाला कोई नहीं है। बाल्यकाल से ही इन्होंने जो अद्भुत अद्भुत काम किये हैं क्या आपने उन्हें नहीं सुना ? आपने अलग अलग जो राजाओं के गुण कहे हैं, वे सब अकेले कृष्ण में विराजमान हैं। इसलिये हमने पहले इनकी पूजा की। सम्बन्ध के विचार से अथवा किसी उपकार की आशा से नहीं। ज्ञान, बल, तेज, धैर्य, क्षमा, सब कुछ इनमें हैं, इनके बराबर संसार में दूसरा कौन है ? ये चराचर जगत् के आदिकारण परमपुरुष हैं। इनके गुणों की प्रशंसा वेद करने में असमर्थ हैं, हमारी आपकी क्या गिनती ? ।

भीष्मने कहा—हे युधिष्ठिर! सर्वप्रिय कृष्ण की जो निन्दा करता है, उससे विनय करना व्यर्थ है। शिशुपाल अज्ञानी और मूर्ख है। श्रीकृष्णचन्द्र से इसे डाह है, इससे कटुवचन कह रहा है। यह कालवश है, अपने किये का फल पावेगा। उससे कहदो कृष्णकी पूजा उसे नहीं रुचती है तो जो जी में आवे, करे।

भीष्म के चुप हो जाने पर क्रोध से लाल होकर सहदेव बोले—

जो नीच राजा हमसे की हुई कृष्ण की पूजा को बुरा मानता है, उसके सिर पर मैं लात मारने को तैयार हूँ। जो अपने को बलवान् समझता हो वह मेरी बातों का उत्तर दे। मैं संग्रामभूमि में उसका सिर काटने को तैयार हूँ। पितर, गुरु, आचार्य, सब कुछ समझ कर हमने कृष्ण को पूजा दी है, सब लोग इसे सुन लें।

इन बातों का उत्तर किसी ने न दिया, सब चुप रह गये। तब वहाँ और जितने पूज्य लोग थे, सहदेव ने सबकी यथाविधि पूजाकर इस कार्य को समाप्त किया।

कृष्ण की पूजा के विरुद्ध किसी राजा को न बोलते हुए देख शिशुपाल फिर कहने लगा—

हे मानी राजाओ! वृष्णिवंश और पाण्डवों से युद्ध करने के लिये तुम लोग तैयार हो जाओ। मैं तुम लोगों का सेनापतित्व करूँगा। हमलोगों को शीघ्र ऐसा उपाय करना चाहिये कि इस यज्ञ में युधिष्ठिर का अभिषेक न होने पावे। शिशुपाल के पक्षके राजाओं ने उसकी बात का समर्थन किया और युद्ध का तैयारी करने लगे।

युधिष्ठिर राजाओं में इस प्रकार क्षोभ देख कर डरे और भीष्म से कहने लगे—हे पितामह! राजाओं की दशा आप देख रहे हैं। अब यज्ञ में विघ्न न होने पावे, ऐसे कर्त्तव्य का उपदेश मुझे कीजिये।

भीष्मने कहा—हे युधिष्ठिर! डरोमत, शिशुपाल राजों के साथ कुत्ते की तरह भूँक रहा है। सिंह के समान वृष्णिवंश का वह कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। जब तक कृष्ण हमारे पक्षमें हैं, तब तक कोई कुछ नहीं कर सकता।

भीष्म की बात सुन कर शिशुपाल और जल उठा, वह बोला—

हे भीष्म! राजाओं को भयभीत करनेवाली बात कहते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आती? तुम बुड्ढे हुए, तुम्हारे योग्य जो बात हो वह तुम्हें कहनी चाहिये। पूतना का घात जैसे इसने किया, उसे सुन कर मेरा मन व्यथित हो उठता है। उसीका गुण कीर्त्तन करते हुए तुम्हारी जीभ सौ टुकड़े नहीं हो जाती है? छोटे छोटे बच्चे भी जिसकी निन्दा करते हैं, वृद्ध होकर भी तुम उसी की स्तुति कर रहे हो? बालकाल में इसने एक पक्षी एक घोड़ा और एक बैल मारा था। भला इसमें कौनसी आश्चर्य की बात है। अपने मामा कंस के अन्न से ही पालित पोषित होकर इसने उसका केश पकड़कर मार डाला, क्या इसके इसी निन्द्यकर्म पर तुम्हें आश्चर्य हो रहा है? हे कुरुकुलाधम भीष्म! क्या तुमने यह नहीं सुना है कि ब्राह्मण, गौ, अन्नदाता, स्त्री, शरणागत, धर्मज्ञ, इन पर शस्त्र उठाना शास्त्रों में वर्जित है? उन्हीं कर्मों के करनेवाले इस नीच की तुमने पूजा की है।

हे भीष्म! तुम्हें धर्म का कुछ भी ज्ञान नहीं है, इसलिये जो कहता हूँ उसे सुनो। यदि वृद्धावस्था के कारण तुम भयभीत हो गये हो तो जो यहाँ बलवान् राजा उपस्थित हैं उनकी स्तुति करो। कृष्ण की अपेक्षा वे सब अधिक तुम्हारा हित करेंगे। नहीं तो इन्हीं के साथ तुम्हें भी यमपुर का मार्ग देखना पड़ेगा।

शिशुपाल के अनुचित बचन को सुन भीम मारे क्रोध के लाल हो गये। वे उसे मारने के लिये झुके, इतने में भीष्म ने दौड़ कर उन्हें पकड़ लिया और शान्त करते हुए बोले—

चेदिपति के यहाँ जब यह जन्मा तो इसके तीन नेत्र और चार भुजाएँ थीं। इसके विकृतरूप को देख इसके माता पिता बहुत डरे और त्याग देने का विचार करने लगे। तब आकाशवाणी हुई कि तुम्हारा पुत्र अजेय, और बड़ा श्रीमान् होगा। जिसके देखने से इसका तीसरा नेत्र और दो भुजाएँ गिर जाँय, वही इसका घातक है। इसकी उत्पत्ति सुन कर चारों ओर से देखने के लिये लोग आने लगे। कृष्णजी भी बलराम के साथ वहाँ गये। कृष्णकी बूआने शिशुपाल को लाकर उनकी गोद में रख दिया। रखते ही उसके दो हाथ और एक आँख गिर गई। यह दशा देख कृष्ण की बूआ ने इसके न मारने की प्रार्थना की। कृष्ण ने कहा—मैं इसके सौ अपराध क्षमा करूँगा। इसके बाद दण्ड दूँगा। हे भीम! उसी बरदान के करण कृष्णजी अभी तक चुप हैं। फिर उन्हों ने शिशुपाल से कहा—रे घमण्डी! जिसकी हमने पूजा की है और तू निन्दा कर रहा है, वे तो सामने ही हैं उनसे क्यो नहीं निपट लेता।

शिशुपाल इस बात को सुन कर और भी क्रोधित हुआ और कहने लगा—भाटों की तरह हमारे शत्रु का तू क्या बहुत कीर्त्तन कर रहा हैं। सिंह के दातों में लगे हुए माँस को गीध का तरह खाने का साहस न कर। फिर कृष्ण से बोला—

हे वासुदेव! हमारे साथ युद्ध करने को तैयार हो जाओ। तुम्हें पाण्डवों के साथ आज यमलोक भेजूँगा। जरासन्ध ने दास समझ कर तुम्हारे साथ युद्ध न करके भीम से युद्ध किया था; पर मैं तुम्हें न छोड़ूँगा।

उसकी इस बात को सुन कर कृष्णजी गम्भीर बचन बोले—हे नरेशो! सात्वती का पुत्र मेरा शत्रु हुआ है इसे सुनलो। इस नराधम ने कई बार मेरा अपमान किया है। यह बराबर मेरे साथ शत्रुता का व्यवहार करता आ रहा है। परन्तु इसकी माता से मैंने प्रतिज्ञा की थी कि इसके सौ अपराध—जिसका दण्ड मृत्युही हो सकती है—क्षमा करूँगा। इसीसे अब तक क्षमा करता आया हूँ। अब सौ से अधिक अपराध यह कर चुका। मालूम होता है इसकी मृत्यु आ पहुँची है।

यह कह कर कृष्णजी ने सुदर्शन चक्र का आवाहन किया और वह इनके हाथ में आगया। देखते देखते उसको फेंक कर कृष्णजी ने शिशुपाल का सिर काट लिया। शिशुपाल का धड़ ज़मीन पर लोटने लगा।

इस अद्भुत कार्य को देख कर राजा लोग दंग रह गये। महर्षि तथा ब्राह्मण लोग कृष्ण की स्तुति करने लगे। युधिष्ठिर की आज्ञा से अर्जुन ने शिशुपाल के पुत्र को चेदि देश का राजतिलक कर दिया।

इसके बाद यज्ञ विधिपूर्वक पूरा किया गया। श्रीकृष्ण की सहायता से राजसूय महायज्ञ पूर्ण होगया।

यज्ञान्त में राजा युधिष्ठिर ने अवभृथ स्नान किया। स्नान हो जाने पर निमन्त्रित राजा लोग आये और इस प्रकार बोले—

हे महाराज! साम्राज्य पाने के कारण आपकी कीर्त्ति दिग्दिगन्त में व्याप्त हो गई। इससे हम लोग भी परम प्रसन्न हुए हैं, क्योंकि आपके सुयशवृद्धि से हमारी भी वृद्धि है। अब आज्ञा हो तो हमलोग अपने नगरको लौट जाँय।

युधिष्ठिर राजाओं के श्रेष्ठ वचन को सुन कर प्रसन्न हुए और प्रेम के साथ उन्हें विदा किया और भाइयों को आज्ञा दी कि इन लोगों को आदर के साथ अपने राज्य की सीमा तक पहुँचा आओ।

सब से पूजित होकर कृष्णजी भी गरुड़चिह्नित अपने रथ पर बैठ कर द्वारका को चले गये। शकुनि के साथ दुर्योधन अच्छी तरह सभा की शोभा देखने के लिये रह गया।

दुर्योधन की डाह और द्यूत क्रीड़ा

महर्षि व्यास ने विदा होते समय युधिष्ठिर से कहा—हे धर्मराज! आनेवाले तेरह वर्ष तुम्हारे लिये बड़े उत्पातकारक होंगे, इसलिये बहुत सावधानी से रहने की आवश्यकता है। यह कह कर व्यासजी कैलास पर्वत को चले गये।

युधिष्ठिर भी भाइयों से सलाह करके बड़े नियम से रहने लगे। उन्होंने अपने सद्व्यवहार से सब के मन को जीत लिया।

शकुनि के साथ दुर्योधन सभा के अद्भुत रचना कौशल को देख कर अवाक् हो गया। स्फटिक मणि से बने हुए एक रमणीक स्थान को देख कर उसने समझा कि यह जल से भरा हुआ सरोवर है और वस्त्र उतार कर उसमें हिलना चाहा, किन्तु स्थल देख कर लज्जित हो गया।

मन में चिन्तित होकर आगे बढ़ा, सुन्दर कमल और जल से सुशोभित एक सरोवर देख उसे स्फटिक मणि का भ्रम हो गया और उसमें गिर पड़ा। भीम यह देख कर हँसने लगे। युधिष्ठिर ने यह सुन कर बदलने के लिये वस्त्र भेज दिया।

कपड़े बदल कर दुर्योधन फिर आगे चला। भीम आदि के हँसने से वह क्रोध से भर गया, किन्तु क्रोध को छिपा कर सभा के दृश्य को देखने लगा। फिर एक जगह सरोवर के भ्रम से तैरने के लिये कूद पड़ा और पत्थर पर गिरने से उसे चोट लग गई। यह देख कर जितने लोग साथ में थे, सब हँस पड़े और दुर्योधन बहुत लज्जित हो गया।

एक जगह मणियों से बनी हुई दीवार को दरवाज़ा समझ कर उससे निकलना चाहा, इससे सिर में कड़ी चोट लगी। एक स्थान पर खुला हुआ दरवाज़ा देख कर भ्रम में पड़ गया और वहीं खड़ा रह गया।

इस प्रकार जल में थल और थल में जल देख कर दुर्योधन बहुत दुःखी हुआ और क्रोध में भर गया। पाण्डव लोग उसके धोखा खाने पर तरह तरह की दिल्लगी करने लगे और द्रौपदी ने हँस कर कहा कि अन्धे को अन्धा ही पुत्र होता है। वह दिल्लगी दुर्योधन के हृदय में काँटे की तरह चुभ गई। मन ही मन उसने इसका बदला लेने का निश्चय कर लिया। पाण्डवों का ऐश्वर्य और सभा का दृश्य देख कर पाण्डवों से बिदा हो दुर्योधन भीतर भीतर जलता हुआ हस्तिनापुर को चला।

पाण्डवों की अपार महिमा, राजाओं का उनके अधीन होना और उपहार में अनन्त धन रत्न देना, राजसूय का उत्तम रीति से सम्पन्न होना आदि बातें उदास मन से सोचता हुआ जा रहा था। दुर्योधन को उदास और विवर्ण हुआ देख शकुनि ने हठ करके उसके शोक का कारण पूछा।

तब दुर्योधन ने कहा—अर्जुन के शस्त्रबल को पाकर युधिष्ठिर ने सम्पूर्ण पृथ्वी को अपने वश में कर लिया। इन्द्र के समान उनके इस महायज्ञ को और ऐश्वर्य को देख कर मेरा हृदय जल रहा है। हे मामा! कृष्ण ने सभा के बीच राजा शिशुपाल को मार डाला और सब राजा मुँह ताकते रह गये। पाण्डवों के डर से किसी ने उसका प्रतीकार न किया, बल्कि उपहार में अशेष धन रत्न दिया।

पाण्डवों की इस श्रीवृद्धि देख कर मैं क्रोध की आग से जल रहा हूँ। इस जलन की अपेक्षा विष खा कर अथवा अग्नि में प्रवेश करके मर जाना मैं अच्छा समझता हूँ। कौन आत्माभिमानी पुरुष अपने शत्रु की वृद्धि को देख कर और अपनी कमज़ोरी देख जीवित रह सकता है? मैंने इसे सह लिया है, इसलिये न स्त्री ही हूँ न पुरुष; क्योंकि यह व्यवहार नामर्दों का है। यदि स्त्री होता तो ऐसी दुर्दशा ही क्यों सहता? और पुरुष होता तो इस सङ्कट से बचने का उपाय करता। मेरे पहले के किये हुए सारे प्रयत्न व्यर्थ हो गये और पाण्डवों ने सार्वभौम आधिपत्य जमा लिया। पाण्डवों का वैभव देख कर और उनकी की हुई हँसी को समझ कर मैं रात दिन अग्नि के समान जल रहा हूँ। इसलिये हे मामा! यह सब हाल आप युधिष्ठिर से कह दीजियेगा और मैं अब यमपुर को प्रस्थान करना चाहता हूँ।

दुर्योधन की इस बात को सुन कर शकुनि ने कहा—हे दुर्योधन! राजा युधिष्ठिर से तुम्हें क्रोध न करना चाहिये। उनके वैभव को तुम अपना ही समझो। निरपराध उनके मारने के लिये तुमने अनेक प्रयत्न किये, किन्तु वे भाग्य से बच गये। अब तो उन्हें कृष्ण और द्रुपद जैसे सहायक मिले हैं। उनकी सहायता से तथा अपने पौरुष से पाण्डवों की वृद्धि हुई है, इस विषय में तुम्हारा दुःखी होना व्यर्थ है। तुम अपने को दुर्बल और असहाय न समझो। तुम्हारे रणधीर सौ भाई, द्रोण, कर्ण, कृप, सोमदत्त आदि बड़े बड़े वीर तुम्हारे सहायक हैं इन लोगों की सहायता से तुम भी सम्पूर्ण पृथ्वी को जीत सकते हो।

शकुनि की बात से दुर्योधन कुछ शान्त हुआ और कहने लगा—हे मामा! तुम्हारे साथ तथा और मित्रों की सहायता से मैं पहले पाण्डवों को जीतना चाहता हूँ। उनके जीत लेने पर सम्पूर्ण राजे, पृथ्वी और वह सभा आप ही आप मेरे अधीन हो जायगी।

शकुनि ने कहा—हे दुर्योधन! कृष्ण, द्रुपद तथा अन्य भाइयों के साथ युद्धभूमि में खड़े हो जाने पर युधिष्ठिर को देव, दानव कोई भी नहीं जीत सकता। किसको किस प्रकार जीतना चाहिये, मैं जानता हूँ, उसे तुमसे कहता हूँ, खूब अच्छी तरह समझ लो।

दुर्योधन ने कहा—हे मामा! शीघ्र वह उपाय बतलाइये।

शकुनि ने कहा—युधिष्ठिर को जुआ खेलने का बड़ा शौक़ है पर वे उसमें निपुण नहीं हैं। जुआ के लिये आह्वान करने पर वे इनकार न करेंगे और मैं इस विद्या में खूब पण्डित हूँ। तीनों लोक में मेरे समान कोई जुआड़ी नहीं है, जो मुझे हरा सके। राज्य के साथ उनके सारे वैभव को मैं जीत लूँगा, पर इसके लिये धृतराष्ट्र की स्वीकृति परमावश्यक है।

दुर्योधन ने कहा—हे मामा! पिताजी से पहले आपही कहिये फिर अवसर देख कर मैं भी कहूँगा, क्योंकि पहले कहने की मेरी हिम्मत नहीं पड़ती।

हस्तिनापुर में पहुँचने पर शकुनि ने धृतराष्ट्र से यज्ञ का सारा वृत्तान्त कह सुनाया। फिर समय देख कर दुर्योधन से की हुई सलाह को कहने लगा।

शकुनि ने कहा—हे महाराज! दुर्योधन बहुत दुबले होते जाते हैं। जान नहीं पड़ता, कौन सा कारण है? रात दिन चिन्तित रहते हैं, शरीर विवर्ण हो गया है। आप अपने ज्येष्ठ पुत्र के शोक के कारण का विचार नहीं करते।

धृतराष्ट्र ने दुर्योधन को बुला कर कहा—हे पुत्र! तुम अपने शोक का कारण कहो। शकुनि से मुझे मालूम हुआ है कि तुम चिन्ता के मारे दुबले हुए जाते हो। मैंने सम्पूर्ण राज्य का अधिकार तुम्हें दिया है और तुम्हारे भाई तथा मंत्रीगण तुम्हारी आज्ञा में रहते हैं। सुन्दर वस्त्र, आभूषण, स्वादिष्ट भोजन

तरह तरह के रथ, तथा सब प्रकार की सुख सामग्री तुम्हारे लिये उपस्थित है। प्रजा तुम्हारी आज्ञा को सादर शिरोधार्य करती है। हे पुत्र! फिर कौन सा कारण तुम्हारे दुखी होने का है?

दुर्योधन ने कहा—हे पिता! अवश्य ही अब तक मैं कापुरुषों की तरह भोजन, वस्त्र से ही सन्तुष्ट रहा। परन्तु हे पिताजी! जो राजा सन्तोष, दया, गर्व, भय धारण कर लेता है, उसे नष्ट हुआ समझिये। यह बड़े बड़े ऐश्वर्य मुझे नहीं रुच रहे हैं। सम्पूर्ण भोग और ऐश्वर्य सुख देने की अपेक्षा मेरे शरीर को जलाने के कारण हो रहे हैं। पाण्डवों के ऐश्वर्य और श्रीवृद्धि को जिस दिन से मैंने देखा है, उस दिन से अपनी हीनता को समझ कर मैं क्षीण हुआ जा रहा हूँ। युधिष्ठिर के यहाँ नित्य अठासी हज़ार गृही और स्नातक ब्राह्मण सुवर्ण के पात्र में भोजन करते हैं, असंख्य हाथी, घोड़े, रथ तथा रत्नों से उनका भाण्डार भरा हुआ है, बड़े बड़े राजों ने आकर उन्हें वैश्यों की भाँति कर दिया है मैंने आज तक इस प्रकार धन का आना कहीं नहीं देखा। भाँति भाँति के रत्नों से जटित अद्भुत सभा मंडप को देख कर मेरे मन में बड़ा क्षोभ उत्पन्न हो गया है। नित्य असंख्य विद्वान् ब्राह्मण उनकी स्तुति किया करते हैं। देवताओं के समान उनके वैभव को जिस दिन से मैंने देखा है, तभी से मैं वेचैन हूँ। मुझे किसी प्रकार शान्ति नहीं मिल रही है।

शकुनि ने अच्छा मौका देख कर फिर कहना आरम्भ किया। हे दुर्योधन। पाण्डवों की अतुल लक्ष्मी जो तुमने देखी है, उसे हर लेने का मैंने एक नवीन यत्न सोचा है, उसे सुनो। युधिष्ठिर को द्यूत क्रीड़ा बहुत प्रिय है, पर उस में वे चतुर नहीं है। मैं उस विद्या में पूर्ण पण्डित हूँ, इसलिये उन्हें बुलाओ और मैं कपट से उनकी ऋद्धि सिद्धि सब जीत लूँगा!

दुर्योधन ने शकुनि की बात सुन कर बड़ी आतुरता के साथ पिता से कहा—हे पिताजी! मामा शकुनि जुआ खेलने में बड़े उस्ताद हैं वे पाण्डवों को जीत लेंगे इसलिये उन्हें बुलाइये।

धृतराष्ट्र ने कहा—हे पुत्र! हमारे विदुर मन्त्री बड़े बुद्धिमान् हैं, उनकी सलाह लेकर तब मैं जूआ खेलने के लिये कहूँगा।

दुर्योधन ने कहा—बिदुर जुआ खेलने की कभी सलाह न देंगे और बिना इसके मैं प्राण त्याग कर दूँगा। मेरे न रहने पर विदुर को लेकर आप सुखसे राज्य करें।

दुर्योधन के आर्त्त वचन को सुन कर धृतराष्ट्र ने जुआ खेलने की आज्ञा दे दी। नौकरों को बुलाकर उन्हों ने कहा—

मणियों से जड़े हुए सोने के हज़ार खम्भे लगाकर परम सुन्दर एक सभाभवन तैयार कराओ। उसमें सौ दरवाजे हों उसकी मनोहरता में किसी बात की कसर न रहने पावे।

दुर्योधन के प्रसन्न होकर चले जाने पर धृतराष्ट्र ने विदुर को बुलवाया और इस प्रकार बोले—

हे विदुरजी! मैंने दुर्योधन को पण्डवों के साथ जुआ खेलने की आज्ञा दे दी है। आप इसके गुण दोष को बतलाइये।

विदुर ने कहा—हे राजन! मैं आप के इस कार्य का अनुमोदन नहीं कर सकता। इससे बड़े भयङ्कर भेद के उठने की सम्भावना है पुत्रों में जैसे भेद न पड़े, वही कीजिये।

धृतराष्ट्र ने कहा—हे विदुर! ईश्वर से यही प्रार्थना है कि पुत्रों में भेद न पड़े। अब चाहे अशुभ हो या शुभ जुआ खेलना तो निश्चित हो चुका। हे विदुर! आप, मैं, भीष्म, और द्रोण पुत्रों के पास बैठे रहेंगे, तो अनीति न होने पावेगी। आप इन्द्रप्रस्थ में जाइये और युधिष्ठिर को मेरे पास बुला लाइये। पर इस सलाह को उनलोगों से प्रगट न कीजियेगा।

धृतराष्ट्र की बात सुन दुखी होकर विदुर भीष्म के पास चले गये। विदुर की बात सुन कर धृतराष्ट्र ने दुर्योधन को एकान्त में बुला कर इस प्रकार कहा—

हे पुत्र! विदुर बड़े बुद्धिमान् हैं, उनकी सम्मति जुआ खेलने की नहीं है, वे हमारे अहित की बात कदापि न कहेंगे। इसलिये उनकी हितकर सलाह मानलो और जुआ मत खेलो। जुआ में मुझे बड़ा अनर्थ दिखाई पड़ता है। इससे भाइयों में बड़ा भेद बढ़ेगा और राज्यनाश हो जायगा। तुम विद्वान् हो, अपने माता-पिता के धर्म का अनुसरण करो। तुमने अलभ्य राज्यपद पाया है, इसकी वृद्धि करना तुम्हारा धर्म है। व्यर्थ शोक न करो। शोक के यदि और कोई कारण हो तो मुझसे कहो।

दुर्योधन ने कहा—हे पिता! पाण्डवों का जाज्वल्य मान तेज मुझसे नहीँ सहा जाता है। अगणित राजाओं का आकर उन्हें कर देना, अनुपम सभा का सौन्दर्य और राजसूययज्ञ मुझे बेचैन किये हैं। इतनाही नहीं, युधिष्ठिर की सभा में मुझे जो अपमान सहना पड़ा है, उसका बदला लिये बिना मेरा जीना व्यर्थ है। सभा में पाण्डवों का हँसना मेरे हृदय में काँटे की तरह चुभ रहा है। विदुर तो शत्रुओं के पक्षपाती हैं, उनकी बातों को मान कर आप मेरी वृद्धि क्यों रोक रहे हैं? इस दुःख सहने की अपेक्षा तो मैं मर जाना ही अच्छा समझता हूँ।

धृतराष्ट्र ने कहा—हे पुत्र! जो तुम्हारी इच्छा हो वही करो। किन्तु पाण्डवों से व्यर्थ द्रोह न बढ़ाओ। ऐसा करने से पीछे बड़ा दुःख उठाना पड़ेगा।

फिर धृतराष्ट्र ने विदुर को बुलाकर कहा—हे विदुर दैवेच्छा बड़ी प्रबल होती है, जो होना होगा वह होगा, आप कृपा कर जाइये और युधिष्ठिर को बुला लाइये।

विदुर यह सुनकर दुखी मन से रथ पर चढ़े और इन्द्रप्रस्थ में जा पहुँचे। कुबेर के भवन के समान राजभवन में युधिष्ठिर के समीप गये। युधिष्ठिर ने विदुर का बड़ा सत्कार किया और बड़ी नम्रता से आने का कारण और धृतराष्ट्र आदि का कुशल पूछा।

विदुर ने कहा—हे युधिष्ठिर! धृतराष्ट्र दुर्योधन आदि प्रसन्न हैं और तुम्हारा कुशल पूछा है। आपकी सभा देख कर दुर्योधन ने भी एक सभाभवन बनवाया है। धृतराष्ट्र ने भाइयों समेत तुम्हें जुआ खेलने के लिये निमन्त्रित किया है। उनकी इच्छा है कि मेरे पुत्रों के साथ प्रेम से पाण्डव लोग जुआ खेलें। कहो, तुम्हारी क्या इच्छा है?

युधिष्ठिर ने कहा—हे महामति विदुर! कलह का मूल जुआ भला किसे प्रिय लगेगा? क्या आप इसे अच्छा समझते हैं।

विदुर ने कहा—हे राजन्! जुआ अनर्थ का मूल है, इसे मैं जानता हूँ। मैंने बहुत तरह से इसके रोकने का प्रयत्न किया, किन्तु धृतराष्ट्र ने हठ करके तुम्हें बुलाने के लिये मुझे भेजा है अब तुम लोग यहाँ अपने कल्याण का विचार कर लो।

युधिष्ठिर ने कहा—भला, यह तो बतलाइये कि उस जुए के खेल में कौन कौन सम्मिलित होंगे।

विदुर ने कहा—जुए में उस्ताद शकुनि, तथा और कितने ही चतुर जुआड़ी इकट्ठे होंगे।

युधिष्ठिर ने कहा—यद्यपि बड़े बड़े धूर्त्त वहाँ जुआ खेलने के लिये एकत्रित होंगे, तथापि द्यूत का आह्वान सुन कर मैं पीठ नहीं दिखा सकता और धृतराष्ट्र की आज्ञा है जिसका मानना मेरे लिये सर्वथा उचित है।

इस प्रकार विदुर से बातें करके रानियों और भाइयों के साथ युधिष्ठिर हस्तिनापुर को चले। वहाँ पहुँच कर धृतराष्ट्र, भीष्म, द्रोण, गान्धारी आदि सबसे यथायोग्य मिले। पाण्डवों के पहुँचने पर हस्तिनापुर में ख़ूब हर्ष मनाया गया। धृतराष्ट्र की बहुएँ द्रौपदी को बड़े आश्चर्य से देखने लगीं। सन्ध्यावन्दन करके नित्य नैमित्तिक कार्य समाप्त कर पाण्डव लोग उत्तम सेजों पर सोये। प्रातः काल उठ कर आह्निककर्म किया, चन्दन लगा कर तथा सुन्दर वस्त्राभूषण पहन कर यथासमय सभा भवन में गये। वहाँ उपस्थित राजाओं से यथायोग्य मिल कर उत्तम आसनों पर जा बिराजे।

तब शकुनि ने कहा—हे युधिष्ठिर! सभा में चौपर बिछी है, सब राजा लोग तुमको जोह रहे हैं। आओ, अब जुआ खेलना प्रारम्भ किया जाय।

युधिष्ठिर ने कहा—हे शकुनि! जुआ खेलना पाप का मूल है। इसमें अनीति, धूर्त्तता, छल भरा हुआ है। सज्जन लोग इसका सम्मान नहीं करते। कुमार्ग द्वारा आप मुझे जीतने का प्रयत्न न करें।

शकुनि बोला—हे राजा! जो मनुष्य अच्छी तरह जुआ खेलना जानता है, वह सब कर्मों में चतुर गिना जाता है। हारना, जीतना तो पासा के आधीन है। इसमें धूर्त्तता किस बात की है? तुम राजा हो, इससे मुँह मोड़ना उचित नहीं।

युधिष्ठिर ने कहा—बड़े बड़े महार्षियों ने जुए को पापकर्म कहा है। युद्ध में जीतना धर्म है और द्यूत में पाप। हे शकुनि! आप कपट करके मुझे जीतने का प्रयास न करें।

शकुनि ने कहा—बलवान् निबल को, पण्डित मूर्ख को जीत लेता है, इसे कोई कपट नहीं कहता। मुझे कपटी न बनाओ। यदि जुए से तुम्हें भय लगता हो, तो बहुत उत्तम होगा कि तुम न खेलो।

युधिष्ठिर ने कहा—रण और जुआ के लिये आह्वान करने पर मैं मुँह नहीं मोड़ सकता। जुआ खेलने में भाग्य बलवान् होता है। इसलिये उसी का भरोसा करके आज हम खेलेंगे। हमारे साथ जुआ खेलने को कौन तैयार है?

दुर्योधन ने कहा—हे युधिष्ठिर! बाज़ी हम लगावेंगे किन्तु तुम्हारे साथ खेलेंगे हमारे मामा शकुनि।

युधिष्ठिर ने कहा—बाज़ी दूसरा लगावे और खेले दूसरा यह तो उचित नहीं। अच्छा, जो होना होगा, होगा। खेल आरम्भ करो।

जुआ का प्रारम्भ होना सुन कर धृतराष्ट्र, भीष्म, द्रोण, कृप, विदुर आदि दुःखित होकर वहाँ आये। खेल शुरू हुआ।

युधिष्ठिर ने कहा—यह मणिमाला मैं दाँव पर रखता हूँ इसी के योग्य तुम भी दाँव रक्खो।

दुर्योधन ने कहा—लीजिये, इन मणियों को उसके बराबर मैं रखता हूँ। अहङ्कार दिखाने की आवश्यकता नहीं। खेल आरम्भ कीजिये।

तब शकुनि ने पासा फेंककर कहा—दुर्योधन जीत गये। युधिष्ठिर ने कहा—सोने से भरे हुए एक हज़ार घड़े मैं दाँव पर रखता हूँ।

शकुनि ने पासे फेंक कर उन्हें भी जीत लिया।

युधिष्ठिर ने कुछ क्रोधित होकर कहा—लो अब की बार मैं अपने अनन्त धन राशि को दाँव पर रखता हूँ, जीतो।

शकुनि यह सुन कर बड़ा प्रसन्न हुआ और बोला यह देखो मैं जीत गया।

युधिष्ठिर बार बार हारने से बहुत उत्तेजित हो उठे और उन्हों ने धन, रत्न, दास, दासी, हाथी, घोड़े, रथ, बड़े बड़े सैनिक योद्धा, एक एक करके सब दाँव में लगाया किन्तु सब हार गये। कपटी शकुनि ने अपनी बेईमानी से युधिष्ठिर की सारी सम्पति जीत ली।

सर्वस्वहारी जुए ने जब इस प्रकार घोररूप धारण किया, तब महामति विदुर से न रहा गया और वे बोले—

हे राजा धृतराष्ट्र! पहले ही मैंने आपको रोका, पर आपने न माना। ठीक है, असाध्य रोगी को औषधि नहीं रुचती। फिर भी एक बार मैं आपसे कहता हूँ सुनिये। इस कुलघालक दुर्योधन के उत्पन्न होते ही बड़े बड़े अशकुन हुए थे, जन्म लेते ही यह सियार की तरह रोया था। अवश्य यह कुरुवंश के नाश का कारण होगा। ताड़ी के लोभ से मनुष्य वृक्ष पर चढ़ जाता है, पर उससे उत्पन्न होनेवाली दुर्दशा का ध्यान नहीं रहता। वैसेही तुम्हारा पुत्र जुए में मस्त होकर पाण्डवों से बैर कर रहा है और उसके बुरे परिणाम को नहीं विचार रहा है। भोज, अन्धक, यादवों ने मिल कर दुरात्मा कंस का त्याग कर दिया था और वह अपने दुष्कर्म के कारण कृष्ण से मारा गया। और भी कितने ही राजा ने साम्राज्य और कुल की रक्षा के लिये पुत्र त्याग दिये हैं। इसलिये तुम भी इस दुरात्मा का त्याग कर दो। हे राजा! पाण्डवों से व्यर्थ द्रोह न बढ़ाओ; क्योंकि इससे तुम्हें पीछे बहुत पछताना पड़ेगा। पाण्डव निरपराध हैं, उनके साथ छल करना उचित नहीं। शकुनि जुआ में बहुत चतुर है, यह समझ कर और पुत्रों को जीत से प्रसन्न मत हो। इस दुष्ट शकुनि से कह दीजिये कि अपनी राजधानी को चला जाय।

यह सुन कर दुर्योधन क्रोध से कहने लगा—हे विदुर! दूसरों की स्तुति करके तुम हमारी निन्दा कर रहे हो। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि तुम पाण्डवों के पक्षपाती हो। अपने स्वामी की निन्दा करते हुए तुम्हें पाप से भय नहीं लगता? तुम धर्म की ओट में बराबर हम लोगों को कटु-वचन कहा करते हो। तुमसे हम किसी प्रकार का उपदेश नहीं सुनना चाहते। इस प्रकार तुम सब बातों में दखल न दिया करो। शत्रुपक्ष के समर्थन करनेवाले को अपने घर में बास न देना चाहिये। इसलिये हे विदुर! तुम्हें जहाँ रुचे वहाँ जाकर रहो।

विदुर ने कहा—हित और प्रिय कहनेवाले और सुननेवाले दोनों दुर्लभ हैं। यदि मेरी बात तुम्हें अप्रिय लगती है तो जो तुम्हे रुचे करो, मैं कुछ न कहूँगा।

इधर युधिष्ठिर जुआ में मस्त थे, उन्होंने इन बातों को नहीं सुना। शकुनि ने कहा—हे युधिष्ठिर! अब तो तुम सारी सम्पत्ति हार गये, कुछ न हो तो खेल बन्द कर दें।

यह सुन कर युधिष्ठिर ने क्रोधित हो कहा—हे शकुनि! अभी मेरे पास धन की कमी नहीं है। यह कह कर उन्होंने बचे हुए धन रत्न तथा पहनेहुए गहने उतार कर दाँव पर रख दिये और हार गये।

तब विचारशून्य होकर युधिष्ठिर ने कहा—हे शकुनि! अब मैं अपने प्यारे दोनों छोटे भाइयों को दाँव पर रखता हूँ।

शकुनि ने पासा फेंक कर जीत लिया और बोला—तुम्हारे प्यारे भाई माद्री पुत्रों को मैंने जीत लिया। भीम और अर्जुन को इसी प्रकार दाँव पर रखने की हिम्मत तुम न करोगे, क्योंकि वे तुम्हें बहुत प्यारे हैं।

युधिष्ठिर ने कहा—हे शकुनि! भाइयों में फूट पैदा करनेवाली अधर्म और अनीति की बातें

तुम कह रहे हो। लो, मैं अपने इन प्यारे भाइयों को भी दाँव पर रखता हूँ। पासा फेंको शकुनि ने प्रसन्न होकर पासा फेंका और उन्हें भी जीत लिया। युधिष्ठिर भाइयों के हार जाने पर पागल से हो गये और अपने को भी दाँव पर रख कर हार गये।

दुरात्मा शकुनि पाँचों भाइयों को जीत कर मनहीं मन प्रसन्न हुआ और फिर इस प्रकार कहने लगा—

हे युधिष्ठिर! तुमने तो बड़ा भारी पाप किया है जो द्रौपदी को बचा कर स्वयं हार गये। यह तो उचित नहीं हुआ संसार तुम्हें क्या कहेगा। मैं तुमको दाँव पर रखता हूँ तुम द्रौपदी को दाँव पर रख कर अपने को छुड़ाओ।

युधिष्ठिर ने कहा—हे शकुनि! परम सुन्दरी, प्रिय भाषिणी, लक्ष्मी रूपा द्रौपदी को मैं दाँव पर रखता हूँ, जीतो।

युधिष्ठिर की यह बात सुनकर सभा में बैठे हुए सब लोग उन्हें धिक्कारने लगे। राजा लोग क्षुब्ध हो गये। भीष्म, द्रोण, कृप आदि महात्माओं के शरीर से पसीना निकलने लगा। विदुर सिर थाम कर मुर्दे से हो गये और लम्बी साँस लेने लगे। अन्धे धृतराष्ट्र पुत्रों की जीत से प्रसन्न होकर बार बार पूछने लगे। क्या जीते कौन जीता? धृतराष्ट्र की सहानुभूति देख कर्ण, दुर्योधन आदि प्रसन्न हुए और लोगों की आँखों में आँसू आ गया। शकुनि ने प्रसन्न हो पासा फेंका और कहा कि मैं जीत गया। तब दुर्योधन बदला लेने की इच्छा से बोला।

हे विदुर! पाण्डवों की प्यारी द्रौपदी को जाकर ले आवो वह हमारे भवन में दासियों की तरह झाड़ू दे।

विदुर ने कहा—हे दुर्योधन! तू अपने नाश होनेवाले दुर्वचन मुख से कह रहा है। जान पड़ता है कालपाश से बँध कर तू भयङ्कर नरक में गिरना चाहता है। मृग की तरह तू सिंह के पास पहुँच कर उसे जगाना चाहता है। द्रौपदी दासी होने योग्य नहीं है फिर राजा जब स्वयं हार गये तो द्रौपदी को दाँव पर रखने का उन्हें कहाँ अधिकार था?

दुर्योधन ने विदुर की बात सुनकर उन्हें बहुत धिक्कारा और सूतपुत्र की ओर देख कर कहा—हे कर्ण! विदुर पाण्डवों से डरते हैं, तुम जाकर द्रौपदी को ले आओ। पाण्डव तुम्हारा कुछ न कर सकेंगे।

आज्ञा पाकर सूतपुत्र द्रौपदी के पास गया। डरता हुआ हाथ जोड़ कर इस प्रकार बोला—धर्मराज पागल होकर जुआ में तुमको हार गये हैं और दुर्योधन ने जीत लिया है। अब तुम वहाँ चलो और दासियों की तरह काम करो।

द्रौपदी ने कहा—हे सूतपुत्र! तुम क्या कह रहे हो? क्या कोई राजा स्त्री को दाँव पर रख कर हार सकता है? क्या धर्मराज के पास जुआ खेलने को और धन नहीं था?

सूतपुत्र बोला—हे द्रौपदी! युधिष्ठिर पहले सब धन और भाइयों को हार कर तब अपने को भी दाँव पर लगा कर हार गये। फिर तुम्हें भी दाँव पर रख कर हार गये।

द्रौपदी ने कहा—तुम सभा में जाकर धर्मराज से पूछो कि पहले हमें हारे हैं या अपने को। यह जानकर तब मैं चलूँगी।

सूतपुत्र लौट कर सभा में आया और युधिष्ठिर से द्रौपदी का प्रश्न पूछा। उस की बात सुन कर युधिष्ठिर बहुत दुखी हुए, कुछ कह न सके।

दुर्योधन ने कहा—हे सूत ! द्रौपदी से जाकर कह दो कि वह सभा में आकर इस प्रश्न को पूछे ।

सूतपुत्र फिर द्रौपदी के पास गया और हाथ जोड़ कर कहने लगा—पापी दुर्योधन तुम्हें सभा में बुला रहा है ।

द्रौपदी ने कहा—हे सूत ! हमारे भाग्य में यही था । संसार में धर्म ही सबसे बड़ा है । इसलिये तुम जाकर सभ्यों से पूछ आओ कि इस समय धर्म के अनुसार हमारा क्या कर्त्तव्य है ?

सूतपुत्र ने जाकर सभा में फिर ज्यों का त्यों कह सुनाया । दुर्योधन के दुराग्रह को समझ कर सिर नीचे करके सब चुप रह गये । कोई कुछ न बोला ।

दुर्योधन के हठ को देख कर युधिष्ठिर ने छिपे छिपे दूत भेज कर द्रौपदी से कहला दिया कि एकवस्त्रा रजस्वला की अवस्था में चली आओ और धृतराष्ट्र से अपना दुःख कहो ।

सूतपुत्र फिर कहने लगा—हे सभासदो ! द्रौपदी से जाकर मैं क्या कहूँ ?

दुर्योधन ने कहा—हे दुःशासन ! सूतपुत्र भीम से डरता है । तुम जाकर द्रौपदी को ले आओ । पाण्डव बेबश हैं, वे कुछ नहीं कर सकते ।

दुष्ट दुःशासन शीघ्र द्रौपदी के पास पहुँचा और बोला—हे द्रौपदी ! अब तुम लाज छोड़ कर मेरे साथ सभा में चलो ।

यह सुन कर द्रौपदी आँसू पोंछती हुई उठी और डरती हुई दुःशासन के साथ धृतराष्ट्र की सभा में चली । लाज वश वह गान्धारी के पास जाना चाहती थी कि दुःशासन ने उसके केश पकड़ लिये और खींच कर सभा में ले चला । द्रौपदी ने नीचे मुँह करके हाथ जोड़ दुःशासन से इस प्रकार कहा—

हे दुःशासन ! इस समय ऋतुमती होने के कारण मैं एकवस्त्रा हूँ । मेरे ऊपर कृपा करो, सभा में न ले चलो ।

दुरात्मा दुःशासन ने कहा—एकवसना हो, चाहे विना वस्त्र के हो, तुम जुए में जीती हुई हमारी दासी हो । हमारी आज्ञानुसार तुम्हें काम करना होगा । यह कह कर बाल पकड़े घसीटता हुआ सभा में ले आया । द्रौपदी अनाथ की तरह विलाप कर रही थी ।

रानी द्रौपदी को जिसके बाल राजसूययज्ञ में अवभृथस्नान से पवित्र किये गये थे, दुःशासन द्वारा खींचा जाना देखकर सभा में बैठे हुए लोग व्याकुल हो गये ।

ज़ोर से खींचे जाने से द्रौपदी के बाल बिखर गये, वस्त्र भी कुछ खिसक गया, लाज और भय से क्षुभित होकर क्रोध से भरी हुई द्रौपदी इस प्रकार कहने लगी—

हे नराधम ! इस सभा में धर्म के जाननेवाले बड़े बड़े राजा और मेरे गुरुजन बैठे हुए हैं और मेरा रूप यहाँ आने के योग्य नहीं है । हे अनार्य ! इस अवस्था में मुझे तू क्यों खींच लाया ? जब राजपुत्र (पांडव) कोप करेंगे, तो तेरा कौन सहायक होगा ? हे दुष्ट ! मेरा बाल पकड़ कर खींचते हुए तेरी कोई निन्दा नहीं कर रहा है ! भरतवंशियों के रहते मेरी यह दशा ! धिक्कार है ।

इस प्रकार कहती हुई द्रौपदी पाण्डवों की ओर तिरछे देख कर उनके क्रोधाग्नि को प्रज्वलित करने लगी । दुष्ट दुःशासन ने देखा कि द्रौपदी पाण्डवों की ओर देख रही है, तब उसने ज़ोर से बालों को पकड़ कर खींचा । यह देख कर कर्ण, दुर्योधन, शकुनि आदि परम प्रसन्न हुए । दुःशासन द्रौपदी को दासी कह कर हँसने लगा । यह दशा देख पाण्डवों को अपार वेदना हुई, वे पागल से हो गये ।

तब भीष्म बोले—हे पुत्री! पराधीन पुरुष किसी वस्तु को अपनी कह कर दाँव पर नहीं लगा सकता। युधिष्ठिर पहले अपने को हार चुके थे; परन्तु स्त्री सदा पति के आधीन है, इसलिये हम निश्चित रूप से नहीं कह सकते कि तुम धर्मानुसार दुर्योधन के अधीन हुई हो या नहीं। युधिष्ठिर धर्मज्ञ हैं, वेही इसका निर्णय कर सकते हैं, पर यह काम उन्होंने शकुनि के कहने से किया है।

द्रौपदी बोली—छल करके इन दुष्टों ने जुआ खेला है। धर्मराज कपट जानते नहीं। वे किस प्रकार मुझे हार गये? पहले अपने को हार कर फिर मुझे हारना न्यायसंगत नहीं है। सभा में सब बड़े बूढ़े बैठे हुए हैं, कोई मेरा उत्तर दे।

यह कह कर द्रौपदी रोने लगी और करुणापूर्ण दृष्टि से पांडवों की ओर देखने लगी। तब दु:शासन कटुबचन कहता हुआ द्रौपदी के अञ्चल को पकड़ कर खींचने लगा। द्रौपदी का अपमान भीम से न सहा गया और वे बोले—

हे धर्मराज! जुआरी घर की दासी तक को दाँव पर नहीं लगाता। आपने असंख्य धन रत्न को अपने प्यारे भाइयों को जो दाँव पर लगा दिया, इससे हमें क्रोध नहीं क्योंकि आप स्वामी हैं। परन्तु द्रौपदी का हारना सर्वथा अयोग्य है। आप ने यह बड़ा अनुचित काम किया, आप ही के अपराध से द्रौपदी का अपमान नीच कौरव कर रहे हैं। आप के दोनों हाथ भस्म कर देने से ही इस पाप से छुटकारा मिलेगा। हे सहदेव! जल्दी आग लाओ।

यह सुन कर अर्जुन बोले—हे भीम! बड़े भाई को ऐसे दुर्वचन पहले आप ने कभी नहीं कहे। क्या विकलता ने आप के धर्म को हर लिया? राजा ने शत्रु के आह्वान पर क्षत्रिय धर्मानुसार जुआ खेला और वे सर्वस्व हार गये।

भीम ने कहा—हे अर्जुन! इसी धर्म को समझ कर तो हमने अभी तक हाथ नहीं जलाया।

पांडवों के और द्रौपदी के दुःख को देख कर धृतराष्ट्र का पुत्र विकर्ण इस प्रकार बोला—

हे नरेशवृन्द! आप लोग द्रौपदी के प्रश्न पर विचार करें ऐसा न करके आप लोग पाप के भागी होंगे। द्रौपदी के रुदन पर किसी को दया नहीं आ रही है! बड़े बूढ़े सब चुप बैठे हैं।

इस प्रकार विकर्ण के कहने पर भी किसी ने कुछ उत्तर न दिया, तब विकर्ण क्रोध कर फिर कहने लगा।

राजा में चार व्यसन होते हैं—जुआ, शिकार, मद्यपान, विषय। राजा मदान्ध होकर इनमें फँस जाता है। इन व्यसनों में पड़कर जो काम किया जाता है, वह अधर्म है। युधिष्ठिर ने भी यही किया है इसलिये द्रौपदी का हारना न्यायोचित नहीं। फिर द्रौपदी पाँचों पाण्डवों की स्त्री है, अकेले युधिष्ठिर कैसे हार सकते हैं? द्रौपदी कदापि जुए में नहीं जीती जा सकती।

यह सुन कर सभा में विकर्ण की प्रशंसा होने लगी। सभासदों ने जोरों में विकर्ण की बात का समर्थन किया। जब शोर कुछ शान्त हुआ, तब कर्ण आवेश के साथ कहने लगा—

हे विकर्ण! कुरुवृद्ध, नरेशगण तथा सभासद द्रौपदी की बात सुनकर चुप रहे। इसका कारण यह है कि द्रौपदी का जुए में हारा जाना न्यायोचित था। तुम लड़कों की तरह अकुला कर सभासदों को चञ्चल करना चाहते हो, यह उचित नहीं। तुम धर्म के मार्ग को भली भाँति नहीं जानते। युधिष्ठिर ने जब सर्वस्व दाँव पर लगा दिया, तो द्रौपदी को भी अवश्य हार सकते हैं। पाण्डवों का चुप रहना इसका प्रमाण है। क्या तुम समझते हो कि द्रौपदी को एकवस्त्रा होने पर भी सभा में लाया जाना उसके लिये लज्जा की बात है? कदापि नहीं। सुनो, स्त्रियों के एक पति हुआ करते हैं, इससे अधिक

हों तो यह व्यभिचारिणी कही जाती है। जिसके पाँच पति हों, संसार में उसके लिये लज्जा का स्थान कौन है? हे दुःशासन! विकर्ण बालक है, उसकी बात क्या सुनते हो। पाण्डवों के डुपट्टे और द्रौपदी का चीर छीन लो।

कर्ण की बात सुनकर नीच दुःशासन द्रौपदी का चीर खींचने लगा। एकही साड़ी पहने हुए द्रौपदी सभा में अत्यन्त दुःखी होकर आर्त्तनाद करने लगी। कोई सहायक न देखकर शोक से विकल हो पुकारने लगी—हे कृष्ण! हे द्वारकावासिन्! हे यादवनन्दन! कहाँ हो? हे व्यापक! करुणा निधे! मेरी लाज रक्खो। दीनवन्धु! त्रिभुवननाथ! शरणागत अनाथा द्रौपदी के धर्म की रक्षा करो। दीन की विनय को सुन कर दीनानाथ आये। द्रौपदी का वस्त्र बढ़ने लगा। सब सभासद द्रौपदी को वस्त्ररूप देख रहे थे। रंग बिरंगे मनोहर वस्त्रों की ढेरी लग गई।

चारों ओर से जय जय शब्द होने लगा। सब ने दुःशासन को धिक्कार कर रोका। दुःशासन भी वस्त्र खींचने से थक कर बैठ गया।

भीमसेन से न रहा गया। उनका क्रोध उबल पड़ा वे गर्ज कर इस प्रकार कहने लगे—

संसार भरके क्षत्रिय मेरी बात सुनलें। मैं शपथपूर्वक कहता हूँ, जो इस नीच, दुराचारी, दुःशासन की छाती को फाड़ कर संग्रामभूमि में इसके रुधिर का पान न करूँ, तो मैं पूर्वजों की गति को न पाऊँ।

सभासद भीम की प्रशंसा और दुःशासन की निन्दा करने लगे। दुःशासन थक कर और लज्जित होकर बैठ गया। सभा में बड़ा हुल्लड़ मचा। इस अन्याय और अधर्म पर सब कौरवों की निन्दा करते थे। विदुर ने हाथ उठा कर सब को शान्त किया और इस प्रकार बोले—

हे सभासद! द्रौपदी के प्रश्न का उत्तर आपलोगों में से किसी ने न दिया। उस पर घोर अत्याचार किया गया। अधर्म होता देख कर चुप रहना भी पाप है। अब भी इसका निश्चय कर दीजिये कि युधिष्ठिर का द्रौपदी को हारना क्या धर्म था?

विदुर की बात सुन कर धृतराष्ट्र के भयसे कोई कुछ न उत्तर दे सका। तव दुर्योधन हँसता हुआ इस प्रकार बोला—

हे द्रौपदी! तुम अपने पाँचों पतियों से इस प्रश्न का उत्तर पूछो। यदि भीम, अर्जुन, नकुल सहदेव सभा में यह कह दें कि युधिष्ठिर हमारे स्वामी नहीं हैं, तो तुम्हारा छुटकारा हो सकता है और तुम दासीपन से छूट कर किसी एक के साथ आनन्द से रहो।

भीम ने कहा— हे दुर्योधन! धर्मराज यदि हमारे स्वामी न होते तो तुझे इस पाप का मज़ा चखा देता, वे हमारे स्वामी हैं।

भीष्म, द्रोण, विदुर ने भीम को समझा कर शान्त किया, युधिष्ठिर को चुप देख दुर्योधन ने हँसते हुए कहा—हे द्रौपदी! तुम मेरी जाँघों पर बैठो और परम सुख का उपभोग करो।

यह सुनकर भीमसेन के क्रोध की सीमा न रही, वे लाल लाल आँखें कर बोले—

हे सभासद! यदि युद्ध में अपनी गदा से दुर्योधन की जाँघ को मैं न तोड़ डालूँ तो पितृलोक से वञ्चित हो जाऊँ।

विदुर ने कहा—दुर्योधन ने नाशकारी जुआ खेला है। सभा में स्त्री पर घोर अत्याचार हो रहे हैं। भीम की दो भयङ्कर प्रतिज्ञाएँ हो चुकीं। हमारी समझ में युधिष्ठिर द्रौपदी को नहीं हार सकते थे। हे सभासद! आप लोग शीघ्र इसका निपटारा कर इस अशुभ काम को रोकें।



चीरहरण

दुःशासन दुर्दम्य बल, कौरवसभा मझार ।
चीर द्रौपदी हरत कोउ, वीर न करत गुहार ॥

और किसी के न बोलने पर दुर्योधन फिर कहने लगा—हे द्रौपदी ! भीम आदि चारों भाई युधिष्ठिर का स्वामित्व त्याग दें तो तुम दासीपन से छूट जाओ।

तब अर्जुन ने कहा—धर्मराज पहले हमारे स्वामी थे। अब वे स्वयं दूसरे के अधीन हैं, तब कैसे किसी के स्वामी हो सकते हैं ?

इतने में सभाभवन के पासही शृगाल, गदहे आदि भयङ्कर शब्द करने लगे और भी बहुत से अशकुन हुए। परिचारकों ने आकर यह ख़बर धृतराष्ट्र को दी। वे बहुत घबराये और पुत्र के हित के लिये उन्होंने स्वस्तिवाचन कराया। फिर उन्होंने दुर्योधन को डाँट कर कहा—

रे दुर्मति ! पाण्डवों की स्त्री के प्रति कैसे दुर्वचनों का व्यवहार कर रहा है ?

फिर द्रौपदी को भी शान्त करते हुए उन्हों ने कहा—हे द्रौपदी ! तू हमारी बहुओं में सर्व श्रेष्ठ है। जो तेरी इच्छा हो वह बर मुझसे माँग।

द्रौपदी बोली—यदि आप मुझे बर देना चाहते हैं, तो मेरे पाँचो पतियों को दासत्व से छुटकारा दीजिये।

धृतराष्ट्र ने तथास्तु कह कर पाण्डवों को स्वतन्त्र कर दिया, इस पर कर्ण कटाक्ष करता हुआ बोला—

आज तक मैंने स्त्रियों के बहुतेरे काम सुने थे, किन्तु आज दुःख समुद्र में डूबते हुए पाण्डवों का उद्धार द्रौपदी ने नाव बन कर किया है।

कर्ण की बात सुन कर भीम बोले—हाँ, स्त्री ने ही हमारा उद्धार किया है ! फिर धर्मराज से कहने लगे—हे आर्य ! यदि आप आज्ञा दें तो इस सभा में ही शत्रु का निपात कर डालूँ और इन सब के घमण्ड को धूल में मिलादूँ। तब आप निष्कण्टक होकर धर्म राज्य करें।

युधिष्ठिर ने भीमका हाथ पकड़ कर शान्त किया और धृतराष्ट्र के पास जाकर हाथ जोड़ कर कहने लगे—हे महाराज ! आपकी जो आज्ञा हो वही हम करें। हम आपकी आज्ञा में ही रहना चाहते हैं।

धृतराष्ट्र ने कहा—हे युधिष्ठिर ! जिससे सब वैमनस्य दूर हो जाय और तुम्हारा कल्याण हो वही करो। हारे हुए अपने सब धन को लेकर अपनी राजधानी को लौट जाओ और राज्य करो। हे पुत्र ! तुम धर्म को जानते हो, इसले मैं जो कहता हूँ वह ध्यान देकर सुनो। दुर्योधन के कटुवचन और बुरे व्यवहार को भूल जाओ। मेरे कहने से उसे क्षमा करदो। मेरी और गान्धारी की ओर देखो।

धृतराष्ट्र की आज्ञा पाकर पाण्डव लोग अपनी राजधानी को जाने के लिये तैयार हुए। यह ख़बर दुष्ट दुःशासन को मिली, वह मंत्री को साथ लेकर दुर्योधन के पास पहुँचा और रो कर कहने लगा—

हे भाई ! जिस धन को हमने बड़े दुःख से अपने वश में किया था, वृद्ध पिता ने उसे नष्ट कर दिया। सब धन सम्पत्ति लेकर शत्रु चला गया।

यह सुन कर कर्ण शकुनि को साथ लिये हुए दुर्योधन पिता के पास गया और इस प्रकार बोला—

हे तात ! आपने वह नीति नहीं सुनी है, जिसे बृहस्पति ने इन्द्र से कही है ? साँप को क्रोधित करके और उसी के बीच में रह कर क्या कोई बच सकता है ? नाना रथों पर चढ़े हुए महारथी

पाण्डव लोग कुरुकुल के नाश करने का विचार कर रहे हैं। हम से वे बहुत अपमानित हो चुके हैं; इसका बदला लिये बिना न छोड़ेंगे। अर्जुन धनुष का टङ्कार करते हुए जा रहे हैं। द्रौपदी के साथ जो दासियों के समान व्यवहार हो गया है, उसे वे कदापि न भूलेंगे। इसलिये मेरा विचार है कि उनके इस उद्योग का मार्ग ही बन्द कर दिया जाय। उनके साथ फिर जुआ खेलने की आवश्यकता है। इस बार ऐसा दाँव लगाया जाय जिससे दोनों में किसी प्रकार क्रोध का अवसर न आने पावे। दाँव यह हो कि हम या वे जो हारें वह बारह वर्ष वनवास करे। शकुनि—इस विद्या के पण्डित—अवश्य ही जीत लेंगे। फिर भी, यह क्रम आगे तक चल सकता है और कोई विमनस्कता की बात नहीं।

धृतराष्ट्र ने कहा—दूत भेज कर पाण्डवों को बुलवा लिया जाय। इस पर भीष्म, द्रोण, विदुर, अश्वत्थामा आदि ने तथा विकर्ण आदि धृतराष्ट्र के पुत्र ने, फिर जुआ खेलने को हानिकर बतलाया और कहा कि, यह नीति धर्मविरुद्ध है और बड़े उपाय करने पर शान्ति हो चुकी है, वह फिर भङ्ग न की जाय। कुशल शान्ति स्थापन में है।

परन्तु, पुत्र पर प्रेम करनेवाले अन्धे राजा ने इन लोगों की बातों को अनसुनी करके जुआ खेलने के लिये पाण्डवों को बुलवा ही लिया।

गान्धारी पुत्र की दुर्नीति से जल ही रही थी, यह सुन कर और भी शोकाकुल हो गई। उसने पति से कहा—

हे आर्य! दुर्योधन के जन्मते ही पण्डितों ने कहा था कि इसे त्याग देना चाहिये। इसका पापाचरण और दुर्नीति कई बार आप देख चुके। अभी कल की बात है, द्रौपदी का इसने कितना भयङ्कर अपमान किया है। किस भलाई के लिये आप इस कुलघातक दुर्योधन की बात मान रहे हैं? हे राजा! अपने ही दोष के जल में न डूबिये। इसकी बात न मानिये। पाण्डवों को बुलाकर कौरव, पाण्डव-सेतुबन्धन कर दें, इसे तोड़ें नहीं। यदि दुर्योधन आप की आज्ञा न माने तो उसे निकाल दीजिये। गान्धारी ने बहुतेरी नीति की बातें कहीं, पर धृतराष्ट्र की समझ में न आईं।

धृतराष्ट्र ने उद्विग्न होकर कहा—प्यारी! कुल के नाश का समय आ जायगा तो हम उसे टाल भी न सकेंगे। तुम्हारी बातें मानने में मैं विवश हूँ, पुत्रस्नेह नहीं छोड़ा जा सकता। प्राणाधिक पुत्रों के विरुद्ध हम से कोई काम न होगा।

दुर्योधन पिता की आज्ञा पाकर पाण्डवों के पास गया और युधिष्ठिर से कहा—

हे युधिष्ठिर! अभी सारे सभासद उपस्थित हैं। पिताजी की आज्ञा है कि जाने के पहले एक बार आप लोग फिर जुआ खेल लें।

इसे सुन कर युधिष्ठिर ने कहा—सुख-दुःख भाग्यवश मिलता है, उसकी निवृत्ति अपने अधीन नहीं। मैं यह जानता हूँ जुआ महान क्षयकारी है, परन्तु वृद्ध के आह्वान को भी नहीं त्याग सकता। भाग्यवश श्रीरामजी भी सुवर्णमृग के लोभी हो गये थे। हे दुर्योधन! विपत्ति जब निकट होती है, बुद्धि विपरीत हो जाती है। यह कह कर युधिष्ठिर चारों भाइयों के साथ शकुनि की नीचता पर विचार करते हुए सभा में आये।

शकुनि ने कहा—हे धर्मराज! वृद्ध महाराज के लौटाये हुए धन के विषय में हमें कुछ नहीं कहना है। अब की भिन्न प्रकार का जुआ खेला जाय। जुए में तुम या हम जो हारे वह मुनि का रूप धर कर बारह वर्ष बन में भ्रमण करे और एक वर्ष छिप कर रहे। अज्ञातवास के समय जो पता लग जाय तो बारह वर्ष फिर बनवास करे।

यह सुन कर सारे सभासद हाथ उठा कर कहने लगे—इन भाइयों को धिक्कार है, जो सत्य बात कहने में डरते हैं। युधिष्ठिर इस भयङ्कर दाँव के परिणाम को नहीं समझ रहे हैं।

पर युधिष्ठिर ने सोचा—न खेलने से लोग अनभिज्ञ जान कर निन्दा करेंगे। युधिष्ठिर का ज्ञान हत हो गया भवितव्यता सिर पर नाचने लगी। उन्होंने खेलना स्वीकार कर लिया। चतुर शकुनि ने पासा फेंका। पाण्डवों की हार हुई बनवास करना उनके सिर पड़ा।

पाण्डव लोग बन जाने की तैयारी करने लगे। उन्होंने छाल और मृगचर्म धारण किया। उनकी इस दशा को देख कर दुर्योधन आदि परम प्रसन्न हुए। नीच कुलाङ्गार दुःशासन द्रौपदी से इस प्रकार बोला—

हे द्रौपदी! मुनिवेष पाण्डवों से तुम्हें क्या सुख मिलेगा? हम कुरुवंशियों में से तुम किसी को पति बना लो। जिससे तुम जुए में न हारी जाओ।

भीम ने कहा—रे बर्बर नीच! सौबल की दुर्नीति पर तू घमण्ड करता है? जिस प्रकार वाग्बाण से तू इस समय हम लोगों को व्यथित कर रहा है, वैसे ही, एक दिन हम संग्रामभूमि में तुझे मर्म्माहत करेंगे। तुझे ही नहीं धृतराष्ट्र के जिन पुत्रों ने तेरा साथ दिया है शकुनि, कर्ण आदि सब को हम यमपुर न भेज दें तो हमारी गति न हो।

इस प्रकार भीम की बात सुन कर दुष्ट दुःशासन उनकी हँसी करके सभा में नाचने लगा। दुर्योधन भीम की चाल की नक़ल करके उनके पीछे चलने लगा।

यह भीम से न सहा गया। उन्हों ने पीछे घूम कर कहा—आज के तेरहवें वर्ष हम धृतराष्ट्र के पुत्रों का तथा अर्जुन कर्ण का और सहदेव शकुनि का वध करेंगे और जो राजे तुम्हारी सहायता को आवेंगे, उन्हें भी यमलोक ही शरण है।

अर्जुन ने कहा—उस समय तक जो रहेगा, वह इस व्यवसाय को देखेगा। अस्तु भीमसेन के कथनानुसार मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि अपने तीखे बाणों से सूतपुत्र कर्ण का वध करूँगा और जो राजे सहायक होंगे उनका भी संहार होगा। सूर्य चन्द्र अपनी प्रभा छोड़ दें, हिमवान् डोल जाय, पर मेरी प्रतिज्ञा झूठी नहीं हो सकती।

अर्जुन के ऐसा कहने पर सहदेव ने क्रोध करके कहा—

हे मामा शकुनि! भीम की आज्ञानुसार मैं प्रतिज्ञा करता हूँ। संग्रामभूमि में तुम्हें यम का अतिथि न बनाऊँ तो पितृलोक न मिले।

नकुल ने कहा—द्रौपदी के अपमान के समय जितने हँसनेवाले हैं, सबको मैं तलवार के घाट उतारूँगा।

इस प्रकार प्रतिज्ञा करके पाण्डव धृतराष्ट्र के पास गये। वहाँ युधिष्ठिर ने कहा—

हे धृतराष्ट्र! आप से, पितामह भीष्म, गुरु द्रोण, विदुरजी आदि सबसे अब हम विदा होते हैं। आज्ञा दीजिये, हम फिर आकर मिलेंगे।

किसी ने उत्तर न दिया। लज्जा से सबकी आँखें नीचे हो गईं। मनही मन सबने आशीर्वाद दिये।

विदुर ने कहा—हे पाण्डव! राजकन्या कुन्ती वृद्धा हैं और सुख से रही हैं, वे वनवास के योग्य नहीं हैं। उन्हें मेरे घर में रहने दो। तुम लोग जाओ, कुछ दिन में तुम्हारा मनोरथ सफल होगा।

पाण्डवों ने कहा—हे चाचा विदुरजी ! आप पिता के तुल्य हैं। आप की आज्ञा हम शिरोधार्य करते हैं और जो उचित हो, उसका उपदेश कीजिये।

विदुर ने कहा—हे युधिष्ठिर ! विपत्ति में धैर्य रखना यही बुद्धिमानों का धर्म है। तुमने जिस धैर्य से इस विपत्ति का सामना किया है, वह सदा बना रहे। तुम कुशलपूर्वक फिर लौट आओ।

विदुर से आशीर्वाद पाकर युधिष्ठिर ने अन्य गुरुजनों को भी प्रणाम किया और भाइयों के साथ चले। तब द्रौपदी ने कुन्ती के निकट जाकर प्रणाम किया और बन जाने की आज्ञा माँगी।

कुन्ती द्रौपदी को देख कर विह्वल हो गईं, वे दुःख से इस प्रकार कहने लगीं—

हे पुत्री ! इस कष्ट से तुम अधीर न होना। सुशीला स्त्रियों के चरित को स्मरण कर सुख से पाण्डवों की सेवा ही अपना धर्म समझना। इसमें सन्देह नहीं कि तुम्हारे सौजन्य से दोनों कुल की शोभा बढ़ गई है। कौरवों का भाग्य अभी प्रबल है नहीं तो इस अधर्म पर तुम्हारी क्रोधाग्नि से उन्हें भस्म हो जाना चाहिये था। हे पतिव्रता ! तुम्हारा मार्ग मङ्गलकारी हो। मेरे परम प्यारे नकुल और सहदेव पर विशेष ध्यान रखना।

कुन्ती की आज्ञा सादर ग्रहणकर द्रौपदी आँसू गिराती हुई बड़े दुःख से चली। जाते समय उसने अपने सिर के बाल खोल डाले। एक साड़ी ही उसके शरीर पर थी।

कुन्ती से यह दुःख न देखा गया। वह भी द्रौपदी के पीछे पीछे पाण्डवों के पास गईं और देखा कि वे लोग छाल और मृगचर्म धारण किये हैं, शत्रु प्रसन्न होकर उनकी इस दशा को देख रहे हैं। पाण्डवों का सिर लज्जा से नीचे झुका है। पुत्रों की इस दशा को देख कुन्ती दौड़कर उनसे लिपट गई और विलाप करने लगी—

उसने कहा—धर्म ही जिसका व्यवहार है, सदाचारही जिसका गहना है, जो ईश्वर में अनन्य भक्ति रखता है, वह ऐसी घनघोर विपत्ति में पड़े ! कैसा उलटा नियम है ? कुछ बात नहीं, यह हमारे ही प्रारब्ध का दोष है। तुम्हारे समान सद्गुणी पुत्रों को मुझ अभागिन की कोख से नहीं उत्पन्न होना चाहिये था। हाय ! मेरे लाल बन में कैसे बसेंगे ? तुम्हारे पिता धन्य थे, उन्हें यह दुःख नहीं देखना पड़ा। माद्री भी धन्य है जो पति के साथ ही पतिलोक को चली गई। हाय ! संसार में मेरे इस जीवन को धिक्कार है ! जान पड़ता है, ब्रह्मा मेरी मृत्यु लिखना भूल गये। नहीं तो यह दुःख देख कर मैं कैसे जी रही हूँ ! हे द्वारकावासी कृष्ण ! एकमात्र तुम्हीं मेरे सहायक हो। इस विपत्ति समुद्र से मेरा बेड़ा पार करो।

पाण्डवों ने इस प्रकार बिलाप करती हुई कुन्ती के पैर छुये विदुरजी कुन्ती को ले कर लौट आये और पाण्डवा ने वनको प्रस्थान किया।

धृतराष्ट्र पुत्रों की अनीति को विचार कर उद्विग्न हो चुप बैठे रह गये। जब उन्हें किसी प्रकार शान्ति न मिली, तब उन्होंने विदुरजी को बुलवा कर पाण्डवों के वनगमन का हाल पूछा—

उन्होंने कहा—हे विदुर जी ! पाण्डव लोग किस प्रकार से बनको गये हैं, यह सब मुझ से समझाकर कहिये।

विदुर ने कहा—हे धृतराष्ट्र ! युधिष्ठिर कपड़े से अपना मुँह मूँद कर सिर नीचा किये हुए गये हैं, नहीं तो उनकी दृष्टि के पुण्य प्रभाव से यह पापी राज्य जल जाता। भीम अपनी विशाल भुजाओं को देखते हुए गये हैं, मानो मनही मन वे यह विचार कर रहे थे कि इन्हीं भुजाओं से धृत-

राष्ट्र के पुत्रों का विनाश करेंगे। अर्जुन धूल उड़ाते हुए गये हैं, वे उस प्रकार रण में बाणों की वर्षा कर कौरवकुल का निपात करेंगे। नकुल और सहदेव शरीर में धूल पोत कर गये हैं, जिससे कोई पहचान न सके। उन लोगों के पीछे पीछे विशाल नेत्रवाली एकवस्त्रा द्रौपदी सिर के बाल खोले रोती हुई गई है। वह यह कह रही थी कि एक दिन मेरे पति के क्रोधाग्नि में कौरवों के भस्म हो जाने पर उनकी बहुओं की यही दशा होगी। कुरुवृद्धों को धिक्कार है, जिन्हों ने नीच दुर्योधन के मत में पड़कर निर्दोष पाण्डवों को बन में जाने दिया।

विदुरजी इस प्रकार कह रहे थे कि इतने में नारदजी आगये। देवर्षि ने क्रोध करके सभा में कहा—आज से चौदहवें वर्ष महा घोर युद्ध होगा। भीम और अर्जुन द्वारा कुरुवंश का नाश हो जायगा। इस प्रकार कह कर वे अन्तर्धान हो गये।

धृतराष्ट्र बहुत चिन्तित हुए लम्बी साँस लेने लगे। तब बुद्धिमान् सञ्जय ने कहा—जब आपने अपने हितैषियों की उत्तम सलाह न मानी, तब इस समय शोक किस काम का है? जब विनाश काल निकट आता है तब बुद्धि का लोप हो जाता है। आपके ही अपराध से भयङ्कर युद्ध का बीज बोया गया है। अब आपका शोक करना व्यर्थ है।

पाण्डवों के बन गमन करने पर हस्तिनापुर में बड़े अशकुन हुए। ब्राह्मणों ने क्रोध करके सायङ्काल में अग्निहोत्र नहीं किया। भीष्म, द्रोण, विदुर आदि बहुत चिन्तत हुए।

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय! विदुर ने मुझे बहुत कुछ समझाया, पर मोहवश मेरा ज्ञान नष्ट हो गया। मैंने विदुर की बात न मानी इससे मुझे अपना कर्त्तव्य नहीं सूझ रहा है।

इति

वनपर्व

पाण्डवों का वनगमन

धृतराष्ट्र के पुत्रों से जुए में हार कर जब पांडव लोग हस्तिनापुर से चले, तब इन्द्रसेन आदि पन्द्रह प्रधान भृत्य भी उनके साथ हो लिये।

पुरवासी यह ख़बर सुन कर बहुत क्रोधित हुए। भीष्म, द्रोण, कृप, विदुर, धृतराष्ट्र को दोषी बना कर कड़े शब्दों में उनकी निन्दा करने लगे।

उन्होंने कहा—कर्ण, दुःशासन, शकुनि, दुर्योधन, ये चारों चण्डाल चौकड़ी हैं। जब धृतराष्ट्र इन्हीं दुष्टों की सलाह से राज्य करते हैं, तो कुरुवंश, प्रजा, नगर, सबका नाश होना निश्चित है। जिस देश का राजा पापी हो, वहाँ कौन सुखी रह सकता है? इस प्रकार सब लोग बातें करते हुए युधिष्ठिर के पास गये और कहा—

हे धर्मराज! हम दुखियों को छोड़ कर आप कहाँ जाते हैं? अब हम लोग इस कुरुराज्य में न रहेंगे। जहाँ आप चलेंगे वहीं हम भी चलेंगे। आप के साथ भारी छल और अनीति की गई है। यह सुन कर हम बहुत व्याकुल हुए हैं। अपना भक्त समझ कर हम लोगों का त्याग न कीजिये।

युधिष्ठिर ने कहा—आप लोग हम पर इतनी प्रीति करते हैं, इसलिये हम अपने को धन्य समझते हैं। जब आप लोग हम पर इतना स्नेह करते हैं, तो कृपा कर हमारी बात भी सुन लें। पितामह भीष्म, चाचा विदुर और माता कुन्ती ये सब वृद्ध यहीं हैं, उन पर आप लोगों का ध्यान रखना परमावश्यक है। क्योंकि वे लोग बहुत शोकाकुल हैं, इसलिये उनको शान्ति देना आपका धर्म है। आप लोग मेरी बात मान कर लौट जाँय और उन लोगों की देख रेख करें, इसी में हम प्रसन्न होंगे। आप लोग इस काम को करके हमारा सत्कार करें।

धर्मराज ने समझा बुझा कर उन लोगों को लौटा दिया। उनके चले जाने पर पाण्डवलोग द्रौपदी के साथ रथ पर सवार होकर हस्तिनापुर से निकल कर उत्तर की ओर चले। सन्ध्या होते होते गङ्गाजी के तट पर पहुँच गये। वहाँ एक बड़े बरगद के नीचे विश्राम किया। केवल गङ्गाजल पीकर उन लोगों ने उस रात को बिताया। सबेरा होने पर जब वे सब चले, तब ब्राह्मणों ने आकर उनके साथ चलने को कहा।

युधिष्ठिर ने कहा—हे विप्रवृन्द! हमारा सब कुछ छिन गया, अब हमारे पास धन-सम्पत्ति कुछ नहीं रह गई। हम फल मूल खाकर वन में अपना दिन काटेंगे, हमारे साथ आप लोगों को बड़ा कष्ट होगा। फिर जङ्गल में बड़े बड़े हिंसक जन्तुओं का सामना करना पड़ेगा। आप लोगों का दुःख हम से न देखा जायगा, इसलिये कृपाकर लौट जाइये।

ब्राह्मणों ने कहा—हे राजन्! आप हमारे दुःख की चिन्ता न करें, हमें आप पर सच्चा स्नेह है, इसलिये साथ चलने दीजिये। हम लोग अपने भोजन का प्रबन्ध करलेंगे और पुराणों की कथा कह कर आपको प्रसन्न रक्खेंगे। युधिष्ठिर ने कहा—आपलोगों का कहना यथार्थ है, पर अपनी दीनता पर विचार कर हमें बड़ा क्लेश हो रहा है। निस्सन्देह आपलोगों के रहने से हमारे दुःख में कमी

होगी; किन्तु आप लोग भिक्षा माँग कर अपना निर्वाह करेंगे, यह हम से कैसे देखा जायगा? द्रौपदी के क्लेश और राज्यहरण से भाई लोग भी बहुत विकल हैं, वे कुछ कर न सकेंगे। हाय! यह दुःख सहा नहीं जाता है।

इस प्रकार कह कर धर्मराज पृथ्वी पर बैठ गये। उनका चित्त शोक से विह्वल हो गया। राजा को इस दशा में देख कर विप्रवर पुरोहित धौम्य समझाने लगे—

हे राजा! शोक करने के लिये अनगिनती दुःख की राशि हैं, पर वे मूर्ख को ग्रसती हैं; पण्डित के पास नहीं जातीं। कल्याण का अवरोध करनेवाला विचार और सदोष कर्म मूर्खों के होते हैं। आप के समान धर्मराज के पास नहीं टिक सकते। यम, नियम, प्राणायाम, आसन, धारणा, ध्यान, प्रत्याहार, समाधि, ये आठों और अङ्गों का विधि-पूर्वक होना, इनके साथ आपकी कल्याणकारी बुद्धि है। श्रुति, स्मृति में कहा है कि इनसे युक्त बुद्धिवाले को शारीरिक और मानसिक व्यथा नहीं होती। आपको दुःख न करना चाहिये।

हे धर्मराज! भगवान् सूर्य ही सांसारिक जीवों को अन्न देनेवाले हैं। इसलिये उनकी उपासना कीजिये, उनके प्रसन्न होने पर आप प्रजा और ब्राह्मण दोनों का भरण पोषण कर सकते हैं।

युधिष्ठिर ने इसे अङ्गीकार कर लिया। उन्होंने पुरोहित धौम्य द्वारा बतलाये हुए महास्तोत्र से भगवान् सूर्य को प्रसन्न किया। वे युधिष्ठिर के निकट आये और कहा—हे धर्मराज! तुम्हारा मनोरथ पूरा हो। हम तुम पर प्रसन्न हैं और यह ताम्रपिठर देते हैं, इससे तुम्हें नाना भाँति के भोज्य-द्रव्य मिलेंगे। पर प्रतिदिन यह बात द्रौपदी के भोजन के पूर्वही तक रहेगी। चौदहवें वर्ष तुम्हारा राज्य तुमको फिर मिल जायगा। यह कह कर सूर्य भगवान् फिर अपने लोक को चले गये। धर्मराज ने द्रौपदी को वह थाली देदी। इस उपकार के बदले युधिष्ठिर ने ब्राह्मण श्रेष्ठ धौम्य के चरण छुये।

द्रौपदी प्रतिदिन उसी थाली में भोजन बनाकर पहले ब्राह्मणों को जिमाती, फिर पति भोजन करते, तब आप प्रसाद पाती थी।

पाण्डव कुछ काल बाद ब्राह्मणों के साथ गङ्गा के किनारे से चलकर काम्यकबन में पहुँचे।

इधर पाण्डवों के बन में चले जाने पर धृतराष्ट्र ने फिर विदुर को बुलाया और इस प्रकार सन्देहयुक्त बातें करने लगे—

हे विदुर! तुम शुक्राचार्य के समान नीति के जाननेवाले हो। हमें ऐसी नीति बताओ जिससे शत्रु का मूलोच्छेद हो जाय।

विदुर ने कहा—हे राजा! सब वर्ण और राज्य का धर्म ही मूल है, आप धर्म में प्रवृत्त होकर अपने कुल का पालन करें। सभा में धर्म नष्ट हो गया है और पाप वृहत्काय होकर बढ़ रहा है। सभा में पाण्डवों को बुला कर, आपने अनीति से जुए में छल करके शकुनि की सहायता से पाण्डवों को पराजित कराया है। पाण्डवों के साथ अधर्म करनेवाले पापी पुत्रों को पाप से छुड़ाने का उपाय कीजिये। उनका सम्मान कर बाँटे हुए उनके आधे राज्य को उन्हें दे दीजिये। उनके सम्मान करने में ही सब प्रकार का कुशल है। ऐसा करने से आप के पुत्र बच जाँयगे, नहीं तो कुरुकुल का नाश हुआ समझो। हे राजा! उनका उन्हें लौटा देने में ही आपका नाम अमर होगा।

धृतराष्ट्र ने कहा—हे विदुर! तुमने जो पाण्डवों के हित की बात कही है, वह हमारे पुत्रों के लिये अहितकर है, इसलिये नहीं मानूँगा। तुम हमारे अहित की बात करते हो अतः तुम्हें जहाँ अच्छा लगे, वहाँ चले जाओ।

यह कह कर धृतराष्ट्र अन्तःपुर में चले गये । विदुरजी क्षुभित होकर पाण्डवों के पास चले ।

पाण्डव लोग गङ्गा के किनारे से चल कर सरस्वती नदी के किनारे काम्यकवन में दुःख से अपने दिन काट रहे थे । विदुरजी को आते देख कर युधिष्ठिर को बड़ा आश्चर्य हुआ । उन्होंने उठ कर विदुरजी का सत्कार किया । आदर के साथ बैठाकर आने का कारण पूछा ।

जो बातें राजा से हुई थीं विदुर ने सब कह सुनायीं । उन्होंने कहा—धृतराष्ट्र से त्यक्त होकर हम आपको यह ख़बर देने आये हैं, कि धर्म के अनुसार कार्यसिद्धि होने की सम्भावना नहीं है । तुम लोग धीरता से समय बिताते हुए अपने सहायकों को एकत्रित करो । यही तुम्हारे लिये अन्तिम उपाय है । यह सुन कर धर्मराज बोले—

हे विदुरजी ! देश, काल के अनुसार जो आप उपदेश देंगे हम उसका पालन आलस्य छोड़ कर करेंगे ।

इधर जब विदुर पाण्डवों के पास चले गये, तब धृतराष्ट्र ने चिन्ता से व्यथित हो सोचा कि विदुर की सलाह से अवश्य पाण्डवों का हित होगा । इसलिये सञ्जय को बुला कर कहा—

हे सञ्जय ! जाकर विदुर को बुलाओ, भाई विदुर के बिना मुझे चैन नहीं मिल रहा है । ऐसे धर्मात्मा भाई के बिना मैं जी नहीं सकता । उस निरपराध भाई का हमने मोह में पड़ कर अपमान किया है ।

राजा की आज्ञा मान कर सञ्जय काम्यकवन में गये । वहाँ देखा कि मृगचर्म धारण किये हुए पाण्डवों के बीच में विदुरजी बैठे हैं । पाण्डवों ने सञ्जय को देख कर बड़े आदर के साथ बैठाया । तब सञ्जय ने कहा—

हे बुद्धिमान् विदुर ! राजा ने आपका स्मरण किया है, आपके चले आने से वे बहुत दुखी हुए हैं । यह सुन कर विदुरजी पाण्डवों की अनुमति से भाई के प्रेम के कारण धृतराष्ट्र के पास चले आये ।

धृतराष्ट्र विदुर के आजाने से बहुत प्रसन्न हुए । उन्होंने विदुर को गोदी में लेकर उनका माथा सूँघा और कहने लगे, हे भाई ! हमने कुछ कड़ी बातें कह दी थीं, उसे क्षमा करो ।

विदुर ने कहा—हे महाराज ! आप हमारे परमगुरु हैं । हम आपसे सब प्रकार सन्तुष्ट हैं । हमारे लिये पाण्डव और आपके पुत्र दोनों समान हैं । पाण्डव इस समय दुःखी हैं, इसलिये उन पर हमारा स्नेह कुछ अधिक है । दोनों भाई फिर मिलने से परम प्रसन्न हुए । विदुर का फिर आना और राजा का सम्मान करना देख मन्दबुद्धि दुर्योधन बहुत दुःखी हुआ । उसने कर्ण और शकुनि को बुला कर इस प्रकार कहा—

हे मित्रो ! पाण्डवों का हित चाहनेवाला विदुर फिर आगया । यह पाण्डवों को राज्य दिलाने का फिर उद्योग करेगा । इसलिये उसके उपाय करने के पहले ही राजा को अपनी ओर कर लेना चाहिये ।

शकुनि ने कहा—हे दुर्योधन ! तुम छोकरों की तरह कैसी बातें करते हो ? पाण्डव लोग जो नियम करके गये हैं उनका लौटना असम्भव है । युधिष्ठिर सत्यवादी हैं, वे प्रतिज्ञा-भङ्ग कर राजा की बात न मानेंगे । यदि राजा की बात मान कर लौट ही आये तो फिर नये तरह का जुआ खेल कर पाण्डवों को नष्ट ही कर देंगे ।

कर्ण ने कहा—हे दुर्योधन ! हम लोग आपके मन का ही करना चाहते हैं, आप निश्चिन्त रहें । मोह से यदि वे आही गये, तो जुआ खेल कर फिर हरावेंगे ।

दुर्योधन को इन बातों से प्रसन्नता न हुई, तब कर्ण फिर घमण्ड के साथ कहने लगा—

यदि दुर्योधन को यह सलाह न रुचे, तो आओ हम लोग यह करें कि अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित हो रथ पर बैठ कर काम्यकवन में चलें और निरस्त्र पाण्डवों का बध कर डालें। जिससे धृतराष्ट्र के पुत्र निष्कण्टक हो जाँय और सारा झगड़ा मिट जाय।

कर्ण की यह बात सब को पसन्द आई। सुसज्जित होकर रथ पर बैठे और पाण्डवों को मारने के लिये चले। रास्ते में व्यासजी उनके अभिप्राय को मन में समझ कर धृतराष्ट्र के पास लौटा लाये।

व्यासजी ने धृतराष्ट्र से कहा—हे राजा! जिस तरह से कुरुकुल का कुशल हो, वह उपाय करो। तुम्हारे पुत्रों ने अनीति और छल से पाण्डवों का सर्वस्व हरण करके उन्हें वनबास दे दिया है, यह बात बहुत अनिष्टकारी हुई है। इतनाही नहीं दुष्ट दुर्योधन बन में जाकर उन लोगों को मारने पर उतारू है। ध्यान रक्खो, पाण्डवों के क्रोध करने पर कुरुकुल भस्म हो जायगा। इसलिये मन्द बुद्धि दुर्योधन को रोको। भीष्म, द्रोण, कृप, विदुर की सहायता लेकर इस पापकर्म के रोकने का प्रयत्न करो।

धृतराष्ट्र ने कहा—हे महामुनि! भीष्म, द्रोण, विदुर, गान्धारी और मेरी किसी की भी सम्मति जुआ खेलने में नहीं थी; किन्तु दैवप्रेरणा से यह निन्दितकर्म हो गया। पुत्रस्नेह के कारण दुर्मति दुर्योधन को मैं त्याग नहीं सकता हूँ।

व्यासजी ने कहा—हे धृतराष्ट्र! तुम्हारा कहना सत्य है। पुत्र से बढ़ कर श्रेष्ठ संसार में दूसरी वस्तु नहीं है हम भी पाण्डु, विदुर और तुम पर पुत्र के समान ही स्नेह रखते हैं। इसलिये कहते हैं कि पाण्डवों को दुःख न पहुँचाओ। अपने पुत्रों से कहो कि वे पाण्डुपुत्रों के साथ समता का व्यवहार करें। इस प्रकार व्यासजी समझा कर चले गये, पर मोह में पड़े हुए धृतराष्ट्र कुछ न कर सके।

बन में पाण्डवों से श्रीकृष्ण की भेंट

पाण्डवों का अपमान और वनबास सुन कर वृष्णि, अन्धकवंशी यादव लोग बड़े कुपित हुए और उनको खोजने के लिये काम्यकबन को चले। धृतराष्ट्र, दुर्योधन आदि की निन्दा करते हुए तथा आगे के कार्य का निश्चय करते हुए पाण्डवों के पास पहुँच गये। पाण्डवों को गले लगाकर भगवान् कृष्ण बोले—

हे धर्मराज! दुर्योधन, कर्ण, शकुनि और दुःशासन आदि का रक्त पृथ्वी पान करेगी। कपट से परस्वत्वापहरण करनेवाले का वध शास्त्रसम्मत है। मैं इन दुष्टों का संहार करा कर तुम्हें फिर राज्य पर अभिषिक्त करूँगा।

पाण्डव लोग यह सुन कर श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगे। द्रौपदी अच्छा अवसर देख बोली—

हे जगदीश! मैं पाण्डवों की स्त्री, आपकी सखी और धृष्टद्युम्न की बहन हूँ। मैं स्त्रीधर्म से होकर एकवस्त्रा थी, उस समय दुष्ट दुःशासन मेरा केश पकड़ कर भरी सभा में खींच ले गया। हाय! धृष्टद्युम्न, पाण्डव, वृष्णिभूषण आपके रहते हुए मेरे साथ दासी के समान व्यवहार हो! दुष्ट दुर्योधन मुझसे बुरी चेष्टा करे! भीम के बलको और अर्जुन के गाण्डीव धनुष को धिक्कार है! निर्बल पुरुष भी प्राण रहते अपनी धर्मपत्नी का अपमान नहीं सह सकता! पर इन लोगों से वह भी न हो सका!

यह कह कर द्रौपदी रोने लगी और हाथ जोड़ कर कृष्ण से उसने फिर कहा—हाय! मेरे पिता, भाई, पति, पुत्र और आप में से कोई न सहायक हुआ! उस अपमान को समझ कर मेरा कलेजा जला जाता है। हे कृष्ण! सब प्रकार आप ही मेरे रक्षक हैं, मुझे इस दुःखसागर से उबारिये।

तब कृष्ण द्रौपदी को धीरज देते हुए बोले—हे द्रौपदी! जिन्होंने तुम्हारा अपमान किया है, संग्रामभूमि में अर्जुन के बाणों से उनके मारे जाने पर, उनकी स्त्रियाँ तुमसे अधिक रोवेंगी। चाहे आकाश संकीर्ण होजाय, हिमवान् चलने लगे, पृथ्वी फट जाय, समुद्र सूख जाँय, पर मेरा वचन झूठ न होगा।

श्रीकृष्ण की बात सुन कर द्रौपदी प्रसन्न हुई और मुसकुराकर तिरछे नेत्रों से अर्जुन की ओर देखने लगी।

तब अर्जुन ने कहा—हे सुन्दरी! रोओमत, यदुनाथ की बात सत्य होगी।

धृष्टद्युम्न ने पूर्ण सहायता देने की प्रतिज्ञा की।

फिर कृष्णजी युधिष्ठिर से कहने लगे—हे युधिष्ठिर! हम द्वारका में नहीं थे, इसलिये आपको यह कष्ट भोगना पड़ा। नहीं तो बिना बुलाये भी हम कौरवों की सभा में आते और भीष्म आदि कुरु वृद्धों को जुए का दोष दिखा कर होने ही न देते। यदि हमारी बात न मानते तो दुर्योधन को हम दण्ड देते। हमें तो द्वारका में लौटने पर सात्यकि से यह सब हाल मालूम हुआ।

युधिष्ठिर ने कहा—हे वासुदेव! आप द्वारका छोड़ कर कहाँ चले गये थे? कृपा करके कहिये।

कृष्ण जी ने कहा—हे धर्मराज! आपके राजसूययज्ञ में जब हमने शिशुपाल का बध किया तो यह सुन कर सौभराज शाल्व ने—द्वारका में मेरा रहना न जान कर—द्वारका पर चढ़ाई कर दी! उसने वहाँ बड़ा उपद्रव किया और बहुतेरे यादव बालकों का संहार कर डाला। मुझे नाना भाँति के दुर्वचन कह कर लौट गया। जब लौट कर हमने यह खबर सुनी, तो उसका बध करने के लिये उसकी राजधानी में जाकर उस से युद्ध किया और उसे यमपुर भेज दिया। इसी से हमें तुम्हारी ख़बर न मिली। द्वारका में पहुँच कर ज्योंही जुए की कथा सुनी उसी समय चल कर तुम्हें देखने के लिये यहाँ आया। यदि इस आवश्यक कार्य में मैं न फँस जाता, तो अवश्य हस्तिनापुर पहुँच कर जुए को रोकता। अस्तु जो होना था, हो गया। पुल टूट जाने पर पानी का रोकना कठिन है।

इस प्रकार धीरज देकर पाण्डवों से विदा हो यादवों के साथ कृष्णजी द्वारका को लौट गये।

पाण्डवों का द्वैतवन गमन और अर्जुन तपस्या

यादवों के चले जाने पर युधिष्ठिर द्रौपदी तथा भाइयों के साथ काम्यकबन से चल कर द्वैतवन में पहुँचे।

वहाँ बहुत से विद्वान् ब्राह्मण आ मिले। उन लोगों के साथ धार्मिक विवेचन करते हुए पाण्डव लोग शान्ति से दिन बिताने लगे। एक दिन द्रौपदी युधिष्ठिर से इस प्रकार बोली—

हे नाथ! आपका तपस्वी रूप देख कर मेरे शरीर में आग सी लग जाती है। मृगचर्म और छाल का वस्त्र धारण कर आपको चलते हुए देख कोई ऐसा नहीं था, जो न रोया हो; किन्तु कर्ण, दुर्योधन, शकुनि, दुःशासन, इन्हीं चार चाण्डालों के आँसू नहीं आये। मणियों से बनी हुई सभा में राजाओं से घिर कर परम रमणीय आसन पर बैठनेवाले आप आज कुशासन पर दिन काट रहे हैं! हे राजा! आपका यह दुःख मुझ से सहा नहीं जाता है। जो मैं सोने की थाली में नित्य हज़ारों ब्राह्मणों

को भाँति भाँति के व्यञ्जन खिलाती थी, वही आज पत्तल, दोने में आपको फल मूल परसती हूँ। जिस भीम का राजा लोग मुँह जोहा करते थे, वही आज नौकरों की तरह अपने हाथ सब काम कर रहे हैं! जिस अर्जुन के बाहुबल से सम्पूर्ण देशों के राजाओं ने आकर आपके यज्ञ में भृत्यों की तरह काम किया, जिसकी देव, दानव, मनुष्य सभी पूजा करते हैं, वह आज तपस्वी बनकर दुःख पा रहे हैं! सुकुमार नकुल, सहदेव, अनाथों की तरह बन में दिन काट रहे हैं! हे राजा! मेरा कितना अपमान हुआ! इन सब बातों को सोच कर भी आपको क्रोध नहीं हो रहा है! निश्चय ही आप में क्रोध नहीं है, क्योंकि आप भाइयों के तथा मेरे दुःख को शान्ति से देख रहे हैं। हे राजा! जिसे क्रोध नहीं है, वह क्षत्रिय नहीं कहला सकता। लोग कहते हैं कि जो क्षत्रिय अवसर पड़ने पर अपने तेज को प्रगट नहीं करता, संसार में उसके लिये स्थान नहीं, उसकी गिनती नामर्दों में है। जो राजा शत्रु के साथ क्षमा का व्यवहार करता है, वह पराजित हो जाता है।

युधिष्ठिर ने कहा—हे मानिनी! क्रोध से भलाई बुराई दोनों ही होती हैं। जो क्रोध को जीत लेता है,वही पुरुष श्रेष्ठ है। सदा क्रोध करनेवाले का कल्याण नहीं होता। इसलिये देश, काल, समय का विचार कर क्रोध करना आवश्यक है। क्रोध पाप का मूल है। क्रोध होने पर मनुष्य बड़े लोगों को भी कुवाच्य कह देता है। क्रोध को जीतनेवाला स्वयं अभय रहकर दूसरों को भी अभय बना सकता है। यदि बदला लेने के विचार से सभी क्रोध करने लगें तो सृष्टि का विनाश हो जाय क्षमाशील होना ही सत्पुरुषों का लक्षण है। क्षमा ही जगत का आधार है। इसी क्षमा के द्वारा हमारी विजय और दुर्योधनादि का नाश होगा।

द्रौपदी ने कहा—जिस विधाता ने आप को ऐसी बुद्धि दी, उसे नमस्कार करती हूँ। पिता पितामह की नीति के विरुद्ध आचरण करनेवाली बुद्धि को आपने किससे पाया? आप अपने कर्त्तव्य पथ का त्याग कर किस धर्म का सआश्रय कर रहे हैं। आपको निष्कर्म होकर बैठे रहना ही अधिक प्रिय है। बड़े बड़े महर्षियों ने कहा है कि धर्म में जिसकी अटल प्रीति होती है। धर्म उसकी रक्षा किया करता है। हे राजा! आपने धर्म का निरादर कभी नहीं किया, तो क्यों आप कष्ट भोग रहे हैं? यदि ईश्वर माता पिता की तरह प्राणियों पर स्नेह करता, तो ये क्यों दुखी होते। हे नाथ! सुनिये, जगत दैवाधीन है, वह पाप पुण्य से बँधा हुआ है और अपने कर्म के अनुसार फल पाता है। धर्म, अधर्म से ईश्वर का कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। वह सर्वत्र व्यापक है, वायु की भाँति लक्षित न होकर शुभाशुभ कर्मों को घटाया, बढ़ाया करता है इसलिये पूर्व कर्म कारण है उसकी माया के प्रभाव को तो देखिये। एक जीव का दूसरे के हाथ से वध कराता है? मृगतृष्णा की तरह संसार मिथ्या जगत को सत्य करके मानता है और मूर्खजन उसकी माया से उसी में नाचा करते हैं। माता पिता के समान पुत्र पर स्नेह करनेवाला दूसरा नहीं, पर वेही एक दूसरे के भयङ्कर शत्रु हो जाया करते हैं। बुद्धिमान् धर्मात्माओं को क्लेश और दुष्टों के आनन्द को देख कर यही निश्चय होता है कि बलवान् के लिये धर्म अधर्म कुछ नहीं है। ईश्वर सबसे बली है, इसलिये वह सब प्रकार से सुखी है। मनुष्य अपनी दुर्बलता के कारण अनेक कष्ट झेला करता है।

युधिष्ठिर ने कहा—हे सुन्दरी! तुम्हारी बातें नास्तिकों की तरह हो रही हैं। मैं धर्म फल चाहने की इच्छा से नहीं करता। वह तो कर्त्तव्य है। जो धर्म के बिषय में शङ्का करते हैं, उनके समान पापी दूसरे नहीं। जो मनुष्य काम और लोभ वश कर्म करते हैं, वे तरह तरह के दुःख झेलते हैं। शरीर का जन्म और नाश निश्चित है, इसके भेद को न समझ कर लोग मोह में पड़े हुए भाँति भाँति के क्लेश

सहते हैं। विधाता को दोष देना मूर्खता है। सबको धारण करनेवाले ईश्वर की निन्दा करना महा पाप है। मनुष्य को सदा नित्यसुख का चिन्तन करना चाहिये। ऐहिक सुख नश्वर हैं, उन्हें मूर्ख लोग चाहते हैं।

द्रौपदी ने कहा—हे धर्मराज! मैं ईश्वर का अपमान या धर्म की निन्दा नहीं कर रही हूँ। मैंने जो अपमान सहा है, उसी का रोना रोती हूँ और विलाप कर रहा हूँ। फिर और विलाप करती हूँ, सुनिये। जीवन कर्मजन्य है, इसलिये कर्म का निश्चय कीजिये। कर्म करने से ही परम सुख की प्राप्ति होती है, हाथ पर हाथ रख कर बैठे रहने से नहीं। जिसे आगे बढ़ने की चाह होती है,उसे काम से फुरसत नहीं मिलती। भाग्य के सहारे रहनेवाले और अपनी बुद्धि पर हठ करनेवाले दोनों ही मूर्ख हैं। दोनों की गति कच्चे घड़े और अनाथ दुर्बल की सी होती है। कर्म करनेवाला गम्भीर पुरुष धन वैभव और साम्राज्य अनायास हो प्राप्त कर लेता है। तिल से तेल, काष्ठ से अग्नि, गौसे दूध उपाय करने से ही प्राप्त होता है। सन्देह में बैठ कर सोचते रहने से कुछ नहीं होता। कर्म करने पर भी सफलता न मिले तो मनुष्य को इस बात पर सन्तोष होता है कि मैंने अपने कर्त्तव्य का पालन कर लिया। हे राजा! आप कर्त्तव्यकर्म का पालन करें तभी सुख है। इस प्रकार आप का कर्त्तव्यमूढ़ होना मुझे नहीं सुहाता है।

द्रौपदी की बात सुन कर रोष से भरे हुए भीम लम्बी साँस लेकर बोले—हमने तो धर्म के भय से अपना सर्वस्व गँवा दिया, पर उधर देखिये, दुर्योधन ने छल से जुआ खेल कर हमारा सब कुछ छीन लिया और हम मुँह ताकते रह गये। उस अन्धे राजा के लड़के ने सियार की तरह सिंह के सामने से माँस ले लिया। धर्म के कारण हम लोग वनवास का दुःख भोग रहे हैं। हे धर्मराज! आप की असावधानी से यह सब हुआ, नहीं तो अर्जुन के रहते इन्द्र की भी सामर्थ्य नहीं थी कि हमारा राज्य हर लेते। मैं आपके रोकने से रुक गया, नहीं तो उसी समय धृत-राष्ट्र के पुत्रों का वध कर डालता। आपकी भीरुता से हम सपरिवार दुःख झेल रहे हैं। हम लोगों के बल को जान कर भी आप क्षमा की दुहाई देते हुए अनर्थकारी दुखों का आवाहन कर रहे हैं। दुर्योधन के छल से हमारा धन गया राज्य गया, इज्जत गई, फिर आप किसके लिये धर्म की दोहाई देते हैं आप डरते हैं कि हम हार जाँयगे। पर इस वनबास के दुःख की अपेक्षा संग्रामभूमि में मर जाना क्षत्रिय के लिये अधिक कल्याणकारी है यदि जीत गये, तो राज्यसुख मिलेगा। दुःख सह कर जीवन बिताना क्षात्रधर्म नहीं है। जिन कामों से शत्रु को सुख और मित्र को दुःख हो, वह धर्म नहीं, पाप है। जिस धर्म की रक्षा आप करना चाहते हैं उसका भी साधन अर्थ है, अर्थ हीन मनुष्य धर्म का आच-रण नहीं निभा सकता। सम्पत्तिशाली बलवान् राजा ही हो सकता है। इस लिये आप भीरुता का त्याग कर अपना राज्य लेने का प्रयत्न करें। ब्राह्मणों की तरह तपस्वी बनना आपका धर्म नहीं है। आप अपने धर्म का आश्रय लेकर शत्रु पर विजय पाने में सचेष्ट हों।

इस प्रकार भीम की उग्र बातें सुन कर धर्मात्मा युधिष्ठिर धीरता के साथ बोले—

हे भाई भीम! सभा में जिस छलके साथ जुआ हुआ वह सब तुम जानते हो। यह मैं मानता हूँ कि मेरे ही दुष्कर्म से तुम लोगों को भी विपत्ति भोगनी पड़ रही है। जुए के खेल को अच्छी तरह न जानते हुए भी हम धूर्त्त शकुनि के जाल में फँस गये। उसकी दुष्टता समझ कर भी बराबर खेलते ही गये। जैसी भवितव्यता होती है वैसी हा बुद्धि भी हो जाती है। अन्त में द्रौपदी द्वारा हम दासत्व से छूटे। फिर मोह वश लौटकर बनबास के बन्धन में बँध गये। तुमने उस समय हमें नहीं रोका। जो

बातें इस समय कह रहे हो, ये उसी समय कहनी चाहिये थीं । हम भी लोकनिन्दा के भय से खेलना अस्वीकार न कर सके और ऐसी घोर प्रतिज्ञा में बँध गये । अब तो जो होना था हो गया । हे भीम ! हम प्रतिज्ञा भङ्गकर संसार में कलङ्कित नहीं होना चाहते । यद्यपि द्रौपदी के अपमान का स्मरण करने पर हमारे कलेजे में आग सी लग जाती है, तथापि बीज बोनेवाले किसान की तरह हमें समय की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी । हे भाई ! धीरज धरो, घबराने से काम नहीं चलेगा, समय आजाने पर सब कार्य की सिद्धि होती है ।

भीम ने कहा—हे महाराज ! प्रतिज्ञा तेरह वर्ष की है और मौत सदा सिर पर नाचा करती है, इसलिये शीघ्र राज्य लेने का प्रयत्न कीजिये । कौन जाने तेरह वर्ष के भीतर ही मृत्यु होजाय ? यह सोच कर विलम्ब हम से नहीं सहा जाता है ।

भीम की बात सुन कर युधिष्ठिर को मार्मिक व्यथा हुई । दो घड़ी तक चुप रहे, फिर बड़ी आतुरता से कहने लगे—

हे भीम ! तुम्हारी बात सत्य है । पर साहस करके जो काम किया जाता है, वह अधर्म है । अच्छी तरह विचार कर जो काम किया जाता है, वह अवश्य सिद्ध होता है । तुम्हारा विचार बालकों की तरह है, उसे त्याग दो । भीष्म, द्रोण, कर्ण, भूरिश्रवा आदि दुर्योधन के सहायक हैं; सारी सेना उसके वश में है । इस अवस्था में तुम कैसे जीत सकोगे ? अभेद्यकवच को धारण किये हुए युद्धविद्या में निपुण अकेले कर्ण को सोच कर मुझे रात में नींद नहीं आती ।

भीमसेन इन बातों को सुन कर चुप हो रहे । उन लोगों से यह बात हो रही थी, उसी समय महर्षि वेदव्यासजी आ गये । पाण्डवों से सत्कार पाकर वे इस प्रकार कहने लगे—

हे धर्मराज ! तुम्हारी चित्तवृत्ति को समझ कर मैं आया हूँ । भीष्म, द्रोण, कृप, कर्ण, अश्वत्थामा आदि से तुम्हारा सशङ्क रहना बहुत यथार्थ है । उन लोगों के भय से छूटने का उपाय मैं बतलाता हूँ, धीरता के साथ उसका आचरण करो । यह कह कर व्यासजी युधिष्ठिर को एकान्त में ले गये और इस प्रकार कहा—हे युधिष्ठिर ! श्रुति स्मृति नाम की विद्या मैं तुमको देता हूँ, महाबाहु अर्जुन से कहो कि इसकी सहायाता से तपस्या करके शिवजी और इन्द्र को प्रसन्न करें । उनके प्रसन्न होने पर उन्हें दिव्य अस्त्रों की प्राप्ति होगी । तब युद्ध में विजय पाकर तुम सुखी होगे । इस बन को छोड़कर कहीं और जगह जाकर रहो । एकही वनमें बहुत काल तक रहना अच्छा नहीं है ।

इस प्रकार विद्या देकर व्यासजी चले गये । पाण्डव द्वैतवन को छोड़ कर फिर सरस्वती के किनारे काम्यकवन में गये । कुछ दिन बाद व्यासजी की बताई हुई विद्या का अभ्यास कर लेने पर एक दिन युधिष्ठिर अर्जुन से बोले—

हे पार्थ ! भीष्म, द्रोण, कृप, कर्ण, अश्वत्थामा ये महाधनुर्धर हैं । ये लोग ब्राह्म, मानुष दोनों प्रकार के अस्त्रों के जाननेवाले हैं, दुर्योधन इनकी सहायता से सम्पूर्ण पृथ्वी का राज्य कर रहा है । हे वत्स ! तुम हमें प्राणों से भी प्यारे हो और मेरी सारी आशाएँ तुम्हीं से बँधी हुई हैं । अब विना युद्ध किये मैं इस सङ्कट से छूटने का दूसरा मार्ग नहीं देख रहा हूँ, इसलिये अभी से उसकी तैयारी आरम्भ कर देने की अवश्यकता है । वेदव्यासजी ने जो विद्या मुझे बताई है, उसके द्वारा कैलास पर्वत पर तपस्या करके तुम दिव्यास्त्र प्राप्त करो । उस को मैं तुमसे बतलाता हूँ अस्त्रशस्त्र धारण कर तुम शीघ्र इस तप में लगजाओ ।

युधिष्ठिर की आज्ञा पाकर अर्जुन तपस्या के लिये तैयार हुए, उन्होंने कवच पहन कर अपना

गाण्डीव धनुष लिया, कभी न चुकनेवाले बाणों से युक्त तरकसों को अपनी कमर में बाँधा । ब्राह्मणों को दान देकर और उनसे आशीर्वाद लेकर सबसे बिदा हुए । अर्जुन को जाते हुए देखकर करुणा से भरी हुई द्रौपदी ने उनकी अभीष्टसिद्धि के लिये मङ्गलकामना की ।

अर्जुन ने पुरोहित धौम्य और भाइयों की प्रदक्षिणा कर के तप के लिये प्रस्थान किया ।

अर्जुन की तपस्या और अस्त्रप्राप्ति

अर्जुन काम्यकबन से चल कर हिमालय पर्वत पर पहुचे । रात दिन चलते हुए हिमवान् के आगे गन्धमादन पर्वत को लाँघ कर इन्द्रकील (मन्दराचल) पर्वत के निकट पहुँचे और खड़े हो गये । वहाँ दिव्य वाणी सुनकर चारों ओर आश्चर्य से देखने लगे, तब उन्हें एक वृक्ष के नीचे बैठा हुआ तेजःपुञ्ज एक तपस्वी ब्राह्मण दिखाई पड़ा ।

उस तपस्वी ब्राह्मण ने अर्जुन से कहा—धनुष तथा सब अस्त्रों को धारण किये हुए तुम कौन हो ? यहाँ शस्त्र का प्रयोजन नहीं है । यह तो शान्त स्वभाववाले ऋषियों का आश्रम है । यहाँ युद्ध नहीं करना है, इसलिये धनुष फेंकदो और इस आश्रम के योग्य पुण्यकर्मों का अनुष्ठान करो ।

अर्जुन इन बातों पर कुछ न बोले, क्योंकि वे वहाँ अपना और ही उद्देश्य सिद्ध करने के लिये गये थे । तब तपस्वी प्रसन्न होकर कहने लगा—

हे पुत्र ! तुम वरदान माँगो, हम देवराज इन्द्र हैं । इन्द्र की बात सुनकर अर्जुन ने हाथ जोड़ कर कहा—हे देवराज ! मेरी यह मनोकामना है कि आप अपने सब दिव्यास्त्रों को सिखाकर देने की कृपा करें ।

अर्जुन की दृढ़ता की परीक्षा लेने के लिये इन्द्रने कहा—हे अर्जुन ! यहाँ अस्त्रों की क्या आवश्यकता है ? दुर्लभ इन्द्रलोक के सुखको माँगो, मैं देने को तैयार हूँ ।

अर्जुन ने कहा—हे तात ! काम या लोभ से हमें आप के लोक की चाह नहीं है, भाइयों को बन में छोड़कर आपके पास आया हूँ । शत्रुओं से बदला लेकर उनका दुःख दूर किये बिना मेरे लिये सारा सुख व्यर्थ है ।

अर्जुन की दृढ़ता पर प्रसन्न होकर देवराज इन्द्रने कहा—हे पुत्र ! तुम शूलपाणि महेश्वर को प्रसन्न करो, तब मैं तुमको अपने सब अस्त्र दे दूँगा । शिवजी के प्रसन्न करने के लिये तुम यहाँ तपस्या करो, तब तुम्हारा मनोरथ सिद्ध होगा ।

यह कह कर इन्द्र अन्तर्धान होगये । अर्जुन वहीं रह कर कठोर तपस्या करने लगे । कुछ दिन फूल फल के आधार पर रहे, फिर वृक्षों से गिरे हुए पत्ते खाकर तप करने लगे । अनन्तर उसका भी त्याग कर केवल वायुपान करते हुए ऊर्ध्वबाहु होकर एक अँगूठेपर खड़े रहकर भगवान् शङ्कर की आराधना करने लगे । इस प्रकार चार मास उन्होंने उग्र तप किया तब महर्षि लोग उनके उग्र तप को देख कर उमापति के समीप गये और कहा—

हे भगवान् शिवजी ! अर्जुन हिमवान् पर्वत पर घोर तप कर रहा है । उसके तपके तेजसे हिमालय धूममय हो गया है । वह क्या करना चाहता है? यह हमलोग नहीं जानते हैं । उसकी उग्र तपस्या से हम लोग दुखी हैं, उसका मनोरथ पूरा कर के उसे शान्त कीजिये ।

महादेवजी बोले—हे ऋषिगण ! अर्जुन के लिये आप लोग दुःख न करें । मैं शीघ्र ही उसकी अभिलाषा पूर्ण करूँगा और वह अपने स्थान को चला जायगा ।

एक दिन शिवजी किरात वेष धारण कर अपने गणों के साथ धनुष लिये हुए अर्जुन के पास आये।

उधर मूक नामक दानव अर्जुन को मारने के लिये सुअर का रूप धर कर उनके सामने दौड़ा। उन्होंने धनुष उठाकर उस पर बाण चलाया। एक किरात भी सुअर के पीछे पीछे दौड़ा आ रहा था, उसने भी अर्जुन के साथ ही बाण मारा। दोनों के बाण लगने से सुअर ने भयङ्कर राक्षस रूप धारण कर प्राण विसर्जन किया।

अर्जुन ने स्त्री के साथ विशालकाय किरात को देख कर पूछा—सुवर्ण के समान शरीरवाली स्त्री को साथ लेकर वन में घूमते हुए तुम कौन हो? हे किरात! सुअर को पहले मैंने निशाना बनाया था, तब तुमने मेरा निरादर करके क्यों बाण छोड़ा? शिकार के नियमों के विरुद्ध तुमने आचरण किया है। यह करते हुए क्या तुम्हें अपने प्राणों का भय नहीं हुआ?

अर्जुन की बात सुनकर किरात बोला—हे वीर! सदा से यह बन मेरा है। तुम कहाँ से इस बन में आगये? हे कुमार! अभी तुम सुख भोगने के योग्य हो, इस बन में अकेले क्यों रहते हो?

अर्जुन ने कहा—हे किरात! गाण्डीव धनुष और अग्नि के समान बाण धारण कर मैं इस बन में रहता हूँ। यह सुअर बना हुआ दानव मुझे मारने के लिये आ रहा था इसलिये मैंने उसे मारा।

किरात ने कहा—यह मेरा लक्ष्य था और पहले मेरे ही बाणों से मारा गया है।

अर्जुन ने कहा—तुम अपने दोष को नहीं स्वीकार करते हो और घमण्ड के साथ बातें करते हो? अच्छा खड़े रहो, आज तुम्हारी इस धृष्टता का फल चखाता हूँ। यह कह कर अर्जुन बाणों की वर्षा करने लगे। व्याध ज्यों का त्यों खड़ा बाणों का प्रहार सहने लगा। यह देखकर अर्जुन को बड़ा क्रोध हुआ और वे ख़ूब तीखे बाणों का प्रहार करने लगे। अर्जुन के तरकस बाणों से खाली हो चले और किरात उसी तरह खड़े खड़े मुस्कुरा रहा है। तब उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ और अपने बाणों को व्यर्थ होता देख कर वे बोले—मेरे गाण्डीव धनुष से छूटे हुए बाणों के सहने में कोई नहीं समर्थ है। यह कौन पुरुष है? शिव, इन्द्र, कुबेर, इनमें से कोई यह जान पड़ता है। अथवा हिमवान् देवताओं का वासस्थान है सम्भव है, कोई देवताही हो। अस्तु, देव, दानव, यक्ष, कोई क्यों न हो, इसे मैं अवश्य हराऊँगा। यह कह कर उन्होंने बचे हुए बाण भी चलाये, वे सब उस किरात के शरीर में समागये। जब धनुष के नोक से आघात करने लगे, तब उस तेजस्वी किरात ने गाण्डीव धनुष छीन लिया। उन्होंने तलवार लेकर सिर पर आघात किया, वह दो टुकड़े होकर गिर पड़ी। इसके बाद अर्जुन लिपट कर मल्लयुद्ध करने लगे। खूब मुष्टिप्रहार होने लगा, अर्जुन शिवजी के आघात करने पर मूर्च्छित होकर गिर पड़े। चेत होने पर उन्होंने शिवजी की पार्थिव मूर्त्ति बनाकर उसपर माला चढ़ाई, वह माला उस किरात के गले में जा पड़ी। यह देखकर अर्जुन अत्यन्त प्रसन्न हुए और आनन्द में मग्न होकर किरात वेषधारी शिवजी के चरणों में जाकर गिर पड़े।

भक्तरक्षक शिवजी प्रसन्न होकर बोले—हे अर्जुन! तुम्हारा अद्भुत पराक्रम और उत्साह देखकर हम प्रसन्न हैं। तुम तेज और बल में हमारे समान हो। मैं तुम को आशीर्वाद देता हूँ, तुम संग्राम में देव, दानव, मनुष्य, सब को जीत सकोगे। यह कहकर शिवजी ने अर्जुन को गले से लगा लिया, अर्जुन—गद्गद होकर शिवजी की स्तुति करने लगे।

शिवजी अर्जुन की स्तुति पर प्रसन्न हुए और बोले—हे अर्जुन! तुम्हारे जिस गाण्डीव धनुष को हमने छीन लिया था उसे लो और जो कुछ तुम्हें माँगना हो मुझ से माँगो।

अर्जुन ने कहा—हे प्रभो! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो पाशुपत नामक अस्त्र मुझे दीजिये, जिससे भावी युद्ध में मैं भीष्म, द्रोण, कर्ण आदि पर विजय पा सकूँ।

शिवजी बोले—हे अर्जुन! यह लो, मैं तुम्हें पाशुपत अस्त्र देता हूँ, इसके तेज को देव, दैत्य, मानव कोई भी नहीं सह सकता। यह कह कर उन्होंने उसके चलाने और लौटाने की विद्या भी सिखा दी।

इसके बाद शिवजी अन्तर्धान होगये। अर्जुन ने शिवजी के दर्शन से अपने को कृतकृत्य माना और उनको निश्चय होगया कि अब मैं शत्रुओं पर विजय पालूँगा।

इस प्रकार अर्जुन मनहीं मन विचार कर रहे थे कि उसी समय वरुण और यम तथा अन्य देवताओं को साथ लेकर ऐरावत हाथी पर चढ़े हुए देवराज इन्द्र वहाँ आये।

यमराज ने दण्ड, वरुण ने पाश अर्जुन को दिये। इन्द्र ने अपनी पूर्व प्रतिज्ञानुसार सब दिव्यास्त्र दिये। अर्जुन ने नम्रता-पूर्वक उन अस्त्रों को लिया और उनके चलाने की विद्या भी सीख ली।

तब देवराज इन्द्र बोले—हे पुत्र! तुम्हारा मनोरथ सिद्ध होगया। अब देवताओं के कार्य के लिये एक बार तुम्हें देवलोक चलना होगा। वहाँ तुम्हें और भी दिव्यास्त्र प्राप्त होंगे। अपने सारथि मातलि को तुम्हारे पास रथके सहित भेजता हूँ, उसपर चढ़ कर तुम आना। यह कह कर इन्द्र चले गये।

अर्जुन का इन्द्रलोक में जाना

कुछ देरबाद मातलि दिव्यरथ लेकर आया। अर्जुन उस पर सवार होकर इन्द्रलोक को चले। अनेक दिव्य लोकों को देखते हुए अर्जुन इन्द्रलोक में पहुँचे। वहाँ उन्होंने देखा, सब ऋतु में फूलनेवाले नाना भाँति के फूल खिले हैं, चारों ओर से सुगन्धित हवा बह रही है। नन्दनवन में अप्सराएँ आनन्द कर रही हैं। देवता लोग अनिर्वचनीय सुख का उपभोग कर रहे हैं। इस प्रकार अमरावती को देखते हुए अर्जुन इन्द्र के समीप गये और उनकी वन्दना करके उनकी आज्ञा से सब देवता तथा महर्षियों से मिले। इसके बाद इन्द्र ने अर्जुन को अपने आसन पर बिठाया। इन्द्र ने प्रसन्न होकर अर्जुन को वज्र और अशनिनामक प्रसिद्ध अस्त्रों को दिया। तब अर्जुन ने अपने भाइयों के पास जाने की इच्छा प्रगट की। पर इन्द्र की आज्ञा से उन्हें पाँच वर्ष वहाँ रहना पड़ा। इस बीच उन्हा ने चित्रसेन से नृत्य, गीत और तरह तरह के बाजों का बजाना आदि विद्याएँ सीखलीं।

एकदिन एकान्त में चित्रसेन से इन्द्र ने कहा—हे चित्रसेन! उर्वशी को अर्जुन के पास भेजो, जिससे रतिरस का ज्ञान उसे हो जाय।

चित्रसेन 'तथास्तु' कह कर उर्वशी के पास गया और कहने लगा—

हे उर्वशी। तुमको मालूम है कि परम तेजस्वी, रूप, गुण में अद्वितीय अर्जुन यहाँ आये हैं, इसलिये तुम उनके पास जाकर उन्हें प्रसन्न करो।

उर्वशी यह सुन कर बहुत प्रसन्न हुई और सोलहों शृङ्गार करके सन्ध्या समय अर्जुन के पास चली। मुनियों के मन को भी मोह लेनेवाले अनुपम रूप, सौन्दर्यवाली उर्वशी अर्जुन के समीप पहुँची। द्वारपालों ने उसके आने की ख़बर अर्जुन को दी। वे शङ्कित मन होकर उसके पास गये और माता के समान जान कर विधिवत् पूजा की और बोले—

हे देवी! क्या आज्ञा है?

उर्वशी ने कहा—हे वीर ! आपके आनेपर देवसभा में हमने अप्सराओं के साथ नृत्यगान किया था, वहाँ आपके रूप को देख कर मैं मोहित हो गई। इन्द्र की आज्ञा और चित्रसेन के कहने से मैं आपके पास आई हूँ।

यह सुन कर अर्जुन ने कानों को मूँद लिया और लज्जित होकर इस प्रकार बोले—

हे उर्वशी ! तुम बहुत अनुचित बात कह रही हो। तुमको मैं कुन्ती और शची के समान पूज्य भाव से देखता हूँ। कौरव वंश की माता समझ कर मैंने तुम्हें अनिमेष दृष्टि से देखा था। मेरा और कोई अभिप्राय नहीं था।

उर्वशी ने कहा—हे राजकुमार ! मैं वारनारी हूँ, मुझे पूज्यभाव से न देखो, मेरी कामना पूरी करो।

अर्जुन ने कहा—हे उर्वशी ! मैं जो बात कहता हूँ, उसे सुनो। दिशाएँ और देवता लोग भी मेरी बात सुनलें। कुन्ती, माद्री और शची के समान तुम में मेरा पूज्य भाव है, इसलिये प्रणाम करता हूँ, पुत्र जान कर मेरी रक्षा करो।

अर्जुन की बात सुन कर उर्वशी बहुत क्रुद्ध हुई और उसने उन्हें शाप दिया।

हे अर्जुन ! नृत्य शिक्षक होकर तुम्हें स्त्रियों में रहना पड़ेगा और पुरुषत्व से हीन होकर तुम नपुंसक हो जाओगे।

उर्वशी शाप देकर अपने स्थान को चली गई। अर्जुन घबरा कर चित्रसेन के पास गये और उससे सब वृत्तान्त कहा। चित्रसेन उन्हें इन्द्र के पास ले गया। इन्द्र ने सब सुन कर कहा—हे पुत्र ! जब तुम अज्ञातवास करोगे, तब इस शाप का प्रभाव होगा और उसके बाद ही इसका प्रभाव नष्ट हो जायगा। यह सुन कर अर्जुन को प्रसन्नता हुई और फिर अमरावती में विहार करने लगे।

एक दिन लोमश ऋषि इन्द्र के समीप आये। कुशल प्रश्न पूछने के बाद इन्द्र ने उनसे कहा—

हे महर्षि ! आप मर्त्यलोक में जाइये और युधिष्ठिर से मेरा सन्देश कह दीजिये कि अर्जुन ने सब दिव्यास्त्र प्राप्त कर लिये। शीघ्र ही आपलोगों के पास आवेंगे। तब तक आप लोग घूम कर सब तीर्थों के दर्शन करलें। अर्जुन ने भी भाइयों से कहने के लिये अपना कुशल समाचार कहा।

इधर पाण्डव लोग अर्जुन को तपस्या के लिये चले जाने पर बड़े चिन्तित रह कर दिन बिताने लगे। एक दिन भीम युधिष्ठिर से कहने लगे—

हे धर्मराज ! आपकी आज्ञा से दिव्यास्त्र प्राप्त करने के लिये अर्जुन घोर तपस्या करने चले गये। उनको इतने कष्ट में डालने की क्या आवश्यकता है ? क्षत्रिय को अपने भुजाओं के बल से राज्य लेना चाहिये, ब्राह्मणों की तरह वनवास करना उचित नहीं। आज्ञा दीजिये; उनको बुलालाऊँ। कृष्ण की सहायता से बारह वर्ष के भीतर ही शत्रु का संहार करदूँ। मैं अकेले कर्ण तथा धृतराष्ट्र के पुत्रों को मार गिराऊँगा और जो कोई सहायता के लिये आवेगा, उसे भी यम का अतिथि बनाऊँगा। फिर, आपकी बात सत्य करने के लिये उतने समय तक वनवास कर लिया जायगा। छली को छल से मारना ही धर्म है, इसमें पाप नहीं। क्या आप इस बात को नहीं सोचते हैं कि तेरहवें वर्ष जब हम लोग गुप्तवास करेंगे, तब दुष्ट दुर्योधन पता लगा कर फिर वनवास के लिये बाध्य न करेगा ? यदि किसी प्रकार तेरह वर्ष बीत भी गये, तो वह जुआ के लिये फिर आह्वान करेगा, आप रुकेंगे नहीं और फिर वही दशा होगी। इसलिये आप मेरे उत्साह को न भङ्ग कीजिये, धृतराष्ट्र के पुत्रों के मारने की आज्ञा दीजिये।

युधिष्ठिर ने बहुत सी नीति की बातें कह कर भीम को शान्त किया और प्रेम से उनका माथा सूँघ कर कहा—

हे भीम ! अवश्य तुम युद्ध में धृतराष्ट्र के पुत्रों को जीतोगे । धीरता के साथ तेरह वर्ष बीत जाने दो, तब बिना छलके धृतराष्ट्र के पुत्रों का वध करेंगे ।

इस प्रकार बातें हो ही रही थीं कि वृहदश्व मुनि धर्मराज के पास आगये । युधिष्ठिर ने उठ कर उनका सत्कार किया । बैठ जाने पर युधिष्ठिर दुःख से अपनी करुणकथा कहने लगे ।

उन्होंने कहा—हे महर्षे ! हम जुआ खेलना अच्छी तरह नहीं जानते; इसी से हमारी यह दुर्दशा हुई है । ये भाई लोग दुःख से उद्विग्न होकर हमारी चिन्ता को और भी बढ़ा रहे हैं । हम सबके प्राणाधार अर्जुन दिव्यास्त्र प्राप्त करने के लिये तप करने चले गये हैं, यह विछोह रात दिन जला रहा है । हे विप्रवर ! प्यारे अर्जुन कबतक लौट कर आवेंगे ? हाय ! हमारे समान मन्दभाग्य कौन होगा ! वृहदश्व ने राजाबलि आदि की कथा कह कर युधिष्ठिर को बहुत धीरज दिया, फिर उन्होंने कहा—हे राजा ! हम जुआ खेलना बहुत अच्छा जानते हैं, तुम्हें इसको सिखाकर तुम्हारे भय को दूर कर देंगे अब तुम चिन्ता मत करो । इसके बाद वृहदश्व धर्मराज को द्यूतविद्या में खूब निपुण बनाकर अपने स्थान को चले गये ।

अनन्तर कुछ तपस्वी तीर्थयात्रा करते हुए वहाँ आये और उन लोगों ने अर्जुन के उग्रतपस्या का हाल युधिष्ठिर से कहा । यह सुन कर वे लोग बहुत दुखी हुए । द्रौपदी शोक से विह्वल होकर युधिष्ठिर से कहने लगी—

हे धर्मराज ! महाबाहु अर्जुन के बिना हमें यह बन अच्छा नहीं लग रहा है, उनके बिना यह भूमि हमें सुनीसी मालूम हो रही है । अब यहाँ मुझ से किसी तरह नहीं रहा जाता । हाय ! उस वीर को कब देखूँगी ?

द्रौपदी के विलाप को सुन कर भीम बोले—

हे प्रिये ! तुम्हारी बातें हमें अमृत के समान प्यारी लगी हैं । महाबाहु अर्जुन के बिना यह संसार हमें अन्धकार सा दिखाई पड़ता है । अब हमसे एक क्षण भी यहाँ नहीं रहा जाता है । हाय ! प्रिय अर्जुन कब मिलेंगे ।

दुःख से नेत्रों में जल भर कर नकुल बोले—

रण में जिसके अमानुष कर्म की प्रशंसा देवता लोग करते हैं, जिसकी सहायता से राजसूययज्ञ सकुशल हुआ, उस अर्जुन के बिना इस काम्यकबन में मुझ से एक पल भी नहीं रहा जाता है ।

सहदेव ने कहा—हे धर्मराज ! इन लोगों का कहना बहुत यथार्थ है । अब क्षण भर भी यहाँ रहने की इच्छा नहीं । इसलिये किसी दूसरे स्थान में चलिये ।

भाइयों की तथा द्रौपदी की बात सुन कर युधिष्ठिर बहुत चिन्तित हुए उसी समय नारदमुनि वहाँ आये । द्रौपदी समेत पाण्डवों ने उनका उचित सत्कार किया । नारदजी सत्कार पाकर उन लोगों को धीरज देते हुए बोले—

हे पाण्डुपुत्र ! आप लोग इतने चिन्तित क्यों हैं ? कहिये, मैं उसके दूर करने का उपाय करूँगा ।

हे महर्षि ! आपकी प्रसन्नता से मेरे सब कार्य पूर्ण होंगे, इस में सन्देह नहीं । इसके बाद युधिष्ठिर ने अपने सब दुःख का कारण कह सुनाया ।

यह सुन कर नादरजी ने कहा—हे धर्मराज ! महर्षि लोमश इन्द्रलोक से अर्जुन का समाचार लेकर तुम्हारे पास आवेंगे । उसको सुन कर तुम्हारा दुःख दूर हो जायगा । हमारी समझ में तुम

लोगों का बहुत काल तक यहाँ रहना अच्छा नहीं है। लोमशऋषि ने सब तीर्थों को देखा है और वे उनके माहात्म्य को भी जानते हैं। उनको साथ लेकर तुम तीर्थयात्रा करो। इस प्रकार तुम्हारा समय सुख से बीत जायगा। समय आने पर तुम अपने शत्रुओं का नाश कर फिर अपने राज्य को पाओगे। इसके बाद नारदजी ने बहुत से तीर्थों का इतिहास सुनाया। यह सुन कर उनको देखने के लिये पाण्डव उत्सुक हुए।

नारदजी इस प्रकार समझा कर चले गये। युधिष्ठिर ने यह सब धौम्यमुनि से कहा। उन्होंने भी तीर्थों के महत्त्व को समझा कर चलने की सलाह दी। इस प्रकार बातचीत हो ही रही थी कि लोमश ऋषि आते हुए दिखाई पड़े। ब्राह्मणों के साथ आगे बढ़कर युधिष्ठिर ने उन्हें प्रणाम किया और आदर के साथ लाकर आसन पर बिठाया। तब युधिष्ठिर ने उत्सुक होकर अर्जुन का समाचार मुनि से पूछा धर्मराज के आग्रह पर लोमशऋषि बोले—

हे धर्मराज ! सब लोकों में घूमते हुए हम इन्द्रलोक में गये। वहाँ इन्द्र के पास उसी आसन पर बैठे हुए अर्जुन को देखा, यह देख कर मेरे मन में बड़ा आश्चर्य हुआ, तब देवराज ने मुझ से सारा वृत्तान्त सुना कर कहा कि आप युधिष्ठिर के पास जाकर उनसे यह सब कह दें। इसलिये द्रौपदी और भाइयों के साथ ध्यान देकर सुनो, जिसको सुन कर तुम परम प्रसन्नता प्राप्त करोगे। जब तुमने तपस्या द्वारा अस्त्रप्राप्त करने के लिये अर्जुन को भेज दिया, तब उन्होंने इन्द्रकील पर्वत पर जा, शिवजी को प्रसन्न कर पाशुपत अस्त्र प्राप्त किया। इसके बाद इन्द्र, धर्म और कुवेर ने भी अपने अपने दिव्य अस्त्र दिये। इस प्रकार सबसे अस्त्रविद्या प्राप्त कर अर्जुन इस समय इन्द्रलोक में निवास कर रहे हैं। इन्द्र ने कहा है कि अर्जुन देवताओं का कार्य कर लेने के बाद मर्त्यलोक में आँयगे कर्ण के कवच से जो युधिष्ठिर को शङ्का है, उसके तोड़ने के लिये भी मैं प्रयत्न करूँगा। अर्जुन ने प्रणाम पूर्वक कहा है कि धर्मराज अपने धर्म पर अटल रहें, इसी से उनकी विजय होगी।

इन बातों को सुन कर द्रौपदी सहित पाण्डव लोग बहुत प्रसन्न हुए। लोमश ऋषि के कथनानुसार वे लोग तीर्थयात्रा के लिये तैयार हुए। तब लोमश ऋषि ने कहा—

हे राजा ! हमने दो बार सब तीर्थों की परिक्रमा की है अब तीसरी बार तुम्हारे साथ उनकी यात्रा करेंगे। पर यात्रा में बहुत लोगों को साथ ले चलने की आवश्यकता नहीं है। लोमश की आज्ञानुसार युधिष्ठिर ने और लोगों को हस्तिनापुर भेज दिया। जाते समय उन लोगों से युधिष्ठिर ने कहा—

आप लोग यात्रा के कष्ट को न सह सकेंगे इसलिये आपलोगों को विदा करता हूँ। यदि धृतराष्ट्र आश्रय न देंगे तो पाञ्चालराज अवश्य आपलोगों का सत्कार करेंगे।

युधिष्ठिर की तीर्थयात्रा

ब्राह्मण और पुरवासियों के चले जाने पर द्रौपदी के साथ पाण्डवों ने काम्यकवन में रहकर तीन दिन तीर्थव्रत किया। उसके बाद पुष्यनक्षत्र में ब्राह्मणों द्वारा स्वस्तिवाचन करा कर लोमशऋषि, धौम्यमुनि और कुछ ब्राह्मणों के साथ उन लोगों ने तीर्थयात्रा के लिये प्रस्थान किया। पहले वे लोग पूर्वदिशा की ओर रथ पर चढ़ कर चले। उनके साथ इन्द्रसेन आदि नौकर भी गये।

रास्ते में जाते हुए युधिष्ठिर ने लोमश ऋषि से कहा—

हे महर्षि ! मैं ने अपने जान में कोई पाप नहीं किया, फिर क्या कारण है कि इस असह्य दुःख को भोग रहा हूँ। दुष्ट लोग अनेकों पाप करते हैं, फिर भी वे परम सुखी दिखाई पड़ते हैं। इसका क्या कारण है ?

लोमशऋषि ने कहा—हे धर्मराज ! पाप करते हुए कुछ दिन अवश्य वृद्धि होती है, किन्तु थोड़े ही काल में उन पापियों का जड़ से विनाश हो जाता है। पर धर्मात्माओं को पहले अपना धर्म निबाहने में अवश्य कुछ दुःख झेलना पड़ता है, फिर उनकी श्रीवृद्धि देदीप्यमान सूर्य की भाँति अटल हो जाती है। तुम भी शीघ्र ही इस दुःख से छूटकर अमरकीर्ति और अक्षयसुख को प्राप्त करोगे।

इस प्रकार तरह तरह की बातें करते हुए पाण्डव लोग ब्राह्मणों के साथ नैमिषारण्यतीर्थ में पहुँचे। वहाँ गोमती नदी के पवित्र जल में स्नान किया। इसके बाद रास्ते में बहुतेरे तीर्थों का दर्शन करते हुए प्रयाग में पहुँचे। वहाँ ब्राह्मणों को बहुत दान देकर गङ्गा यमुना के सङ्गम में स्नान किया।

महर्षि लोमश भाँति भाँति के इतिहास तीर्थों का माहात्म्य और मन को लुभानेवाली अनेक कथाएँ कहकर पाण्डवों की तीर्थयात्रा के सुख को बढ़ाने लगे।

इसके बाद लोमश ऋषि ने पितामह के वेदितीर्थ में ले जाकर तर्पण कराया। फिर गयातीर्थ होते हुए महीधर तीर्थ में ले गये। वहाँ से कौशिकी तीर्थ का दर्शन करते हुए गङ्गासागर सङ्गम पर पहुँचे। यहाँ से समुद्रके किनारे किनारे दक्षिण की ओर गये। कुछ दिनों में वैतरणी नदीवाले कलिङ्ग (समुद्र तटस्थ गोदावरी और वैतरणी नदी के बीच) देश को पार कर दक्षिणसागरवाले तीर्थों का दर्शन करके और वहाँ अर्जुनके बनवास के समय का यश सुन कर पाण्डव लोग बहुत प्रसन्न हुए।

इसके बाद लोमश ऋषि तथा अन्य साथियों के साथ पाण्डव लोग प्रभासतीर्थ में पहुँचे। पाण्डवों का आना सुन कर कृष्ण और बलरामजी यादवों के साथ उनसे मिलने आये। पाण्डवों को पृथ्वीपर सोया हुआ देख कर वे लोग बहुत दुखी हुए। सबने द्रौपदी के सहित पाण्डवों का खूब सत्कार किया

बलरामजी ने पाण्डवों की दुर्दशा देख कर क्रोध के साथ कहा—पाण्डव और दुर्योधन आदि के देखने से मुझे निश्चय होता है कि न धर्म से वृद्धि होती है और न अधर्म से नाश। धर्मात्मा युधिष्ठिर जटाजूट धारण करके बनमें घूम रहे हैं और दुष्ट दुर्योधन राज्यसुख भोग रहा है। भीष्म, द्रोण, धृतराष्ट्र आदि वृद्धलोग पाण्डवों के बनवास होने पर कैसे सुखी हैं? उन लोगों को धिक्कार है। अन्धा धृतराष्ट्र परलोक में पितरों के सामने इस अनर्थ का क्या उत्तर देगा? अबभी उसे नहीं सूझ रहा है! जो राजसूययज्ञमें अवभृथ (यज्ञान्त) स्नान से पवित्र हुई थी, वह द्रौपदी तपस्विनी बनकर बन में मारी मारी फिर रही है। हे कृष्ण! क्या आप को इन बातों की चिन्ता नहीं है?

अर्जुन के शिष्य सात्यकि ने कहा—हे बलरामजी ! अब चिन्ता करने का समय नहीं। युधिष्ठिर कहें, चाहे न कहें आप कृष्ण, प्रद्युम्न, साम्ब, मुझे तथा सारी यादवी सेना लेकर हस्तिनापुर पर आक्रमण करें और धृतराष्ट्र के पुत्रों को मारकर पाण्डवों को उनका साम्राज्य लौटा दें। इससे हम लोगों को यश मिलेगा और धर्म की रक्षा होगी।

कृष्णने कहा—हे सात्यकि ! तुम्हारा कहना सत्य है किन्तु दूसरे से जीता हुआ राज्य युधिष्ठिर कैसे लेंगे? काम और लोभ वश होकर ये कभी अपने धर्म का त्याग न करेंगे। इससे तो यह अच्छा है कि अर्जुन को लाकर और पाण्डवों की सहायता करके हम उनके शत्रुओं का नाश करें।

तब युधिष्ठिर बोले—हे सात्यकि ! तुम यथार्थ कहते हो और हृदय से हमारी भलाई चाहते हो किन्तु हमारे व्यवहार को अकेले कृष्णजी ही जानते हैं। उन्हें मालूम है कि राज्यलोभ से हम अपनी प्रतिज्ञा नहीं भङ्ग कर सकते, तेरह वर्ष के बाद युद्ध में जब तुम्हारी सहायता आवश्यक होगी, तब दुर्योधन के नाश में हमारे सहायक होना। इस समय इस विचार को छोड़ दो।

इस प्रकार बातें करके युधिष्ठिर ने यादवों को विदा किया और स्वयम् सबके साथ तीर्थ-यात्रा के लिये चले। प्रभासतीर्थ के उत्तर की ओर चलते हुए सरस्वती नदी पार करके सिन्धुतीर्थ गये। वहाँ से चलकर विपाशा नदी को पार करते हुए हिमालय के सुबाहु राज्य में पहुँचे, वहाँ के राजा ने उनका बड़ा सत्कार किया। इससे कुछ दिन वहाँ रहकर बिताया।

इसके बाद पहाड़ी यात्रा प्रारम्भ हुई। उसकी भयङ्करता समझ कर लोमश ऋषि ने कहा—

हे पाण्डव! तुम लोगों ने अनेक तीर्थों के दर्शन किये, अब विकट चढ़ाई आगई है। इसलिये सावधान हो जाओ। देखो, वह पवित्र गङ्गोत्रीतीर्थ देख पड़ताहै। इसके आगे मनुष्य की गति नहीं है, चित्तको एकाग्र करके इस पवित्र स्थानको देखो। वह मन्दराचल देवताओं का क्रीड़ास्थान है, इस दुर्गम मार्ग से चलकर कितने ही ऊँचे ऊँचे पहाड़ों को पारकर के अब रमणीक आश्रमों से शोभित गन्धमादन पर पहुँचोगे। पगपग पर भय का सामना है, खूब सावधानी से चलो।

लोमशऋषि की बातें सुनकर युधिष्ठिर भीम से बोले—हे भीम! भारी भय के आने पर द्रौपदी की रक्षा करनेवाले अब तुम्हीं हो। इस भयङ्कर बन में बड़े बड़े भयानक जीव छिप कर घूमा करते हैं। महर्षि की इच्छा कैलास पर्वत पर चलने की है, सुन्दरी कोमलाङ्गी द्रौपदी कैसे चल सकेगी? नकुल, सहदेव, धौम्य मुनि, ब्राह्मणलोग तथा नौकर चाकर कैसे इस बन में पार पावेंगे? हे भीम! तुम द्रौपदी, सहदेव धौम्य मुनि तथा और लोगों को लेकर लौट जाओ, हम लोमशऋषि और नकुल तीन जने जाँयगे। हम लोगों के लौटने तक हरिद्वार में ठहर कर तुम प्रतीक्षा करना।

भीम ने कहा—हे धर्मराज! यद्यपि द्रौपदी थक जाने से बहुत दुखी है, तो भी वह अर्जुन के देखने की लालसा से साथ छोड़ना स्वीकार न करेगी। हमें भी सहदेव के साथ लौट जाना दुःख-दायी होगा आपको छोड़कर भला हम लोग कैसे दूसरी जगह दिन बितावेंगे?

द्रौपदी ने कहा—हे नाथ! आप मेरे लिये दुःख न करें, मैं बड़े आनन्दसे आप के साथ साथ चली चलूँगी।

इस प्रकार बातें करके सब लोग आगे बढ़े। कुछ दूर जाकर लोमश ऋषि बोले--

हे पाण्डव! देखो, यह रास्ता मन्दराचल को जाता है। इस पर देवगण निवास करते हैं। वह जो जलधारा बह रही है उस का उत्पत्तिस्थान गन्धमादन पर्वत का बदरिकाश्रम है। इन्हीं का नाम भगवती भागीरथी है। सब लोग इनको प्रणाम करो। अब हमलोग गन्धमादन के निकट पहुँच गये हैं।

तब पाण्डवों ने गङ्गाजी को प्रणाम कर विधि पूर्वक उनकी पूजा की और प्रसन्न मन हो उत्साह से आगे चले।

जब गन्धमादन के पास पहुँचे और उस की चोटी पर चढ़ने लगे, तब बड़े ज़ोर से हवा बहने लगी। धूल के उड़ने से चारों ओर अन्धकार छा गया। पत्थर के कनों के उड़ने से चोट लगने लगी। अधिक अन्धकार हो जाने से न कोई किसी को देख सकता था, न बात ही कर सकता था। बड़े बड़े वृक्षों के टूटने से बड़ा भयानक शब्द होने लगा। भीम, द्रौपदी को लेकर धनुष के सहारे एक वृक्ष के नीचे बैठ गये। युधिष्ठिर धौम्य मुनि के साथ एक घने वन में छिपगये। सहदेव अग्निहोत्र का सामान लेकर एक कन्दरा में चले गये। लोमश ऋषि, नकुल तथा और ब्राह्मण लोग जहाँ सहारा मिला, सब छिप कर प्राण बचाने लगे।

जब हवा कुछ धीमी पड़ी तो चारों ओर से बादल घिर आये। मूसलधार पानी बरसने

लगा। रह रह कर बिजली कड़कने और चमकने लगी। वज्रपात होने लगा। टूटे हुए वृक्षों को लेकर पहाड़ी नदियाँ बड़े वेग से बहने लगीं।

धीरे धीरे पानी का बरसना कम हुआ। हवा थम गई, सूर्य भगवान् निकल आये। सब लोग एकत्रित होकर चलने की तैयारी करने लगे। जब एक कोश तक गये, तब द्रौपदी बहुत थक जाने के कारण मूर्च्छित होकर एक जगह गिर पड़ी।

नकुल ने उसे देखा और दौड़कर उठाया, उन्होंने कहा—हे राजा! यह द्रौपदी व्यथित होकर गिर पड़ी है, आकर इस को देखिये और आश्वासन कीजिये।

युधिष्ठिर नकुल की बात सुनकर सब के साथ शीघ्र वहा पहुँचे और द्रौपदी को गोदी में लेकर उस पर हाथ फेरा और मुख धोकर पंखा करने लगे। तब उसे धीरे धीरे होश हुआ। उसको धीरज देकर धर्मराज बोले—

हे भीम! जो द्रौपदी मुलायम सेजों पर सोती थी, आज वह पथरीले कण्टकाकीर्ण मार्ग में पैदल चल रही है! यह केवल मेरे कर्मों का दोष है। राजा द्रुपद ने हम अभागों के साथ इसका ब्याह कर बहुत अनुचित किया। हाय! इस दुःख को यह कैसे सहन करे!

धर्मराज को विलाप करते देख कर धौम्य आदि महर्षियों ने तरह तरह के आशीर्वाद देकर समझाया।

भीमने कहा—हे धर्मराज! आपको नकुल सहदेव तथा द्रौपदी को मैं अपनी पीठ पर ले चलूँगा। आप चिन्ता न करें। हिडिम्बा का पुत्र घटोत्कच भी हमारी सहायता कर सकता है, स्मरण करने पर उसने आने का वचन दिया है। यदि उसको बुलालें तो वह हम सब को लेकर चल सकता है।

तब युधिष्ठिर ने उसके बुलाने की आज्ञा दी। भीम के याद करते ही घटोत्कच आगया और सब गुरुजनों को उसने प्रणाम किया। सबसे आशीर्वाद पाने पर घटोत्कच बोला—

हे पिताजी! मैं आपके स्मरण करने से आया हूँ। अब मुझे किस काम को करने के लिये आज्ञा होती है।

यह सुनकर भीम ने उसे गले लगा लिया और बोले—हे पुत्र! तुम्हारी माता बहुत थक गई है, उसे अपने कन्धे पर बिठाकर आकाशमार्ग से मेरे पीछे पीछे चलो।

घटोत्कच ने कहा—हे पिताजी! आप चिन्ता न करें, मैं सबको अपनी पीठपर बिठा कर ले चलूँगा और भी बहुत से राक्षस मेरे साथी हैं, उन्हें बुला लेता हूँ, इसकार्य में वे मेरी सहायता करेंगे।

यह कह कर घटोत्कच ने द्रौपदी के साथ पाण्डवों को अपने कन्धे पर बिठालिया तथा और राक्षसों को बुलाकर लोमश, धौम्य ऋषि आदि के लिये भी उसी प्रकार चलने का प्रबन्ध कर दिया।

इस प्रकार आकाशमार्ग से चलकर भाँति भाँति के पर्वतों का दृश्य देखते हुए बदरिकाश्रम के समीप पहुँचकर सब लोग एक रमणीक स्थान पर उतरे। वहाँ फलों से लदे हुए मनोहर वृक्षों की छाया में सबने अपनी थकावट दूर की। साङ्गवेदों के जाननेवाले ब्राह्मणों को तपस्या करते हुए देख कर पाण्डव लोग परम प्रसन्न हुए। गङ्गाजल से पवित्र होकर उन तपस्वियों का दर्शन कर अपने को कृतकृत्य माना। तपस्वियों ने भी धर्मराज को जानकर तरह तरह के आशीर्वाद दिये। वहाँ के अनुपम सौन्दर्य को देखकर पाण्डव लोग बड़े सुख से वहाँ रहने लगे।

द्रौपदी भी वहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य को देख कर लुभा गई और बड़े आनन्द से अपना दिन

बिताने लगी। छः दिन तक निवास करने के बाद सातवें दिन अचानक ईशान कोण से हवा के झोंके से एक सहस्र दलकमल—जिसमें सूर्य के समान प्रकाश था—द्रौपदी के सामने आ गिरे। उसने उसकी अनुपम सुन्दरता और सुगन्धि देखकर कहा—

हे भीम! यह कमल बहुत ही मनोहर है, इसकी सुगन्धि मुझे बहुत प्रिय है। मैं इसे ले जाकर धर्मराज को दूँगी। यदि आप मुझ पर प्रेम करते हैं, तो इस तरह के और भी कमल ला दीजिये। मैं इसे काम्यकबन में ले चलूँगी।

सुन्दरी द्रौपदी भीम से इस प्रकार कहकर धर्मराज के पास चली गई।

कमल के लिये द्रौपदी की अभिलाषा को देखकर भीम शस्त्रों से सुसज्जित हो कमल की तलाश में पहाड़ पर चढ़ने को प्रस्तुत हुए। 'बिलम्ब होने से धर्मराज चिन्तित होंगे' ऐसा विचार कर पेड़ पौधों को तोड़ते, उखाड़ते जल्दी जल्दी चलने लगे। जङ्गली पशुपक्षी डर से भाग गये। बड़े वेग से चल कर वे गन्धमादन पर्वत पर एक कदली के वन में पहुँचे। वहाँ एक तङ्ग रास्ते में चलते हुए केलों को उखाड़ कर इधर उधर फेंक कर ज़ोर से गरजे। गरजना सुन कर बन्दर, मृग, पशु, पक्षी आदि चारों ओर भाग गये। आगे बढ़ कर उन्हों ने कमलों से शोभित एक सरोवर देखा। उसमें स्नानकर बाहर निकले और अपने शंख को बड़े ज़ोर से बजाया, जिसके शब्द से बड़े बड़े सिंह व्याघ्र डर कर इधर उधर भाग गये।

उस शब्द को वहाँ निवास करनेवाले हनुमान्‌जी ने सुना और उन्हों ने जान लिया कि यह मेरा भाई भीम है। प्रेम से परीक्षा के लिये तङ्ग रास्ते में भीम का मार्ग रोक कर एक पत्थर पर वे लेट रहे।

भीम चलते हुए वहाँ पहुँचे। परन्तु रास्ते में एक बूढ़े बन्दर को सोया हुआ देख, निर्भय भीम उनके पास चले गये और बड़े ज़ोर से गरजे। यह सुन कर हनुमान्‌जी ने थोड़ी थोड़ी आँखें खोलीं और हँसते हुए भीम की ओर गर्व से देख कर कहा—

हम सुख से सो रहे थे। तुम ने मुझे जगा कर क्यों विघ्न किया? हमने सुना था कि मनुष्य बुद्धिमान् होते हैं पर तू बड़ा निर्बुद्धि मालूम हो रहा है। इसके आगे जाना कठिन है। मनुष्य की गति इसके आगे नहीं। बेहतर है कि तुम कुछ फल फूल खा कर यहाँ से लौट जाओ, व्यर्थ मौत को न बुलाओ।

भीम बोले—हे बन्दर तुम कौन हो? जो मुझसे ऐसी बातें कर रहे हो। मैं मृत्यु से डरने वाला नहीं हूँ, मुझे तुम्हारे उपदेश की आवश्यकता नहीं है। उठ जाओ रास्ता छोड़ दो, नहीं तो तुम्हें यम का घर देखना पड़ेगा।

हनुमान्‌जी ने कहा—भाई मैं वृद्ध हूँ, मुझमें उठने की शक्ति नहीं। कृपा करके मेरी पूँछ हटा दो और चले जाओ।

इस बात को सुन कर और बन्दर को शक्तिहीन जानकर भीम ने चाहा कि मैं उसकी पूँछ पकड़ फेंक दूँ। पर पूरा बल लगा देने पर भी बन्दर की पूँछ टस से मस न हुई। तब लज्जा से सिर झुकाकर बन्दर के सामने गये और हाथ जोड़ कर बोले—

हे कपिश्रेष्ठ! मेरे अपराध को क्षमा करें। सिद्ध, देव, गन्धर्व इनमें से आप कौन हैं? मुझे अपना शिष्य जान कर बतलाने की कृपा करें।

तब हनूमान्‌जी ने विस्तार से अपना परिचय देकर कहा—हे वीर! मैं वायु से उत्पन्न केशरी

का पुत्र, सुग्रीव का मित्र, श्रीराम का सनातन भक्त हनुमान् हूँ । वृद्धावस्था के कारण अपने स्वामी का ध्यान करता हुआ यहाँ दिन काट रहा हूँ । तुम वायुपुत्र होने से मेरे भाई हो । इसलिये युद्ध के समय मैं तुम्हारी सहायता करने की प्रतिज्ञा करता हूँ । जब तुम शत्रुओं में घुसकर गर्जन करोगे, तब मैं उसे और बढ़ा दूँग। युद्ध के समय तुम्हारा ध्वजापर बैठ कर उसकी रक्षा करूँगा ।

तब भीम ने पर्वत पर जाने का कारण कह सुनाया ।

फिर हनूमान्जी ने कहा—हे भीम ! जिस कमल के फूल को तुम खोज रहे हो, वह कुवेर के सरोवर में है । अब तुम उसके निकट पहुँच गये हो । यह कह कर और कुवेर के सरोवर का मार्ग बताकर हनूमान्जी वहाँ से चले गये ।

नाना प्रकार के बन उपबन देखते हुए भीम द्रौपदी की इच्छा पूरी करने के लिये गन्धमादन पर्वत पर हनूमान्जी के बताये हुए रास्ते से चले गये । सन्ध्या होते गन्धमादन पर माला की तरह शोभित एक नदी उन्हें देख पड़ी, उसमें सू ‍ के समान प्रकाशमान् अनेकों कमल खिले हुए थे । कुवेर के घर के पास एक सरोवर में उस नदी का जल आकर गिरता था । उसके चारों ओर सुरम्य वाटिका लगी हुई थी, सरोवर में कमल खिले हुए थे । भीम ने उस सरोवर में उतर कर बड़ी देर तक स्नान किया. कुवेर की वाटिका की रक्षा करनेवाले यक्षों ने उन्हें देख कर पूछा—

मुनिवेशधारी अस्त्रों को धारण किये हुए तुम कौन हो ? यहाँ तुम किस लिये आये हो ?

भीम ने कहा—मैं युधिष्ठिर का भाई दूसरा पाण्डव हूँ । अपनी स्त्री द्रौपदी के लिये फूल लेने आया हूँ ।

यक्ष बोले—हे वीर ! यह सरोवर कुवेर का क्रीड़ास्थल है । उनकी आज्ञा के विना यहाँ किसी को विहार करने का अधिकार नहीं है । यदि कोई बलपूर्वक यहाँ आना चाहे तो वह हम लोगों के हाथ से मृत्यु को प्राप्त होता है ।

भीम ने कहा—मुझे कुवेर से आज्ञा लेने की आवश्यकता नहीं है । राजालोग किसी से माँगते नहीं । पहाड़ी झरने के जल से यह सरोवर बना है; कुवेर की तरह इस पर सब का अधिकार है । फूल तोड़ने के लिये किसी से पूछना छोटी बात है ।

यह सुनकर यक्ष लोग बहुत रुष्ट हुए । बाँधो, मारो, पकड़ो, इस प्रकार कह कर वे शस्त्र प्रहार करने लगे । भीम भी गदा लेकर दौड़े और घोर युद्ध करने लगे । सैकड़ों यक्षों को उन्होंने मारकर गिरा दिया ।

बचे हुए यक्ष भागकर कुवेर के पास गये और उनसे सब वृत्तान्त कह सुनाया ।

इधर युधिष्ठिर ने युद्धकारी उत्पात होते देख द्रौपदी से पूछा—हे प्रिये ! भीम कहाँ हैं ?

द्रौपदी ने कहा—हे नाथ ! मैंने जिस मनोहर सुगन्धित फूल को आपको दिया था, वही और लाने के लिये मैंने भीम से अपनी इच्छा प्रगट की, वे उसे लाने के लिये पूर्वोत्तर दिशा की ओर गये हैं ।

युधिष्ठिर ने कहा—जहाँ भीम गये हैं, वहीं हम भी चलेंगे । ऐसा मालूम होता है कि भीम दूर चले गये हैं, नहीं तो इतना विलम्ब न करते । ऐसा न हो कि कहीं बल के गर्व से देवताओं का कोई अपराध कर बैठें ।

घटोत्कच आदि राक्षसों की सहायता से ब्राह्मण और द्रौपदी के सहित पाण्डव लोग जल्दी जल्दी चलकर कुवेर के सरोवर के समीप पहुँचे । वहाँ देखा कि भीम क्रोध से आँखें लाल किये हुए

हाथ में गदा लेकर खड़े हैं, उनके चारों ओर बहुत से यक्ष घायल होकर पड़े हैं। यह देख कर युधिष्ठिर उनके पास गये और गले से लगाकर बोले—

हे वीरश्रेष्ठ! तुमने यह क्या कर डाला? देवताओं का अप्रिय करके तुमने बहुत अनुचित किया। यदि तुम मुझपर प्रेम रखते हो, तो फिर ऐसा कभी न करना।

भीम को शिक्षा देकर युधिष्ठिर सब लोगों के साथ वहाँ का अनुपम दृश्य देखने लगे। कुवेर ने भीम का युद्ध और धर्मराज के आने का समाचार सुन कर अपने ख़ास सेवकों को भेजकर उनका सत्कार किया। पाण्डव लोग भी कुवेर की आज्ञा पाकर अर्जुन की प्रतीक्षा करते हुए सुखसे गन्धमादन पर्वत पर रहने लगे। द्रौपदी भी मनमाना कमल पाकर बहुत प्रसन्न हुई।

अर्जुन के मिलने की आशा से द्रौपदी तथा महर्षियों के सहित पाण्डव लोग बड़ी उत्सुकता से दिन बिता रहे थे। इस प्रकार उनलोगों को वहाँ रहते हुए एक मास बीत गया।

इधर अर्जुन ने इन्द्रलोक में पाँच वर्ष रह कर सब दिव्य अस्त्रों को प्राप्त किया और उनका चलाना भी सीख लिया तब इन्द्र से आज्ञा लेकर मर्त्यलोक में चलने को तैयार हुए।

अर्जुन का इन्द्रलोक से आगमन

अर्जुन मातलि से चलाये हुए इन्द्र के रथ पर बैठ कर बिजली की तरह एकाएक गन्धमादन पर्वत पर आ गये। रथ से उतर कर उन्होंने युधिष्ठिर, भीम और महर्षियों के चरण छुये तथा नकुल सहदेव और द्रौपदी को प्रेम से गले लगाया। सब लोग अर्जुन के आ जाने से बड़े आनन्दित हुए। धीरे धीरे सबसे यथोचित प्रणामाशीर्वाद होने के बाद मातलि का बहुत सत्कार करके उसे विदा कर दिया। फिर इन्द्र से पाये हुए अमूल्य आभूषणों को उन्होंने द्रौपदी को दिया।

इसके बाद सबके बीच में बैठकर अर्जुन अपनी यात्रा का वर्णन करने लगे। कैलास पर्वत पर निवास और तपस्या, इन्द्रका दर्शन, शिवजी की आराधना और उनका दर्शन, स्पर्श तथा पाशुपत अस्त्र की प्राप्ति, इन्द्रादि देवताओं से प्रयोग के सहित दिव्यास्त्र की प्राप्ति आदि सब घटनाओं का वर्णन करके अर्जुन ने कहा—

हे धर्मराज! इसके बाद देवराज ने हमें देवकार्य के लिये बुलाया, इससे हमने अपना गौरव समझा और प्रसन्न होकर कहा—

हे देवराज! हम अपनी शक्तिभर आपका कार्य करने में कसर न रक्खेंगे। तब इन्द्रने हँस कर कहा—

हे वीर! तीनों लोक में तुम्हें कुछ भी अप्राप्य नहीं है। निवातकवच नामक दानव दल सदा हमारा शत्रु बना रहता है। समुद्र के बीच में हमारे मनोहर दुर्ग को छीन कर वे सब उसी में निवास करते हैं। उनकी संख्या तीन करोड़ है और वे बड़े बलवान् हैं, महादेवजी के वरदान के कारण हम उन्हें मारने में असमर्थ हैं। उनको जीतकर तुम हमें गुरुदक्षिणा दो।

इसके बाद देवराज ने मातलि के चलाये हुए अपने दिव्य रथ पर चढ़ाकर अपना अभेद्य कवच और मुकुट पहनाया। जिसको इस समय मैं धारण किये हूँ। अपने आभूषण पहना कर उन्होंने मेरे शरीर पर हाथ फेरा और युद्धयात्रा के लिये आज्ञा दी। मैं दिव्य अस्त्र शस्त्र से सज कर देव सेना के साथ अनेक लोकों का दर्शन करता हुआ समुद्र के किनारे पहुँचा और वहाँ से निवातकवचों

की नगरी को देखा। मातलि ने समतल भूमि पर वेग से रथ हाँक कर उस नगर में पहुँचाया। मैंने वहाँ पहुँच कर अपने देवदत्त शङ्ख को बजाया।

शङ्ख की ध्वनि सुनकर निवातकवच लोग कवच पहन कर तथा गदा, मुशल, मुद्गर, दंड, चक्र, शूल और तरह तरह के अस्त्र लेकर निकले। तरह तरह के युद्ध के बाजे बजाते हुए वे सब युद्ध के लिये मेरे सामने आये और मेरा रास्ता रोककर घोर युद्ध आरम्भ किया। उन्होंने भाँति भाँति के अस्त्रों की वर्षा मुझ पर की। मैं भी बाणों से उन्हें व्यथित करने लगा। मातलि ने ऐसे ढंग से रथ चलाया कि मैं तो अस्त्रों के आघात से बच गया, पर दानव लोग उसके धक्के से चारों ओर गिरने लगे। मैंने एक लाख दानवों को काटकर पृथ्वी पाट दी अन्त में उन्हों ने माया करके लड़ना प्रारम्भ किया। आकाश में जाकर अग्नि, अस्त्र तथा पत्थर के टुकड़े बरसाये। उनकी तरह तरह की माया को मैंने अस्त्रों से छिन्न भिन्न कर दिया। तब वे पृथ्वी के भीतर से घुसकर मेरे रथ की गति को रोकने लगे। चारों ओर से उन्होंने हमें घेर लिया और भाँति भाँति के अस्त्र बरसाये। उनके इस युद्धकौशल से मुझे चकित हुआ देख मातलि बोला—

हे अर्जुन! डरो मत, वज्र उठा कर चलाओ। मातलि के कहने से इन्द्र के प्यारे अस्त्र वज्र को दृढ़ता से उठा कर मैंने दानवों के ऊपर फेंका। उसके छूटते ही उसमें से लोहे के तरह तरह के दिव्य अस्त्र निकले और निवातकवचों का संहार किया। देखते देखते निवातकवचों का संहार हो गया। तब मातलि हँस कर बोला—

आज जैसा बल पौरुष हमने तुम में देखा, वैसा देवताओं में भी नहीं देखा था।

इसके बाद मातलि ने मुझे फिर इन्द्रलोक में पहुँचा दिया वहाँ देवताओं ने प्रसन्न होकर बार बार मुझे धन्यवाद दिया।

इन्द्रने कहा—हे वीर अर्जुन! अब मर्त्यलोक में तुम्हें जीतने में कोई भी समर्थ न होगा। हे पुत्र! भीष्म, द्रोण तथा धृतराष्ट्र के पुत्र तुम्हारे षोडशांश भी नहीं हैं। हम तुम पर प्रसन्न हैं।

इस प्रकार पाँच वर्ष तक इन्द्रलोक में रह कर मैंने सब दिव्यास्त्र सीख लिये। तब देवराज इन्द्र ने कहा—

हे अर्जुन! अब तुम्हारे जाने का समय हो गया है। उत्सुक होकर तुम्हारे भाई लोग रास्ता देख रहे हैं। जाकर उनको सुखी करो।

उनकी आज्ञा से चल कर जुए का अपमान स्मरण करता हुआ मैं मर्त्यलोक में आ रहा था कि इस गन्धमादन पर्वत पर आप लोगों से भेंट हो गई।

युधिष्ठिर ने कहा—हे पार्थ! बड़े भाग्य की बात है कि तुम ने अद्भुत अद्भुत काम करके दिव्य अस्त्र प्राप्त किये और इन्द्र को प्रसन्न किया। अब हमको निश्चय हो गया कि कौरवों के साथ युद्ध करके हम विजयी होंगे।

इसके बाद पाण्डव लोग अर्जुन के आ जाने पर चार वर्ष तक वहाँ और रहे। बनवास के सिर्फ़ दो वर्ष और शेष रह गये।

एक दिन चारों भाइयों ने मिलकर युधिष्ठिर से कहा—हे धर्मराज! हम लोग आपकी सत्य-प्रतिज्ञा को पूरी करना चाहते हैं। यद्यपि यह रमणीक स्थान छोड़ते नहीं बनता है, तो भी कौरवों से अपना राज्य लेने का आवश्यक कार्य करना बाकी है। उसका भूल जाना उचित नहीं है। इसलिये हम

लोग अपने राज्य के पास किसी स्थान में लौट चलें। वहाँ रह कर श्रीकृष्णजी आदि से उचित सलाह मिल सकेगी और अपने कर्तव्य का निश्चय हो सकेगा

युधिष्ठिर ने भाइयों की बात समझ कर स्वीकार किया और कुवेर की नगरी की प्रदक्षिणा करके तथा वहाँ के मनोहर दृश्यों को भली भाँति देख कर यक्षों से प्रेम-पूर्वक बिदा होकर सब लोग चले।

द्रौपदी और महर्षियों के साथ पाण्डव लोग पूर्व परिचित मार्ग से लौटे। घटोत्कच ने अन्य राक्षसों को साथ लेकर फिर सहारा दिया। महर्षि लोमश पाण्डवों को पुत्र की तरह उपदेश देकर देवलोक को चले गये।

पाण्डव लोग बदरिकाश्रम में आकर एकमास रहे। वहाँ से चल कर सुवाहुराज के देश में आये और अपने सेवकों तथा तपस्वियों से मिले। कुछ काल तक वहाँ रह कर द्वैतवन की ओर यात्रा की। वहाँ पहुँचने पर गर्मी बीत गई और परम सुहावना वर्षाकाल आ गया। बड़े बड़े बादल आकाश में छा गये और गरजने लगे। कड़क के साथ बिजली चमकने लगी। रात दिन खूब जल वृष्टि होने लगी। चारों ओर दादुर और मोर बोलने लगे। पृथ्वी हरी हरी घासों से ढक गई। तरङ्ग भङ्ग दिखलाती हुई नदियाँ लबालब भर कर बहने लगीं। पाण्डवों ने वर्षा काल वहीं बिताया।

काम्यकबन में श्रीकृष्णचन्द्र से भेंट

धीरे धीरे वर्षाकाल बीत गया। सुहावनी शरद ऋतु आई। नदियों और सरोवरों का जल स्वच्छ हो गया, उनमें कमल और कुमुद खिल गये। निर्मल चन्द्रमा के प्रकाश से रात्रि शोभित होने लगी। शरद कार्त्तिकी पूर्णिमा आने पर सुन्दर रथों पर चढ़ कर पाण्डव लोग वहाँ से चले। धौम्य आदि ब्राह्मणों को साथ लिये हुए काम्यकबन में पहुँचे। इन लोगों के पहुँचने पर वहाँ के रहनेवाले ब्राह्मणों ने बड़ा सत्कार किया और कहने लगे—

हे धर्मराज। अर्जुन के प्रिय मित्र श्रीकृष्णजी आप लोगों का यहाँ आना सुन कर आ रहे हैं।

थोड़ी ही देर में भगवान् कृष्ण का रथ आता हुआ दिखाई पड़ा। सत्यभामा के साथ श्रीकष्णजी काम्यकबन में आ पहुँचे। रथ से उतर कर उन्होंने धर्मराज भीम तथा धौम्यमुनि को प्रसन्नता पूर्वक प्रणाम किया और नकुल सहदेव का प्रमाण लेकर द्रौपदी से कुशल पूछा, फिर प्रेम से अर्जुन को अपनी छाती से लगा लिया। सत्यभामा द्रौपदी दोनों प्रेम से गले मिलीं। अर्जुन ने कृष्ण से अपनी यात्रा का सारा वृत्तान्त कह सुनाया; फिर सुभद्रा और अभिमन्यु का कुशल प्रश्न पूछा।

कृष्ण ने युधिष्ठिर से कहा—हे धर्मराज! धर्म के सामने राज्य कोई चीज़ नहीं। धर्म का मूल तप है और तपस्या सत्य के आचरण से होती है। तपस्वी के लिये त्रैलोक्य का राज्य पा लेना सामान्य बात है। अब आप इसी तपस्या के प्रभाव से अन्यायी शत्रुओं पर विजय पा सकेंगे। अर्जुन ने भी तपस्या के प्रभाव से दिव्य अस्त्र प्राप्त कर लिये हैं। आपकी प्रतिज्ञा पूरी होने पर हम कौरवों का नाशकर फिर आपको राज्यासन पर बिठावेंगे।

फिर उन्होंने द्रौपदी से कहा— हे द्रौपदी! तुम्हारे पुत्र प्रतिबिन्ध आदि सदाचार से रह कर धनुर्वेद सीख रहे हैं। तुम्हारी ही तरह सुभद्रा उनका पालन पोषण करती है वे सब प्रद्युम्न के साथ रह कर सब प्रकार की शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं।

युधिष्ठिर बोले—हे वासुदेव! पाण्डवों के एक मात्र आधार आप ही हैं अब हमारे बनवास के

बारह वर्ष पूरे हो चुके, एक वर्ष अज्ञातवास करके आप की सहायता से हम इस सङ्कट से पार हो जाँयगे। हे प्रभो! आपकी कृपा हम पर नित्य ऐसी ही बनी रहे।

श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर से इस प्रकार बातचीत हो ही रही थी कि महामुनि परम तेजस्वी मार्कण्डेय ऋषि वहाँ आगये। पाण्डवों ने कृष्ण के साथ आगे बढ़कर उनकी बिधिवत पूजा की और श्रेष्ठ आसन पर बिठाया।

तब पण्डवों की सलाह से श्रीकृष्णजी बोले—हे महर्षि। हम लोग आपसे कुछ पुनीत कथा सुनना चाहते हैं इस अभिलाषा को पूर्ण करने की कृपा कीजिये।

तब युधिष्ठिर ने भी कथा कहने की प्रार्थना की।

यह सुनकर मार्कण्डेय ऋषि ने तरह तरह की जी लुभानेवाली धार्मिक कथाएँ कह कर सब को प्रसन्न किया। फिर उन्हों ने सृष्टिका उत्पत्ति क्रम बतलाया और कहा कि मैं अमर होने के कारण इन सब दृश्यों को देखा करता हूँ।

तब युधिष्ठिर ने पूछा—हे महामुनि! आपने अनेक युग की उत्पत्ति और विनाश देखा है, कृपाकर बताइये, ब्रह्म को छोड़कर आपसे अधिक आयुवाला कौन है? प्रलय होने के बाद इस सृष्टि की उत्पत्ति कैसे होती है?

मार्कण्डेय ऋषि ने कहा—हे धर्मराज! जिस अव्ययपुरुष ने इस सृष्टि की रचना की है, उसको वही जान सकता है। पहले युग की उत्पत्ति होती है, सत्ययुग पहला है, इसका आयुर्बल सत्रह लाख अट्ठाइस हज़ार वर्ष है। दूसरा त्रेता युग है, इसका भोग बारह लाख छानबे हज़ार वर्ष है। तीसरा द्वापर युग है, यह आठ लाख चौंसठ हज़ार वर्ष तक रहता है। चौथे कलियुग की आयु चार लाख बत्तीस हज़ार वर्ष है। परन्तु एक युग समाप्त होते ही दूसरे का आरम्भ नहीं होता। बीच में दो युगों के सन्धि काल में कुछ वर्ष बीत जाते हैं इस प्रकार कृतयुग के आदि और अन्त में से प्रत्येक ओर एक हज़ार चार सौ चालीस वर्ष का, त्रेता युग के आगे और पीछे प्रत्येक ओर १०८० वर्ष का, द्वापर के पहले और बाद प्रत्येक ओर ७२० वर्ष का, और कलियुग के पूर्व और अनन्तर प्रत्येक ओर ३६० वर्ष का सन्धिकाल होता है। इस तरह सब मिला कर तेंतालीस लाख बीस हज़ार वर्ष हुए। यह देवताओं का बारह हज़ार वर्ष है। कलियुग के क्षीण होने पर कृतयुग का आरम्भ होता है। जब ये चारों युग हज़ार बार बीत जाते हैं, तब ब्रह्मा का एक दिन होता है और ब्रह्मा के सायंकाल आने पर प्रलय होता है।

प्रत्येक बार जब चौथे (कलि) युग का प्रवेश होता है, तब सब मनुष्य असत्यवादी हो जाते हैं, नाना प्रकार के घोर नारकीकर्म करने लगते हैं। यज्ञ, दान, तप का लोप हो जाता है ब्राह्मण शूद्रों का आचरण कर धनी कहलाते हैं, क्षत्रिय अन्याय और अधर्म करते हुए अपने पद से च्युत हो जाते हैं। द्विजातिमात्र मद्य मांस सेवी होते और शूद्र तपस्वी बन कर उपदेश देते हैं। इस प्रकार प्रलय का पूर्वरूप प्रगट होने पर म्लेच्छ राजा पृथ्वी के चारों ओर शासक होते हैं। उनके शासनकाल में धर्म का एक दम लोप हो जाता है।

कलि का अन्त होते होते जब घोर पाप बढ़ जाता है तब अनावृष्टि के कारण प्रजा क्षुधा से पीड़ित होकर मरने लगती है। सूर्य भगवान् प्रचण्ड रूप धारण कर सम्पूर्ण जल को सोख लेते हैं। लता, गुल्म, वृक्षादि सूखकर भस्म हो जाते हैं। सम्बर्त्तक नामक अग्नि वायु के साथ प्रगट होकर पृथ्वी सहित चराचर जीवों को भस्म कर देते हैं।

इसके बाद रङ्ग बिरङ्गे भयङ्कर बादल उठकर गरजते, चमकते हुए मूसलधार जल वृष्टि करते

हैं, आग बुझ जाती है, स्वयम्भु वायुका पान कर लेते हैं, बादल छिन्न भिन्न हो जाते हैं। चारों ओर जलही जल दिखाई पड़ता है कहीं कोई किसी प्रकार का रूपधारी नहीं रह जाता।

जब सब एकार्णव हो जाता है, तब मैं व्याकुल होकर इधर उधर जलमें बहने लगता हूँ। इधर उधर जलमें बहता हुआ मैं एक अविचल वटवृक्ष देखता हूँ, उसकी शाखा पर एक अनुपम पलङ्ग पर बैठा हुआ सूर्य के समान प्रकाशमान एक बालक दिखाई पड़ता है। उसको देख कर मेरे मनमें बड़ा आश्चर्य उत्पन्न होता है। जब मैं उसको जानने के लिये ध्यानावस्थित होता हूँ, तब वह बालकहँस कर कहता है कि हे मुनि! तुम मेरे उदर में आकर विश्राम करो और जब तक इच्छा हो निवास करो। तब मैं भावीवश उसके मुख में प्रवेश कर जाता हूँ। वहाँ पहुँच कर मैं अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड को देखता हूँ। चारों ओर दौड़ने पर उसका अन्त मुझे नहीं मिलता। फिर मैं कहीं शरण न पाकर उसका शरण लेता हूँ और उसके सामने उपस्थित होकर फिर वटवृक्ष पर उसी बालक को पाता हूँ।

मेरे पूछने पर वह बालक हँसकर कहता है—हे मुने! देवता दानव कोई मेरे तत्वको नहीं जानते। तुम्हारे प्रेम से, सृष्टिरचना करता हूँ। मैं ही सम्पूर्ण जीवों की रचना करता हूँ। पहले जल मेरा स्थान होता है ब्रह्मा विष्णु महेश मैं ही हूँ, सूर्य चन्द्र मेरे नेत्र हैं। जितना दृश्य जगत देखते हो सब मुझ में समा जाते हैं। स्वर्गगामी होने के हेतु मनुष्य मेरे ही लिये यत्न करता है। दुराचार करनेवाला मुझसे विमुख होकर दुःख उठाता है। धर्म स्थापन के लिये उत्तम पुरुष होकर मैं पापियों का नाश करता हूँ। काल के अन्त में दारुण काल होकर चराचर जगत को अपने में समेट लेता हूँ। एकार्णव देख कर तुमको भ्रम हुआ था, इसलिये मैंने अपने में तुम्हें सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड दिखा दिया। इस प्रकार बातें करके वह बालक अन्तर्धान हो जाता है और मैं फिर सारी सृष्टि को देखने लगता हूँ। उस बालक की कृपा से सदा मैं इन बातों को देखा करता हूँ।

श्रीकृष्ण के देखते ही मुझे सब बातें स्मरण हो आई हैं। ये सब कुछ करने में समर्थ हैं। हे युधिष्ठिर! तुम इनका शरण लो।

इस प्रकार और भी विचित्र कथाएँ कहकर और युधिष्ठिर को शान्ति देकर महर्षि मार्कण्डेय कुछ काल तक वहाँ रहे।

द्रौपदी सत्यभामा के पास बैठ कर परस्पर कुशल प्रश्न पूछने लगी। इसके बाद सत्यभामा ने हँस कर द्रौपदी से पूछा—

हे द्रौपदी! दिक्पालों के समान परमतेजस्वी तुम्हारे पतिलोग कैसे तुम्हारे वश में रहते हैं और कभी क्रोध नहीं करते? वे सब समान भाव से तुम्हारे ऊपर स्नेह करते हैं। किस व्रत, औषधि या मन्त्र से अथवा किस साधन से तुमने उन्हें अपने वश में कर रक्खा है? कृपा करके वही मुझे भी बताओ, जिससे कृष्ण को मैं अपने वश में किये रहूँ।

द्रौपदी ने कहा—हे सत्यभामा! तुम्हारी बातें असाध्वी स्त्रियों की तरह हो रही हैं, यह उचित नहीं है। मन्त्र के द्वारा पति को वश में करनेवाली स्त्री कभी अपने स्वामी को प्रसन्न नहीं रख सकती। औषधि देने से प्राण तक नष्ट हो जाने का भय रहता है। हे बहिन! इन बातों से पति कभी सुखी नहीं होता। मैं जिस व्यवहार से पतियों को प्रसन्न रखती हूँ, उसे सुनो। मैं पाण्डवों की अन्य पत्नियों से सदा प्रेम करती हूँ, उनसे कभी डाह नहीं रखती। मन को शान्त रख कर पतियों की इच्छानुसार काम करती हूँ। अप्रिय बचन कभी नहीं बोलती। इशारा पाकर सब की समान सेवा करती हूँ। अपने पति को छोड़कर अन्य पुरुष पर कभी दृष्टि नहीं डालती। सबको भोजन कराकर

तब स्वयं भोजन करती हूँ। घर को सदा स्वच्छ रखती हूँ। सुन्दर वस्त्राभूषण पहन और सुगन्धित मालाओं को धारण कर मीठी बातों से पति को प्रसन्न करती हूँ। पति के सुख में सुख और दुःख में दुःख मानती हूँ। कुलीन स्त्रियों का यही धर्म है और यही मैं जानती हूँ। हे सत्यभामा! दुष्टा स्त्रियों का व्यवहार कभी मन में न लाना चाहिये।

सत्यभामा ने कहा—हे द्रौपदी! मैंने ये बातें हँसी में कही थीं; मेरी बातों से बुरा न मानना।

द्रौपदी ने कहा—हे सत्यभामा! पति को वश में रखने का जो उपाय मैंने बतलाया है, उसके आचरण से कृष्ण तुम्हारे वश में हो जायँगे। पति को छोड़कर स्त्री के लिये न कोई तीर्थ है, न व्रत है, न धर्म है। पति सेवा ही स्त्री के लिये स्वर्ग-सुख का द्वार है।

इसके बाद कृष्णजी जब रथ पर चढ़ कर चले तो उन्होंने सत्यभामा को बुलाया। सत्यभामा ने प्रेम से द्रौपदी को गले से लगा कर कहा—

हे द्रौपदी! चिन्ता न करो। तुम्हारे पति लोग शीघ्र ही शत्रुओं को जीतकर राज्य करेंगे और तुम फिर सुखी होओगी तुम्हारे पुत्रों को देख रेख सुशीला सुभद्रा कर रही हैं। हम भी उनको अपने पुत्र के समान जानती हैं।

इस प्रकार कह कर सत्यभामा रथ पर सवार हो गई और कृष्ण के साथ प्रस्थान किया। मार्कण्डेय ऋषि भी अपने स्थान को चले गये।

पाण्डव लोग भी वहाँ से चल कर द्वैतवन में गये और वहाँ एक सरोवर के किनारे घर बना कर रहने लगे।

पाण्डव लोग ब्राह्मणों के साथ रहकर द्वैतवन में वनवास के दिन बिताने लगे। पाण्डवों के यहाँ से एक ब्राह्मण राजा धृतराष्ट्र के पास गया। उन्होंने उसका सत्कार कर पाण्डवों का कुशल पूछा। ब्राह्मण ने द्रौपदी तथा पाण्डवों के दुःख की कथा बड़े मर्मस्पर्शी शब्दों में कह सुनायी।

पाण्डवों की दुःख कहानी सुनकर धृतराष्ट्र को बड़ी दया आई। कुछ कालतक वे चिन्ता से उद्विग्न हो उठे। फिर अपने ही को इन दुःखों का कारण समझ पाण्डवों की प्रशंसा और अपने पुत्रों की निन्दा करते हुए उन्होंने बहुत विलाप किया। अर्जुन की तपस्या और दिव्य अस्त्र की प्राप्ति सुन कर उन्होंने कहा—अब कुरुकुल के नाश होने में सन्देह नहीं। निश्चयही मेरे पुत्र कालवश हो गये हैं।

दुर्योधन की कुटिलनीति

राजा का प्रलाप सुन कर कर्ण और शकुनि ने एकान्त में जाकर दुर्योधन से सब हाल कहा, फिर कर्ण बोला—

हे वीर! सुनते हैं पाण्डव लोग द्वैतवन में सरोवर के किनारे भिक्षुकों की तरह रहते हैं। आप वहाँ खूब सजधज के राजसी ठाटबाट से चलें, साथ में चतुरङ्गिनी सेना भी रहे। आपके ऐश्वर्य को देखकर पाण्डव लोग मारे लाज के गड़ जायँगे और उनकी दुर्दशा देखकर हम लोग ख़ुशी मनावेंगे। द्रौपदी यह देखकर जीते ही मृत तुल्य हो जायगी।

शकुनि ने भी इस बात का समर्थन किया।

नीच दुर्योधन इन बातों को सुन कर पहले तो प्रसन्न हुआ पर पीछे से दुखी होकर कहने लगा।

हे कर्ण! तुम्हारी उचित सलाह हमें बहुत रुची है। पर राजा हमें वहाँ जाने की आज्ञा न देंगे। नहीं तो भीम और अर्जुन को छाल और मृगचर्म धारण किये हुए देख कर हमसे अधिक कौन सुखी होगा? हम चाहते हैं कि एक बार पाण्डव लोग हमारे ऐश्वर्य को देख लें, तभी हम अपने जीवन को सफल समझेंगे। तुम और शकुनि मिल कर वहाँ चलने का कोई उपाय सोचो। तुम लोग जिस तरह कहोगे, उसी तरह हम पिता से आज्ञा प्राप्त करने की चेष्टा करेंगे।

दुर्योधन की बात सुन कर कर्ण और शकुनि अपने अपने घर चले गये। दूसरे दिन सवेरे दोनों ने आकर हँसते हुए कहा—

हे दुर्योधन! हमने उपाय ठीक कर लिया। सुनिये, द्वैतवन में गौएँ रहती हैं उनकी देखभाल करना आपका कर्त्तव्य है। गौओं को देखने के लिये पिता से आज्ञा लेकर चलिये।

दुर्योधन को यह उपाय बहुत पसन्द आया। सब लोग आनन्द से एक दूसरे का हाथ पकड़ खूब ज़ोर से हँसे। इसके बाद वे लोग धृतराष्ट्र के पास गये और प्रणाम किया। धृतराष्ट्र ने उन लोगों का कुशल आदि पूछा। उसी समय पहले से सिखाये हुए एक ग्वाले ने आकर कहा—

हे महाराज! गाय और बछड़ों की उम्र और रंग का लेखा रखने तथा उनके गिनने का समय आ गया है।

कर्ण और शकुनि बोले—हे नाथ! द्वैतवन में अहीरों की बस्ती बड़ी रमणीक है और वहाँ शिकार खेलने का भी अच्छा सुभीता है। यदि आप आज्ञा दें तो हम लोग दुर्योधन को साथ लेकर जायँ। उसी के साथ गायों की देख भाल का ज़रूरी काम भी पूरा हो जायगा।

धृतराष्ट्र ने कहा—शिकार खेलना अच्छी बात है और गौओं के देखने का काम भी ज़रूरी है। किन्तु हमने सुना है कि वहीं पाण्डवलोग भी रहते हैं, इसलिये वहाँ जाने की आज्ञा देने में हम हिचकते हैं। छल से वे लोग हार गये हैं, भीम महा क्रोधी है, अग्नि के समान द्रौपदी उनके पास है, अर्जुन ने तपस्या करके दिव्यास्त्र प्राप्त किये हैं। तुम लोग वहाँ जाकर घमण्ड के मारे अपराध करोगे ही और वे इससे रुष्ट होकर तुमलोगों का भारी अनिष्ट कर सकते हैं। इस काम के लिये किसी दूसरे आदमी को भेजो, हम तुमलोगों को जाने की आज्ञा न देंगे।

शकुनि ने कहा—हे राजा! युधिष्ठिर प्रतिज्ञा भङ्ग न करेंगे। वे बड़े धर्मात्मा हैं। उनके भाई लोग भी उनकी आज्ञा के विपरीत आचरण न करेंगे। हमलोग तो गायों को देखने और शिकार खेलने की इच्छा से जाते हैं, उनके पास जाने की ज़रूरत ही क्या है?

यह सुन कर धृताराष्ट्र ने बेमन से जाने की आज्ञा देदी। आज्ञा पाते ही दुर्योधन, कर्ण, शकुनि, दुःशासन और भाइयों को साथ लेकर तथा सेना सजाकर बड़े ठाटबाट से चलने को तैयार हुए। हज़ारों हाथी, घोड़े, रथ सजकर संग में चले। स्त्रियाँ भी वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर गईं। नगरवासी भी शिकार खेलने की अभिलाषा से तरह तरह के रथों में बैठ कर गये। वहाँ पहुँच कर सब के रहने के लिये घर बनाये गये और सब लोग उनमें सुख से निवास करने लगे। धीरे धीरे गाय और बछड़ों के गिनने, चुनने और आँकने का काम समाप्त हुआ। वहाँ के ग्वाले और गोपियों ने तरह तरह के नृत्य गीत से दुर्योधन को प्रसन्न कर उससे बहुत सा धन प्राप्त किया।

इस के बाद सब लोग शिकार खेलने निकले और बाघ, मृग, भालू, सूअर, भैंसे आदि का शिकार करने लगे। दुर्योधन भी जङ्गली हाथी आदिका शिकार करते हुए द्वैतवन के सरोवर के पास पहुँचा। दुर्योधन उस रमणीक स्थान को देख कर बहुत प्रसन्न हुए। पाण्डवों को अपना

ऐश्वर्य दिखाने के विचार से उन्होंने नौकरों को आज्ञा दी कि सरोवर के किनारे एक उत्तम घर बनाया जाय।

उस समय अप्सराओं के साथ विहार करने के विचार से गन्धर्वराज चित्रसेन गन्धर्वों के साथ वहाँ निवास कर रहे थे। जब दुर्योधन के नौकर सरोवर के निकट गये तो गन्धर्वों ने उन्हें रोका।

नौकरों ने लौटकर दुर्योधन से सब हाल कहा। उन्हें यह बात बहुत बुरी लगी और बोले—

सैनिक लोग जाँय और गन्धर्वों को वहाँ से निकाल दें।

सेनानायक लोग सैनिकों के साथ सरोवर के तट पर गये और बाले—

हे गन्धर्वगण! कुरुराज धृतराष्ट्र के पुत्र परमतेजस्वी और महापराक्रमी दुर्योधन यहाँ विहार करने आते हैं, इसलिये तुमलोग शीघ्र यहाँ से चले जाओ।

गन्धर्वों ने हँसकर उत्तर दिया—हे मूर्ख सैनिको! तुम्हारा राजा महामूर्ख है। अपने पिता की तरह वह अन्धा है; क्योंकि हमलोगों को न देख कर ऐसी बातें करता है। क्या तुम लोगों को अपने प्राणों का भय नहीं है, जो ऐसी आज्ञा सुनाने आये हो?

सैनिकों ने लौटकर दुर्योधन से सब हाल कहा। वह क्रोध से लाल होगया और बोला—

हे वीरो! शीघ्र जाकर गन्धर्वों को पूरा दण्ड दो। यह सुनकर सब योद्धा अस्त्र शस्त्र लेकर सिंह की तरह गरजते हुए सरोवर की ओर दौड़े।

दुर्योधन को सैनिकों के साथ आता देख बड़े बड़े गन्धर्वों ने समझाकर रोकने की चेष्टा की। पर इसमें सफल न होकर गन्धर्वों ने अपने राजा चित्रसेन से सब हाल कहा। उन्होंने भी क्रोधित हो कर युद्ध करने की आज्ञा देदी। घोर युद्ध आरम्भ हो गया।

दुर्योधन के सैनिक प्रतापी गन्धर्वों के युद्ध से विचलित हो गये। वे दुर्योधन के सामने ही भाग चले।

कर्ण सैनिकों को भागता देख बहुत क्रोधित हुआ और भयङ्कर बाणवृष्टि करने लगा। इससे बहुत से गन्धर्व मारे गये। यह देख कर बहुत से गन्धर्व वहाँ आगये और युद्ध करने लगे। जब गन्धर्व की सेना कर्ण, दुर्योधन आदि को न हरा सकी, तब चित्रसेन क्रोधित होकर स्वयं युद्धभूमि में आये। उन्होंने मोहनास्त्र चलाकर कौरव वीरों को व्यथित कर दिया। तब किसी ने कर्ण के रथ की धुरी को किसी ने पहियों को किसी ने सारथि को किसी ने घोड़ों को मार डाला। कर्ण किसी प्रकार रथ से कूद कर विकर्ण के रथ पर बैठ कर भागा कर्ण के भागतेही सारी सेना भाग चली। किन्तु दुर्योधन अन्त तक युद्धभूमि में डटा रहा।

दुर्योधन गन्धर्वों की सेना अपनी ओर आती देख घोर बाण वृष्टि करने लगा। गन्धर्वों ने घेर कर उसका रथ नष्ट कर डाला और दुर्योधन रथ से गिर पड़ा। चित्रसेन उसे जीताही पकड़ कर ले चला। गन्धर्वों ने दुर्योधन की रानियों को भी बन्दी बना लिया।

दुर्योधन के मन्त्रीलोग यह सुनकर अधीर हो उठे और कोई उपाय न देख सरोवर के उस पार जाकर उनलोगों ने युधिष्ठिर का शरण लिया। दुर्योधन की दुर्दशा सुनकर भीम हँसे और बोले—

हम जिस काम के लिये बड़ी बड़ी तैयारियाँ कर रहे थे, उसे गन्धर्वों ने बिना हमारे जानेही कर डाला। दुर्योधन धूर्त्तता से हमें ठगने आया था पर वही ठगा गया। मेरा हित करनेवाला कोई और ही पुरुष है, जो ऐसी ऐसी अघटित घटना दिखा रहाहै। यह दुष्ट बनवास से दुखी हमें अपना ऐश्वर्य दिखाने आया था।

भीम की बातों से असन्तुष्ट होकर युधिष्ठिर बोले—हे भाई! ऐसी बातें कहने का यह समय नहीं है। कौरव आर्त्त होकर हमारे शरण में आये हैं, स्त्रियाँ भी उनके साथ हैं। दूसरे के हाथों उनका अपमान कैसे देखोगे? हमारा उनका गृह कलह है, ऐसे स्थान पर उसका विचार न करना चाहिये। हे वीर भीम! अर्जुन, नकुल, सहदेव को साथ लेकर दुर्योधन को गन्धर्वों के हाथ से छुड़ाओ। पहले साम नीति का प्रयोग करो, इससे सफलता न मिलने पर युद्ध करो। शत्रु को शत्रु के हाथ से छुड़ा देना पुत्रजन्म के समान आनन्ददायी होता है। यज्ञ का आरम्भ कर चुके हैं, नहीं तो हम स्वयं उठ कर चलते।

युधिष्ठिर की बात सुन कर पाण्डवों ने अपने अपने रथों में बैठ कर गन्धर्वों का पीछा किया। पहले तो उन लोगों ने सुलह की बात चलायी, पर विजयी गन्धर्वों ने हँस कर उसे टाल दिया। फिर घोर युद्ध होने लगा। बहुत से गन्धर्व मारे गये। चित्रसेन के धनुष के टङ्कार को सुन कर अर्जुन शब्द-बेधी बाण मारने लगे। तब चित्रसेन ने प्रगट होकर कहा—हे वीर अर्जुन! ठहर जाओ। हम तुम्हारे मित्र चित्रसेन हैं।

गन्धर्वराज की बात सुन कर अर्जुन ने हथियार रख दिये दूसरे पाण्डवों ने भी युद्ध करना बन्द कर दिया। इसके बाद अर्जुन ने चित्रसेन को गले लगा कर कहा—

हे वीर! तुमने रानियों के सहित दुर्योधन को क्यों क़ैद कर लिया है?

चित्रसेन ने कहा—हे अर्जुन! इस पापात्मा का अभिप्राय हमें मालूम हो गया था कि यह कर्ण आदि को साथ लेकर तुम्हें सताने और द्रौपदी की हँसी लेने के लिये यहाँ आया है। इसलिये देवराज इन्द्र की आज्ञा से हम इसे दण्ड देने आये हैं। इस दुष्ट को पकड़ कर हम इन्द्रलोक में ले जायँगे। धर्मराज और तुम लोग इसकी बुरी नियत नहीं समझ सके हो। इसी कारण इसके छुड़ाने का उद्योग कर रहे हो। चलो धर्मराज के पास चल कर हम सब हाल सुनावें।

युधिष्ठिर के पास जाकर चित्रसेन ने सब हाल कहा। उन्होंने सुन कर दुर्योधन को छोड़ देने की प्रार्थना की और चित्रसेन की प्रशंसा करते हुए कहने लगे—

हे चित्रसेन! तुम्हारे इस महोपकार के लिये हम सदा कृतज्ञ रहेंगे। अब यदि तुम इसे छोड़ दोगे, तो हमारे कुल की मर्यादा की रक्षा होगी।

धर्मराज की आज्ञा से चित्रसेन ने दुर्योधन को छोड़ दिया और उनसे बिदा होकर अप्सराओं के साथ अपने लोक को चले गये

इसके बाद धर्मराज ने दुर्योधन आदि का बहुत सत्कार कर प्रेम से कहा—

हे भाई दुर्योधन! ऐसा साहस फिर कभी न करना। किसी प्रकार का मन में दुःख न मान कर आनन्द के साथ घर लौट जाओ।

दुर्योधन युधिष्ठिर को प्रणाम कर चला। वह अत्यन्त लज्जित होकर सिर नीचा किये हुए धीरे धीरे अपने नगर की ओर चलने लगा। उस समय वह शोक से बेचैन था। उसकी इन्द्रियाँ अपने वश में न थीं। पैर ठिकाने न पड़ता था। सब बातें स्मरण कर उसका हृदय फटा जाता था। रास्ते में एक जलाशय देख कर वह वहीं ठहर गया। घोड़े खोल दिये गये, सब लोग वहाँ विश्राम करने लगे। इतने में राहुग्रस्त प्रातःकाल के चन्द्रमा के समान मलिन मुख दुर्योधन के पास कर्ण आया। भाग जाने के कारण सब बातें तो उसे मालूम न थीं, इस से वह प्रसन्न होकर कहने लगा—

हे महाराज! आपकी वीरता से अन्य भाइयों, स्त्रियों तथा सैनिकों की रक्षा हुई। हमारी

सेना ते भागगई थी, इस से मैदान से हमें हट जाना पड़ा। हे वार! आपने मायावी गन्धर्वों को कैसे परास्त किया? क्योंकि उनको जीतने में दूसरा कोई समर्थ न था।

कर्ण की बात सुन कर दुर्योधन शोक सागर में डूब गया। आँखों में जल भर कर रुँधे हुए कण्ठ से बोला—

हे कर्ण! बिनाजाने तुम ऐसी बातें कर रहे हो, इसलिये मैं तुम पर रुष्ट नहीं होता हूँ। मैंने गन्धर्वों के साथ बहुत देर तक युद्ध किया। पर उन्होंने माया करके हमें हरा दिया और हमारी स्त्री, पुत्र, मन्त्री, सेना, बाहन आदि छीन ले गये। अन्त में हमें भी पकड़ कर हँसते हुए ले चले। तब बचे हुए हमारे कुछ मन्त्री लोग युधिष्ठिर के शरण में गये। युधिष्ठिर की आज्ञा से हमें छुड़ाने के लिये भीम और अर्जुन ने पहले तो गन्धर्वों से घोर युद्ध किया, फिर पीछे से अर्जुन ने जब अपने मित्र चित्रसेन को पहचाना, तब युद्ध बन्द करके हमें छोड़ देने को कहा। चित्रसेन ने हमारे आने का रहस्य पाण्डवों से प्रगट कर हमें बहुत लज्जित किया। उस समय हमारे मन में यही होता था, कि पृथ्वी फट जाय और हम उसमें समा जाँय। हे भाई! फिर गन्धर्व लोग हमें क़ैदी की तरह युधिष्ठिर के सामने ले गये। स्त्रियों के साथ हमको उन्होंने मुक्त कराया। जिनको मैंने निकाल दिया था और बार बार मारने की चेष्टा करता था, उन्हीं शत्रुओं से हमें प्राणदान मिला! हाय! यह अपमान सहकर अब हम नहीं जी सकते। युद्ध में ही गन्धर्वों के हाथ से मर जाना इससे कहीं अच्छा था। युद्ध में सन्मुख मर कर हमें स्वर्गलोक तो मिल जाता। अब हम अनशन व्रत करके अपना प्राण त्याग देंगे। तुम लोग हस्तिनापुर को लौट जाओ। भाइयों के साथ हमारा स्मरण करते रहना भूल मत जाना। हाय! यह हाल सुन कर भीष्म, द्रोण, विदुर, कृप आदि हमें क्या कहेंगे! उन लोगों से उपहासित होने की अपेक्षा हमें मृत्युही अच्छी है।

हे दुःशासन! हम तुम्हें राजतिलक करते हैं। गुरुजनों की सेवा करते हुए प्रजा को खूब सुखी रखने का प्रबन्ध करना। यह कह कर दुर्योधन ने दुःशासन को गले लगा लिया।

दुःशासन करुणा से विलाप करता हुआ बोला—हे तात! प्रसन्न हो जाओ। यह कह कर दुर्योधन के पैरों पर गिर पड़ा उसका कंठ भर आया। फिर धीरज धर कर बोला—

हे भाई! पृथ्वी, आकाश फट जाँय, सूर्य चन्द्र अपनी प्रभा को छोड़दें, पर आपके बिना मैं पल भर भी राज्य न करूँगा। हमारे वंश में आपही राज्य करने के योग्य हैं, आप सौ वर्ष तक जीवें और राज्य करें। यह कह कर दुःशासन बड़े उच्चस्वर से रोने लगा।

यह दुःख देख कर कर्ण भी बहुत चिन्तित हुआ और समझाने लगा।

कर्ण ने कहा—हे कौरववीर! आप लोग खेद न करें बालकों की तरह रोना शोभा नहीं देता है। यदि शाक से दुःख मिट जाय तो वही कीजिये। इस प्रकार शोक करने से शत्रुओं के आनन्द की वृद्धि हाती है। इसलिये धैर्य धारण कीजिये। पाण्डव लोग आपके राज्य के भीतर रहते हैं, इसलिये वे भी आपकी प्रजा हैं। प्रजा का धर्म है कि राजा की रक्षा करे। पाण्डवों ने आपको छुड़ा दिया, इसमें कौन सी आश्चर्य की बात है। यह तो उनका धर्म ही था। राजा को हर प्रकार से सुखी रखना प्रत्येक प्रजा जन का धर्म है। इसलिये आपका प्राण त्यागना व्यर्थ है। देखिये, आपके भाई आपके कारण कितने दुखी हैं। आप मेरी बात मान कर घर लौट चलें। यदि ऐसा न कीजियेगा तो मैं भी यहीं प्राण दे दूँगा।

कर्ण की बात सुन कर भी दुर्योधन का चित्त शान्त न हुआ। वह अनशन व्रत कर प्राण त्याग देने पर ही तुले हुए थे।

तब शकुनि धीरज देता हुआ बोला—हे राजाधिराज! कर्ण का न्यायानुकूल बातों पर आप ध्यान क्यों नहीं देते हैं? जिस अनन्त ऐश्वर्य को हम ने आपके लिये जीता, विना कारण आप उसे क्यों छोड़ने को तैयार हैं। जो मनुष्य हर्ष अथवा शोक के वेग को नहीं रोक सकता, उसको लोग मूर्ख कहते हैं। नामर्द, कादर, आलसी, मूर्ख और विषयी राजा का प्रजा आदर नहीं करती। पाण्डवों ने आपका उपकार अवश्य किया है, इसके लिये आपको शोक न कर प्रसन्न होना चाहिये और उनका सत्कार करना चाहिये। इसके बदले में आप उनका राज्य लौटाकर उन्हें कृतज्ञता के पाश में बाँध लीजिये और सुख पूर्वक राज्य कीजिये। इससे आपकी कीर्ति बढ़ेगी। प्राण त्याग करने का विचार छोड़ दीजिये।

शकुनि की बातें सुनकर दुर्योधन ने पैरों तले पड़े हुए भाई दुःशासन को उठाकर गले से लगा लिया और बोला—

हमें अब अर्थ, धर्म, काम किसी वस्तु की अभिलाषा नहीं है। हमने शरीर त्याग देने का ही निश्चय कर लिया है। आप लोग घर लौट जाँय और गुरुजनों को सब प्रकार से प्रसन्न रखने का उपाय करें।

दुर्योधन की बात सुन कर सब एक साथ बोले—हे महाराज! जो आप करेंगे, वही काम हम लोग भी करेंगे। आपके बिना हम में से कोई भी लौटकर नगर में न जायगा।

सब लोग बहुत तरह से समझा कर हार गये, पर दुर्योधन ने अपना हठ न छोड़ा। शरीर में भस्म लगा कर तथा पवित्र वस्त्र पहन कुशासन पर बैठ गया।

पातालवासी दैत्यराज्य को यह मालूम हो गया। उसने एक दूती दुर्योधन के पास रात्रि में ही भेजी। दूती ने आकर कहा—

हे दुर्योधन! तुम्हें अनशन व्रत करना योग्य नहीं है। आत्महत्या करनेवाले पुरुषों की अधोगति होती है। तपस्या के प्रभाव से तुम्हारा आधाशरीर वज्र के समान है। अस्त्र शस्त्र का असर उस पर नहीं हो सकता। शत्रु तुम्हारा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। भगदत्त आदि बीर राजा लोग तुम्हारे सहायक होंगे। दानवों ने भी तुम्हारी सहायता के लिये मानुषी शरीर धारण किया है द्रोण, भीष्म, कृप आदि के शरीर में प्रवेश कर हम लोग विकट युद्ध करेंगे। तुम पाण्डवों से क्यों भयभीत हो रहे हो? नरकासुर की आत्मा जब कर्ण में प्रवेश कर युद्ध करने लगेगी, तब अर्जुन की रक्षा इन्द्र भी न कर सकेंगे। इसलिये तुम शोक को छोड़ दो और निर्भय होकर राज्य करो।

इस प्रकार समझा कर दूती रात्रि में ही लौट गई दुर्योधन को पाण्डवों पर विजय पाने का पूरा निश्चय हो गया। उसका सारा शोक दूर हो गया।

प्रातःकाल होने पर कर्ण, शकुनि, दुःशासन आदि आकर फिर बहुत तरह से समझाने लगे। कर्ण ने कहा—

हे महाराज! मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि तेरह वर्ष बीतने के बाद पाण्डवों को जीतकर आपके अधीन कर दूँगा।

दुर्योधन दैत्यराज के सन्देश तथा कर्ण के उत्साह दिलाने से घर लौट चलने को राज़ी हो गया।

कर्ण, शकुनि, भाई लोग तथा सेना को संग लेकर दुर्योधन प्रसन्न मन से हस्तिनापुर की ओर चला। नगर में पहुँचने पर राजा धृतराष्ट्र बाह्लीक, भूरिश्रवा, सोमदत्त आदि को साथ लेकर अगवानी के लिये गये। सबके साथ दुर्योधन राजभवन में गया।

जब भीष्मपितामह ने दुर्योधन का सारा वृत्तान्त सुना, तब वे उससे बोले—

हे दुर्योधन! हमने तुम्हें जाते समय रोका था, पर हमारी बात तुम्हें न रुची। तुमने वहाँ जाकर जो जो काम किये, गन्धर्वों ने जैसे तुम्हें पकड़ लिया और पाण्डवों ने तुम्हारी रक्षा की, यह सब हम ने सुना है। जिस कर्ण की तुम बराबर प्रशंसा किया करते हो वह पाण्डवों का चतुर्थांश भी नहीं है। देखो, वह संग्रामभूमि से कैसा कायरों की तरह भाग गया। धर्म, वीरता, धनुर्वेद, किसी विषय का पूर्णज्ञाता कर्ण नहीं है। इसलिये हे बेटा! इसके बहकाने में न पड़ो। धर्मात्मा पाण्डवों से सन्धि कर लो।

पर नीच दुर्योधन ने भीष्म की बात को हँसी में उड़ा दिया और शकुनि तथा कर्ण के साथ वहाँ से चला गया।

दुर्योधन की इस उपेक्षा से भीष्मपितामह बहुत लज्जित हुए और अपने घर चले गये।

भीष्मपितामह के चले जाने पर वे सब फिर वहीं लौट आये और दुर्योधन आगे के कार्य का विचार करने लगा।

तब कर्ण बोला—हे कुरुराज! सुनिये, भीष्म सदा हम लोगों की निन्दा और पाण्डवों की प्रशंसा किया करते हैं। वे आप से द्वेष रखते हैं इसी कारण हमें बुरा भला कहा करते हैं। यह अपमान हमसे नहीं सहा जाता है। आप आज्ञा दें जिस पृथ्वी को चार पाण्डवों ने जीता था, उसे मैं अकेले ही चतुरङ्गिनी सेना लेकर जीत लूँ। हमारी तुम्हारी निन्दा करनेवाला कुलाङ्गार भीष्म तब हमारी शक्ति को देख ले।

कर्ण की यह बात सुन कर दुर्योधन प्रसन्न होकर बोला—

हे वीर! तुमसे बढ़ कर वीर पृथ्वी में दूसरा नहीं है, तुमको पाकर मैं धन्य हुआ हूँ। हमारी इच्छा दिग्विजय करने की है, इसलिये तुम सारी सेना लेकर जाओ।

इसके बाद शुभमुहूर्त्त में सेना सजाकर कर्ण दिग्विजय के लिये चला। पहले वह पाञ्चाल देश में गया और वहाँ द्रुपदराज से घोर युद्ध करके उन्हें अपने वश में किया तथा बहुत सा धन लिया। फिर उत्तर दिशा में जाकर भगदत्त आदि राजों को जीत कर उनसे कर लिया। हिमालय के पहाड़ी राजों को जीतता हुआ पूर्वदिशा में गया और वहाँ अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, मिथिला, मगध आदि देशों के राजों को जीत कर उनको अपने अधीन किया। फिर दक्षिण देश के प्रसिद्ध राजों को जीत कर उनसे कर लिया। इसके बाद पश्चिम दिशा में जाकर यवन, वर्बरआदि राजों को जीत कर उनसे अशेष धन रत्न लिया। इस प्रकार थोड़े ही समय में दिग्विजय करके और असंख्य धन रत्न लेकर कर्ण हस्तिनापुर में लौट आया।

दुर्योधन ने भाइयों और मन्त्रियों के साथ आगे से जाकर अगवानी की तथा कर्ण का बहुत सत्कार किया। दुर्योधन ने डुग्गी पिटवा दी कि कर्ण ने सम्पूर्ण पृथ्वी का विजय कर लिया, कोई देश उनके जीतने से बाकी नहीं है। इसके बाद कर्ण से कहा—

हे वीरवर! जिस कार्य को भीष्म, द्रोण, कृप नहीं कर सके थे, तुम ने उसे कर दिखाया। तुम्हारी प्रशंसा कहाँ तक करें, हम तो तुम्हीं से सनाथ हैं। अब पाण्डवों की गिनती तुम्हारे षोड़-शांश में है। अब तुम चलकर माता गान्धारी और पिता धृतराष्ट्र के दर्शन करो।

कर्ण ने जाकर गान्धारी और धृतराष्ट्र को प्रणाम किया। सबने उसकी प्रशंसा कर हृदय से लगाया। अब पाण्डवों के जीत लेने में कौरवों को कोई सन्देह न रह गया।

अनन्तर कर्ण ने कहा—हे महाराज! अब सारी पृथ्वी और राजा लोग आपके अधीन हो गये इसलिये ब्राह्मणों को बुला कर कोई महायज्ञ आरम्भ कर दीजिये।

दुर्योधन की इच्छा राजसूययज्ञ करने की थी ही, उसने ब्राह्मणों को बुला कर कहा—

हे द्विजवरो! हम राजसूययज्ञ करना चाहते हैं, आप लोग इसका प्रबन्ध करें।

विद्वान् पुरोहित ने कहा—हे महाराज! आपके पिता और युधिष्ठिर जीवित हैं, उनके रहते हुए आपको इस यज्ञ के करने का अधिकार नहीं। इसी के समान एक दूसरा महायज्ञ है, उसे आप कीजिये। जिन राजाओं को आपने जीत लिया है, उनसे आप कर स्वरूप सोना लीजिये। उसी सोने का एक हल बनवाइये और उससे यज्ञभूमि जुतवाइये इस यज्ञ का नाम विष्णुयज्ञ है, यह राजसूय-यज्ञ के समान ही पुनीत है और शास्त्रानुसार आप इस यज्ञ के करने के अधिकारी भी हैं।

सब लोगों ने पुरोहित की बात का समर्थन किया। दुर्योधन ने यज्ञ की तैयारी करने की आज्ञा दी। सब सामान ठीक हो जाने पर मन्त्रियों, शिल्पकारों तथा बुद्धिमान् विदुरजी ने दुर्योधन से कहा—

हे महाराज! यज्ञ की सब सामग्री तैयार है और सोने का हल भी बन गया है, अब यज्ञ करने का मुहूर्त्त भी आगया है।

यह सुनकर दुर्योधन ने यज्ञ आरम्भ करने की आज्ञा दी और विधि के अनुसार ब्राह्मणों से दीक्षा ली। ब्राह्मणों और राजाओं को बुलाने के लिये चारों ओर दूत भेजे गये। इसी समय दुःशासन ने एक दूत से कहा—

हे दूत! द्वैतवन में जाकर पापी पाण्डवों को भी निमन्त्रण दे देना।

दूत पाण्डवों के पास गया और प्रणाम करके बोला—हे पाण्डवो! दुर्योधन अपने पराक्रम से उत्पन्न किये हुए धन से महायज्ञ कर रहे हैं। उन्होंने यज्ञ देखने के लिये आपको निमन्त्रण भेजा है।

युधिष्ठिर ने कहा—हे दूत! बनबास की प्रतिज्ञा के कारण हम नगर में नहीं जा सकते। तेरह वर्ष की अवधि बीत जाने पर आवेंगे।

भीम से न सहन हुआ, वे बोले—हे दूत! धृतराष्ट्र के पुत्रों से जाकर कह देना कि तेरह वर्ष के बीतने पर राजा युधिष्ठिर जब शस्त्र की अग्नि में आहुति देने जाँयगे, तब हम संग्रामभूमि में उनसे मिलेंगे।

दूतने लौट कर पाण्डवों का उत्तर दुर्योधन से कहा। इसके बाद चारों ओर से बड़े बड़े ब्राह्मण और राजा लोग आये राजा ने सब का यथोचित सत्कार किया। दुर्योधन ने यज्ञ को विधि पूर्वक पूर्ण करके ब्राह्मणों को बहुत सा सुवर्ण और गौएँ दान में दीं। यज्ञ समाप्त होने पर सब लोग अपने अपने स्थान को लौट गये।

यज्ञ समाप्त होने पर जब दुर्योधन यज्ञभूमि से चले तब ब्राह्मण लोग स्वस्तिवाचन करने लगे, बन्दी, मागध विरदावली पढ़ कर स्तुति करने लगे, चन्दन का चूर्ण और धान के लावा की वर्षा होने लगी। राजभवन में पहुँच कर उन्हों ने माता पिता तथा अन्य गुरु जनों के चरण छुए। इसके बाद वे एक ऊँचे आसन पर जा बिराजे।

तब सभा के बीच कर्ण बोला—हे महाराज! सौभाग्य से यज्ञ निर्विघ्न समाप्त होगया, किन्तु जिस दिन आप पाण्डवों का नाश कर राजसूययज्ञ करेंगे, उसी दिन मैं आप का पूरा सत्कार करूँगा।

दुर्योधन यह सुन कर बहुत प्रसन्न हुए, उन्होंने ने कर्ण को गले से लगा लिया। फिर पाण्डवों

को जीतने के लिये भाइयों में तरह तरह के विचार होने लगे । तब कर्ण ने सब को प्रोत्साहित करते हुए कहा—

हे कौरव ! संग्रामभूमि में जब तक मैं अर्जुन का बध न करूँगा, तब तक आसुरव्रत धारण करूँगा और मद्य-मांस का स्पर्श हाथ से भी न करूँगा, व्रत के दिनों में मुझसे जो कोई कुछ माँगेगा, वही मैं दूँगा ।

कर्ण की प्रतिज्ञा सुन कर सब लोग बहुत प्रसन्न हुए। सभा-भङ्ग कर सब अपने अपने घर गये । भावीयुद्ध का होना निश्चय जान कर दुर्योधन अपने अधीन राजों को सब भाँति प्रसन्न रखने की चेष्टा करने लगा ।

दूत से दुर्योधन का यज्ञ और कर्ण की प्रतिज्ञा सुन कर पाण्डव लोग बहुत चिन्तित हुए । वे द्वैतवन छोड़ कर फिर काम्यकबन में चले गये और वहीं रहने लगे । एक दिन पाण्डव लोगों ने द्रौपदी को महर्षि तृणविन्दु के आश्रम में रख कर पुरोहित धौम्य से कहा—

हे द्विजश्रेष्ठ ! आप इनकी रक्षा कीजियेगा ।

यह कहकर सब लोग शिकार खेलने चले गये ।

जयद्रथ द्वारा द्रौपदी हरण

उसी समय धृतराष्ट्र के दुःशला नाम्नी कन्या का पति सिन्धदेश का राजा जयद्रथ फिर विवाह करने की इच्छा से बहुत से राजों को साथ लेकर काम्यकबन में से होकर शाल्वदेश को जाता था ।

महिर्षि के आश्रम के द्वार पर एक कदम्ब की डाल पकड़ कर देव कन्या की भाँति परम सुन्दरी द्रौपदी खड़ी थी। जयद्रथ की दृष्टि एकायक उस पर पड़ गई । वह उसकी सुन्दरता पर मोहित होगया और एक दूत उसके मन की बात जानने के लिये भेजा । दूत द्रौपदी के समीप जाकर बोला—

हे सुन्दरी ! देवी, दानवी, अप्सरा अथवा मानुषी तुम कौन हो ? अकेली जङ्गल में रहकर तुम क्या करती हो ? अपने पिता और पति का नाम बतला कर हमारे कौतूहल को दूर करो । हम शिवराज के पुत्र हैं हमारा नाम कोटिकास्य है । जो सोने के रथ पर सवार हैं, वे त्रिगर्त्त राज के पुत्र हैं । सरोवर के किनारे खड़ा जो सुन्दर युवापुरुष तुमको देख रहा है, वह महाबली सिन्धु नरेश जयद्रथ है । उनका नाम तुम ने अवश्य ही सुना होगा। हे सुन्दर नेत्रवाली ! अब तुम अपना परिचय दो ।

कोटिकास्य को देखते ही द्रौपदी ने कदम की डाल छोड़ दी और दुपट्टे को सँभाल ऊँची साँस लेकर बोली—

हे राजकुमार ! एकान्त में पर पुरुष से बातें करना मेरी जैसी स्त्रियों के लिये शिष्टाचार के विरुद्ध है । तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर देने के लिये यहाँ दूसरा कोई है भी नहीं, जो तुम से बातचीत करे । तुमने अपने सत्कुल का परिचय दिया है, इसलिये मैं भी अपना परिचय देती हूँ । मैं द्रुपदराज की कन्या, पाचों पाण्डवों की धर्मपत्नी द्रौपदी हूँ । वे लोग मुझे यहाँ छोड़ कर बन में शिकार खेलने गये हैं, अब वे आते ही होंगे। आप लोग रथों से उतर कर यहाँ विश्राम करें और उन लोगों के आजाने पर उचित सत्कार पाकर तब जाँय । पाण्डव लोग आपलोगों का आगमन सुन कर बहुत प्रसन्न होंगे ।

दूत से इस प्रकार कह कर द्रौपदी आश्रम के भीतर चली गई और अतिथि सत्कार का प्रबन्ध

करने लगी। दूत ने जाकर जयद्रथ से द्रौपदी की सब बातें कह सुनायीं। पापी जयद्रथ द्रौपदी पर अत्यन्त आसक्त हो गया था। वह द्रौपदी को अपनी स्त्री बनाने की इच्छा से स्वयं आश्रम के भीतर गया और इस प्रकार कहने लगा—

हे सुन्दरी! अपने पतियों के साथ तुम कुशल से तो हो न?

द्रौपदी ने भी पूछा—हे राजकुमार! आपके राज्य, सेना और कोष आनन्द से पूर्ण हैं न? धर्मराज भाइयों के साथ बहुत प्रसन्न हैं। यह आसन रक्खा है, आप इस पर बैठ जाइये और प्रातःकाल का भोजन मृग, फल, मूल आदि ग्रहण कीजिये पाण्डवों के आजाने पर आपका उचित सत्कार कर सकूँगी।

पापी जयद्रथ ने कहा—हे कमलनयनी! तुम जो भोजन मुझे दिया चाहती हो, मुझे उसकी कमी नहीं, मैं तो तुम्हारी मीठी बातों से ही तृप्त हो गया। अब तुम मेरे रथ पर बैठ कर चलो और सम्पूर्ण सुख ऐश्वर्य का उपभोग करो। राज्य रहित दरिद्र पाण्डवों के पास रहने के योग्य तुम नहीं हो। पाण्डवों के झूठे प्रेम में फँस कर दुःख न उठाओ, मेरी स्त्री होकर देवलोक के सुखका उपभोग करो।

द्रौपदी हृदय को कँपा देनेवाली नीच जयद्रथ की बात सुन कर भौंहें टेढ़ी करके आसन छोड़ कर उठ खड़ी हुई और जयद्रथ को धिक्कारती हुई बोली—

रे निर्लज्ज! दुर्बुद्धि! ऐसी बातें कहते तुझे लज्जा नहीं आती? वीर पाण्डव लोग नहीं हैं, इसलिये तू ऐसी बातें कर रहा है।

पापी जयद्रथ इस धिक्कार से भी न शान्त हुआ। उसने कहा—हे सुन्दरी! तुम पाण्डवों की प्रशंसा कर मुझे नहीं रोक सकती हो। मैं उनका वध कर तुम्हें ले चलूँगा, तब तो तुम्हें मेरी स्त्री होना ही पड़ेगा।

यह सुन कर द्रौपदी डर और क्रोध से काँप उठी। पर धीरज धर कर उसने उत्तर दिया—

रे कुलाङ्गार! कालवश होने के कारण तू मेरे पतियों को दुर्बल समझ रहा है। जिस समय कृष्ण और अर्जुन रथ पर चढ़ कर संग्रामभूमि में आवेंगे, तब मनुष्यकी कौन बात इन्द्र भी सामना न कर सकेंगे। तुझे तो क्षण भर में यमलोक भेज देंगे। तुम्हारी सेना में कोई ऐसा नहीं है, जो तुम्हारी रक्षा कर सके। भीम के गदा लेकर क्रुद्ध होने पर सम्मुख कौन खड़ा रह सकता है? यदि मैं सच्ची पति व्रता हूँ तो पाण्डवों से तेरा केश पकड़ कर खींचा जाता हुआ देखूँगी।

निर्लज्ज जयद्रथ धीरे धीरे द्रौपदी की ओर बढ़ने लगा। अनाथा पाञ्चाली उसे धिक्कारती हुई धौम्य धौम्य पुकारने लगी। इतने में उस नीच ने द्रौपदी का चीर पकड़ लिया। तब द्रौपदी ने जल्दी से अपना वस्त्र खींच लिया, जिससे जयद्रथ पृथ्वी पर गिर पड़ा। परन्तु वह झटपट उठ बैठा और द्रौपदी को ज़ोर से खींच कर उसने रथ पर बैठा लिया।

इसी समय धौम्यमुनि आ गये और उन्होंने कहा—

रे नीच! पाण्डवों के बिना जीते द्रौपदी का हर लेना क्षत्रियों का धर्म नहीं है। उन लोगों के आ जाने पर तुझे इस नीचता का पूरा दण्ड मिलेगा।

पर जयद्रथ ने एक न सुनी, तब धौम्य उसे धिक्कारते हुए उसके रथ के पीछे पीछे चले।

इधर पाण्डव लोग चारों ओर से शिकार करके एक साथ ही आश्रम में पहुँचे। भयानक अशकुन देख कर धर्मराज बोले—

मुझे मालूम होता है कि कौरवों ने आश्रम में आकर कोई उपद्रव मचाया है। हमारा मन

चञ्चल हो रहा है। चलो जल्दी चल कर देखें। वन में प्रवेश करते ही उन्होंने देखा कि द्रौपदी की दासी रो रही है।

यह देख कर सारथि इन्द्रसेन रथ से कूद पड़े और जल्द उसके पास जाकर पूछा—

तुम ज़मीन पर पड़ी क्यों रोती हो? तुम्हारा मुख क्यों मलीन और सूखा हुआ है? क्या सूना आश्रम पाकर कौरवों ने द्रौपदी का कुछ अपमान तो नहीं किया?

दासी ने कहा—नीच जयद्रथ पाण्डवों का तिरस्कार कर द्रौपदी को हर ले गया। वे सब इसी रास्ते गये हैं। अभी राजपुत्री दूर न गई होंगी, क्योंकि टूटे हुए पत्ते अभी तक नहीं मुरझाये हैं। आप लोग देर न कर शीघ्र पीछा करें।

इन्द्रसेन ने कहा— हे दासी! चिन्ता न करो। द्रौपदी अनाथा नहीं है। आज ही पाण्डवों के तीखे बाण जयद्रथ की छाती फाड़कर पृथ्वी में घुस जायँगे।

इसके बाद पाण्डव लोग क्रोध करके धनुष टङ्कार करते हुए रथ पर चढ़ कर उसी रास्ते से चले। कुछ ही दूर जाने पर जयद्रथ की सेना से उड़ी हुई धूल दिखाई पड़ी। पैदल सेना के पीछे पीछे जाते हुए धौम्यमुनि की पुकार भी सुनाई पड़ने लगी, उस समय पाण्डवों का क्रोध दूना हो गया। धौम्य को प्रणाम कर वे लोग सेना की कुछ परवा न कर सीधे जयद्रथ के रथ की ओर दौड़े।

जयद्रथ की रक्षा के लिये कोटिकास्य अपना रथ भीम के सामने ले आया। भीम ने गदा के एक ही आघात से उसे चूर्ण कर दिया और क्षुर नामक बाण से उसका सिर काट लिया। अर्जुन ने अकेले ही पाँच सौ नामी वीरों का संहार किया। त्रिगर्त्तराज ने युधिष्ठिर पर आक्रमण कर उनके चारों घोड़ों को मार डाला, धर्मराज इससे जरा भी विचलित नहीं हुए। पहले उन्होंने अर्धचन्द्राकार बाण से त्रिगर्त्तराज का सिर काट लिया, तब सहदेव के रथ पर जा बैठे। नकुल ने रथ से उतर कर तलवार से पैदल सेना का सिर काट कर पृथ्वी पाट दी। यह देख कर राजा सुरथ ने नकुल के मारने के लिये उन पर हाथी दौड़ाया। परन्तु नकुल ने तलवार का ऐसा हाथ मारा कि हाथी का सूँड़ और दाँत कट गये तथा हाथी मर कर धराशायी हो गया। चारों ओर रुण्ड मुण्ड से पृथ्वी भर गई।

जब जयद्रथ ने देखा हमारे नामी योद्धा मारे गये तथा असंख्य सेना कट गई, तब द्रौपदी को अपने रथ से उतार कर पाण्डवों के भय से अपना रथ लेकर भागा। उसके भागने से सेना भी भाग चली।

धौम्यमुनि के आगे द्रौपदी को खड़ी देख सहदेव ने उसे धर्मराज के रथ पर बिठा दिया।

इधर भीम जयद्रथ की सेना का बुरी तरह संहार करने लगे तब अर्जुन ने भीम को यह कह कर रोका कि भगे हुए को मारना उचित नहीं है।

फिर अर्जुन बोले—हमें जिस नीच के दुष्कर्म से यह क्लेश भोगना पड़ा, वह कहाँ गया? उसे ढूँढ़ना चाहिये।

भीम ने कहा—हे धर्मराज! आप धौम्यमुनि, नकुल, सहदेव तथा द्रौपदी को साथ लेकर आश्रम को लौट जाँय और द्रौपदी को शान्त करें। पापी जयद्रथ भाग गया है हम उसका पीछा करेंगे वह चाहे रसातल में जाय, चाहे इन्द्र रक्षा करें पर उसे हम जीता न छोड़ेंगे।

युधिष्ठिरने कहा—हे भाई! जयद्रथ ने अवश्य भारी दुष्टता की है, किन्तु बहन दुःशला और माता गान्धारी का ख्याल कर उसे प्राणदण्ड मत देना।

यह सुनकर क्रोध से भरी हुई द्रौपदी भीम और अर्जुन से बोली—

हे वीरो! मेरा मन तभी प्रसन्न होगा, जब तुम उस दुष्ट का वध करोगे। राज्य और स्त्री का हरनेवाला यदि शरण में आवे तो भी उसका वध करना चाहिये।

यह सुन कर भीम और अर्जुन जयद्रथ को ढूँढ़ने के लिये दौड़े। युधिष्ठिर, धौम्य, नकुल, सहदेव तथा द्रौपदी को साथ लेकर आश्रम में लौट आये। द्रौपदी के सकुशल लौट आने से आश्रम वासी ब्राह्मण बहुत प्रसन्न हुए युधिष्ठिर ने उनलोगों से सारी कथा कह सुनायी।

भीम और अर्जुन तीव्रगामी रथ से शीघ्र जयद्रथ के समीप पहुँच गये। अर्जुन ने दूरही से उसके रथके घोड़ों को मार डाला। तब जयद्रथ भय के मारे रथ छोड़कर भागा। उसको भागता देख अर्जुन ने कहा—इसी बल पर पराई स्त्री को हरने गया था।

इधर भीम भी रथ से कूद पड़े और खड़ा रह खड़ा रह कहते हुए उसके पीछे दौड़े। अर्जुन ने भीम को पुकार कर कहा इसे जान से न मारियेगा।

भीम ने दौड़कर उसकी चोटी पकड़ली और ज़मीन पर गिराकर उसे पैर से मारने लगे। भीम के लात और घूसों की भयङ्कर मार से जयद्रथ बड़ा विलाप करने लगा। जब उसने उठने की चेष्टा की तब भीम ने उसकी छाती पर दोनों घुटने रखदिये, जिससे वह पीड़ित होकर बेहोश होगया।

अर्जुन ने कहा—भाई! धर्मराज की आज्ञा का ध्यान रखना इसे जान से न मार डालना।

भीमने कहा—यह पापी जीने के योग्य नहीं है। द्रौपदी को इसने ऐसा कष्ट दिया है कि उसकी सजा प्राणदण्ड ही है, किन्तु तुम्हारे कहने से इसे हम छोड़ देते हैं। इसके बाद अर्धचन्द्र-बाण से उसका सिर मूड़ डाला फिर उन्होंने जयद्रथ से कहा—

रे दुराचारी। यदि तुझे जीने की अभिलाषा हो, तो सब के सामने हमारा दासत्व स्वीकार कर।

लाचार होकर जयद्रथ ने इसे स्वीकार किया। तब भीम ने उसे खूब कसकर बाँधा और रथ पर चढ़ा लिया। फिर आश्रम में युधिष्ठिर के समीप ले आये। धर्मराज ने उसे देख भीम से कहा—

हे भाई! इसका दण्ड हो चुका, अब छोड़ दो।

भीम ने कहा—हे महाराज! इसने हमारा दासत्व स्वीकार किया है। अब इसके विषय में जो द्रौपदी कहे वही किया जाय।

द्रौपदी ने धर्मराज की ओर देख कर कहा—जब इसने दासत्व स्वीकार करलिया है और चोटी छोड़कर इसका सिर भी मूँड़ लिया गया है, तब इस चोर जयद्रथ को छोड़ दीजिये। अब अधिक दण्ड देने की आवश्यकता नहीं है।

द्रौपदी के कहने से जयद्रथ बन्धन मुक्त कर दिया गया। बन्धन से छूटने पर विह्वल होकर उसने सबको प्रणाम किया।

फिर धर्मराज ने जयद्रथ से कहा—तुम दासत्व से मुक्त कर दिये गये। अब ऐसा नीचकर्म कभी मत करना। ईश्वर करे तुम्हारी धर्मबुद्धि बढ़े। तुम अपना हाथी, घोड़ा, रथ, पैदल, सेना लेकर अपने घर चले जाओ।

यह सुन कर जयद्रथ नीचा सिर किये हुए चला। लज्जा के मारे वह घर न जाकर हरिद्वार गया और शिवजी की आराधना करने लगा। उसकी घोर तपस्या से शिवजी प्रसन्न हुए और प्रगट होकर बोले—

हे पुत्र! हम तुम पर प्रसन्न हैं, वर माँगो। जयद्रथ ने कहा—हे नाथ! हम पाँचो पाण्डवों को संग्रामभूमि में जीत लें।

शिवजी बोले—हे जयद्रथ! पाण्डव अजेय हैं। हमने पहले ही अर्जुन की तपस्या से प्रसन्न होकर उन्हें पाशुपत अस्त्र दे दिया है, उन को जीतलेना असम्भव है। हाँ, अर्जुन को छोड़ कर अन्य पाण्डवों को एक दिन के लिये तुम जीत लोगे।

इस प्रकार कह कर शिवजी अन्तर्धान होगये और जयद्रथ भी अपने घर चला गया।

कर्ण की तपस्या

इधर कर्ण पाण्डवों को जीतने के लिये आसुरव्रत करने लगा। यह देख कर इन्द्र को पाण्डवों पर बड़ी दया आयी। उन्होंने अर्जुन से की हुई प्रतिज्ञा के अनुसार कर्ण का अभेद्य कवच माँगने का विचार किया। कर्ण भी माँगने पर सब कुछ दे देने की प्रतिज्ञा करही चुका था। इसलिये उससे कवच माँग लेने के हेतु इन्द्र ने ब्राह्मण वेष धारण कर उसके समीप जाने का सङ्कल्प कर लिया।

भगवान् सूर्य को यह बात मालूम हो गई। इस कारण वे अपने वर पुत्र कर्ण के पास गये और बोले—

हे पुत्र! तुम अपनी प्रतिज्ञा के कारण सदा सब कुछ दान कर देने को तैयार रहते हो। देखो, इन्द्र ब्राह्मण बन कर तुम्हारा कवच कुण्डल छीनने के लिये आरहे हैं, उसे न दे देना, नहीं तो तुम्हारा सर्वनाश हो जायगा।

कर्ण ने कहा—हे भगवन्! देवराज के माँगने पर यदि मैं नहीं कर दूँगा, तो मेरी सारी कीर्त्ति नष्ट हो जायगी। आप दान से विमुख होने के लिये मुझ से न कहें। प्राण रहते मैं इसका त्याग नहीं कर सकता। कीर्त्ति अमर है, अनित्य शरीर के नष्ट हो जाने पर भी यह कायम रहती है। भिक्षुक जिसके यहाँ से विमुख होकर लौटता है, उसे जीते ही मरेके समान समझना चाहिये। इन्द्र मेरे पास भिक्षुक होकर आवेंगे, यह मेरे सौभाग्य की बात है।

भगवान् सूर्य ने कहा—हे कर्ण! इस कवच कुण्डल के प्रभाव से तुम्हें कोई नहीं मार सकता है। जीवित रह कर तुम बहुत कीर्त्ति उपार्जित कर लोगे। इनके प्रभाव से अर्जुन की सहायता यदि स्वयं इन्द्र भी करते तो भी तुम्हें नहीं जीत सकते थे। मैं तुम्हारे हित के विचार से कहता था, यदि तुम्हें अपना व्रतभङ्ग करना मञ्जूर नहीं है, तो मेरे कहने से एक काम करना। जब तुम उन्हें अपना कवच दे देना, तब उनसे उनकी शत्रुघातिनी शक्ति माँग लेना। जिससे तुम अपने शत्रु पर विजय पा सकोगे।

कर्ण से इस प्रकार कह कर सूर्य भगवान् अन्तर्धान हो गये। कर्ण नियमपूर्वक आसुर व्रत करने लगे। वे दोपहर तक जल में रहकर सूर्य भगवान् की स्तुति करते, फिर बाहर निकल कर जो कोई उनसे कुछ भी माँगता, तुरन्त दे देते थे। एक दिन देवराज इन्द्र ब्राह्मण का वेष धारण कर उनके पास आये कर्ण ने उनको देखकर कहा—

हे ब्राह्मण देव! आप क्या चाहते हैं?

इन्द्र ने कहा—हमें गो, सोना, गाँव आदि किसी भोग्य वस्तु की अभिलाषा नहीं है। यदि आप सत्यप्रतिज्ञ हैं, तो अपना कवच कुण्डल मुझे दे दीजिये और संसार में यश लीजिये।

कर्ण ने कहा—हे विप्र! हम अपने सहजात कवच कुण्डल आप को कैसे दे सकते हैं? आप हमारे राज्य, धन-सम्पत्ति तथा स्त्री तक को माँग सकते हैं, उन्हें मैं प्रसन्नता से दे दूँगा।

पर इन्द्र ने कवच कुण्डल छोड़ कर दूसरी किसी वस्तु की इच्छा न प्रगट की। तब कर्ण ने जान लिया कि ये इन्द्र हैं और हँस कर बोले—

हे देवराज ! हम आपको पहचान गये। आप समस्त संसार के स्वामी हैं, भला मैं आपको क्या वर दे सकता हूँ ? इसी कवच कुण्डल के भरोसे मैं अवध्य हूँ। उसका माँगलेना आपके लिये उचित नहीं है और मैं तो उसके न रहने से शत्रु द्वारा अवश्य ही मारा जाऊँगा। अस्तु, मैं आप को विमुख नहीं करना चाहता, किन्तु इसके बदले में जो माँगूँ, उसे आपको देना चाहिये।

इन्द्रने कहा—हे कर्ण ! सूर्यदेव जो तुमसे कह गये हैं वह मुझे मालूम है। एक वज्र को छोड़ कर जो तुम्हारी इच्छा हो, माँगो।

कर्ण ने मन में प्रसन्न होकर कवच कुण्डल के बदले उनकी अमोघ शत्रुघातिनी शक्ति माँगी।

इन्द्र ने कहा—लो, यह अमोघ शक्ति हम तुमको कवच कुण्डल के बदले में देते हैं। पर इससे तुम एक शत्रु को मार सकोगे, उसके बाद यह फिर मेरे पास चली आवेगी।

कर्णने कहा—हे देवराज ! युद्धमें मैं एक ही शत्रु को मारना चाहता हूँ। उसका नाश होने पर मेरी अभिलाषा पूर्ण हो जायगी। फिर मुझे शक्ति की अवश्यकता नहीं है।

यह कह कर कर्ण ने इन्द्र से उनकी अमोघ शक्ति ले ली और तेज शस्त्र से अपने कवच कुण्डल शरीर से काट कर इन्द्र को दे दिया। यह अद्भुत कर्म करते हुए वह ज़रा भी न दुखित हुए।

कर्ण के अद्भुत काम को देखकर आकाश से देवता लोग पुष्पवृष्टि करने लगे। देव, दानव, मनुष्य सब ने उनकी प्रशंसा की। रक्तरञ्जित कवच कुण्डल लेकर इन्द्र ने आशीर्वाद दिया—

हे महावीरकर्ण ! तुम्हारे शरीर में किसी प्रकार की व्यथा न हो, तुम्हारा शरीर फिर ज्यों का त्यों हो जाय।

पाण्डवों का हित साधन करके इन्द्र चले गये। उसी समय से लोग इस महादानी वीर को कर्ण के नाम से पुकारते हैं। दुर्योधन इस समाचार को सुन कर शोकसागर में डूब गया और पाण्डवों को कुछ शान्ति मिली।

पाण्डवों को काम्यकवन में कष्ट होने लगा, इससे वे लोग फिर द्वैतबन में चले आये। वहाँ कन्दमूल आदि खा कर दिन बिताने लगे।

यक्ष और धर्मराज का प्रश्नोत्तर

एक दिन कोई भारी मृग आया और अरणीदण्ड को अपनी सींग पर लेकर भागा। अग्नि-होत्र में विघ्न होता देख ब्राह्मणों ने धर्मराज से कहा। उन्होंने धनुषबाण के सहित भाइयों को संग लेकर उसका पीछा किया। पीछा करते बाण चलाते हुए बन में बहुत दूर निकल गये, पर उस मृग पर एक भी निशाना न लगा। देखते देखते वह मृग अन्तर्धान हो गया। पाण्डवलोग भी थक जाने के कारण एक वट वृक्ष के नीचे बैठ गये।

सब लोगों के प्यास से व्याकुल होने के कारण नकुल दुखी होकर कहने लगे—

संसार में दुःख केवल हमीं लोगो के लिये है, रात दिन में एक पल भी चैन से नहीं बीतता। मालूम होता है, हम लोगों के लिये धर्म का भी लोप हो गया है। दूसरे भाइयों ने भी इसी प्रकार दुःख से भरी हुई बातें कहीं।

तब युधिष्ठिर बोले—हे भाई ! मर्यादा से रहनेवाले पुरुष के पास विपत्ति नहीं आती। अधीर होना ही विपत्ति का लक्षण है।

इसके बाद युधिष्ठिर की आज्ञा से नकुल ने वृक्ष पर चढ़ कर चारों ओर देखा। एक ओर सारस का शब्द सुन कर उन्होंने कहा इधर ही जलाशय मालूम होता है।

यह सुनकर युधिष्ठिर ने कहा—हे भाई! तरकस लेकर जाओ और उसमें से जल भर लाओ।

नकुल आज्ञा पाकर जल लेने के लिये चले। कुछ दूर जाकर उन्होंने कमलों से सुशोभित एक सरोवर देखा। वहाँ पहुँचकर उन्होंने जलपीने की इच्छा की, तब आकाशवाणी हुई।

हे नकुल! मेरे प्रश्न का उत्तर देकर तब जलपान करना। पर नकुल ने इसे अनसुनी कर जलपान किया। पानी पीतेही वे मूर्च्छित होकर गिर पड़े।

इधर युधिष्ठिर ने नकुल के आने में विलम्ब होता देख एक एक करके सहदेव, अर्जुन, भीम को भी भेज दिया। इनलोगों के भी न लौटने पर युधिष्ठिर बहुत घबराये और स्वयं सरोवर के समीप गये। वहाँ भाइयों को मूर्च्छित पड़ा हुआ देख धर्मराज बहुत दुखी हुए और विलाप करने लगे।

उन्होंने कहा—इनलोगों को कहीं शस्त्र को चोट तो लगी नहीं है, फिर क्यों इनलोगों की यह दशा हुई है? यह दुर्योधन और शकुनि का कपट मालूम होता है, उन्होंने जलमें विष मिलवा दिया है, जिससे भाइयों की यह दशा हुई है। पर यह भी ठीक नहीं जान पड़ता, विष से शरीर में विकार उत्पन्न हो जाना चाहिये और ये लोग सुख की नींद सोये हुए से मालूम होते हैं। इस प्रकार तर्कना करते हुए उन्होंने भी प्यास की विकलता के कारण जल पीने की इच्छा की।

फिर पूर्ववत् शब्द हुआ—हमने तुम्हारे भाइयों को मोहित किया है। हमारे प्रश्नों का उत्तर देकर तब जलपान करो, नहीं तो तुम्हारी भी वही दशा होगी।

युधिष्ठिर ने कहा—हे अज्ञातपुरुष! तुम प्रगट होकर अपना प्रश्न कहो और मेरे दुःख को दूर करो।

तब यक्ष ने प्रगट होकर कहा—हे धर्मराज! हम यक्ष हैं, हमने तुम्हारे भाइयों से प्रश्नोत्तर देकर जल पीने को कहा, पर वे न माने, इससे उनकी यह गति हुई है तुम मेरे प्रश्नों का उत्तर दे सको तो ये भी जीवित हो सकते हैं।

इसके बाद यक्ष के प्रश्न पर धर्मराज ने इस प्रकार उत्तर देना आरम्भ किया।

यक्ष-प्रश्न	धर्मराज का उत्तर
१ सूर्य को कौन उदय करता है?	ब्रह्म।
२ सूर्य के साथी कौन हैं?	देवता।
३ सूर्य को अस्त कौन करता है?	धर्म।
४ बुद्धिमान् कहाँ रहते हैं?	सत्य स्थल में।
५ श्रोत्रिय किससे होता है?	वेद से।
६ महत्व कैसे मिलता है?	तप से।
७ मनुष्य को दूसरा कौन है?	धैर्य।
८ बुद्धिमान् कैसे होता है?	वृद्धों की सेवा से।
९ क्षत्रिय का इष्ट क्या है?	शस्त्र।
१० सनातनधर्म कौन है?	सन्मार्ग।
११ मनुष्य का भाव क्या है?	चतुरता।

१२ उत्तम समता कौन है ?	त्याग।
१३ शरीर धारियों में श्रेष्ठ कौन है ?	मनुष्य।
१४ बोने में श्रेष्ठ क्या है ?	बीज।
१५ प्रतिष्ठा में श्रेष्ठ कौन है ?	गऊ।
१६ प्रसव में उत्तम कौन है ?	पुत्र।
१७ पृथिवी से गरू कौन है ?	माता।
१८ आकाश से ऊँचा कौन है ?	पिता।
१९ वायु से शीघ्रगामी कौन है ?	मन।
२० तृण से अधिक अग्निवर्द्धक कौन है ?	चिन्ता।
२१ परदेशी का मित्र कौन है ?	श्रेष्ठसज्जन।
२२ गृहस्थ का मीत कौन है ?	स्त्री।
२३ आतुर का हितैषी कौन है ?	उत्तम औषधि।
२४ मरते समय पवित्र मित्र कौन है ?	दान।
२५ अकेला कौन फिरता है ?	सूर्य।
२६ बार बार कौन जन्मता है ?	चन्द्रमा।
२७ शीत की औषधि क्या है ?	अग्नि।
२८ अवस्था में श्रेष्ठ कौन है ?	बुद्धिमान्।
२९ मनुष्य की आत्मा कौन है ?	पुत्र।
३० भाग्य से प्राप्त मित्र कौन है ?	भार्या।
३१ जीवन को कौन सुखदाई बनाता है ?	मेघ।
३२ मनुष्य को क्या त्यागने से सुख होता है?	मान।
३३ किसके त्याग से शोक नहीं होता ?	क्रोध।
३४ किसके त्यागने से अर्थ का धनी होता है ?	कामना।
३५ किसको छोड़ने से सुखी होता है ?	लोभ।
३६ पुरुष कैसे मृतक होता है ?	दरिद्री होने से।
३७ देश कैसे मृतक होता है ?	मूर्ख अज्ञानी राजा होने से।
३८ श्राद्ध किस प्रकार मृतक होता है ?	बिना श्रोत्रिय के।
३९ यज्ञ कैसे मृतक होता है ?	बिना दक्षिणा के।
४० तप का क्या लक्षण है ?	अपने धर्म में निश्चल प्रीति का होना।
४१ दम किसे कहते हैं ?	मन को क़ाबू में रखना।
४२ उत्तम क्षमा कौन है ?	दूसरे से होनेवाली निन्दा का सहन करना।
४३ लज्जा किससे करनी चाहिये ?	अकार्य से।
४४ ज्ञान किसे कहते हैं ?	तत्वबोध अर्थात् असलियत का जानना।
४५ समता किससे होती है ?	चिन्ता का त्याग करने से।
४६ श्रेष्ठ दया कौन है ?	सब के सुख की इच्छा रखना।
४७ सरलता का क्या रूप है ?	समान ज्ञान।

४८ पुरुष का दुर्जय शत्रु कौन है ?	क्रोध ।
४९ अनन्त व्याधि कौन है ?	लोभ ।
५० साधु कौन है ?	सब का कल्याण करनेवाला ।
५१ असाधु कौन है ?	सब का अपकार करनेवाला ।
५२ मोह क्या है ?	धर्म को भूल जाना ।
५३ मान क्या है ?	आत्माभिमान ।
५४ आलस्य किसको कहते हैं ?	धर्मपथ के त्याग को ।
५५ दुखदाई शोक क्या है ?	अज्ञान ।
५६ स्थिरता का क्या लक्षण है ?	धर्म में दृढ़ता ।
५७ धैर्य का स्वरूप क्या है ?	इन्द्रियदमन ।
५८ उत्तम स्नान क्या है ?	मन को पवित्र रखना ।
५९ बड़ा दान कौन है ?	जीवों की रक्षा ।
६० पण्डित कौन है ?	धर्म को जाननेवाला ।
६१ मूर्ख कौन है ?	नास्तिक-अधर्मी ।
६२ काम क्या है ?	संसार का कल्याण करना ।
६३ मत्सर कौन है ?	पराये का सुख देख कर जलनेवाला ।
६४ अक्षय नरकगामी कौन होता है ?	भूखे अतिथि ब्राह्मण के माँगने पर जो अन्न नहीं देता और देवता, पितर, धर्मशास्त्रों पर मिथ्या-लेप करता है ।
६५ कुलीन, स्वाध्यायी, सदाचारी और वेदपाठी में कौन ब्रह्मत्व को प्राप्त होता है ?	सदाचारी ।
६६ प्रसन्न कौन है ?	ऋण रहित शाक भोजन कर अपने गृह में रहनेवाला ।
६७ आश्चर्य्य क्या है ?	जीवों को मरते देख कर भी अपने को अचल मानना ।
६८ रास्ता क्या है ?	श्रेष्ठजनों का अनुकरण ।
६९ वात क्या है ?	संसार रूपी कड़ाहे में अज्ञान का सूर्य्य अग्नि रूपी लकड़ी से दिन रात काल जीवों को पका रहा है ।
७० सदा धनी पुरुष कौन है ?—	भूमि और अकाश में जिसका यश छा जाय, जो प्रिय-अप्रिय, सुख-दुःख में समान भाव रक्खे, जिसे किसी वस्तु की प्राप्ति-अप्राप्ति में हर्ष शोक न हो, वह सदा धनी है ।

यक्ष ने कहा—हे धर्मराज ! तुम ने मेरे प्रश्नों का उचित उत्तर दिया अब कहो, तुम्हारा कौन एक भाई सचेत हो जाय ।

युधिष्ठिर ने कहा—हे यक्ष ! सब से पहले जो मेरा भाई आया था, वही सचेत हो ।

यक्ष ने कहा—महाबली भीम और धनुर्धर अर्जुन को छोड़ कर पहले तुम नकुल के लिये ही क्यों कहते हो ?

युधिष्ठिर ने कहा—हे यक्ष! मेरे पिता के दो रानियाँ थीं, कुन्ती और माद्री। दोनों ही पुत्रवती बनी रहें, इसलिये मैंने नकुल को पहले कहा। यही धर्म भी है।

यक्ष ने कहा—हे धर्मराज! तुम्हारी धर्मप्रियता से मैं बहुत प्रसन्न हूँ। तुम्हारे सब भाई जीवित हो जाँयगे। इसके बाद यक्ष की कृपा से चारों भाई उठ बैठे।

फिर युधिष्ठिर बोले—हे यक्ष! तुम्हारे अद्भुत काम को देख कर मुझे बड़ा कौतूहल है। कृपा कर बताओ, आप देव, वसु अथवा देवराज इन्द्र इनमें से कौन हैं? या मेरे पिता धर्म हैं।

यक्ष ने कहा—हे पुत्र! मैं तुम्हारा पिता धर्म हूँ, तुम्हें देख कर बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। वर माँगो।

युधिष्ठिर ने कहा—हे भगवन्! जिस अरणीदण्ड का आपने हरण कर लिया था, पहले उसे दीजिये, जिससे अग्नि का लोप न हो और ब्राह्मणों का हित हो।

धर्म ने कहा—तुमको जानने के लिये मैंने मृग होकर अरणीदण्डका हरण किया था, वह तो देता ही हूँ। और वर माँगो।

युधिष्ठिर ने कहा—हे तात! अज्ञातवास करने के लिये तेरहवाँ वर्ष निकट है, इसलिये ऐसा वर दीजिये कि हमें कोई पहचान न सके।

धर्मराज ने 'तथास्तु' कह कर कहा—पृथ्वी पर तुम्हें कोई पहचान न सकेगा। इस तेरहवें वर्ष में तुम विराटपुर में जाकर निवास करो। तुम जिस समय जैसा चाहोगे, वैसाही तुम्हारे भाइयों का रूप हो जायगा। यह ब्राह्मणों के हितार्थ अरणीदण्ड भी लो। हे पुत्र! लोभ, मोह, काम, तुम्हें कभी बाधा न पहुँचा सकेंगे। सत्य तपस्या दान में सदा तुम्हारी मति स्थिर रहेगी। इस प्रकार आशीर्वाद देकर धर्मदेव अपने लोक को चले गये। पाण्डवलोग भी प्रसन्न मन हो आश्रम में लौट आये।

एक दिन धर्मराज ने कहा—हे द्विजवरो! आप लोगों के साथ रहते हमें बारह वर्ष बीत गये। अब तेरहवाँ वर्ष हमें छिपकर बिताना पड़ेगा। राज्यलोभ से धृतराष्ट्र के पुत्रों ने जो छल हमारे साथ किया है, वह आप लोगों को मालूम है, यदि वे लोग जानलेंगे, तो हमें फिर बारह वर्ष कष्ट भोगना पड़ेगा। आप लोगों का संग छोड़ते मुझे मार्मिक पीड़ा हो रही है। किन्तु क्या किया जाय, लाचारी है। यह कह कर धर्मराज बहुत बिकल हो गये।

तब धौम्य मुनि आश्वासन देकर बोले—हे धर्मराज! आप सत्यप्रतिज्ञ और बुद्धिमान् हैं। आपको मोहित होना न चाहिये। महापुरुषों के समान आप धैर्य धारण करें, ईश्वर आपका कल्याण करेगा। जिस प्रकार नृसिंह, बावन, राम आदि रूप धारण कर विष्णु ने दुष्टों का दमन किया था, वैसेही आप कीजिये। समय पूरा हो जाने पर आप अवश्य दुष्टों का नाशकर अपने राज्य को प्राप्त करेंगे, इसमें सन्देह नहीं है। अन्य ब्राह्मणों ने भी इसी प्रकार के आशीर्वाद दिये।

ब्राह्मणों से बिदा होकर धौम्य मुनि के साथ पाण्डव लोग चले। द्वैतवन से एक कोस जाकर बैठ गये और गुप्तवास करने का विचार भाइयों के साथ करने लगे।

इति

विराटपर्व

पाण्डवों का अज्ञातवास

एकान्त स्थान में बैठ कर धर्मराज ने कहा—हे भाई यह तेरहवाँ वर्ष हमें छिप कर बिताना होगा इसलिये ऐसा स्थान ढूँढ़ना चाहिये कि स्वतन्त्रता से रह सकें और शत्रुओं को इस बात का पता न लगे।

अर्जुन ने कहा—हे धर्मराज! धर्मदेव ने आपको वरदान दिया है कि एक वर्ष हम लोगों को कोई पहचान न सकेगा। अब मैं आपको रहने का स्थान बताता हूँ। चन्देरी, मत्स्य, पाञ्चाल, दशार्ण, (भिलसा) कुन्तिभोज आदि अनेक देशों के राजे हमारे मित्र हैं, इनमें से किसी के यहाँ रह कर हम अपना समय बिता सकते हैं।

युधिष्ठिर ने कहा—हे अर्जुन! मत्स्यदेश (दीनाजपुर और रंगपुर) अधिक उत्तम है। राजा विराट हमारे पिता के मित्र हैं और हम लोगों के भी बड़े हितैषी हैं। उनका धर्म और दान में बड़ा स्नेह है। उन के यहाँ यदि हम लोग एक एक कार्य में नियुक्त हो जायँ, तो एक वर्ष कुशल से बीत जाय।

अर्जुन ने कहा—हे महाराज! आप सदा सुख से रहे हैं और कभी इस प्रकार की अधीनता का कष्ट नहीं सहन किया है, फिर इस आपत्ति को कैसे सहन करेंगे?

युधिष्ठिर ने कहा—हे अर्जुन! समय की गति है, चिन्ता न करनी चाहिये। हमने जिस काम के करने का निश्चय किया है उसे सुनो। हम कङ्क नामक ब्राह्मण बन कर अपनी विद्या बुद्धि का परिचय देंगे और अपनेको उत्तम जुआ खेलनेवाला बताकर राजा विराट से उनका सभासद होने के लिये विनय करेंगे। उनके विशेष परिचय पूछने पर कहेंगे कि हम राजा युधिष्ठिर के परम स्नेही मित्र हैं। इस तरह राजा तथा मन्त्री को इस काम से प्रसन्न कर अपने वश में कर लेंगे और सुख से अपना दिन बिता सकेंगे। हे भीम! अब तुम बतलाओ कि विराट के यहाँ रह कर कौन कार्य करोगे?

भीम ने कहा—हे धर्मराज! हम कहेंगे कि हम राजा युधिष्ठिर के रसोइयाँ हैं और वल्लभ हमारा नाम है। रसोई बनाने में हम विशेषज्ञ हैं और उत्तम रसोई बना कर राजा को प्रसन्न कर लेंगे। इसके सिवा अपने अमानुषिक बल पौरुष को दिखा कर सबके प्रेमपात्र बन जायँगे। हे तात! इस प्रकार हमारे दिन सुख से बीत जायँगे।

तब युधिष्ठिर अर्जुन की ओर देख कर बोले—

कृष्ण का मित्र, परम तेजस्वी, जिसकी भुजाओं पर धनुष की प्रत्यञ्चा के चिह्न हैं, वह वीर अर्जुन क्या करेगा?

अर्जुन ने कहा—हे महाराज! हम शाप के कारण एक वर्ष हिंजड़ा होकर रहेंगे। इसलिये अपने केशों की वेणी बना कर, कानों में कुण्डल पहन और बिजायठ बाजूबन्द आदि से बाहुओं के चिह्न छिपा कर अपना नाम बृहन्नला बतावेंगे और कहेंगे कि हम नर्त्तक हैं। क्योंकि इन्द्रलोक में रह कर गाना, बजाना, नाचना आदि भी हमने अच्छी तरह सीख लिया है, इसलिये स्त्रियों में रह कर राजकन्या को नृत्य गान की शिक्षा देंगे। इस प्रकार हम स्त्रियों में आदर प्राप्त कर लेंगे और पूछने पर कह

देंगे कि हम युधिष्ठिर के यहाँ द्रौपदी की सेवा किया करते थे। इस प्रकार कपट वेष बना कर विराट के घर में हम अपना दिन सुख से बिता सकेंगे।

युधिष्ठिर ने कहा—हे नकुल तुम सुख से पले हो और अत्यन्त सुकुमार हो। तुम कौन सा काम करके अपना निर्वाह करोगे?

नकुल ने कहा—हे महाराज! हम घोड़ों को बहुत अच्छा पहचानते हैं, उनके सिखाने तथा चिकित्सा करने में पूरी योग्यता रखते हैं। इसलिये अपना ग्रन्थिक नाम रखकर घोड़ों के निरीक्षक होने की प्रार्थना करेंगे और पूछने पर कहेंगे कि हम युधिष्ठिर के यहाँ यही काम करते थे। इस कार्य से राजा को प्रसन्न कर हम अपना कालक्षेप करेंगे।

फिर युधिष्ठिर ने कहा—हे सहदेव! तुम्हारी बुद्धिमत्ता प्रसिद्ध है। बताओ, तुम कैसे अपना दिन बिताओगे?

सहदेव ने कहा—हे महाराज! मैं सदा आपके गौओं की देखभाल किया करता था, इससे उनकी पहचान ख़ूब जान गया हूँ। मैं अपना नाम तन्तिपाल रख कर गौओं की सेवा से राजा को सन्तुष्ट करलूँगा और सुख से कालयापन करूँगा।

इसके बाद युधिष्ठिर अत्यन्त कातर होकर बोले—हाय प्राणों से भी प्यारी हमारी भार्या द्रौपदी कैसे दूसरों की सेवा करेगी? जिसकी सेवा के लिये सहस्रों दासियाँ नियुक्त थीं, वह सुकमारी राजकन्या दासी बन कर रहेगी?

अपना शृङ्गार करने के सिवा आजतक जिसने कोई परिश्रम का काम न किया, उसके लिये कौन सा कार्य निर्धारित किया जाय।

द्रौपदी ने कहा—हे नाथ! मैं रानियों के पास जाकर अपना नाम सैरन्ध्री बताऊँगी और कहूँगी कि मैं धर्मराज के अन्तःपुर में रानी द्रौपदी की परिचारिका रही हूँ। मुझे सिंगार करना बहुत अच्छा आता है। मैं अपने अद्भुत शृङ्गार की रचना से रानी सुदेष्णा को प्रसन्न करलूँगी। तब रानी मेरा आदर करेंगी और उनके पास रह कर धर्म की रक्षा करती हुई मैं अपने दिन बिता सकूँगी। फिर आप भी मुझसे निश्चिन्त हो जायँगे और मेरे लिये आपको कोई दुःख न उठाना पड़ेगा।

इसके बाद धर्मराज ने सब से कहा—जिस प्रकार रहने का निश्चय तुम सब ने किया है वैसा ही अपना अपना रूप बना लो। हमारे अज्ञातवास के समय तक महामति पुरोहित धौम्य तथा नौकर चाकर द्रुपदराज के पास जाकर वास करें। इन्द्रसेन रथ लेकर द्वारकापुरी में चले जाँय, अन्य सारथी भी उन्हीं के साथ रहें। किसी के पूछने पर कह दें कि हमें द्वैतवन में छोड़ कर पाण्डव लोग न जाने कहाँ चले गये।

पुरोहित धौम्य बिदा होते समय बोले—हे पाण्डव! तुम लोकाचार को भली भाँति जानते हो। किन्तु राजाओं के साथ रह कर कैसे दिन बिताना चाहिये, इसमें अनभिज्ञ हो। मान अथवा अपमान सहकर एक वर्ष तुम्हें किसी राजा के पास राजभवन में रहना ही पड़ेगा। इसलिये यथाशक्ति राजा को प्रसन्न रखना तुम्हारा पहला धर्म है। बिना पूछे राजा को कोई उपदेश न देना। राजभवन की कोई गुप्त बात प्रगट करने की चेष्टा न करना। कोई गुप्त बात मालूम भी होजाय तो उसे अपने मुँह किसी से न कहना। राजा के अत्यन्त प्रेमपात्र होकर भी आज्ञा के बिना कभी उनकी सवारी, पलँग या चौकी पर न बैठना। अपनी हैसियत के बाहर कोई काम न करना। राजसभा में उचित स्थान पर चुपचाप बैठना। हाथ, पैर न हिलाना और न ज़ोर से बोलना।

यदि राजा तुम पर प्रसन्नता प्रगट करें तो अवश्य कृतज्ञ होना उनके अप्रसन्न होने पर चुप रह जाना और किसी तरह का द्वेष न प्रगट करना । तुम्हारे इस व्यवहार से राजा सदा प्रसन्न रहेंगे । राजाओं के अन्तःपुर में बड़े निन्द्य काम हुआ करते हैं इसलिये छिपकर द्रौपदी पर सदा दृष्टि रखना ।

युधिष्ठिर ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ! आप के समयोपयोगी हितकर उपदेश को हम शिरोधार्य करते हैं । आप कुन्ती और विदुर के समान हमारे हितैषी हैं । अब आप ऐसा अनुष्ठान करें, जिससे हमारा कल्याण हो ।

इसके बाद प्रज्वलित अग्नि में हवन कर तथा सब की प्रदक्षिणा कर पाण्डवों ने प्रस्थान किया । महर्षि धौम्य अग्निहोत्र लेकर द्रुपदराज के यहाँ गये और उसकी रक्षा करने लगे । इन्द्रसेन आदि ने रथ लेकर द्वारका को प्रस्थान किया ।

पाण्डव लोग अपना अस्त्र लेकर पैदल ही मत्स्य देश की ओर चले । कालिन्दी नदी के किनारे बड़े बड़े पर्वत जङ्गल पार करते हुए दक्षिण की ओर चलने लगे । धीरे धीरे वे मत्स्यदेश में पहुँच गये । रास्ते की दशा और चारों ओर खेत देख कर द्रौपदी कहने लगी—

हे धर्मराज ! विराट नगर अभी बहुत दूर मालूम हो रहा है । मैं बहुत थक गई हूँ, इसलिये आज रात यहीं विश्राम कीजिये ।

यह सुन कर युधिष्ठिर ने कहा—हे अर्जुन ! तुम द्रौपदी को उठालो । विराटपुर के निकट पहुँच गये हैं, अब वहीं चल कर रहना अच्छा है ।

सुकुमारी द्रौपदी को अर्जुन ने गोदी में उठा लिया और विराटनगर के निकट पहुँच कर उतार दिया । इसके बाद सबलोग नगर में प्रवेश करने का विचार करने लगे ।

युधिष्ठिर ने कहा—हे भाई ! अस्त्र शस्त्र लेकर नगर में प्रवेश करना उचित नहीं, क्योंकि सब लोग तरह तरह के सन्देह करने लगेंगे । विशेषकर के अर्जुन के गाण्डीव को सब पहचानते हैं इसलिये नगर के बाहर किसी सुरक्षित स्थान में अस्त्रों को रख देना अच्छा है ।

अर्जुन ने कहा—हे महाराज ! इस नगर के समीप ही श्मशान है, नदी के किनारे बन में वह शमी का वृक्ष दिखाई पड़ता है । उस पर किसी का चढ़ जाना बड़ा कठिन है और वहाँ कोई मनुष्य नहीं दिखाई देता है । इसलिये कपड़े में लपेट कर अपने हथियार उसी की डाल पर रख दिये जायँ । वहाँ न किसी को पता लग सकता है और न किसी के आने की सम्भावना ही है । अर्जुन की बात सबको पसन्द आई । सबलोग वहाँ हथियार रखने को तैयार हो गये । धनुष की डोरी खोल दी गई, उसके साथ तरकस तलवार और दूसरे हथियार बाँधकर उन पर कपड़ा लपेट कर नकुल उस वृक्ष पर चढ़ गये और एक मज़बूत पत्तों से ढँकी हुई डाल पर अस्त्रों को रख डोरी से बाँध दिया । फिर पत्तों से इस प्रकार ढँक दिया, जिससे जल आदि से कोई क्षति न पहुँच सके । वहीं एक शव भी बाँध कर लटका दिया जिससे कोई उसके पास जाने का साहस न करे । इसके बाद सब ने भिन्न भिन्न रूप बनाकर विराटनगर में प्रवेश किया ।

सब से पहले ब्राह्मण वेश बनाकर युधिष्ठिर सोने के बने हुए चौपड़ के गोटे और पाँसे लिये हुए विराटराज के भवन में गये । बादल से छिपे हुए सूर्य के समान तेजस्वी युधिष्ठिर की ओर राजा विराट की दृष्टि पड़ी । उन्होंने विस्मित होकर मन्त्रियों से कहा ।

हे मन्त्रीगण ! राजाओं के समान शोभाशाली ये ब्राह्मण कौन हैं ? इनके साथ नौकर चाकर सवारी आदि कुछ भी नहीं है । राजाओं के समान निर्भय होकर ये मेरे समीप चले आ रहे हैं ।

इतने में युधिष्ठिर राजा विराट के समीप पहुँच कर बोले—महाराज ! हम अकिञ्चन ब्राह्मण हैं। अभाग्य से हमारा सब कुछ नष्ट हो गया, इससे नौकरी करने आपके पास आये हैं आज्ञा हो तो यहीं रहें और आपकी इच्छानुसार कार्य करें।

राजा विराट ने आदर के साथ कहा—हे द्विजश्रेष्ठ ! आप किस राज्य से आये हैं और क्या नाम तथा गोत्र है ? आपने किस गुण में निपुणता प्राप्त की है !

युधिष्ठिर ने कहा—हे महाराज ! हम व्याघ्रपदी गोत्र के ब्राह्मण हैं। नाम कङ्क है। हम राजा युधिष्ठिर के मित्र हैं जुआ खेलने में हमने विशेष निपुणता प्राप्त की है।

विराट ने कहा—द्यूतविद्या में चतुर पुरुष हमें बहुत प्रिय है। इसलिये आप हमारे मित्र होकर रहें और इस विद्या में हमें दक्ष बनावें।

युधिष्ठिर ने कहा—हे महाराज ! किसी नीच और कपटी पुरुष के साथ हमें न खेलना पड़े। यह प्रार्थना हमारी स्वीकार कीजिये।

विराट ने कहा—आपके साथ जो कोई अप्रिय व्यवहार करेगा उसे हम दण्ड देंगे। सारा देश आपका आदर हमारे समान करेगा। आज से आप हमारे घनिष्ठ मित्र हुए।

इस प्रकार राजा विराट से आदर पाकर युधिष्ठिर उनके पास सुख से रहने लगे।

कुछ समय बीत जाने पर अवसर देख कर बलवान् भीम काले कपड़े पहन, छुरी तथा भोजन बनाने का सामान लिये हुए विराट के पास गये।

उन्हें देखकर राजा विराटने सभासदों से कहा—सिंह के समान पराक्रमी और परमरूपवान् यह युवा पुरुष कौन है ? इसे तो हमने पहले कभी नहीं देखा है। कोई जाकर पूछे कि वे क्या चाहते हैं।

यह सुन कर एक दूत भीम के पास गया और राजा की आज्ञानुसार उनसे सब हाल पूछा। भीम राजा के निकट चले गये और दीनता से बोले—

हे महाराज ! हम भोजन बनाने में बहुत निपुण हैं। हमारा नाम वल्लभ है। हमको अपना रसोइयाँ बना कर अनुग्रह कीजिये।

विराट ने कहा—वीर ! तुम्हारे रूप और सौन्दर्य को देख कर मालूम होता है कि तुम रसोइयाँ नहीं हो। तुम तो राजा के समान मालूम हो रहे हो।

भीम ने कहा—हे मत्स्यराज ! हम युधिष्ठिर के रसोइयाँ हैं। वे हमारे बनाये हुए षट्रस व्यञ्जन से सदा प्रसन्न रहा करते थे समय के फेर से हम आपके समीप आये हैं। हम मल्लविद्या भी बहुत अच्छी जानते हैं, इस विद्या से भी हम आप को प्रसन्न करेंगे।

विराट ने कहा—हे वल्लभ ! हम तुम को पाकशाला का अधिकारी बनाते हैं। यद्यपि तुम इस कार्य के योग्य नहीं, फिर भी तुम्हारी इच्छा पूरी कर देते हैं। आज से तुम हमारे प्रधान रसोइयाँ हुए।

भीम पाकशाला का अधिकार पाकर बहुत प्रसन्न हुए और सुख से वहाँ रहने लगे।

इसके बाद सुन्दर और कोमल लम्बे बालों की वेणी बाँध कर तथा एक मैली धोती पहन कर द्रौपदी, सैरन्ध्री की तरह दीन भाव से राजभवन की ओर चली। उसके अनुपम रूप को देख कर नगर के स्त्री पुरुष उसके पास चले आये और तरह तरह के प्रश्न करने लगे।

लोगों ने पूछा—हे सुन्दरी ! तुम कौन हो ? कौन सा काम करती हो ? तुम्हारा क्या नाम है और क्या चाती हो ?

द्रौपदी ने कहा—मैं सैरन्ध्री हूँ। रानी द्रौपदी का शृङ्गार किया करती थी। जो कोई मुझे इस

काम के लिये नौकर रक्खेगा, मैं बड़ी उत्तमता से अपना कौशल दिखाकर उसे प्रसन्न करूँगी। यह सुन कर सब पूछनेवाले चुप रह गये।

राजमहल के ऊपर से राजा विराट की रानी सुदेष्णा इधर उधर देख रही थीं। दरिद्रों के समान मलिन वस्त्र पहने हुए और अद्भुत स्वरूपवाली सुन्दरी द्रौपदी पर उस की दृष्टि पड़ गई। उसने अपने पास बुला कर सारा हाल पूछा। तब द्रौपदी ने कहा—

हे महारानी! मैं सैरन्ध्री हूँ। आपकी गुणग्राहकता सुन कर यहाँ आई हूँ। मुझे अपने यहाँ आश्रय देकर अनुग्रह कीजिये।

रानी सुदेष्णा ने कहा—तुम्हारा रूप इस कार्य के करने योग्य नहीं है। यद्यपि मुझे अभिलाषा हो रही है कि तुम्हें अपनी सखी बनाऊँ, पर तुम पर राजघराने के लोगों के आसक्त हो जाने पर भारी अनिष्ट हो जाने की सम्भावना है यही भय की बात है।

द्रौपदी ने कहा—हे रानी! राजा विराट या अन्य कोई राजघराने का पुरुष मुझे नहीं पा सकता। क्योंकि मेरे पति पाँच गन्धर्व हैं और वे सदा मेरी रक्षा किया करते हैं। जो कोई मुझ से बुरे विचार की इच्छा करता है, वे उसे प्राणदण्ड देते हैं। यह बात सुन कर मेरे लिये कोई बुरी भावना न करेगा। इसलिये आप निस्सन्देह होकर मुझे आश्रय दे सकती हैं। मैं पहले यदुकुलभूषण श्री कृष्ण की रानी सत्यभामा और पाण्डवों की परम सुन्दरी रानी द्रौपदी की सेवा किया करती थी। मैं बाल सँवारने, उबटन लगाने तथा तरह तरह के हार बनाने में बडी चतुर हूँ। दुर्भाग्य वश इस समय मैं कष्ट में हूँ और आपकी दासी होने की प्रार्थना करती हूँ साथही मेरी एक प्रार्थना और है कि मैं उच्छिष्ट भोजन का स्पर्श न करूँगी और न किसी के पैर धोऊँगी।

सुदेष्णा ने कहा—हमें तुम्हारी बातें स्वीकार हैं। इसके बाद सुन्दर वस्त्र देकर द्रौपदी को अपने पास रख लिया।

अनन्तर गोप का वेष बना कर सहदेव राजा विराट के पास गये और राजभवन से मिले हुए गोशाला के पास खड़े हो गये। उनके अद्भुत रूप को देख कर राजा ने चकित हो समीप बुलाकर पूछा—

तुम कौन हो? मैंने तुम्हें पहले कभी नहीं देखा है तुम किस कामना से मेरे पास आये हो?

सहदेव ने कहा—हम वैश्य हैं। हमारा नाम तन्त्रिपाल है। राजा युधिष्ठिर के यहाँ हम गौओं की देखभाल के लिये नियुक्त थे वे सङ्कट के कारण कहीं चले गये। इसलिये हम आप के यहाँ जीविका के अर्थ आये हैं।

राजा ने प्रसन्न होकर उन्हें गोशाला का प्रधान अधिकारी बनाया और उचित वेतन देने की आज्ञा दी। सहदेव मनमाना काम पाकर बड़े प्रसन्न हुए और सुख से दिन बिताने लगे।

कुछ देर बाद हाथ में कङ्कण, कानों में कुण्डल, सिर पर काली नागिन के समान लम्बे केश धारणकर अर्जुन स्त्री वेश में राजा विराट की सभा में आये। इस अनोखे रूप को देख कर विराट ने मन्त्रियों से पूछा—

यह कौन है? इसका रूप तो मत्त हाथी के समान पुरुषाकार है, परन्तु वेष स्त्री का है।

मन्त्रियोंने जाकर पूछा और राजा के पास ले आये। तब अर्जुन ने कहा—

हे महाराज! हम गाना, बजाना और नाचना बहुत अच्छा जानते हैं। हमारा नाम बृहन्नला है। हम राजा युधिष्ठिर के अन्तःपुर में इसी काम पर नियुक्त थे और नाच गाकर सब को प्रसन्न करते थे। यह रूप मुझे कैसे प्राप्त हुआ! वह कहने के योग्य नहीं है। मेरे मा बाप कोई नहीं हैं। हमें पुत्र

अथवा पुत्री समझ कर अपनी कन्या राजकुमारी उत्तरा को नृत्य गीत की शिक्षा देने के लिये नौकर रख लीजिये।

विराट ने कहा—हे बृहन्नला! तुम हमारी कन्या उत्तरा को तौर्यत्रिक (नाचना गाना और बाजा बजाना आदि) की शिक्षा दो। इससे हमें बड़ी प्रसन्नता होगी। पर तुम्हारे रूप से तो यह मालूम होता है कि तुम आसमुद्र पृथ्वी का शासन करने के योग्य हो।

राजा की आज्ञा से अर्जुन अन्तःपुर में गये और राजकुमारी उत्तरा को शिक्षा देने लगे। वह भी उनके साथ पिता के समान व्यवहार करने लगी। अन्य स्त्रियों के साथ भी उनका प्रेम बढ़ गया। अर्जुन बाहर के लोगों से मिलते ही न थे, इसलिये। उन्हें किसी से पहचाने जाने की शङ्का भी न रह गई।

कुछ कालबाद वेष बदलकर नकुल अश्वशाला में गये और वहाँ घोड़ों का निरीक्षण करने लगे उनकी अलौकिक शोभा पर राजा विराट की दृष्टि पड़ी। राजा की आज्ञा से नकुल बुलाये गये और उन्होंने आकर नम्रता से कहा—

हे महाराज! हम राजा युधिष्ठिर के अश्वशिक्षक हैं हमारा नाम ग्रन्थिक है। घोड़ों की चिकित्सा करना भी हम जानते हैं और उनके गुण दोष की पहचान भी अच्छी करते हैं।

विराट ने कहा—हम तुम्हें अपनी अश्वशाला का अधिकारी बनाते हैं। आज से सब सवारियाँ तुम्हारे अधीन की गईं।

इस प्रकार अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिये पाण्डव लोग छिपकर राजा विराट के भवन में रहने लगे।

युधिष्ठिर राजा विराट के सभासद होकर सुखी हुए, महर्षि बृहदश्व की कृपा से वे जुआ खेलने में बड़े निपुण हो चुके थे, इसलिये जुआ में खूब धन जीतकर भाइयों में बाँट देते थे। भीम राजा की रसोई से उत्तम उत्तम भोजन लाकर अन्य भाइयों को देकर तृप्त करते थे। अर्जुन भी अन्तःपुर में तरह तरह के इनाम पाकर अच्छी आमदनी कर लेते थे। सहदेव दूध, दही, घी आदि से तथा नकुल राजभवन से पाये हुए धन से सब के सुख की सामग्री एकत्र कर देते थे। इसी बहाने पाण्डव लोग एक दूसरे से मिल भी लेते थे।

इस प्रकार चार महीना बीतने पर विराट नगर में एक बड़ा उत्सव आरम्भ हुआ। चारों ओर से बड़े बड़े पहलवान अपना कौशल दिखाने के लिये आये। राजा ने सब का आदर कर उचित स्थान दिया। उनमें से एक महाबलशाली पहलवान सब को हराकर अखाड़े में कूदने और सबको ललकारने लगा। पर किसी की हिम्मत उससे भिड़ने की न हुई। सब पहलवान मन में हार मान गये।

तब राजा विराट ने भीम को लड़ने की आज्ञा दी। पहले तो वे डरे कि कहीं मेरे बल के कारण लोग पहचान न जायँ इसलिये लड़ने से हिचकिचाये। पर राजा की आज्ञा न मानना अनुचित समझ कर लड़ने को तैयार हो गये।

वे लंगोट और जाँघिया पहन कर तथा विराट को प्रणाम कर अखाड़े में उतरे। फिर उन्होंने पहलवान को युद्ध के लिये ललकारा। यह सुनकर जीमूत नामक प्रसिद्ध पहलवान उनसे भिड़ गया। दोनों में घोर मल्ल युद्ध होने लगा। दोनों में तरह तरह के दाँव चलते थे। एक दूसरे को जीतने के लिये भयङ्कर घूँसों की मार और पैर की ठोकर देते, कभी सिर से सिर लड़ा देते। उन लोगों के गरजने तथा घात प्रत्याघात से घोर शब्द हो रहा था। अनन्तर बहुत क्रुद्ध होकर भीम ने गरजनेवाले जीमूत

को पकड़ लिया और सैकड़ों बार घुमाकर इतने ज़ोर से पृथ्वी पर पटका कि उसका प्राण पखेरू उड़ गया।

जीमूत के मारे जाने से सब पहलवान और राजा विराट बहुत प्रसन्न हुए। राजा ने भीम को बहुत सा धन देकर बड़ा सत्कार किया। इसके बाद राजा विराट सिंह, व्याघ्र आदि हिंसक जन्तुओं से भीम को लड़वाते और तमाशा देखते थे। रानियाँ भी अन्तःपुर की खिड़कियों से भीम के अलौकिक बल पौरुष का निरीक्षण करती थीं। द्रौपदी का भी वहाँ रहना अनिवार्य था। वह भीम के भयानक कामों को देख कर डर जाती कि कहीं कुछ हो न जाय। इससे व्याकुल हो जाती। उसकी यह चेष्टा कभी कभी प्रगट हो जाती थी। इसलिये लोग समझते थे कि यह रूपवान् रसोइयें पर आसक्त है। इस कारण लोग तरह तरह के व्यङ्ग वचनों की वर्षा किया करते थे। नीच नर्त्तक वेश में वीराग्रणी अर्जुन को अन्तःपुर वासिनी स्त्रियों की सेवा करते देखकर भी द्रौपदी को महान् कष्ट होता था।

कीचकवध

इस प्रकार पाण्डवों को विराटपुर में रहते दस मास बीत गये। द्रौपदी सुदेष्णा की सेवा करती हुई दुःख से दिन बिता रही थी। एक दिन रानी सुदेष्णा के भाई कीचक की दृष्टि सैरन्ध्री पर पड़ गई और वह उस पर मोहित हो गया। वह महाबलवान् होने के कारण राजा विराट का सेनापति भी था। उसका ऐसा रोब जम गया था कि सब मन्त्री नौकर चाकर और राजा तक उससे डरा करते थे। कीचक मन ही मन सैरन्ध्री का ध्यान करता हुआ सुदेष्णा के पास गया और कहने लगा—

हे बहिन! हमने ऐसी रूपवती स्त्री पहले कभी नहीं देखी है, उसकी सुन्दरता मेरे चित्त को डाँवाडोल किये है और हम काम के वश हो गये हैं। किसी प्रकार इसका विवाह मुझसे करा दो।

इसके बाद सुदेष्णा की आज्ञा लेकर कीचक स्वयं सैरन्ध्री के पास गया और बोला—

हे शोभने! तुम कहाँ से आई हो? तुम्हारा यह सुकुमार शरीर दासी का काम करने के योग्य नहीं है। हे मृदुभाषिणी! तुम्हारे समान स्त्री आज तक मैंने पृथ्वी पर नहीं देखी। यह तुम्हारा मनोहर रूप भला किसे अपने वश में न कर लेगा? मेरे शरीर में काम की आग जल रही है। इसे तुम अपने स्पर्श से शीतल कर दो। मेरे साथ रह कर तुम परम आनन्द का उपभोग करो। तुम्हारा समागम होने पर मैं अपनी अन्य स्त्रियों का त्याग कर दूँगा और स्वयं तुम्हारा दास बनकर रहूँगा।

द्रौपदी ने कहा—हे सेनापति! मैं नीच वंश में उत्पन्न सैरन्ध्री होने के कारण तुम्हारे योग्य नहीं हूँ। इसके अतिरिक्त मैं दूसरे की पत्नी हूँ। हे कीचक! अपनी ही स्त्रियों में सन्तुष्ट होकर रहिये। पराई स्त्री के प्रति ऐसी नीचबुद्धि अपने मन में कभी न लाइये। यह बड़ा अधर्म है। इस कर्म से मनुष्यों को सदा प्राणान्त का भय बना रहता है।

नीच कीचक इतना कामान्ध हो गया था कि सैरन्ध्री के मुँह से पराई स्त्री होने की बात सुनकर भी चुप न रह सका और बोला—

हे प्यारी! तुम्हारे लिये कामदेव ने मुझे बाणों से व्यथित कर डाला है। अब मैं तुम्हारे वश में हूँ इसलिये मेरी बातों का तिरस्कार न करो और सुनो, मैं ही इस राज्य का स्वामी और कर्त्ता धर्त्ता हूँ। मेरे समान इस पृथ्वी पर दूसरा कोई बलवान् पुरुष नहीं है। इसलिये तुम नीच दासीत्व का काम छोड़कर अतुल राज्यलक्ष्मी का उपभोग करो और मेरी भी स्वामिनी बन कर रहो।

द्रौपदी इस प्रकार निन्दित बातें सुनकर क्रोधित हो गई और डाँट कर बोली—

रे नीच सारथी पुत्र! सावधान हो जा। मेरे लिये अपने प्राणों को पाँखी मत बना। मैं महाबलवान् पाँच गन्धर्वों की स्त्री हूँ और वे सदा मेरी रक्षा किया करते हैं। उनके क्रुद्ध होने पर तू कहीं भी भाग कर नहीं बच सकता। इसलिये मेरे पाने की अभिलाषा अपने मन से निकाल दे। बालकों की तरह चन्द्रमा के पकड़ने की अभिलाषा न कर। कालरात्रि को अपने समीप निमंत्रण देकर न बुलावे।

कीचक द्रौपदी की ऐसी बातें सुनकर फिर सुदेष्णा के पास गया और बोला—

हे बहन! तुम चतुर और बुद्धिमती हो, ऐसा उपाय बताओ कि वह सुन्दरी सैरन्ध्री मेरे वश में हो जाय। उसकी रमणीयता पर मैं विकल हूँ। यदि तुम ऐसा न करोगी तो मेरे प्राण रहने में सन्देह है।

विलाप से भरी हुई कीचक की बातें सुनकर सुदेष्णा को भाई पर दया आई, उसने कहा—

हे भाई! एक उपाय है। किसी उत्सव में मद्य और भोजन का सामान अपने यहाँ तैयार कराओ। उनको लाने के लिये मैं सैरन्ध्री को तुम्हारे पास भेजूँगी। उसको तुम अपने मधुर वचनों से वश में लाने का प्रयत्न कर सकते हो।

बहिन की बात सुनकर कीचक कुछ शान्त हुआ, अपने घर जाकर सुदेष्णा की मन्त्रणा के अनुसार भाँति भाँति के व्यञ्जन और राजारानियों के पीने योग्य मदिरा तैयार करके उसने अपनी बहिन को ख़बर दी। तब रानी ने द्रौपदी को बुलाकर कहा—

री सैरन्ध्री! मैं मदिरा पीना चाहती हूँ, तू जल्दी से कीचक के घर जा और उत्तम सुरा ले आ।

द्रौपदी ने कहा—हे रानी! सुनो, मैं कीचक के घर कभी नहीं जाऊँगी। उसकी निर्लज्जता आपको अच्छी तरह मालूम है। मैं घरका सारा काम करूँगी, पर प्रतिष्ठा कभी न गँवाऊँगी। आप ही के घर में जैसी बातें उसने मुझ से कही हैं, वह सब आपने सुनी हैं। वह मुझे देखकर फिर काम के वश में हो जायगा। इसलिये मुझे न भेजिये। आपके यहाँ बहुतेरी दासियाँ हैं, उनमें से किसी को भेज दीजिये।

सुदेष्णा ने फिर कहा—हे सैरन्ध्री! तुमको मैं भेज रही हूँ। कीचक कोई निर्लज्जता की बात न करेगा, वह बड़ा बुद्धिमान् है। यह कह कर उन्होंने सुरा लाने के लिये सोने का चषक (मद्य पीने का पात्र) द्रौपदी को दिया।

असहाया द्रौपदी जाने को लाचार हुई। उसकी दुर्बुद्धि समझकर तरह तरह की शंकाएँ करने लगी। उसके नेत्र सजल हो गये। डरी हुई मृगी की भाँति घबराहट के साथ द्रौपदी कीचक के घर के पास पहुँची। जैसे पार जानेवाले नाव पाकर आनन्दित होते हैं, वैसे ही नीच कीचक द्रौपदी को आती हुई देखकर प्रसन्न हुआ उसने कहा—

हे शोभने! आज तुम्हारा आगमन मुझे बहुत कल्याणकारी मालूम हो रहा है। आज का दिन मेरे लिये बड़ा शुभ दायक है। मेरे घरको शोभित करती हुई स्वामिनी बनकर रहो। उत्तम उत्तम वस्त्र, अमूल्य गहने धारण करो और इस सजी हुई सेज पर विराजो। मेरे साथ उत्तम माधवी मदिरा का पान करो।

द्रौपदी ने कहा—राजमहिषी ने मुझे मदिरा लाने के लिये भेजा है। उन्हें बहुत प्यास लगी है। काँपते हुए स्वर में इतनी ही बातें कहकर द्रौपदी चुप हो गई।

तब कीचक ने मुसकुरा कर कहा—हे सुन्दरी ! तुम मेरे पास बैठ जाओ। रानी के लिये मदिरा दूसरा कोई ले जायगा।

यह सुनकर द्रौपदी ने ऊँची साँस लेकर कहा—हे वासुदेव ! यदि मेरा पातिव्रत सत्य है, तो पापी कीचक मुझे वश न कर सके।

इतने में नीच कीचक ने द्रौपदी की चादर पकड़ ली। द्रौपदी ने इतने ज़ोर से धक्का दिया कि वह कटे रूख की तरह पृथ्वी पर गिर पड़ा और खुद भाग कर सभा में धर्मराज के पास चली गई। इस प्रकार अपमानित होने से कीचक को बड़ा क्रोध आया। वह घमण्ड में चूर होकर द्रौपदी के पीछे दौड़ा। द्रौपदी के साथ ही सभा में पहुँच कर उसने उसके केश पकड़ कर ज़ोर से खींचे और सब राजाओं के सामने लात मार कर गुस्से में भरा हुआ वहाँ से चला गया।

उस समय भीम भी वहीं बैठे थे, द्रौपदी का बाल खींचा जाता देख वे क्रोध से अधीर हो उठे। उन्हों ने चाहा कि कीचक को पकड़ कर मार डालें। परन्तु पास में बैठे हुए युधिष्ठिर ने अँगूठे से दबाकर ऐसा करने से रोका। उन्हों ने उस समय को उचित न समझा।

उस समय द्रौपदी लाल लाल आखें किये सभा के द्वार पर बैठ कर विलाप करने लगी। उसने राजा विराट और अपने पतियों को इस प्रकार देखा मानो क्रोध की अग्नि में उन्हें भस्म कर देना चाहती है द्रौपदी कहने लगी—

जिसके भय से शत्रु लोग रात में सुख की नींद नहीं सो सकते, उसकी पत्नी की यह दशा हो रही है ! उसकी स्त्री के मस्तक पर यह नीच कीचक लात मारे ! जिसके धनुष की टङ्कार सुन कर शत्रु का घमण्ड चूर हो जाता है, जिससे मनुष्य, राक्षस, गन्धर्व, सब डरते हैं उसकी धर्मपत्नी की यह दुर्दशा। राजा विराट ! आप भी अधर्म से अन्धे हो गये ! आप के सामने कीचक ने मेरी यह दुर्गति की, पर आप कुछ न बोले ! जब आप ही ने कुछ न्याय न किया, तो और मैं किससे कहूँ ?

राजा बिराट ने कहा—हे सैरन्ध्री ! मुझे तुम्हारे कलह का कारण ही नहीं मालूम है। फिर बिना जाने क्या न्याय कर सकता हूँ ?

सभा सद लोग कीचक की नीचता समझ कर उसकी निन्दा करने लगे।

द्रौपदी का अपमान देख कर धर्मराज के माथे से पसीना बहने लगा। बड़ी कठिनाई से उन्होंने अपने क्रोध को रोक कर कहा—

हे सैरन्ध्री ! तुम सुदेष्णा के पास महल में चली जाओ। यहाँ तुम्हारा देर तक रहना उचित नहीं। सामान्य स्त्रियों की तरह तुम्हें राज सभा में रोने की क्या आवश्यकता है ? तुम्हारे पति लोग तुम्हारे रोने से बहुत दुखी होते हैं, अवसर न जानकर वे धीर बने हैं। तुम्हारे गन्धर्व पति मौक़ा आने पर तुम्हारे शत्रुओं का ज़रूर नाश करेंगे।

द्रौपदी ने कहा—जिन दयावानों के लिये मैं धर्म का आचरण करती हूँ, उन्हीं के हाथों इसकी मृत्यु होगी।

यह कह क्रोध से लाललाल आँखें किये हुए द्रौपदी सुदेष्णा के घर पहुँची। उसको भयङ्कर क्रोधित देख कर सुदेष्णा ने कहा—

हे सैरन्ध्री ! तुम्हारा किसने अप्रिय किया है ? तुम इतना व्यथित होकर क्यों रो रही हो ?

द्रौपदी से सब बातें सुनकर सुदेष्णा को बड़ा क्रोध आया। उसने कहा—मेरी दासी पर कीचक ने इतना बड़ा अत्याचार किया है। अस्तु मैं उसे अवश्य दण्ड दूँगी।

द्रौपदी ने कहा—हे रानी! आप को क्रोध करने की आवश्यकता नहीं। जिनका उसने अपराध किया है, वे ही उसे दण्ड देंगे।

इसके बाद द्रौपदी मन ही मन कीचक की मृत्युकामना करती हुई अपने घर गई। वहाँ स्नान कर अपने कपड़े शुद्ध किये फिर रोती हुई सोचने लगी कि कहाँ जाऊँ, कैसे मेरा काम हो। कुछ देर बाद उसने एक बात स्थिर किया। रात में ही उठकर भीम सेन के घर में गई। उन्हें सिंह के समान सोता हुआ देख कर उनके शरीर में लिपट गई। मधुर स्वर से उन्हें जगाकर बोली—

हे नाथ! तुम क्यों सो रहे हो? उठकर बैठो। नीच कीचक तुम्हारी स्त्री पर बलात्कार करके अभी तक जी रहा है।

भीम उठकर बैठ गये और बोले—हे सुन्दरी! तुम यहाँ किस कार्य के लिये आई हो? तुम बहुत दुबली और दुःख से पीली पड़ गई हो। तुम अपना दुःख जल्दी मुझ से कहो। उसको समझ कर मैं दूर करने का प्रयत्न करूँगा। कोई जग कर यह बात जानने न पावे, इसलिये कह कर जल्द अपने घर चली जाओ।

द्रौपदी ने कहा—हे नाथ! राजा युधिष्ठिर जिसके पति हों उसे सुख कहाँ? सब कुछ तुम जानते हो, फिर कौन सी बात मुझ से पूछ रहे हो? कौरवों की सभा में और वनवास में जो दुःख मैंने भोगे हैं, वे मेरे हृदय को जला रहे हैं। कौन राजकन्या मेरे समान दुःखों को झेल कर इतने दिन तक जीवित रह सकती है? अब विराट की सभा में दुष्ट कीचक ने मेरे सिर में लात मारा और मेरे केश पकड़ कर युधिष्ठिर के सामने खींचे। वह दुरात्मा मुझे अपनी स्त्री बनाना चाहता है। तब भी तुम्हारा हृदय नहीं पिघलता है? अब मेरा जीना व्यर्थ है।

इन बातों को सुनकर भीम ने द्रौपदी को छाती से लगा लिया और बहुत विलाप कर बोले—

हमारी भुजाओं को और अर्जुन के धनुष को धिक्कार है! हम विराट की सभा में ही कीचक को इसका मज़ा चखा देते, पर धर्मराज के रोकने से उसके प्राण बच गये। महापातकी कीचक ने ऐश्वर्य के मद से अन्धा होकर जिस समय विराट की सभा में तुम्हारे सिर में लात मारा उसी समय हम मत्स्यदेश के सहित कीचक को धूल में मिला देने का विचार कर चुके थे, पर धर्मराज ने कुअवसर जान कर रोका और हमारा रुक जाना ही मुनासिब था। तुम्हारे दुःख से मेरा हृदय विदीर्ण हुआ जाता है, पर धर्मराज की अवसर प्रतीक्षा से हम विवश हैं।

द्रौपदी ने कहा—धर्मराज ही मेरे सारे दुःख के कारण हैं। जुआ खेलने से लेकर आजतक उन्होंने खूब दुःख के कांटे बिखेरे हैं। तुम ऐसे भाई की बातें अब न मानो। यदि वे धन से जन्म भर जुआ खेलना चाहते, तो भी कुबेर के समान भरा हुआ हमारा खज़ाना खाली न होता। भला संसार में ऐसा कौन पुरुष होगा कि दाँव पर अपने प्रिय भाई और स्त्री को भी लगा देगा। धर्मराज को जुए का इतना बड़ा व्यसन हो गया है कि कङ्क नामक ब्राह्मण बनकर विराट राज को भी जुआ खेलाकर मन बहला रहे हैं! जिसके दरबार में सदा हज़ारों राजे हाथ बाँधकर खड़े रहते थे, वे स्वयं विवश होकर विराट के यहाँ ज़िन्दगी बसर कर रहे हैं? हे भीम! तुम सूपकार बनकर राजाको रसोई परसने का निन्द्यकाम कर रहे हो! विराट के कहने से सिंह व्याघ्र आदि से लड़कर उनके प्रसन्न रखने का प्रयत्न करते हो, देव, दानव, मनुष्य में जिसकी समता करनेवाला दूसरा नहीं, वे अर्जुन नचनियाँ बनकर राजकन्या को और रानियों को खुश करते हैं! वीराग्रणी नकुल और सहदेव घोड़े और गायों की रक्षा पर नियुक्त होकर दिन बिता रहे हैं! इससे बढ़कर मेरे दुःख को बढ़ानेवाली

बात और कौन हो सकती है? आप लोगों के इस दुःख को देखकर मेरा कलेजा फटा जाता है। आजतक रानी कुन्ती को छोड़कर मैंने किसी स्त्री की सेवा न की, सो अब सैरन्ध्री बनकर सुदेष्णा के पीछे पीछे फिरती हूँ, उसकी सेवा टहल करती हूँ। राजा विराट और रानियों के डर से मेरा हृदय काँपा करता है, कि कहीं वे लोग अप्रसन्न न हो जाँय। आसमुद्र पृथ्वी के शासन करनेवाले की यह दशा!

यह सुन कर भीम अधीर हो उठे। उन्होंने द्रौपदी का हाथ पकड़ कर कहा—

हे प्रिये! अब तुम बहुत कहकर मुझे न जलाओ। क्रोध में आकर धर्ममूर्त्ति युधिष्ठिर का तिरस्कार न करो। पतिव्रता जानकी आदि का स्मरण करो और क्लेश के कारण धर्म को न छोड़ दो। तेरहवें वर्ष के बीतने में पन्द्रह दिन और रह गये हैं, तब तक क्षमा करो। उसके बाद फिर तुम्हारे दिन फिरेंगे। यदि धर्मराज तुम्हारे इस अपमान वाक्य को सुन लेंगे तो वे प्राण त्याग कर देंगे, उनके न रहने से हम में से कोई भी जीवित न रह सकेगा। यह कह कर उन्होंने रोती हुई द्रौपदी के आँसू पोंछे।

द्रौपदी ने कहा—हे नाथ! मैंने आर्त्त होकर आँखों से आँसू गिराये हैं। मेरा अभिप्राय धर्मराज को निन्दित करने का नहीं है। रानी सुदेष्णा मेरे रूप से कुछ लज्जित सी होकर मन में उद्विग्न रहा करती है। दुष्ट कीचक उसके मन का भाव जानकर मुझ से अप्रिय बातें कहता है और सदा मेरा अपमान किया करता है। मैं उसे डराने के लिये कहा करती हूँ कि मेरे पाँच गन्धर्व पति हैं और वे सदा रक्षा किया करते हैं। तब वह हँस कर कहता है—पाँच क्या मैं हज़ारों गन्धर्वों को मार सकता हूँ। विराटराज उससे डरा करते हैं, इसलिये वे उसे दण्ड नहीं दे सकते। जब मैं उस नीच से बचने के लिये सभा में भाग कर आई, उस समय की दशा तुम देख ही चुके हो। यदि तुम्हें कलङ्क से बचना हो तो अपनी धर्मपत्नी की रक्षा करो। हाय! आप लोगों के सामने ही सभा में उसने मुझे लात मारा! सूर्योदय के पूर्व ही उस नीच कीचक का बध करें, नहीं तो हे भीम! मैं जीवित न रहूँगी। यह कहकर द्रौपदी अपना मुँह भीम की छाती में छिपाकर रोने लगी। भीम ने द्रौपदी को आलिङ्गन कर आँसू पोंछ कर और बहुत धीरज बँधाया। फिर कीचक के बध करने के क्रोध से होंठ चबाते हुए बोले—

हे प्रिये! मैं तुम्हारी बात पूरी करूँगा। आज कीचक को उसके भाइयों के साथ यम लोक भेज दूँगा। तुम एक काम करो, राजा विराट ने अपनी लड़की के लिये जो यह नृत्यशाला बनवाई है, वहीं रात में उस दुष्ट को किसी बहाने लिवा लाओ। उस एकान्त स्थान में ही तुम्हारे दुःख और शोक का अन्त कीचक के बध के साथ होगा। ध्यान रहे, उससे तुम्हारी जो बातें हों, उसे दूसरा कोई न जानने पावे।

द्रौपदी कुछ शान्त हुई। कीचक के बध का उपाय सोचती हुई अपने घर आई। भीम समय की प्रतीक्षा करने लगे।

सबेरा होने पर नीच कीचक फिर द्रौपदी के पास आया और अवसर देखकर इस प्रकार बोला—

हे सैरन्ध्री! अब भी समझ जाओ। देखो, विराट की सभा में सब के सामने मैंने तुम्हें लात मारा, कोई कुछ न बोल सका। तुम्हारा बचानेवाला कोई सामने न आया। नाम मात्र को विराट राजा हैं, यह सेनापति ही सम्पूर्ण राज्य का मालिक है। यदि प्रसन्नता से तुम मुझे स्वीकार करोगी तो मैं तुम्हारा दास होकर रहूँगा मेरा कहा मान जाओ।

द्रौपदी ने कुछ प्रसन्न सी हो कर कहा—हे कीचक हमारे तुम्हारे सङ्गम की कोई बात प्रगट होनी बहुत अनिष्टकारी होगी। इसलिये सब के सामने ऐसी बातों की सलाह करनी उचित नहीं। रात्रि में नाट्यशाला खाली हो जाती है, उसी एकान्त स्थान में तुम मुझसे मिलो यह बात गन्धर्व भी न जान सकेंगे और तुम्हारा मनोरथ सिद्ध हो जायगा। पर इस बात का खूब ध्यान रखना, इसे कोई जानने न पावे।

कामान्ध कीचक इन बातों को स्वीकार कर मारे प्रसन्नता के फूल उठा। हर्ष से भरा हुआ वह अपने घर आया। द्रौपदी भी प्रसन्न मन जल्दी से पाकशाले में गई और भीम से सारा हाल कह सुनाया।

सन्ध्या हो जाने पर भीम नाट्यशाला में छिप कर जा बैठे। इधर कीचक द्रौपदी को पाने की अभिलाषा से खूब सजने लगा। उसने उत्तम वस्त्र और गहने पहन कर सुगन्धित लेप लगाये। कुछ रात बीतने पर सैरन्ध्री को पाने की अभिलाषा से नाट्यशाला में गया। कामान्ध कीचक पलँग पर बैठे हुए भीम को द्रौपदी समझकर हँसता हुआ बोला—हे प्रिये! मैं तुम्हें असंख्य धन ऐश्वर्य की स्वामिनी बनाऊँगा। सैकड़ों दासियाँ तुम्हारी सेवा में सदा हाज़िर रहेंगी। देखो, संसार में जितनी सुन्दर स्त्रियाँ हैं वे सब मेरी प्रशंसा करती हैं और कहती हैं कि मेरे समान रूपवान् पुरुष दूसरा नहीं।

भीम ने कहा—ठीक है, स्त्रियाँ अवश्य तुम्हारी सुन्दरता पर मोहित हो जाती होंगी। आओ, आज मेरे अपूर्व स्पर्श सुख का अनुभव करो। यह कह कर भीम झपटे और कीचक का केश पकड़ कर उस पर आक्रमण किया।

कीचक घबरा उठा। उसने भीम को दोनों हाथों से पकड़ लिया। तब उस अन्धेरे में सिंह के समान दोनों में भयङ्कर युद्ध होने लगा। पहले कीचक ने भीम पर भयङ्कर आघात किया। पर वे पर्वत के समान अपने स्थान पर खड़े रह गये। अनन्तर भीम ने कीचक को पकड़ कर खींच लिया और क्रोधान्ध होकर खूब चोट पहुँचायी। कीचक ने अवसर देखकर भीम की जाँघ में ऐसा आघात किया कि वे धम से ज़मीन में गिर गये। पर तुरन्त उठे और दूने क्रोध से सावधानी के साथ कीचक पर फिर आक्रमण किया। उन्होंने कीचक की छाती में ऐसे ज़ोर से लात मारा कि वह ज़मीन पर गिर पड़ा और फिर न उठ सका। वे कीचक का केश पकड़ कर उसे नाट्यशाला में घसीटने लगे। इससे उसे बड़ा कष्ट हुआ और चिल्लाने लगा। तब उन्होंने उसकी गर्दन पकड़ कर तोड़ डाली। कमर पर घुटना रख कर उसकी रीढ़ तोड़ डाली। आखें फोड़कर हाथ, पाँव, सिर पृथ्वी पर रगड़ कर उसे माँसपिण्ड के समान बना दिया। उसका ऐसा विकृत रूप बना डाला कि पहचानना भी कठिन हो गया पास ही एक घर में बैठी हुई द्रौपदी यह सब तमाशा देख रही थी। भीम ने उसे बुलाकर आग जलाई और मुर्दे को ठोकर मार कर द्रौपदी के सामने कर दिया। फिर इस प्रकार बोले—

हे द्रौपदी! देखो तुम्हारे अपमान करनेवाले की यह दशा हुई है। जो कोई तुम्हारा अपमान करेगा, मैं उसकी ऐसी ही दुर्दशा करूँगा। यह कह कर भीम पाकशाला में चले गये।

द्रौपदी ने विराट की सभा में जाकर कहा—

हे सभासद! देखो, हमारे अपमान करनेवाले को हमारे गन्धर्व पतियों ने नृत्यशाला में मार डाला।

यह सुनकर हज़ारों आदमी मशालें लेकर नृत्यशाला में गये और वहाँ हाथ, पैर, शिर से रहित खून से लथपथ कीचक के शरीर को देखा। अमानुष कर्म जानकर सब आश्चर्य करने लगे। सब लोगों को निश्चय हो गया कि यह काम मनुष्य का नहीं गन्धर्वों का ही है। कीचक के कुटिम्बियों को भी यह ख़बर मिली। ये सब वहाँ आये और चारों ओर बैठकर बिलाप करने लगे। वे लोग अन्त्येष्टि क्रिया का प्रबन्ध कर रहे थे कि इतने में पास ही खड़ी हुई द्रौपदी पर उनकी दृष्टि पड़ गई। तब कीचक के भाइयों ने कहा—

हे भाइयो! जिसके लिये हमारे भाई का नाश हुआ वही पापिनी इस खम्भे के पास खड़ी है। इस अधर्मिणी को भी मार डालो और कीचक के शव के साथ जलादो। ऐसा करने से इस लोक में न सही, किन्तु परलोक में तो हमारे भाई को शान्ति मिलेगी।

कीचक के भाइयों का पराक्रम विराटराज अच्छी तरह जानते थे। इसलिये उन्होंने रोकने का साहस न किया और द्रौपदी को ले जाने की आज्ञा दे दी। उन्होंने जबर्दस्ती द्रौपदी को पकड़कर शव के साथ बाँध दिया और श्मशान की ओर ले चले।

द्रौपदी अत्यन्त व्याकुल होकर रोदन करती हुई बोली—हे मेरे गन्धर्व पतियो! मेरी रक्षा करो। सूतपुत्र मुझे श्मशान में लिये जाते हैं!

द्रौपदी की करुणा से भारी हुई बात सुनकर भीम पलँग से उठ बैठे और अपना वेश बदल लिया। नगर का प्राकार लाँघकर वे जल्दी से श्मशान भूमि में पहुँच गये। वहाँ पहुँच कर उन्होंने एक पेड़ उखाड़ लिया और सूतपुत्रों के आने पर साक्षात् यमराज के समान उन पर आक्रमण किया।

भीम के अद्भुत पराक्रम को देखकर उन लोगों ने उन्हें गन्धर्व ही समझा। इसलिये द्रौपदी को वहीं छोड़ कर सब नगर की ओर भागे पर भीम ने घेर कर उन सब का संहार कर डाला। कीचक के एक सौ पाँच भाइयों का भी अन्त हो गया। इसके बाद द्रौपदी का बन्धन खोल कर भीम बोले—

हे प्रिये! जिन्होंने तुम्हें क्लेश पहुँचाया, उन सब को हमने यम के घर भेज दिया। तुम किसी प्रकार का भय अब न करो तुम नगर में चली जाओ। हम दूसरे रास्ते से आवेंगे।

इधर जो लोग कीचक की अन्त्येष्टि क्रिया देखने आये थे, वे कीचक के भाइयों को मारा जाता देख डरे और नगर में आकर राजा विराट से सब हाल कह सुनाया। गन्धर्वों का उपद्रव सुन कर राजा बहुत डरे और सुदेष्णा के पास जाकर बोले—

हे प्रिये! सैरन्ध्री के कारण बड़े उपद्रव हो रहे हैं उसे यहाँ से हटा दो देखो, उसके पति गन्धर्वों ने कितना उपद्रव मचा रक्खा है। ऐसा उपद्रव होता रहा तो हम राज्यशासन भी न कर सकेंगे।

उधर द्रौपदी जब बन्धन से मुक्त होकर नगर में आने लगी तो लोग भीम के कामों से इतने डर गये थे कि उसे देखते ही अपने प्राणों के भय से इधर उधर भागने लगे। किसी की हिम्मत उसकी ओर देखने की न हुई।

धीरे धीरे द्रौपदी राजमहल में पहुँची। जब वह शयनागार के पास से जा रही थी, तब अर्जुन उत्तरा और उसकी सखियों को नृत्य सिखा रहे थे। निरपराध सैरन्ध्री को श्मशान से सकुशल लौट आई देख सब को बड़ी प्रसन्नता हुई। सब के साथ अर्जुन उसके पास चले आये और बोले—

हे सैरन्ध्री! बड़े सौभाग्य की बात है कि तुम संकट से बचकर सकुशल लौट आई। वह अधम कीचक और उसके भाई कैसे मारे गये, यह मुझ से बतलाओ।

द्रौपदी ने कहा—हे बृहन्नला ! तुम्हें सैरन्ध्री के कुशल से क्या प्रयोजन है। तुम कन्याओं के साथ आनन्द से अपने दिन बिताओ। जो दुख सैरन्ध्री भोग रही है, वह तो तुम्हें भोगना नहीं है इसीलिये उसे अत्यन्त दुखी देखकर तुम हँस हँस कर बातें कहती हो।

अर्जुन ने कहा—हे सैरन्ध्री ! बृहन्नला क्लीबदेह धारण कर भी तुम्हारे दुःख से बहुत दुखी है। हमारे मन की बात न जानने के कारण ही तुम ऐसी बातें कह रही हो। ठीक है, कोई किसी के मन की बात क्या जान सकता है।

अनन्तर कन्याओं के साथ द्रौपदी सुदेष्णा के पास गई। उसे देखते ही उन्होंने राजा की आज्ञा सुनाकर कहा—

हे सैरन्ध्री ! तुम को जहाँ रुचै वहाँ चली जाओ। तुम्हारे पति गन्धर्वों के उपद्रव से सब लोग बहुत डर गये हैं। इस लिये अब तुम्हारा यहाँ रहना अच्छा नहीं।

द्रौपदी ने कहा—हे रानी ! राजा तेरह दिन तक और क्षमा करें। इसके बाद गन्धर्व पति मुझे यहाँ से ले जाँयगे। यदि गन्धर्व लोग प्रसन्न रहेंगे, तो राजा तथा इस राज्य का बड़ा कल्याण होगा। इसे अटल समझो।

अज्ञातवास की समाप्ति

अज्ञात वास का समय पूरा होते देख दुर्योधन ने पाण्डवों का पता लगाने के लिये गुप्तचर नियुक्त किये। वे देश देश में घूम कर उनका पता लेने लगे, गाँव, नगर, देश रत्ती रत्ती ढूँढ़ डाले, पर कहीं पाण्डवों का पता न लगा। लाचार होकर दूत हस्तिनापुर को लौटे। भीष्म, द्रोण, कर्ण, कृप, तथा अन्य कुरुवीरों के साथ दुर्योधन राजसभा में बैठे थे। उसी समय दूतों ने पहुँचकर निवेदन किया।

हे महाराज ! हम लोगों ने चारों ओर नगर, पुर, बन, पहाड़, नदी, सरोवर सब कुछ ढूँढ़ डाले, शत्रुओं की राजधानी तथा द्वीप द्वीपान्तर भी छान डाला। पर पाण्डवों का कहीं पता न मिला। पाण्डवों के सारथी लोग खाली रथ लेकर द्वारका पुरी की ओर गये। उनसे पूछने पर भी पाण्डव और द्रौपदी का पता न लगा कि वे कहाँ हैं या किधर गये हैं। लक्षण से मालूम होता है कि अत्यन्त दुःख के कारण उनलोगों ने प्राण त्याग दिये। अब आप निःशङ्क होकर सम्पूर्ण राज्य का उपभोग कीजिये।

हे महाराज ! एक बहुत प्रिय समाचार हम आप को और सुनाते हैं। विराटराज के प्रधान सेनापति बलवान् कीचक को रात के समय गन्धर्वों ने मार डाला। उसके अन्य भाई भी उसी के साथ मारे गये। यह सब हमलोग अपनी आँखों देख कर आये हैं।

दूतों की बात सुनकर दुर्योधन कुछ देर तक चुप होकर सोचते रहे। फिर चिन्तित होकर सभासदों से बोले—

अब आपलोग अन्तिम कार्य का विचार करें। पाण्डवों का अज्ञातवास अब समाप्त ही हुआ चाहता है। तेरहवाँ वर्ष पूरा हो जाने पर वे क्रोध से भरे हुए कराल सर्प के समान कौरवों पर आक्रमण करेंगे। जिस प्रकार उन्हें फिर बन में रहना पड़े वही उपाय आप लोगों को करना चाहिये।

यह सुनकर कर्ण बोला—महाराज ! अब कुछ धूर्त्त गुप्तचरों के भेजने की आवश्यकता है और वे जाकर बन, पहाड़, नगर, देश आदि सब जगह अच्छी तरह पता लगावें।

तब दुर्मति दुःशासन ने कहा—हे महाराज ! कर्ण बहुत उचित सलाह दे रहे हैं। पाण्डवों

की खोज अच्छी तरह कर लेनी चाहिये। यदि इस पर भी पता न लगे तो समझ लेना चाहिये कि वे अभागे मर गये। इस प्रकार अपने मन का समाधान करके तब आप निष्कण्टक राज्य करें।

द्रोणाचार्य ने कहा—पाण्डव लोग नीति और धर्म में पूरे पण्डित हैं। अस्त्र विद्या में भी उनका मुकाबला करनेवाला दूसरा नहीं। वे जितेन्द्रिय और कृतज्ञ हैं। परस्पर भाइयों का स्नेह अद्वितीय है। तब भला लक्ष्मी उनका पीछा क्यों छोड़ने लगी? वे मरे नहीं हैं, केवल समय की प्रतीक्षा करते हुए तुम्हारे नाश का उपाय कर रहे हैं। अब धीरज धर कर तुम्हें शीघ्र कोई उपाय करना चाहिये। उनके पता लगाने में कोई कोर कसर न रह जानी चाहिये।

भीष्म पितामह ने कहा—हे दुर्योधन! द्रोणाचार्य का कहना बहुत यथार्थ है। मेरी बुद्धि भी यही कह रही है कि धर्मात्मा पाण्डव द्रौपदी के साथ जीवित हैं। हे बेटा! अब उनके पीछे पड़ना योग्य नहीं है। मैं यह बात द्रोह वश नहीं कह रहा हूँ, केवल कुल की हित कामना मुझे बाधित कर रही है। अब जो तुम्हें उचित समझ पड़े वह शीघ्र करो।

कृपाचार्य ने कहा—हे महाराज! भीष्म ने बहुत उचित सलाह दी है। पर आपको नीति के अनुसार कार्य करने की आवश्यकता है। कमजोर शत्रु को निरादर करके न छोड़ देना चाहिये। फिर पाण्डवलोग तो महारथी हैं। उनका मुकाबला करने के लिये आपको तैयार हो जाना चाहिये। अज्ञात वास की अवधि समाप्त होने पर वे आपसे बदला लेंगे। इसलिये अपने मित्र राजाओं को और अपनी शक्ति को बटोर कर आप युद्ध के लिये तैयार होजाँय। पाण्डवों का अभ्युदयकाल अब निकट है। उनके बल को और अपनी शक्ति को विचार कर विग्रह अथवा सन्धि करो। पहले आप अपने ख़जाने को बढ़ाओ और सुशासन से प्रजा को वश में कर लो। फिर विचार कर जो कार्य करोगे, उसमें सफलता मिलेगी।

त्रिगर्त्तराज ने अच्छा अवसर समझ कर्ण की ओर देख कर कहा—हे दुर्योधन! मत्स्य राज के सेनापति कीचक ने कई बार मेरे राज्य पर आक्रमणकर नष्ट किया था, अच्छा हुआ उस दुष्ट को गन्धर्वोंने मार डाला। उसके मारे जाने से विराट का घमण्ड चूर हो गया होगा। इसलिये हम लोग मिलकर मत्स्यराज पर आक्रमण करें और उनको जीत कर असंख्य धन रत्न और गायें कर में लें। विराट को जीतने से आपकी शक्ति भी बढ़ जायगी।

यह सुन कर कर्ण ने कहा—हे महाराज! त्रिगर्त्तराज सुशर्मा ने बहुत अच्छी सलाह दी। अपनी सेना सजा कर आप मत्स्यराज पर आक्रमण करें। भीष्म, द्रोण, कृप आदि से भी सलाह कर लीजिये। जैसा वे लोग कहें वैसाही किया जाय। दरिद्र, बल और पौरुष से हीन पाण्डव अवश्य नष्ट हो गये। अब उनके पीछे व्यर्थ चिन्ता करके समय नष्ट करने से कुछ लाभ नहीं।

कर्ण की बात स्वीकार कर दुर्योधन ने दुःशासन को सेना सजाने की आज्ञा दी। कुरु वृद्धों की सलाह से सेना सज कर तैयार हुई।

सबसे पहले त्रिगर्त्तराज सुशर्मा अपनी सेना लेकर कृष्ण पक्ष की सप्तमी तिथि में विराट नगर की ओर चला।

दूसरे दिन कौरव लोग भी विराट राज पर आक्रमण करने के लिये दूसरे मार्ग से चले।

वहाँ गुप्त वेषधारी पाण्डव लोग कीचक के मारे जाने पर विराट राज की सब प्रकार से सहायता करने लगे विराट भी पाण्डवों के व्यवहार से कीचक के मरने का दुःख भूल गये। तेरहवें वर्ष के अन्त में त्रिगर्त्तराज ने राजा विराट के देश पर चढ़ाई करके उनकी अनेकों उत्तम गायें हर लीं।

यह देख कर गोपलोग रथ पर चढ़ कर शीघ्र राजा के पास आये और सभासदों से घिरे हुए राजा विराट से बोले—

हे महाराज! त्रिगर्त्तराज ने बड़ी भारी सेना लेकर हम पर आक्रमण किया और जबर्दस्ती आप की हज़ारों गायें छीन ले गये। आप जल्द चल कर हमारी और गौओं की रक्षा करें।

सुनते ही विराट ने अपनी चतुरङ्गिनी सेना सजाने की आज्ञा दी। आज्ञा पाते ही वीर लोग चित्र विचित्र के कवच और अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित हो लड़ने को प्रस्तुत होगये। विराट के भाई शतानीक आदि भी अभेद्य कवच धारण कर युद्ध के लिये तैयार हुए। सुन्दर घोड़ों से जुते हुए युद्ध के रथ सजाये गये। उन पर सुनहली पताकाएँ फहराने लगीं। तरह तरह के जुझाऊ बाजे बजने लगे।

तब राजा विराट ने कहा—वीर श्रेष्ठ कङ्क, वल्लभ, तन्त्रिपाल और ग्रन्थिक भी मेरे साथ युद्ध भूमि में चलें। इन लोगों को भी उत्तम उत्तम रथ, अस्त्र-शस्त्र और कवच दिये जाँय।

राजा की आज्ञा से युधिष्ठिर, भीम, नकुल और सहदेव अस्त्र लेकर प्रसन्नतता पूर्वक रथ पर सवार हुए और राजा विराट के साथ चले। चतुरङ्गिनी सेना साथ लेकर राजा ने एक प्रहर दिन चढ़ने पर गौ चुराने वाली त्रिगर्त्त सेना पर आक्रमण किया। दोनों सेनाओं में घोर युद्ध होने लगा। भयङ्कर बाणों की वर्षा से आकाश ढँक गया। पृथ्वी रुण्ड मुण्ड मय होकर रक्त से भर गई।

घोर युद्ध होते होते सन्ध्या हो गई। अन्धकार होजाने से कुछ काल के लिये युद्ध रुक गया। अन्धकार नाशक चन्द्रमा के उगने पर फिर दोनों ओर की सेनाएँ भिड़ गईं। वीर क्षत्रियलोग क्रोधान्ध होकर भयङ्कर युद्ध करने लगे।

तब सुशर्मा ने अपने भाई को साथ लेकर मत्स्यराज पर आक्रमण किया। उनके समीप में जाकर हाथ में गदा लिये हुए शीघ्र ही रथ से उतर पड़ा। विराटराज के सारथि को मारकर त्रिगर्त्त-राज ने उन्हें पकड़ लिया और अपने रथ में बैठा कर भागा। मत्स्यसेना यह देखकर बहुत डर गई और इधर उधर भाग चली। यह दशा देखकर युधिष्ठिर ने भीम से कहा—

हे भीम! सुशर्मा विराटराज को पकड़ कर लिये जा रहा है। उनको छुड़ाना हम लोगों का धर्म है; क्योंकि उनके यहाँ स्वतन्त्रता पूर्वक रहकर हमलोग सुख से अपना दिन बिता रहे हैं।

भीम ने कहा—महाराज! हम आप की आज्ञानुसार अभी विराट को छुड़ा लाते हैं। आप भाइयों के साथ यहीं एकान्त में खड़े रहकर देखते रहिये। इस सामनेवाले सूखे वृक्ष को उखाड़ कर हम ससैन्य सुशर्मा का संहार करने जाते हैं।

युधिष्ठिर ने कहा—हे भाई! तुम वृक्ष उखाड़ कर भयङ्कर युद्ध न करो। यदि ऐसा कार्य आरम्भ कर दोगे तो सब लोग तुम्हें पहचान जाँयगे। अन्य कोई शस्त्र लेकर युद्ध करो और विराट को छुड़ाओ।

तब भीम धनुष बाण लेकर सुशर्मा के पीछे दौड़े और तीखे बाणों की वर्षा करने लगे। सुशर्मा साक्षात् यमराज के समान क्रोध करके आते हुए भीम को देखकर बहुत डरा। फिर भीम के ललकारने पर उस वीर ने अपना रथ फेरा और घोर युद्ध करने लगा। थोड़ी ही देर में सहस्रों सैनिकों का संहार कर भीम सुशर्मा के सामने आ गये। इतने ही में अन्य पाण्डव भी उनकी सहायता के लिये वहाँ पहुँच गये। सब ने मिल कर ऐसा घोर युद्ध किया कि त्रिगर्त्तराज की सारी सेना नष्ट हो गई। अनन्तर अवसर देखकर भीम ने सुशर्मा के पृष्ठ रक्षक और सारथि को मार डाला और उसके रथ पर चढ़ कर विराटराज का बन्धन खोल दिया। फिर सुशर्मा को रथ से गिरा कर उसे पकड़ लिया।

यह देखकर युधिष्ठिर ने कहा—अब इस अधम को छोड़ दो। फिर सुशर्मा से कहा—इस बार तुम छोड़ दिये जाते हो। पर लोभ वश फिर ऐसा काम कभी मत करना।

सुशर्मा लज्जा के मारे सिर नीचा करके खड़ा होगया। विराटराज को प्रणाम कर उनकी आज्ञा से अपने देश को चला गया। राजा ने वह रात संग्रामभूमि में ही बिताई। दूसरे दिन पाण्डवों को बहुत सा धन देने की आज्ञा देकर बोले—

हे वीरो! हमारा धन रत्न सर्वस्व तुम्हीं लोगों का है। तुम्हारे ही पराक्रम से हम छूटे और हमारे मान की रक्षा हुई। आज से इस राज्य का तुमलोग शासन करो। इस उपकार के बदले हम तुम्हें अपनी कन्या भी देंगे।

विराटराज की बात सुनकर पाण्डवों ने पृथक् पृथक् हाँथ जोड़कर कृतज्ञता प्रगट की। फिर युधिष्ठिर ने कहा—

महाराज! आपका शत्रु के हाथ से बच जाना ही हमारे परम सन्तोष का कारण है। अब दूत लोग नगर में भेजे जायँ और वे वहाँ जाकर आप की विजय का समाचार सुनावें तथा इस विजय के उपलक्ष्य में खूब उत्सव मनाया जाय।

इधर राजा विराट नगर में पहुँचने भी न पाये थे कि इतने में दुर्योधन, भीष्म, कर्ण, दुशासन शकुनि आदि ने कौरव सेना लेकर विराट नगर को घेर लिया तथा ग्वालों को मार पीट कर साठ हज़ार गायों को अपने वश में कर लिया। ग्वालों का सरदार डर के मारे भागकर राजभवन में गया और राजकुमार उत्तर के पास जाकर बोला—

हे राजकुमार! कौरवी सेना के साथ दुर्योधन आक्रमण कर आप की साठ हज़ार गायें जबर्दस्ती लिये जा रहे हैं। आप जल्द चलकर उनसे युद्ध करें और गायें लौटा लावें। महाराज विराट सम्पूर्ण राज्य भार आपही को सौंप कर गये हैं इसलिये शत्रुओं को दण्ड देकर गौओं की रक्षा करना आपका धर्म है।

स्त्रियों के बीच में बैठे हुए उत्तर ग्वालों की बात सुनकर घमण्ड के साथ बोले—

यदि मुझे कोई उत्तम सारथि मिल जाय तो मैं आज अपनी वीरता का परिचय देकर कौरवों के दाँत खट्टे करदूँ और उन्हें हराकर यहाँ से लौटाऊँ।

उत्तर की बात सुनकर अर्जुन ने एकान्त में द्रौपदी से कहा—हे प्रिये! तुम उत्तर से कह दो कि वृहन्नला अच्छा सारथ्य कर सकता है। उस ने एकबार भारी युद्ध में अर्जुन के सारथि का काम किया है।

अर्जुन के कहने से द्रौपदी राजकुमार उत्तर के पास गई और लजाती हुई धीरे धीरे बोली—

इस वृहत्काय वृहन्नला ने एक बार अर्जुन का सारथ्य किया है। यह खुद भी शस्त्र विद्या में बड़ा पण्डित है पाण्डवों के घर में मैंने सुना था कि खाण्डव बन के युद्ध में भी यह अर्जुन के साथ था।

उत्तर ने कहा—तुम उसकी वीरता को भले ही जानो पर मैं हिजड़े को कैसे सारथि बना सकता हूँ? फिर उसे सारथि बनने के लिये कैसे कहने जाऊँ?

द्रौपदी ने कहा—हे कुमार! यदि आप की बहन उत्तरा उससे कहेंगी तो वह अवश्य मान लेगा।

द्रौपदी की बात सुनकर उत्तर ने अपनी बहन से वृहन्नला के पास जाने की प्रार्थना की। वह छद्मवेशधारी अर्जुन के पास शीघ्र नृत्य शाला में गई। उसे देख कर अर्जुन ने हँसते हुए कहा—

हे राजकुमारी ! तुम घबराई हुई सी इतनी जल्दी क्यों आई हो ? तुम्हारा मुख क्यों सूखा हुआ है ? कारण बतलाओ ।

उत्तरा ने नम्रता से कहा—बृहन्नले ! कौरव लोग हमारी गायों को जबर्दस्ती छीनकर लिये जाते हैं । उनको जीतने के लिये हमारे भाई जाना चाहते हैं । पर उनका सारथि नहीं है, इसलिये वे जाने में असमर्थ हैं सैरन्ध्री ने कहा है कि तुम उत्तम सारथि का काम कर सकते हो, इस लिये मेरे भाई के सारथि बनकर कौरवों को जीतो और गौओं को लौटा कर मत्स्यराज के मान की रक्षा करो ।

यह सुनकर अर्जुन उठे और राजकुमार के पास गये उन्हें देख कर उत्तर ने कहा—

मैंने सुना है कि तुम अर्जुन का सारथ्य कर चुके हो, इसलिए मैं तुमको अपना सारथि बनाकर कौरवों पर आक्रमण किया चाहता हूँ ।

अर्जुन ने मुसकुरा कर कहा—मैं तो नाचने गाने काम करने वाला बृहन्नला हूँ । भला रथ हाँकने का काम कैसे कर सकूँगा ।

उत्तर ने कहा—हे बृहन्नला ! लौटकर तुम फिर नाचने गाने काम करना । इस समय मेरा सारथ्य करो ।

इस तरह उत्तर के कहने पर अर्जुन तैयार हुए । उन्होंने कवच पहनने में ऐसी अनभिज्ञता दिखाई मानों वे उसे पहनना जानते ही न थे । यह देख कर स्त्रियाँ हँस कर लोट पोट हो गईं । फिर उत्तर ने अपने हाथ से कवच पहना दिया और सिंह चिन्हित सजे हुए उत्तम रथ पर बैठकर चलने को तैयार हुए । उनके चलते समय उत्तरा ने कहा—

हे बृहन्नला ! भीष्म, द्रोण, कर्ण आदि कुरुवीरों को जीतकर उनके बहुरङ्गे कपड़े छीनकर मेरे लिये ले आना । मैं उनकी गुड़िया बनाकर खेलूँगी ।

अर्जुन ने हँसकर कहा—यदि कुमार उत्तर जीत जाँयगे, तो मैं अवश्य उनके कपड़े छीनकर ले आऊँगा यह कह कर अर्जुन कुमार उत्तर को रथ पर बैठाकर और रथ को हाँककर कौरवों की सेना की ओर ले चले । राजधानी से बाहर निकलने पर उत्तर ने बड़ी निर्भीकता दिखाते हुए कहा—

हे सारथि ! हमारा रथ शीघ्र कौरवों की सेना की ओर ले चलो, जिससे दुष्ट कौरवों को दण्ड देकर अपनी गयें हम छुड़ा लावें ।

यह सुन कर अर्जुन ने घोड़ों को बड़े वेग से दौड़ाया कुछ दूर जाने पर उन्हें महासमुद्र के समान कौरवी सेना दिखाई पड़ी । श्मशान के समीप शमीवृक्ष के नीचे पहुँच कर बड़े बड़े योद्धाओं से रक्षित कौरवों की सेना को देखकर उत्तर बहुत डरे । उन्होंने घबराकर कहा—

हे बृहन्नला ! देखो मारे भय के हमारे रोंगटे खड़े हो गये हैं । इन बड़े बड़े वीरों का मुकाबला करने में हम असमर्थ हैं । भीष्म, द्रोण, कर्ण आदि कौरवों का सामना देवता भी नहीं कर सकते । मुझ बालक की क्या गिनती है ? पिताजी सारी सेना लेकर त्रिगर्त्तराज से युद्ध करने चले गये हैं । मैं अकेला रह गया हूँ, तिसपर भी सैनिक शिक्षा में एक दम कोरा हूँ । इस भयङ्कर सेना को देख कर मेरे प्राण सूखे जाते हैं, उधर देखने की हिम्मत भी नहीं पड़ती है । इसलिये जल्दी से रथ घर की ओर लौटा ले चलो । मैं युद्ध न करूँगा । हे सारथि ! इस समय मेरे प्राण बचाओ ।

तब अर्जुन बोले—हे कुमार ! भय से घबराकर शत्रुओं की प्रसन्नता बढ़ाने के कारण मत बनो अभी तक संग्राम भूमि में उन्होंने कौन से काम किये हैं, जिससे तुम इतने भय भीत हो गये हो ? उस समय तो तुम ने बड़े घमण्ड से कहा था कि मुझे शत्रुओं के सामने ले चलो, मैं उन्हें पराजित करूँगा

और उसी बात को मानकर मैं तुम्हें यहाँ ले आया। यों ही भागकर गौओं को बिना छुड़ाए यदि तुम नगर में लौट चलोगे, तो सब स्त्री-पुरुष तुम्हारी बड़ी हँसी करेंगे। सब के सामने सैरन्ध्री ने मेरे सारथीपन की प्रशंसा की है। इसलिये मेरी भी बड़ी हँसी होगी। अब बिना गौओं को छुड़ाये हम नहीं लौट सकते। तुम को स्थिर होकर कौरवों से युद्ध करना ही पड़ेगा।

उत्तर ने कहा—हे बृहन्नला! कौरवलोग चाहे हमारा सर्वस्व छीन ले जायँ चाहे जितना अपमान कर स्त्री-पुरुष हमारी हँसी उड़ावें, पिता भी हमारा तिरस्कार करें, पर हम युद्ध न करेंगे। हमें गौओं से कुछ प्रयोजन नहीं।

यह कह कर उत्तर ने धनुष बाण रख दिया और रथ से कूद कर भागना चाहा।

ऐसी दशा देखकर अर्जुन ने कहा—हे कुमार! रणभूमि में पीठ दिखाना क्षत्रियों का धर्म नहीं है। डरकर भागने की अपेक्षा संग्राम में मरजाना अत्यन्त कल्याण कारी है।

यह कहकर अर्जुन भी रथ से कूद पड़े और भागते हुए उत्तर के पीछे दौड़े। दौड़ने से उनकी बेणी खुल गई कपड़े ढीले होकर इधर उधर उड़ने लगे।

यह अद्भुत दृश्य देखकर पास ही ठहरी हुई कौरव सेना के वीर लोग हँसने लगे। अर्जुन के छद्मवेशी शरीर को देखकर कुछ लोग कहने लगे कि हमने इस मनुष्य को तो कहीं देखा है, इसका आकार प्रकार अर्जुन के समान मालूम हो रहा है। हो न हो, यह अर्जुन ही हैं। क्योंकि विराट के पुत्र की हिम्मत नहीं कि अकेले वह युद्ध करने के लिये चला आवे।

इधर अर्जुन ने सौकदम दौड़कर उत्तर के केश पकड़ लिये और उसे रथ पर ज़बर्दस्ती बिठा लिया। तब भयभीत उत्तर दीन वचन बोला—

हे बृहन्नला! हमारी बात मान लो। रथ लौटा ले चलो हम तुमको बहुत सा धन देंगे।

राजकुमार को बहुत डरा और घबराया हुआ देख अर्जुन ने हँसकर कहा—

हे कुमार! यदि तुम्हें युद्ध करने में उत्साह न हो तो हमारा सारथ्य करो। डरो नहीं। हम शत्रुओं से युद्ध करेंगे। हम अभी कौरवों को जीतकर गौओं को छुड़ा लेते हैं। अपनी ही भुजाओं के बल से तुम्हारी भी रक्षा करेंगे। तुम्हारा बाल न बाँका होने पावेगा।

यह सुन कर उत्तर का जी कुछ ठिकाने हुआ। वे रथ चलाने को तैयार हुए। वेश बदले हुए अर्जुन को रथ पर चढ़ते देख भीष्म, द्रोण आदि कुरुवीरों को निश्चय हो गया कि यह अर्जुन है। तरह तरह के भयङ्कर उत्पात होते देख द्रोण ने भीष्म से कहा—

मालूम होता है, आज अर्जुन हमलोगों को अवश्य जीत लेंगे। उन्होंने शिवजी को प्रसन्न कर पाशुपत अस्त्र प्राप्त किया है तथा इन्द्रलोक से अनेकों दिव्यास्त्रों का चलाना सीखकर आये हैं। हमारी सेना में कोई भी उनका मुकाबला करनेवाला नहीं दिखाई पड़ता है।

तब कर्ण ने रुष्ट होकर कहा—हे आचार्य! आप सदा हम लोगों की निन्दा और अर्जुन की प्रशंसा किया करते हैं। अर्जुन हमारा और दुर्योधन का सोलहवाँ भाग भी तो नहीं है। आज देखता हूँ कि वह हमारे सामने कैसे ठहरता है।

तब दुर्योधन ने प्रसन्न होकर कहा—हे कर्ण! यदि यह स्त्री वेष धारी अर्जुन ही हैं, तब तो हमारा मनोरथ सिद्ध हुआ समझो। लड़ने की कोई आवश्यकता ही नहीं। क्योंकि प्रतिज्ञा किये हुए तेरह वर्ष के पहले ही हम उन्हें पहचान लेंगे। इससे पाण्डवों को फिर बारह वर्ष वन में रहना पड़ेगा। और यदि कोई अन्य स्त्री वेष धारण करके आया है तो उसे मार कर यमराज का अतिथि बना देंगे।

इधर अर्जुन ने उत्तर से उसी शमी वृक्ष के पास चलने को कहा । वे बोले—

हे राजकुमार ! तुम्हारा धनुष बाण बहुत ही कमज़ोर है । युद्ध के समय यह हमारे बाहुबल को न सह सकेगा । इस वृक्ष पर पाण्डवों के अस्त्र शस्त्र रक्खे हैं, इस पर चढ़कर तुम उन्हें ले आओ । उन्हीं को लेकर हम युद्ध करेंगे ।

उत्तर ने कहा—हमने सुना है कि इस वृक्ष में एक मुर्दा बँधा हुआ है । हम राजकुमार होकर कैसे इस अपवित्र वस्तु का स्पर्श करेंगे ।

अर्जुन ने कहा—हे कुमार ! तुम मुर्दे का सन्देह न करो । वह कपड़े में लपेट कर रक्खे हुए अस्त्र शस्त्र हैं और देखने में मुर्दे के समान मालूम हो रहे हैं । हम जानते हैं कि तुम अच्छे कुल में उत्पन्न हुए हो । यदि कोई अपवित्र वस्तु होती, तो हम तुम्हें उसे छूने के लिये कभी न कहते ।

अर्जुन के कहने से उत्तर रथ से उतर कर शमी के वृक्ष पर चढ़ गया । वहाँ से हथियारों को उतार कर ज़मीन पर ले आया और उसके बन्धन को खोल डाला । पाण्डवों के अस्त्र शस्त्र, धनुष बाण आदि एक एक करके उसने बाहर निकला । उन बड़े बड़े अद्भुत सुनहले हथियारों को देख कर उत्तर बड़ा विस्मित हुआ और पूछने लगा—

हे बृहन्नला ! पाण्डवों के तो सब हथियार यहाँ रक्खे हुए हैं, पर वे लोग इस समय कहाँ हैं ? उनकी प्रसिद्ध स्त्री रत्न द्रौपदी भी बन में उनके साथ गई थी; उसका भी कुछ पता नहीं है ।

तब अर्जुन ने उत्तर से अपना तथा अन्य पाण्डवों का सारा हाल कह सुनाया । पाण्डवों का अपने यहाँ रहना सुनकर उत्तर चौंक पड़े । उन्होंने अर्जुन के निकट जाकर उनको प्रणाम किया और कहा—

हे वीर श्रेष्ठ ! आप के दर्शन से मैं कृतकृत्य हो गया अज्ञानता के कारण यदि मेरे मुँह से कोई अनुचित बात निकल गई हो तो उसे क्षमा कीजिये । अब मैं परम सुखी हूँ, मुझे कोई भय नहीं । बड़ी प्रसन्नता से आप के सारथि का काम करूँगा। आज्ञा दीजिये किस ओर रथ ले चलूँ ?

अर्जुन ने कहा—हे राजकुमार ! हम तुम पर बहुत प्रसन्न हैं । हम अकेले सारी सेना को मार भगावेंगे । तुम किसी प्रकार की चिन्ता न करो । निर्भय होकर तुम शत्रुओं के बीच में रथ ले चलो । हमने अकेले ही पहले भी बहुत युद्ध किये हैं । अब तो भगवान् शङ्कर की कृपा से मुझे कितने ही दिव्यास्त्र प्राप्त हो गये हैं । इसलिये विजय में कोई सन्देह नहीं । मेरे अस्त्र शस्त्र लाकर मेरे पास रख दो ।

यह कह अर्जुन ने स्त्रियों का वेश बदल डाला और पास में रक्खे हुए कवच पहन कर सफ़ेद वस्त्र से बालों को ढँक लिया । फिर दिव्यास्त्रों का आवाहन कर सारे शस्त्रास्त्र और गाण्डीव धनुष लेकर भयङ्कर धनुषटङ्कार और शंखध्वनि करते हुए वे कौरवों की ओर चले ।

यह देख कर द्रोणाचार्य बोले—हे कौरव गण ! देखो, इस के रथ की गति से पृथ्वी काँप रही है । गाण्डीव धनुष के टङ्कार से दिशाएँ भर गई हैं । सूर्य के समान इनके प्रकाश से हमारे दल के सब वीरों की श्री हत सी हो गई है । सब के चहरे पीले पड़ गये हैं । अतएव अब इनके अर्जुन होने में कोई सन्देह नहीं । इससे गायों को यहाँ से हटाकर शीघ्र युद्ध के लिये तैयार हो जाना चाहिये नहीं तो बचना कठिन है ।

दुर्योधन ने भी कुछ भय भीत होकर कहा—इस बात का अच्छी तरह निश्चय कर लेना चाहिये कि पाण्डवों के प्रतिज्ञानुसार तेरह वर्ष बीत गये या नहीं । लोग समझते थे कि अभी कुछ

दिन बाकी हैं। पर हमें अब इसमें सन्देह होता है। अपने मतलब की बात सोचते समय लोगों का भ्रम में पड़ जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं। पितामह भीष्म हिसाब लगा कर इस बात को ठीक ठीक जान सकते हैं। अस्तु, जो कुछ हो, डरने की कोई बात नहीं। हमने तो प्रतिज्ञा कर ली है कि यह आदमी चाहे कोई मत्स्यवीर हो, चाहे विराटराज हो, या अर्जुन ही क्यों न हो, हम इससे युद्ध अवश्य करेंगे। आचार्य द्रोण अपने शिष्य अर्जुन का बहुत प्यार करते हैं, इससे उनकी शक्ति को बढ़ाकर बताते हैं, जिससे हम लोग डर जायँ। किन्तु हम सब को सुनाकर कहते हैं कि चाहे पैदल हो, चाहे सवार हो, जो कोई इस युद्ध से भागेगा, वह हमारे हाथ से मारा जायगा। यदि स्वयं इन्द्र अथवा यम गायें लौटाने आवें तो भी कोई आदमी बिना लड़े हस्तिनापुर न लौट सकेगा। महारथी लोग इस समय क्यों रथों पर घबराये हुए से बैठे हैं? उनलोगों को शीघ्र इस बात का निश्चय करना चाहिये कि किस प्रकार युद्ध करना होगा।

कर्ण ने कहा—बड़े आश्चर्य की बात है कि हमारे सारे धनुर्धारी वीर गण डर गये हैं। जान पड़ता है कि वे लड़ना नहीं चाहते। यह मनुष्य चाहे मत्स्यराज हो, चाहे अर्जुन हो, इन्होंने कौनसा काम किया है, जिससे सबलोग भयभीत हो गये हैं? आज हम रण भूमि में अर्जुन को मार कर दुर्योधन के सामने अपनी प्रतिज्ञा पूरी करेंगे। आचार्य द्रोण को आप यहाँ से हटा दीजिये, तब जो उचित समझ पड़े वह कीजिये।

दुर्योधन और कर्ण की बात सब को अप्रिय मालूम हुई। द्रोणाचार्य भविष्य को अन्धकार-मय समझ कर चुप रह गये। तब कृपाचार्य ने कहा—

हे कर्ण! तुम बड़े क्रूरबुद्धि हो, अनुचित युद्ध करने की सलाह देना तुम खूब जानते हो। परन्तु राज्य का हित किस बात से होगा, इसका ज्ञान तुमको बिलकुल नहीं है। देश और काल का बिचार कर युद्ध करने से ही विजय मिलती है और प्रचण्ड से प्रचण्ड शत्रु का घमण्ड भी चूर हो सकता है। इससे विपरीत आचरण करने से पराजित होना पड़ता है। हमारी राय तो यह है कि अर्जुन से इस दशा में युद्ध करना किसी प्रकार हमारे लिये कल्याणकारी नहीं हो सकता। इस वीरश्रेष्ठ ने अकेले ही कुरुदेश की रक्षा की है और खाण्डव वन में अग्नि को तृप्त किया है। इसके अतिरिक्त पाँच वर्ष घोर तपस्या करके भगवान् शङ्कर को प्रसन्न कर उनसे पाशुपतास्त्र प्राप्त किया है और देवराज से भी अनेक दिव्यास्त्रों को लिया है। अकेले ही इन्होंने अनेक युद्धों में अनेक वीरों को परास्त किया है। हे कर्ण! तुमने कब और कौन सा बड़ा काम अकेले किया है, जो अर्जुन का मुकाबला करने का साहस करते हो? व्यर्थ घमण्ड मत दिखाओ। तुम जलती हुई आग में प्रवेश करने का मिथ्या प्रयास मत करो। आओ, दानवों की तरह व्यूह बाँधकर हम लोग इन्द्र के समान अर्जुन से युद्ध करने को तैयार हो जाँय। और दूसरा विचार करना मिथ्या है।

अश्वत्थामा ने कहा—हे कर्ण! अभीतक सम्पूर्ण गायें हमारे अधिकार में नहीं हुईं और न तो हमने मत्स्यराज की सीमा का उल्लंघन ही कर पाया है। फिर इतना जोश किस पुरुषार्थ पर प्रगट कर रहे हो? वीर लोग अपने मुँह अपनी बड़ाई नहीं किया करते। जुआ खेल कर कपट से तुमने पाण्डवों को जीत लिया, इस नीचकर्म के कारण तुम्हें लज्जा नहीं आती? सभा के बीच में द्रौपदी का अपमान कर तुमलोगों ने भारी पाप का बोझ अपने सिर लादलिया है। भला किसी युद्ध का नाम तो लो, जिसमें तुमने अर्जुन को जीत लिया है?

बाद बिवाद बढ़ता देख कर भीष्मपितामह बोले—कृपाचार्य और अश्वत्थामा का कहना बहुत

यथार्थ है परन्तु उन लोगों ने कर्ण का अभिप्राय नहीं समझा, इसीसे रुष्ट हो गये हैं। क्षत्रियों का युद्ध करना धर्म है, इसलिये वीरों को उत्तेजित करने के विचार से कर्ण ने कुछ कड़े शब्दों के व्यवहार किया है। पर दुर्योधन का आचार्य पर दोषारोपण करना अनुचित है। अस्तु देश काल का विचार कर हमें युद्ध के लिये तैयार हो जाना चाहिये। सब को उचित है कि एक दूसरे को क्षमाकर अब आगे का काम देखें। हे दुर्योधन! हमारी राय सुनो। भरतवंश के आचार्य द्रोण से बढ़कर हमारा नेता होने के योग्य और कोई नहीं है। हे आचार्य पुत्र! आप भी क्षमा कर दें, क्योंकि यह समय आपस के विवाद का नहीं है। सब लोग मिलकर बलवान् अर्जुन से युद्ध करने को तैयार हो जाइये।

अश्वत्थामा ने कहा—हे कुरुवीर! आप मुझ से इस प्रकार की बातें न कहें। मैं स्वयं ऐसे समय में विवाद करना पसन्द नहीं करता। मेरे पिता ने तो एक उदार योद्धा की तरह शत्रु के गुणों का वर्णन मात्र किया था। शिष्य होने के कारण उन्होंने अर्जुन के प्रति कोई पक्षपात नहीं दिखलाया था।

दुर्योधन ने आचार्य द्रोण से कहा—हे आचार्य! हमारे अपराध क्षमा कीजिये। आपकी प्रसन्नता से ही हमारा कल्याण होगा।

आचार्य द्रोण ने कहा—हम महात्मा भीष्म की बातों से ही प्रसन्न हो गये हैं। अब जो उचित कार्य हो उसे आरम्भ करो। फिर उन्होंने भीष्म से कहा—

हे भीष्म! अब ऐसा उपाय करना चाहिये, जिससे दुर्योधन की रक्षा हो। बनवास से लौटकर क्रोध से भरा हुआ अर्जुन आ रहा है, वह बिना गौओं को छुड़ाये शान्त न होगा। अब आप हिसाब लगा कर बतावें कि पाण्डवों के बनबास के तेरह वर्ष पूरे हो गये कि नहीं।

कुछ देर सोचकर भीष्म बोले—ज्योतिष शास्त्रानुसार वर्ष पाँच प्रकार के माने गये हैं। नक्षत्रों की गति में अन्तर पड़ने के कारण प्रतिवर्ष कुछ दिन बच रहते हैं। फल यह होता है कि प्रति पाँचवें वर्ष दो मास बढ़ जाते हैं। इस गणना से तेरह वर्ष के ऊपर कई महीने बीत चुके हैं। अन्यमत से हिसाब लगाने पर कुछ दिन बाकी बचते हैं। परन्तु पूर्वोक्त गणना के अनुसार पाण्डवों के निश्चय ही तेरह वर्ष बीत चुके। यही नहीं, किन्तु पाँच महीने छः दिन अधिक हो गये। इसी कारण आज अर्जुन निस्सन्देह होकर युद्ध भूमि में आये हैं वे ज्योतिष के भी अच्छे ज्ञाता हैं फिर वे धर्म विरुद्ध आचरण कभी कर नहीं सकते इसका हमें पूरा विश्वास है। अब सावधानी के साथ युद्ध करने के अतिरिक्त हमारे लिये दूसरा उपाय नहीं है। अतएव क्षत्रिय धर्म के अनुसार, युद्ध करना चाहिये। यह तो हमको दिखाई पड़ रहा है कि संग्राम में कौरवों को सिद्धि न मिलेगी, क्योंकि महावीर धनञ्जय बड़े क्रोध से भरा हुआ आ रहा है। परन्तु इसकी चिन्ता करना व्यर्थ है। युद्ध में एक की जीत और एक की हार होती ही है। अब एक काम करना चाहिये। यह सारी सेना चार भागों में बाँट दी जाय। एक भाग के साथ दुर्योधन हस्तिनापुर लौट जाँय। दूसरा भाग गायों को लेकर जाय। शेष आधे भाग से हम लोग अर्जुन के साथ युद्ध करें। द्रोण, कर्ण, कृप को लेकर हम अर्जुन का मुकाबला करेंगे। यदि इन्द्र स्वयं उनकी सहायता के लिये आवेंगे, तो भी कोई चिन्ता नहीं।

पितामह की बात सबको बहुत रुची। दुर्योधन एक भाग सेना लेकर हस्तिनापुर की ओर चला। गाएँ भी एक सेना के साथ रवाना करदी गईं। मुख्य सेनानायकों के साथ भीष्म व्यूहरचना कर युद्ध के लिए तैयार हो गये फिर उन्होंने कहा—

द्रोणाचार्य सेना के बीच में रहें । अश्वत्थामा बाँई ओर और कृपाचार्य दाहिनी ओर से रक्षा करें । कर्ण सुसज्जित होकर अग्र भाग में रहें मैं सेना की रक्षा करता हुआ पीछे रहूँगा ।

पूर्वोक्त क्रम से सेना सजकर खड़ी हो गई । इतने में रथ के गम्भीर घोष के साथ आते हुए अर्जुन दिखाई पड़े कर्ण आदि को उनकी ध्वजा फहराती हुई दिखाई पड़ने लगी अर्जुन के गाण्डीव धनुष के टङ्कार को सुनकर द्रोण ने कहा—

वह देखो कपि चिन्हित अर्जुन की ध्वजा दिखाई पड़ती है । धनुष को खींचता हुआ वीर चला आ रहा है । उसके धनुष्टङ्कार से दिशाएँ भर गई हैं । यह देखो, दो बाण मेरे चरणों पर आगिरे और दो बाण मेरे कानों का छूते हुए निकल गये । आज बहुतदिनों पर मैंने अपने प्रिय शिष्य की शोभा को देखा है । उसने बाणों से ही मुझे प्रणाम कर मेरे कुशल पूछे हैं ।

अर्जुन ने सेना के निकट पहुँचकर राजकुमार उत्तर से कहा—हे राज पुत्र ! रथ को सेना के समीप ले चलो, जिससे मैं कुरुकुलाधम नीच दुर्योधन को देखूँ कि वह कहाँ है ? मुझे अन्य कौरवों से लड़ने की अभिलाषा नहीं है ? उसी के पराजित होने पर ये लोग हार स्वीकार कर लेंगे। हैं ! वह तो सेना में कहीं दिखाई ही नहीं पड़ता है गौओं को लेकर दुर्योधन भागा जा रहा है। तुम जल्दी से उसी ओर रथ बढ़ाओ ।

यह सुनकर उत्तर ने उसी ओर रथ को फेरा, जिधर दुर्योधन गौओं को लिये हुए जा रहे थे। भीष्म आदि कौरव वीर अर्जुन के अभिप्राय को समझ गये । इससे उनको रोकने के लिये दौड़े । अर्जुन ने अपने बाणों की वर्षा से सम्पूर्ण सैनिकोंको बिकल कर दिया । तब बड़े ज़ोर से उन्होंने शंखध्वनि की, इससे सारी गाएँ भाग कर नगर की ओर चलीं । गौओं को छुड़ा कर वे फिर दुर्योधन की ओर बढ़े । उन्होंने उत्तर से कहा—

हे कुमार ! घोड़ों को बेग से हाँको और इस मार्ग से चलो, जिससे हम शीघ्र सेना के बीच में पहुँच जायँ वह देखो मतवाले हाथी की तरह कर्ण मुझ से युद्ध करने के लिये लालायित हो रहा है जल्द हमें उससे भिड़ादो ।

उत्तर ने वेग से रथ हाँक कर सेना के बीच में पहुँचा दिया । कर्ण अपने सहायकों के साथ उनसे घोर युद्ध करने लगा । अर्जुन ने क्रुद्ध होकर विकर्ण की ध्वजा काट डाली और उसे रथ से गिरा दिया । वह भयभीत होकर भाग गया । फिर पाँच बाणों से शत्रुञ्जय को मार डाला । इसके बाद भङ्कर बाण वर्षा कर उन्होंने अनेकों सैनिकों को धराशायी कर दिया । फिर अधिरथ के पुत्र कर्ण के भाई को मार डाला । भाई को मरा देख कर्ण बड़ा क्रुद्ध हुआ । वह अर्जुन के सामने आकर घोर युद्ध करने लगा । सब कौरव वीर कर्ण-अर्जुन के भयङ्कर युद्ध को देख रहे थे । कर्ण ने पहले अर्जुन के चारों घोड़े और सारथि को घायल कर दिया यह देख कर कौरव लोग बड़े प्रसन्न हुए और शंख भेरी आदि बजा कर कर्ण की प्रशंसा की । अपने बाणों को व्यर्थ होता हुआ देख अर्जुन क्रोध से जल उठे । वे सोकर जागे हुए सिंह के समान गर्जकर भयङ्कर बाणों की वर्षा करने लगे । उन्होंने असंख्य बाणों की वर्षा कर कर्ण को विकल कर दिया । तीखे बाणों से कर्ण के मस्तक भुजाएँ और हृदय को छेद डाला । बाणों से विद्ध होकर वह मूर्च्छित हो गया और युद्ध भूमि छोड़ कर भागा ।

कर्ण के भाग जाने पर दुर्योधन से न रहा गया । वे अपनी सेना लेकर अर्जुन पर आक्रमण करने के लिये युद्ध के मैदान की ओर लौटे । शत्रु की सेना से अपने को घिरा हुआ देख अर्जुन ने पहले कृपाचार्य पर आक्रमण करने की इच्छा की । इसलिये उन्होंने उत्तर को उधर ही चलने की आज्ञा दी ।

कृप के सामने पहुँच कर अर्जुन ने अपना शंख बजाया। उसके प्रत्युत्तर में कृपाचार्य ने भी शंख बजा कर धनुष्टङ्कार किया। फिर बाण चलने लगे। कृप ने अर्जुन के बाणों को बीच में ही काट कर उन्हें दस बाण मार कर घायल कर दिया। तब अर्जुन ने पहले ही की तरह क्रोधित होकर उनके घोड़ों को मार गिराया इससे कृपाचार्य भी पृथ्वी पर गिर पड़े। वे क्रोध करके उठे और तीखे दश बाण अर्जुन पर चलाने के लिये धनुष पर रक्खे। इतने में अर्जुन ने उनके धनुष को काट कर गिरा दिया और उनका कवच भी काट डाला, तब उन्होंने अर्जुन पर शक्ति फेंकने के लिये उठाया उसे भी अर्जुन ने काट कर गिरा दिया। इसके बाद कृपाचार्य दूसरे रथ पर बैठकर युद्ध करने लगे अर्जुन ने फिर उन का धनुष काट कर घोड़े और सारथि को मार गिराया। कृप की विपत्ति देख कर अन्य वीरों ने आकर उन्हें वहाँ से हटा दिया।

द्रोण कृपाचार्य की पराजय देख कर बहुत क्रुद्ध हुए और उन्होंने अपना रथ अर्जुन की ओर बढ़ाया। यह देख कर अर्जुन ने कुमार उत्तर से उसी ओर रथ ले चलने को कहा। बराबर बलवाले गुरु शिष्य का मुकाबला देखने के लिये सबलोग उत्सुक हुए और सेना में बड़े ज़ोर से शङ्खध्वनि होने लगी। गुरु को देखकर अर्जुन ने प्रसन्नता पूर्वक उन्हें प्रणाम किया और नम्रता से बोले—

हे आचार्य! वनवास करा कर हमें बड़े बड़े कष्ट दिये गये हैं। इसलिये अब हमारी गिनती कौरवों के शत्रुओं में है। इससे आप हम पर रुष्ट न हूजियेगा। यदि आप पहले प्रहार न करेंगे तो हम युद्ध न कर सकेंगे। इसलिये पहले आप ही बाण चलाइये। अर्जुन की इच्छानुसार द्रोण ने पहले बाण चलाया। अर्जुन ने रास्ते में ही उसके टुकड़े कर दिये। इस प्रकार अर्जुन और द्रोण का युद्ध आरम्भ हुआ। दोनों ही महारथी और दिव्यास्त्र के चलानेवाले थे। सब लोग विस्मित होकर उनके अद्भुतयुद्ध को देखने लगे।

कौरवों ने कहा—अर्जुन को छोड़कर आचार्य की बराबरी करनेवाला दूसरा कोई न था। क्षत्रियधर्म कैसा भयानक है कि शिष्य गुरु के साथ युद्ध करने को बाध्य हुआ है।

दोनों वीर सामने आकर एक दूसरे पर बाण चलाने और घायल करने लगे। अर्जुन का हस्तलाघव उनका लक्ष्यभेदकौशल और बहुत दूर से बाण मारने की योग्यता देखकर द्रोणाचार्य बहुत विस्मित हुए। धीरे धीरे क्रोध में आकर अर्जुन दोनों हाथों से इतनी तेज़ी से बाण बरसाने लगे कि वे कब बाण उठाते हैं और कब फेंकते हैं यह कोई भी न देख सकता था। उन्होंने बाणों से आचार्य के रथ को ढाँक दिया। यह देखकर कौरव सेना में हाहाकार मच गया। पिता को इस दशा में देख अश्वत्थामा दौड़े हुए आये। उन्होंने हृदय में अर्जुन की सराहना करके उनकी ओर रथ को फेरा और क्रोध कर जलवृष्टि के समान बाण बरसाने लगे अर्जुन भी आचार्य को छोड़ कर आचार्यपुत्र के सामने हुए। इसी बीच मौक़ा पाकर द्रोणाचार्य अपने रथ के साथ वहाँ से हट गये।

इन दोनों वीरोंने इतने बाण बरसाये कि चारों ओर अन्धेरा हो गया। अश्वत्थामा ने अवसर पाकर धारदार बाण से अर्जुन के गाण्डीव धनुष की डोरी काट डाली। यह देखकर सब लोग अश्वत्थामा को धन्य धन्य कहने लगे। अर्जुन ने हँसकर तुरन्त ही गाण्डीव पर दूसरी प्रत्यञ्चा चढ़ादी। दोनों वीरों में लोमहर्षणयुद्ध होने लगा। यह देख कर सब कौरव वीर अचम्भित हो गये। महावीर अर्जुन विषधर सर्प के समान क्रुद्ध होकर बाण बरसाते थे। इधर अश्वत्थामा का तरकस बाणों के चुक जाने से खाली हो गया।

इतने में कुछ विश्राम कर कर्ण फिर युद्ध भूमि में आगया उसे देखकर अर्जुन का क्रोध और उबल पड़ा अश्वत्थामा को उन्होंने छोड़ दिया और कर्ण के सामने आकर बोले—

हे कर्ण! तुमने कौरवों की सभा में बड़े घमण्ड के साथ कहा था कि हमारा मुक़ाबला करनेवाला संसार में दूसरा नहीं है, अब वह अवसर आ गया है। सभा में द्रौपदी का अपमान तुम ने किया था, आज हम उसका फल तुमको चखादेंगे। उस समय धर्मपाश में बँध जाने के कारण हमने बारह वर्ष तक वनवास के क्लेश को उठाया और तुम्हारे दुष्कर्म तथा कठोर वचनों को सहन किया। आज तुम्हें उन सब का बदला मिल जायगा, रे अधिरथ तनय! हम आज तुझे बतादेंगे कि धर्म पर पदाघात करने का क्या परिणाम होता है।

कर्ण ने कहा—हे अर्जुन! व्यर्थ घमण्ड भरी बातें करने से कोई लाभ नहीं है। जो कुछ तुम कहते हो, उसे करके दिखाओ। उस समय शक्तिहीन होने के कारण जिस क्रोध को तुम अभी तक रोके रहे अब इतने दिनों बाद शक्तिशाली होकर उसे प्रगट कर दो। पहले यह तो बतलाओ कि प्रतिज्ञा के अनुसार तुम्हारे वनवास के दिन पूरे हो गये? अभी तो वही पूरा नहीं हुआ, फिर क्यों इतना उछल कूद मचाये हो तुम्हें लड़ने की बड़ी चाह है मैं उसे भी पूरी कर दूँगा, घबराओ नहीं।

अर्जुन ने कहा—हे सूतपुत्र! तुम इसी युद्धभूमि से अभी भाग गये थे, तिसपर भी तुम्हारी शेख़ी न गई। तुम्हारे समान निर्लज्ज संसार में खोजने पर भी न मिल सकेगा। तेरे भाई को जब हमने मार डाला तब तेरी वीरता कहाँ चली गई थी? इस प्रकार कह कर अर्जुन ने कवच को भेद देनेवाले बाणों की वर्षा की। चारों ओर उन्होंने बाणों के जाल बाँध दिये और तीखे बाण मार कर कर्ण के तरकस की डोरी काट डाली। तब कर्ण ने दूसरे तरकस से बाण लेकर अर्जुन के हाथ पर मारा। इससे थोड़ी देर के लिये उनकी मुट्ठी ढीली पड़ गई फिर अत्यन्त क्रुद्ध होकर उन्होंने कर्ण के धनुष को काट डाला। इसके बाद कर्ण के फेंके हुए अस्त्रों को भी व्यर्थ कर दिया। जब कर्ण के सारे शस्त्रास्त्र समाप्त हो गये, तब सैनिक सहायता पहुँचने के पूर्व ही अर्जुन ने कर्ण के घोड़ों का नाश करके उसकी छाती में एक तेज बाण मारा। इससे कर्ण व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा और मूर्च्छित हो गया। फिर चेतना होने पर वह उठ कर उत्तर दिशा की ओर भागा।

इतने में दुर्योधन अपने दलबल सहित आ पहुँचे। उन्होंने अकेले अर्जुन को जीतना असम्भव जान कर सबके साथ उन पर आक्रमण किया। अर्जुन ने सेना सहित दुर्योधनको सहजही में मार भगाया। तब वे अपना रथ लेकर पितामह के सामने आये।

रणधीर भीष्म अर्जुन को आते देख आगे बढ़े बलवान् अर्जुन ने भीष्म की ध्वजा काट डाली। यह देख कर विकर्ण, दुःसह, विविंशति और दुःशासन, इन चारों धृतराष्ट्र के पुत्रों ने एक साथ ही आक्रमण किया। दुःशासन ने कुमारउत्तर पर भाला फेंक कर अर्जुन की छाती में बाण मारा। अर्जुन ने क्रोधकर उसके धनुष को काट डाला और पाँच बाण हृदय में मारा। इससे विकल होकर वह युद्ध-भूमि से भाग गया। इसी प्रकार क्रम क्रम से अन्य तीनों कौरवों को भी अर्जुन ने भगाया। फिर भीष्म पितामह से घनघोर युद्ध आरम्भ हुआ। दोनों ओर से प्रलयकाल के समान दिव्यास्त्र चलने लगे। पर बड़ी देर तक युद्ध करने पर भी कोई किसी को पीड़ित न कर सका। कुछ देर में बाणों से युद्ध होने लगा। अर्जुन का युद्धकौशल और हस्तलाघव देख कर सब लोग विस्मित हो गये। अर्जुन ने भीष्म के धनुष को काट कर उन्हें बिना अवसर दिये ही उनकी छाती में बाण मारा। महात्मा भीष्म ने व्यथित होकर अपने रथ के डण्डे को थाम लिया और बड़ी देर तक अचेत रहे। उनका सारथि उनको मूर्च्छित देख कर रथ को संग्रामभूमि से बाहर भगा ले गया।

इसके बाद पहले हारे हुए कौरव वीर लोग बार बार युद्ध के मैदान में लौट कर कभी अलग

अलग और कभी धर्मयुद्ध के विरुद्ध दल बाँध कर अर्जुन पर आक्रमण करने लगे। तब अर्जुन ने गाण्डीव पर एक ऐसा सम्मोहन बाण चढ़ाकर छोड़ा कि सारे कौरव वीर मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े।

सब को मोहित देख कर अर्जुन को उत्तरा की बात का स्मरण हो आया। उन्होंने कुमार उत्तर से कहा—

हे कुमार! तुम निर्भय होकर इन लोगों के पास चले जाओ और वस्त्र छीनलाओ। ये लोग इस समय मूर्च्छित होने के कारण तुम्हारा कुछ न कर सकेंगे। मैं राजकुमारी से कौरवों का वस्त्र छीन लाने की प्रतिज्ञा कर चुका हूँ। भीष्मपितामह इस अस्त्र को तोड़ देने की शक्ति रखते हैं, इसलिये उनके घोड़ों के बीच सावधानी से जाना। तब उत्तर अचेत कौरवों के बीच जाकर द्रोण और कृप के सफ़ेद वस्त्र, कर्ण के पीले कपड़े, अश्वत्थामा और दुर्योधन के नीले कपड़े लेकर फिर अपने रथ पर जा चढ़े और घोड़ों की रास थाम गायों के पीछे नगर की ओर चले। इतने में कौरवों को कुछ चेतना आने लगी। दुर्योधन ने देखा, अर्जुन चुपचाप गायें लिये चले जा रहे हैं। इससे वे बहुत व्याकुल होकर बोले—

हे वीर गण! किस कारण तुम लोगों ने अर्जुन को छोड़ दिया? इसको घेर लो और युद्ध करके ऐसा घायल करो कि यह लौट कर घर न जा सके।

तब भीष्म ने हँस कर कहा—हे दुर्योधन! इस समय तुम्हारी बुद्धि कहाँ चली गई है? जब तुम लोग धनुष बाण छोड़ कर बेहोश पड़े हुए थे; तब वीर अर्जुन ने कोई निर्दयता का व्यवहार नहीं किया। चाहे तीनों लोक का राज्य क्यों न मिल जाय, अर्जुन धर्मविरुद्ध आचरण नहीं कर सकते। इसी से उन्होंने तुम लोगों के साथ कोई निर्दयता का व्यवहार नहीं किया। अब इस युद्ध में तुम लोगों के प्राण बच गये हैं, कुशल इसी में है कि चुपचाप हस्तिनापुर को लौट चलो। व्यर्थ की डींग न हाँको। अर्जुन को गौओं के साथ विराटपुर में जाने दो।

पितामह की नीतियुक्त बात सुनकर दुर्योधन लम्बी साँस लेकर चुप रह गये, फिर कुछ न बोल सके। सब कौरव वीरों के साथ दुर्योधन ने हस्तिनापुर की ओर प्रस्थान किया।

विराट नगर में लौटते समय अर्जुन ने उत्तर से कहा—

हे राजकुमार! पाण्डवलोग तुम्हारे पिता के आश्रय में रहते हैं, यह बात तुमको छोड़कर और कोई नहीं जानता। परन्तु उचित समय आने के पूर्व ही इन बातों का प्रकाशित कर देना उत्तम नहीं। मैंने कौरवों पर विजय पायी, सारी सेना हार गई, तथा गौयें लूट कर नगर में आईं, इन बातों को अपने पिता विराट पर न प्रगट होने देना। इसे तुम अपना कर्म बतलाना और कहना कि हमने विजय कर गौयें लौटाईं।

उत्तर ने कहा—हे उदार अर्जुन! जिन जिन कर्मों को आपने किया है, उनकी शक्ति मुझ में तो है नहीं। तब तक आप के कर्मों को छिपा रक्खूँगा, जब तक पिताजी को भेद न मालूम हो जायगा।

तब शस्त्राघातों से व्यथित अर्जुन कपिध्वज रथ को त्याग कर सिंह चिन्हित रथ पर जा विराजे। शमी वृक्ष पर अपने सब अस्त्रों को पहले की तरह रख बृहन्नला वेष बना, उत्तरकुमार के सारथि बन गये। बृहन्नला ने उत्तरकुमार के साथ नगर में प्रवेश किया।

शोक में मग्न होकर दुर्योधन हस्तिनापुर में पहुँच गये। इधर राजपुत्र उत्तर ने गौओं के साथ नगर में प्रवेश किया।

नगर के समीप पहुँच कर अर्जुन ने उत्तर से कहा—अब ग्वालों को आज्ञा दीजिये कि वे नगर में जाकर आप के विजय का समाचार सुनावें । हम मध्यान्होत्तर आवेंगे ।

इधर राजाविराट सुशर्मा को जीत कर प्रसन्नतापूर्वक अपनी राजधानी में लौटे और हर्ष पूर्वक रनिवास में गये । वहाँ उत्तर के विषय में प्रश्न करने पर मालूम हुआ, कि कौरव लोग हस्तिनापुर से चढ़ आये थे, उन्होंने गाओं का हरण किया । इसलिये कुमार उत्तर उनसे युद्ध करने वृहन्नला को सारथि बना कर गये हैं । यह सुन कर वे बहुत चिन्तित हुए । उन्होंने अपने सेनापति को आज्ञा दी कि सारी सेना लेकर कुमार की सहायता के लिये जाओ । फिर उन्होंने कहा—उनके कुशल का समाचार मुझे तुरन्त भिजवाना ।

फिर राजाविराट सभा में बैठ कर मन्त्रियों से कहने लगे—हे सभ्यगण ! वृहन्नला के साथ कुमार युद्ध करने गये हैं, कौरवों की ओर बड़े बड़े महारथी हैं। इसलिये कुमार की कुशलता में हमें सन्देह हो रहा है।

राजा की चिन्ता सुन कर कङ्क (धर्मराज) ने कहा—हे महाराज ! यदि वृहन्नला सारथि है, तो अवश्य कुमार जीत कर आवेंगे । आप किसी प्रकार की चिन्ता न करें, गौयें लेकर कौरव लोग हस्तिनापुर न जा सकेंगे ।

इस प्रकार की बातें हो ही रही थीं कि इतने में दूतों ने आकर कुमार उत्तर के विजयी होने का समाचार सुनाया, दूतों ने कहा—

महारज ! कुमार उत्तर जीत गये । कौरव लोग युद्धभूमि से भाग गये । गौयें लौट कर नगर में आ गईं ।

कङ्क ने कहा—महाराज ! वृहन्नला ऐसा ही साहसी है । वह जिसका सारथि हो, उसकी जीत निश्चित है।

यह समाचार सुन कर राजाविराट परम प्रसन्न हुए । उन्होंने मन्त्रियों से कहा—

दूतों को वस्त्र और उत्तम मणियाँ इनाम में दी जायँ । नगर में चारों प्रकार के बाजे बजें । कुमारी उत्तरा सहेलियों के साथ उत्तर की आरती के लिये आगे से जावें। सैनिक लोग शस्त्रों से सज कर बाजे गाजे के साथ अगवानी करें ।

राजा की आज्ञा सुन कर नगर में मङ्गलाचार होने लगा । राजाविराट ने सैरन्ध्री से कहा—हे सैरन्ध्री ! पासे लाओ । हम कङ्क के साथ जुआ खेलेंगे ।

कङ्क ने कहा—जो मनुष्य किसी प्रसन्नता से अथवा किसी कारण से मतवाला हो रहा हो, उसके साथ जुआ खेलना उचित नहीं है । इसलिये और कोई कार्य किया जाय ।

विराट ने कहा—हे कङ्क ! इस समय जुआ खेलने की हमारी बड़ी इच्छा है और कोई खेल हम नहीं खेलना चाहते । जुए में चाहे हमारा सर्वस्व चला जाय, पर हम दुखी नहीं होते, इसलिये तुम दबाव डाल मुझे मत रोको ।

कङ्क ने कहा—महाराज ! जुआ बड़े बड़े अनर्थों का मूल है । आपने सुना होगा, युधिष्ठिर जुआ खेलखेल कर कैसी विपत्ति में फँस गये । इसलिये मैं इसके दोषों को समझ कर आपको खेलने से रोकता हूँ । यदि आप की इच्छा ही है तो जुआ खेलकर अपनी मनोकामना पूरी कर लीजिये ।

जुआ आरम्भ होने के पूर्व विराट ने कहा—आज कैसे सौभाग्य की बात है । हमारे पुत्र ने कौरवों पर विजय प्राप्त कर ली ।

कङ्क ने कहा—महाराज ! वृहन्नला जिसका सारथि हो, उसकी जीत निश्चित है।

कङ्क की बात सुन कर विराट ने क्रोध से कहा—

तुम एक नचनियें की मेरे पुत्र की समता दे रहे हो ! क्या कहना चाहिये, क्या न कहना चाहिये, इसका ज्ञान तुमको नहीं है। फिर ऐसी बात कभी न करना। मित्र समझ कर इस बार तुम्हारे अपराध को मैं क्षमा करता हूँ।

कङ्क ने कहा— महाराज ! भीष्म, द्रोण, कृप, कर्ण, दुर्योधन आदि से देवता लोग भी युद्ध नहीं कर सकते। बृहन्नला के सारथि होने से ही कुमार उत्तर ने कौरवों पर विजय पाई है।

तब क्रोध से अधीर होकर विराट ने कहा—

हे कङ्क ! हमने तुमको बहुत मना किया, पर तुम चुप नहीं हो रहे हो। तुम्हें वृद्ध जानकर हमने अबतक क्षमा किया था। यदि तुम्हें अपने जीवन की अभिलाषा हो, तो फिर ऐसी बातें कभी न करना।

इस प्रकार धिक्कार कर विराट ने पासे फेंक कर युधिष्ठिर के मुँह पर मारा। वह उनकी नाक में लगा, जिससे रुधिर बह निकला। यह देख कर सैरन्ध्री सोने के लोटे में जल ले आई और उनका मुँह धुलवाने लगी उसने क्रोध भरी दृष्टि से राजा की ओर देखा।

उसी समय कुमारउत्तर राजभवन के दरवाज़े पर आया। द्वारपालों ने आकर राजा को ख़बर दी।

विराटराज ने बड़ी प्रसन्नता से कहा—बृहन्नला के साथ कुमार को जल्द भीतर ले आओ। मैं उनके देखने के लिये बड़ा उत्सुक हो रहा हूँ।

यह सुनकर कङ्क ने दूत को एकान्त में लेजा कर कहा—

देखो, ऐसा उपाय करना, जिसमें बृहन्नला कुछ देर में आवे। साथ में आकर यदि वह देख लेगा कि मेरी नाक से ख़ून गिरा है, तो अवश्य मन्त्रियों के सहित राजा विराट को मार डालेगा।

कुमार उत्तर सभा में आये। उन्होंने पिता के तथा कङ्क के चरण छुए। कुमार ने देखा कि कङ्क का मुँह ख़ून से लथपथ है। द्रौपदी उनकी सेवा में लगी है। उन्होंने आतुर होकर पिता से पूछा—हे पिता ! कङ्क को किसने मारा ? कौन इतना बड़ा साहस कर काल का ग्रास बनना चाहता है।

विराट ने कहा—हे पुत्र ! हमने इस कुटिल दुर्बुद्धि को मारा है। जब तुम्हारी जीत सुनकर हम प्रसन्न हुए और प्रशंसा करने लगे, तब इस ब्राह्मण ने रोकने पर भी न मान कर बार बार बृहन्नला की प्रशंसा की। तुम्हारा नाम एक बार भी इसने नहीं लिया।

उत्तर ने कहा—पिताजी ! आपने बड़ा अनर्थ कर डाला ? जल्द ब्राह्मण को प्रसन्न कीजिये। नहीं तो ब्रह्माग्नि में आप समूल नष्ट हो जायँगे।

पुत्र की बात सुनकर बिराट ने कङ्क से क्षमा माँगी। तब कङ्क ने कहा—

हे महाराज ! हम पहले से ही क्षमा कर चुके हैं। यदि हमारा रुधिर पृथ्वी पर गिर जाता, तो आप के लिये कुशल नहीं था।

इतने ही में बृहन्नला भी सभाभवन में आगये। युधिष्ठिर की नाक से ख़ून जाना बन्द हो चुका था। बृहन्नला ने सब को प्रणाम किया। विराट ने उनका स्वागत कर उनके सामने ही पुत्र की प्रशंसा की और उन्होंने कहा—

हे पुत्र ! आज तुमसे मत्स्यवंश पुत्रवान् हुआ है । जिसको सहस्त्रों योद्धा मिलकर नहीं जीत सकते, उस महाबली कर्ण को तुमने कैसे जीत लिया । मनुष्यलोक में जिसकी समता का दूसरा नहीं, वह भीष्म कैसे हार गये । सब शास्त्रों में निपुण, यादवों तथा कौरवों के गुरु आचार्यद्रोण की भयङ्कर मार तुम कैसे सह सके । वीर दुर्योधनादिक हार मान कर कैसे हस्तिनापुर लौट गये ? और तुम गायों को लौटा लाये । आज संसार में मैं अपने को धन्य समझता हूँ ।

उत्तर ने कहा—हे पिताजी ! कौरव वीरों को जीत लेने की सामर्थ्य हममें नहीं थी और न गौयें हमारे पराक्रम से लौट कर आई हैं । हम तो देखते ही डर कर भाग खड़े हुए थे, पर एक देवकुमार ने आकर हमें रोका और हमारे भय को दूरकर उसी ने कौरवों को परास्त किया । उसी ने महारथी कौरव वीरों को जीत कर उनके कपड़े भी छीन लिये । आज उसी देवकुमार के प्रताप से गौओं का उद्धार कर हम विजयी कहला रहे हैं ।

यह सुनकर विराट ने आश्चर्य के साथ कहा— हे पुत्र ! जिस महावीर देवकुमार ने कौरवों को जीतकर गौओं का उद्धार किया, वह कहाँ है ? हम उसको देखना चाहते हैं और उसकी पूजा किया चाहते हैं ।

उत्तर ने कहा—हे पिताजी ! इस अद्भुत काम को करके वह वहीं अन्तर्धान हो गये । दो तीन दिन में यहाँ फिर प्रगट होंगे ।

यह सुनकर भी राजाविराट पाण्डवों का अपने यहाँ छिपकर रहना न जान सके । उनकी आज्ञा से बृहन्नला अन्तःपुर में गये । उन्होंने जीतकर लाये हुए वस्त्र राजकुमारी उत्तरा को दिये । गुड़ियों के लिये उत्तम वस्त्र पाकर उत्तरा परम प्रसन्न हुई ।

इसके बाद युधिष्ठिर भाइयों के साथ कुमार उत्तर से सलाह करने लगे कि किस समय और किस प्रकार आगे का कार्य आरम्भ किया जाय ।

अनन्तर प्रतिज्ञानुसार वनवास की अवधि समाप्त हो जाने पर पाण्डवों ने राजा विराट पर अपने को प्रगट करने का समय निश्चित किया । पाँचवें दिन स्नान तथा नित्यकर्म से निपट कर सब लोगों ने उत्तम उत्तम वस्त्र और गहने पहने । फिर धर्मराज को आगे कर के शुभमुहूर्त्त में राजा विराट की सभा में गये । वहाँ धर्मराज को राजसिंहासन पर बिठाकर अन्य पाण्डव लोग उनके दोनों बगल बैठ गये । रानी द्रौपदी भी सैरन्ध्री का वेश त्यागकर वहाँ आ गई ।

अनन्तर राज्यकार्य देखने के लिये मन्त्रियों के साथ राजाविराट भी सभाभवन में आये । वहाँ अग्नि के समान तेजस्वी पाण्डवों को बैठे हुए देखकर वे सहमे और खड़े होकर कुछ देर तक सोचते रहे ।

फिर बोले—हे कङ्क ! हमने तुमको जुआ खेलने में चतुर समझ कर अपना सभासद बनाया था, पर आज तुम गहनों से सजकर राजासन पर क्यों बैठ गये हो ? क्या तुमने हमारी हँसी करने के इरादे से ऐसा काम किया है ?

विराट की बात सुनकर अर्जुन ने मधुर बचनों से कहा—हे विराटराज ! ये सत्यप्रतिज्ञ परम तेजस्वी, साक्षात् धर्म की प्रतिमूर्त्ति हैं । ये देवराज इन्द्र के बराबर बैठने के योग्य हैं । इनका यश सूर्य के समान प्रकाशित होकर चारों दिशाओं में व्याप्त हो रहा है । ये मनु के समान संसार की रक्षा करनेवाले, कुरुवंश के मुकुटमणि धर्मराज युधिष्ठिर हैं । इसलिये आप के सिंहासन पर बैठने के ये सर्वथा योग्य हैं ।

यह सुनकर राजाविराट बड़े अचम्भित हुए, उन्होंने कहा—

यदि यही धर्मराज युधिष्ठिर हैं तो इनके और भाईलोग तथा पतिव्रता द्रौपदी कहाँ हैं ?

अर्जुन ने कहा—वल्लभ नामधारी जो आप के रसोइये हैं, वे ही महाबलशाली भीम हैं। उन्होंने भाइयों के सहित कीचक का बध किया था। सपरिवार नीच कीचक के संहार करनेवाले गन्धर्व भीम यही हैं। आप की अश्वशाला के सरदार ये वीर नकुल हैं तथा गौओं की रक्षा करनेवाले रणधीर सहदेव यह विराजमान हैं। कमल के समान नेत्रवाली परम सुन्दरी कुरुपति की राजमहिषी पतिव्रता सैरन्ध्री ही द्रौपदी है। इसी के कारण कीचक का बध किया गया था। तीसरे पाण्डव अर्जुन हमी हैं। हे राजा! हमलोगों ने आप के राज्य में, गर्भ में रहती हुई सन्तान के समान साल भर तक सुख से रह कर अज्ञातबास का समय बिताया है।

जब अर्जुन ने विराट से सब भेद कह दिया, तब कुमार उत्तर इतने दिनों से रुकी हुई अपनी कृतज्ञता प्रकट करके बोले—

हे पिताजी! जिस प्रकार सिंह हिरनों के झुण्ड को मारता है, वैसे ही इन लम्बी भुजाओंवाले धनुर्धारियों में श्रेष्ठ अर्जुन ने शत्रुओं को मार गिराया था। जिस समय सारे रथों को तोड़कर लड़ाई के मैदान में ये निर्भय होकर फिरते थे, उस समय इन्होंने बड़े बड़े हाथियों को मारा था। इनके बाणों के लगते ही बड़े बड़े दन्ताड़े हाथी दाँतों को ज़मीन में गाड़कर मर जाते थे। इनके शंख की भयावनी ध्वनि सुनते ही हम भय से व्याकुल हो गये थे।

यह सुन कर विराटराज के हर्ष की सीमा न रही। वे अपने अपराधों की क्षमा माँगते हुए बोले—

हे धर्मराज! बड़े सौभाग्य की बात है, जो आप लोग बनबास और अज्ञातबास समाप्त करके प्रतिज्ञा से छूट गये दुरात्मा कौरवों को आप के अज्ञातबास की खबर न मिली यह बहुत अच्छा हुआ। इस समय हमारे राज्य में जितनी सम्पत्ति है, वह सब आपकी है। यदि आप आज्ञा दें, तो हम अपनी कन्या उत्तरा अर्जुन को समर्पित करदें।

कुमार उत्तर ने भी इन बातों का समर्थन किया।

इसके बाद राजाविराट धर्मराज के समीप जाकर बैठ गये। अर्जुन की इच्छा जानने के लिये युधिष्ठिर ने उनकी ओर देखा। उनका अभिप्राय समझ कर अर्जुन ने राजाविराट से कहा—

हे विराटराज! हम आप के साथ सम्बन्ध स्थापित कर प्रेमसूत्र को और भी दृढ़ बना देना चाहते हैं। किन्तु अन्तःपुर में हम राजकुमारी के गुरु के समान रहे हैं। वह भी हमारे साथ पिता के समान व्यवहार करती थी। इसलिये हम उसके साथ अपना सम्बन्ध नहीं कर सकते। ऐसा करने से वेद की मर्यादा नष्ट होगी और संसार में बड़ी अपकीर्त्ति होगी। हाँ, यदि आप उचित समझिये तो सुभद्रा के गर्भ से उत्पन्न हमारे पुत्र अभिमन्यु के साथ उत्तरा का विवाह कर दीजिये। हम उसे अपनी पुत्रबधू बनाकर बहुत प्रसन्न होंगे।

विराट ने बड़ी प्रसन्नता प्रगट करते हुए कहा—हे अर्जुन! आप उदार धर्म के जाननेवाले हैं। आपने उत्तरा के साथ अपना विवाह अस्वीकार कर उचित ही किया। अब बहुत जल्द अभिमन्यु के साथ उत्तरा के विवाह की तैयारी करनी चाहिये।

यह सुनकर धर्मराज ने अपनी स्वीकृति दे दी। चारों ओर विवाह के निमन्त्रण भेजे जाने लगे। सब से पहले श्रीकृष्ण के पास दूत भेजा गया। फिर मित्र राजाओं तथा पूज्य ब्राह्मणों को निम-

न्त्रण दिया गया। यह समाचार चारों ओर फैल गया कि पाण्डव लोग अज्ञातवास की अवधि समाप्त कर प्रगट हो गये। यह सुन कर उनके मित्र राजा लोग उनकी सहायता के लिये सेना लेकर झुण्ड के झुण्ड आये।

पहले युधिष्ठिर के मित्र काशिराज और राजा शैव्य एक एक अक्षौहिणी सेना लेकर आये। फिर राजाद्रुपद और धृष्टद्युम्न, शिखण्डी और द्रौपदी के पाचों पुत्रों के साथ एक अक्षौहिणी सेना लेकर उपस्थित हुए। राजा विराट ने स्वयं आकर उन लोगों का उचित सत्कार किया।

इसके बाद द्वारका से, कृष्ण, बलदेव, कृतवर्मा, युयुधान, सात्यकि, अक्रूर आदि यादव वीर अभिमन्यु को लेकर आये। उनके साथ पाण्डवों के आज्ञाकारी भृत्य इन्द्रसेन आदि भी रथ लेकर आये। पाण्डवों के लिये राजोचितधन और वस्त्रों की आवश्यकता समझ कर श्रीकृष्णजी सब चीज़ें अपने साथ ले आये और पाण्डवों को दीं।

इसके बाद बिधि के अनुसार विवाह का कार्य आरम्भ हुआ। तरह तरह के शंख, भेरी, ढोल आदि बाजे बजने लगे। विराटराज ने जेवनार के लिये तरह तरह के पकवान मांस और उत्तम मदिरा का प्रबन्ध किया। बड़े बड़े गवैये नर्त्तक और नर्त्तकी नृत्य गान करने लगे। मागध तथा बन्दीगणों ने स्तुतिपाठ किया और भाटों ने तरह तरह के प्रहसन कर आगत मेहमानों को प्रसन्न किया। शुभ मुहूर्त्त आने पर रानी सुदेष्णा आदि परम रूपवती स्त्रियाँ सजी हुई उत्तरा को लेकर विवाह मण्डप में आईं। ब्राह्मणों ने वेद मन्त्रों द्वारा उत्तरा का पाणिग्रहण अभिमन्यु से कराया। भगवान् कृष्णकी सहायता से विराट और युधिष्ठिर ने विवाह के सब कृत्य पूरे किये। राजा विराट ने दहेज में सात हज़ार अर्वीघोड़े दो हज़ार हाथी, तथा असंख्य धन रत्न और दास दासियाँ दिये। फिर अग्निहोत्र करके राजायुधिष्ठिर ने विवाह में आये हुए ब्राह्मणों को ख़ूब धन देकर सन्तुष्ट किया। इस महोत्सवसे राजाविराट का नगर अमरावती के समान सुशोभित हुआ।

इति।

उद्योगपर्व

पाण्डवों के विषय में मन्त्रणा

विवाह हो जाने पर राजाविराट की सभा में एक दिन सब मेहमान एकत्रित हुए। तरह तरह की बातें होने के बाद पाण्डवों के भविष्य कार्यक्रम पर विचार होने लगा। भगवान् श्रीकृष्ण की ओर देख कर सब चुप हो गये, क्योंकि उनसे बढ़कर पाण्डवों के हित की सलाह देनेवाला दूसरा कोई नहीं था। उन्होंने सबका रुख देख कर पाण्डवों की स्थिति की आलोचना करते हुए इस प्रकार कहा—

हे राजन्य वर्ग! आपलोगों को विदित ही है कि दुष्ट शकुनि ने युधिष्ठिर से छल करके उन्हें जुए में हराया और उनका राज्य तथा सम्पत्ति जीत कर उनसे बनबास की प्रतिज्ञा कराई। जिन महारथी वीरों को बल से जीतने में कोई भी समर्थ नहीं है, उन्हें तेरह वर्षतक भयङ्कर वनवास के कष्ट सहने पड़े। अब आप लोगों को इस बात का विचार करना चाहिये कि जिससे कौरव और पाण्डव दोनों का हित हो तथा धर्म की मर्यादा स्थिर रहे। अधर्म से चाहे देवताओं का भी राज्य मिल जाय, किन्तु धर्मराज युधिष्ठिर स्वप्न में भी उसकी अभिलाषा न करेंगे। यद्यपि धृतराष्ट्र के पुत्रों ने क्षत्रियधर्म के अनुसार इन लोगों को युद्ध में नहीं हराया है, किन्तु छल से इनका पैतृकराज्य छीन लिया है, तथापि ये लोग कौरवों के साथ कोई बुराई नहीं करना चाहते। ये लोग केवल अपने बाहुबल से जीते हुए साम्राज्य को ही माँगते हैं। आप लोगों को यह भी मालूम है कि धृतराष्ट्र के पुत्रों ने लड़कपन से ही किस प्रकार तरह तरह की निन्दनीय चालें चल कर इनके राज्य के छीनने की चेष्टा की है। पर ये लोग बराबर शान्त रहे और धर्मपथ का त्याग नहीं किया। अतएव दुर्योधन का लोभ, युधिष्ठिर की धर्मपरायणता और दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध ध्यान में रख कर आपलोग यह सम्मति दीजिये कि अब क्या करना चाहिये। मेरामत तो यह है कि आपलोगों को ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि दुर्योधन का नाश न हो और सारा काम बन जाय परन्तु दूसरे पक्ष का मत लिये बिना किसी कार्य का निश्चय कर लेना अच्छा नहीं है, इसलिये दूत भेजकर दुर्योधन से कहलाया जाय कि धर्मविहित पाण्डवों का आधा राज्य लौटा दो। कृष्ण की सामनीति युक्त ये बातें सब को बहुत पसन्द आईं। बलदेवजी भी बहुत प्रसन्न हुए और वे कृष्णजी की बातों का समर्थन करते हुए बोले—

हे नृपतिवृन्द! आपलोगों ने कृष्णजी की नीतियुक्त बातें सुन लीं। वे धर्म तथा लोकाचार दोनों से भरी हुई हैं। जैसी वे युधिष्ठिर को लाभदायक हैं, वैसी ही धृतराष्ट्र के पुत्रों के लिये भी। पाण्डव लोग आधा राज्य पाकर ही सन्तुष्ट हो जाँयगे, उन्हें दूसरे का हक़ मारकर सुखी होने की चाह नहीं है। इसलिये कौरवों को उचित है कि वे उसे दे दें और सब के साथ मिलजुल कर सुख से रहें। हमारी भी यही राय है कि इस समय एक चतुर दूत दुर्योधन के पास भेजा जाय। वह कौरवों की सभा में जाकर महाराज धृतराष्ट्र, महात्मा भीष्म, महामति द्रोणाचार्य आदि के सामने दुर्योधन से बड़ी नम्रता के साथ युधिष्ठिर का सन्देश कहे। इस समय सम्पूर्णराज्य दुर्योधन के अधिकार में है,

इसलिये उनसे कटुता का व्यवहार कर उन्हें क्रुद्ध करने की आवश्यकता नहीं है। युधिष्ठिर को जुए में आसक्त देखकर दुर्योधन इनके साथ खेले और ये अपना सर्वस्व हार गये। इसमें उन्होंने कौनसी अनीति की है? जुआ आरम्भ होने के पहले ही इनके हितैषियों ने शकुनि की धूर्त्तता समझ कर इनको रोकने की चेष्टाएँ कीं, पर ये उसकी ललकार पर उसी के साथ खेलने को राज़ी हो गये। और धीरेधीरे जुए में ऐसे डूब गये कि भले बुरे का ज्ञान न रह गया। एक नादान आदमी की तरह इन्होंने एक के बाद एक दाँव पर रखते गये और अन्त में सब कुछ हार गये। इसके लिये कोई भी कौरव दोषी नहीं ठहराया जा सकता। वे युद्ध के लिये क्रोधित न हो जाँय, तभी तक आप लोग धर्म के अनुसार आधा राज्य माँग सकते हैं। इसलिये मधुरभाषी चतुर दूत भेजा जाय, जो सामनीति के व्यवहार से अपना मतलब निकाल ले। युद्ध करके अर्थसिद्धि करना उत्तम नहीं माना गया है।

बलदेवजी की बात समाप्त भी न हो पाई थी, इतने में महावीर सात्यकि अत्यन्त क्रुद्ध होकर खड़े हुए और उनकी बातों को काटते हुए बोले—

जिसका जैसा अन्तःकरण होता है, वह वैसी ही बात भी करता है। पाप और पुण्य से भरी हुई बातों से ही हृदय की परीक्षा होती है। कायर, शूरवीर, नामर्द सभी ख़ान्दान में उत्पन्न होते हैं, जैसे सरोवर बक, मण्डूक और हंस सभी का समानरूप से निवासस्थान है। हे बलदेव! इसी कारण हम तुम्हारी बातों को दूषित नहीं ठहराते हैं, किन्तु सभा में बैठे हुए जिन लोगों ने तुम्हारी ये बातें चुपचाप सुनी हैं, उन्हीं पर हमें क्रोध हो रहा है। ऐसा कौन पुरुष है, जो निर्दोष धर्मराज पर एक बार बेखटके दोषारोप करके फिर उसी सभा में दुबारा बोल सके? कपट और बेई-मानी करके इन नीतिज्ञ महापुरुष को हरा दे, यह कोई धर्म की बात नहीं? यदि धर्मराज शकुनि को और दुर्योधन को खेलने के लिये अपने घर बुलाते और वे लोग जीत जाते, तब निस्सन्देह धर्म के अनुसार इनकी हार मानी जाती। परन्तु ऐसी बात तो हुई नहीं। दुर्योधन ने, यह जानकर कि यदि कोई आदमी जुआ खेलने के लिये बुलाया जाता है तो वह इनकार नहीं कर सकता, शठता पूर्वक युधिष्ठिर को हराया है। फिर उसका मङ्गल कैसे हो सकता है? इस समय पाण्डवलोग तेरह वर्ष के बाद प्रतिज्ञा से छूटकर अपने पैतृकराज्य के पूरे तौर से अधिकारी हुए हैं। फिर वे कौरवों के शरणा-गत होकर क्यों उन्हें सिर झुकावें? रही समझाने की बात, वह इस विषय में भीष्म, द्रोण, विदुर आदि महापुरुष विफलप्रयास हो चुके हैं। यदि कोई दूसरे का राज्य लेना चाहे तो भी माँगने की अपेक्षा उसे बलपूर्वक ले लेना ही अच्छा है। कौरव लोग यदि धर्मराज का धर्मानुकूल प्रस्ताव न मानेंगे, तो हम उनको अपने अधीन करके धर्मराज के पैरों पर उनका सिर रखावेंगे। इसे अमिट समझो। हमलोगों के एकत्र होने पर हमारे प्रबल प्रताप को कौन सह सकेगा? हम धृतराष्ट्र के पुत्रों को उनके सहायकों के साथ यमलोक भेज कर धर्मराज को राजसिंहासन पर बिठावेंगे। आततायियों का और शत्रुओं का बध करना ही क्षत्रियधर्म है। आगलगानेवाला, भोजन में विष देनेवाला, राज्य और स्त्री तथा धन को छल से छीन लेनेवाला, निरस्त्र को मारनेवाला आततायी कहलाता है। धृत-राष्ट्र के पुत्रों के आततायी होने में कोई सन्देह नहीं, इसलिये उनका बध करना ही सर्वथा उचित है।

इन बातों को सुनकर राजा द्रुपद ने सात्यकि से कहा—हे महाबाहु! आपने जो कुछ कहा, उसका होना तो अनिवार्य है दुर्योधन सामनीति से राज्य न बाँट देंगे। राजा धृतराष्ट्र भी पुत्रों के विरुद्ध कोई आचरण न करेंगे। दीनता के कारण भीष्म, द्रोण और मूर्खता के कारण कर्ण और शकुनि उन्हीं के हाँ में हाँ मिलावेंगे। इसलिये बलदेव की सलाह मुझे भी पसन्द नहीं है। मैं बलदेव की

बात के इतने अंश का समर्थन करता हूँ कि दूत भेजकर उनके मन का अभिप्राय समझ लिया जाय। जबतक वहाँ से दूत लौटकर आवे तब तक हम यहाँ अपने पक्ष के राजों को एकत्रित कर अपनी शक्ति को बढ़ावें। इसे निश्चित समझिये कि दुर्योधन पहले ही राजाओं के पास निमन्त्रण भेजने का प्रबन्ध करेगा और जब वे उसका आह्वान स्वीकार कर लेगें, तब आप लोग कुछ न कर सकेंगे। इसलिये इस विषय में शीघ्रता करनी चाहिये। मेरे पुरोहित बड़े बुद्धिमान् हैं वे पाण्डवों का पक्ष बहुत अच्छी तरह कह सकेंगे, इससे वे ही धृतराष्ट्र के पास भेजे जाँय।

यह सुनकर कृष्णचन्द्र ने कहा—पाञ्चाल राज ने बहुत युक्तिपूर्ण बातें कही हैं। हम लोगों को अपना सारा कार्यभार उन्हीं को सौंप देना अधिक श्रेयस्कर है। जब तक सन्धि की बातचीत जारी रहे, तब तक दोनों पक्षों के सम्बधियों को उसी में लगे रहना उचित नहीं। हम लोग अभिमन्यु के विवाह के उपलक्ष्य में यहाँ आये थे। वह काम अच्छी तरह समाप्त हो गया। अब अपने घर लौट जाना चाहते हैं द्रुपदराज और धृतराष्ट्र का बराबर का दर्जा है और राजा धृतराष्ट्र के आप द्रोण के समान मित्र हैं। अतएव आप युधिष्ठिर के हित के लिये दूत भेजें। यदि दुर्योधन न्याय के अनुसार मेल कर लें तो वंश नाश होने का कोई कारण नहीं। यदि वे लोभ के वश में युधिष्ठिर से सन्धि न करना चाहें तो पाण्डव लोग पहले अन्य मित्रों की सहायता लेकर फिर हमें खबर दें जब अर्जुन अस्त्र लेकर खड़े हो जाँयगे, तब दुर्योधन को समझ पड़ेगा।

इसके बाद राजाविराट ने सब का यथोचित सत्कार करके कृष्ण आदि यादवों को विदा किया। तब वे युधिष्ठिर तथा अन्यान्य राजों की सलाह से कौरवों के साथ युद्ध की तैयारी करने लगे। राजा द्रुपद ने धृतराष्ट्र के पास अपने पुरोहित का भेजना निश्चित किया इसके लिये उन्होंने अपने महामति पुरोहित को बुलाकर कहा—

हे द्विज श्रेष्ठ! आप की विद्याबुद्धि और कार्यकुशलता हम अच्छी तरह जानते हैं और आप हमारे अभिप्राय को भली भाँति जानते हैं। इस समय आपको युधिष्ठिर और दुर्योधन का परिचय देने और उनके विवाद का हाल बताने की अवश्यकता नहीं। क्योंकि आप पर सब विदित है। दुर्योधन आदि कौरवों ने धर्मात्मा युधिष्ठिर तथा अन्य पाण्डवों के साथ छल करके बहुत बड़ा धोखा दिया है। इस बात को राजा धृतराष्ट्र भी अच्छी तरह जानते हैं, क्योंकि महात्मा विदुर ने बारबार समझाकर उनसे इस काम को रोकने के लिये कहा था, पर वे पुत्रप्रेम के कारण कुछ भी न कर सके। विदुर के उपदेशों को टाल दिया। इसलिये इस बात की आशा नहीं कि वे अपनी इच्छा से पाण्डवों को आधा राज्य लौटा देंगे, तब भी आप धृतराष्ट्र तथा अन्य बड़े बड़े कौरवों को प्रसन्न करने की चेष्टा कीजियेगा। महात्मा विदुर फिर भी बचनों द्वारा आपकी सहायता करेंगे इसमें सन्देह नहीं है। यदि भीष्म, द्रोण, कृप आदि पाण्डवों का विरोध न करें, तो दुर्योधन अकेले लड़ने की हिम्मत न करेगा ऐसा होने से अपने पक्ष के बड़े बड़े प्रमुखवीरों को फिर अपने वश में करने में दुर्योधन का जितना समय लगेगा, उतने में हम पाण्डवों के लिये धन तथा बल का संग्रह कर लेंगे। आप धृतराष्ट्र से पाण्डवों की दुर्दशा अवश्य कहियेगा और इसके साथ प्राचीन कथाओं का प्रमाण दीजियेगा। यह सुनकर वे अवश्य भयभीत हो जायँगे। आज पुष्य नक्षत्र में हस्तिनापुर को प्रस्थान कर दीजिये

राजा द्रुपद की बातें सुनकर नीतिशास्त्रवेत्ता पुरोहित ने मार्गव्यय लेकर हस्तिनापुर की ओर प्रस्थान किया।

पुरोहित के चले जाने पर राजा लोगों की सहायता माँगने के लिये चारों ओर दूत भेजे गये।

कृष्णजी को निमन्त्रण देने के लिये स्वयं अर्जुन द्वारका को गये । गुप्तचरों द्वारा यह सब हाल दुर्योधन को मालूम हो गया । इससे उन्होंने भी सब जगह दूत भेजे और तेज घोड़े रथ में जोत कर कुछ सैनिकों के साथ वे भी द्वारका को चले ।

अर्जुन और दुर्योधन दोनों वीर एक साथ ही द्वारकापुरी में पहुँचे और एक ही समय राजभवन में गये । उस समय कृष्णजी सो रहे थे । सोने के कमरे में पहले दुर्योधन गये और कृष्ण के सिरहाने बैठ गये । फिर अर्जुन गये और पैर की ओर बैठ कर उनके जागने की प्रतीक्षा करने लगे ।

जागने पर कृष्णजी ने पहले अर्जुन को, फिर दुर्योधन को देखा । कुशल प्रश्न के बाद कृष्ण जी ने उनके आने का कारण पूछा, तब दुर्योधन ने हँसकर कहा—

हे यदुपति ! जो युद्ध होनेवाला है, उसमें हम आप को अपनी ओर रहने के लिये निमन्त्रण देते हैं । यद्यपि कौरव और पाण्डव दोनों ही का सम्बन्ध और मित्र भाव आप के साथ एक सा है; तथापि हम पहले आप के समीप आये हैं । लोकाचार तो यही कहता है कि जो पहले आवे, उसी की प्रार्थना सफल की जाय ।

श्रीकृष्ण ने कहा—हे दुर्योधन ! निस्सन्देह तुम पहले आये हो । परन्तु हमने पहले अर्जुन को ही देखा है । इसलिये हम दोनों पक्ष की सहायता करेंगे । हमारे पास एक अर्बुद प्रसिद्ध नारायणी सेना है यह एक ओर रहेगी । दूसरी तरफ हम अकेले रहेंगे; पर न तो अस्त्र ग्रहण करेंगे और न युद्ध ही करेंगे । अर्जुन छोटे हैं इसलिये पहले वे इन दोनों में से जो चाहें ले लें ।

अर्जुन ने कहा—हे यदुपति ! हम आप को लेते हैं । आप शस्त्र न लेकर भी हमारे नाथ हूजिये । जय-पराजय तो आप के हाथ में है ।

दुर्योधन एक अर्बुद नारायणी सेना लेकर और यह जान कर कि कृष्ण युद्ध न करेंगे, अत्यन्त प्रसन्न हुए । इसके बाद दुर्योधन बलदेव के पास सहायता माँगने के लिये गये और उनसे सारा भावी युद्ध वृत्तान्त कह सुनाया ।

यह सुनकर बलदेव ने कहा—हे कुरुवीर ! इस विषय में हमने विराट के यहाँ जो कुछ कहा था, वह सब तुम्हें मालूम हुआ होगा । कृष्ण से भी हमने कई बार कहा कि दोनों पक्षवालों से हमारा एक सा सम्बन्ध है, इसलिये इस युद्ध में हम लोगों का सम्मिलित होना किसी प्रकार उचित नहीं । पर उन्होंने हमारी बात नहीं मानी । फिर भी; हम कृष्ण के विरोधी दल की सहायता नहीं कर सकते । इसलिये हमने निश्चय किया है कि हम किसी तरफ़ न होंगे । आपने प्रतिष्ठित भरत वंश में जन्म लिया है, अतएव क्षत्रियधर्म के अनुसार ही युद्ध करना । सावधान ! इसमें किसी प्रकार की त्रुटि मत करना ।

बलदेव की बात समाप्त होने पर दुर्योधन उन्हें आलिङ्गन कर विचार करते हुए चले । उन्होंने सोचा—हमें एक अर्बुद नारायणी सेना मिली है, दूसरी ओर अस्त्र न लेकर कृष्णजी रहेंगे, युद्ध न करने की भी प्रतिज्ञा उन्होंने कर ली है, अब तो हमारे विजय में सन्देह नहीं । यह सब मन हीं मन विचारते हुए दुर्योधन कृतवर्मा के घर गये और एक अक्षौहिणी सेना समेत उन्हें अपने साथ लिया । सेना लेकर दुर्योधन हस्तिनापुर चले गये । तब कृष्णजी ने अर्जुन से कहा—

हे अर्जुन ! हम तो युद्ध करेंगे नहीं । फिर तुमने क्या समझ कर हमें लेना पसन्द किया ?

अर्जुन ने कहा—हे यदुनाथ ! आप सम्पूर्ण शत्रुओं के नाश करने में समर्थ हैं, केवल आप की कृपा पाकर हम, सब का निपात करेंगे । आप कीर्त्ति के स्वरूप हैं और यश के अभिलाषी हैं, इसलिये आप को लिया है, मेरे सारथि बनिये ।

श्रीकृष्णजी ने कहा—हे अर्जुन! तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण होगी, हम तुम्हारा सारथ्य करेंगे। यह कहकर कृष्णजी अर्जुन के साथ युधिष्ठिर के पास गये।

राजा शल्य ने दूत द्वारा धर्मराज का सन्देश सुना। वे एक अक्षौहिणी सेना लेकर पुत्र के साथ युधिष्ठिर के पास चले।

कपटी दुर्योधन ने शल्य को आते हुए सुना, उसने मार्ग से ही उनका आतिथ्य करना आरम्भ कर दिया। मार्ग में स्थान स्थान पर टिकने के लिये उत्तम घर बनवा दिये। उनमें तरह तरह की खाने, पीने, आराम करने और मन बहलाने का चीज़ें रखवा दीं। जगह जगह दुर्योधन के मन्त्री लोग उसके स्वागत के लिये उपस्थित थे। शल्यराज सुख पूर्वक विश्राम करते हुए धीरे धीरे आगे बढ़े। उन्होंने समझा कि यह आदर सत्कार युधिष्ठिर की ही ओर से हो रहा है एक बार बहुत ही अच्छे बने हुए एक घर की कारीगरी पर प्रसन्न होकर उन्होंने नौकरों से कहा—

राज युधिष्ठिर के जिस चतुर शिल्पी ने इस घर को बनाया है, उसे हमारे सामने बुलाओ। हम धर्मराज की आज्ञा लेकर उसे इनाम देंगे।

यह सुन कर मन्त्री लोग बड़े विस्मित हुए उन्होंने कहा—महाराज! राजा दुर्योधन की आज्ञानुसार यह सब प्रबन्ध आपके सत्कार के लिये किया गया है। उस समय दुर्योधन भी गुप्तरूप से वहीं विद्यमान थे। अतएव तुरन्त खबर पाकर अपने मामा मद्रराज के सामने आये और प्रणाम करके उनसे सब वृतान्त कह सुनाया। यह जान कर कि दुर्योधन ही ने यह सब प्रबन्ध किये हैं, शल्यराज बड़े प्रसन्न हुए और दुर्योधन को गले लगा कर बोले—

हे राजा दुर्योधन! तुम्हारी जो इच्छा हो, वह वर माँगो। दुर्योधन बोले—हे मामा! हमारा जिसमें कल्याण हो, वह वर दीजिये। यदि आप प्रसन्न हैं तो इस युद्ध में हमारे सेनापति बनिये।

शल्यराज 'तथस्तु' कह कर बोले—हे दुर्योधन! इस समय तुम अपने घर चले जाओ। धर्मराज युधिष्ठिर से मिल कर तब हम तुम्हारे पास अवेंगे।

इसके बाद राजाशल्य विराटनगर में गये और सैनिक छावनी में अपनी सेना को टिकाकर पाण्डवों के समीप जाकर उनसे मिले। पाण्डवों ने उनका राजोचित सत्कार करके कुशल प्रश्न किया। राजाशल्य ने पाण्डवों को पूजा ग्रहण करके उनको आलिङ्गन किया। इसके बाद वे कृष्णजी से भी मिले। जब सब लोग बैठ गये तब शल्य राजा ने अपने आने का हाल दुर्योधन की शुश्रूषा और वर देने की बातें आदि से अन्त तक युधिष्ठिर से कह सुनायीं। फिर उन्होंने कहा—

हे धर्मराज! आप द्रौपदी तथा अन्य भाइयों के साथ असह्य क्लेश सह कर और बड़े बड़े काम करके सङ्कटों से धर्म के अनुसार पार हो गये यह सब दुःख आपको अज्ञानी दुर्योधन के कारण उठाना पड़ा है। परन्तु अब शत्रुओं को मार कर आप राज्य का उपभोग करेंगे। हे युधिष्ठिर! आप जगत के सिद्धान्त को जानते हैं, राजर्षियों का चलाया हुआ राजधर्म भी आप अच्छी तरह जानते हैं। दान, तपस्या, धर्मपरायणता, क्षमा, अहिंसा आदि का आप में निवास है। अतएव आपकी विजय ध्रुव सत्य है।

युधिष्ठिर प्रसन्न होकर बोले—महाराज! दुर्योधन के सत्कार से प्रसन्न होकर उसके बदले में जो बरदान अपने दिया है, वह उचित ही किया है। किन्तु दुर्योधन ने छल करके हमलोगों को आपकी सहायता से वञ्चित किया है। हे मामा! इसलिये अनुचित होने पर भी हमारे कहने से एक

काम आपको करना पड़ेगा। कर्ण अर्जुन से युद्ध करने के लिये अवश्य आवेंगे। जब उनका युद्ध अर्जुन के साथ आरम्भ हो, तब आप कर्ण के सारथि बन कर और उनके युद्ध में विघ्न डाल कर अर्जुन की रक्षा कीजिये। क्योंकि वह भी आपको पालनीय है।

शल्य ने कहा—हे युधिष्ठिर! तुम्हारी यह प्रार्थना हम अवश्य पूर्ण करेंगे। सभामण्डप में निरपराध द्रौपदी का अपमान कर्ण ने किया है, इसलिये उस दिन हम अवश्य कर्ण के सारथि बनेंगे और उसके तेज को नष्ट करने का यत्न करेंगे। इससे तुम निश्चिन्त रहो। इसके बाद उन्होंने नहुष शची आदि की कथाएँ कह कर युधिष्ठिर को सन्तोष दिया और उनसे बिदा होकर सेना सहित दुर्योधन के पास गये।

इसके बाद अनेक देशों के राजालोग बड़ी बड़ी सेनाएँ लेकर युधिष्ठिर की सहायता के लिये आने लगे। बहुतेरे तो अभिमन्यु के विवाह में ही आ गये थे। इनके अतिरिक्त युयुधान, चेदिराज, धृष्टकेतु, जरासन्ध का पुत्र जयत्सेन, पाण्डय राज आदि राजे एक एक अक्षौहिणी सेना लेकर आये। इस प्रकार पाण्डवों के पक्ष में सात अक्षौहिणी सेना एकत्र हो गई। विराटराज के उपलव्य नगर में सैनिक छावनी पड़ गई। इतनी बड़ी सेना लेकर राजाओं के साथ पाण्डव लोग सुख से समय की प्रतीक्षा करने लगे।

उधर दुर्योधन के पक्ष में भगदत्त, भूरिश्रवा, कृतवर्मा, सिन्धुनरेश, सौवीर, जयद्रथ, यवन नरेश आदि अनेक राजे एक एक अक्षौहिणी सेना लेकर आये। इनके अतिरिक्त और भी कितने ही राजे अपनी अपनी सेना लेकर आये। इस प्रकार कौरवों के पास ग्यारह अक्षौहिणी सेना एकत्रित हो गई। वह हस्तिनापुर को चारों ओर से घेर कर रक्षा करनेलगी। समुद्र के समान सेना का निरीक्षण करते हुए द्रुपद के पुरोहित पाण्डवों के दूत राजा धृतराष्ट्र के पास पहुँचे। राजा धृतराष्ट्र, भीष्म, विदुर आदि ने उनका यथोचित सत्कार किया। तब वह ब्राह्मण सभा में बैठे हुए बड़े बड़े कौरवों और राजपुरुषों के सामने इस प्रकार बोला—

हे सभ्यगण तथा राजन्यवर्ग! आप लोग सनातन राजधर्म को अच्छी तरह जानते हैं। इसलिये उत्तर पाने की अभिलाषा से मैं कुछ कहना चाहता हूँ। आपलोग उत्तर देकर अवश्य मुझे सन्तुष्ट करेंगे।

धृतराष्ट्र और पाण्डु एक ही पिता के पुत्र हैं, इसलिये पैतृकधन में दोनों का समान रूप से अधिकार है। फिर इसका क्या मतलब कि पाण्डवों को निकाल कर धृतराष्ट्र के पुत्र अकेले ही राज्य करें? आपलोगों को यह भी मालूम है कि एक बार धृतराष्ट्र के पुत्रों ने पाण्डवों को मार तक डालने की तैयारी की थी, पर कृतकार्य न हुए। फिर पाण्डवों ने अपने बल से राज्य का विस्तार किया और तब दुर्योधन ने शकुनि की सहायता से छल करके उनका अपने बल से बढ़ाया हुआ राज्य छीन लिया, उसी समय पाण्डवों से बनबास की प्रतिज्ञा कराई गई। उसके अनुसार वे लोग द्रौपदी के साथ बारह वर्ष बनवास और एक वर्ष अज्ञातवास के भयङ्कर कष्ट सहते रहे। उसमें उन्हें कैसी कैसी असह्य वेदनाएँ सहन करनी पड़ीं, यह आप लोग जानते हैं। इतने पर भी वे धृतराष्ट्र के पुत्रों के सब अन्यायों को भूलकर सब के हित के लिये उनसे सन्धि करने को तैयार हैं। अतएव दोनों ओर की बातों का विचार कर आप लोग धृतराष्ट्र को उचित सलाह दें। यदि दुर्योधन यह सोचते हों कि पाण्डव लोग निर्बल हैं, वे युद्ध करके कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते, तो इस विचार को त्याग दें। क्योंकि अकेले अर्जुन सब का नाश करने में समर्थ हैं। अब ऐसा उपाय करना चाहिये कि जिसमें व्यर्थ लोकहिंसा और वंश

का नाश न हो। उधर युधिष्ठिर के पास भी सात अक्षौहिणी सेना और बड़े बड़े राजा लोग आ चुके हैं, वे कौरवों से युद्ध करने के लिये उतावले हो रहे हैं। अर्जुन से बढ़ कर रणचतुर और श्रीकृष्ण से बढ़कर बुद्धिमान् कोई नहीं है। फिर क्या समझ कर दुर्योधन पाण्डवों से लड़ने को तैयार हैं? पाण्डवों की बुद्धि और पराक्रम को जानकर कौन वीर उनके सामने युद्धाकांक्षी होगा? इसलिये आपलोग धर्मानुसार पाण्डवों का राज्य लौटा देने की व्यवस्था कीजिये। इस विषय में जहाँ तक हो शीघ्रता कीजिये, अब व्यर्थ समय टालने का अवसर नहीं रह गया है।

ब्राह्मण की बात सुनकर पितामह भीष्म ने उनकी बहुत सराहना की और कहा—

हे द्विजश्रेष्ठ! बड़े सौभाग्य की बात है कि पाण्डव लोग कुशल पूर्वक हैं और उदार श्रीकृष्ण के समान उनको सहायक मिल गये हैं। यह भी सौभाग्य की बात है कि बहुत सी सेना इकट्ठी करके भी वे धर्म पर अटल हैं और बन्धु बान्धवों से लड़ने की इच्छा न करके सन्धि चाह रहे हैं। आपने जो कुछ कहा, बहुत सही है। यद्यपि इसमें कठोरता मिश्रित है, पर ब्राह्मणलोग सदा खरी और सच्ची बात कहा ही करते हैं। पाण्डव लोग प्रतिज्ञानुसार भयङ्कर बनवास के कष्ट को भोगने के बाद अपने पहले राज्य के अधिकारी हुए हैं, यह तो निर्विवाद सिद्ध है। फिर अर्जुन के समान योद्धा भी तीनों लोकों में कोई नहीं है।

शत्रुपक्ष की, विशेष कर अर्जुन की प्रशंसा कर्ण से न सही गई। भीष्म की बातें समाप्त भी न हो पाई थीं कि उनका अनादर करके और दुर्योधन की ओर देखकर वे पुरोहित से क्रोधपूर्ण बातें बोले—

हे ब्राह्मण! जिन बातों को तुम कह रहे हो, उन्हें सारा संसार जानता है। बार बार उनकी पुनरुक्ति करने से क्या लाभ है, पाण्डव लोग शकुनि के साथ जुए में हार कर बनवास करने को लाचार हुए थे। यह भी राजा दुर्योधन की कृपा थी कि उन्हें यहाँ से चले जाने की आज्ञा मिल गई। तिसपर भी अवधि पूरी होने के पहले ही प्रतिज्ञा भङ्ग करके उन्होंने अपने को प्रगट कर दिया है और द्रुपद तथा विराटराज की सहायता पाकर मूर्खों की तरह बातें करना चाहते हैं। ध्यान रहे, हमलोगों को डराने की चेष्टा करना व्यर्थ है। डर कर हम एक पद भी भूमि न देंगे। युधिष्ठिर यदि धर्म के अनुसार राज्य लेना चाहते हैं, तो निश्चय नियम के अनुसार उन्हें बारह वर्ष फिर बनवास करना चाहिये। क्योंकि समय के पहले ही वे प्रगट हो गये हैं। समय पूरा होने पर यदि वे दीनता पूर्वक याञ्चा करेंगे, तो महाराज दुर्योधन अवश्य उनकी बातों पर ध्यान देंगे। पर यदि धर्म की परवा न कर के मूर्खता के कारण वे लड़ना चाहते हैं, तो हमारी बात स्मरण करके पीछे अवश्य पछतायँगे।

भीष्म ने कहा—हे कर्ण! क्या तुम्हें अर्जुन के साथ विराट नगर में युद्ध करने की बातें भूल गईं? तुम्हें याद नहीं कि वहाँ अर्जुन ने हमारे छः महारथियों को अकेले परास्त किया था? व्यर्थ डींग हाँक कर अपनी वीरता न दिखाओ। यदि अभी और कुछ दिन तक जीते रहने की अभिलाषा हो तो इस ब्राह्मण की हितकारी बातों को मान लो और पाण्डवों के साथ सन्धि कर लो, नहीं तो युद्ध भूमि में धूल फाँक कर अवश्य हम लोगों को मरना पड़ेगा।

भीष्म को विरक्त देख कर उनको प्रसन्न करने के लिये धृतराष्ट्र ने उनकी बातों का अनुमोदन किया और कर्ण को डाँट कर बोले—

हे कर्ण! भीष्म ने बहुत उचित सलाह दी है। उसी से हमलोगों की, पाण्डवों की और सारे संसार की भलाई है इसलिये हम उनके कहने के अनुसार सञ्जय को पाण्डवों के पास सन्धि स्थापन करने के लिये भेजेंगे।

यह कह कर धृतराष्ट्र ने द्रुपदपुरोहित को यथोचित सत्कार के बाद विदा किया, फिर सभा में सञ्जय को बुलाकर उन्होंने कहा—

हे सञ्जय! तुम पाण्डवों के पास जाओ और जिस प्रकार शान्ति स्थापित हो वैसी बातें करो। इस समय वनवासजनित क्लेश से पाण्डवों की क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो रही है उसे गंभीर बुद्धि से शान्त करने की चेष्टा करना। क्षुद्र कर्ण के साथ मिलकर दुर्योधन ने पाण्डवों पर बड़ा अत्याचार किया है और मूर्खता में पड़कर छल कपट रहित धर्मात्मा पाण्डवों को राज्य से वञ्चित किया चाहता है। जिसके कृष्ण के समान सहायक, भीम, अर्जुन नकुल सहदेव के समान भाई हैं, उनके साथ युद्ध करने के पूर्व ही उनका धर्म के अनुसार अधिकार लौटा देना चाहिये। इस पृथ्वी पर अर्जुन के भयङ्कर बाणों की वर्षा सहन करने में कौन वीर समर्थ है? महाबलशाली भीम के गदाघात को कौन सहेगा? अर्जुन से अस्त्रविद्या की शिक्षा पाये हुए वीर माद्रीतनय का मुकाबला करनेवाला कोई नहीं है। इतनाही नहीं, कृष्ण ने अर्जुन का सारथि होना स्वीकार किया है। यह सुनकर मेरा कलेजा काँप उठता है। हमारा अन्तः करण बराबर शान्ति चाहता है पर दुर्मति दुर्योधन बाधक हो रहा है। सरल और शान्त स्वभाव पाण्डवों को इसने छल करके धोखा दिया। यदि वे चाहें तो अपने क्रोध से ही कुरुकुल को भस्म कर सकते हैं। हे सञ्जय! तुम जाकर जैसे हो सके क्रोध को शान्त करो। हम जैसे कहें वैसे ही जाकर करना। युधिष्ठिर के समीप जाकर हमारी ओर से बारबार उनका कुशल पूछना और कृष्णजी से भी उसी प्रकार पूछना। इसके बाद उनसे कहना कि हम पाण्डवों के साथ सन्धि चाहते हैं। पाण्डवों के प्रति हमारा पूर्ववत् स्नेह है, इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं।

महामति सञ्जय महाराज धृतराष्ट्र का अभिप्राय समझ कर और उनकी आज्ञा पाकर विराट नगर की ओर चले।

शान्ति स्थापन का प्रयत्न

सञ्जय उत्तम रथ पर चढ़कर हस्तिनापुर से धृतराष्ट्र की आज्ञा पाकर पाण्डवों से शान्ति स्थापन के लिये चले। यथासमय वे उपलव्य नगर में पहुँचे। वहाँ भाइयों के सहित युधिष्ठिर को देख कर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने प्रणाम करके युधिष्ठिर से कहा—

हे धर्मराज! ईश्वर की कृपा से हम फिर आप को अच्छी दशा में देखते हैं। अब आप को किसी बात की तकलीफ़ नहीं। सब प्रकार की सहायता आपको प्राप्त है। वृद्ध महाराज धृतराष्ट्रने आपका कुशल पूछा है। कहिये आप, आपके भाई, आपकी धर्मपत्नी द्रौपदी सब लोग प्रसन्न तो हैं?

युधिष्ठिरने कहा—हे सञ्जय! आपके आगमन से हमारा शरीर पुलकायमान हो रहा है हम परिवार के सहित बहुत प्रसन्न हैं। इतने दिनों बाद राजा धृतराष्ट्र के कुशल समाचार पाकर और तुम्हारे दर्शन करके हमें बड़ी प्रसन्नता हुई है। इस समय हमें ऐसा प्रतीत होता है, मानों हमने सभी कौरवों के दर्शन पा लिये। परम बुद्धिमान् पितामह भीष्म कुशल से तो हैं? हमारे ऊपर उनका जो स्नेह था, वह जाता तो नहीं रहा? हम पर वे बड़ी कृपा रखते थे, उस में कमी तो नहीं हुई? गुरु द्रोण और कृपाचार्य आदि प्रसन्न तो हैं? वे हम से बुरा तो नहीं मानते! क्या वे राजा धृतराष्ट्र और उनके पुत्रों को सन्धि करने की सलाह देते हैं? माता गान्धारी तथा अन्य स्त्रियाँ प्रसन्न हैं? ब्राह्मणों को किसी प्रकार का कष्ट तो नहीं है? राजा मन्त्रियों पर पुत्र के समान स्नेह रखते हैं। अर्जुन के बड़े बड़े वीरोचित काम और मेघ गर्जन के सदृश उनके धनुष की टङ्कार कौरव लोग भूल तो नहीं गये! मुझे तो अर्जुन का

मुकाबला करनेवाला दूसरा नहीं दिखाई पड़ता। क्या दुर्योधन कभी अपनी हार का भी स्मरण किया करता है ?

सञ्जय ने कहा—हे धर्मराज ! आपने जो कुछ कहा वह सब सत्य है। राजा धृतराष्ट्र साधु-बुद्धि राजा हैं। दुर्योधन, दुर्मति और पाप का रूप है। राजा धृतराष्ट्र उसके सोच से सदा विकल रहा करते हैं और आप का ध्यान उन्हें सदा बना रहता है। उन्हें महावीर अर्जुन, गदावीर भीम और बाणों को खींच कर खड़े हुए माद्रीतनय सदा दिखाई पड़ते हैं। उन्होंने प्रेम पूर्वक जो सन्देश कहा है, उसे सुन लीजिये।

भूत, भविष्य, वर्त्तमान में क्या होनेवाला है ? इसे कोई नहीं जान सकता। आप सब प्रकार से धर्म पर आरूढ़ हैं, इसलिये उन्होंने दुखी होकर आपको यह सन्देश भेजा है। सब राजाओं को बुला कर आप सभा में बैठ जाँय तब धृतराष्ट्र का निदेश मैं आपको सुनाऊँ।

अनन्तर युधिष्ठिर ने आगत सब राजाओं को और भाइयों को शीघ्र बुलवाया। सब के एकत्रित हो जाने पर फिर सञ्जय ने कहना आरम्भ किया।

हे आगत नृपवृन्द, कृष्ण, तथा पाण्डव ! आपलोग सावधान होकर सुनें। महाराज धृतराष्ट्र सन्धि चाहते हैं, इसलिये मुझे भेजा है। पाण्डवों की धर्मपरायणता, दया आदि सर्वमान्य हैं। यदि पाण्डवों में किसी प्रकार का पातक होता तो वह प्रगट होकर अवश्य भासित होता, जिसमें सर्वक्षय दिखाई पड़ रहा हो, ऐसे पराजय के समान जय को कौन चाहेगा ? जातिवर्ग, प्रजा, मित्रों के साथ बन्धु बान्धवों का जो पालन करता है, वही पुत्र इस संसार में धन्य माना जाता है और उसी का इह लोक परलोक दोनों कल्याणकारी होता है। जो मनुष्य निन्दित होकर जीता है, उसका जीना मृत पुरुषों के तुल्य है। आपलोगों ने गन्धर्वों से रक्षा करके दुर्योधन के प्राण बचा लिये। हे युधिष्ठिर ! कृष्ण के सहायक होने पर आप को जीतने में कौन समर्थ है ? चेकितान, विराटराज, सात्यकि के समान जिसके रक्षक हों उसे इन्द्र भी नहीं जीत सकते। पर यह भी ध्यान रहे, भीष्म, द्रोण, कृप, शल्य, अश्वत्थामा, कर्ण आदि जिन दुर्योधन प्रभृति कौरवों की रक्षा के लिये सन्नद्ध हैं, उनका जीत लेना भी सामान्य काम नहीं है। जोकुछ हो, युद्ध होने पर बड़ा बीभत्स दृश्य देखना पड़ेगा। ऐसे नाशकारी कामों में उन्हीं लोगों की प्रवृत्ति हुआ करती है, जिन लोगों का कर्म, धर्म-अर्थ के विरुद्ध हुआ करता है। मैं श्रीकृष्ण और द्रुपदराज को प्रणाम करके पूछता हूँ कि जिस प्रकार कौरवकुल का कल्याण हो, वही मार्ग बतावें। यदि आप लोगों को शान्ति की अभिलाषा हो तो उसका उपाय किया जाय।

युधिष्ठिर ने कहा—हे सञ्जय ! क्या मेरी बातों से आप को यह पता लगा है कि मैं युद्ध चाहता हूँ ? फिर आप क्यों युद्ध के नाम से भयभीत हो रहे हैं ? यदि आप मुझ से कुछ पूछना चाहते हैं तो मैं कहता हूँ। हे सञ्जय ! बेमतलब कोई युद्ध में नहीं प्रवृत्त होता। यदि विना कर्म किये ही सिद्धि मिलती हो तो उसके करने की कोई आवश्यकता नहीं है। मैं अपने कर्मों को छोटे मनुष्यों की तरह प्रकाशित करता हुआ नहीं फिरता। अर्जुन की अभिलाषा यह रहती है कि सदा संसार का हित होता रहे और जिस सर्वहित सुख में धर्म का उदय होता है अर्जुन सदा उसी के पाने के लिये लालायित रहते हैं। वह सुख कैसे मिलता है, उसके कारण को भी सुन लीजिये।

संसार के जीवमात्र अपने धर्म के अनुसार कर्म करते ही हैं, परन्तु जो सदा विषयों का ध्यान करता हुआ पापकर्म में रत रहता है, उसे दुःख होना अवश्यम्भावी है। बहुत विषयों के प्राप्त

होने पर भी विषयवासना नहीं घटती, वह तो इन्धन पाकर अग्नि के समान आगे ही बढ़ती है। सब प्रकार के अर्थ और काम से तृप्त होकर भी हमें राज्य से निकाल देना क्या उत्तम है? भला कौन ऐसा अज्ञानी होगा, जो जेठ की दुपहरी में दावाग्नि से जलते हुए बन में सोने का साहस करेगा। राजा धृतराष्ट्र महान् ऐश्वर्य को प्राप्त हुए हैं। उन्हें दुष्ट पुत्रों के कारण दीनता दिखानी पड़ी है। परन्तु वे तो पहले ही से महात्मा विदुर की हितकारी बातों का अनादर करके दुर्मति पुत्रों के हित के लिये अधर्म में प्रवेश कर चुके हैं। अधर्मी, कामी, पुत्रों के हित के लिये उन्होंने अधर्म में पैर रक्खा है और महात्मा विदुर की बातों का तिरस्कार कर कुरुकुल के कष्ट का आह्वान किया है। जब तक उनकी रुचि धर्म में थी, तब तक राज्य की वृद्धि ही होती गई। पर अब लोभी दुर्योधन राजा है, दुर्बुद्धि मन्त्री मिले हैं, कर्ण, शकुनि और दुःशासन के समान सलाहकार हैं। इन कारणों से मुझे भी कुरुकुल का कल्याण नहीं दिखाई पड़ता है। जब हम लोग प्रतिज्ञानुसार बन में चले गये, तब कौरवों ने हमारे राज्य को निष्कण्टक अपना समझ लिया। इन बातों को स्मरण कर मैं कैसे शान्ति धारण करूँ? धूर्त्त कर्ण जो अभी अर्जुन से हार कर भाग गया था, वह उन्हें जीत लेने की डींग मारता है। दुर्योधन जब तक भीम का गर्जन नहीं सुनते हैं, तब तक अनेक मनसूबे बाँध लें। हे सञ्जय! यदि धृतराष्ट्र और उनके पुत्रों को शान्तिस्थापन करने की अभिलाषा है तो मैं पिछले सारे दुःखों को भूल कर पहले तैयार हूँ। परन्तु दुर्योधन हमारे इन्द्रप्रस्थ के राज्य को लौटा दें और मेरी दूसरी कुछ भी अभिलाषा नहीं है।

यह सुनकर सञ्जय ने फिर कहा—हे धर्मराज! जहाँ तक मैंने सुना है और देखा है, उससे तो यही मालूम होता है कि कौरव लोग बिना युद्ध के आप का भाग न देंगे। परन्तु आप तो धर्म की गति को जानते हैं और यह भी जानते हैं कि राजपाट का मोह बुरा होता है। इसलिये युद्ध करके राज्य का भोग करना आप को शोभा नहीं देता है। मनुष्य की ज़िन्दगी का क्या ठिकाना? आज है कल नहीं है। ऐसा समझ कर आप वंशनाश में प्रवृत्त न हों। धर्म का संग्राम करके सूर्य के समान प्रतापी बनें। धर्महीन मनुष्य पापपङ्क में फँसकर संसार में महा दुःख उठाता है। जो बहुत काल तक भोग में फँस कर योगाभ्यास की ओर चित्तवृत्ति को नहीं लगाता, वह काम के वश होकर निर्धनी बन जाता है और बड़े बड़े दुःखों को झेलता है। यदि युद्ध करके अपना राज्य फिर छीन लेने का विचार था तो इतने दिनों तक आपने बनवास का कठिन दुःख क्यों सहा? उस समय भी तो आप की सहायता करनेवाले कम न थे। अर्जुन, कृष्ण के साथ उस समय भी दुर्योधन का मान-भंग कर सकते थे। जो बन्धु बान्धव इस समय आप का साथ देने को तैयार हैं, वे चिरकाल से आप ही की तरफ़ हैं। दुर्योधन भी जितने इस समय बली हैं, उतने पहले न थे। उस समय तो आपने धर्मबुद्धि से प्रेरित होकर युद्ध को अनुचित समझा फिर क्या समझ कर आप धर्म को छोड़ते हैं और जातिद्रोह के पापपङ्क में गिरते हैं? शत्रु के बली अथवा निर्बल होने पर जय-पराजय नहीं निर्भर है, वह तो भाग्याधीन है। फिर क्या समझ कर अर्जुन अपने मत के विरुद्ध कर्म करने पर उतारू हुए हैं? जान पड़ता है, गुरुजनों का पातक आप लोगों के ही हाथों होगा।

युधिष्ठिर ने कहा—हे सञ्जय! धर्म के श्रेष्ठ होने में कोई सन्देह नहीं। वह सर्वोपरि है। किन्तु अपने राज्य का पालन करना और उसे शत्रु के हाथ से बचाना ही क्षत्रियों का मुख्य धर्म है। इससे इस विषय में हम धर्म छोड़ते हैं अथवा ग्रहण किये हैं इस बात का सूक्ष्मदृष्टि से विचार कर तब आप हमें दोषी ठहराइयेगा। एक ओर धर्मरक्षा है और दूसरी ओर युद्ध निवारण। इन दोनों बातों में से इस समय हमें कौन बात करनी उचित है, इस विषय में परम चतुर श्रीकृष्णजी हमें

उपदेश देने की कृपा करें। अधर्म से राज पाने की हमारी कदापि इच्छा नहीं। अतएव श्रीकृष्णजी की जो आज्ञा होगी, वही हम करेंगे।

तब भगवान् कृष्ण बोले—हे सञ्जय! हम सब प्रकार से धर्मात्मा पाण्डवों का कल्याण देखना चाहते हैं और धृतराष्ट्र के पुत्रों ने तथा कर्ण ने जो कुछ अनीति और अधर्म किया है, उसका उचित दण्ड उन्हें देना चाहते हैं। अब आप धर्मराज को बहुत उपदेश न दीजिये। राजसभा में द्रौपदी का अपमान होने पर जिस समय उसने सहायता के लिये बार बार सभासदों से प्रार्थना की थी, उस समय विदुर को छोड़ कर किसी और ने एक बात भी अपने मुँह से नहीं निकाली। आपने उस समय दुःशासन को क्यों नहीं उपदेश दिया? तब आप का धर्मोपदेश कहाँ चला गया था? कुछ भी हो, जैसे हम पाण्डवों की मङ्गलकामना करते हैं, वैसे ही कौरवों की भी करते हैं। हमारी स्वयं यह अभिलाषा है कि युद्ध का विचार छोड़ कर सन्धि स्थापन हो जाय। यही बात दोनों पक्षों के लिये हित कर भी है। किन्तु हे सञ्जय! राजा धृतराष्ट्र इस समय इतने लोभ के वशीभूत हो गये हैं कि उन्हें पाण्डवों का हक लौटा देना कदापि पसन्द न होगा। इस अवस्था में सर्वस्व छोड़कर धर्मपालन करने का उपदेश हम युधिष्ठिर को नहीं दे सकते। फिर धन-वैभव से पूर्ण गृहस्थ ही धर्म का भी आचरण कर सकता है और बिना गृहस्थाश्रम के कर्म पूरा किये सन्यास लेकर धर्म करना भी उचित नहीं। इन सब बातों का विचार कर अर्जुन पहले गृहधर्म को पूरा करना चाहते हैं। जल पी लेने पर ही तृषा की शान्ति होती है, विद्याध्ययन कर लेने पर ही ज्ञान होता है। जो विना कर्म किये ही ज्ञान मानता है वह अज्ञानी है। देखिये, वायु, चन्द्र, सूर्य आदि देवगण सदा कर्म में लगे हुए हैं। पृथ्वी का भार धारण करना, नदियों का बहना कर्म के अधीन है। हे सञ्जय! आप को तो चारों वर्णों के कर्म मालूम है, फिर क्यों कौरवों के लिये विशेष हठ कर रहे हैं? क्या कौरवों का वध न कर पाण्डव लोग संसार में सुख पूर्वक जीवन निर्वाह कर सकते हैं? यदि कौरवों का वध किये विना ही संसार यात्रा-निर्वाह करने का कोई उपाय निकल आवे तो इससे उत्तम और क्या हो सकता है। परन्तु यह बात धृतराष्ट्र और उनके पुत्रों ही के किये हो सकती है। पाण्डव लोग नम्रता का वर्ताव करने के लिये भी तैयार हैं और आवश्यकता पड़ने पर कठोरता का वर्त्ताव करने को भी तैयार हैं। आप जाकर कौरवों से इन बातों को यथावत् कह दीजियेगा। हम भी धृतराष्ट्र के पास आना चाहते हैं और उनके पुत्रों के नाशकारी करतूतों को दिखा कर उनका समाधान करना चाहते हैं।

सञ्जय ने कहा—हे धर्मराज! आप का कल्याण हो। अब हम जाते हैं अपना पक्ष समर्थन करने में यदि हम से कोई अनुचित बात निकल गई हो तो उसके लिये हम आप से क्षमा माँगते हैं।

युधिष्ठिर ने कहा—हे सञ्जय! आप पवित्रात्मा हैं और विश्वासपात्र दूत हैं तथा हमारे पूर्ण हितचिन्तक हैं। आप की कोई बात हमारे लिये अप्रिय नहीं हो सकती। जो कुछ हमने आप से कहा है उसे आप कौरवों और अन्यान्य क्षत्रियों से अच्छी तरह कह दीजियेगा और दुर्योधन से हमारी तरफ़ से यह कहियेगा कि—

हे दुर्योधन! तुम्हारे हृदय में जो लोभ घुसा हुआ है वही तुम को सन्ताप दे रहा है और वही कुरुवंशियों का सब से बड़ा शत्रु है। किन्तु हे वीर! यह न समझना कि तुम्हारे मन का अभिलाष पूर्ण होगा। या तो तुम उस बुरे अभिलाष को छोड़ कर इन्द्रप्रस्थ हमारे हवाले करो या युद्ध के लिये तैयार रहो।

पितामह भीष्म को प्रणाम कर यह कहियेगा कि—हे पितामह! आपने पहले एक बार प्रायः

पूरे तौर पर डूबे हुए कुरुवंश का उद्धार किया है। इस समय भी आप अपनी सम्मति प्रगट करके युद्ध की आग से पौत्रों की रक्षा कीजिये।

महाराज धृतराष्ट्र के सामने सिर झुका कर कहियेगा कि—हे कुरुनाथ! आप की ही कृपा से आप के भतीजों को राज्य प्राप्त हुआ था। अब उसी राज्य से उन्हें निकाल देने का क्यों आप यत्न कर रहे हैं?

महात्मा बिदुर से नम्रता पूर्वक कहियेगा कि—हे महात्मन्! आपने सदा हमारा पक्षपात किया है अब भी वही करके दोनों पक्षों की अनिष्ट से रक्षा कीजिये। इसके बाद कुछ देर तक सोच कर धर्मराज ने फिर कहा—

हे सञ्जय! आप का कहना बहुत यथार्थ है कि धन सम्पत्ति का मोह छोड़ते नहीं बनता, इस बात को हम अच्छी तरह जानते हैं। इससे इस विषय में सब से बढ़कर उत्तरदायित्व हमारे ही ऊपर है। इसलिये आप हमारी अन्तिम शर्त्त सुन लें। वह शर्त्त यह है कि हमें पाँचों भाइयों को केवल पाँच गाँव मिलने से राज्य का दावा छोड़कर हम सन्धि करने को तैयार हैं।

इसके बाद धर्मराज की आज्ञा लेकर सञ्जय ने हस्तिनापुर को प्रस्थान किया। सन्ध्या समय वे राजमहल के द्वार पर पहुँचे और द्वारपाल के द्वारा अपने आने का समाचार धृतराष्ट्र के पास भेजा। द्वारपाल ने जाकर राजा से निवेदन किया—

महाराज! पाण्डवों के पास से सञ्जय लौट आये हैं और भीतर आने के लिये आप की आज्ञा चाहते हैं।

धृतराष्ट्र ने कहा—उनको शीघ्र भीतर ले आओ। हम सञ्जय से मिलने के लिये उत्सुक हैं। तब सञ्जय ने भीतर आकर कहा—हे महाराज! हम सञ्जय हैं। आप को प्रणाम करते हैं।

इसके बाद धृतराष्ट्र ने बड़े आग्रह से सञ्जय से प्रश्न करना आरम्भ किया। सञ्जय ने पाण्डवों का कुशल समाचार कह कर इस प्रकार उत्तर दिया—

महाराज! आपने जिस प्रकार पाण्डवों को पहले प्रसन्न देखा था, वे वैसे ही अब भी हैं। दूसरी बार जुआ खेलने के पहले आपने पाण्डवों को जो कुछ दिया था, वही लेकर वे सन्धि करने को तैयार हैं। बात यद्यपि कड़ी है तथापि कर्त्तव्यवश हितकारी जान कर हम कहने को विवश हुए हैं। अपने दुर्बुद्धि पुत्रों के प्रेम पाश में बँध कर आपने बड़ा बुरा काम किया। अब भी सावधान होकर ऐसा काम कीजिये, जिससे कुरुकुल का जड़ से नाश न हो जाय। वे जानते हैं कि धन से ही धर्म का साधन होता है, इसलिये वे अपना धन चाहते हैं। अब जिस प्रकार आपके चरित्र पर किसी प्रकार का धब्बा न लगे और प्रतिष्ठा ज्यों की त्यों कायम रहे, वही उपाय कीजिये। संसार में जो राजा निन्दित होकर जीता है उसका इहलोक परलोक दोनों ही बिगड़ जाता है। इसलिये आप अपने यश की ओर ध्यान दीजिये और धर्म के अनुसार पाण्डवों के साथ न्याय कीजिये। महाराज! हम बहुत वेग से रथ हाँककर आये हैं इससे बहुत थके हुए हैं। आज्ञा हो तो इस समय हम अपने घर जायँ। कल प्रातःकाल सभा में सब लोगों के सामने युधिष्ठिर आदि ने जो कुछ कहा है वह सब हम बिस्तार पूर्वक कहेंगे।

सञ्जय के चले जाने पर धृतराष्ट्र ने द्वारपालकों को बुला कर कहा—

हम विदुर से मिलने के लिये बहुत व्याकुल हो रहे हैं इससे उन्हें शीघ्र बुला लाओ।

महाराज धृतराष्ट्र की आज्ञा पाते ही विदुर राजभवन में धृतराष्ट्र के पास जाकर उपस्थित हुए और बोले—

महाराज ! हम विदुर हैं। आपकी आज्ञानुसार आपके पास उपस्थित हुए हैं।

धृतराष्ट्र ने कहा—हे विदुरजी ! सञ्जय लौट आये हैं; परन्तु युधिष्ठिर ने क्या उत्तर दिया है, उसे हम अभी तक नहीं जान सके। सञ्जय वह सब बात कल सभा में कहेंगे। इस समय हमारा चित्त बहुत चञ्चल हो रहा है। चिन्ता से देह जल रही है। इसलिये तुम्हारे साथ बातचीत करके मन को शान्त करना चाहते हैं।

विदुरने कहा—हेराजन् ! जो अन्याय या बहुत बड़े साहस का काम करना चाहता है तथा चोर, कामी और दूसरे की सम्पत्ति हरण करनेवाले को नींद नहीं आती।

धृतराष्ट्रने ने कहा—हे विदुर ! तुम कुरुवंश में राजर्षि के तुल्य हो, इसलिये हम तुमसे कुछ कल्याणकारी धर्म सुनना चाहते हैं।

विदुरने कहा—महाराज ! जो निन्दित पुरुषों का त्याग कर धर्मात्माओं का संग करता है, वही पण्डित है। जिसका सुविचारित कार्य सिद्ध हो जाने पर संसार में प्रगट होता है, वही राजा श्रेष्ठ गिना जाता है। कामना को त्याग कर जिसकी बुद्धि धर्मार्थ में लगी हो, वही राजा बुद्धिमान् है। जो शक्तिमान् इच्छानुकूल कार्य करता हुआ किसी का अपमान न करके कार्य साधन करता है, किसी के प्रश्न करने पर परिमित शब्दों में उत्तर देता है और सदा परोपकार में जिसकी बुद्धि लगी हुई है, वह बुद्धिमान है। जो प्राप्त विषय की अभिलाषा नहीं रखता, नष्ट हो जाने पर चिन्तित नहीं होता और विपत्ति में धैर्य धारण करता है, वह पण्डित है। जिसे अपमान में खेद नहीं, मान में हर्ष नहीं, सदा समुद्र के समान स्थिर रहता है, उसे पूर्ण बुद्धिमान् समझना चाहिये। जो अपने बल को भूल कर दूसरे के सामर्थ्य पर भरोसा करता है और मित्रों से झूठ बोलता है, वह मूर्ख है। जो बिना बुलाये सब जगह पहुँचा रहता है, बिना पूछे बोलता है और अविश्वस्तों में विश्वास करता है, वह मूर्ख है। जो ऐश्वर्य और विद्या प्राप्त होने पर भी घमण्ड नहीं करता, सदा शान्तस्वभाव रहता है, वह पण्डित है। अज्ञानी लोग क्षमा को निर्बलता समझते हैं किन्तु क्षमावान् ही सब से अधिक बलवान् है। जो दूसरे का धन, स्त्री हरण करता है उसे नष्ट हा हुआ समझें। मनुष्य के नाश के कारण तीन हैं—काम, क्रोध, लोभ। इसलिये इनका त्याग कर दे। अल्पबुद्धि, दीर्घसूत्री, आलसी और कपटी, इनसे राजाओं को सलाह न लेनी चाहिये। विलासिता, मृगया, मद्यपान, पाप युक्त कठोर वचन, तथा कठिन दण्ड देना, ये महादोष हैं। जो अपने आश्रितों की जीविका का ध्यान रखता है, अहित करनेवालों को भी माँगने पर धन देता है, वह धन-अर्थ से सदा भरा पूरा रहता है। जो कोमलता, सचाई और शुद्धता के साथ सब प्राणियों में व्यवहार करता है, वह जाति रूपी खान में मणि के समान चमका करता है। हे महाराज ! पाण्डु के पुत्रों पर आप सदा से स्नेह करते आये हैं, इसलिये फिर भी उनकी दशा पर ध्यान देकर उनके राज्य को लौटा दीजिये और परम आनन्द का अनुभव कीजिये। तब देव, दानव, मनुष्य कोई भी आप की प्रतिद्वन्दिता न कर सकेगा।

धृतराष्ट्र ने कहा—हे विदुर ! जिस कार्य के करने से हम चिन्तारूपी आग से जल रहे हैं, उसके शान्ति का उपाय बतलाओ। तुम जो कुछ कह रहे हो, उसका परिणाम अवश्य अच्छा है। किन्तु वैसा करने से दुर्योधन हम से छूट जायगा। यह ऐसी बात है जिसे हम किसी तरह नहीं कर सकते हैं।

विदुर ने कहा - हे राजन् ! कौरवों का जिसमें हित है, वही बात मैं आपसे कह रहा हूँ। जो अनर्थकारी पापमय कार्य एक बार होगया बार बार उसी में मत फँसिये। जिसकी कृपा व्यर्थ है, जो निरर्थक क्रोध किया करता है। ऐसे पुरुष को कभी आधिपत्य न सौंपना चाहिये। आप के पुत्रों की बुद्धि

उलटी हो गई है, निरपराध पाण्डवों से वैर करके उन्होंने नीति पथ का त्याग कर दिया है । युधिष्ठिर में सब राजलक्षण मौजूद हैं और वे सदा आपकी आज्ञा का पालन करते हैं, इसलिये वे ही राजपद के योग्य हैं, आपके पुत्र नहीं । दुर्योधन, कर्ण, शकुनि, दुःशासन के ऊपर राज्यभार रखकर किस प्रकार आप कल्याण की आशा रखते हैं ? इसके सिवा जातिद्रोह करके कोई सुखी नहीं हुआ है । जो राजा, गौ, ब्राह्मण, स्त्री, जाति, इनपर शूरता दिखना चाहता है, वह वृक्ष से पके हुए फल के समान तुरन्त गिर जाता है । अपने पुत्रों से कह दीजिये कि वे पाण्डवों के साथ क्रोध और छल का व्यवहार छोड़ दें और आप पाण्डवों को आदर के साथ बुलाकर बाजे गाजे के साथ उनका हक़ उन्हें लौटा दें । उन लोगों को भी सहायक बनाकर आप इन्द्र के समान सुख का उपभोग करें । यदि आप अपने पुत्रों को न दबावेंगे, तो निश्चय जानिये कि थोड़े ही दिनों में पाण्डवों की नहीं, अपने ही पुत्रों की मृत्यु का समाचार सुनकर आप को व्याकुल होना पड़ेगा । इसकी अपेक्षा यदि आप पाण्डवों को दो चार गाँव ही दे डालने पर राज़ी हों तो भी आप के पुत्रों की रक्षा हो सकती है ।

धृतराष्ट्र ने कहा—हे महात्मा विदुर ! आप का उपदेशामृत पान करके मुझे तृप्ति नहीं हो रही है । पाण्डवों को राज्य देने से हमें कोई इनकार नहीं है । किन्तु दुर्योधन की बातें स्मरण करते ही हमारी बुद्धि चञ्चल हो जाती है । अब और भी बातें जो तुमने न कही हों, उन्हें कह कर मुझे सन्तुष्ट करो ।

विदुर ने कहा—हे राजन् ! शूद्रयोनि होने के कारण मैं आप से वेदतत्व न कह कर महर्षि सनत्सुजात का आवाहन करता हूँ वे और बातें आप से कहेंगे । यह कह कर विदुर ने मुनि का ध्यान किया, वे आये । उनको प्रणाम करके विदुरजी ने धृतराष्ट्र की जिज्ञासा प्रगट कर दी ।

राजा धृतराष्ट्र के मृत्यु-अमृत्यु विषयक प्रश्न करने पर सनत्सुजात ने कहा—

हे राजा ! अज्ञान का नाम मृत्यु और ज्ञान का नाम अमर है । काम, क्रोध, मद, लोभ, इन आसुरी वृत्तियों में फँस कर जीव मृत्यु के वश होता है । शम, दम आदि दैवी प्रवृत्ति के सहारे जीव शरीर का त्याग कर अव्यय ब्रह्म में लीन होकर शोभित होता है, इसीका नाम अमृत्यु है । रस्सी में सर्प की भ्रान्ति के समान अज्ञानी का अज्ञान ही मृत्यु है । जन्म मरण का मुख्य कारण अज्ञान ही है । कितने ही यम को ही मृत्यु समझते हैं । वे तो पितृलोक के देव हैं और वहीं उनका निवासस्थान है । जो जैसा कर्म करता है, तदनुरूप वे उसे फल देते हैं । काम, क्रोध, मद, लोभ, ये यम के आज्ञाकारी भृत्य हैं । ये ही प्राणियों के लिये मृत्यु स्वरूप हैं । जो ममता वश शास्त्र वर्जित पथ का पथिक होता है, वह तीनों लोक की ठोकरें खाता हुआ आत्मयोग को नहीं प्राप्त होता । स्वर्गादि की कामना से यज्ञादि का अनुष्ठान करके स्वर्गसुख मिलता है, पुण्य क्षीण होनेपर फिर जरा मरण का दुःख झेलना पड़ता है । शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, ये ही इन्द्रियों के व्यवहार के विषय हैं, इनमें अधिक प्रीति बढ़ने से मोह प्राप्त होता है । विषयी पुरुष को काम-क्रोध आदि अधिक दुःख पहुँचाते हैं, इसलिये धीरता के साथ इनका त्याग करदेना चाहिये । कामवासना ही नरक है, दूसरा नरक नहीं । उसीके क्षणिकसुख के लिये मूर्ख लोग दौड़ते फिरते हैं । जीव शुद्ध चेतनस्वरूप है, उसका अपने स्वभाव को भूल जाना ही बन्धन है वह सुग्गा और बन्दर की तरह मोह से बँधकर पीछे दुःख उठाता है । इसलिये अज्ञान मृत्यु और ज्ञान अमरत्व है ।

धृतराष्ट्र ने कहा—हे महर्षि ! आपने मृत्यु और अमरत्व के विवेचन में कहा है कि यज्ञादि का अनुष्ठान भी बन्धक है और ज्ञान ही मोक्षप्रद है । परन्तु वेदों में लिखा है कि यज्ञ करने से जीव

ब्रह्मलोक तक के सुख को हज़ारों वर्ष अनुभव करता है, फिर दुस्साध्य ज्ञान और मोक्ष की प्राप्ति के लिये व्यर्थ प्रयास करने की क्या आवश्यकता है?

सनत्सुजात ने कहा—कामी और रजोगुणी सकामयज्ञ करके इन्द्रादि लोकों को प्राप्त होते हैं, किन्तु वे सकामकर्म करने के कारण फिर भी आवागमन के बन्धन में पड़ते हैं। पर, ज्ञानी इन्द्रादि लोकों के स्वामित्व को भी तुच्छ जान कर सदा निष्कामकर्म करता हुआ जरा मरण रहित अक्षय परमपद को प्राप्त होता है।

धृतराष्ट्र ने कहा—क्या ज्ञानी योगाभ्यास द्वारा ब्रह्म में लीन हो जाता है? अथवा जीव, ब्रह्म दोनों भिन्न भिन्न हैं। यदि ब्रह्म स्वयं जीव होकर चराचर में व्याप्त हो रहा है तो किसलिये किसी को दण्ड देता और किसी से प्रेम करता है?

सनत्सुजात ने कहा—जीव और ब्रह्म का भेद केवल मानसिक विकार है, जैसे जल और उसकी तरङ्ग, मिट्टी और घड़ा। जैसे अनेकों घटों में अनेकों चन्द्रबिम्ब दिखाई पड़ते हैं और घड़ों के फूट जाने पर एक ही चन्द्र रह जाता है, वही दशा जीव और ब्रह्म की है।

धृतराष्ट्र ने कहा—आप के कथनानुसार ब्रह्म, जीव, कारण कार्य हुए, कार्य के मिट जाने पर कारण शेष रह जाता है। जैसे आभूषण नष्ट होकर फिर सोना कहलाता है। दान यज्ञ आदि पुण्यकर्म कहे गये हैं और राग, कामवासना आदि पाप। अब यह बताइये कि धर्म पाप को नष्ट करता है या पाप धर्म को।

सनत्सुजात ने कहा—हे राजा! पाप, पुण्य दोनों ही अमिट हैं; इनका भोग करना ही पड़ता है। किन्तु इन दोनों को नष्ट करनेवाला केवल ज्ञान ही है।

धृतराष्ट्र ने कहा—पाप और काम्यकर्म दोनों ही बन्धक हैं, यह मालूम हो गया। अब आप ब्राह्मणों के सनातनकर्म बतलाने की कृपा करें।

सनत्सुजात ने कहा—जो यम नियम आदि योगाभ्यास करता हुआ संसार में व्यवहार करता है, वह शरीर त्यागने पर पुण्यलोक में प्राप्त होता है। ज्ञानदृष्टि से यज्ञादि का आचरण करके उत्तम देवलोक को प्राप्त होता है। जो वर्णाश्रम धर्म का आचरण करता हुआ यथेष्ट सत्कर्म करता है, वह श्रेष्ठ है। कितने ही चतुर योगी सदा निर्मलबुद्धि से ब्रह्म के चिन्तन में मग्न रहते हैं और पवित्र, सम्पन्न गृहस्थ के घर जाकर केवल क्षुधा निवृत्ति के लिये सिद्धअन्न ग्रहण कर लेते हैं तथा निर्जन स्थान में निवास करते हैं, वे प्रशंसनीय योगी हैं। जो गृहस्थ के घर जाकर अपनी पण्डिताई दिखा कर भिक्षा माँगता है, वह उत्तम योगी नहीं।

जो सदाचारी, शुद्धता पूर्वक अपनी जाति में रहकर तत्त्वार्थ का चिन्तन करता है और अपने कृत कर्मों का प्रकाश नहीं करता तथा ईर्ष्या, घमण्ड आदि नहीं करता, वह श्रेष्ठ ब्राह्मण है। सब विषयों से रहित, जिसका अन्तःकरण शुद्ध है, सरलता, इन्द्रियनिग्रह, सत्यता आदि गुण जिसमें निवास करते हैं, वह कृतविद्य मोह से रहित उत्तम ब्राह्मण है। इसके बाद अध्यात्मिक विषय की बहुतेरी बातें कह के महर्षि सनत्सुजातमुनि अपने आश्रम को चले गये।

महात्मा विदुर ने अनेकों नीति की बातें कह कर धृतराष्ट्र को बहुत समझाया, पर वे कर्म की अपेक्षा भाग्य को ही श्रेष्ठ मान कर अपनी ही बात पर अटल रहे। इस प्रकार तरह तरह की बातें करते हुए वह रात बीत गई। पाण्डवों के साथ न्याय करना मोहान्ध धृतराष्ट्र को पसन्द न आया।

प्रातःकाल होने पर महाराज धृतराष्ट्र सभाभवन में गये। यह सुन कर भीष्म, द्रोण, कृप,

शल्य, जयद्रथ, शकुनि, कृतवर्मा, भगदत्त, भूरिश्रवा, कर्ण आदि बड़े बड़े महारथी भी आये। दुर्योधन भी दुःशासन आदि अपने भाइयों के साथ सभाभवन में आये। सभाभवन की शोभा इन्द्र की सभा को भी लज्जित कर रही थी। सम्पूर्ण भवन तरह तरह के सुगन्धित द्रव्यों से महँक रहे थे। उसके बीच में एक सोने का चबूतरा बना हुआ था। वहाँ सोने, चाँदी, हाथीदाँत, लकड़ी और पत्थर के उत्तमोत्तम आसन रक्खे हुए थे। उन पर सब लोग यथायोग्य बैठ गये। कुछ देर बाद द्वारपाल ने आकर निवेदन किया—

महाराज! सूतपुत्र सञ्जय आये हैं और द्वार पर खड़े होकर भीतर आने की आज्ञा चाहते हैं।

राजा की आज्ञा से सञ्जय भीतर आये और सब को यथाविधि प्रणाम नमस्कार कर बोले—

हे कौरववृन्द तथा राजन्यवृन्द! पाण्डवों ने सब कौरव वृद्धों को हाथ जोड़ कर प्रणाम कहा है तथा छोटों को आशीर्वाद।

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय! पाण्डवों से जो बातें हुई हैं, उन्हें विस्तारपूर्वक कहो।

सञ्जय ने कहा—महाराज! हमने पाण्डवों के समीप जाकर आप का सन्देशा कह सुनाया। सब सुन कर धर्मराज की सम्मति से अर्जुन ने कहा—अब दुर्योधन का नाश निश्चित है, इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं।

हे महाराज! इस समय पाण्डवों को जीत लेने में इन्द्र भी समर्थ नहीं हैं। दुर्योधन का गर्व करना तो व्यर्थ है। इसलिये अपने अपराधों को समझ कर पाण्डवों का हक़ लौटा देने में ही कुशल है। जिस समय अपनी प्रतिज्ञानुसार भीम गदा लेकर युद्धभूमि में खड़े होंगे, दुर्योधन से कुछ भी न बन पड़ेगा। गाण्डीव धनुष का टङ्कार करके अर्जुन जिस समय बाणों की वर्षा करने लगेंगे, उस समय कौरवों में कोई वीर ऐसा नहीं है जो उनका सामना कर सके। नकुल, सहदेव, द्रौपदी के पाँचों पुत्र, अभिमन्यु, सात्यकि, घटोत्कच ये सब वीर बाणों की झड़ी लगाकर कुरुवीरों का निपात कर देंगे। इस समय बड़े बड़े महारथी राजा लोग उनकी सहायता करने के लिये तैयार हैं। सब से बढ़ कर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जिसके सलाहकार हैं, उसे जीत लेनेवाला हमें तो तीनों लोक में कोई नहीं दिखाई पड़ता है। यह कह कर सञ्जय ने क्रम क्रम से युधिष्ठिर और श्रीकृष्ण ने जो जो बातें कही थीं, सब एक एक करके कह सुनायीं।

यह सब सुन कर पितामह भीष्म ने कहा—हे दुर्योधन! पाण्डव लोग बड़े धर्मात्मा हैं, वे अबतक धर्म पर अटल हैं। फिर यदुवीर महापुरुष श्रीकृष्ण के समान उनके रक्षक हैं। अन्याय करके उन पर विजय पाना असम्भव है। इसलिये अब तुम मेरी सलाह मान कुरुकुल को नाश होने से बचाओ। शकुनि, दुःशासन और कर्ण की नाशकारी सलाह में मत पड़ो।

यह सुन कर कर्ण बोला—मैंने राजा का कौन सा अपकार किया है? स्वामी का कार्य साधन करना ही क्षत्रियों का परम धर्म है, कुरुराज के साथ मैंने वही किया है। इससे आप क्यों बहुत बुरा मान रहे हैं? आप व्यर्थ ही क्यों इतना भयभीत हुए जाते हैं? मैं अकेले ही सब पाण्डवों का बध करूँगा।

यह सुन कर भीष्मपितामह ने क्रोध करके कहा—

हे राजा धृतराष्ट्र! सुनिये, यह सूतपुत्र जो कुछ प्रलाप कर रहा है, वह और कुछ नहीं, केवल आप के पुत्रों के नाश का मन्त्र जप रहा है। फिर उन्होंने कर्ण से कहा—

तीनों लोक में कोई ऐसा नहीं जन्मा है जो पाण्डवों का बध कर सके। तुम जब विराट

नगर में गये थे, तब क्यों नहीं अपनी वीरता प्रगट करके पाण्डवों का बध किया ? गन्धर्वों ने जब दुर्योधन को पकड़ लिया, तब तुम्हारी वीरता कहाँ थी ? दूसरे का ब्रत नष्ट करने के लिये घमण्ड भरी बातें करते हुए तुझे लज्जा नहीं आती ?

भीष्म की यह बात सुन कर कृपाचार्य ने उसका समर्थन किया। धृतराष्ट्र ने उन लोगों की बातों पर ध्यान न देकर कहा—

हे सञ्जय ! युधिष्ठिर किनके बाहुबल पर युद्ध करने की इच्छा रखते हैं ?

सञ्जय ने कहा—महाराज ! भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव, ससैन्य राजा द्रुपद, राजा विराट, शिखण्डी, धृष्टद्युम्न, पाँचों भाइयों के साथ केकयराज, सात्यकि, अभिमन्यु, द्रौपदी के पाँचों पुत्र, धृष्टकेतु, शिशुपाल का पुत्र, जरासन्ध का पुत्र तथा और भी कितने ही महारथी युधिष्ठिर के सहायक हैं, इनके अतिरिक्त सात अक्षौहिणी प्रबल सेना आक्रमण करने का दिन जोह रही है।

यह सुन कर धृतराष्ट्र ऊँची साँस लेकर बोले—

भीम कठिन वीर है। वह गदा धारण करके मत्त गजेन्द्रों के मस्तक विदीर्ण कर सकता है। वह शिव और इन्द्र के समान बलवान है। हमारे दल में कोई ऐसा नहीं, जो युद्ध में भीम के सामने ठहर सके। दुर्योधन के लिये उसकी प्रतिज्ञा समझ कर हमारा हृदय सूखा जाता है। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि वह गदा धारण कर हमारी सेना का संहार कर रहा है। निस्सन्देह वह हमारे पुत्रों को मार डालेगा। यह दुस्सह शोक रूपी ज्वाला हमारे हृदय में जल रही है। इसी चिन्ता से मेरी नींद नष्ट हो गई है। अर्जुन भी वैसा ही धनुर्धर वीर है। शिवजी से तथा इन्द्र से उसने दिव्यास्त्र प्राप्त किये हैं। वह तो सब संसार को जीतने में समर्थ है, तिसपर त्रैलोक्यनायक श्रीकृष्ण सारथि मिल गये हैं। भावी अनिष्ट को सोचकर हम जल रहे हैं, पर मूर्ख पुत्रों को यह सब नहीं सूझ रहा है। हे सञ्जय ! मालूम होता है, कुरुवंश के नाश के दिन आ गये। हमारे पुत्र दुराग्रह न छोड़ेंगे, रुधिर की नदी बहेगी। यह सब अनर्थ हमें दिखाई पड़ रहा है।

यह सुन कर दुर्योधन ने गर्व के साथ कहा—हे पिताजी ! आप किसी प्रकार का सन्देह न करें। क्षात्रधर्म की ओर ध्यान दीजिये। मैंने बलदेवजी की सेवा करके उनसे अनुपम गदायुद्ध सीखा है। मैं गदायुद्ध में भीम को मार कर विजयी होऊँगा। परशुराम का प्रसिद्ध शिष्य धनुर्धर कर्ण मेरी ओर है, वह अर्जुन को ललकार कर मार डालेगा। भीम, अर्जुन के मारे जाने पर पाण्डवों में कोई ऐसा वीर नहीं है, जो हमारा सामना कर सके। जिसने इक्कीस दिन महात्मा परशुराम से घोर युद्ध किया, वह महाबलशाली भीष्म मेरी ही ओर हैं। धनुर्धर कृपाचार्य गुरु द्रोण मेरे सहायक हैं, जिन्हें जीतने वाला पृथ्वी पर कोई वीर नहीं है। अश्वत्थामा, शल्य, जयद्रथ, शकुनि, बाह्लीक, दुःशासन, भगदत्त आदि मेरे पक्ष के महारथियों का मुकाबला करनेवाला पाण्डवों की ओर कौन है ? मेरी सहायता के लिये प्रबल ग्यारह अक्षौहिणी सेना तैयार है और पाण्डवों के पास केवल सात अक्षौहिणी सेना है, फिर आप उन्हें किस बात में अधिक समझ कर इतने चिन्तित हो रहे हैं ? इसके सिवा हम बहुत दिनों से शासन कर रहे हैं और पाण्डव लोग तेरह वर्ष तक तपस्वियों की तरह बन में घूमते रहे हैं। वे निर्धन हैं, हमारे पास अथाह धन सम्पत्ति है, हे पिता जी ! इन बातों को विचार कर आप चिन्ता को छोड़ दें। सब प्रकार हमारी विजय अटल है।

धृतराष्ट्र ने कहा—हे दुर्योधन ! व्यर्थ युद्ध करके क्यों कुल का नाश किया चाहते हो ? भीष्म, द्रोण, कृप आदि बार बार इस अनर्थकारी युद्ध को रोकने के लिये कह रहे हैं।

दुर्योधन ने कहा—हे पिता ! भीष्म, द्रोण आदि सदा से हमारे शत्रुओं का पक्ष समर्थन करते आये हैं। हम उनलोगों के भरोसे युद्ध नहीं ठान रहे हैं। हम प्रण करके कहते हैं कि कर्ण और दुःशासन की सहायता से हम सम्पूर्ण शत्रुओं का निपात कर देंगे। हमारे जीते जी पाण्डव लोग राज्यसुख न भोगने पावेंगे। या वे हमारा ही बध करके तब राज्य पा सकेंगे। अब हमको कोई इस विषय में किसी प्रकार की सलाह न दे, जो होना होगा वह होगा।

यह सुन कर धृतराष्ट्र क्रोध से बोले—मत्त गजेन्द्रों के कुम्भस्थल को विदीर्ण करनेवाले सिंह के समान भीम अपनी गदा से तुम्हारे सब योद्धाओं का संहार करेंगे। जब अर्जुन और सात्यकि के बाणों से तुम व्यथित होगे, तब हमारी बातों का स्मरण करोगे।

हे पुत्र ! शत्रु के बलाबल को विचार कर तब युद्धघोषणा करनी चाहिये। पाण्डव लोग सब प्रकार से बलवान् हैं। उनकी एक एक बात स्मरण कर हमारा हृदय जला जाता है। धर्मात्मा पाण्डवों के साथ तुम क्यों इतनी शत्रुता कर रहे हो ?

दुर्योधन ने कहा—पिताजी चिन्ता छोड़ दीजिये, धीरता धारण कीजिये। चिन्ता से बना हुआ काम भी नष्ट हो जाता है। पाण्डवों की सहायता यदि देवराज भी करेंगे, तो भी वे हम से बच नहीं सकते। हमारे प्रभाव की ओर ध्यान दीजिये। प्रजा हमारे शासन से परम सन्तुष्ट है, उस से किसी प्रकार का भय नहीं। वह सदा हमारे लिये प्राण देने को तैयार है। पाण्डव लोग तेरह वर्ष बनवास करने से अत्यन्त दुखी और दुर्बल हो रहे हैं। कृष्ण, सात्यकि, मत्स्यराज, द्रुपद आदि क्षुद्र नदियों की तरह सागर के समान हमारी सेना में समा जायँगे। आप क्यों इतने भयभीत हो रहे हैं ?

यह सुन कर कर्ण बड़ी प्रसन्नता से बोला—हे दुर्योधन ! हम अकेले ही पाण्डवों का बध करेंगे आप निस्सन्देह होकर युद्ध कीजिये। भीष्म, द्रोण आदि दूर से खड़े रहकर हमारे युद्ध-कौशल को देखें। आप भी विजय का भार हमारे ऊपर छोड़ कर निश्चिन्त हो जायँ।

कर्ण का मिथ्याप्रलाप भीष्म से न सहा गया—वे बोले—हे सूतपुत्र ! कालवश होकर तू कुरुकुल के नाश होने की बातें क्यों कर रहा है ? त्रैलोक्य में कौन ऐसा वीर है, जो युद्ध में अर्जुन को जीत ले। स्वयं श्रीकृष्ण जिसका सारथ्य कर रहे हैं, उसके जीतने की आशा आकाशकुसुम के समान है। तेरे समान तो अनेकों वीरों को अर्जुन ने क्षणमात्र में मार गिराया है। तुम्हें जो इस बात का अहङ्कार है, कि हम पाण्डवों का संहार करेंगे, वह व्यर्थ है। इस प्रकार की अहङ्कारपूर्ण बातें करते क्या तुम्हें लज्जा नहीं आती ? बल में तू पाण्डवों का सोलहवाँ हिस्सा भी नहीं है। बार बार तेरे ही उत्तेजना देने के कारण कौरव लोग मोहान्ध हुए हैं और उसीसे उन्हें इस प्रकार के दुष्कर्म करने का साहस हुआ है। तू जब ब्राह्मण बन कर परशुराम के पास अस्त्रविद्या सीखने गया था, तभी उनके शाप से तेरी शिक्षा का फल नष्ट हो गया था। तेरे सदृश धर्मभ्रष्ट मनुष्य की सहायता के भरोसे कौरव लोग इस घोर युद्ध में अवश्य काल के ग्रास हो जायँगे।

भीष्म के वाग्बाणों से सन्तप्त होकर कर्ण ने अपने सारे अस्त्र फेंक दिये और बोले—

हे पितामह ! आपने पाण्डवों के गुणों का जैसा वर्णन किया है, वे वैसेही या उससे भी अधिक हो सकते हैं। परन्तु इस सभा में आपने हमें जो कठोर वाक्य कहे हैं उनका फल सुन लीजिये। देखिये, हमने सारे अस्त्र त्याग दिये। जब तक आप जीवित रहेंगे, हम इनको छूएँगे भी नहीं। धृतराष्ट्र के पुत्र जानते हैं, हम कभी धर्मभ्रष्ट नहीं हुए और लेशमात्र भी पाप हमने नहीं किया।

हम सदा राजा धृतराष्ट्र के मन का काम करते आये हैं। युद्ध में आपके मारे जाने पर हम अपना प्रभाव और पराक्रम दिखला कर कौरवों की रक्षा करेंगे।

यह कह कर महाधनुर्धर कर्ण तुरन्त सभा से निकल कर अपने घर चले गये।

तब महात्मा विदुर फिर समझाने लगे। उन्होंने कहा—

हे दुर्योधन! दुराग्रह छोड़ दो। भाइयों से विरोध करके आज तक कोई सुखी नहीं हुआ है। सुनो, हम तुम से एक इतिहास कहते हैं।

एक व्याधा ने बन में जाकर जाल फैलाया। मोहवश दो पक्षी आकर उस में फँस गये। तब वे आपस में सलाह कर जाल लेकर उड़ चले। व्याधा यह देख कर उनको पकड़ने के लिये पीछे दौड़ा। उसे दौड़ता देख कर दोनों पक्षियों ने कहा—देखो, यह व्याधा बड़ा मूर्ख जान पड़ता है, आकाशगामी हम लोगों को पकड़ने के लिये पृथ्वी पर दौड़ रहा है। यह सुन कर व्याध ने कहा—हमारी विधि उत्तम है, जब तुम दोनों जाल के भीतर आपस में लड़ोगे, तब अवश्य पृथ्वी पर गिरोगे और हमारा अभीष्ट सिद्ध हो जायगा। कुछ दूर जाने पर दोनों पक्षियों में झगड़ा हो ही गया और वे ज़मीन पर आ गये। तब व्याधा ने उन्हें पकड़ लिया और उनके साथ मनचाहा व्यवहार किया। इसलिये मेरी बात मान लो, बन्धुविरोध करने से कभी हित न होगा।

इसी प्रकार तरह की बातें करके सब लोग दुर्योधन को समझाने लगे। पर उसने किसी की न सुनी। अन्त में उदास होकर धृतराष्ट्र ने उस दिन की सभा भङ्ग कर दी।

उधर पाण्डव लोग सञ्जय के चले जाने पर बहुत चिन्तित हुए। युधिष्ठिर ने कृष्ण से कहा:—

हे मित्रवत्सल! अब हमारी रक्षा करने का समय आ गया है और आप से बढ़ कर हमारा हित चाहनेवाला दूसरा नहीं। इसलिये जिस प्रकार आप आपत्तिकाल में सदा यादवों की रक्षा करते आये हैं, वैसे ही हमारी रक्षा कीजिये।

कृष्ण ने कहा—हे युधिष्ठिर! देखिये, हम तो आप के पास उपस्थित हैं। जो आप कहें, हम वही करने को तैयार हैं। युधिष्ठिर ने कहा:—

सञ्जय ने जो कुछ कहा, उससे हम लोगों को धृतराष्ट्र के मन की सच्ची बात साफ़ साफ़ मालूम हो गई। दुर्योधन महा अनर्थ करने पर उतारू है। उसने शास्त्र, कुलाचार और वृद्धों की रीति का त्याग कर दिया है। लोभ वश वह सब कुछ करने को तैयार है। लोभी पुरुष को लोकलज्जा नहीं रह जाती। उसने हम पर जो जो अन्याय किये हैं, वह सब आप जानते हैं, वे लोग हमें राज्य दिये बिनाही शान्ति रखना चाहते हैं। परन्तु अब दीनता का दुःख हम से नहीं सहा जाता है। दीनता महापाप का फल है। दरिद्रता से बढ़ कर रौरव नरक भी नहीं है। दुर्गति भोगने की अपेक्षा तो अब युद्ध करके मर जाना ही अच्छा है। किन्तु दोनों ओर से अपना ही विनाश देख हमें बड़ी ग्लानि हो रही है। बुद्धिमान् चाचा धृतराष्ट्र वृद्ध हैं, वे पुत्रस्नेह के कारण किङ्कर्त्तव्य विमूढ़ हो गये हैं। हमें अब तक यही विश्वास था, कि प्रतिज्ञानुसार बनवास का समय बीत जाने पर धृतराष्ट्र हम लोगों का राज्य अवश्य लौटा देंगे। इसी से हमने प्रतिज्ञा भङ्ग नहीं की और अनेक प्रकार के कष्ट सहने पर भी धीरज नहीं छोड़ा। इस समय अपने कुचाली पुत्र के वशीभूत होकर हमारे साथ वे अन्याय करने पर तुले हुए हैं। किन्तु हे जनार्दन! हम अपनी माता और अपने भाइयों को और अधिक कष्ट देने का कोई कारण नहीं देखते। जिस में कुलक्षय न हो, इसलिये अन्त में पाँच गाँव ही लेकर इस विवाद

को शान्त करने की हमने इच्छा प्रगट की किन्तु सारे राज्य को अपने ही अधिकार में रखने के लोभी कौरवों ने इस शर्त्त को भी न माना। इससे अधिक दुःख की बात और क्या हो सकती है? हमने झगड़ा बचाने के विचार से कितना तरह दिया, यह आप से छिपा नहीं है। अब हम न्याय से अपना राज्य पाने के अधिकारी हैं। हे केशव! यह विषय बड़ा जटिल हो गया है। आप को छोड़ कर हमें कर्त्तव्य का उपदेश देनेवाला दूसरा नहीं। आप दोनों पक्षों के शुभचिन्तक हैं। इस विषय में सब बातों का मर्म जाननेवाला आपके सिवा और कौन है?

युधिष्ठिर की बात सुन कर कृष्णजी कुछ देर तक चुप रहे फिर वे बोले—

हे धर्मराज! दोनों ओर के कुशल का विचार करके हम भी एक बार धृतराष्ट्र के पास जाना चाहते हैं। वहाँ जाकर हम नीति धर्म कह कर युद्ध रोकने का प्रयत्न करेंगे। आपके स्वार्थ पर हम पूर्ण ध्यान रक्खेंगे। यदि वे हमारे समझाने से न मानेंगे, तो संसार में हम अपनी ओर से तो निर्दोष हो जायँगे,। सारा संसार कौरवों के अधर्म और अनीति की निन्दा करेगा। आपके सन्तोष और क्षमा का यह फल होगा कि आपकी सुकीर्त्ति का घर घर गान होगा। निन्दित होकर जीने की अपेक्षा सुयश के साथ मर जाना अच्छा है।

युधिष्ठिर ने कहा—हे केशव! दुर्योधन महा दुर्बुद्धि है, इसलिये हमें आपका जाना किसी प्रकार नहीं रुचता है। राज्य के लोभ से कौरव हतबुद्धि हो गये हैं। इससे वे कभी आपका उचित आदर सत्कार न करेंगे। आप जो कुछ उपदेश देंगे वह अवश्य युक्तिपूर्ण और उचित होगा। परन्तु नीच दुर्योधन आपकी बातें कभी न स्वीकार करेगा। दूसरे राजा और राजपुरुष लोग भी उसी के हाँ में हाँ मिलावेंगे, क्योंकि वे उसी के वश में हैं। हे माधव! उन अधर्मियों के घर जाने से आप पर यदि कोई आपत्ति आवे तो इस लोक का राजपाट तो दूर रहे, देवताओं के समान ऐश्वर्य मिलने पर भी हमारे मन का दुःख दूर न होगा।

श्रीकृष्ण बोले—हे धर्मराज! हम दुर्योधन की पापबुद्धि का पूरा ज्ञान रखते हैं। हम से कोई बात छिपी नहीं तथापि हमारा हस्तिनापुर जाना किसी तरह व्यर्थ न जायगा। या तो हम अपने काम में सफल होकर सब का उद्धार करेंगे, नहीं तो अन्त तक शान्ति का प्रयत्न करने के कारण संसार में हमें कोई निन्दनीय तो न समझेगा। हमारे लिये आप किसी प्रकार का भय न करें। यदि अज्ञानवश कौरव लोग हम पर अत्याचार करने की चेष्टा करेंगे, तो हम अपनी रक्षा करने की काफ़ी शक्ति रखते हैं।

युधिष्ठिर ने कहा—हे केशव! यदि आप इसी में कल्याण समझते हैं तो हम मना नहीं करते। आशा है, आप सफलमनोरथ होकर बिना विघ्न बाधा के लौट आवेंगे। आपको जो कुछ रुचै, वही कीजिये।

भीमसेन ने कहा—हे जनार्दन! आप तो दुर्योधन के स्वभाव से भली भाँति परिचित हैं। वह महाक्रोधी है; शठों का सिरताज है; दूरदर्शिता तो उसे छू तक नहीं गई है; आगे पीछे की सब बातें सोच कर काम करना वह जानता ही नहीं। इस समय वह अपने ऐश्वर्य के मद से मत्त हो रहा है। उसके साथी हमारे साथ शत्रुता करने के लिये उभाड़ रहे हैं। वह अपने प्राणों से चाहे भले ही हाथ धो बैठे, पर नम्र होने का नहीं। इस समय दोनों तरफ़ युद्ध का जैसा सामान इकट्ठा हुआ है उससे तो यही मालूम होता है कि युद्ध होने से यह जगत् प्रसिद्ध भरतकुल जड़ से नाश हुए बिना न रहेगा। एक एक काल पुरुष जन्म लेकर जैसे एक एक राजवंश के नाश का कारण होता है, उसी तरह मालूम होता है, कुलाङ्गार दुर्योधन ने भरतवंश के संहार के लिये ही जन्म लिया है। इसके कारण यदि

भरतवंश समूल नष्ट हो जाय, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। इसलिये हे यदुनाथ! यदि किसी प्रकार दुर्योधन को शान्त करके यह कुलनाश निवारण किया जा सके, तो बड़ी अच्छी बात है। यदि हम लोगों को नम्र होने की आवश्यकता हो, तो इस इतने बड़े भरतकुल की रक्षा के लिये हम वह भी करने को तैयार हैं। धर्मराज तो नम्रता से काम लेने का वचन दे ही चुके हैं; अर्जुन भी इस वंशनाशकारी युद्ध को कभी अच्छा न समझेंगे।

पहाड़, जो बेहद वज़नी होता है, यदि हलका हो जाय और आग, जिस में सदा दाहक शक्ति रहती है, यदि शीतल हो जाय, तो जैसे बड़े आश्चर्य की बात हो, वैसे ही महाउग्रस्वभाववाले भीमसेन के मुँह से नम्रता से भरी हुई कोमल बात सुन कर महातेजस्वी श्रीकृष्ण को विस्मय हुआ। भीमसेन की बात का ठीक मतलब जान लेने की इच्छा से वे उनसे हँसी करते हुए बोले —

हे भीमसेन! प्रतिज्ञापालन के पहले तो तुम युद्ध की बड़ी प्रशंसा किया करते थे। बनवास के समय नीचा मुँह किये पड़े रहते थे और रात्रि में मारे चिन्ता के तुम्हें नींद न आती थी। सदा तुम क्रोधाग्नि से जला करते थे, अकेले में हमेशा ही भौंहें टेढ़ी किया करते थे और हमेशा ठण्डी साँस लिया करते थे। दिन रात युद्ध की चिन्ता के सिवा और किसी बात में तुम्हारा मन ही न लगता था। आज बनवास का वह क्लेश कहाँ गया? कौरवों की सभा में द्रौपदी का जो अपमान हुआ था, वह इस समय क्या तुम्हें बिलकुल ही भूल गया? क्या समझ कर तुम नम्रता दिखाने की सलाह दे रहे हो? दुर्योधन के पास अधिक सेना देख कर तुम्हें मोह तो नहीं हो गया? तुम डर तो नहीं गये?

कृष्ण के इन वचनों का मतलब भीमसेन समझ गये। उन्होंने जान लिया कि इशारे से कृष्ण हमें कायर बना रहे हैं। इससे उन्हें बड़ा सन्ताप हुआ। वे इस प्रकार क्रोधपूर्ण वचन बोले—

हे कृष्ण! आप इतने दिन से हमारे पास रहते हैं, तिस पर भी जान पड़ता है आपने हमें अच्छी तरह नहीं पहचाना। इसी से आपने ऐसी अनुचित बात अपने मुँह से निकाली। आप को छोड़ कर और किसी में शक्ति नहीं, जो हम पर ऐसा अन्यायपूर्ण दोष लगावे। हम अपनी बड़ाई अपने मुँह से नहीं करना चाहते, परन्तु हमारा वंश संसार में इतना प्रसिद्ध है कि उस पर हमारी बहुत अधिक ममता है। इसीसे हमें जो क्लेश उठाने पड़े हैं, उनको भूल कर और उनके कारण उत्पन्न हुए क्रोध को रोक कर, हम शान्तिस्थापन करने की इच्छा रखते हैं।

तब श्रीकृष्ण भीम को शान्त करते हुए बोले—हे वीरशिरोमणि! हम तुमको अच्छी तरह जानते हैं तुम्हारी बात का मतलब जानने के लिये हमने तुम से वैसा कहा। उसे तुम हँसी समझो। तुम ने अपने लिये जो कुछ कहा, हम उससे भी अधिक तुम्हारे प्रभाव को समझते हैं। यद्यपि हम सन्धिस्थापन करने जाते हैं और उसके लिये कोई बात उठा न रक्खेंगे, तथापि मनुष्य की चेष्टा की अपेक्षा दैव को प्रधान समझना चाहिये। इससे हमारे सफलमनोरथ होने में बहुत सन्देह है। यदि कौरव लोग हमारी बात न मानेंगे, तो भयङ्कर युद्ध हुए बिना न रहेगा। फिर कोई बात ऐसी नहीं, जिससे युद्ध का निवारण हो सके। इस युद्ध में हम लोगों को तुम्हारे ही बल और पराक्रम पर पूरा भरोसा रखना पड़ेगा। इसीसे तुम्हारी नम्रता को देखकर हमने तुम्हारे तेज को प्रज्वलित करना उचित समझा, अर्जुन भी नम्रता को ही अधिक पसन्द करते हैं।

यह सुन कर अर्जुन ने कहा—हे केशव! आपका कहना यथार्थ है। पर, मैं मरने से नहीं डरता हूँ। शत्रु चाहे कितना हो बड़ा हो, रणभूमि में मैं उसे अपने समान नहीं समझता। किन्तु युद्ध होने पर बड़ा भरी अनर्थ दिखाई पड़ता है। कुरुकुल का नाश और अन्त में विषाद यही हाथ लगेगा। पहले फल

को बिचार कर तब कार्य का आरम्भ करना चाहिये। यदि अपने को परिणाम न सूझ पड़े तो वृद्धों से सलाह लेनी चाहिये। बुद्धिमानी से कार्यारम्भ करने पर उसका अन्त सुहावना होता है। यह तो सब जानता है कि संसार अनित्य है। निर्धन, धनी, एक दिन सभी को मरना होगा। तब अपने हित के लिये बन्धु-बान्धवों का नाश कौन चाहेगा ? फल भाग्याधीन है। मनुष्य का पुरुषार्थ व्यर्थ है। दुष्ट दुर्योधन ने जो जो नीच कर्म किये हैं, वे हमारे हृदय में भाले की तरह गड़ रहे हैं। तो भी कुलक्षय को बचाकर हम शान्ति की कामना करते हैं। आप से बढ़ कर हमारा हितैषी दूसरा नहीं, इसलिये आपको जो रुचै वह कीजिये।

कृष्ण ने कहा :—हे पार्थ! तुम्हारा कहना बहुत ठीक है। कर्मफल दैवाधीन है। फिर भी यत्न करना मनुष्य का धर्म है। हाथ पर हाथ रख कर बैठे रहने से विधाता फल नहीं देता। उसमें भी कर्म सापेक्ष है। जब कर्म करने पर फल न मिले तब भाग्य को दोष देना उचित है। क्षत्रिय को तो भाग्य पर भरोसा करना ही नहीं चाहिये। तुम दुर्योधन का मत जानते हो। वह सीधे राज्य लौटा देने पर कभी राज़ी न होगा। तिस पर शकुनि दुःशासन और कर्ण के समान उसे दुष्ट मन्त्री मिल गये हैं। इन्हीं के कारण जुआ हुआ और तुम्हारा सर्वस्व हरा गया, जैसा राजा है वैसे ही मन्त्री मिले हैं। सब अनर्थ का ही सामान तो है। फिर भी हम यथाशक्ति शान्ति की चेष्टा करेंगे। हमको तो दोनों पक्ष का कल्याण अभीष्ट है।

तब नकुल बोले :—हे कृष्ण! धर्मराज आदि मेरे बड़े भाइयों ने शान्ति रखने की बात कही। परन्तु हमारे विचार में तो यह आता है कि यदि पहले शान्तिस्थापन करने में सफलता न हो, तो डर दिखा कर भी अपना मतलब निकाल लेना बुरा न होगा। हम लोगों को युद्ध सम्बन्धी जो सहायता और सामग्री मिली है उसे देख कर दुनियाँ में कौन ऐसा मूर्ख है, जो हमारे साथ युद्ध के लिये तैयार होने का साहस कर सके। युक्ति से भरी हुई आपकी बात और कोई चाहे न सुने, परन्तु भीष्म, द्रोण और विदुर ज़रूर ही आदर पूर्वक सुनेंगे और आपके अनुकूल अपनी राय भी देंगे। जहाँ आप वक्ता और वे लोग सहायक हैं, वहाँ कौन काम ऐसा है जो सिद्ध न हो सके ?

सहदेव ने कहा :—हे अरिमर्दन केशव! महाराज युधिष्ठिर और दूसरे भाई लोग तो धर्ममार्ग को ही अच्छा समझ कर शान्तिस्थापन की चेष्टा में अपना भला समझते हैं। परन्तु हमारी राय वैसी नहीं। हम तो ऐसे काम को किसी तरह अच्छा नहीं समझते। भरी सभा में द्रौपदी का जो इस प्रकार अपमान किया गया है, उसका प्रायश्चित्त दुर्योधन की मृत्यु के सिवा और किसी बात से हो सकता है ? बिना दुर्योधन को मारे हमारे हृदय का यह सन्ताप और किसी तरह दूर होने का नहीं।

सहदेव की उक्तियों का समर्थन करते हुए सात्यकि ने कहा :—

हे वासुदेव! वीर वर सहदेव ने बहुत सच कहा, पाँचों पाण्डवों और तपस्विनी द्रौपदी के इतने दिन के बनवास और अज्ञातवास में उन्हें जो सैकड़ों तरह के महा दुःखदायी क्लेश सहने पड़े हैं, उनसे हम सब के मन में महाभयङ्कर क्रोध उत्पन्न हुआ है। दुर्योधन का बध किये बिना वह क्रोध किस तरह शान्त हो सकता है? कौन ऐसा योद्धा है, जो इसबात का समर्थन न करेगा कि ऐसे भारी अपराध के लिये दुर्योधन को अवश्य प्राणदण्ड न देना चाहिये ?

महावीर सात्यकि के मुँह से यह बात सुन कर वहाँ बैठे हुए सब योद्धा लोग उनकी सराहना करने लगे। कोई ऐसा न था जिसके मुँह से सात्यकि के लिये प्रशंसा सूचक शब्द न निकले हों।



द्रौपदी की करुणा ।

केशव जब कौरवसभा, करब शान्ति उपदेश । पृष्ठ १८२

भूलि न जैयो वीर कहुँ, दुष्ट दलित ये केश ॥

बेलवेडियर, प्रेस, प्रयाग ।

उस समय द्रौपदी अपने पतियों के नम्रभाव को देख कर जीती ही मुर्दा सी बन बैठी थी। परन्तु सहदेव और सात्यकि के मुँह से जब उसने अपने मन की बात सुनी, तब उससे चुप न रहा गया। उसने जाना कि मेरे दुःख से दुखी होनेवाले यहाँ कोई हैं। रोती हुई द्रौपदी श्रीकृष्ण से बोली—

हे माधव! धृतराष्ट्र के पुत्रों ने हम लोगों पर कहाँ तक अत्याचार किये हैं, इसको आपको बार बार याद दिलाने की ज़रूरत नहीं। धर्मराज ने केवल पाँच गाँव लेकर सन्धि कर लेने की इच्छा आप के ही सामने प्रगट की। पर उसे भी कौरवों ने अस्वीकार कर दिया। अस्तु, आप कौरवों की सभा में जाते हैं, जाइये। परन्तु सारा राज्य लिये बिना और किसी शर्त पर सन्धि न कीजियेगा। कौरवों की सभा में जब हमारा इतना अपमान किया गया, तब भी हमारे पति कोमलता धारण किये बैठे रहे। सारा अपमान उन्होंने चुप चाप सह लिया। अब वे अपनी प्रतिज्ञा का पालन कर चुके हैं। इस समय उन्हें किसी तरह का बन्धन नहीं रहा। अब काम करने का समय आया है। तिस पर भी भीम और अर्जुन नम्रता दिखा रहे हैं, उनकी बातें सुन सुन कर मेरा कलेजा फटा जाता है, इस समय आपको छोड़ कर और कोई मेरी रक्षा करनेवाला नहीं। मैं आपके शरण हूँ, आपही धृतराष्ट्र के इन पापी पुत्रों को उचित दण्ड दीजिये। यदि मेरे पति युद्ध न करना चाहें तो न करें, कोई हानि नहीं। मेरे वृद्ध पिता और बलवान भाई युद्ध करेंगे। अभिमन्यु को आगे करके मेरे तेजस्वी पाँच पुत्र युद्ध करने में किसी तरह का आगा पीछा करनेवाले नहीं।

इतना कह कर द्रौपदी विह्वल हो उठी, वह फूट फूट कर रोने लगी। दुःख का वेग कुछ कम होने पर उसने अपने छूटे हुए काले केशों को हाथ में लिया और कहने लगी—

हे केशव! जब कौरवों की सभा में शान्ति की बात उठे तब नीच पाखण्डी दुःशासन के हाथ से अपवित्र हुए मेरे इन बालों की बात न भूल जाना।

श्रीकृष्ण द्रौपदी को धीरज देकर बोले—

हे शोभने! तुम इस समय जिस तरह रो रही हो उसी तरह कौरवों की स्त्रियों को तुम थोड़े ही दिनों में रोती हुई देखोगी। हे द्रौपदी! अब अधिक मत रोओ, आँसू पोछो तुम्हारे पति बहुत जल्द शत्रुओं का संहार करके अपना राज्य प्राप्त करेंगे। मेरी बात तुम अटल समझो, यह कदापि असत्य नहीं हो सकती।

इसी प्रकार की बातें होते होते वह रात बीत गई। दूसरे दिन सबेरे ज्योंही सूर्य भगवान् ने अपनी किरणों का जाल फैलाकर दशों दिशाओं को प्रकाशित किया, त्योंही यदुवंश शिरोमणि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र हस्तिनापुर जाने की तैयारी करने लगे। उन्होंने ब्राह्मणों के मुँह से मङ्गल पाठ सुन कर स्नान किया। फिर सुन्दर वस्त्र-आभूषण पहन कर सूर्य और अग्नि की पूजा की। इसके बाद सात्यकि को बुला कर कहा—

हे सात्यकि हमारे रथ में शङ्ख चक्र, गदा और दूसरे प्रकार के सब अस्त्र सजा कर रख दो। दुर्योधन, शकुनि और कर्ण बड़े दुरात्मा हैं। इसलिये उनके पापकर्मों से अपनी रक्षा के लिये तैयार होकर जाना उचित है।

कृष्ण की आज्ञा के अनुसार सात्यकि ने रथ में सब प्रकार के अस्त्र-शस्त्र यथास्थान सजा कर रख दिये। रथ को तैयार देख कृष्ण सब से विदा हुए और सात्यकि के साथ जाकर रथ में बैठ गये। उनके साथ हथियारों से सजे हुए दस महारथी, दस हज़ार सवार, और दस हज़ार पैदल सेना रवाना हुई। इनके अतिरिक्त खाने, पीने का सामान लेकर बहुत से नौकर चाकर भी उनके पीछे पीछे

चले । श्रीकृष्ण का सारथि दारुक रथ हाँकने में बहुत ही प्रवीण था । घोड़े की रास थामते ही वे हवा हो गये । इस प्रकार कृष्णचन्द्र ने हस्तिनापुर की ओर प्रस्थान किया । वे दिन भर चल कर वृकस्थल नामक स्थान में पहुँचे और रात्रि में वहीं विश्राम किया ।

उधर राजा धृतराष्ट्र ने दूतों से सुना, कि भगवान् कृष्णचन्द्र स्वयं आ रहे हैं । तब भीष्म, द्रोण, विदुर आदि के सामने वे इस प्रकार बोले—

नीतिज्ञों में श्रेष्ठ कृष्णचन्द्र पाण्डवों की हितकामना से आ रहे हैं । सब प्रकार से हमारे मान्य हैं । इसलिये उनका बहुत उत्तम सत्कार होना चाहिये । उनकी पूजा सब प्रकार से कल्याण दायिनी है । इस से आगे से जाकर उन्हें आदर के साथ ले आना चाहिये ।

पिता की बात सुन कर दुर्योधन ने वैसाही प्रबन्ध किया । जगह जगह टिकने के लिये उत्तम घर बनवा दिये गये । अनेकों दास दासी सब जगह राजसी सामान लेकर सत्कार के लिये उपस्थित हो गये । एक एक योजन पर यह सब प्रबन्ध कर दिया गया ।

इस प्रबन्ध को सुन कर धृतराष्ट्र ने कहा—उनके स्वागत के लिये हस्तिनापुर नगर भी ख़ूब सजाया जाय । सब महलों में पताकाएँ, तोरण, बन्दनवार शोभित हों । सौभाग्यवतीयुवती स्त्रियाँ सुन्दर वस्त्र पहन कर भरे हुए सोने के कलश लेकर खड़ी रहें । दुर्योधन को छोड़कर शेष मेरे सब पुत्र पौत्र आगे से जाकर कृष्णजी को ले आवें । उनकी भेंट के लिये रत्नजटित चार घोड़ों से जुते हुए सोने के सोलह रथ, आठ हाथी, एक सौ दास, दासी, पहाड़ी देश के बने हुए कोमल कम्बल और चीन देश के मृगचर्म दिये जायँ । अपने भाण्डार की विमल कान्तिवाली वे मणियाँ भी हम कृष्णचन्द्र को देना चाहते हैं जिनका प्रकाश दिन रात एक सा बना रहता है । जिस रास्ते से कृष्ण आवें, उस रास्ते में ख़ूब पानी छिड़का जाय, जिसमें धूल का नाम न रहे । दुर्योधन के घर की अपेक्षा दुःशासन का घर अधिक अच्छा है । इससे वही ख़ूब साफ़ करके सजाया जाय । उसी में श्रीकृष्ण ठहराये जाँय । हमारे और दुर्योधन के पास रत्न आदि जितने बहुमूल्य पदार्थ हैं, उनमें से जो जो कृष्ण के योग्य हों, वे सब उनको देने के लिये उसी घर में रक्खे जायँ ।

यह सब सुनकर विदुर ने कहा—महाराज ! आपने जो सब तैयारी करने की आज्ञा दी, कृष्ण उसी के नहीं, उससे भी अधिक आदर सत्कार के योग्य हैं । परन्तु, हमें तो यह मालूम होता है कि ये सब धन रत्न आप प्रीति पूर्वक सच्चे हृदय से कृष्ण को देने का प्रबन्ध नहीं कर रहे हैं । हमें तो साफ़ देख पड़ता है कि भगवान् कृष्णचन्द्र को अपने पक्ष में कर लेने के विचार से रिश्वत के तौर पर आप ये सब चीज़ें उन्हें देना चाहते हैं । किन्तु आपका यह सारा प्रयत्न व्यर्थ हो जायगा । आदर सत्कार करके और धन सम्पत्ति देकर आप कृष्ण को पाण्डवों से कभी अलग न कर सकेंगे । कौन नहीं जानता कि कृष्ण को अर्जुन प्राणों से भी अधिक प्यारे हैं ? हे महाराज ! कृष्ण हम लोगों से इतना ही चाहेंगे कि उनके साथ साधारण शिष्टता का व्यवहार किया जाय । जैसा बर्त्ताव एक भलाआदमी दूसरे भलेआदमी के साथ करता है, वैसा ही बर्त्ताव उनके साथ कियाजाना बस होगा । इससे अधिक आदर सत्कार करने की वे कभी हम से आशा न रक्खेंगे । वे दोनों पक्ष की मङ्गलकामना से यहाँ आ रहे हैं, वे हृदय से चाहते हैं कि दोनों का कल्याण हो । वे जो कुछ धर्मोपदेश करें, उसे मान लेने ही से वे समझेंगे कि हमारा बहुत बड़ा आदर हुआ । इस के सिवा वे और कुछ भी नहीं चाहते और देने से लेंगे भी नहीं ।

दुर्योधन ने कहा—विदुर का कहना बहुत ठीक है । पाण्डवों से कृष्ण को फोड़ने की कोशिश

करना व्यर्थ है । इससे आप जो धन-रत्न कृष्ण को देनेका विचार कर रहे हैं, वह उचित नहीं है। कृष्ण अवश्य ही उन सब वस्तुओं के पाने के पात्र हैं, इसमें सन्देह नहीं । किन्तु इस समय वे समझेंगे कि हम लोग भयभीत होकर ये सब चीज़ें देकर उन्हें प्रसन्न करना चहते हैं। हम जब उनकी सन्धि सम्बन्धी बात मानने को तैयार नहीं तब उन्हें धन रत्न की भेंट देना कदापि उचित नहीं।

पितामह भीष्म ने कहा—हे कुरुराज ! तुम चाहे कृष्ण का सत्कार करो चाहे न करो, वे इससे कभी बुरा न मानेंगे । तुम्हारे अधिक आदर करने और बहुत सी बहुमूल्य चीजों की भेंट देने से वे कभी धर्ममार्ग को न छोड़ेंगे। वे सत्य के पथ से एक पग भी इधर उधर न जायँगे । तथापि उनका निरादर न होना चाहिये वे निरादर के पात्र नहीं। जो कुछ वे कहेंगे, धर्म की बात कहेंगे। उनका कहना मान लेने में ही कुरुकुल का हित है । उनकी बात न मानने से कभी तुम्हारा हित न होगा।

दुर्योधन ने कहा—हे पितामह ! यह तो कदापि सम्भव नहीं कि इस अखण्डराज्य सम्पत्ति में हम पाण्डवों को साझी बनावें और जो कुछ हमें मिले, उसीसे हम सन्तुष्ट रहें । हम राज्य को बाँट देने के लिये तैयार नहीं हैं। पाण्डवों को अपने वश में कर लेने का एक बहुत ही सहज उपाय हमारे मन में आया है, सुनिये । कृष्ण की सहायता के बिना पाण्डव लोग एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकते । इससे यदि इस अवसर पर हम लोग कृष्ण को ज़बर्दस्ती क़ैद करलें, तो फिर कभी अर्जुन युद्ध करने का साहस न कर सकेंगे । अधिक तो क्या, ऐसा होने से सम्पूर्ण राज्य अनायास ही हमारे वश में हो जायगा । फिर किसी के सिर उठाने की हिम्मत तक न हो सकेगी इसलिये आप को ऐसी चाल चलनी चाहिये, जिसमें वह भेद किसी पर प्रगट न होने पावे और बिना किसी विघ्न बाधा के कृष्ण पकड़कर क़ैद कर लिये जायँ ।

दुर्योधन की यह नीच कूटनीति सुनकर धृतराष्ट्र का हृदय व्यथित हो उठा । वे दुःख से व्याकुल होकार बोले—

हे वत्स्य ! तुम कभी भूल कर भी ऐसी बात अपने मुँह से न निकालना । कृष्ण हमारे सम्बन्धी हैं और परम हितैषी हैं । वे योंही हमारे प्यारे हैं, फिर इस समय तो वे दूत होकर आ रहे हैं । उन्होंने कभी कुरुकुल का अपकार नहीं किया, कभी कोई काम ऐसा नहीं किया, जिससे हम लोगों की बुराई हुई हो । इसलिये उनके साथ इस तरह का बुरा व्यवहार करना बहुत बड़े अधर्म की बात होगी ।

दुर्योधन की बात सुन कर पितामह भीष्म अत्यन्त क्रुद्ध होकर बोले—हे धृतराष्ट्र ! तुम्हारा यह पुत्र महापापी है । यह सदा अनर्थ की ही चिन्ता किया करता है। आश्चर्य तो इस बात का है कि तुम इसे दण्ड न देकर उलटा इसी के कहने में चलते हो । तुम से और अधिक क्या कहें, यदि यह दुष्ट दुर्योधन कृष्ण के साथ कोई अनुचित काम करने की चेष्टा करेगा, तो इसे निश्चित् समझ रक्खो कि इसका सर्वनाश उसी समय हो जायगा ।

इतना कह कर पितामह भीष्म क्रोध से काँपते हुए वहाँ से उठ कर चल दिये ।

इधर वृकस्थल में रात बिता कर प्रातःकाल होने पर श्रीकृष्ण ने स्नान पूजा आदि नित्यकर्म किया और हस्तिनापुर चलने की तैयारी करने लगे । वृकस्थल के निवासियों ने उन्हें चारों तरफ़ से घेर लिया और उनके साथ साथ हस्तिनापुर चले । भीष्म द्रोण आदि महात्मा और दुर्योधन के अतिरिक्त धृतराष्ट्र के सब पुत्र कृष्ण की अगवानी के लिये गये । कृष्ण के दर्शन करने के लिये पुरवासी हस्तिनापुर से बहुत बड़ी संख्या में गये । कोई कोई तरह तरह के रथों पर चढ़ कर चले और कोई पैदल ही गये ।

कौरवों से घिरे हुए श्रीकृष्णचन्द्र ने नगर में प्रवेश किया, उनके सम्मान के लिये नगर खूब सजाया गया, राजमार्ग अनेक प्रकार के रत्नों से सुशोभित किया गया । घरों की खिड़कियाँ कृष्ण का दर्शन करनेवाली स्त्रियों से भर गईं । जिस मार्ग से कृष्ण आ रहे थे, उसमें इतनी भीड़ हुई कि हवा के समान तेज़ चलनेवाले कृष्ण के घोड़ों को चींटी की चाल चलनी पड़ी ।

धीरे धीरे कृष्ण का रथ राजमहलों के सामने आ पहुँचा । वहाँ वे रथ से उतर पड़े और धृतराष्ट्र के महल की ओर चले । तीन फाटक पार करने के बाद वे धृतराष्ट्र के पास पहुँचे । उस समय धृतराष्ट्र के पास जितने राजा लोग बैठे थे, सब के साथ धृतराष्ट्र अपने आसन से उठ खड़े हुए और कृष्ण का उचित आदर किया । कृष्ण ने बड़ी नम्रता से सब की पूजा की और उम्र में छोटे बड़े का ध्यान रख कर सब से यथोचित रीति से मिले । इसके बाद जो आसन पहले ही से उनके लिये लगा हुआ था, उसपर जब बैठ गये तब अर्घ्य आदि देकर उनकी पूजा की गई । इस प्रकार सत्कार हो चुकने पर जिससे जैसा सम्बन्ध था उससे उसी के अनुसार हँसी दिल्लगी और प्रेम पूर्वक बातचीत करते हुए कुछ देर तक वहाँ बैठे रहे ।

वहाँ से कृष्णजी विदुर के घर गये । विदुर बड़े धर्मात्मा थे । उन्होंने ऐसा अच्छा अतिथि घर आया देख कृष्ण का बहुत ही सत्कार किया और बोले :—

हे वासुदेव ! आपके दर्शन से हमें कितनी प्रसन्नता हुई है, उसके वर्णन करने में हम असमर्थ हैं । आदि से अन्त तक पाण्डवों का सारा वृत्तान्त आप से सुनने की बड़ी इच्छा है । कृपा पूर्वक सब सुनाइये ।

तब कृष्ण ने विदुर को प्रसन्न करके पाण्डवों का कुशल समाचार विस्तार पूर्वक कह सुनाया । विदुर के घर में अच्छी तरह विश्राम करके तीसरे पहर वे अपनी बुआ कुन्ती के घर गये । अपने पुत्रों को प्राण से भी अधिक प्यार करनेवाली कुन्ती बहुत दिनों के बाद पुत्रों के परम सहायक कृष्ण को पाकर उनसे बड़े प्रेम से मिली । कृष्ण के कन्धे पर हाथ रख कर एक एक पुत्र का अलग अलग नाम ले ले कर वह रोने लगी । कुन्ती ने कहा—

हाय ! मैं विधवा हो गई; मेरी धन सम्पत्ति भी नष्ट हो गई; बन्धु बान्धव भी शत्रु हो गये; परन्तु इन बातों से मुझे इतना कष्ट नहीं हुआ, जितना अपने पुत्रों के वियोग से हो रहा है । मैं दिन रात उनके सोच में मरी जाती हूँ । आज चौदह वर्ष बीत गये, धर्ममूर्ति युधिष्ठिर को सब प्रकार की अस्त्रशस्त्र की विद्या जाननेवाले अर्जुन को, महावीर भीम को, और माद्री के परम कान्तिमान् दोनों पुत्रों को मैं ने नहीं देखा । हाय ! इतने दिन तक उन्होंने और उनसे भी बढ़ कर अधिक प्यारी मेरी द्रौपदी ने नहीं मालूम कितना क्लेश उठाया है । कुछ भी हो, उन्होंने जो प्रतिज्ञा की थी उस का पालन कर चुके । अब उनके लिये कोई बन्धन नहीं । इस लिये इस समय क्षत्रियधर्म के पालन में उन्हें ज़रा भी सङ्कोच न करना चाहिये जिस में सनाथ होकर भी महा पतिव्रता मेरी प्यारी द्रौपदी अनाथ की तरह दुःख न पावे ।

कृष्ण कुन्ती को धीरज देते हुए बोले—हे सीमन्तिनी ! तुम्हारी समानता की भाग्यवती और बुद्धमती स्त्री दूसरी कौन है ? तुम उत्तम कुल में उत्पन्न होकर उत्तम कुल में प्राप्त हुई हो और धर्मात्मा तथा नीति कुशल पुत्रों की माता हो । अत्यन्त सम्पत्ति और अत्यन्त विपत्ति चन्द्रमा ही सहन कर घटा और बढ़ा करते हैं, तारागणों के झुण्ड नहीं । तुम समान महान् विदुषी ही बड़े सुख और बड़े दुःख सहन करने में समर्थ होती हैं, पामर जीव-

धारी नहीं। छोटे लोग अधिक सम्पत्ति पा जाने पर मतवाले होकर दुःख उठाते हैं, साधुजन वृक्ष के सामन अटल रहते हैं और सुख दुःख के विकार में नहीं फँसते। दुर्योधन के छल की रात में पाण्डव लोग भूल कर सो गये। इसलिये उन्हें स्वप्न के समान कुछ काल तक दुःसह दुःख सहना पड़ा। अब तो अच्छा प्रभातकाल हो जाने से तुम्हारे पुत्र जाग पड़े हैं और अच्छे सहायकों के मिलने से प्रसन्न हैं। अब वे भयङ्कर संग्राममार्ग से ही सभा भवन में प्रवेश करेंगे। विजय के द्वारा यश के भागी होकर प्रसन्नतापूर्वक राज्यसुख का उपभोग करेंगे। अब आप धीरता धारण करके शोक का त्याग कर दें, आप शीघ्र ही अपने पुत्रों को पाकर सुखी होंगी। द्रौपदी और तुम्हारे प्यारे पुत्रों ने तुम्हें विनय पूर्वक प्रणाम कहे हैं।

यह सुन कर कुन्ती को बड़ा ढारस हुआ। वह आनन्द के साथ बोली—हे कृष्ण! आप अवश्य अभय वर के देनेवाले हैं। धर्म की रक्षा कर आप सब सुखों के देनेवाले हैं। आप मेरे पुत्रों के सहायक होकर अवश्य उनका कल्याण करेंगे। इसलिये आपको जो रुचै, वही कीजिये।

यह सब सुन कर भगवान् कृष्णचन्द्र वहाँ से विदा हुए और दुर्योधन के घर आये। यहाँ उन्होंने देखा—अनेकों हाथी, घोड़े, रथ तथा बड़े बड़े वीर शोभित हैं, वल्लमवरदार सोने के सोटे लिये ड्योढ़ी पर खड़े हैं। इस प्रकार परम ऐश्वर्य देखते हुए दो फाटक पार करके दुर्योधन के महल में श्रीकृष्ण-जी पहुँचे। जहाँ बाहर भीतर चारों ओर परम राजसता चमक दमक के साथ जगमगा रही है, सुन्दर रत्नजटित राजसिंहासन पर दुर्योधन विराजमान है। असंख्यों राजा, शकुनि, दुःशासन, कर्ण, चारों ओर से घेर कर शोभित हैं। इस प्रकार इन्द्र के समान बैठे हुए दुर्योधन ने कृष्ण को आते देखा और उठ कर स्वयम् इनके पास गये। बड़े आदर से अर्घ्य देकर ले आये और अपने आसन पर बिठाया। ब्राह्मणों ने विधि पूर्वक मधुपर्क अर्पण किया। फिर कुछ देर बाद कुशल प्रश्न हो चुकने पर दुर्योधन ने कृष्ण से भोजन के लिये प्रार्थना की। उसे अस्वीकार करने पर कपटी दुर्योधन ने कहा:—

जिस प्रकार आप पाण्डवों के प्रेमी हैं, वैसे ही हमारे भी सम्बन्धी हैं। आप दोनों के समान हित अहित के साथी हैं, आप सन्मार्ग पर चल कर सब बातों के जाननेवाले हैं। इसलिये आप बत-लावें कि क्यों हमारा अन्न ग्रहण करने में अस्वीकार करते हैं?

कृष्णचन्द्र ने दुर्योधन को भुजाओं पर हाथ रख कर कहा:—हे दुर्योधन! तुम इस भेद को न जानने से ही ऐसा कह रहे हो। हम यहाँ पाण्डवों के दूत बन कर आये हैं। दूत जिसकी हितकामना से कहीं जाता है तो उसका पहला धर्म है कि अपने मतलब का साधन करे। दूत का यह धर्म नहीं कि अपना पेट भरके आनन्द मनाने लगे।

दुर्योधन ने कहा:—हे कृष्ण! आप को ऐसा न करना चाहिये। आप चाहे जिस भाव से आवें, पर हैं तो दोनों के समान हितैषी। अर्थसिद्धि हो, चाहे मत हो, किन्तु भोजन करना सर्वथा उचित है। हम से आप से तो कोई बैर है नहीं, अब भी कोई शत्रुता नहीं हुई है। सम्बन्धी समझ कर हमने यथोचित पूजा की है, फिर इस प्रकार की जुदाई प्रगट करना उचित नहीं। एक प्रीति के मान लेने में ही बड़ाई है।

यह सुन कर श्रीकृष्ण मुसकुराते हुए दुर्योधन से बोले—हे दुर्योधन! बैर, लोभ अथवा ईर्ष्या के कारण हम भोजन का त्याग नहीं कर रहे हैं। यदि तुम्हें सच्चा कारण जानने की अभिलाषा है तो सुनो। पाण्डव सब दिन से हमारे साथी हैं। उनसे हमारा अटल प्रेम है। उनके अहित को हम अपना अहित समझते हैं। उनका हित करनेवाला हमें अर्जुन के समान प्यारा है

पाण्डव लोग सब प्रकार से धर्म में लगे हुए हैं, जो गोत्र वंश का पालन करता है, सदा वही धर्मात्मा कहलाता है। तुम अधर्म में लगे हो, इसलिये मैं तुम्हारे अन्न को ग्रहण करने से इनकार करता हूँ। हम विदुर के घर जाकर प्रेम का अन्न खायँगे।—

इस प्रकार कह कर कृष्णजी उठे और विदुर के घर गये प्रेम के कारण द्रोण, भीष्म, वाह्लीक भी वहाँ तक उनके साथ गये। फिर कृष्ण ने उन्हें विदा कर दिया। विदुर ने प्रेम और भक्ति से विह्वल होकर कृष्ण को भोजन कराया। ब्राह्मणों की पूजा करके कृष्ण ने प्रेम से भोजन किया।

रात में विदुर ने श्रीकृष्ण से कहा:—हे वासुदेव! आपका दूत होकर यहाँ आना हमें अनुचित जान पड़ता है। दुर्योधन महा मूर्ख और दुराग्रही है। वह राज्य के गर्व से मतवाला हो रहा है। अपने ही सुख को सर्वस्व समझता है। वृद्धों की बात तथा धर्मशास्त्र को तुच्छ समझ कर उनकी अवहेलना किया करता है और उनकी बातों को नहीं मानता है। भीष्म, द्रोण, कृप, कर्ण और अश्वत्थामा के बल से अपने को अजेय समझता है। वह समझता है कि कर्ण का सामना करने में एक भी पाण्डव समर्थ नहीं है। युद्ध को छोड़ कर उसे और कुछ भी पसन्द नहीं है। उसके सामने आपकी बातें वैसी ही होंगी, जैसे बहिरे के लिये उत्तम गीत। इसलिये आप उससे कोई बात न कहें, द्विज चाण्डाल को मन्त्र नहीं देता। उसके व्यवहार को समझ कर, हमें तो आपका उसकी सभा में जाना ही नहीं रुचता है। हम जानते हैं कि आपको किसी प्रकार का भय नहीं है, तो भी प्रेम वश यह कह रहे हैं। दुर्योधन महाकुटिल और दुर्बुद्धि है। इसलिये उसके वीरों के बीच आपका जाना हमें पसन्द नहीं।

यह सुनकर कृष्ण ने कहा:—हे विदुर! आपका कहना बहुत सच है। पवित्रात्मा आप से बढ़ कर मेरा हितैषी दूसरा कौन हो सकता है? दुरात्मा दुर्योधन का दुराचार मैं अच्छी तरह जानता हूँ। पर आप हमारे लिये किसी प्रकार की चिन्ता न करें। हम सब प्रकार से उनके हित की बात समझा कर कहेंगे, यदि वे मान लेंगे तो अच्छा ही है, नहीं तो कौरव पाण्डव युद्ध होकर क्षत्रियों का नाश होगा ही। कौरवों को अपने किये का फल चखना ही पड़ेगा और हम भी नीति का उपदेश कर देने के कारण संसार में अदोषी समझे जायँगे।

इस प्रकार की बातें करते हुए श्रीकृष्णचन्द्र सो गये। रात बीतने पर नगारे की आवाज़ और वन्दीजनों के मुँह से स्तुतिपाठ सुनकर उठे। वे प्रातःकाल का कृत्य करने लगे कि इतने ही में भीष्म, द्रोण, दुर्योधन आदि भी वहाँ आ गये। कृष्णजी ने सब को आदर के साथ बैठाया और स्वयं नैमित्तिक कर्मों से निपट कर सुन्दर वस्त्राभूषण पहन रथ पर चढ़ कर कौरवों की सभा में चले।

उनके साथ अन्य कौरव वीरों को लिये दुर्योधन, यदुवंशियों के साथ सात्यकि रथ पर चढ़कर चले। पीछे पीछे अनेकों हाथी, घोड़े, पैदल सैनिक कृष्ण का गुणानुवाद करते हुए चले। दुन्दुभी और शंख मधुर ध्वनि से बजने लगे। असंख्यों पताकाएँ फहराने लगीं। उस समय की शोभा देख कर इन्द्र के मन में भी क्षोभ उत्पन्न हो गया। नगर के स्त्री-पुरुष अपना काम छोड़ कर इस अलौकिक शोभा को देखने लगे। इस प्रकार बड़े ठाट वाट के साथ कृष्णजी सभाद्वार पर पहुँचे। वहाँ कृष्णजी रथ से उतर पड़े और सात्यकि का हाथ पकड़ कर दुर्योधन भीष्म द्रोण आदि कौरव वीरों के साथ सभाभवन में चले। पीछे पीछे कृतवर्मा आदि वृष्णि वीर भी गये। कृष्ण का आना सुनकर राजा धृतराष्ट्र उठ खड़े हुए। उन्हें उत्तम सुवर्ण सिंहासन पर बैठाकर तब स्वयं भी बैठ गये। कृष्ण ने द्वार पर महर्षियों को देखकर भीष्म से कहा:—

हे महात्मा भीष्म! देखिये, महर्षि लोग द्वार पर खड़े हैं इनको आदर पूर्वक सभा में ले आइये और उचित आसन पर बैठाइये।

यह सुनकर महात्मा भीष्म सभा के देखने की इच्छा से आये हुए नारद आदि ऋषियों की पूजा करके उन्हें सभा में ले आये। यह देख कर कौरवों के नौकरों ने मणिजटित सोने के आसन लाकर वहाँ रख दिये। महर्षिगण उन्हीं आसनों पर जा विराजे। तब सभासद अपने अपने आसनों पर बैठ गये। कर्ण और दुर्योधन पासही पास एक आसन पर बैठे। विदुर कृष्ण के पास उनकी बगल में बैठ गये। सब लोग अपने आसनों पर बैठ कर चुपचाप कृष्ण की ओर उत्सुकता से देखने लगे। चारों ओर सन्नाटा छा गया। भगवान् कृष्णचन्द्र समझ गये कि सब लोग हमारे बोलने की राह देख रहे हैं। अतएव गम्भीर वाणी से सभाभवन को गुञ्जायमान करके उन्होंने धृतराष्ट्र से इस प्रकार कहना आरम्भ किया।

हे महाराज! कौरव और पाण्डवों में सुखदायी सन्धिस्थापन करने के विचार से हम आप के समीप आये हैं। व्यर्थ वीरों का नाश न हो, एक मात्र हमारी यही अभिलाषा है। इस समय संसार में जितना कुरुकुल प्रसिद्ध और प्रशंसित हो रहा है, उतना दूसरा वंश नहीं। उसमें भाग्यशाली आप के समान राजा इस समय सिंहासनासीन हैं। परन्तु आपके पुत्र सर्वथा आपके विपरीत आचरण कर रहे हैं, वे धर्म का त्याग कर अधर्ममार्ग से जा रहे हैं। लोभवश हतबुद्धि होकर उन्होंने मर्यादा का त्याग कर दिया है। परम प्यारे अपने भाइयों से भयङ्कर शत्रुता का भाव ग्रहण किया है। विचार न करने के कारण व्यर्थ ही महान अनर्थ हुआ चाहता है, उसे शान्त करने का प्रयत्न कीजिये; क्योंकि ऐसा करने में आप समर्थ हैं। इधर आप अपने पुत्रों को समझाइये, उधर हम पाण्डवों को समझा लेंगे। यदि ऐसा न हुआ तो संसार में उथल पुथल मचा देनेवाली समस्या उपस्थित हो जायगी। दोनों ओर प्रबल महारथी एकत्रित हुए हैं, इसलिये किसकी जीत होगी, यह कहना असम्भव है। परन्तु दोनों ओर के वीरों का संहार होना निश्चित है। हमारी बात मान कर आप अपने पुत्र पौत्रों के स्वर्गीय सुख को देखिये, अपने पुत्रों और भतीजों द्वारा शत्रुओं को जीतकर सम्पूर्ण पृथ्वी के शासक बनिये। अपने ही धन के लिये दो भाई मरमिटें, इसमें कौन लाभ है? जीत और हार दोनों में हानि ही दिखाई पड़ती है। युद्धाकांक्षी आपके पुत्र और पाण्डव लोग दोनों ही हैं, क्रोध वश दोनों ही वंश के नाश का मार्ग पकड़े हैं। हे राजन्! इसे विचार कर आप भयङ्कर अनर्थ को रोकें और राजा लोग सकुशल अपने अपने देशों को लौट जायँ। पितृहीन पाण्डवों को बालपन से ही आपने पुत्र के समान पाला है, उनके साथ अब भी आप को वैसा ही बर्त्ताव करना चाहिये।

राजा युधिष्ठिर ने आपको प्रणाम करके कहा है कि हमने वृद्ध राजा की आज्ञा सिर पर धारण करके बारह वर्ष कठिन वनवास के दुःख को सहा। एक वर्ष अज्ञातवास भी बड़ी कठिनाई से किया। उसे पूरा करके अब हम अपना अधिकार चाहते हैं। आप हमारे पिता, गुरू और पालन करनेवाले हैं, हम तो बालक के समान आपके सेवक हैं। पहिले ही की तरह अब भी हम आपके प्रीतिपात्र हैं। इसलिये धर्म के अनुसार हमारा लालन पालन कीजिये। जो राजा प्रमाद वश अपने धर्म का त्याग कर देता है, उसके अनुगामी भी उसी के मार्ग के पथिक हो जाते हैं। आप सर्वज्ञ और बुद्धिमान् हैं, जो उचित जान पड़े, वही करें। इस प्रकार राजा युधिष्ठिर ने आप से प्रार्थना की है। आपने पहिले इन्द्रप्रस्थ पाण्डवों को दिया था। उसे उन लोगों ने अपनी बुद्धि से बढ़ाया। पर आप के पुत्रों ने छल से उसे छीन लिया और सभा के बीच द्रौपदी का अपमान कर कटुवचन कहे। किन्तु उनलोगों

ने धर्म का विचार कर आपकी आज्ञा से सब कुछ सहन किया और प्रतिज्ञा पूर्ण कर फिर नम्रता पूर्वक अपने हक़ के लिये आप से प्रार्थना करते हैं। कुल का सर्वनाश हो जानेपर आप सारा राज्य लेकर ही क्या करेंगे ? हम सम्बन्ध का विचार कर दोनों ओर का कल्याण चाहते हैं, इसलिये पुकार कर कहते हैं, वैर त्याग कर दीजिये, शान्तिस्थापन करने में ही कुशल है।

भगवान कृष्ण के इस प्रकार कह कर चुप हो जाने पर सब ने मन ही मन उनके प्रस्ताव की प्रशंसा की; परन्तु किसी को कुछ बोलने का साहस न हुआ। महात्मा परशुराम कृष्ण की बातों का समर्थन करते हुए बोले—

हे कृष्ण! आप का कहना बहुत यथार्थ है। यदि राजा धृतराष्ट्र आप की बात मान लें तो सब प्रकार से कल्याण होगा। इस विषय में मैं एक इतिहास कहता हूँ, आप लोग सुनें।

दम्भोद्भव नामक एक चक्रवर्ती राजा था। उस अभिमानी ने अपने यहाँ के ब्राह्मण क्षत्रियो से कहा—क्या हमारे समान पृथ्वी पर और भी कोई वीर है ? इस प्रकार प्रतिदिन अहङ्कार पूर्ण बातें किया करे। बार बार गर्वोक्ति सुनते सुनते ब्राह्मणों को क्रोध हो आया। उन्होंने कहा—हाँ, दो हैं। तुम उनका मुकाबला नहीं कर सकते। वे गन्धमादन पर्वत पर तपस्या कर रहे हैं, उनके समान तीसरे त्रैलोक्य में नहीं है। यह सुनकर चतुरङ्गिनी सेना के साथ दम्भोद्भव गन्धमादन की ओर चला। वहाँ पहुँचने पर नर-नारायण ने उसका यथोचित सत्कार कर आने का कारण पूछा। दम्भोद्भव ने कहा—हम पृथ्वी पर अपने समान दूसरे को नहीं समझते। आपलोगों को अधिक बलवान् समझ कर युद्ध करने की अभिलाषा से आये हैं। उन्होंने बार बार युद्ध की बुराइयाँ दिखाकर रोकने की चेष्टा की, पर अभिमानी दम्भोद्भव ने नहीं माना। तब उन्होंने मूठ भर सींक उठा कर दम्भोद्भव से कहा—तुम अपने अस्त्र शस्त्र लेकर तैयार हो जाओ। दम्भोद्भव यह सुनकर बाणों की वर्षा करने लगा। उधर नर-नारायण ने देखते ही देखते उसे बाणों से बाँध कर मूच्छित करदिया। चेतना होने पर अत्यन्त लज्जित होकर वह नर-नारायण के पैरों पर गिर पड़ा। उसके आर्त्त विनय को सुनकर नर-नारायण ने कहा—जाओ, पवित्र बुद्धि से धर्ममार्ग को ग्रहण करो। फिर ऐसी छोटी बात मन में कभी मत लाना। निरपराध के साथ और कमज़ोरों के साथ युद्ध करके ऐसा गर्व कभी न करना कि मेरे समान अब दूसरा योद्धा नहीं है। अच्छे राजा का धर्म है कि उदारता और शान्ति के साथ प्रजा का पालन करे। बलाबल का विचार कर साम, दाम, दण्ड, भेद नीति को बर्त्ते। अपने हितैषियों से मृदुभाषण करे, उनकी अच्छी बातों को मान ले। धर्म के अनुसार विजयी होनेवाला राजा ही चतुर कहा जाता है।

यह सुनकर नर-नारायण की वन्दना करके वह अपने घर गया। अर्जुन को नर रूपधारी समझ कर सन्धि कर लेना ही उत्तम है।

परशुराम की बात सुनकर महर्षि कण्व ने कहा—हे दुर्योधन! धर्म का आचरण करो। महात्मा परशुराम बहुत ठीक कह रहे हैं। अर्जुन की महत्ता सब लोग जानते हैं, हमारी समझ में सन्धि कर लेना ही उचित है। उत्पत्ति, पालन, संहार करनेवाले कृष्ण के समान जिसके सारथि हैं, हनूमानजी जिसकी ध्वजा की रक्षा कर रहे हैं, उनसे दुर्बुद्धि के कारण युद्ध की इच्छा न करो। उनको अपना साथी बनाकर सम्पूर्ण वसुधा का उपभोग करो।

दुर्योधन को मुनियों का हितोपदेश भला कब सहन हो सकता था ? वह अधिक देर तक इस तरह की बातें न सुन सका, भौंहें टेढ़ी करके कर्ण की तरफ़ उसने हँस कर देखा। ऋषियों की बात

का अनादर करके उसने अपनी जाँघ पर एक थपेड़ा मारा और कहा :—हे ऋषिगण! परमेश्वर ने हमें उत्पन्न करके जैसी बुद्धि दी है, हम वैसा ही काम करते हैं। हमारे भाग्य में जो कुछ है वही होगा। आप लोग व्यर्थ प्रलाप न करें हमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है।

यह सुन कर महर्षि नारद ने गालव मुनि की कथा कहते हुए कहाः—हे दुर्योधन! दुराग्रह से किसी का कल्याण नहीं हुआ है। अत्यंत अभिमान करनेवाले का सारा ऐश्वर्य नष्ट हो जाता है। इसलिये अभिमान को त्याग कर सुनीति का आचरण करो।

नारद मुनि की बात समाप्त होने पर राजा धृतराष्ट्र ने कहा :—हे मुनिवृन्द! आप लोगों ने बहुत यथार्थ उपदेश दिया है। यही मत हमारा भी है। फिर उन्होंने कृष्ण से कहाः—

हे कृष्ण! आप समझा कर दुर्बुद्धि दुर्योधन को शांत कीजिये। वह हम लोगों का समझाना नहीं मानता है।

यह सुन कर कृष्ण ने दुर्योधन से कहाः—हे दुर्योधन! तुम बुद्धिमान राजा हो, इसलिये वृद्धों की शिक्षा का तिरस्कार न करो। हठ को त्याग कर उस अच्छे काम को करो, जिसे नीतिज्ञ और धर्मात्मा लोग करते हैं। क्रोध करने से अपकीर्ति का स्रोत बढ़ता है, उसमें पड़ने से हितैषी और गोत्र का भी नाश हो जाता है। वह काम मत करो, जिसमें बड़े अनिष्ट की सम्भावना हो। सदाचारी मंत्री होने पर सुख उत्पन्न होता है और दुष्ट मंत्री से पहले का सुख भी नष्ट हो जाता है। इन्द्र के समान तेजस्वी भाइयों से शत्रुता करना नीति नहीं है। तुमने पाण्डवों के साथ बड़े बड़े अनर्थ किये, पर वे धर्म का विचार कर आज तक सहते ही गये। इससे यदि अपना कल्याण चाहते हो तो क्रोध को त्याग कर उनसे सन्धि कर लो। भावी क्षत्रियों का नाश देख कर हमें दुःख हो रहा है। आप्तजनों का कहना मान कर नीति पथ का अनुसरण करो।

यह सुन कर भीष्म पितामह ने कहाः—हे राजा! कृष्णचन्द्र हितकामना से जो कुछ कह रहे हैं उसे मान लो। उसके मान लेने में ही कल्याण है। वे धर्म और अर्थ से भरी हुई आनन्द देने वाली बातें कह कर समझा रहे हैं। यदि कुरु कुल का हित चाहते हो, तो सन्धि करने में ही कुशल है। नहीं तो बुद्धिमानों को भासित हो चुका, कुरुकुल का नाश निकट है। इसलिये हम बराबर समझा रहे हैं, भाई का बिरोध करके आज तक कोई सुखी नहीं हुआ।

भीष्म की बातों का समर्थन करते हुए आचार्य द्रोण बोले :—हे तात! दुःखदायी क्रोध का त्याग कर दो। महात्मा भीष्म धर्म-अर्थ से भरी हुई सुख बढ़ानेवाली बातें कह रहे हैं। वह तुम्हें मान लेना चाहिये। अर्जुन अकेले ही सम्पूर्ण संसार जीत लेने में समर्थ हैं, तिस पर कृष्ण के समान उसके सहायक मिल गये हैं। इस अवस्था में यदि तुम हठ का त्याग न करोगे, तो सर्वनाश निश्चित है। अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है, चेत जाओ।

महात्मा बिदुर ने कहाः—हमें तुम्हारे लिये शोक नहीं है। किन्तु गांधारी और धृतराष्ट्र के दुःख को बिचार कर हम दुखी हो रहे हैं, ये पुत्र, मित्र आदि के नाश से दुखी होकर बिलाप करेंगे और अनाथों की तरह परमुखापेक्षी होंगे। यही सब सोच बिचार कर हम अधिक चिन्तित हो रहे हैं।

इन लोगों की बातें सुन कर राजा धृतराष्ट्र अत्यंत विह्वल हो उठे वे दुर्योधन से इस प्रकार बोले—हे बेटा! क्रोध और हठ को छोड़ दो। मेरी बात मान कर कुरुकुल को नाश होने से बचा लो। तुम युधिष्ठिर के पास कृष्णजी के साथ चले जाओ। मुझे विश्वास है, वे दोनों का समान रूप से हितसाधन करेंगे।

यह सब सुन कर भी दुरात्मा दुर्योधन कुछ न बोला। तब पितामह भीष्म फिर कहने लगे जब तक धर्मराज युधिष्ठिर दिक्पालों के समान वीर अपने भाइयों को साथ लेकर आक्रमण नहीं करते हैं, हे दुर्योधन! तब तक तुम अपना कुशल समझ लो। भलाई इसी में है कि धर्मराज के पास चल कर उन्हें आदर से लिवा लाओ और उनका अधिकार उन्हें लौटा दो।

दुर्योधन और किसी का उत्तर न देकर सीधे कृष्णचन्द्र से बोला—

हे केशव! आप बार बार पाण्डवों का यश बखान कर व्यर्थ हमारी निन्दा क्यों कर रहे हैं? हमने आज तक उनके साथ किस अनीति का व्यवहार किया है? उन्होंने अपने ही हाथों जुआ में सब कुछ हार कर हमें दिया है। अब उसे किस नीति से माँग रहे हैं? सत्पुरुष लोग जिस वस्तु को एक बार हार जाते हैं, उसे फिर माँगने की इच्छा नहीं करते। आप, भीष्म, द्रोण आदि हमें बार बार समझा रहे हैं। हमें तो साफ़ मालूम हो रहा है कि आप लोग पाण्डवों से कहते हुए डरते हैं। हमने तो विचार करके देख लिया है कि हमारा कोई अपराध नहीं है। अनधिकार पाण्डव हमारे शत्रुओं को मिलाकर दुर्बुद्धि से व्यर्थ हमसे लड़ाई मोल ले रहे हैं। हे कृष्ण! हम इससे डर जाने वाले नहीं।

यदि इन्द्र क्रोध करके हमारे ऊपर चढ़ आवें, तो उनसे भी हम विजय के लिये युद्ध करेंगे और उनको पराजित किये विना न छोड़ेंगे। ससैन्य पाण्डवों को तो हम कुछ समझते ही नहीं। भीष्म, द्रोण, कृप, शल्य, अश्वत्थामा, शकुनि, जयद्रथ आदि हमारे पक्ष के धनुर्धरों को कौन जीतने वाला है। वे जीतें, चाहे हम, पर क्षत्रियों का यह धर्म है कि रणभूमि से पीछा न दिखावें। हमें तो दोनों प्रकार से आनन्द ही दिखाई पड़ता है—जीतने पर सम्पूर्ण पृथ्वी का राज्य और मरने पर स्वर्ग का द्वार खुला हुआ है। युद्ध के अतिरिक्त दूसरा कोई भी उपाय हमारे मन में नहीं धँसता है। व्यर्थ बकवाद बढ़ाने से कोई लाभ नहीं है। हमारे पिता ने अज्ञान से अथवा मोह वश हमारे बालकपन में पाण्डवों को इन्द्रप्रस्थ दे दिया। उस भूमि पर हम ने भाग्य से विजय पायी है, अब पाण्डव-लोग उसके फिर वापस लेने के इरादे को त्याग दें। सब को कौन कहे, सुई का अग्रभाग तो हम देनेवाले नहीं, पाण्डवलोग नाहक युद्ध करके क्यों यमपुर जाना चाहते हैं? हे वासुदेव! उनसे जाकर कह दीजिये, वन में जाकर तपस्या करें और अपना जन्म सुधारें। क्या कोई अपने धन को एक बार हार कर फिर माँग कर उसे पा लेता है?

दुर्योधन की अहङ्कारपूर्ण बात सुन कर श्रीकृष्ण ने कहा—हे दुर्योधन! तुम्हारा काल निकट आ गया है। यदि तुम वीरों के योग्य शय्या पर सोना चाहते हो तो वह इच्छा समय आने पर अवश्य पूर्ण होगी। हे भरतकुल के कलङ्क! लड़कपन में तुमने भीमसेन को विष दिया, पाण्डवों को वारणावत नगर में भेजकर माता सहित उन्हें जला देने की चेष्टा की। द्रौपदी को सभा में लाकर उसका जैसा अपमान तुमने किया, वैसा अपने आत्मीय का तो क्या, कोई अपने शत्रु का भी नहीं करता। तुमने जुआ खेलने में कपट करके पाण्डवों का पैतृक राज्य छीन लिया और इस समय जब पाण्डव अपनी की हुई प्रतिज्ञा पूरी करके उसे धर्म से लौटा पाने के अधिकारी हुए, तब तुम उसे लौटाते नहीं। तुम माता, पिता और सारे गुरुजनों की बात नहीं सुनते और उलटा कहते हो कि बहुत विचार करने पर भी हमें अपना अपराध नहीं दिखाई पड़ता। जिस विषवृक्ष को तुमने पहले बो दिया था, वह अब अच्छी तरह फल फूल कर तैयार है। उसी को ओर देखकर तुम्हें उचित शिक्षा नहीं सुहावनी मालूम हो रही है। तुम सम्पूर्ण संसार

का नाश कर देने पर उतारू हो गये हो । परन्तु, हमें विश्वास है, जो राजा लोग यहाँ बैठे हैं वे इस मामले को ऐसा नहीं समझेंगे ।

कृष्ण की बातें सुनकर दुःशासन दुर्योधन के पास गया और इस प्रकार कहने लगा—

हे महाराज ! सभा में जो लोग बैठे हैं, उन सब का मन क्रम क्रम से आपके विरुद्ध होता जा रहा है। भीष्म, द्रोण, कृप आदि तथा पिताजी भी उन्हीं के साथ मिलकर हमें, आपको और कर्ण को कृष्ण के हाथ बाँध देना चाहते हैं । इसलिये आपको अब और अधिक देर तक यहाँ न बैठना चाहिये ।

यह सुनकर दुर्योधन को कुछ शङ्का हुई । उसने बड़ी अशिष्टता से कर्ण शकुनि और दुःशासन को अपने साथ लिया और सभा से उठकर चल दिया । अपने भवन में जाकर गर्व भरी बातें करने लगा । उसके चले जाने पर कृष्णचन्द्र ने फिर कहा—

हे राजा लोग तथा सभा सद्गण ! दुर्योधन ने आप सब की हितकारी बातों का तिरस्कार कर दिया । वह सब का निरादर करके घमण्ड से भरा हुआ सभाभवन से उठ गया । अपने दुराग्रह तथा दुष्ट मंत्रियों की सलाह से दुर्योधन कुल का नाश किया चाहता है । अब आपलोग सलाह करके संसार का नाश होने से रक्षा करें ।

इसी प्रकार कंस भी मतवाला हो गया था, धर्म का त्यागकर अधर्म में रँग गया था । यदुवंशियों ने मिल कर उस अधर्मी कंस का त्याग कर दिया, तब हमने उसका बध करके यदुवंशियों को सुखी किया । इस बात को आप सब लोग जानते हैं । बलि के गर्व की कथा भी आपलोगों से छिपी नहीं है । यदि एक के अधर्म से संसार का नाश होता हो तो उसे त्याग देने में दोष नहीं है । दुष्ट दुःशासन, कर्ण और शकुनि के समान नीच मंत्री मिल कर दुर्योधन द्वारा कुरुकुल का नाश कराना चाहते हैं । इसलिये इन्हें पकड़ कर बन्दीगृह में डाल दीजिये, तभी कल्याण हो सकता है, अन्यथा नहीं ।

कृष्ण के इस प्रस्ताव को सुनकर धृतराष्ट्र बहुत डर गये । उन्होंने व्याकुल होकर विदुर से कहा—हे महात्मा विदुर ! गान्धारी बड़ी बुद्धिमती हैं, उनके पास जाकर तुरन्त उन्हें सभा में ले आओ । यदि अपनी माता के समझाने से दुर्योधन की बुद्धि ठिकाने आ जाय, तो एक बार वे भी कोशिश करके देख लें । हाय ! दुर्योधन की इस घोर मूर्खता के कारण न जानें क्या अनर्थ होनेवाला है ।

राजा की आज्ञा पाकर विदुर तुरन्त महारानी गान्धारी के पास गये और उन्हें सभा में ले आये । उनके आ जाने पर धृतराष्ट्र ने कहा—हे गान्धारी ! तुम्हारा पुत्र मूर्खता वश महामोह में पड़ गया है । पाप के कारण उसे हित की बातें नहीं अच्छी लगती हैं । उसे भले बुरे का ज्ञान अब नहीं रह गया है । सब लोग समझा कर हार गये, पर वह किसी की बात पर ध्यान नहीं दे रहा है । उसकी इस मूर्खता से कुरुकुल पर भयङ्कर विपत्ति आना चाहती है । अभी कुछ ही देर हुई, वह अपने गुरुजनों के हितकारी उपदेश को न मान कर सभा से उठकर चला गया है । भला इस अशिष्टता का कुछ ठिकाना है ?

गान्धारी कुछ देर तक सोच कर बोली—महाराज ! दुर्योधन तो दुर्बुद्धिता के कारण अब किसी का उपदेश नहीं मान रहा है, पर हमारी समझ में इस विपत्ति के बुलाने का कारण आपकी दुर्बलता है । आप को तो यह पहले से ही मालूम है कि दुर्योधन महा पाप और अधर्म करने में उद्यत है, फिर क्यों आप बराबर उसके मन की बात करते आये हैं ? ठीक है, होनहार किसी के टाले नहीं टलता ।

इसके बाद गान्धारी की आज्ञा से विदुरजी दुर्योधन को सभा में बुला लाये । दुर्योधन के आ जाने पर गान्धारी उसकी निन्दा करती हुई बोलीं—

हे वत्स ! तुम राजा के परमप्यारे पुत्र हो, इसलिये तुमसे कहती हूँ कि हमारी हितकारी बात मान लो। महात्मा भीष्म, द्रोण, कृप, विदुर बहुत यथार्थ बात कह रहे हैं, तुम्हारे पिता भी समझ बूझ कर उनलोगों की बातों का समर्थन करते हैं, इसलिये तुम्हें गुरुजनों की आज्ञा का उल्लंघन करना उचित नहीं। भाइयों से मेल करके रहना ही सर्वसम्मत है। इच्छा करने से न राज्य मिलता है और न उसका पालन ही हो सकता है, यह सब तो पूर्व कर्मानुसार ही होता है। काम, क्रोध, मद, लोभ, इनके वश होकर कभी कोई सुखी नहीं रह सकता। शान्ति, इन्द्रिय-निग्रह और धर्म के अनुसार नीति का व्यवहार करनेवाला सदा सुख का अनुभव करता है। इसलिये हे पुत्र ! सुनीति पर चलो और कृष्णचन्द्र का कहना मानकर पाण्डवों से सन्धि कर लो।

बुद्धिमानों का वचन है कि त्रैलोक्य का राज्य मिल जाय, तो भी लोभ नहीं छुटता। इसके छुटने का एकमात्र आधार धर्म और सन्तोष है। भाई का अंश हर लेना बड़ा भारी अधर्म है ऐसा करने से तुम कभी सुखी नहीं रह सकते। कुमार्गगामी मन्त्रियों की सलाह में पड़ कर तुम भी वही रास्ता मत पकड़ो। हे बेटा ! तुम ने आज तक पाण्डवों के साथ जो बुरा व्यवहार किया है, उसका प्रायश्चित्त उन्हें उनका राज्य देकर कर डालो। तुम समझते हो कि महात्मा भीष्म, द्रोण आदि युद्ध होने पर हमारा साथ देंगे, पर यह कदापि सम्भव नहीं। क्योंकि पाण्डवों के अधिक धर्मात्मा होने के कारण सब लोग उन्हीं पर अधिक स्नेह रखते हैं। इसलिये तुम पाण्डवों से सुलह करके कुरुकुल को नष्ट होने से बचा लो।

माता की बात समाप्त होने पर दुष्ट दुर्योधन से कुछ भी उत्तर न दिया। वह फिर सभा-भवन को छोड़ कर चला गया और कर्ण, शकुनि, दुःशासन के साथ सलाह करने लगा। उसने कहाः—हमें जान पड़ता है कि कृष्ण ने हमलोगों के पकड़ लेने का जाल बिछाया है, इसलिये जब तक वे हमारे पकड़ने का विचार करें, उसके पहले ही हमलोगों को चाहिये कि उनको पकड़ कर अपना बन्दी बनालें। कृष्ण के पकड़ लिये जाने पर पाण्डव विकल हो जायँगे और तब युद्ध में उनका बध कर विजय पाना बहुत सुगम हो जायगा।

दुर्योधन की यह सलाह सात्यकि को मालूम हो गई। कृतवर्मा के साथ वे सभा से तुरन्त उठ गये। बाहर सभा के फाटक पर आकर उन्होंने यादवी सेना को, आवश्यकता पड़ने पर लड़ने को तैयार रहने के लिये सावधानता पूर्वक सूचना कर दी। इसके बाद वे फिर सभाभवन में गये और कृष्णचन्द्र से इशारे से सब बातें कह दीं।

तब कृष्णजी ने सब के सामने धृतराष्ट्र से कहा—हे राजन् ! तुम्हारा मूर्ख पुत्र दुर्योधन सुनते हैं ज़बर्दस्ती हमें कैद कर लेने का विचार कर रहा है। यदि हम अपने मन में भी अनर्थ का विचार करें तो तुम्हारे पुत्रों का क्षण भर में विनाश हो सकता है। पर हमें अधर्म करना अभीष्ट नहीं है। हम दूत होकर आये हैं। दुर्योधन हमें अकेला समझ कर यह दुर्विचार मन में मत लावे। हम अकेले नहीं हैं, यह देखो।

कृष्णचन्द्र के इस प्रकार कहने के बाद कौरवों को सारी यादवी सेना कृष्णमय देख पड़ने लगी। सब राजाओं ने डर कर अपनी अपनी आँखें मूँद लीं। सञ्जय, विदुर, भीष्म, द्रोण इस विषम रूप को एकटक होकर देखते रहे। धृतराष्ट्र ने भी प्रार्थना करके दिव्य नेत्र पाकर उस कौतुक को देखा। इसके बाद कृष्णजी पूर्वस्थिति के अनुसार होकर सभाभवन से बाहर निकल आये और

रथ पर सवार होकर अपनी बुआ कुन्ती से विदा होने चले। उन्होंने कुन्ती से सारा वृत्तान्त सुना कर कहा—

हे देवी! दुर्योधन का बड़ा बुरा हाल है। इस संसार में अब उसके रहने के दिन गिने हुए हैं। तुम्हें अपने पुत्रों के लिये कोई सन्देश कहना हो तो कहो। हम सुनना चाहते हैं। कुन्ती ने कहा—

हे वासुदेव! युधिष्ठिर से कहना। हे पुत्र! तुमने क्षात्र-धर्म का त्याग कर बन में घूमते हुए बहुत दुःख सहा। प्रजापालन से जो तुमने बहुत धर्म कमाया है वह अब नष्ट हो रहा है। इसलिये अब तुम्हें क्षत्रियधर्म स्वीकार करना चाहिये। ब्राह्मणों की तरह तपस्वी बन कर बन बन घूमना क्षत्रियों का धर्म नहीं है। तुम्हारी बुद्धि, दिन रात धर्मचिन्ता में लगी रहने से कर्मचिन्ता को भूल सी गई है। इससे अब तुम सावधान हो जाओ।

हे माधव! भीम और अर्जुन से कहना—हे पुत्रो! द्रौपदी का केश पकड़ कर सभा में लाया जाना और उसका अपमानित होना न भूल जाना। क्षत्रिय की कन्या जिसलिये गर्भधारण करती है, उसका स्मरण रखना। अब उसके सफल करने का समय आ गया है।

हे केशव! वीर नारी द्रौपदी से कहना—हे पतिव्रता! तुमने हमारे पुत्रों के कारण इतना क्लेश सह कर भी धर्म की रक्षा की है, वह तुम्हारे योग्य ही हुआ है। तुम से ऐसी ही आशा थी।

हे जनार्दन! सब से हमारा आशीर्वाद और कुशल समाचार कहना। अब आप जाँय। आप की यात्रा कल्याणकारी हो।

कृष्णजी कुन्ती को प्रणाम करके बाहर निकल आये। बाहर आकर उन्होंने कर्ण से कहा कि आप से एक आवश्यक काम है। यह कह कर कर्ण को अपने साथ रथ पर बिठा लिया और सात्यकि तथा नौकर चाकरों के साथ हस्तिनापुर से प्रस्थान किया। नगर के बाहर एक एकान्त स्थान में पहुँचने पर कृष्ण ने कर्ण से कहा—

हे कर्ण! आपने सदा वेद जाननेवालों का साथ किया है। उन लोगों की कृपा से आपने बहुत सी अच्छी अच्छी बातें जानी हैं। कोई भी तत्व की बात ऐसी नहीं जिसका विचार आपने न किया हो। इससे इस बात को भी आप अच्छी तरह जानते होंगे कि जो मनुष्य जिस स्त्री के साथ विवाह किया करता है, उसकी कन्या अवस्था में उत्पन्न हुए पुत्र का भी वह शास्त्ररीति से पिता होता है। तुम अपना जन्म वृत्तान्त जानते ही हो। कुन्ती का विवाह होने के पहले ही भगवान् सूर्य की कृपा से आप उनकी कोख से पैदा हुए थे। इसलिये आप राजा पाण्डु के पुत्र हुए। इस समय आप ही पाण्डवों में सब से जेठे हैं। अतएव आप हमारे साथ चलें और हम पाण्डवों से सब पूर्व वृत्तान्त कह सुनावें। उन्हें यह बात मालूम होते ही कि आप उनके जेठे भाई हैं, वे सारा अधिकार तत्काल ही आपको दे देंगे। भीम आपके मस्तक के ऊपर श्वेत छत्र धारण करेंगे और अर्जुन आपके रथ के घोड़ों की रास हाथ में लेकर सारथि का काम करेंगे। सारे पाण्डव, यादव, पाञ्चालदेश वासी आपकी वन्दना करेंगे। पुरोहित धौम्य अग्निहोत्र करके विधि पूर्वक आप का ही राज्याभिषेक करेंगे, अन्य पाण्डवों की तरह द्रौपदी आपकी भी पत्नी होगी। इससे, हे महाबाहु! आज ही हमारे साथ चलो और अपने भाइयों के बीच बैठकर राज्यशासन का सूत्र अपने हाथ में लेकर कुन्ती के आनन्द को बढ़ाओ।

कर्ण ने उत्तर दिया—हे यदुकुल भूषण! हम जानते हैं कि कुन्ती की कन्या अवस्था में जन्म

लेने के कारण शास्त्र के अनुसार हम राजा पाण्डु के ही पुत्र हुए। परन्तु हे जनार्दन! हमारे सुख दुःख को कुछ भी परवा न करके हमारे पैदा होते ही कुन्ती ने हमें फेंक दिया। उस समय सूत जाति के अधिरथ नामक सारथि ने हमें देखा। उनको हम पर दया आई। इससे हमें उठा कर उन्होंने अपनी स्त्री राधा को दिया और कहा कि इसका अच्छी तरह पालन पोषण करो। हे कृष्ण! हमारी माता रूपिणी राधा के स्तनों में स्नेह के मारे उसी क्षण दूध निकल आया। उस दिन से राधा और अधिरथ ने हमारा पालन-पोषण किया। युवा होने पर हमने सूत जाति की कन्या से विवाह किया। उससे हमारे पुत्र पौत्रादि हुए हैं। हमारा सारा प्रेम उन्हीं के ऊपर है। अनन्त धन रत्न की तो बात ही नहीं, सारे भूमण्डल का राज्य पाने पर भी हम उन्हें छोड़ देने की इच्छा नहीं रखते। इसके सिवा, हे वासुदेव! इतने दिनों से हम दुर्योधन का दिया हुआ राज्य बिना किसी विघ्न बाधा के अकण्टक भोग रहे हैं। दुर्योधन ने हमारे साथ सदा ही प्रीतिपूर्ण व्यवहार किया है। हमारे ही भरोसे वे पाण्डवों से विरोध करने पर उतारू हुए हैं। इससे, इस समय लोभ अथवा भय के कारण हम उनकी इच्छा के विरुद्ध काम करके उन्हें निराश नहीं करना चाहते। एक बात और भी है। वह यह कि यदि इस युद्ध में हम अर्जुन का सामना न करेंगे, तो हम दोनों की कीर्त्ति में बट्टा लगेगा। इसमें सन्देह नहीं कि यह सब बातें आपने हमारे ही हित के लिये कही हैं; किन्तु हमारी आपसे प्रार्थना है कि हमारे जन्म का हाल आप पाण्डवों से न कहें। हे कृष्ण! यदि धर्मात्मा युधिष्ठिर को यह हाल मालूम हो जायगा कि हम कुन्ती के जेठे पुत्र हैं, तो तत्काल ही वे राज्य छोड़ देंगे। उनका राज्य पाने पर हम उसे दुर्योधन को दिये बिना न रहेंगे। हमें उसे दुर्योधन को देना ही पड़ेगा। किन्तु दुर्योधन को इस तरह राज्य मिलना उचित नहीं। इससे हम चाहते हैं कि युधिष्ठिर ही चिरकाल तक राज्य करें।

यह सब सुनकर कृष्णचन्द्र ने मुसकुराते हुए कहा—हे कर्ण! हमने तुम्हें इतना बड़ा राज्य दे डालना चाहा, पर तुम उसे लेने से इनकार कर रहे हो। इससे युद्ध हुए बिना अब नहीं रह सकता। तुम लौट कर भीष्म द्रोण आदि से कह देना कि यह महीना युद्ध के लिये बड़े सुभीते का है। खाने पीने की चीज़ें और लकड़ी चारा आदि सामान आसानी से मिल सकता है, जल भी बहुत है, रास्ते भी साफ़ हैं, कहीं कीचड़ नहीं। आज के सातवें दिन अमावस्या होगी। उसी दिन युद्ध का आरम्भ हो तो अच्छा है। तुम लोग जब युद्ध के मैदान में आख़िरी शय्या पर सोने की प्रार्थना करते हो, तब वही होगा, इसमें सन्देह नहीं। जितने राजा दुर्योधन के पक्षपाती हैं वे भी सब युद्ध में प्राण छोड़ कर सद्गति पावेंगे।

कर्ण ने कहा—हे कृष्ण! हम आप से बिदा होते हैं। युद्ध के मैदान में फिर आपका दर्शन होगा। उसके अनन्तर क्षत्रियों का संहार करनेवाले इस महायुद्ध से या तो बचकर ही आपसे मिलेंगे, या स्वर्ग में यथा समय फिर आपसे भेंट होगी।

यह कह कर कर्ण ने कृष्ण को गले से लगाया और उदास होकर अपने रथ पर सवार हो हस्तिनापुर लौट गये।

शान्ति स्थापना के लिये अन्तिम चेष्टा करके भी कृष्ण को सफलता न हुई। इस कारण उन्हें विफल-मनोरथ होकर उपप्लव्य नगर को लौट जाना पड़ा। उन्होंने सारथि को आज्ञा दी कि बहुत जल्द रथ हाँको। आज्ञा पाते ही सारथि ने घोड़ों की रास हाथ में ली और वे हवा हो गये।

इधर कौरवों की सभा भङ्ग होने पर शान्ति की आशा नष्ट होजाने से विदुर बहुत चिन्तित

हुए। उदास मन होकर वे कुन्ती के घर गये। वहाँ पहुँच कर उन्होंने कुन्ती से अपनी दुःख कथा इस प्रकार कहनी आरम्भ की।

हे देवी! तुम तो जानती हो कि हम युद्ध के कहाँ तक विरोधी हैं। शान्ति के लिये जहाँ तक हो सका मन, वचन, कर्म से हमने चेष्टा की, परन्तु सफलता न हुई। धर्मात्मा पाण्डवों ने सब कहीं से सब तरह की सहायता पाकर भी एक महादीन की तरह सन्धि कर लेने के लिये प्रार्थना की, परन्तु दुर्योधन ने उनकी बात न मानी। अब घोर युद्ध हुए बिना नहीं रह सकता। इस युद्ध का फल कितना शोचनीय होगा, इस युद्ध के कारण क्षत्रिय जाति को कितनी घोर विपत्तियों का सामना करना पड़ेगा, दिन रात इसी चिन्ता में रहने के कारण हमारी नींद भूख जाती रही है।

विदुर की बात सुनकर कुन्ती को बड़ा दुःख हुआ। एक लम्बी साँस लेकर वे मन ही मन चिन्ता में डूब गईं। अन्त में उन्होंने कर्ण को ही दुर्योधन का सब से बड़ा सहायक समझ उसे पाण्डवों के पक्ष में कर लेने का विचार किया। कुन्ती ने मन में सोचा कि कर्ण से यदि उसके जन्म का सच्चा हाल कह दूँ, तो वह अवश्य युधिष्ठिर की तरफ़ हो जायगा। कर्ण मेरा पुत्र है, इससे वह मेरी हितकर बात कभी न टालेगा। यह सोच कर उनके जी को बहुत कुछ धीरज आया और कर्ण से मिलने की इच्छा से वे गङ्गा तट को चलीं।

वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि उनके पुत्र महातेजस्वी कर्ण पूर्व की ओर मुँह किये हुए बैठे वेद पाठ कर रहे हैं। कुन्ती उनके पीछे खड़ी होकर वेदपाठ समाप्त होने की राह देखने लगीं। दोपहर तक कर्ण पूर्व की ओर मुँह किये हुए वेदपाठ करते रहे। उसके बाद जब सूर्य पश्चिम की ओर जाने लगे, तब उन्होंने भी अपना मुँह पश्चिम की तरफ़ फेरा। उस तरफ़ होते ही कर्ण ने कुन्ती को देखा। उन्हें देख कर वे बहुत विस्मित हुए। कर्ण ने कुन्ती को प्रणाम किया और बोले—

हे देवी! अधिरथ और राधा का पुत्र आप को प्रणाम करता है। आप किसलिये इस समय यहाँ आई हैं। कहिये, क्या आज्ञा है?

कुन्ती ने कहाः—हेपुत्र! तुम अधिरथ और राधा के पुत्र नहीं, सूतकुल में तुम्हारा जन्म नहीं हुआ। तुम हमारे पुत्र हो, सूर्य भगवान् की कृपा से तुम हमें प्राप्त हुए थे। जिस समय हम कन्या अवस्था में थीं, उसी समय तुम हमारी कोख से उत्पन्न हुए थे। शास्त्रानुसार तुम राजा पाण्डु के पुत्र हो, परन्तु मोह के वश होकर अपने भाइयों के साथ मित्रभाव न रख कर तुम दुर्योधन की सेवा करते हो। यह क्या अच्छी बात है? माता पिता को प्रसन्न रखना पुत्र का सब से बड़ा धर्म है। इससे छल कपट द्वारा हरे गये पाण्डवों के राज्य का उद्धार करके तुम्हां उसका भोग करो। कर्ण और अर्जुन को एक हो जाते देख कौरव लोग पाण्डवों के सामने अवश्य शिर झुकावेंगे। यदि तुम और अर्जुन एक हो जाओगे, तो कौन ऐसा काम है जो तुम से न हो सके। तुम सब गुणों से सम्पन्न हो और हमारे पुत्रों में सब से बड़े हो। इससे तुम्हारा सूतपुत्र कहलाना हमें नहीं रुचता है।

कर्ण ने कहा—आपकी बात हमें कदापि मान्य नहीं। यदि आपकी बात मानते हैं तो हमारे धर्म की हानि होती है। आप ही के कर्म दोष से हमारी सूत जाति में गिनती हुई है। हमारे पैदा होते ही हमको त्याग करके क्षत्रियवंश में हमारा जन्म आपने वृथा कर दिया। इससे अधिक हानि तो हमारा शत्रु भी नहीं कर सकता। पहले तो आपने हमारे साथ माता के ऐसा व्यवहार नहीं किया, अब इस समय अपना काम निकालने के लिये आप हमें अपना पुत्र बनाने चली हैं धृतराष्ट्र के पुत्रों ने आज तक हमारा बहुत कुछ सत्कार किया। अब आपके कहने से किस तरह हम उनके साथ

कृतघ्नता का व्यवहार कर सकते हैं? हमारे ही भरोसे वे युद्ध में विजय पाने की आशा करते हैं। फिर भला किस तरह हम उन्हें इस समय निराश कर सकते हैं? उन्हें इस समय छोड़ देना मानों उनके साथ विश्वासघात करना है। जिन लोगों के साथ दुर्योधन आदि कौरवों ने उपकार किया है, यह समय उनके कृतज्ञता दिखाने का है। हम पर जो उनका ऋण है, उसे हम युद्ध में इस समय उनकी सहायता करके चुकाना चाहते हैं। इससे दुर्योधन के हित के लिये आपके पुत्रों के साथ हम अवश्य ही युद्ध करेंगे। परन्तु आपको प्रसन्न करने के लिये हम प्रण करते हैं, युधिष्ठिर, भीम, नकुल और सहदेव, इन आपके चार पुत्रों से हमारी कोई शत्रुता नहीं, अतएव युद्ध में हम इनके प्राण कभी न लेंगे, इसे सच समझिये और निश्चय जानिये। आपके पाँच पुत्र फिर भी बनेही रहेंगे, क्योंकि यदि अर्जुन न जीते रहेंगे तो हम अवश्य जीते रहेंगे।

कर्ण के मुँह से इस तरह की यथार्थ बातें सुनकर दुःख से कुन्ती काँप उठी; परन्तु कोई उत्तर उनके मुँह से न निकला। अन्त में उन्होंने कर्ण को गले से लगा कर कहा:—तुमने जो युधिष्ठिर आदि को न मारने का वचन दिया है, उसे युद्ध के समय भूल न जाना।

इसके अनन्तर कर्ण भी अपने घर गये और कुन्ती भी अपने घर लौट आईं।

युद्ध का आयोजन

भगवान् कृष्णचन्द्र शान्तिस्थापन की चेष्टा में बिलकुल असफल होकर उपलब्य नगर में लौट आये। हस्तिनापुर में जो कुछ हुआ वह सब उन्होंने पाण्डवों से संक्षेप में कह सुनाया। रात में युधिष्ठिर के पास जाकर कृष्णजी ने कहा:—हे धर्मराज! कौरवों की सभा में जो कुछ हुआ सब हम ने कह सुनाया। बिना युद्ध के कौरव तुम्हें राज्य लौटाने पर राजी नहीं। अतएव युद्ध करना निश्चित समझिये। बिना युद्ध के अब शान्ति का मार्ग दूसरा नहीं है।

यह सुनकर युधिष्ठिर ने अपने भाइयों से कहा:—हे भाइयो! कौरवों की सभा में जो कुछ हुआ, उसके विषय में कृष्णजी ने जो कुछ निश्चय किया, उसे तुम लोग सुन चुके। इस सेना को अलग अलग भागों में बाँटना चाहिये। हमारी राय है कि अपनी सात अक्षौहिणी सेना के सेनापति के पद पर द्रुपद, विराट, शिखण्डी, धृष्टद्युम्न, सात्यकि, चेकितान और भीमसेन ये सात वीर नियत किये जाँय। इन सेनापतियों में से कौन प्रधान सेनापति होने के योग्य है, अब इस बात के विचार करने की आवश्यकता है। हम जानना चाहते हैं कि इस विषय में तुम लोगों की क्या राय है?

सहदेव ने कहा:—जिस धर्मज्ञ राजा के आसरे रह कर हम लोगों ने अज्ञातवास समाप्त किया और जिसकी कृपा से अपना राज्य पाने की आशा करने में फिर समर्थ हुए, उन्हीं राजा विराट को प्रधान सेनापति बनाना चाहिये।

नकुल ने कहा:—जो पराक्रमी और पुण्यवान् राजा हमारे ससुर हैं, अतएव जो हमारे पिता के सदृश हैं, उन्हीं द्रुपदराज को प्रधान सेनापति बनाना चाहिये।

भीम ने कहा:—हमारे शत्रुओं में सब से बड़े योद्धा भीष्म हैं। सुनते हैं, महापुरुष शिखण्डी ने उन्हीं के मारने के लिये जन्म लिया है। इसलिये उन्हीं को सारी सेना का अध्यक्ष बनाना चाहिये।

अन्त में अर्जुन ने कहा:—बल, वीर्य, तेज और पराक्रम आदि गुणों का ही युद्ध में सब से अधिक

काम पड़ता है। उसके अनुसार विचार करने से महा पराक्रमी धृष्टद्युम्न के बराबर हम और किसी को नहीं देखते। इससे हमारी राय है कि सब सेनापतियों के ऊपर वही प्रधान नियत किये जायँ।

इस प्रकार मतभेद उपस्थित होने पर युधिष्ठिर ने कहा :—परम बुद्धिमान् कृष्णचन्द्र इन सब महारथी वीरों में से किसी एक को चुन देने की कृपा करें।

तब अर्जुन की बात का समर्थन करते हुए कृष्ण ने कहा—हे धर्मराज! आपने जिन महाबली और महा पराक्रमी वीरों को सेना का अध्यक्ष बनाया है, वे सभी शत्रुओं पर विजय पा सकते हैं। जिस समय वे युद्ध के मैदान में उतर पड़ेंगे, उस समय दुर्योधन और उनके सहायक राजों की तो कुछ बात ही नहीं, देवताओं के राजा इन्द्र भी उन्हें देख कर डर जायँगे। तथापि सब सेनापतियों के ऊपर एक प्रधान सेनापति का होना बहुत ज़रूरी है। हमारा भी यही मत है कि धृष्टद्युम्न ही सब तरह प्रधान सेनापति होने के योग्य हैं।

कृष्ण की सलाह के अनुसार धृष्टद्युम्न ही सात अक्षौहिणी सेना के अध्यक्षों के ऊपर प्रधान सेनापति नियत हुए। इसके बाद यह बात सब पर प्रगट कर दी गई। इसे सुनकर योद्धाओं को बड़ा आनन्द हुआ। सब ने धृष्टद्युम्न का प्रधान सेनापति नियत किया जाना पसन्द किया। सब से बड़ा काम अर्जुन को सौंपा गया अर्थात् पाण्डवों की जितनी सेना थी और जितने सेनाध्यक्ष थे, उन सब के काम की देखभाल का भार उनके ऊपर रक्खा गया।

इसके अनन्तर अपना अपना काम करने के लिये सब लोगों को उतावले देख युधिष्ठिर ने युद्धयात्रा की आज्ञा दे दी। उनकी आज्ञा पाते ही सब लोग लोहे के कवच शरीर पर धारण करके अपने अपने काम में लग गये। थोड़े ही समय में घोड़ों का हिनहिनाना, हाथियों का चिग्घार, रथों की घरघराहट और इधर उधर दौड़नेवाले योद्धाओं की उत्सुकतापूर्ण बातें---इत्यादि सुनाई पड़ने लगीं। इस प्रकार तूफान आये हुए महासागर की तरह उस प्रचण्ड सेना में चारों ओर कोलाहल होने लगा। शंख, दुन्दुभी आदि तरह तरह के बाजों की प्रचण्ड ध्वनि यह बतलाने लगी कि योद्धाओं के आनन्द का पार नहीं है।

जिस समय चारों ओर महा कोलाहल हो रहा था, उस समय अपने डेरे के भीतर उदास बैठे हुए युधिष्ठिर ने एक लम्बी साँस लेकर भीम और अर्जुन से कहा:—

हे भाइयो! कुरुकुल के जिस क्षय को बचाने के लिये हमने इतने दिनों तक वन में वास किया और सैकड़ों प्रकार के बड़े बड़े कष्ट सहे, वही अनर्थ आज होना चाहता है। वह अब किसी तरह नहीं निवारण किया जा सकता। इसी कुलनाश का निवारण करने के लिये हमने तुम सब को दुःसह कष्ट दिये; पर वे सब कष्ट इस समय व्यर्थ हो रहे हैं। इतना यत्न करने पर भी इस घोर युद्ध के रोकने का कोई उपाय नहीं देख पड़ता। अपने कुल के पूज्यपुरुषों के साथ किस तरह हम युद्ध करेंगे? उनके ऊपर हाथ उठाना हमें कदापि इष्ट नहीं। अपने ही घर के बड़े बूढ़े गुरुजनों का संहार करके शत्रुओं को जीतना क्या हम कभी अपना कर्त्तव्य समझ सकते हैं?

धर्मराज को अत्यन्त दुखी देख कर अर्जुन ने कौरवों की सभा में होनेवाली वे सब बातें फिर कह सुनाईं, जिनका वर्णन कृष्णचन्द्र ने हस्तिनापुर से लौट कर किया था। माता कुन्ती के सँदेशे का भी उन्होंने स्मरण दिलाया। कृष्ण ने मुसकुरा कर अर्जुन की बात का समर्थन किया, उन्होंने कहा:—यह समय सोच करने और उदास होने का नहीं है। क्षत्रियों का जो कर्त्तव्य है, उसी का

तुम्हें इस समय पालन करना चाहिये। इन बातों को सुन कर युधिष्ठिर की उदासीनता जाती रही और जी कड़ा करके वे समयोचित काम में लग गये।

पहले रनिवास की रक्षा के लिये एक योग्य स्थान निश्चित करके दास दासियों के साथ द्रौपदी वहाँ भेज दी गई। उनके रहने के लिये एक ऐसा मकान दिया गया, जिस में किसी तरह का डर न था। वहाँ हर घड़ी चौकी पहरा देने और देख भाल रखने के लिये कुछ योद्धाओं की एक टोली भी नियत कर दी गई।

इस प्रकार तैयारियाँ करते वह रात बीत गई। प्रातःकाल सब लोगों ने ठाट बाट से कुरुक्षेत्र की ओर प्रस्थान किया। सेना के अध्यक्ष लोग अपनी अपनी सेना के आगे चले। रथ, घोड़े, हाथी, हथियार, ख़ज़ाना, सफरमैना और शस्त्रवैद्यों आदि के साथ राजा युधिष्ठिर सेना के बीच में रहे। और और वीर युधिष्ठिर को बीच में डाल कर सेना के पीछे भाग में हो लिये।

कुरुक्षेत्र में पहुँचने पर कृष्ण और अर्जुन ने अपने अपने शंख बड़े ज़ोर से बजाये। उन शंखों की भीषणध्वनि सुन कर योद्धाओं के उत्साह का ठिकाना न रहा। वे लोग आनन्द से उछल पड़े और वे भी अपना अपना शंख ज़ोर ज़ोर से बजाने लगे। इसके बाद युधिष्ठिर ने कुरुक्षेत्र में घूम कर सब जगह अच्छी तरह देखी और श्मशान, मन्दिर तथा बस्ती आदि से दूर हिरण्वती नामक पवित्र नदी के किनारे एक ऐसी चौरस ज़मीन पर सेना को उतरने की आज्ञा दी, जहाँ अनाज, पानी, घास, चारा और ईंधन-लकड़ी आदि का सब तरह सुभीता था।

वहाँ कुछ काल आराम करके, अपने सहायक राजों को साथ लिये हुए फिर उन्होंने कुरुक्षेत्र के मैदान की देख भाल की। चारों तरफ़ देख सुन कर उन्होंने ऐसी जगह, जहाँ शत्रुओं के धावे का बहुत कम डर था, अपनी सेना की छावनी डालने का प्रबन्ध किया। धृतद्युम्न और सात्यकि ने सारी सेना को जुदा जुदा कई भागों में बाँट दिया। इसके बाद कृष्ण ने सेना के चारों ओर खाई खुदवा कर उसमें बहुत सी वस्तु गुप्त भाव से रख दी। पहले पाण्डवों के रहने के लिये शिविर तैयार किया गया। फिर और और राजों ने भी अपना अपना शिविर, जिसके लिये जो स्थान दिया गया उसमें तैयार कराया।

हर शिविर में हथियारों के बनाने, मरम्मत करने और उन्हें अच्छी हालत में रखनेवाले कारीगर और अच्छे अच्छे वैद्य नियत किये गये। धर्मराज की आज्ञा से उनमें असंख्य धनुष, बाण, प्रत्यञ्चा, कवच और सैकड़ों प्रकार के दूसरे अस्त्र-शस्त्र भी रक्खे गये। इसके सिवा तृण, भूसी, आग, घी, शहद, जल और घायलों के इलाज के लिये हर प्रकार की दवाएँ भी वहाँ इकट्ठी की गईं। इस तरह सब प्रकार की तैयारी करके पाण्डव लोग युद्धारम्भ होने के दिन की प्रतीक्षा करने लगे।

उधर जब श्रीकृष्णजी हस्तिनापुर से चले गये, तब कर्ण शकुनि और दुःशासन से दुर्योधन ने कहा:—कृष्ण को पाण्डवों के कार्य में सफलता नहीं हुई। उन्हें निराश होकर यहाँ से लौट जाना पड़ा। अब वे पाण्डवों को युद्ध करने के लिये अवश्य उत्तेजित करेंगे। अतएव हम लोगों को आलस्य छोड़ कर युद्ध की तैयारी में लग जाना चाहिये। कुरुक्षेत्र में कोई ऐसी जगह ढूँढ़ो, जहाँ शत्रु लोग सहज में आक्रमण न कर सकें। फिर वहाँ पानी, लकड़ी और सब तरह के अस्त्र शस्त्रों से परिपूर्ण कम से कम एक लाख शिविर स्थापित करो। तुम लोग वहाँ पर एक ऐसा रास्ता भी बनाओ जिससे लड़ाई का सामान लाया जा सके, और शत्रु लोग उसके लाने में किसी तरह विघ्न बाधा न

पहुँचा सकें। हे वीरगण! शीघ्र ही तुम यह बात सब लोगों पर प्रगट कर दो, कि कल ही हम युद्ध के लिये यहाँ से चल देंगे।

कर्ण शकुनि और दुःशासन उसी क्षण इन सब तैयारियों के करने में लग गये। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि ग्यारह अक्षौहिणी सेना युद्ध यात्रा के लिये तैयार है। अच्छी तरह उन्होंने उसकी देख भाल की और उसे ग्यारह भागों में बाँट दिया। हाथी, घोड़े और रथ आदि की अच्छी तरह जाँच करके जो उत्तम थे उन्हें आगे रक्खा, जो मध्यम थे, उन्हें बीच में रक्खा और जो निकृष्ट थे, उन्हें सब से पीछे रक्खा। युद्ध में काम आनेवाले जितने यन्त्र और जितने अस्त्र शस्त्र थे, सब को सेना के साथ भेजने का प्रबन्ध किया। इसके सिवा औषधि आदि और भी अनेक प्रकार की आवश्यक सामग्री इकट्ठी कराके उसके भी भेजे जाने का प्रबन्ध किया।

कृप, द्रोण, शल्य, जयद्रथ, काम्बोज नरेश, सुदक्षिण, भोजराज, कृतवर्मा, अश्वत्थामा, कर्ण, भूरिश्रवा, शकुनि, और बाह्लीक—इन ग्यारह महारथियों को दुर्योधन ने सेनापति के पद पर नियत किया। इन सब वीरों की उन्होंने बड़ी प्रशंसा की, उनके उत्साह को ख़ूब बढ़ाया, और हर तरह से उनका आदर सत्कार करके उन्हें प्रसन्न किया। इससे वे लोग दुर्योधन की तरफ़ होकर जी जान से युद्ध करने के लिये तैयार हुए।

इस प्रकार युद्ध सम्बन्धी प्रबन्ध समाप्त होने पर सब सेनाध्यक्षों को साथ लेकर दुर्योधन महात्मा भीष्म के समीप गये और हाथ जोड़ कर बोले:—

हे वीर शिरोमणि! हमारी सारी सेना युद्ध के लिये तैयार है, किन्तु एक योग्य सेनापति के बिना तितर बितर हो रही है। हे रणधीर! जिस प्रकार तेजस्वियों में सूर्य, पक्षियों में गरुड़, यक्षों में कुबेर, पर्वतों में मेरु श्रेष्ठ है, उसी प्रकार आप क्षत्रियों में शिरमौर हैं। आज तक आपने सब प्रकार से हमारी शुभकामना की है और कोई भी शत्रु आप का वध करने में समर्थ नहीं है। इससे कृपा करके आप हमारी सेना के प्रधान सेनापति हों। यदि आप हमारी रक्षा में तत्पर होंगे, तो देवता भी हमें नहीं जीत सकते।

भीष्म ने कहाः—हे दुर्योधन! हम तुम्हारा कहना मानने को तैयार हैं। किन्तु जिस प्रकार तुम हमें प्रिय हो वैसे ही पाण्डव भी प्रिय हैं। हम तुम्हारे आश्रय में रहते हैं इससे हम तुम्हारा पक्षपात करने के लिये विवश हैं तथापि हम एक नियम करना चाहते हैं। वह नियम यह है कि अवसर आने पर भी हम पाण्डवों को अपने हाथ से न मारेंगे। पर हाँ, तुम्हें प्रसन्न करने के लिये हम अपने सामर्थ्य के अनुसार प्रतिज्ञा करते हैं कि दश हज़ार सैनिकों का वध प्रतिदिन करेंगे। एक बात और है हमारे सेनापति होने से हम समझते हैं कर्ण युद्ध में सम्मिलित न होंगे। इसलिये यह बात उनसे भी पूछ लीजिये।

तब कर्ण ने कहाः—हे दुर्योधन! हम ने पहले ही प्रतिज्ञा की है कि पितामह के जीवित रहते हम कभी हथियार हाथ से न उठावेंगे। इससे वही पहले सेनापति होकर युद्ध करें। उनके मारे जाने पर हम अर्जुन के साथ युद्ध करेंगे।

इसके अनन्तर भीष्मपितामह विधिपूर्वक सेनापति के पद पर नियत किये गये। तब राजा दुर्योधन की वह इतनी बड़ी सेना महात्मा भीष्म को आगे करके कुरुक्षेत्र की तरफ़ चली। वहाँ जाकर सेनाध्यक्षों ने देखा कि कर्ण आदि के स्थापित किये हुए हज़ारों शिविर दूसरे हस्तिनापुर की तरह

शोभा पा रहे हैं दुर्योधन भी कुरुक्षेत्र में पहुँचे और सब के लिये यथायोग्य जगह का प्रबन्ध करके, और जितने शिविर थे उनमें सब तरह का उचित सामान रखवा कर युद्ध के लिये तैयार हुए। फिर दोनों पक्षों ने आपस में सलाह करके इस तरह धर्मयुद्ध करने का निश्चय किया कि रथी का रथी के साथ, घोड़े के सवार का घोड़े के सवार के साथ, हाथी के सवार का हाथी के सवार के साथ और पैदल का पैदल के साथ युद्ध हो। जो किसी और के साथ युद्ध कर रहा हो, जो अपने शरण आया हो, जो युद्ध से भाग रहा हो, अथवा जो युद्ध के डर से घबरा गया हो, उस पर हथियार न चलाये जाने का निश्चय हुआ साथ ही यह भी निश्चय हुआ कि इस युद्ध में किसी तरह का छल कपट न किया जाय।

कौरवों और पाण्डवों की सेना युद्ध के मैदान में आमने सामने सजकर जब खड़ी हुई, तब दुर्योधन ने अपने मन्त्रियों से पूछा कि इस समय क्या करना चाहिये। कुछ देर तक विचार होने के बाद शकुनि की राय हुई कि इस समय एक दूत पाण्डवों के पास भेजा जाय। यह राय दुर्योधन को पसन्द आई और शकुनि के भाई उलूक को दूत बनाया जाना निश्चित हुआ। उसके द्वारा अत्यन्त कटु और अपमानकारी बातों से भरा हुआ संदेशा भेजा गया।

दुर्योधन बहुत दिनों से युधिष्ठिर के ऊपर कुपित थे ही उन्होंने पाण्डवों की व्यर्थ निन्दा करने का यह अच्छा अवसर पाया। उन्होंने उलूक से कहा—तुम युधिष्ठिर को कपटी धार्मिक, भीम को बैल की तरह अपरिमित भोजन करनेवाला, अर्जुन को अपने मुँह वृथा बड़ाई करनेवाला और कृष्ण को कोई बड़ा काम किये बिना ही झूठी प्रसिद्धि प्राप्त करनेवाला कहना। यही नहीं, किन्तु और भी कितनी ही अनादर सूचक बातें कहने के लिये उन्होंने उलूक को आज्ञा दी।

इस असह्य और अपमानकारी संदेशे को लेकर उलूक डरते डरते पाण्डवों की सेना में पहुँचा। जाते ही वह धर्मराज के पास गया और बड़ी नम्रता दिखाकर बोला महाराज! आप तो इस बात को अच्छी तरह जानते ही हैं कि दूत का क्या कर्त्तव्य है। इससे राजा दुर्योधन ने जो संदेशा कहने के लिये मुझे भेजा है, उसके लिये मुझपर आप क्रोध न कीजियेगा।

युधिष्ठिर ने कहा:—हे उलूक! तुम्हें कुछ भी डर नहीं। उस मूर्ख लोभी और अदूरदर्शी ने जो कुछ कहा हो, उसे तुम निर्भय कह सुनाओ।

तब उलूक ने, उस समय जितने राजा वहाँ बैठे थे, सब के सामने युधिष्ठिर से कहा:—महाराज! राजा दुर्योधन ने आपसे कहा है:—हे युधिष्ठिर! तुम्हें तो लोग बड़े धर्मात्मा समझते हैं; फिर क्यों तुम इस समय अधर्म कर रहे हो? ऊपर से तो तुम यह दिखाते हो, मानो तुम प्राणिमात्र के अभय दाता हो एक चिउँटी का भी प्राण लेना तुम अधर्म समझते हो। फिर क्या समझ कर आज तुम सारे क्षत्रियों का नाश करने की तैयारी में हो? जिस धर्मात्मा का धर्मचिह्न ऊँची ध्वजा के समान सदा प्रकाशित देख पड़ता है, किन्तु जिसके भीतर पाप कर्म छिपा रहता है, उसके धर्मव्रत को विडालव्रत कहते हैं अर्थात् बिल्ली जैसे देखने में बहुत सीधीसादी मालूम होती है, पर चूहे को घात में पाते ही उस पर टूट पड़ती है, वैसे ही इस तरह के धर्मध्वजी भी छिपे छिपे बड़े बड़े पापकर्म करते हैं। हे धर्मराज! तुम्हारी बातों में और तुम्हारे काम काज में बड़ा भेद है। उनमें परस्पर कुछ भी मेल नहीं। तुम कहते कुछ हो, पर करते कुछ हो, इससे हमारी समझ में तुम सच्चे धार्मिक नहीं, किन्तु विडालव्रतवालों की तरह के धार्मिक हो। कुछ भी हो, यदि तुम्हें युद्ध करना है, तो अपने पुराने दुःखों को अच्छी तरह

याद करके वीरों के समान बर्ताव करो। हमने तुम्हें जो जो दुःख दिये हैं, तुम्हारी माँ को जो जो क्लेश पहुँचाये हैं, तुम्हारी पत्नी द्रौपदी का जिस जिस तरह से अपमान किया है, उन सब को अच्छी तरह स्मरण करके अपने आप को ख़ूब उत्तेजित करो। फिर यदि तुम में कुछ भी पुरुषत्व हो तो अपना पौरुष दिखलाओ। कृष्ण ने सञ्जय से कहा था कि पाण्डव लोग युद्ध और शान्ति दोनों ही चाहते हैं, अब यह युद्ध का समय आ गया है। इससे अब अपनी बात को पूरी करो।

धर्मराज के विषय में उलूक के ये वचन ऐसे कठोर थे जैसे आज तक कभी न सुने गये थे। उन्हें सुन कर सब लोग चकित हो गये और परस्पर एक दूसरे का मुँह ताकने लगे, तब उलूक ने कृष्ण की तरफ़ देख कर कहा—

हे कृष्ण आप से राजा ने कहा है कि पाण्डवों का जो कुछ हित करते बन पड़े अब उसके करने का समय आ गया है, आकर अपनी शक्ति भर उसे करके दिखाओ। इन्द्रजाल सीख कर तरह तरह के रूप दिखा कर जो कौतुक करते हो, उसे हम बहुत छोटा काम समझते हैं, तुम्हारा मतलब उसमें निकलने का नहीं। दूत बन कर हमारी सभा में आने के समय तुम जानते थे कि दूत मारा नहीं जाता और न उसे किसी तरह का कष्ट ही पहुँचाया जाता है इसी से तुम ने वहाँ बड़ी बहादुरी दिखलाई थी; बड़ी बड़ी बातें कही थीं, और बहुत कुछ गर्जन तर्जन किया था। अब युद्ध के मैदान में उन सब बातों को सत्य करके दिखाओ। हे कंस के सेवक! तुम जो अचानक इतने प्रसिद्ध हो गये हो उसका सिर्फ़ यही कारण है कि तुम्हें हमारे समान राजा के साथ युद्ध नहीं करना पड़ा। अब हम देखेंगे कि तुम कितने बड़े बीर और कितने बलवान हो।

महामान्य, परम प्रिय, कृष्ण का इस प्रकार अपमान होते देख सब लोग क्रोध से अधीर हो उठे। वे अपना अपना आसन छोड़कर उठ खड़े हुए और परस्पर एक दूसरे का हाथ पकड़कर दाँत पीसने लगे। परन्तु दूत पर क्रोध करना व्यर्थ समझ कर अंत को वे चुप हो रहे; कोई बोला नहीं।

इसके बाद अर्जुन की तरफ़ फिर कर उलूक ने कहा—राजा दुर्योधन ने आप से कहा है—हे पार्थ! इस समय तुम अपने मुँह अपनी बड़ाई करना छोड़कर हाथ से कुछ काम कर दिखाओ। अब यह समय बातें बनाने का नहीं; किन्तु कुछ काम करके दिखाने का है। सिर्फ़ बड़ाई बघारने से यदि काम सिद्ध हो जाता तो संसार में किसी को किसी बात की कमी न रहती। बहुत दफ़े हमारे कान में यह बात पड़ी है कि तुम्हारे बराबर योद्धा दूसरा नहीं है। तथापि तुम्हारा राज्य हमने छीन लिया है, उसका उपभोग भी हम कर रहे हैं और इस युद्ध में तुम्हें मार कर उसकी रक्षा भी करेंगे। जब जुए में हरा कर हमने तुम्हें अपना दास बना लिया था, तब ताड़ के समान बड़ा तुम्हारा गांडीव धनुष कहाँ था? तुम ऐसे बहादुर हो कि तुम्हारी स्त्री द्रौपदी को तुम्हें दासपन से छुड़ाना पड़ा? तुम में जो सचमुच ही इतनी मूर्खता समाई हो तो तुम भी भीष्म के साथ युद्ध करो अथवा अपने सिर की ठोकर से किसी पर्वत को तोड़ो; अथवा अपनी भुजाओं के बल से इस अगाध सेना रूपी समुद्र को पार कर जाओ! किन्तु महा अपवित्र और पापी आदमी की स्वर्गप्राप्ति की इच्छा के समान युद्ध में हमें हरा कर राज्य पाने की वृथा आशा न करो।

यह वाक्य रूपी बाण अर्जुन के हृदय में बेतरह धँस गया। उनके माथे पर पसीना निकल आया उसे वे अपने हाथ से पोछने लगे। किन्तु यह सोच कर कि दूत मारा नहीं जाता, उलूक को उन्होंने दंड नहीं दिया। वे यह सब सुन कर भी चुप बैठे रहे।

अन्त में भीमसेन को पुकार कर उलूक ने कहा—हे भीमसेन! आपके लिये राजा दुर्योधन ने हम से कहा है कि उस भुक्खड़ मूर्ख बिना सींग के बैल से कहना—हे भीम! हमारे ही प्रभाव से विराटनगर में वहाँ के राजा की रोटियाँ बनाकर तुम ने रसोइये की पदवी प्राप्त की थी। इससे तुम्हारी अच्छी प्रसिद्धि हुई। वाह! ख़ूब नाम पैदा किया! सभा में उस दिन जो प्रतिज्ञाएँ तुम ने की थीं, उन्हें अब याद कर लो और उन्हें सफल करने की चेष्टा में लगो, यदि तुम में कुछ भी सामर्थ्य हो तो हम सब भाइयों को मारो और दुःशासन का रक्त पान करो। हे भीम! मनों लड्डू उड़ा जाने में तुम ज़रूर वीर हो, किन्तु युद्ध के मैदान में आगे बढ़ने पर अपनी गदा से लिपटे हुए तुम्हें ज़रूर ही ज़मीन पर लोट पोट होना पड़ेगा, युद्ध और भोजन में बड़ा भेद है।

भीमसेन अब तक सिर नीचा किये बहुत बड़े कालेनाग की तरह ज़ोर ज़ोर साँस लेते हुए चुप बैठे थे। परन्तु इसके आगे उनसे न रहा गया। वे अपने आसन के ऊपर से सहसा कूद पड़े। यह देख कर कृष्ण समझ गये कि उलूक पर विपत्ति आया चाहती है। इससे वे मुसकुराये और भीम को उलूक पर चोट करने से रोक दिया। भीम को मना करके उन्होंने उलूक से कहा—

हे उलूक! तुम बहुत जल्द अब यहाँ से चल दो। जाकर दुर्योधन से कह देना कि पाण्डवों ने तुम्हारी बातें सुन लीं और उनका अर्थ भी अच्छी तरह समझ लिया। तुम्हारी इच्छा के अनुसार ही सब काम होगा। कल प्रातःकाल ही युद्ध आरम्भ हो जायगा।

यह सुनने पर भीमसेन का क्रोध कुछ कम हुआ और उन्होंने कहा—हे उलूक! दुर्योधन से कहना कि तुम्हारी उत्तेजना पूर्ण बातें हमने सुनलीं। हम लोगों में से जो प्रतिज्ञा जिसने की है, उसे वह अच्छी तरह याद है। युद्ध में वे सभी प्रतिज्ञाएँ पूर्ण की जाँयगी। उसके सिवा इस समय एक प्रतिज्ञा हम और करते हैं। उसे भी सब लोगों के सामने दुर्योधन को सुना देना। वह प्रतिज्ञा यह है कि 'जब हम अपनी गदा की चोट से तुझ कुलाङ्गार को ज़मीन पर गिरा देंगे, तब धर्मराज के सामने हम तेरे सिर पर लात मारेंगे।

तब वीराग्रणी अर्जुन ने कहा—हे उलूक तुम दुर्योधन से हमारा उत्तर इस प्रकार कहना—

हे महात्मा! तुम यदि अपने बल और वीर्य के भरोसे हम लोगों को युद्ध के लिये ललकारते तो हम तुम्हें क्षत्रिय समझ कर प्रसन्नता पूर्वक तुम्हारे निमंत्रण को स्वीकार करते और तुम्हारे साथ आनन्द पूर्वक युद्ध करते। किन्तु हे नीच! तुम अपने मन में यह न समझना कि जो बड़े बूढ़े गुरुजन बध किये जाने के पात्र नहीं हैं, उन्हें युद्ध में आगे करने से हमारे मन में दया उत्पन्न हो आवेगी। इसलिये हम उन्हें न मारेंगे। ऐसा कभी न होगा। जिन भीष्म के भरोसे तुम इतना उछल, कूद कर रहे हो, हम प्रतिज्ञा करते हैं कि हम स्वयं उन्हें इस युद्ध में मारेंगे। तुमने कहला भेजा है कि तुम कल ही से युद्ध के लिये तैयार हो, सो बहुत अच्छी बात है। यह हमें मंजूर है। कल ही गाण्डीव के मुख से इस बात का उचित उत्तर तुम्हें मिलेगा।

अन्त में धर्मराज ने उलूक से कहा—हे दूत! दुर्योधन से तुम कहना—हे भाई! तुम्हारा निज का जैसा चरित है, वैसा ही तुम औरों का न समझो। तुम ने अपनी मूर्खता और दुर्बुद्धि से जो अन्याय किया है, उसका फल चखने के लिये अपने सामर्थ्य के अनुसार तैयार रहो।

इसके अनन्तर जितने राजा लोग पाण्डवों की सभा में बैठे थे, सब ने दुर्योधन के संदेशे का तरह तरह से यथोचित उत्तर देकर उलूक से चले जाने को कहा—

उलूक ने लौटकर आदि से अन्त तक सारा हाल दुर्योधन से कह सुनाया। राजा धृतराष्ट्र ने भी सब बातें सुनीं। तब उन्होंने सञ्जय से पूछा—हे सञ्जय! भीम आदि की कठिन प्रतिज्ञा सुनकर महात्मा भीष्म ने क्या कहा है! इसे हम जल्द सुनना चाहते हैं।

सञ्जय ने कहा—महाराज! महात्मा भीष्म ने दुर्योधन से कहा है कि युद्ध करने की विधि और व्यूह रचना करने में हम बृहस्पतिके समान हैं। तरह तरह के व्यूह बनाकर यथाशक्ति हम विधि पूर्वक युद्ध करेंगे। पाण्डवी सेना में इस समय जितने वीर हैं, उनमें से कोई भी हमें जीतने में समर्थ नहीं है। किन्तु पाण्डवों की ओर जो शिखण्डी नामक रथी है, उसका बध हम न कर सकेंगे, क्यों कि वह हम पर विजय पाने के लिये प्रतिज्ञा कर चुका है।

यह सुनकर दुर्योधन ने पूछा—हे पितामह! आप शिखण्डी का बध क्यों न करेंगे, इसके भेद को कह कर मेरे शोक को दूर कीजिये।

इसपर पितामह भीष्म ने अम्बा की सारी कथा और परशुराम का युद्ध तथा उसकी तपस्या और शिवजी से वर प्राप्ति विस्तार पूर्वक कह सुनाया। फिर उन्होंने कहा कि वही अम्बा मेरे बध के लिये अब शिखण्डी होकर पाण्डवों का सेनापति है। हाँ, तुम्हारी प्रसन्नता के लिये हम प्रति-दिन दस सहस्र सैनिकों का बध अवश्य करेंगे।

इसी प्रकार अन्य महारथियों से विजय का आश्वासन पाकर दुर्योधन परम प्रसन्न हुआ। उसकी आज्ञा से सैनिक लोग युद्ध के लिये प्रसन्नता प्रगट करने लगे। रथ, घोड़े और ऊँट आदि युद्ध के लिये सजाये गये। कौरवों की उस अपार सेना में सब कहीं जाकर दुर्योधन ने राजों और सेना-ध्यक्षों से कहा कि कल सूर्य उदय होने के पहले ही युद्ध छिड़ जायगा। राजा की आज्ञा है कि सब लोग तैयार रहें।

दोनों सेना मध्य में पाँच योजन की भूमि छोड़ कर प्रातःकाल होने पर युद्ध आरम्भ होने के लिये प्रतीक्षा करने लगी।

इति

भीष्मपर्व

युद्ध का मैदान

दोनों ओर युद्ध की उत्सुकता में रात बीत गई। प्रातःकाल होने पर सब ने स्नान किया, सफ़ेद कपड़े पहने, उत्तम मालाएँ धारण कीं, अस्त्र-शस्त्र तथा ध्वजाएँ हाथ में लीं और स्वस्तिवाचन तथा अग्निहोत्र किया। इस प्रकार तैयार होकर एकाग्र मन से सब युद्ध के मैदान को चले। मैदान गोल मण्डलाकार था, उसका विस्तार पाँच योजन था। उस मैदान का आधा भाग कौरवों के अधिकार में और आधा पाण्डवों के अधिकार में था। कौरवों के सेनापति इसी मैदान के पश्चिमी भाग में अपनी सेना युद्ध के लिये सजाने लगे।

उधर युधिष्ठिर ने भी अपने सेनाध्यक्षों को युद्ध के मैदान में चलने की आज्ञा दी। राजाज्ञा पाकर वे लोग भी लोहे के चित्र बिचित्र कवच धारण करके कारीगरों और मिस्त्रियों को सेना के डेरों में छोड़ कर, सेना, घोड़े, रथ, हाथी आदि लेकर युद्धभूमि के पूर्वी भाग में जा डटे। वहां उन्होंने अपनी सेना का विभाग ऐसी चालाकी से किया कि शत्रुओं को भ्रम हो गया। उन लोगों ने समझा कि पांडवों की सेना का यह विभाग ऐसा ही रहेगा और इसी दशा में वे युद्ध आरम्भ करेंगे, किन्तु बात इसके बिलकुल विपरीत हुई। पांडवों ने शत्रुओं को भ्रम में डालने के लिये ही यह चालाकी की थी। सेना-विभाग का जो ढंग कौरवों को दिखाई दिया था, युद्ध शुरू होने पर वह एकायक बदल गया। इससे कौरवों को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा। उनके पहले के सारे विचार धूल में मिल गये। इस तरह कौरवों को चकमा देकर युधिष्ठिर ने युद्ध के समय प्रत्येक विभाग की सेना को पहचानने में किसी तरह का गड़बड़ न हो, एतदर्थ प्रत्येक विभाग के लिये पृथक पृथक चिह्न, भिन्नभिन्न भाषा और अलग अलग नाम निश्चित कर दिया।

पांडवों की पताका देख पड़ते ही कौरवों ने लड़ाई की चाल शुरू कर दी। भीष्म पितामह ने सब सेनाध्यक्षों को बुलाकर कहा—

हे वीरो! रोगादि से पीड़ित होकर घर में पड़े पड़े मर जाने की अपेक्षा युद्ध के मैदान में अस्त्रों के आघात से मर जाना ही क्षत्रियों के लिये अधिक अच्छा है। क्षत्रियों के लिये युद्ध ही खुला हुआ सुखदायी स्वर्ग का द्वार है। इससे इस समय जिसे स्वर्ग जाने की इच्छा हो, वह इसी द्वार का आसरा लेकर जाने के लिये तैयार हो जाय।

इस प्रकार महात्मा भीष्म की बात सुन कर प्रत्येक सेनाध्यक्ष ने काला मृगचर्म धारण कर दुर्योधन के लिये प्राण तक दे देने की प्रतिज्ञा करके प्रसन्नमन से एक एक अक्षौहिणी सेना अपने साथ ली। भीष्म से ईर्षा के कारण कर्ण परिवार सहित निरस्त्र हो कर बैठ रहा। सेनापति भीष्म, सफ़ेद पगड़ी, सफ़ेद कवच और सफ़ेद छत्र धारण करके बची हुई एक अक्षौहिणी सेना लेकर 'सर्वतोमुख' व्यूह बना कर आगे चले। इस युद्ध के पूर्व इतनी बड़ी सेना एक जगह इकट्ठी हुई कभी नहीं देखी गई थी।

जब युधिष्ठिर ने देखा कि दुर्योधन की इतनी विशाल सेना युद्ध के लिये तैयार है और हमारी सेना कम है तिस पर सुप्रबन्ध नहीं, यह सोच कर वे बहुत चिन्तित हुए और उदास मन होकर अर्जुन से बोले—

हे धनञ्जय! पितामह भीष्म जब कौरवों के सेनापति हुए हैं, तब कहो किस तरह उनके साथ युद्ध करके हम सफलता प्राप्त कर सकेंगे। महात्मा भीष्म ने युद्धशास्त्र के अनुसार जो यह व्यूह रचना की है, उसे देख कर हमारे मन में बहुत सन्देह हो रहा है। इस व्यूह को तोड़ने अथवा इससे अपनी रक्षा करने का कोई उपाय हम नहीं देखते।

अर्जुन धर्मराज को इस तरह उदासीन और निराश देख कर बोले—हे महाराज! बुद्धि, बल और पराक्रम होने से थोड़ी भी सेना बहुत बड़ी सेना को हरा सकती है। उद्योग पूर्वक युद्ध करने से हमें अवश्य सफलता होगी। आप डरिये नहीं, डरने का कोई कारण हम नहीं देखते। भीष्म के इस व्यूह को देख कर आप चिन्ता न कीजिये। हम इससे भी थोड़ी सेना लेकर इस व्यूह के उत्तर में एक दूसरा व्यूह बनाना जानते हैं। इस समय हमें एक ऐसा व्यूह बनाना होगा, जिसके भीतर प्रवेश करने का द्वार सुई के छेद के आकार का हो। उसके द्वार पर भीमसेन के समान कोई योधा रहने से शत्रु उसे देख कर इस तरह डर कर भागेंगे, जिस तरह सिंह को सामने देख कर मृगों का झुण्ड भागता है।

महावीर अर्जुन ने धर्मराज को इस प्रकार धीरज देकर, अपने कहे अनुसार 'वज्रव्यूह' की रचना की। इसके बाद वे कौरवों की सेना की तरफ़ मस्त हाथी की तरह धीरे धीरे चले।

इस प्रकार दोनों ओर मोरचाबन्दी हो जाने पर कौरवों और पाण्डवों के वीरों के सिंहनाद और घोड़े, हाथी तथा रथों आदि के कोलाहल से दशों दिशाएँ व्याकुल हो उठीं। दोनों सेनाओं की चाल से उड़ी हुई धूल ने आकाशमण्डल को ढँक लिया, जिससे अन्धकार सा छा गया।

दोनों दल एक दूसरे के सामने आ जाने पर अपनी अपनी जगह पर ठहर गये। तब धूल का उड़ना कुछ कम हुआ और आकाश थोड़ा बहुत साफ होगया। नये निकले हुए सूर्य के प्रकाश में सोने की झूलों और हौदों से शोभित हाथी और सोने ही के परदे पड़े हुए रथ इस तरह मालूम होने लगे, जैसे मेघमण्डल में बिजली चमक रही हो। योद्धा लोग चमकते हुए चित्र विचित्र कवचों से सजे हुए अग्नि और सूर्य की तरह प्रकाशमान देख पड़ने लगे। धनुष, बाण, तलवार, गदा, शक्ति और दूसरे प्रकार के सैकड़ों अस्त्रशस्त्रों से सजे हुये दोनों सेना दल ऐसे मालूम होने लगे, जैसे प्रलय होने के समय सैकड़ों प्रकार के उन्मत्त मगर आदि जलजीवों से पूर्ण उछलते हुए दो समुद्र हों। सोने के काम वाले, जलती हुई अग्नि के समान उज्वल, नाना प्रकार के पताके इन्द्रधनुष की बराबरी करने लगे। और और पताका चिह्नों के बीच में भीष्म का पाँच ताराओं से शोभित तालकेतु, अर्जुन का महा भीषण कपिध्वज, युधिष्ठिर का सुवर्णमय चन्द्र, दुर्योधन का मणिमय हाथी का चिह्न, भीमसेन का सुवर्ण-सिंह-ध्वज, आचार्य द्रोण का कमण्डलु ध्वज और अभिमन्यु का मणि-काञ्चनमय-मयूर सब से अधिक प्रकाशित होकर चमकने लगा।

इसके बाद राजा दुर्योधन ने पाण्डवों की व्यूह रचना अपनी मोरचाबन्दी से भी विकट और दृढ़ देख कर द्रोणाचार्य से कहा—

हे आचार्य! देखिये, शत्रुओं ने कैसे अच्छे व्यूह की रचना की है। उसकी रक्षा के लिये द्वार पर भीमसेन को रक्खा है। अब वे हमारी सेना पर आक्रमण करने की तैयारी कर रहे हैं। किन्तु पाण्डवों की सेना कम है, हमारी सेना उससे कहीं अधिक है। अगणित योद्धा हमारे लिये प्राण देने

को तैयार हैं। इससे चिन्ता की कोई बात नहीं। हमारे सेनाध्यक्ष व्यूह के हर द्वार पर रहें और आप खुद भीष्म की रक्षा करें।

तब महात्मा भीष्म ने दुर्योधन को प्रसन्न करने के लिये सिंहनाद करके अपने शंख को बड़े ज़ोर से बजाया। उसे सुनकर हर एक सेनाध्यक्ष ने अपने अपने विभाग से शंख बजाकर युद्ध आरम्भ करने के लिये उतावली सूचित की।

कौरवों की शंखध्वनि सुनकर दूसरी तरफ़ से अर्जुन ने अपना देवदत्त नामक और कृष्ण ने अपना पाञ्चजन्य नामक शंख इतने ज़ोर से बजाया कि सुननेवालों को बहरे हो जाने की शङ्का होने लगी। पाण्डवों की शंखध्वनि से कौरवों की सेना को तो त्रास हुआ और पाण्डवी सेना का उत्साह बढ़ गया। पाण्डवों के सेनाध्यक्षों ने भी अपना अपना शंख बजाकर यह सूचित किया कि मोरचाबन्दी हो चुकी, अब हम लोग युद्ध के लिये पूर्णरूप से तैयार हैं।

इसके बाद सफ़ेद घोड़े जुते हुए और मणियों से जड़े हुए रथ पर सवार होकर पाण्डवों के सेनापति अर्जुन ने कृष्ण से कहा—

हे अच्युत! मेरा रथ दोनों सेनाओं के बीच में खड़ा कीजिये, जिससे मैं यह निश्चय कर सकूँ कि मुझे किनके साथ युद्ध करना है।

तब कृष्ण ने रथ को दोनों सेनाओं के बीच में ले जाकर खड़ा किया और कहा—हे पार्थ! देखो, ये भीष्म, द्रोण आदि योद्धा और कौरव सेना के सब वीर इकट्ठे हैं

अर्जुन ने दोनों दलों में अपने पितामह, आचार्य, मामा, भाई, पुत्र, श्वसुर, और अपने मित्र आदि आत्मीयजनों को देखा। अपने प्रिय सम्बन्धी और आत्मीयजनों को देख कर अर्जुन का हृदय करुणा से भर गया। वे उदास और दुखी होकर बोले—

हे अरिसूदन! अपने इन आत्मीयजनों को युद्ध करने के निमित्त एकत्रित देख कर हमारी देह काँप रही है और सूखी जा रही है। चित्त घूम रहा है। हमारा जी ठिकाने नहीं है। गाण्डीव धनुष हाथ से गिरा जा रहा है जिनके कारण मनुष्य संसार में राज्य पाने की कामना करता है, उन्हीं कुटुम्बियों और प्रेमपात्र जनों का नाश करके हम राज्य पाने का उद्योग कर रहे हैं। भला, इन गुरुजनों तथा सम्बन्धियों का संहार कर मैं किस सुख का उपभोग करूँगा? इसकी अपेक्षा तो भिक्षावृत्ति कहीं उत्तम है। वे लोग चाहे मुझे मार डालें, पर मैं इनके ऊपर अस्त्र न उठाऊँगा। हे नाथ! पृथ्वी की बात जाने दीजिये; हमें त्रैलोक्य का राज्य भी मिलता हो तो भी मैं इन लोगों के मारने की इच्छा नहीं कर सकता। ये लोग लोभ से अन्धे होकर युद्ध करने आये हैं; किन्तु हाय! मैं सब बातों को अच्छी तरह समझ कर भी यह महा पाप करने चला हूँ। इस तरह की बातें कह कर शोक से व्यथित हो, धनुष बाण फेंक कर श्रीकृष्ण के सामने हाथ जोड़ कर रथ में बैठ गये।

तब अर्जुन को व्यथित हृदय देख कर हँसते हुए भगवान् श्रीकृष्णजचन्द्र बोले:—हे अर्जुन! तुम न शोक करनेवाली बात के लिये शोक करते हो और साथ ही पण्डितों की भाषा बोलने का प्रयत्न करते हो। पण्डित लोग तो सजीव-निर्जीव देहधारियों के विषय में शोक नहीं करते। यदि तुम विचार कर देखोगे तो तुम्हें मालूम हो जायगा कि तुम्हारा विचार कितना भ्रमपूर्ण है। इस तरह की कायरता भरी बातें करना तुम्हारे लिये शोभा की बात नहीं है। तुम्हारे लिये युद्ध से बढ़ कर दूसरा कल्याणकारी मार्ग नहीं है। वर्णाश्रम विहितकर्म करते हुए चित्त शुद्ध हो जाने पर मोक्ष के लिये सब कर्मों का त्याग सन्यास या सांख्यमार्ग है। तथा निष्कामबुद्धि से आमरण



बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग।

युगल सेन के बीच में, रथ ले चलिये नाथ।
निज नयनन्हि देखों मुझे, लड़ना किनके साथ॥

पृष्ठ २०८

णान्त करते रहना कर्मयोग मार्ग है। सांख्य शास्त्रानुसार आत्मा अमर है अतएव गुरुजनों की हत्या-वाला विचार तुम्हारा व्यर्थ है; क्योंकि आत्मा अमर होने के कारण एक देह छोड़ दूसरी देह में चला जाता है। जैसे लोग पुराने वस्त्र को त्याग कर नये धारण करलेते हैं। न कोई किसी को मारना है न कोई मरता है। तुम अपना धर्म समझ सांख्य सिद्धान्तानुसार भी युद्ध करो, क्योंकि युद्धभूमि में मरने पर वही गति होनी है जो सन्यास से होती है। विजय होने पर पृथ्वी का राज्य और मरने पर स्वर्गप्राप्ति होगी। परन्तु हे अर्जुन! सांख्य से कर्मयोग अच्छा है। यह कर्म-योग जब निष्काम भावना से होने लगता है तब जीव सुगमता से मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

उस कर्म के आरम्भ करने के पूर्व यह अवश्य विचारणीय है कि कर्ता की इच्छा और बुद्धि में कहाँ तक शुद्धता है। इसका निर्णय करनेवाली बुद्धि और इन्द्रिय स्थिर तथा शान्त होनी चाहिये, तभी वासनात्मक भाव भी शुद्ध होंगे। अतएव समाधियोग से बुद्धि और इन्द्रिय का स्थिर कर लेना परमावश्यक है। मनुष्यों के सांसारिक व्यवहार से यही ज्ञात होता है कि अधिकतर स्वर्गीय-सुख की प्राप्ति के लिये वैदिक काम्यकर्म की ओर ही लोगों की प्रवृति होती है और ऐसे जीव महत्वपूर्ण मोक्षसुख से सदा वञ्चित रहते हैं। अतएव इस प्रकार के काम्य कर्मों को छोड़ कर निष्काम भाव से कर्म करो कर्म का फलाफल तुम्हारे अधिकार का नहीं। कर्तव्यबुद्धि से फलाफल की आशा छोड़ कर जो कर्म किया जाता है उसके शुभाशुभ कर्त्ता को नहीं बाँधते।

अर्जुन ने कहाः—हे प्रभो! इस प्रकार की समत्व बुद्धि को प्राप्त मनुष्य के क्या लक्षण हैं?

श्रीकृष्ण ने कहाः—हे अर्जुन! समत्वबुद्धि प्राप्त करने के लिये बुद्धि को स्थिर करना बहुत ज़रूरी है। उसके लिये पहले इन्द्रिय और मन को वश में लाने की आवश्यकता है तुम स्थितप्रज्ञ होकर सब कर्मों का आचरण करो; कोई भी पाप तुम्हें स्पर्श तक न कर सकेगा।

फिर अर्जुन ने कहाः—हे गुड़ाकेश! यदि बुद्धि की श्रेष्ठता ही सब कुछ है तो मैं तदनुकूल आचरण बना लेता हूँ और आप मुझे इस घोर युद्ध में न प्रवृत्त करें।

श्रीकृष्ण ने कहाः—हे अर्जुन! प्रवृति और निवृति की दो निष्ठाएँ मैंने कहीं, पर यह भी ध्यान रक्खो कि कोई मनुष्य क्षण भर भी बेकार नहीं रह सकता। जब तक यह शरीर है तब तक प्रकृति कुछ न कुछ काम कराती रहेगी। अतः इन्द्रियों को वश में रखकर कर्तव्यबुद्धि से कर्म करते रहना ही श्रेयस्कर है। ब्रह्मा ने भी सृष्टिरचना कर प्रजा और यज्ञ उत्पन्न किये तथा प्रजा से कहा कि इससे तुम अपनी वृद्धि करो। उस ब्रह्मनिर्मित यज्ञ की सिद्धि के लिये कर्म आवश्यक है अथवा यज्ञ का नाम ही कर्म है और वह अवश्य कर्तव्य है। इस प्रकार के कर्म मनुष्य के बन्धक कदापि नहीं होते।

यद्यपि पूर्ण ज्ञानी हो जाने पर मनुष्य को कुछ कर्त्तव्य शेष नहीं रह जाता तो भी लोक कल्याणर्थ उसे कर्म करना ही चाहिये। इसी विचार से जनक आदि ज्ञानियों ने कर्म किया और मैं भी कर रहा हूँ। ज्ञानी का कर्त्तव्य है कि वह अपने आचरण से लोगों को सन्मार्ग दिखावे। कर्त्तव्य बुद्धि से स्वधर्मानुसार कर्म करते करते मर जाना परम सौभाग्य की बात है।

अर्जुन ने कहा—हे केशव! इच्छा न होते हुए भी मनुष्य पाप में क्यों प्रवृत्त होते हैं?

श्रीकृष्ण ने कहा—हे पार्थ! काम, क्रोध आदि रजोगुण के विकार हठात् मन को बिगाड़ा करते हैं, अतएव मन का स्वाधीन रखना परम पुरुषार्थ है। सम्पूर्ण कर्म ब्रह्मार्पण पूर्वक करना चाहिये

यही तत्व की बात है । इस कर्म-योग को युग के आदि में मैंने विवस्वान् से कहा, उन्होंने मनु से और मनु ने इक्ष्वाकु से कहा । पर वह काल पाकर नष्ट हो गया, वही मैं फिर तुम से कहता हूँ ।

तब अर्जुन ने पूछा कि विवस्वान् के पहले आप कैसे ?

श्रीकृष्ण ने कहा—हे कुन्ती के पुत्र ! साधुजनों की रक्षा, दुष्टों का नाश और धर्मस्थापन करने के लिये मैं प्रत्येक युग में हुआ करता हूँ । लोक कल्याणार्थ कर्म करते हुए भी मैं उससे बद्ध नहीं होता । इसी प्रकार तुम भी कर्म करो । यों तो संसार में बहुत से यज्ञ करने को हैं; किन्तु काम, क्रोध आदि इन्द्रियों के व्यवहारों को संयम की अग्नि में जलाना ही उत्तम यज्ञ है । अतः तुम कामवासना को त्याग कर इस उतम यज्ञ के लिये कर्म को करो । जब सब जीवों में समत्वबुद्धि आजाती है, तब उस मनुष्य के कर्म उसे किसी प्रकार बाधक नहीं होते । बन्धन तो केवल अज्ञान से होता है । इसलिये अज्ञान को छोड़ कर युद्ध करना ही तुम्हारा धर्म है ।

अर्जुन ने कहा—महाराज त्याग और योग दोनों मुझे साथ साथ न बतलाइये, एक निश्चित मार्ग दिखाइये जिससे मेरा कल्याण हो ।

श्रीकृष्ण ने कहा—हे अर्जुन । श्रेष्ठ तो दोनों ही हैं, परन्तु कर्मयोग अधिक उत्तम है । इसकी पुष्टि में उन्होंने कहा—कि निष्काम काम किये बिना सन्यास की सिद्धि नहीं होती; क्योंकि शारिरिक व्यवहार देखना, सुनना, बोलना आदि कर्म छूट नहीं सकते । अतः ईश्वरार्पण पूर्वक कर्म करते रहना ही श्रेयस्कर है । ईश्वर किसी को कर्म करने या न करने को नहीं कहता, कर्म तो प्राकृतिक खेल है । अतएव समबुद्धि से कर्म करनेवाले को वे बाधक नहीं होते । समत्वबुद्धि प्राप्त मनुष्य तो जीवन्मुक्त है । जो फलाशा रहित होकर कर्तव्यकर्म का आचरण करता है, वही योगी और सन्यासी है । अग्नि होत्रादि का त्यागने वाला नहीं । बुद्धि की स्थिरता के लिये इन्द्रियसंयम आवश्यक है, उसकी सिद्धि पातञ्जल योग से बतलाई गई है उस पर अर्जुन को शङ्का हुई कि मन बड़ा चञ्चल है, यह कैसे वश में किया जा सकता है ? इसके उत्तर में श्रीकृष्ण ने कहा—

हे अर्जुन ! अभ्यास और वैराग्य से उसे वश में लाओ । इस प्रकार अभ्यास करते हुए इस योग की सिद्धि होने पर अनेक जन्मों के बाद परमगति मिल जाती है । अतएव कर्म का त्याग न करो, मन को स्वाधीन रख कर संसार का व्यवहार करो । जो इस समस्त जगत् को मेरा ही पर अपररूप जानता है और मायातीत मेरे अव्यक्त रूप का चिन्तन करता है, उसे मैं परमपद देता हूँ । सब देवता, जीव, यज्ञादिकर्म, अध्यात्म, मैं ही हूँ; मेरे अतिरिक्त और कुछ नहीं । फिर अर्जुन के प्रश्न करने पर विभूति योग बतलाकर श्रीकृष्ण ने अपना विराट रूप भी दिखा दिया । व्यक्त उपासना की श्रेष्ठता दिखलाते हुए श्रीकृष्ण ने कहा—

हे अर्जुन ! परमेश्वर ही आत्मा रूप शरीर में है । इसका ज्ञान ही परमेश्वर का ज्ञान है । जो ज्ञान की दृष्टि से प्रकृति और पुरुष के भेद को समझकर परमात्मा को पहचान लेता है, वही मुक्त है । सर्बत्र परमेश्वर एक होने पर भी सत, रज, तम इन प्रकृति के गुणों से संसार में विचित्रता दिखलाई पड़ती है, जो इस विचित्रता को समझ कर अपने को कर्त्ता न जान परमेश्वर की उपासना करता है, वह तीनों गुणों से परे हो जाता है । इस प्रकार ज्ञान प्राप्त कर साम्यबुद्धि से निष्काम कर्म करता हुआ परमपद का भागी होता है । अन्त में कर्म की प्रधानता दिखलाते हुए श्रीकृष्ण ने कहाः—हे अर्जुन ! सब कुछ करनेवाला परमेश्वर मैं ही हूँ । तुम मेरे शरण में आओ मुझ में श्रद्धा रख कर मेरी उपासना करते हुए निष्कामकर्म का आचरण करो मैं तुम को सब पापों से मुक्त कर दूंगा ।

इस प्रकार भगवान कृष्ण के उपदेशामृत को पान कर अर्जुन की चेतना हुई और वे स्वकर्म में प्रवृत्त हुए तब उन्होंने श्री कृष्ण से कहाः—

हे अच्युत ! आपकी कृपा से मेरा मोहान्धकार दूर होगया। आपने जो मुझे अपने धर्म के पालन करने का उपदेश दिया, उसका अवश्य पालन करूँगा। अब मेरा मोह निर्मूल हो गया।

इसके बाद अर्जुन ने फिर अपने गाण्डीव धनुष को हाथ में लिया और युद्ध के काम में दत्तचित्त हुए।

ब्रह्मर्षि व्यास जी ने जब सुना कि दोनों पक्षों की प्रचण्ड सेना युद्ध के मैदान में युद्ध करने के लिये तैयार खड़ी है, तब वे धृतराष्ट्र के पास आये। धृतराष्ट्र की ही अनीति से युद्ध की नौबत आई थी इससे इस युद्ध को अपनी ही अनुदार नीति का परिणाम समझ कर धृतराष्ट्र इस समय बहुत व्याकुल हो रहे थे। व्यासजी उन्हें इस दशा में देखकर एकान्त में ले गये और बोलेः—

हे राजा धृतराष्ट्र ! काल बड़ा प्रबल होता है। वही सब कुछ करता है उसी के कारण आज इस महायुद्ध का उपक्रम हुआ है। तुम्हारे पुत्र और भतीजे आदि परस्पर मरने मारने पर जो उतारू हैं, उनके लिये तुम शोक न करो। हे पुत्र ! यदि युद्ध के मैदान में उन्हें देखने की तुम्हारी इच्छा हो तो हम तुम्हें दिव्य चक्षु देते हैं युद्ध में जो कुछ होगा, वह सब तुम उसे देख सकोगे।

धृतराष्ट्र ने कहाः—हे महर्षि अपनी जाति वालों का बध देखने की हमारी इच्छा नहीं। परन्तु आपकी कृपा से युद्ध का सारा हाल हम सुनना चाहते हैं।

व्यासजी ने धृतराष्ट्र की बात सुनकर सञ्जय को वर दिया और कहाः—सञ्जय तुमसे युद्ध का सब हाल कहेगा। युद्ध की कोई बात इससे छिपी न रहेगी गुप्त हो या प्रगट, दिन में हो या रात में, जो कुछ होगा सञ्जय को सब मालूम हो जाया करेगा। न इसे अस्त्र-शस्त्र से कोई बाधा पहुँच सकेगी, न परिश्रम से इसे थकावट ही मालूम होगी। हे भरत श्रेष्ठ ! तुम शोक न करो। हम कौरवों और पाण्डवों की इस कीर्त्ति को चिरकाल के लिये विख्यात कर देंगे।

महर्षि व्यास धृतराष्ट्र को इस तरह धीरज देकर चले गये। व्यास के दिये हुए वर के प्रभाव से सञ्जय प्रतिदिन युद्ध के मैदान में बिना किसी विघ्न-बाधा के घूमा किये और सायङ्काल युद्ध समाप्त होने पर सरा हाल धृतराष्ट्र से कहते रहे।

महायुद्ध का आरम्भ

जब अर्जुन ने फिर अपना धनुष बाण हाथ में लिया, तब सब महारथी लोग उत्साहपूर्ण वचन कह कर गर्जने लगे। पाण्डवी सेना के सब वीरों ने प्रसन्न होकर अपना अपना शंख बजाया। भेरी आदि तरह तरह के जुझाऊ बाजे बजने लगे। आकाशमार्ग में देवता लोग अपने अपने विमानों में चढ़ कर इस अद्भुत युद्ध को देखने के लिये आये। उस समय एक बड़ी विचित्र बात हुई। धर्मराज युधिष्ठिर ने अपने अस्त्रशस्त्र रखदिये और अपने रथ से उतर कर वे कौरवों की सेना की ओर पैदल ही चले। अपने जेठे भाई का यह अद्भुत आचरण देखकर पाण्डवों को बड़ी चिन्ता हुई। वे भी अपने अपने रथ से उतर पड़े और युधिष्ठिर के पीछे दौड़े। अर्जुन के साथ कृष्णजी भी गये। और भी कितने ही राजा लोग उसी तरफ़ रवाना हुए। उन्हें बड़ा कौतूहल हुआ कि बात क्या है जो युधिष्ठिर इस

तरह अचानक कौरवी सेना की तरफ़ जा रहे हैं। और किसी की हिम्मत तो कुछ पूछने की न हुई, पर अर्जुन से न रहा गया उन्हों ने कहा—

महाराज ! अब आप यह कौन सा काम कर रहे हैं ? सारी सेना युद्ध के लिये तैयार है, ऐसे समय में निरस्त्र होकर शत्रुओं के बीच जाना क्या उचित है ?

तब अन्य पाण्डवों से भी न रहा गया, उनलोगों ने भी कहा—आप हमारे बड़े भाई होकर हमें छोड़े जाते हैं; यह हमारे लिये बड़े दुःख की बात है। बतलाइये तो कारण क्या ? आप क्यों ऐसा कर रहे हैं ?

परन्तु युधिष्ठिर ने किसी की भी बात का उत्तर न दिया। वे निश्चल भाव से भीष्म के रथ की तरफ मुँह किये हुए बराबर चले ही गये। तब कृष्ण ने हँस कर कहाः—

हे पाण्डव ! तुम लोग किसी बात की चिन्ता न करो। घबराने का कोई कारण नहीं। हमने युधिष्ठिर के मन की बात जान ली। गुरुजनों की आज्ञा के बिना वे युद्ध करना नहीं चाहते। इसी से वे उनकी आज्ञा लेने जा रहे हैं। जो गुरुजनों की आज्ञा से अपने कार्य को आरम्भ करता है, वह कभी असफल नहीं होता।

राजा युधिष्ठिर को इस प्रकार आता हुआ देख कर कौरवों के दल में तरह तरह की बातें होने लगीं। कोई कहने लगाः—वह देखो, राजा युधिष्ठिर डर कर सन्धि करने के लिये भीष्म के समीप चले जा रहे हैं। अब वे निर्लज्ज होकर अपने कुल में दाग़ लगा रहे हैं। जिसने बड़ी सेना देखकर बिना युद्ध किये ही हार मान ली, उससे बढ़ कर निर्लज्ज कौन हो सकता है ? हाय ! हाय ! यह बड़ा ही कायर और कुपूत निकला। अपने भाइयों का भी मुँह काला करके देखो तो यह कैसा अनुचित काम कर रहा है। अब इसके महाबली भाई भीम और अर्जुन लज्जा के मारे मुँह दिखलाने लायक भी न रह जायँगे।

ऐसी ही तरह तरह बातें कौरवों की सेना में सब जगह होने लगीं। इस प्रकार शत्रुओं की सेना पाण्डवों को धिक्कार और दुर्योधन आदि कौरवों की प्रशंसा करके बड़े आनन्द से झण्डे हिलाने लगी।

जब युधिष्ठिर भीष्म के पास पहुँचे तब सब लोग यह सुनने के लिये कि देखें अब ये क्या कहते हैं और भीष्म क्या उत्तर देते हैं, चुपचाप मूर्त्ति के समान खड़े रहे। उधर युधिष्ठिर भाइयों को साथ लिये हुए अस्त्र-शस्त्रों से सजी हुई शत्रु सेना के बीच घुसते हुए वहाँ जा पहुँचे, जहाँ पितामह भीष्म युद्ध के लिये तैयार खड़े थे। उनके पास जाकर युधिष्ठर ने उनके दोनों पैर छुए और हाथ जोड़ कर बोले :—

हे तात ! हमसे कुछ कहते नहीं बनता है, किन्तु लाचार होकर युद्ध की आज्ञा माँगना भी परमावश्यक है। इसलिये कृपा करके हमें आशीर्वाद दीजिये, जिससे धर्म के लिये युद्ध करके हम विजयी हों।

युधिष्ठिर के इस शिष्ट व्यवहार से महात्मा भीष्म बहुत ही प्रसन्न हुए वे बोले :— हे धर्मराज ! यदि तुम हमसे बिना मिले ही युद्ध आरम्भ कर देते, तो अवश्य हमें अधिक दुःख होता। तुम्हारे इस सद्व्यवहार से हम बहुत प्रसन्न हैं हम तुम्हें आशीर्वाद देते हैं:—युद्ध में तुम्हारे गले में विजय की माला पड़ेगी। हे पुत्र ! तुम जानते हो कि मनुष्य अर्थ का दास है, अर्थ मनुष्य का दास नहीं। इससे दुर्योधन ने हमें अर्थ की रस्सी से बाँध रक्खा है और हम उसकी

तरफ़दारी करने के लिये लाचार हैं इसलिये हमें अपनी तरफ़ कर लेने की बात को छोड़ कर और जो वर हम से चाहो माँग सकते हो।

युधिष्ठिर ने कहाः—हे पितामह! आप कौरवों का पक्ष लेकर युद्ध कीजिये, हम इससे प्रसन्न हैं। परन्तु हमें कोई ऐसा उपदेश दीजिये जिससे हमारा हित हो।

भीष्म ने कहाः—हे पुत्र! यह बतला देना तो कौरवों के साथ छल और अन्याय होगा। फिर, हम से युद्ध करके कोई जीत जाय ऐसा पुरुष पृथ्वी में तो कोई नहीं। मनुष्य राजा की कौन कहे, इन्द्र भी समर्थ नहीं हैं। हम जब मरेंगे अपनी इच्छा से मरेंगे। इससे इस समय तुम्हें जिताने के लिये हम कौन सा उपदेश दें, कुछ समझ में नहीं आता। अस्तु, इस समय तुम अपने कटक में लौट जाओ, जब हमारा मृत्यु काल निकट आवे तब फिर हमारे पास आना हम तुम्हें अवश्य उपदेश देंगे।

तब युधिष्ठिर ने पितामह को प्रणाम कर उनकी प्रदक्षिणा की। उनकी बात को हृदय में धारण कर वे आचार्य द्रोण के पास गये। उन्हें भी प्रणाम कर उनसे युद्ध की अनुमति माँगी।

आचार्य द्रोण ने कहा :—हे राजन्! यदि तुम गुरु की आज्ञा के बिना ही युद्ध आरम्भ कर देते, तो हमें अवश्य तुम पर क्रोध आता और जी से हम यही चाहते कि तुम्हारी हार हो। किन्तु ऐसा न कर जो तुम हमारे पास आये हो तो हम तुम्हें आशीर्वाद देते हैं, वर मांगो। युधिष्ठिर के विजय का बरदान मांगने पर आचार्य द्रोण ने फिर कहाः—

हे धर्मराज! त्रैलोक्य में हमें जीतनेवाला कोई नहीं है और कौरवों के पक्ष से लड़ने के लिये हम कर्त्तव्यवश लाचार हैं। इसलिये तुमसे कुछ कहते नहीं बनता है।

युधिष्ठिर ने कहाः—हे गुरो! हम आपके पराक्रम को अच्छी तरह जानते हैं आप सब कुछ जानने वाले हैं, आप से बहुत समझा कर क्या कहें कृपा करके आप अपने बध का उपाय बतला दीजिये।

आचार्य द्रोण ने कहाः—हे पुत्र! सुनो, जब हम अपना मरण निश्चित करके अस्त्रों को त्याग कर हाथ बटोर लें और अचेत हो जायँ तब जिसकी खुशी हो, लाज छोड़ कर आवे और बेखटके हमारा बध कर डाले।

यह सुनकर आचार्य को प्रणाम करके युधिष्ठिर कृपाचार्य के समीप गये और प्रणाम करके कहाः—हे आर्य! हमें विजय का आशीर्वाद दीजिये।

यह सुन कर कृपाचार्य समझ गये कि इनके मन में मेरे बध का उपाय पूछने की अभिलाषा है। आचार्य कृप ने कहाः—हे राजन्! हम अवध्य हैं, हमारे मारे जाने का कोई उपाय नहीं। परन्तु युद्ध की व्यवस्था देख कर हम संग्राम-भूमि छोड़कर कहीं दूसरी जगह चले जायँगे और तुम्हारी विजय होगी इस बात को सत्य समझो।

यह सुनकर युधिष्ठिर की चिन्ता दूर हुई। उन्हें बहुत ढारस हुआ। अन्त में अपने मामा शल्य-राज के पास जाकर युधिष्ठिर ने उन्हें प्रणाम किया और प्रेम पूर्वक बात चीत करके युद्ध करने के लिये अनुमति माँगी।

शल्य ने कहाः—हे पुत्र! प्रतिज्ञा कर देने के कारण हम कौरवों की तरफ़ से युद्ध करने के लिये लाचार हैं। इस समय कहो हम तुम्हारा क्या हित-साधन कर सकते हैं।

युधिष्ठिर ने कहाः—महाराज! सूत-पुत्र का तेज नाश करने के लिये आप हम से कह चुके हैं, युद्ध के समय उसे भूल न जाइयेगा।

इसके अनन्तर मामा की मान-मर्यादा के अनुसार बहुत कुछ नम्रता दिखा कर भाइयों को साथ लिये हुए युधिष्ठिर अपने शत्रु कौरवों की सेना से बाहर निकल आये ।

इसी बीच कृष्ण जी कर्ण के पास गये और उसे अपनी ओर मिला लेने के बिचार से कहा— हे कर्ण! हमने सुना है कि भीष्म के द्वेष के कारण तुमने अस्त्र-शस्त्र त्याग कर युद्ध से मुँह मोड़ लिया है। इससे जब तक भीष्म युद्ध करें, तब तक तुम पाण्डवों की तरफ़ से युद्ध करो। भीष्म का देहावसान होने पर फिर कौरवों की ओर चले जाना ।

कर्ण ने कहा—हे कृष्ण! आप कैसी बातें कर रहे हैं? हम दुर्योधन के विरुद्ध होकर कोई काम न करेंगे। आप इस बात को निश्चित समझिये कि हम उनके हित के लिये अपने प्राण तक दे देने में सङ्कोच न करेंगे।

श्रीकृष्ण इस बार भी अपने उपाय में असफल होकर कर्ण के पास से लौट आये और पाण्डवों से आ मिले । अपने दल की सीमा पर खड़े होकर राजा युधिष्ठिर ने ज़ोर से पुकार कर कहा—

जिसे धर्म और न्याय प्यारा हो वह आकर हमारी सहायता करे। कौरवों में जो कोई हमारा हित चाहनेवाला हो वह निःशंक हो कर हमारे पास चला आवे, हम उसे प्रेम पूर्वक अपने पक्ष में लेने को तैयार हैं।

धृतराष्ट्र की एक वेश्या स्त्री से युयुत्सु नामक पुत्र था, उसने सब की तरफ़ देख कर युधिष्ठिर की बात का इस प्रकार उत्तर दिया—

हे धर्मराज! हम आप की तरफ़ होकर कौरवों के साथ युद्ध करेंगे।

युधिष्ठिर ने कहा—भाई! आओ, सब इकट्ठे होकर तुम्हारे इन मूर्ख भाइयों के साथ युद्ध करें। हम प्रसन्नता पूर्वक तुम्हें अपने पक्ष में लेते हैं। यह बात अब साफ़ मालूम हो रही है कि धृतराष्ट्र के बुढ़ापे की लकड़ी अकेले तुम्हीं होगे। तुम्हीं उनके वंश की रक्षा करोगे; तुम्हारे अन्य भाई अवश्य इस युद्ध में मारे जायँगे।

युधिष्ठिर को अपने गुरुजनों और माननीय पुरुषों की मान मर्यादा की रक्षा करते देख, जितने राजालोग वहाँ युद्ध के मैदान में थे सब ने उनकी बार बार प्रशंसा की। चारों ओर से दुन्दुभी और भेरी के शब्द सुनाई पड़ने लगे । पाण्डवों के पक्ष के वीर आनन्द से फूल उठे और सिंह की तरह गरजने लगे।

राजा युधिष्ठिर ने फिर कवच पहन कर अस्त्र-शस्त्र धारण किये और रथ पर सवार हो गये। उनके भाई और दूसरे राजा लोग भी रथों पर सवार होकर अपनी अपनी जगह पर जा विराजे। व्यूह फिर जैसा का तैसा बन गया।

इसके बाद दुर्योधन की आज्ञा से दुःशासन ने भीष्म को आगे किया और बहुत सी सेना लेकर युद्ध आरम्भ करने के विचार से पाण्डवों की तरफ़ पैर बढ़ाया। यह देख कर पाण्डवों के व्यूह के मुख की रक्षा करनेवाले भीमसेन ने मतवाले हाथी के समान गर्जना की और जो सेना उनके अधीन थी उसे लेकर शत्रुओं का मुकाबला करने के लिये आगे बढ़े।

इस समय घोड़ों का हिनहिनाना, हाथियों का गर्जना रथों के घण्टे और अगणित बाजों की ध्वनि से तथा वीरों के सिंह गर्जन से दशों दिशाएँ भर गईं । तब भीम भी अत्यन्त क्रुद्ध होकर इतने ज़ोर से गर्जे कि शत्रुओं के हृदय में क्षोभ उत्पन्न हो गया। इस प्रकार भीम को आते देख कर

धृतराष्ट्र के पुत्रों ने बाणों से उन्हें ढंक दिया। तब पाण्डव लोग भी भीषण बाणों की वर्षा करने लगे। दोनों ओर से घमासान युद्ध होने लगा। दोनों ओर की सेना के पदाघात से इतनी धूल उड़ी कि सूर्य छिप गये। अपना पराया का ज्ञान न रह गया। खचाखच तलवारें चलने लगीं

भीष्म अपना रथ आगे बढ़ाकर अर्जुन पर बाण बरसाने लगे। भीमसेन का दुर्योधन के साथ युधिष्ठिर का राजा शल्य के साथ, विराट का भगदत्त के साथ सात्यकि का कृतवर्मा के साथ, अभिमन्यु का वृहद्बल के साथ, इसी तरह एक पक्ष के प्रत्येक वीर का दूसरे पक्ष के उपयुक्त वीर के साथ कुछ देर तक बड़ा ही घनघोर युद्ध हुआ। परन्तु कोई किसी को न हरा सका। दोनों पक्षों की व्यूहरचना जैसी की तैसी बनी रही, वह ज़रा भी न टूट सकी। सेनाओं का 'मारो काटो' का शब्द, शंख और भेरी की ध्वनि, वीरों का सिंह नाद, धनुष की प्रत्यञ्चाओं की टङ्कार, तलवारों की झनकार, दौड़ते हुए हाथियों का घन्टा नाद और रथों की भयङ्कर घरघराहट से दशों दिशाएँ भर गईं। दोपहर तक इसी प्रकार युद्ध होता रहा, बड़ा भयङ्कर युद्ध हुआ। दोनों पक्ष की बहुत सी सेना कट गई। पर दोनों में से कोई आगे न बढ़ सका। जो जहाँ था वहीं रहा, किसी का व्यूह न टूटा। भीष्म ने इस तरह के युद्ध को अच्छा न समझा। उन्होंने कहा, जिस युद्ध में जीत किसी की न हो और दोनों तरफ की सेना व्यर्थ कट जाय, उस युद्ध को रणचतुर सेनापति व्यर्थ समझते हैं। इससे उन्होंने एक तरकीब निकाली। उन्होंने पाण्डवों के व्यूह के एक ऐसे स्थान का पता लगाया जो कुछ कमज़ोर था और जिसकी रक्षा का भी ठीक प्रबन्ध न था। भीष्म ने अपनी सेना लेकर उसी ओर धावा किया और व्यूह तोड़ देने का प्रयत्न करने लगे।

बालक अभिमन्यु उस ओर की रक्षा कर रहे थे। उस वीर बालक ने अर्जुन के समान भीषण बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। देखते देखते उसने पितामह के रथ की ध्वजा काट डाली, इससे भीम प्रसन्न होकर बड़े ज़ोर से गरजे। महात्मा भीष्म को इससे बड़ा क्रोध हो आया, उन्होंने अपने बाणों की वर्षा से अभिमन्यु के रथ को ढँक दिया। यह देखकर अभिमन्यु की रक्षा के लिये भीम, विराट, विराट के पुत्र श्वेत और उत्तर आदि दस महारथी आये। भीष्म ने उन सब को अपने बाणों से बेध दिया और एक बाण मार कर भीमसेन की ध्वजा काट डाली। भीमसेन इससे बहुत क्रोधित होकर तीन बाण भीष्म को, एक बाण कृपाचार्य को और आठ बाण कृतवर्मा के शरीर में मारा। कुमार उत्तर ने हाथी पर चढ़ कर राजा शल्य पर आक्रमण किया। उत्तर को आते देख शल्य ने उनके हाथी पर बाण चलाये। यह देखकर कुमार उत्तर ने शल्य के रथ के चारों घोड़ो को मार गिराया। तब शल्य ने क्रोध कर अमोघ शक्ति का प्रहार किया, जिसके लगने से कुमार उत्तर मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े और फिर न उठ कर सदा के लिये सो गये। शल्य इस विजय से प्रसन्न होकर कृतवर्मा के रथ पर जा विराजे।

भाई का मरना देखकर कुमार श्वेत अत्यन्त क्रुद्ध हुए। उन्होंने शल्य आदि सात महारथियों के धनुष काट गिराये। तब उन लोगों ने श्वेत को मारने के लिये शक्ति फेंकी, श्वेत ने उसे बीच में ही काट डाला। इसके बाद श्वेत भयङ्कर बाणों की वर्षा करने लगे। उन्होंने छः महारथियों के घोड़े, सारथी, धनुष और ध्वजा काट कर शल्य पर भयङ्कर आक्रमण किया। तब कौरवी सेना में बड़ा हाहाकर मच गया। धृतराष्ट्र के पुत्रों ने भीष्म के सहित आगे बढ़ कर शल्य को पीछे करके उन्हें मृत्यु के मुख से बचा लिया। सेनापति श्वेत एकलाख सेना साथ लेकर महा लोमहर्षण युद्ध करने लगे। दोनों ओर के वीर ललकार कर एक दूसरे का वध करने लगे। भीष्म और श्वेत ने एक दूसरे के अनगिनती वीरों को काट डाला। पृथ्वी रुण्ड-मुण्ड से भर गई। श्वेत भीष्म की सेना को निःशंक होकर

काटते हुए आगे बढ़े । यह देख कर पितामह भीष्म श्वेत से युद्ध करने लगे । दोनों ही वीरों ने सिंह के समान गर्जना करके घोर युद्ध किया । इतने में श्वेत ने भीष्म के शरीर में पचीस बाण मार कर उनके धनुष को भी काट गिराया और बड़े ज़ोर से हँस कर उन्होंने पितामह की ध्वजा के भी दो टुकड़े करदिये । यह देख कर पाण्डव लोग बड़े प्रसन्न हुए और पाण्डवी सेना में शंख बजने लगे । अपने सेना पति तथा सेना की यह दशा देखकर दुर्योधन ने कहा—

हे वीरगण ! देखो, कुरुकुल के सूर्य भीष्म पितामह श्वेत द्वारा पराजित हुआ चाहते हैं ।

राजा दुर्योधन की बात सुनकर कृतवर्मा, बाह्लीक, चित्रसेन और शल्य आदि बड़े बड़े वीर आकर श्वेत से भिड़ गये । परन्तु क्षण भर में उस महावीर श्वेत ने सब को व्यथित कर फिर भीष्म पर आक्रमण किया और उनके धनुष को काट दिया । बार बार धनुष के कटने से महात्मा भीष्म अत्ययन्त क्रुद्ध हुए । उन्होंने भयङ्कर बाण का संन्धान करके श्वेत के चारों घोड़े, सारथी, और ध्वजा को काट गिराया । तुरन्त रथ से कूद कर श्वेत ने भीष्म पर अमोघशक्ति का प्रहार किया । भीष्म ने उसे बीच ही में काट डाला । फिर श्वेत ने उनके रथ पर गदा का प्रहार किया, भीष्म तो कूदकर बच गये, पर रथ सारथी और घोड़े चूर चूर हो गये । दुर्योधन ने शीघ्र ही दूसरे रथ का प्रबन्ध किया भीष्म उस पर सवार होकर फिर श्वेत के सामने हुए । श्वेत को विरथ देख कर सात्यकि, भीम, धृष्टद्युम्न, अभिमन्यु आदि उनकी सहायता के लिये आये । किन्तु द्रोण, शल्य, कृप आदि ने उन्हें बीच ही में रोक लिया और युद्ध करने लगे । इधर भीष्म ने मंत्र से अभिमंत्रित करके प्रचण्ड बाण श्वेत पर चलाया, जिससे वे गतप्राण होकर पृथ्वी पर गिर पड़े । यह देखकर कौरवों को बड़ी प्रसन्नता हुई और पाण्डव लोग अत्यन्त चिन्तित हुए । दुःशासन के कहने से कौरवी सेना में विजय की दुन्दुभी बजने लगी । यह देखकर पाण्डव लोग बड़े क्रोधित हो कर घोर युद्ध करने लगे । उस समय ऐसा घोर युद्ध हुआ कि जिसका वर्णन करना असम्भव है । सूर्य के समान महात्मा भीष्म ने अपने बाणों की वर्षा से पाण्डवी सेना को विकल कर दिया । असंख्य हाथी, घोड़े और वीर कट कर धराशायी हो गये । इतने में सायङ्काल हो जाने से युद्ध बन्द कर दिया गया । कौरवी सेना हर्ष से शंख बजाती हुई अपने शिविर में लौट गई । पाण्डव लोग भी अपने डेरों में आये ।

राजा युधिष्ठिर अपने सैनिक वीरों के विश्राम का सुप्रबन्ध करके अपने भाइयों के साथ कृष्णजी के पास गये । भीष्मपितामह के अद्भुत युद्धकौशल से चिन्तित होकर बोलेः—हे वासुदेव ! आपने देखा है, कि पितामह भीष्म ने अग्नि के समान अपने बाणों से हमारी सेना को जलाया है । हमारे जितने वीर उनके सामने जाते हैं, पांखी की तरह जल भुन कर ख़ाक़ हो जाते हैं । हमें तो जान पड़ता है कि यदि दिक्पाल भी भीष्म का सामना करें तो वे भी उन्हें नहीं जीत सकते । फिर मनुष्य क्योंकर उन पर विजय पाने में समर्थ हो सकता है । महात्मा भीष्म से युद्ध ठान कर हम संसार में अनीति और पाप का बोझ सिर पर लाद रहे हैं । जिस अर्थ के लिये हमारे सम्बन्धी, हितैषी, और बड़े बड़े वीर प्राण त्याग रहे हैं, उसके सिद्ध होने का कोई लक्षण नहीं दिखाई पड़ता है । हमें तो ऐसा मालूम होता है कि भीष्म के पराक्रम रूपी समुद्र में सब लोग डूब जायँगे । हे प्रभो ! अब आप अपनी कृपा प्रगट कीजिये, जिससे हम अपना राज्य पाकर चिन्ता से छूटें ।

श्रीकृष्ण ने कहाः—हे धर्मराज ! आप शोक को त्याग कर धीरज धरिये । शत्रुओं का संहार कर आप अवश्य अपना राज्य पावेंगे । धृष्टद्युम्न और शिखण्डी के समान आपके सेनापति हैं, फिर चिन्ता किस बात की है ? शिखण्डी अवश्य ही भीष्म का बध करेंगे, इसे आप निश्चय जानिये ।

तब प्रसन्न होकर युधिष्ठिर ने कहाः—हे रणधीर धृष्टद्युम्न ! आप हमारे सेनापति हैं और आप से हमें बड़ा गर्व है । इस से श्रीकृष्ण की सम्मति के अनुसार आप विजय-लाभ कर हमें, यशस्वी बनावें ।

यह सुनकर धृष्टद्युम्न बहुत प्रसन्न हुए और वीररस से सनी हुई बात बोलेः—हे राजन् ! भगवान् सदाशिव की प्रसन्नता से हम द्रोणाचार्य के वध के लिये ही उत्पन्न हुए हैं । भीष्म, शल्य, कृप आदि को आप कल व्यथित देखेंगे । हम कल शत्रुओं को शिक्षा देकर विजय लाभ करेंगे ।

राजा युधिष्ठिर ने यह सुनकर कहाः—आप उत्तम 'क्रौञ्चव्यूह' की रचना करें ।

यह सुन कर धृष्टद्युम्न ने क्रौञ्चव्यूह की रचना की ।

क्रौञ्च का चोंच अर्जुन, द्रुपद राज शिरस्थान, कुन्तिभोज और चेदिराज दोनों आखें, दश लाख सत्तर हज़ार वीर गर्दन की जगह, एक अर्बुद बीस हज़ार सेना लेकर युधिष्ठिर पीठ पर द्रौपदी के पुत्र, अभिमन्यु, सात्यकि, वाह्लीक, भीमसेन, नकुल, सहदेव आदि बड़े बड़े वीर दक्षिण-वाम पार्श्व पर शोभित हुए । केकय, शैव्य और विराटराज जङ्घाओं के पालने के स्थान में हुए । तीस हज़ार रथी, अनुपम अस्त्रों को धारण किये हुए, दोनों पक्ष और पूँछ को ढँक कर रक्षा के लिये नियत किये गये । इस प्रकार 'क्रौञ्चव्यूह' को बनाकर; धृष्टद्युम्न धनुष बाण धारण किये सूर्योदय की प्रतीक्षा करते खड़े रहे ।

क्रौञ्चव्यूह की रचना देख कर दुर्योधन अपने मन्त्रियों के साथ द्रोणाचार्य के पास गया और बोला—हे आचार्य ! हमारे सारे वीर और सेनापति लोग ससैन्य पाण्डवों को जीत लेने में समर्थ हैं । आप मेरी विजय के लिये सब कौरवी सेना लेकर भीष्म की रक्षा करें ।

तब भीष्म और द्रोण ने मिल कर 'महाव्यूह' नामक व्यूह की रचना की ।

पितामह भीष्म असंख्य सेना के साथ आगे बढ़े । अनेक रथियों को साथ लेकर द्रोणाचार्य उनकी रक्षा करते हुए चले । बहुत से बड़े बड़े वीरों के साथ शकुनि द्रोण के रक्षक हुए । भूरिश्रवा, शल्य, भगदत्त आदि उद्धत योद्धा वामपार्श्व के, सोमदत्त, सुशर्मा, काम्बोज आदि अनगिनती वीर साथ लेकर दक्षिण पार्श्व के रक्षक हुए ।

कृप, कृतवर्मा, अश्वत्थामा, सात्वत आदि महारथी पृष्ठभाग के रक्षक हुए । इस प्रकार महाव्यूह की रचना करके कौरव वीरों ने प्रसन्न हो कर शंख बजाये ।

प्रातःकाल शंखध्वनि सुनकर पाण्डवों ने भी मधुरध्वनि से अपने शंख बजाये ।

दोनों ओर गम्भीर शब्द से बाजे बजने लगे । वह तुमुल ध्वनि आकाश पाताल में छा गयी ।

तब दुर्योधन ने अपने वीरों से कहा—हे वीरो ! शीघ्र युद्ध में पाण्डवों को मार कर विजय यश लो ।

यह सुन कर कौरवी सेना पाण्डवों पर अस्त्र प्रहार करने लगी । फिर दोनों ओर से हथियार चलना आरम्भ होगया ।

सर्पों के समान फुफ्कारते हुए असंख्यों बाण छूटने लगे । वीर लोग अपने वीरत्व को प्रदर्शित करते हुए इधर उधर बढ़ कर एक दूसरे को डाटने लगे । कोई किसी का सिर काट लेता है, कोई बाहें छेद देता है । बहुत से हाथी, घोड़ों के सवार व्यूह तोड़ देने का प्रयत्न करने लगे । कितने ही वीर कट कर पृथ्वी पर लोट गये और कितने ही घायल होकर घूमने लगे ।

इस प्रकार युद्ध को देखकर भीष्म ने अपने धनुष का टङ्कार किया। उन्होंने तीखे बाणों का सन्धान कर भीम आदि वीरों को मारा। इसके बाद उन्होंने हस्तलाघव दिखा कर पाण्डवों का व्यूह भेदना आरम्भ किया।

अपनी सेना को बिखरते हुए देखकर अर्जुन ने कृष्ण से कहा—हे कृष्ण! आप जल्द हमारा रथ भीष्म के सामने ले चलें। कृष्ण ने कहा—हे अर्जुन! सन्नद्ध हो जाओ, हम तुम्हें पल भर में भीष्म के पास पहुँचाते हैं। इस तरह कह कर उन्होंने भीष्म के सामने रथ पहुँचाया। अर्जुन के साथ साथ धृष्टद्युम्न, सात्यकि, अभिमन्यु, द्रौपदी के पाँचो लड़के ये सब वीर भी गये।

अर्जुन को आता हुआ देखकर पितामह भीष्म क्रोध से भरे हुए अपना रथ बढ़ा कर अर्जुन के सामने आये। उन्होंने अर्जुन को सत्तर बाण और दुर्योधन ने चौंसठ बाण मारे। इसी प्रकार अन्य वीरों ने भी अनेक बाण बरसाये।

तब अर्जुन ने भी भीष्म पर पचीस बाण, कृपाचार्य पर नौ, दुर्योधन पर पाँच बाण मार कर अन्य अनेक महारथियों को भी घायल किया। जब भीष्म ने फिर अस्सी बाण अर्जुन को मारा, तब धृतराष्ट्र के पुत्र हँस पड़े। यह देखकर अर्जुन को बड़ा क्रोध आया। तुरन्त कौरवी सेना में घुस कर उन्होंने महा प्रलय मचा दी, कौरवी सेना में हाहाकार मच गया। तब दुर्योधन ने दुखी होकर भीष्म से कहा—तात! आप के देखते हुए अर्जुन आप की सेना का संहार कर रहे हैं, आप के ही कारण अन्य विमनस्क होकर खड़े हैं। आप कोई उपाय करके शीघ्र अर्जुन को मारें। यह सुनकर पितामह भीष्म ने क्षात्रधर्म को बार बार धिक्कारा।

तब दुर्योधन की युद्धकामना से भीष्म अर्जुन के पास गये। अश्वत्थामा, दुर्योधन, विकर्ण आदि अपनी सेना लेकर उनकी रक्षा के लिये गये। घोर घमासान मच गया, एक दूसरे को बाण मार कर अपना बचाव करने लगे। तरह तरह का युद्ध कौशल होने लगा। कोई बाण का पिँजड़ा बना देता है तो कोई उसे काट देता है। पर कोई ज़रा भी मुँह नहीं मोड़ता है। इसी प्रकार कुछ देर तक युद्ध होता रहा। द्रोण ने अपने बाणों के प्रहार से धृष्टद्युम्न को बेध दिया। तब धृष्टद्युम्न ने क्रोधित होकर उन पर नब्बे बाण बरसाये। द्रोण और धृष्टद्युम्न में घोर युद्ध होने लगा। जब द्रोणाचार्य ने धृष्टद्युम्न के सारे अस्त्र व्यर्थ कर दिये, तब वे खड्ग लेकर द्रोणाचार्य को मारने झुके। आचार्य ने बाणों की मार से उन्हें बीच ही में रोक दिया। भीम ने कहीं से यह दशा देख ली। वे तुरन्त धृष्टद्युम्न के पास आये। आते ही उन्होंने आचार्य पर सात बाण मारे और धृष्टद्युम्न को दूसरे रथ पर बिठा लिया।

दुर्योधन ने यह दशा देखकर कलिङ्गराज श्रुतायु से कहा—आप शीघ्र जाकर भीम का मुकाबला करें। आचार्य द्रोण अकेले पड़ गये हैं। कलिङ्गराज यह सुनकर वहाँ आये और भीम से भिड़ गये। तब द्रोण धृष्टद्युम्न को छोड़कर राजा विराट से जा भिड़े। धृष्टद्युम्न भी जहाँ धर्मराज थे, वहाँ चले गये।

इधर भीम-श्रुतायु में घोर युद्ध होने लगा। चेदि, मत्स्य, कारुष के राजा लोग भी इनकी सहायता के लिये पहुँच गये। बड़ा घोर संगर हुआ। भीमसेन ने इतनी भयङ्करता से शत्रुदल का संहार किया कि वे विचलित हो गये। कौरवी सेना पीछे हट गई। तब श्रुतायु के पुत्र शक्रदेव ने भीम पर आक्रमण किया। भीम ने देखते ही देखते उनका निपात कर डाला। श्रुतायु पुत्र का मरना सुनकर फिर क्रोध से भरे हुए लौटे और घोर युद्ध करने लगे। चैद्यपति भानुमान ने हाथी पर सवार हो पीछे

से आक्रमण किया। भीम ने क्रोध करके इतना घोर संग्राम मचाया कि लोहू की नदी बह चली। उन्होंने देखते ही देखते कलिङ्गराज को यमलोक भेज कर उनकी सेना का संहार कर डाला। भीम ने अनेक रथी महारथी राजाओं का निपात कर दिया। भीम के अतुल विक्रम को देखकर धर्मराज उनके समीप आये और वीर सात्यकि भी वहाँ पहुँच गये। भीम, सात्यकि, धृष्टद्युम्न ये तीनों मिल कर कलिङ्ग देश की सेना से घोर युद्ध करने लगे। इन लोगों ने क्षण भर में अनेक भटों का संहार कर डाला। जब कलिङ्ग सेना हाहाकार मचाने लगी, तब पितामह भीष्म, सुनकर वहाँ आ गये। उन्होंने पहुँचते ही पाण्डवी सेना को विडार दिया। फिर चार बाणों से भीम के रथ के घोड़ों को मार डाला। भीमसेन के शक्ति चलाने पर उन्होंने उसे भी बीच ही में काट दिया। तब गदा लेकर भीम उनके रथ की ओर झुके। इतने में सात्यकि ने भीष्म के सारथि को मार डाला। घोड़े भड़क कर संग्रामभूमि से भाग चले। तब भीम ने अनेका राजे तथा असंख्यों सेना को मार कर गिरा दिया। धृष्टद्युम्न यह देखकर बहुत प्रसन्न हुए और भीम को अपने रथ पर बिठा लिया।

महावीर अर्जुन और उन्हीं के समान उनके तेजस्वी पुत्र अभिमन्यु ने जब देखा कि भीष्म युद्धभूमि में नहीं हैं, तब उन्हें शत्रुओं के संहार करने का अच्छा अवसर मिल गया। बड़े ही प्रचण्ड विक्रम से वे कौरवी सेना पर टूट पड़े। अभिमन्यु ने दुर्योधन के पुत्र लक्ष्मण के नाकों दम कर दिया। यह देखकर बहुत से कौरव वीरों के साथ स्वयं दुर्योधन को सहायता के लिये आना पड़ा। अर्जुन ने ऐसा प्रलयकारी युद्ध मचाया कि कौरवदल के मरे हुए वीरों से पृथ्वी ढँक गई। इस प्रकार भयङ्कर मार से पीड़ित होकर कौरवी सेना भाग चली, सैनिक लोग अपनी जगह पर न ठहर सके, उनके पैर उखड़ गये। अपनी सेना की यह दशा देखकर पितामह भीष्म ने द्रोणाचार्य से कहा—

हे आचार्य! देखिये, अर्जुन कैसा अद्भुत पराक्रम दिखा रहे हैं। उन्होंने साक्षात् यमराज के समान कौरवी सेना में प्रलय मचा दी है। हमें तो इनसे लड़कर विजय पानेवाला कोई नहीं दिखाई पड़ता। हमारी सेना नदी वेग के समान भाग रही है, रोकने से भी नहीं रुकती है। अब सन्ध्या भी हो गई। इससे आज का युद्ध बन्द कर दिया जाय।

जब कौरवी सेना ने युद्ध के मैदान की तरफ़ पीठ कर दी तब कृष्ण और अर्जुन ने आनन्द-पूर्वक ज़ोर से अपने शंख बजाये। अपने योद्धाओं के साथ सब लोग शिविर में लौट आये।

तीसरे दिन प्रातःकाल होते ही भीष्म ने 'गारुड़व्यूह' की रचना की। उसके तुण्ड पर स्वयं विराजे और आँखों के स्थान में द्रोणाचार्य तथा कृतवर्मा, कैकय, मत्स्य, त्रिगर्त्त, अश्वत्थामा, कृप, ये लोग शिर स्थान में, भूरिश्रवा, जयद्रथ, शल्य, भगदत्त गर्दन की जगह, दुर्योधन अपने भाइयों के साथ पीठ पर, विन्द, अनुविन्द, काम्बोज आदि महारथी पूँछपर, दाशेरक, कालिङ्ग तथा अपनी सेना लेकर जरासन्ध का पुत्र दाहिने पंखे पर और विकुञ्जपति, वृहद्बल आदि बायें पंख पर शोभित हुए।

इस प्रकार 'गारुड़व्यूह' की रचना देखकर अर्जुन और धृष्टद्युम्न ने 'अर्धचन्द्रव्यूह' बनाया। असंख्य योद्धाओं को साथ लेकर भीमसेन दाहिने किनारे पर सात्यकि, अभिमन्यु द्रौपदी के पाँचों पुत्र, इरावाण, घटोत्कच ये सब बायें किनारे पर द्रुपद, विराट, राजा नील, धृष्टकेतु, चेदिराज, काशिराज, कारूष नरेश, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी ये लोग अपनी सेना लेकर मध्य में विराजे। महाराज युधिष्ठिर, श्रीकृष्ण, अर्जुन आदि भी वहीं रहे।

इस प्रकार व्यूहरचना हो जाने के बाद घोर घमासान मच गया। ऐसी मार काट हुई कि पृथ्वी रक्त से रञ्जित हो गई। अर्जुन को कौरव दल का संहार करते हुए देखकर बहुत से राजाओं ने इकट्ठे होकर उन्हें घेरलिया और साथ ही तरह तरह के अस्त्रों का प्रहार करने लगे। तब अर्जुन ने अपने चारों ओर बाणों का पिंजड़ा बना कर सब के अस्त्रों को रोक दिया। यह अद्भुत कौशल देखकर चारों ओर से अर्जुन की प्रशंसा होने लगी।

सात्यकि और अभिमन्यु शकुनि से जाकर भिड़ गये। वहाँ शकुनि ने पलभर में सात्यकि के रथ के सौ टुकड़े कर डाले। सात्यकि अपने रथ से कूदकर अभिमन्यु के रथ पर बैठ गये और दोनों वीरों ने मिलकर भयङ्कर बाण बर्षा से शकुनि को विकल कर दिया।

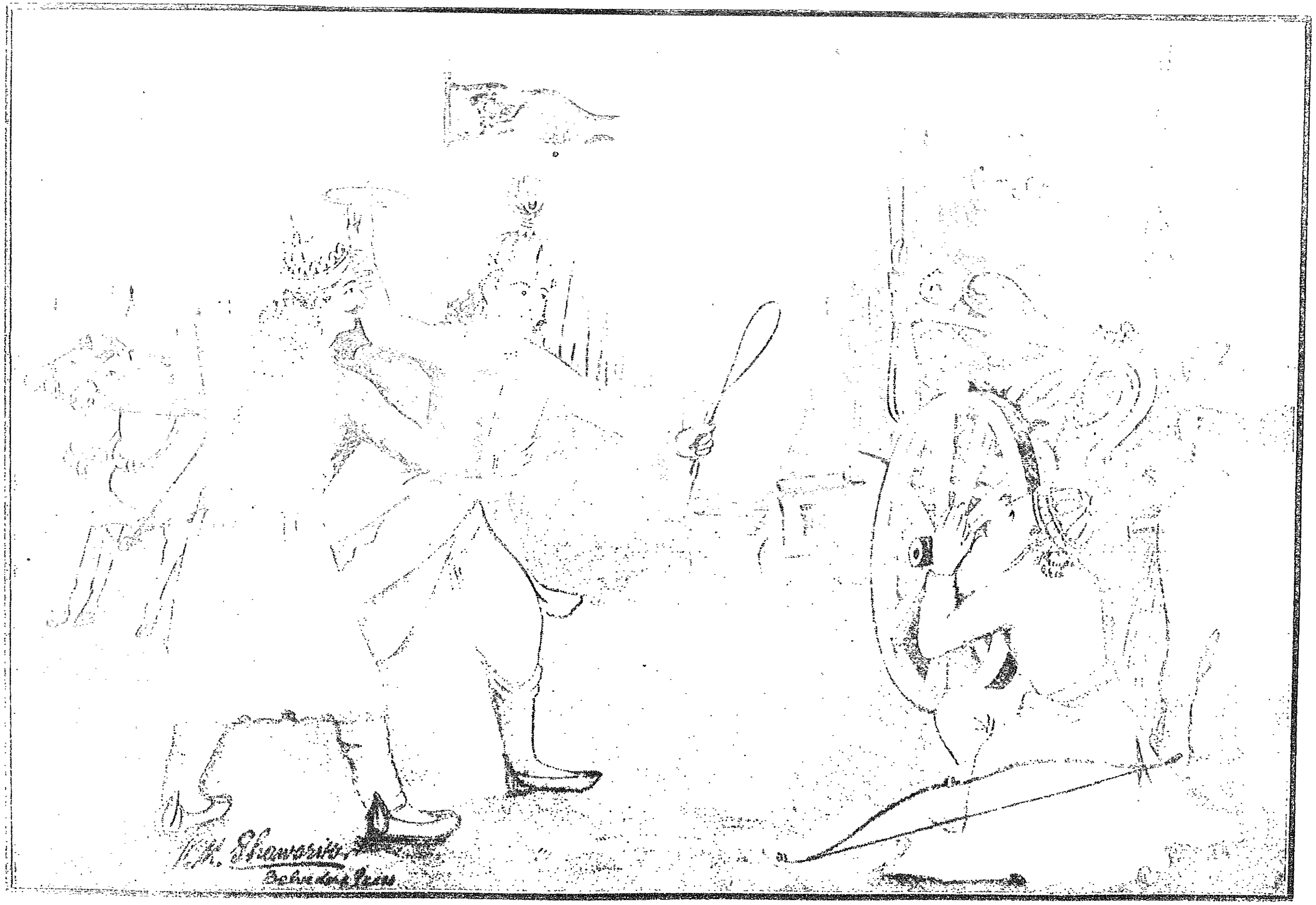
उसी समय शंख बजाते और धनुष्टङ्कार करते हुए भीष्म और द्रोण युधिष्ठिर के पास पहुँच कर उनके वीरों पर बाण बरसाने लगे। भीम और घटोत्कच से दुर्योधन तथा उनके भाइयों से युद्ध होने लगा। भीम ने दुर्योधन की छाती में एक बाण मारा जिससे वह अचेत हो गया। सारथी मूर्च्छित देख कर तुरन्त रथ भगा ले गया। राजा को भागते देख सारी सेना भाग चली। अर्जुन से लड़नेवाले वीर भी व्याकुल होकर भाग गये। भीष्म और द्रोण ने बहुत कुछ रोकने की चेष्टा की, पर सब व्यर्थ हुई। इतने में दुर्योधन को चेतना हो गई। उसके धिक्कारने पर सब वीर लौटे और घोर युद्ध करने लगे। तब दुर्योधन अत्यन्त उदासीन होकर भीष्म के समीप गये और बोले

हे पितामह! आपके देखते देखते हमारी सेना का संहार हुआ जाता है। आप को हमारी इस प्रकार की दुर्दशा देखना उचित नहीं। संग्राम में आप को पाण्डव लोग जीत जाँय, यह बात तो हमारे मन में कभी नहीं आती। द्रोण, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, हमारी सेना को विचलित होती देखते हैं पर कोई उपाय नहीं करते। हमको तो ऐसा मालूम हो रहा है कि आप लोग पाण्डवों से मिले हुए हैं। यदि आपलोगों को यही करना था, तो पहले ही कह दिये होते, हम कर्ण से सलाह कर जो कुछ उचित समझते वह करते।

दुर्योधन की इन बातों को सुन कर भीष्म पितामह हँसते हुए बोलेः—महाराज! हमने कोई बात छिपा तो रक्खी नहीं, कई बार तुम से कह चुके हैं कि पाण्डव लोग देवताओं के समान अजेय हैं। उन्हें कोई मनुष्य कभी नहीं जीत सकता। तब तो तुमने माना नहीं, अब शोक करने से क्या लाभ है। हम तो बुड्ढे आदमी हैं, अपने बलके अनुसार युद्ध करेंगे। जो हो, आज हम युद्ध में पाण्डवों को पराजित करेंगे, यह देख कर तुम खुश होना।

भीष्म की बात सुन कर दुर्योधन बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने जुझाऊ बाजे बजने की आज्ञा देकर बड़े ज़ोर से शंख बजाया। प्रत्युत्तर में पाण्डवों की सेना में भी शंख और दुन्दुभी बजने लगी। मध्याह्नोत्तर दोनों सेनाएँ फिर भिड़ गईं। घोर घमासान होने लगा।

भीष्म ने अपने धनुष को खींच कर मण्डलाकार बना दिया और सर्प के समान फुंकार करनेवाले असंख्य बाणों की वृष्टि करने लगे। उन्होंने इतने बाण बरसाये कि दशों दिशाएँ भर गईं। अनेक हाथी, घोड़े, रथी, कट कट कर पृथ्वी पर गिर पड़े। भीष्म मनमाना पाण्डवी सेना में घूमने लगे। युद्ध के मैदान में भीष्म को कभी पूर्व में, कभी पश्चिम में, आँख की पलक मारते उत्तर में, फिर पल भर में दक्षिण में देखकर पाण्डव पक्ष के वीर भय और विस्मय से विह्वल हो उठे। पाण्डवी सेना में हाहाकार मच गया, कोई रक्षक न देख कर सारे वीर बिकल हो गये। सेना का पैर उखड़ गया। अर्जुन के देखते ही वह भागने लगी।



श्रीकृष्ण अस्त्रधारण।

चक्र पानि गहि कोप युत, आवत लखि यदुवीर ।

तब कृष्ण ने रथ को रोक कर अर्जुन से कहाः—हे धनञ्जय ! क्या तुम सभा में की हुई अपनी प्रतिज्ञा को भूल गये ? तुमने कहा था कि युद्ध में हम भीष्म, द्रोण, दुर्योधन, सब का संहार करेंगे। अब उसे पूरा करो। देखो, तुम्हारी सेना भगी जा रही है प्रतिज्ञा को चरितार्थ करने का तो यही समय है

अर्जुन ने कहाः—हे केशव ! शत्रु की सेना के बीच जहाँ भीष्म हैं, वहाँ हमारा रथ ले चलिये। हम एक ही बाण से वृद्ध पितामह को रथ से गिरा देंगे।

कृष्ण रथ हाँक कर भीष्म के सामने ले गये। वे अर्जुन को देख कर सिंह के समान गर्जे। अर्जुन को भीष्म से युद्ध करते देख अन्य वीर भी लौटे और प्राण पण से युद्ध करने लगे। पितामह ने असंख्य बाण मार कर अर्जुन की ध्वजा काट डाली और उनके रथ को ढाँक दिया। तब अर्जुन ने भीष्म के धनुष को काट गिराया। बार बार धनुष के कटने से पितामह अर्जुन की वीरता की प्रशंसा करने लगे।

फिर भीष्म क्रुद्ध होकर अद्भुत युद्धकौशल दिखाने लगे, उन्होंने अर्जुन के संग आये हुए वीरों को पल भर में मार भगाया। भीष्म बार बार बाणों से अर्जुन के रथ को ढँक देते थे। जब तक अर्जुन उस बाण जाल को हटावें, तब तक फिर उनका रथ ढँक जाय। अर्जुन का बे मन का युद्ध देख कर कृष्ण ने विचारा कि भीष्म को जीतनेवाला कोई है नहीं। यदि ऐसा ही युद्ध होता रहा तो आज ही ये पाण्डवी सेना का निपात कर देंगे। कृष्ण यह सोच ही रहे थे कि इतने में द्रोण, कृप, शल्य, जयद्रथ आदि वीर भी भीष्म की सहायता के लिये आ गये। सब मिल कर एक साथ अर्जुन पर आक्रमण किया।

सात्यकि ने यह दशा देख कर अपने वीरों को ललकारा, पर कृष्ण ने सब को रोक कर कहा—आज हम भीष्म, द्रोण आदि सब का बध करेंगे। यह कह कर उन्होंने चक्र हाथ में लिया और रथ से कूद कर भीष्म की ओर दौड़े। भगवान् कृष्णचन्द्र को क्रोधित देख कर सारी सेना काँप उठी। सब ने समझ लिया कि अब कुरुकुल का नाश हुआ।

कृष्ण को अपनी ओर आते देख भीष्मपितामह ने अपना धनुष रथ पर रख कर और इस प्रकार बोलेः—

हे त्रिलोकीनाथ ! आइये, आइये, अपने हाथों मेरा वध कीजिये। हे प्रभो ! आप के हाथों मारा जाना मैं इहलोक परलोक दोनों में ही कल्याणकारी समझता हूँ।

इतने ही में अर्जुन भी रथ से कूद कर कृष्ण के पीछे दौड़े। उनका हाथ पकड़ कर क्षमा के लिये प्रार्थना की। परन्तु क्रुद्ध कृष्णचन्द्र आगे ही बढ़ते गये। तब अर्जुन पैरों से लिपट विनय करने लगे—हे नाथ ! आप क्रोध त्याग कर दें। इस बात को संसार जानता है कि हम सब की गति आप ही हैं—आपके सिवा संसार में हमारा कोई स्नेही नहीं। हे केशव ! भाइयों और पुत्रों की शपथ करके कहता हूँ कि जो कुछ प्रतिज्ञा मैंने की है, उसे पूरी करूँगा—कौरवों का जिस प्रकार नाश हो, उस उपाय के करने में मैं कसर न रक्खूँगा।

यह सुन कृष्णजी प्रसन्न हुए और लौट कर अपने रथ पर बैठ गये। अर्जुन ने अपने रथ पर बैठ कर बड़े ज़ोर से धनुष्टङ्कार किया और कृष्ण ने शंख बजाया।

दोनों सेनाओं में फिर जुझाऊ बाजे बजने लगे। शल्य, भीष्म, भूरिश्रवा, दुर्योधन आदि ने साथही अर्जुन पर कराल अस्त्र छोड़े। अर्जुन ने अपने तीखे बाणों से सब को काट गिराया। फिर

उन्हों ने महेन्द्र अस्त्र का सन्धान किया और गाण्डीव धनुष का टङ्कार कर प्रलयकाल के समान बाणों की वर्षा करने लगे। जिससे अनगिनती हाथी, घोड़े, रथ ध्वजाएँ कट कट गिरने लगीं। कौरवी सेना में भगदड़ पड़ गई। जो सामने हुआ, वह जीता न बचा। उस दिन इतने वीरों का संहार हुआ कि उस की गणना करना असम्भव है। सायङ्काल हो जाने पर दोनों ओर के वीर अपने शिविर में लौटे। शल्य आदि ने अर्जुन के अद्भुत युद्ध की प्रशंसा की। रात्रि में वीरों ने भोजन करके विश्राम किया।

चौथे दिन भी 'अर्धचन्द्रव्यूह' और 'गारुड़व्यूह' बना कर युद्ध हुआ, भीष्म अपना रथ बढ़ा कर अर्जुन के सामने ले गये। द्रोण, शल्य, कृप, दुर्योधन आदि उनकी रक्षा के लिये गये। इन लोगों को आते देख अभिमन्यु हज़ारों वीरों को साथ लेकर बीच ही में भिड़ गये। भीष्म, द्रोण, कृप, दुर्योधन अर्जुन से युद्ध करने लगे और चित्रसेन, भूरिश्रवा, अश्वत्थामा, शल्य, सांजमन का पुत्र, ये सब अभिमन्यु से। अभिमन्यु की रणचातुरी देख कर सब राजाओं ने चारों ओर से उन्हें घेर लिया और अस्त्र प्रहार करने लगे। अभिमन्यु ने निःशङ्क मन होकर सब के अस्त्रों को काट डाला और अश्वत्थामा के शरीर में एक बाण मार कर आठ बाणों से सांजमन के पुत्र की ध्वजा काट गिराई। तब उसने प्रचंड शक्ति चलायी, अभिमन्यु ने उसे बीच ही में काट कर शल्य के शरीर में पाँच बाण मारे। तब शल्य ने क्रोध करके सात बाण मारा। अभिमन्यु ने उसे भी व्यर्थ करके चार बाणों से उनके घोड़ों को मार डाला। दुर्योधन ने पचीस हज़ार सेना को अभिमन्यु का मुक़ाबला करने के लिये भेजा। यह देख कर धृष्टद्युम्न चतुरङ्गिनी सेना के साथ वहाँ पहुँच गये। उन्होंने असंख्य वीरों का संहार करके सांजमन के पुत्र को मार गिराया इससे कौरवी सेना में हाहाकार मच गया। इसके बाद शल्य और धृष्टद्युम्न से घोर युद्ध होने लगा।

धृतद्युम्न को पीड़ित देख कर अभिमन्यु उनके पास पहुँच गये और उन्होंने शल्य को बाण मारते हुए घोर युद्ध आरम्भ कर दिया। तब दुर्योधन दश रथियों को साथ लेकर शल्य की सहायता के लिये पहुँच गये। इन वीरों का सामना करने के लिये भीम आदि दश महारथी इधर से भी आये। दोनों ओर के महावीरों ने मिल कर महा घोर संग्राम मचाया। इतने में भीम और धृतराष्ट्र के पुत्रों में भी युद्ध छिड़ गया। भीम ने देखते ही देखते धृतराष्ट्र के आठ पुत्रों का संहार कर डाला। इससे कौरवी सेना में महा हाहाकार मच गया। सारी सेना भाग चली, कोई रोकने से भी न रुका।

अपनी सेना की यह दशा देख कर भीष्म अत्यन्त क्रोधित हुए। उन्होंने अपने महारथियों से कहा—कोई वीर अब अपने प्राण का मोह न करे, सब लोग अपने पराक्रम के अनुसार भिड़ कर घोर संग्राम करें।

यह सुन कर सब लौट पड़े और भीम से भीषण युद्ध करने लगे। बड़ा लोमहर्षण युद्ध हुआ। दोनों ओर के असंख्य वीर कट कर धराशायी हो गये। घटोत्कच के भयङ्कर आक्रमण से पितामह भीष्म कुछ चिन्तित हो कर द्रोण से बोले—हे आचार्य! अब सन्ध्या भी हो चली है और मायावी घटोत्कच का सामना करने में हमारे वीर थक जाने के कारण विचलित हो जाँयगे। इसलिये आज का युद्ध बन्द कर अब शिविर में लौट चलना चाहिये।

कौरवी सेना को लज्जित होकर लौटती देख पाण्डवी सेना बड़ा हर्ष प्रकाश करने लगी। शंख, दुंदुभी आदि बजाती हुई वह भी अपने शिविर में आई।

धृतराष्ट्र ने जब चौथे दिन के युद्ध का समाचार सुना, तब उन्होंने सञ्जय से कहा—

हे सञ्जय! नित्यही पाण्डवों का अमानुष कर्म और अपने पुत्रों की हार सुनकर मुझे बड़ा भ्रम हो रहा है। क्या वे अवध्य हैं? जिससे उनमें से कोई भी न मरकर रोज़ मेरे ही पुत्रों के मरने की ख़बर सुनाई पड़ती है।

सञ्जय ने कहा—महाराज! इसमें किसी प्रकार का भ्रम करने की आवश्यकता नहीं। जो कुछ आपने अन्याय और अधर्म किया है। यह सब उसी का फल है। पाण्डव लोग सदा से धर्म के अनुसार कर्त्तव्यकर्म का आचरण करते आये हैं, इससे उनकी विजय हो रही है। जैसा कुछ अधर्म और अनुचित व्यवहार आपके पुत्रों ने पाण्डवों के साथ किया है, वैसा नीच से भी नीच मनुष्य कभी किसी के साथ नहीं कर सकता। भीष्म, द्रोण, कृप, विदुर और हमने बार बार समझाया, पर मोहवश दुर्योधन ने किसी का कहना न माना। अब तो धर्म की जीत निश्चित है। यह सुन कर धृतराष्ट्र चुप हो रहे।

उधर दुर्योधन अत्यन्त विकल होकर भीष्म के पास गये, और अपनी हार पर अत्यन्त शोक प्रगट किया। तब पितामह बोले—हे राजन्! हमने बराबर तुम्हें समझाया कि पाण्डवों का भाग उन्हें देकर उनके साथ प्रेम बढ़ाओ। भाइयों के साथ मेल करके सम्पूर्ण पृथ्वी के राज्य का उपयोग करो। पर तुमने हमारा कहना न माना। उसी का यह परिणाम देख रहे हो। जिसके सहायक भगवान् कृष्णचन्द्र हों, उसका जीतना सर्वथा असम्भव है।

यह सुन कर दुर्योधन चुप चाप अपने शिविर में लौट गये। प्रातःकाल होने पर फिर युद्ध की तैयारी होने लगी।

उस दिन पितामह भीष्म 'मकरव्यूह' बनाकर उसके मुखपर स्वयं विराजे। उधर पाण्डवों ने उसके जवाब में 'वाजिव्यूह' बनाया। दोनों सेनाएँ युद्ध भूमि में डट गईं। तुमुल युद्ध होने लगा पाण्डवी सेना का भीषण आक्रमण देखकर दुर्योधन ने द्रोणाचार्य से कहा—

हे आचार्य! कल असंख्य सेना के सहित हमारे आठ भाइयों को पाण्डवों ने मार डाला आप लोग शत्रु सेना के एक वीर भी न मार सके। हम भीष्म और आपके बल पर इन्द्र से भी युद्धकरने की हिम्मत रखते हैं। पाण्डवों को तो हम कुछ गिनते ही नहीं, अब आप अपने अनुरूप पराक्रम दिखा कर हमारे शोक को दूर कीजिये।

यह सुन कर द्रोण अत्यन्त क्रुद्ध हुए और पाण्डवी सेना का संहार करने लगे। अपनी सेना का नाश होते देख कर सात्यकि और भीम वहाँ आ गये। दोनों ने मिल कर द्रोण पर बहुत बाण बरसाये। भीष्म, शल्य और द्रौपदी के पाँचों पुत्र तथा अभिमन्यु भी आकर वहीं युद्ध करने लगे। बड़ा घोर संग्राम हुआ। अनेकों हाथी, घोड़े, रथी कट कर धराशयी हो गये, दूसरी ओर से अर्जुन कौरवी सेना का सिर काट कर पृथ्वी पाटने लगे। सहदेव और विकर्ण से बड़ा लोमहर्षण युद्ध हुआ बहुत सी सेना कट गई। तब सन्ध्या होने पर सब अपने शिविर में लौट गये।

छठें दिन पाण्डवों ने मकरव्यूह और कौरवों ने क्रौञ्चव्यूह बना घोर युद्ध किया उस दिन भीमसेन ने कौरवों के दल में घुस कर असंख्य वीरों का निपात कर डाला।

सातवें दिन दुर्योधन अत्यन्त चिन्तित होकर पितामह के पास गये और बोले—

हे पितामह! आप सब प्रकार से हमारे हितैषी हैं, इसलिये अपने हृदय का शोक कहते हैं। कल आपने देखा है कि भीमसेन ने अकेले ही हमारे व्यूह में घुस कर पल भर में असंख्य भटों का संहार कर डाला। इससे हमारी धीरता अब जाती रही। हमें केवल आपके भुजाओं के बल पर ही जय पाने की आशा बँधी हुई है।

यह सुन कर भीष्म पितामह हँसते हुए बोले—हे दुर्योधन! मनसा, वाचा, कर्मणा, हम चाहते हैं कि तुम्हें विजय मिले। जीने की अभिलाषा से हम अपने शरीर को नहीं बचा रहे हैं। परन्तु पाण्डवों के पक्ष में जितने महारथी वीर हैं उन पर विजय पाना आसान काम नहीं है। हाँ, युद्ध करके हम पाण्डवों को अवश्य विकल कर देंगे और तुम्हें प्रसन्न करेंगे।

दुर्योधन यह सुनकर बहुत ख़ुश हुए और जुझाऊ बाजा बजाने की आज्ञा दी। भीष्म मण्डलव्यूह बनाकर आगे बढ़े। उत्तर में पाण्डव लोग वज्रव्यूह बनाकर युद्ध भूमि में आये। फिर परस्पर एक दूसरे को ललकार कर भिड़ गये। उस समय बिजली के समान चमकनेवाले असंख्य अस्त्र शस्त्रों से आकाश परिपूर्ण हो गया। वह अनुपम शोभा देखते ही बनती थी।

अनुपम रणपण्डित भीष्म ने अपने रथ की कान फोड़नेवाली घरघराहट से युद्धभूमि को व्याप्त कर दिया। उसे सुनकर पाण्डवी सेना भयभीत सी हो गई। भीष्म रथ पर चारों ओर हवा की तरह दौड़ने लगे। वे क्षण में यहाँ क्षण भर में वहाँ देख पड़ने लगे। प्रति दिन के अनुसार अर्जुन ने भी पितामह का सामना किया, पर उनको वृद्धावस्था का विचार कर उन्होंने कठोर युद्ध करना उचित न समझा। फल यह हुआ कि भीष्म की मार से पाण्डवों की अपरिमित सेना कटने लगी। यह देख कर भीमसेन को बड़ा क्रोध हुआ। भीष्म को रोकने के लिये वे खुद दौड़ पड़े। भीम को भीष्म का मुकाबला करने के लिये दौड़ते देख पाण्डवों की सेना बहुत प्रसन्न हुई। उसने बड़े ज़ोर से सिंहनाद किया। उधर भीम को आते देख दुर्योधन को बड़ा रोष हुआ। वे अपने भाइयों को साथ लेकर स्वयं भीष्मपितामह की रक्षा करने चले।

उस समय भीम ने अद्भुत युद्धकौशल दिखाया। धृतराष्ट्र के अनेक पुत्रों के मिल कर किये हुए आक्रमण को बार बार सहन करके भी अवसर मिलते ही उन्होंने भीष्म के सारथी को मार गिराया। सारथि के गिर जाने से रथ के घोड़े भड़क उठे। वे रथ को लेकर भागे। फल यह हुआ कि भीष्म को वे उस स्थान से दूर ले गये।

भीमसेन तो धृतराष्ट्र के पुत्रों पर पहले ही से जल रहे थे। उन्हें युद्ध के मैदान में पाकर उनके क्रोध की आग भड़क उठी। अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्र चला कर वे दुर्योधन के भाइयों के सिर उतारने लगे। उनमें से कितने ही बात की बात में प्राण हीन होकर ज़मीन पर लोट गए। भीमसेन के किये हुए इस संहार को देख कर बचे हुए धृतराष्ट्र के पुत्र बेतरह डर गये। उन्होंने समझा कि भीमसेन आज ही अपनी प्रतिज्ञा पूरी करके छोड़ेंगे। इससे डरे हुए हिरनों के झुण्ड की तरह वे वहाँ से भाग गये। इतने में सायङ्काल हुआ और विजय दुन्दुभी बजाते हुए पाण्डव लोग अपने शिविर में लौट गये तथा कौरव लोग चिन्तित होकर अपने डेरों में गये।

धृतराष्ट्र सायङ्काल में सञ्जय से उस दिन की युद्ध व्यवस्था सुन कर बोले—हे सञ्जय! प्रति दिन तुम हमारे पुत्रों की हार और पांडवों का विजय बड़े बिस्तार से कहते हो। क्या हमारे पुत्र सदा हारते ही जाते हैं?

सञ्जय ने कहा—महाराज! आप के पुत्रों की सेना अधिक है और वे बड़ी वीरता से युद्ध भी करते हैं। किन्तु आप के अपराध से रण में वे विजयी नहीं हो रहे हैं। पाण्डवों के सामने पहुँचते ही उनका सारा व्यवसाय नष्ट हो जाता है। यह सुन कर धृतराष्ट्र चुप हो रहे।

आठवें दिन प्रातःकाल होने पर पितामह भीष्म ने सागरव्यूह की रचना की। उसके उत्तर में पाण्डवों ने उत्तम शृङ्गाटक नामक व्यूह बनाया। दोनों ओर की सेनाएँ भेरी शंख आदि तरह तरह के बाजे बजाती हुई रणभूमि में आईं। महाभयङ्कर संग्राम आरम्भ हो गया।

इतने में उलूपी नाम की अर्जुन की दूसरी स्त्री से उत्पन्न उनका पुत्र इरावान वहाँ आ पहुँचा। उलूपी नाग कन्या थी, उसका पुत्र इरावान बहुत ही सुन्दर और बलवान था। उसका लालन पालन और शिक्षण ननिहाल में हुआ था। जब युद्ध का समाचार उसे मिला तब उसने भी पिता की सहायता के लिये बहुत सी नाग सेना साथ लेकर कुरुक्षेत्र को प्रस्थान किया। वहाँ आकर उसने बड़ा घोर संग्राम किया। उसने शकुनि की सेना से भिड़ कर उसके असंख्य वीर काट डाले। थोड़ी ही देर में उसने शकुनि के पाँच भाइयों के भी सिर उतार लिये। शकुनि का प्राण बड़ी कठिनाई से बच सका।

यह दशा देखकर दुर्योधन को बड़ा क्रोध आया। उसने आर्ष्यशृङ्ग नामक राक्षस को इरावान् से युद्ध करने के लिये भेजा। वह ज्यों ही इरावान् के सामने आया त्यों ही इरावान् ने अपनी तलवार से उसके धनुष को काट डाला और उसे भी बहुत घायल कर दिया। तब वह राक्षस माया युद्ध करने लगा। वह आकाश में उड़ गया। पर इरावान् ने वहाँ भी उसका पीछा न छोड़ा। आकाश में भी उसने अपने तेज़ बाणों से आर्ष्यशृङ्ग के शरीर को चलनी बना दिया। तब वह राक्षस बहुत ही कुपित हुआ। उसने अत्यन्त विकराल रूप धारण करके बालक इरावान् को मोहित कर लिया। इरावान् संज्ञाशून्य हो गया। इस अवसर को अच्छा समझ कर आर्ष्यशृङ्ग ने अपनी तीक्ष्ण तलवार से इरावान् के किरीट से शोभित शीश को ज़मीन पर काट गिराया।

इस पर कौरवों को बड़ा आनन्द हुआ। उस समय अर्जुन युद्ध के मैदान में एक और जगह शत्रुओं का नाश करने में लगे हुए थे। इससे उन्हें इस घटना की कुछ भी ख़बर न हुई। परन्तु भीमसेन के पुत्र घटोत्कच को यह सब हाल मालूम हो गया। अपने भाई इरावान् की मृत्यु से उसे बड़ी व्यथा हुई। क्रोध से वह पागल हो उठा। अनेक राक्षसों को लेकर बड़े ही भीम विक्रम से वह दुर्योधन पर जा टूटा। घटोत्कच के हाथ से दुर्योधन को बचाने के लिये महावीर वङ्गनरेश ने हाथियों की अनन्त सेना लेकर उसे घेर लिया। उस समय बड़ा ही घोरयुद्ध होने लगा। राजा दुर्योधन ने जीने की आशा छोड़ राक्षसों के उस वृन्द पर असंख्यों तीखे बाण बरसाने आरम्भ किये। इससे बहुत से प्रधान प्रधान राक्षस मारे गये। यह देखकर घटोत्कच के क्रोध का ठिकाना न रहा। उसने एक ऐसी प्रचण्ड शक्ति दुर्योधन पर छोड़ी, जो किसी प्रकार व्यर्थ न जा सकती थी। वङ्गनरेश ने देखा कि अब दुर्योधन का बचना कठिन है। इससे अपने रथ के द्वारा दुर्योधन को छिपा कर अपने ही ऊपर उन्होंने उस शक्ति को ले लिया। उसके लगते ही वङ्गराज के प्राण पखेरू उड़ गये।

उस समय दुर्योधन को राक्षसों से घिरा हुआ देखकर भीष्म द्रोणाचार्य के पास जाकर बोले—हे आचार्य! वह देखिये, दुर्योधनवाले सेना विभाग में राक्षसों की महाघोर कोलाहल ध्वनि सुनाई पड़ रही है। इससे इन निशाचरों के हाथ से उनकी रक्षा किये बिना कल्याण नहीं।

यह कह कर बहुत से महारथी लेकर भीष्म और द्रोण दुर्योधन की सहायता के लिये गये। जाकर उन्होंने देखा कि राक्षसों के मायायुद्ध के प्रभाव से कौरव लोग रुधिर से लथपथ हो रहे हैं। उनके चेहरे उतर गये हैं। जान पड़ता है कि वे बहुत भयभीत हो गये हैं। किसी का कुछ भी किया नहीं होता। सब एक दूसरे का मुँह देखते हुए चुपचाप खड़े हैं। प्रधान कौरवों की यह दशा देखकर कितने ही सैनिक युद्ध का मैदान छोड़ छोड़ कर भाग रहे हैं। इस पर उन भगोड़ों को बार बार धिक्कार करके भीष्म ने ज़ोर से कहा—

हे योद्धाओ! राजा दुर्योधन को राक्षसों के हाथ में सौंपकर तुम्हें इस तरह भागना उचित नहीं। तुरन्त लौटो। ख़बरदार, जो कोई भागा उसका मेरे बाणों से वध होगा। परन्तु उनलोगों के होश-

हवास बिलकुल ही ठिकाने न थे। इससे किसी ने भीष्म की बात न सुनी, और जिसने सुनी भी, उन्होंने उसकी परवा न की। तब भीष्म उदास होकर दुर्योधन से बोले—

हे राजन्! तुम्हें अपने आप को इस तरह विपद के मुँह में डालना उचित नहीं। राजा को चाहिये कि वह हमेशा अपनी रक्षा का अच्छा प्रबन्ध करके युद्ध करे। हम सब लोग यहाँ पर आप ही का उद्देश पूरा करने के लिये हैं। यदि किसी पर आप को अधिक क्रोध आवे तो हम लोगों में से किसी एक को उसे दण्ड देने के लिये आज्ञा देनी चाहिये।

यह कह कर महावीर भगदत्त से भीष्म बोले—हे महाराज! आपने पहले बड़े बड़े अद्भुत पराक्रम के काम किये हैं। इससे आप ही घटोत्कच का सामना करने के योग्य योद्धा हैं। अब आप ही इस महाबली निशाचर के घमण्ड को चूर करें।

भगदत्त को इस तरह आज्ञा देकर भीष्म ने दुर्योधन को एक ऐसी जगह पहुँचा दिया जहाँ किसी तरह का डर न था। यह करके आप फिर युद्ध के काम में लग गये।

इस बीच में भीमसेन के मुँह से अपने पुत्र इरावान् का आना, उसका भीषण युद्ध, उसकी वीरता और मृत्यु का समाचार सुनकर अर्जुन ने बहुत शोक किया। वे कृष्ण से बोले—

हे जनार्दन! अब कुरुकुल के नाश का कारण प्रत्यक्ष होता जा रहा है। विदुर, व्यास आदि महापुरुषों ने बार बार समझाया पर उन अज्ञानियों ने एक भी न माना। हम से तो कुछ कहते ही नहीं बनता है। दोनों ओर के बन्धु बान्धवों का भीषण नाश हो रहा है। हा! ऐसे राज्य लोभ को धिक्कार है। इसकी अपेक्षा तो निर्धन रह कर मर जाना कहीं अच्छा है। धर्मराज पाँच ही ग्राम लेकर शान्ति चाहते थे, पर उस समय हमें अच्छा नहीं लगा। अब यह कुत्सित कर्म करते हुए हमें समझ पड़ रहा है। यदि इस समय युद्ध त्याग कर दें तो लोग हमें नामर्द कहेंगे। इसलिये युद्ध करके ही संग्रामभूमि में मर जाना सब तरह से श्रेयस्कर है। हे नाथ! अब हमें वहाँ ले चलिये जहाँ भीषण युद्ध हो रहा है,

द्रोण आदि महारथियों से रक्षित होकर जहाँ भीष्म बड़ी निर्दयता से पाण्डवों की सेना संहार कर रहे थे, अर्जुन के इच्छानुसार कृष्ण वहीं उनको ले गये। पुत्र के मारे जाने से अर्जुन जले भुने थे ही; कौरवों की सेना को मार कर वे उसकी सारी कसर निकालने लगे। बड़े बड़े कौरव वीरों को लेने के देने पड़ गये। कहाँ वे पाण्डवों पर आक्रमण कर रहे थे, कहाँ खुद ही उन्हें अपनी जान बचानी मुश्किल हो गयी। अब पाण्डवों के सेनाध्यक्षों को मौका मिला। वे फिर सँभले और कौरवों को बेतरह पीड़ित करने लगे।

यह सुयोग हाथ आते ही भीमसेन ने कौरवों के व्यूह को तोड़ डाला और उसके भीतर जहाँ धृतराष्ट्र के पुत्र और कुटुम्बी थे, जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने सारी मोह ममता छोड़ कर एक एक को यमपुर भेजना आरम्भ कर दिया। उस समय वहाँ कोई भी उन्हें भीमसेन के हाथ से न बचा सका। क्रम क्रम से भीम और अर्जुन के इस महाभयङ्कर युद्ध से युद्ध के मैदान ने बड़ी ही डरावनी मूर्त्ति धारण की। अनगिनती रुण्ड मुण्ड से पृथ्वी भर गई। कहीं रत्न जटित कुण्डल पड़े हैं, कहीं पर चित्र विचित्र पुछल्ले लगे हुए बाण पड़े हैं, कहीं पर टूटे हुए बहुमूल्य घण्टीदार रथ पड़े हैं, कहीं पर धूल में लिपटे हुए सफेद पताके पड़े हैं। हाथियों और घोड़ों की लोथों तथा नर वीरों के रुण्ड मुण्डों की तो कुछ गिनती ही नहीं।

इसके थोड़ी ही देर के बाद सूर्यास्त हो गया। धीरे धीरे घोर अन्धकार छा गया। दोनों ओर की सेनाएँ अपने अपने शिविर में चली गई।

रात में दुर्योधन ने शकुनि, दुःशासन और कर्ण को बुला कर कहा—हे वीरो! पाण्डवों पर विजय पाना हमें बहुत दुस्तर मालूम हो रहा है। भीष्म, द्रोण, कृप, शल्य, भूरिश्रवा आदि वीर उन पर विजय नहीं पा रहे हैं। इसका क्या कारण है? इस सन्देह से हम रात दिन व्यथित हो रहे हैं। आप लोग इसका परिहार करें।

यह सुन कर कर्ण बोला—हे राजा! सुनिये, हम आप की शपथ करके कहते हैं, भीष्म पाण्डवों पर दया दिखाते हैं। फिर वे जितनी बढ़ कर बातें करते हैं, उतने बड़े वीर नहीं। यदि वे शस्त्र त्याग कर युद्ध से अलग हो जायँ, तो हम ससैन्य पाण्डवों का संहार कर डालें। इससे आप शीघ्र जाकर उनसे सेनापति का पद त्याग कराइये।

यह सुनते ही दुर्योधन ने दुःशासन को आज्ञा दी।

भाई! तुम जाकर हमारे साथ रहनेवालों से कह दो कि वे शीघ्र ही तैयार हो जायँ, हम भीष्म से अभी मिलने जायँगे।

इसके बाद मुकुट, विजायठ, माला आदि आभूषण पहन कर सोने के जलते हुए लालटेन और हथियार बन्द नौकरों के साथ राजा दुर्योधन महात्मा भीष्म के डेरे की ओर चले। वहाँ पहुँच कर वे घोड़े से उतर पड़े और भीष्म के डेरे के भीतर जाकर हाथ जोड़ कर भीष्म के सामने खड़े हो गये। फिर वे आँखों में आँसू भर कर इस तरह भीष्म से बोले—

हे पितामह! आप के बल पर हम इन्द्र को जीत लेने की आशा रखते हैं फिर पाण्डव किस गिनती में हैं। इससे आप ऐसी कृपा करें, जिससे शत्रुओं का शीघ्र नाश हो और हम पृथ्वी में सुयश पाकर धन्य हों। हमारे अभाग्य से अथवा हमें दोषी समझ कर यदि पाण्डवों पर दया करते हों, तो आज्ञा दीजिये, कर्ण निस्सन्देह होकर पाण्डवों का बध करें।

इतनी बात कह कर दुर्योधन चुप हो रहे। उनका यह वाक्य रूपी बाण भीष्म के हृदय में धँस गया। वे मारे क्रोध के कुछ देर तक आँखे बन्द किये हुए चुपचाप बैठे रहे। अनन्तर आँखे खोल कर शांति पूर्वक बोले—

हे दुर्योधन! तुम वाक्य रूपी बाणों से हमारा हृदय क्यों बेध रहे हो? हम तो अपनी शक्ति भर तुम्हारे हित की कोई बात उठा नहीं रखते हैं। क्या तुमसे पाण्डवों का पराक्रम छिपा हुआ है? इन्द्र को जीत कर उन्होंने खाण्डवबन का दाह किया। जब कर्ण आदि योद्धा तुम्हारा सङ्ग छोड़ कर भागे और गन्धर्व लोग तुम्हें पकड़ कर ले चले, तब पांडवों ने ही तुम्हें छुड़ाया था। विराटपुर में हम और कर्ण आदि सभी वीर गये थे, वहाँ अकेले वीर अर्जुन ने आकर सब को पराजित किया। और सब के वस्त्राभूषण भी छीन ले गये। द्रुपद के युद्ध में तुम सब भाग गये थे, अकेले अर्जुन ने उसे पराजित किया। इस प्रकार पांडवों के पराक्रम को जान कर भी तुम क्यों भूल कर रहे हो। दुर्बुद्धि के कारण तुम दुराग्रह नहीं छोड़रहे हो। जिसके सहायक श्रीकृष्ण हैं, उसका जीतनेवाला तो हमें कोई नहीं दिखाता। गुरुजनों की बातों का निरादर करके तुमने हठ से युद्ध ठाना है, फिर खुद ही पाण्डवों को मार कर क्यों नहीं विजयी हो जाते। जो हो, पाण्डवों का बध तुम करो, शिखण्डी को छोड़ कर बाकी वीरों का संहार हम करेंगे। जाओ तुम सुख से सोओ, कल हमारा महा-युद्ध होगा।

प्रातःकाल होने पर पितामह भीष्म ने 'सर्वतोभद्र' व्यूह बनाया । उत्तर में पाण्डवों ने 'महा व्यूह' की रचना की । दोनों ओर की सेनाएँ अपने अपने सेना-निवेश से निकलकर युद्धभूमि में आईं । महात्मा भीष्म अपने जीने की आशा छोड़कर जलती हुई आग के समान बाण बरसाकर प्रचण्ड ज्वाला के सदृश पाण्डवों की सेना को जलाने लगे । अत्यन्त तीखे अस्त्रों से पाण्डवों की सेना को चारों ओर से छा दिया और असंख्य रथ, हाथी तथा घोड़े बिना सवारों के होकर भागने लगे । खींचकर बाण छोड़ने से भीष्म के प्रत्यञ्चा का शब्द क्रम क्रम से तेज होने लगा । यहाँ तक कि पाण्डवों के पक्ष के योद्धाओं को कुछ देर में वह वज्र के समान कठोर सुनाई देने लगा । पाण्डवों के वीर अत्यन्त भयभीत हो गये । देखते ही देखते भीष्म ने पाण्डवों की सोमक सेना प्रायः बिलकुल ही काट डाली । तब भीष्म के तीखे बाणों से बिधकर बड़े बड़े महारथी तक भागने लगे । कोई भी उन्हें लौटाने में समर्थ न हुआ । वे लोग मारे डर के इतने विह्वल और व्याकुल हो गये कि दस बीस की तो बात ही नहीं, दो आदमी भी एक जगह न दिखाई देने लगे । चारो ओर कोलाहल और हाय हाय शब्द मात्र ही सुनाई पड़ता था । पाण्डवी दल में कोई वीर ऐसा न था, जो अपनी जगह पर खड़ा रह गया हो ।

कितने ही अपना अस्त्र फेंककर भागे और कितने ही घायल होकर । महात्मा भीष्म ने उस दिन ऐसा घोर युद्ध किया कि पाण्डवी सेना में हाहाकार मच गया । उस दिन पाण्डवी सेना बराबर हारती ही गई । इतने में सन्ध्याकाल हो गया और युद्ध रुक गया । दोनों ही सेनाएँ अपने अपने शिविर में लौट गईं ।

रात्रि में उस दिन की हार से बहुत चिन्तित होकर युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण से कहा— हे मधुसूदन ! आज आपने पितामह के अतुल विक्रम को देखा, उन्होंने हमारी सेना का वैसे ही नाश किया जैसे कमलवन का हाथी नाश करता है । हमारी सेना का जो कोई महारथी उनके सामने हुआ, वही दीपक में पतङ्ग के समान भस्म हो गया । दिक्पालों के समान पराक्रमी भीष्म से जीतने वाला हमें तो कोई नहीं दिखाई पड़ता है । इससे व्यर्थ ही बन्धु बान्धवों का नाश कराने से क्या लाभ ? भीष्म के बाणों से व्यर्थ ही कुल का नाश न हो, इसलिये अब हम वन में निवास करेंगे ।

युधिष्ठिर की विह्वलता देखकर श्रीकृष्ण ने कहा—हे धर्मराज ! धीरज धारण कीजिये, सुख-दुःख को छोड़ दीजिये । आप के ये भाई लोग बड़े पराक्रमी हैं, ये दिव्यबाणों से भीष्म का बध करेंगे । यदि अर्जुन उनका बध करने में हिचकते हों, तो आप हमें आज्ञा दें भीष्म का बध करके हम आप को सुखी करें । हम पाण्डवों के हित को अपना हित और उनके अहित को अपना अहित समझते हैं । अर्जुन हमें शिष्य, मित्र और छोटे भाई के समान प्यारे हैं । उनके लिये हम अपना सर्वस्व निछावर कर देने को तैयार हैं ।

यह सुन कर धर्मराज प्रसन्न हुए और बोले—हे माधव ! सत्य है, हमारे समान कौन है ? जिसके पक्षपाती आप हैं । हम भला यह कब कह सकते हैं कि आप अपना प्रण त्याग कर युद्ध करें । एक बात है जो हम आपसे प्रगट कर देना चाहते हैं । वह यह कि महात्मा भीष्म ने युद्ध आरम्भ होने के पहले कहा था, कि 'अवसर आने पर हमारे मृत्यु का समय निकट आ जाय तब आना, तुम्हारे हित के लिये कुछ उपदेश देंगे '। पितामह भीष्म कौरवों की ओर से युद्ध करेंगे यह तो निश्चित है, परन्तु उनका उपदेश पाकर हम भी विजयी होंगे इसमें सन्देह नहीं । अब उन्हीं के शरण चलना उचित है ।

श्रीकृष्णचन्द्र ने कहा—महाराज! आप की सलाह हमें पसन्द है। खुद भीष्म ही से उनके मारने का उपाय पूछने से ज़रूर ही हमारा मतलब सिद्ध हो जायगा।

यह निश्चय हो जाने पर कृष्ण ने अपने अस्त्रशस्त्र रख दिये और पाण्डवों ने भी। शस्त्रहीन होकर भीष्म के शिविर में प्रवेश किया। यथा उचित बन्दना करने के बाद सब लोग बैठ गये। भीष्म को उनसे मिलकर बड़ा आनन्द हुआ। वे प्रीतिपूर्वक बोले—

हे कृष्ण, हे पाण्डव! तुम्हारा स्वागत करते हैं। हम तुम्हें देख कर बहुत प्रसन्न हुए। कहो, तुम्हारे लिये हम क्या करें। कौन ऐसा काम है जिसे करने से तुम प्रसन्न होगे? हम वही करने को तैयार हैं।

यह सुन कर राजा युधिष्ठिर दीनता पूर्वक बोले—हे पितामह! आप सदा बाणवृष्टि करके हमारी सेना का नाश करते हैं और हम आप का अनिष्ट कर नहीं सकते। अतएव अब आप ही बतलाइये कि अपने लाभ के लिये हमें क्या करना चाहिये।

भीष्म पितामह का एक तो यों ही पाण्डवों पर स्नेह था, फिर वे धर्मपरायण थे। पाण्डवों के हाथ से कभी कोई अधर्म नहीं हुआ। भीष्म को ऐसे धर्मनिष्ट और स्नेहभाजन पाण्डवों को युद्ध में अत्यन्त पीड़ित करना पड़ता था। इस बात को सोच कर और अपने विषय में दुर्योधन के मर्म-भेदी कड़वे और सन्देह से भरे हुए वचन याद करके, भीष्म को जो वैराग्य पहले ही से हो रहा था, वह इस समय और भी बढ़ गया। उन्होंने अपने जीने की इच्छा बिलकुल ही छोड़ दी और प्रसन्न मन पाण्डवों से बोले—

हे पाण्डव! जबतक हम जीते हैं तब तक तुम्हारी जीत होने की कोई आशा नहीं। इससे हम तुम्हें आज्ञा देते हैं कि तुम लोग हम पर बेखटके वार करो। तुमने जो हमारी मान मर्यादा की रक्षा की है उससे हम बहुत प्रसन्न और सन्तुष्ट हैं। अब इस समय हमें मार डाले बिना इस युद्ध की समाप्ति न होगी। हे युधिष्ठिर! तुम्हारी सेना में राजा द्रुपद का जो शिखण्डी नामक पुत्र है, वह असल में स्त्री है। पुरुषत्व उसे पीछे से प्राप्त हुआ है। इस कारण उसके ऊपर हम हथियार नहीं चला सकते। यह भेद हमने तुम से बतला दिया। उसी को आगे करके हमारे सामने आओ, हम उस पर अस्त्र न चलावेंगे। उसकी ओट में होकर अर्जुन हमारा वध करें। क्योंकि अर्जुन के बिना हमें कोई भी वीर मारने में समर्थ नहीं है। जाओ, कल इस काम को कर डालना। यही हमारा उपदेश है।

पितामह को परास्त करने का उपाय मालूम हो जाने पर युधिष्ठिर ने महात्मा भीष्म को बड़ी भक्ति से प्रणाम किया और कृष्ण तथा भाइयों के सहित अपने शिविर में लौट आये।

पितामह के प्राण छोड़ने की बात सुनकर अर्जुन बहुत दुखी हुए। वे कृष्ण से बोले—हे केशव! लड़कपन में धूलि से भरे हुए हम लोग जब उन्हें पिता कहकर पुकारते थे, तब वे हमें गोद में बैठाकर दुलार करते हुए कहते थे। बेटा! हम तुम्हारे पिता नहीं, तुम्हारे पिता के पिता हैं। ऐसे वृद्ध पितामह पर हम किस प्रकार कठोर आघात करेंगे और किस प्रकार हम उन्हें मारेंगे? ज्ञानी, योगी, व्रती, वृद्ध पितामह का बध करके हम कैसे संसार में मुँह दिखावेंगे? वे चाहे हमारी सारी सेना का नाश कर डालें, चाहे हमारी हार ही नहीं मृत्यु भी हो जाय, पर किसी प्रकार हम ऐसा अन्याय और अधर्म न कर सकेंगे।

श्रीकृष्ण ने कहा—हे अर्जुन! तुमने प्रतिज्ञा की है, कि हम भीष्म का वध करेंगे। क्षत्रिय होकर

उस प्रतिज्ञा को तोड़ना तुम्हारा धर्म नहीं। फिर यह भी समझ लो, भीष्म की इस समय सचमुच ही मृत्यु आ गई है। यदि वह बात न होती, तो वे तुम्हें कभी ऐसा उपदेश न देते। तुम को छोड़ कर और कोई उन्हें मारने की शक्ति नहीं रखता। इससे युद्ध के मैदान में तुम अपने को मृत्यु का निमित्त मात्र समझो। यह न सोचो कि तुम पितामह को मार रहे हो। मारनेवाली तो मृत्यु है, तुम केवल उस मृत्यु के निमित्त हो अतएव युद्ध में तुम्हें यह बात भूल जाना चाहिये कि ये हमारे कुटुम्बी हैं, ये हमारे मित्र हैं और ये हमारे गुरुजन हैं। सम्मुख आकर जो कोई तुम पर वार करना चाहे, उसे मारने में तुम ज़रा भी सोच विचार न करो। अपने ऊपर अत्याचार करनेवाले को क्या कभी कोई छोड़ता है?

अर्जुन ने कहा—हे कृष्ण! यदि बहुत ही आवश्यक समझा जाय तो शिखण्डी ही पितामह का वध साधन करें। शिखण्डी को सामने देखकर महात्मा भीष्म हथियार रख देंगे। हाँ, भीष्म की रक्षा करनेवाले महारथी वीर वैसा न करेंगे। वे ज़रूर शिखण्डी पर वार करेंगे। पर उनके आक्रमण से हम शिखण्डी को बचाते रहेंगे। इस तरह जो बात हम चाहते हैं वह सहज ही में शिखण्डी के हाथ से हो जायगी।

अर्जुन की यह सलाह कृष्ण और पाण्डवों को पसन्द आई। वे लोग बहुत ख़ुश हुए और शयन करने के लिये अपने अपने डेरों में गये।

दशवें दिन प्रातःकाल होने पर पाण्डवों ने एक ऐसा व्यूह बनाया, जिसका भेद किसी प्रकार न हो सके। शिखण्डी को आगे करके भीम और अर्जुन उनके पार्श्व रक्षक हुए। द्रौपदी के पाचों पुत्र, अभिमन्यु, सात्यकि, चेकितान आदि अपनी अपनी सेना लेकर पृष्ठ रक्षक बने। सब के पीछे ससैन्य सेनापति धृष्टद्युम्न विराजे। उनके बाद राजा युधिष्ठिर नकुल, सहदेव तथा और भी बड़े बड़े महारथी राजे चले। इस प्रकार अपनी सेना के साथ पाण्डव लोग बाजे गाजे के साथ रणभूमि की ओर आगे बढ़ने लगे। कौरवी सेना भी महात्मा भीष्म के सेनापतित्व में समुद्र के समान उमड़ती हुई रणभूमि में आई।

महात्मा भीष्म ने मेघ गर्जन करके पाण्डवी सेना पर इतने बाण बरसाये कि उनके छक्के छूट गये। यह देख कर दुर्योधन ने भीष्म की बड़ा प्रशंसा की। इतने में अपने बाणों की वर्षा से कौरवी दल को चीर कर अर्जुन ने शिखण्डी को आगे कर दिया और शिखण्डी ने भीष्म की छाती में तीन बाण मारे तब महात्मा भीष्म उदासीनता से बोले—

हे शिखण्डी! तुम्हारी पहली उत्पत्ति को स्मरण करके हम तुम्हारे ऊपर अस्त्र न चलावेंगे। तुम इच्छानुसार हमें अपने बाणों से मारो।

भीष्म के कठोर बचन को सुनकर शिखण्डी क्रोध से बोले—हे भीष्म! हम तुम्हारे सब विक्रम को समझ कर आज युद्ध के लिये उद्यत हुए हैं। आज तुम्हारा बध किये बिना न छोड़ेंगे, तुम्हें जो रुचै वह करो। यह कह कर उन्होंने पाँच बाण फिर भीष्म की छाती में मारे।

तब अर्जुन ने शिखण्डी से कहा—हे वीर! हम तुम्हारे पीछे हैं, तुम निर्भय होकर आगे बढ़ो। तुम्हारे ऊपर कोई भी कौरव वीर आक्रमण न करने पावेगा। कृप, द्रोण आदि बड़े बड़े वीरों को हम रोक रक्खेंगे। तुम बढ़ कर भीष्म का बध करो और अपूर्व यश लो।

इतने में कौरव वीरों ने भीम, अर्जुन और शिखण्डी को बाणों से ढँक दिया। पर अर्जुन ने क्षण भर में उसे काट कर अलग कर दिया। अपने दल को विचलित देख कर दुर्योधन ने

भीष्म से कहा—हे पितामह! पाण्डव लोग हमारी सेना का संहार कर रहे हैं, ऐसे आपद्काल में आप को छोड़ कर हमारा रक्षक दूसरा कोई नहीं।

यह सुन कर पितामह ने कहा—हे राजन्! हमने तुमसे पहले ही प्रतिज्ञापूर्वक कह दिया है कि हम दश हज़ार योद्धाओं का प्रति दिन वध करेंगे। वैसा ही आज तक किया भी। अब हम अपनी शक्ति का सब से भारी परिचय देकर युद्ध के मैदान में प्राण छोड़ेंगे, तुम्हारा अन्न जो आज तक हमने खाया है उसके ऋण से आज छूट जायँगे।

यह कह कर भीष्मपितामह पाण्डवों की सेना में घुस पड़े और वज्र के समान बाणों की वर्षा करने लगे। उस समय उन्होंने अद्भुत विक्रम दिखाया। बात की बात में उन्होंने दश हज़ार घुड़सवार, दश हज़ार हाथी के सवार और एक लाख पैदल सेना काट गिरायी। तब पाण्डवी सेना के बड़े बड़े वीरों से रक्षा किये गये शिखण्डी ने ज्यों ही आगे बढ़ने की चेष्टा की, त्योंही अश्वत्थामा सात्यकि की तरफ़, द्रोणाचार्य धृष्टद्युम्न की तरफ़ और जयद्रथ विराट की तरफ़ दौड़ पड़े। इस तरह दोनों दलों के रक्षक लोगों के द्वारा परस्पर एक दूसरे की राह रोकी जाने पर महा घोर युद्ध होने लगा।

युद्ध के मैदान में सञ्जय सब बातें अपनी आँखों देखते थे और सायङ्काल सब वृत्तान्त धृतराष्ट्र से कहते थे। उस दिन सन्ध्या समय जब वे युद्ध के मैदान से लौटे, तब उदास और चिन्ता में डूबे बैठे हुए राजा धृतराष्ट्र से इस प्रकार युद्ध का हाल कहा—

महाराज! हम सञ्जय हैं आप को प्रणाम करते हैं। कुरु पितामह भीष्म आज युद्ध में मारे गये। योद्धाओं में जो सब से श्रेष्ठ और कौरव वीरों को जिनका इतना भरोसा था, वही भीष्म आज बाणों की सेज पर सोये हैं। जिन्हों ने काशी के महायुद्ध में सैकड़ों राजाओं से एक साथ, रथ-युद्ध करके सब को हरा दिया और खुद परशुराम भी जिन्हें नहीं जीत सके, वही भीष्म आज शिखण्डी के द्वारा परास्त होकर ज़मीन पर पड़े हैं। शूरता में जो इन्द्र के समान, स्थिरता में हिमालय के समान, सहनशीलता में पृथ्वी के समान और गम्भीरता में समुद्र के समान थे, वीरों का संहार करनेवाले वही महावीर भीष्म दस दिन तक अपनी सेना की रक्षा करके और अनेक अद्भुत अद्भुत काम करके आज सूर्य की तरह अस्त हो गये।

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय! यह तुम कैसे कह रहे हो कि भीष्म आज मारे गये! देवता भी जिन्हें नहीं जीत सकते थे, ऐसे महादुर्धर्ष भीष्म को पाञ्चाल देश के शिखण्डी ने युद्ध में क्यों कर मारा? संसार में जितने धनुर्धर हैं उन सब में श्रेष्ठ भीष्म के मारे जाने की ख़बर सुनने से अधिक और क्या दुःख हो सकता है? ओ हो! क्या ही आश्चर्य की बात है! जिसने दस दिन तक इन्द्र की तरह अनन्त बाण वर्षा करके एक अरब वीरों को मार गिराया, वही आज स्वयं मारा जाकर, प्रचण्ड पवन के झकोरों से टूट कर गिरे हुए वृक्ष की तरह युद्ध के मैदान में पड़ा है। महारथियों के कुल में उत्पन्न हुए उस वीर पुरुष के हारने का वृत्तान्त हम से कहो, क्योंकि सब बातें अच्छी तरह सुने बिना हमें चैन नहीं मिल सकता।

इसके बाद पाण्डवों का भीष्म के पास जाने, उनके उपदेश के अनुसार व्यूह की रचना करने और युद्धारम्भ होने आदि का यथार्थ वर्णन करके सञ्जय ने कहा—

जब शिखण्डी को आगे करके पाण्डवों की सेना ने कौरवों से घिरे हुए भीष्म पर आक्रमण किया, तब महा घनघोर युद्ध होने लगा। वज्र हाथ में लिये हुए इन्द्र का सामना जैसे दैत्यों के दल ने

किया था, ठीक उसी तरह महारथी भीष्म का सामना पाण्डव लोगों ने किया। तब पितामह ने घोर-मूर्त्ति धारण की और इन्द्र के वज्र पर रगड़ कर तेज़ किये गये असंख्य बाणों की वर्षा करके आकाश पाताल एक कर दिया।

धीरे धीरे हमारी सेना का नाश करते करते भीम अर्जुन व्यूह के द्वार पर जा पहुँचे। शिखण्डी के रथ को बीच में डाल कर वे उसकी रक्षा करते थे। शिखण्डी का रथ क्रम क्रम से आगे को बढ़ता गया और कुछ देर में भीष्म के रथ के पास पहुँच गया।

तब अर्जुन ने कहा—हे शिखण्डी! तुम्हारे लिये यही सब से अच्छा अवसर है। इस समय और किसी बात का सोच विचार न करके तुम तुरन्त ही भीष्म पर वार करो।

अर्जुन के कहने के अनुसार शिखण्डी ने भीष्म की छाती पर बाण मारना आरम्भ कर दिया, परन्तु पितामह ने शिखण्डी की तरफ़ तुच्छ दृष्टि से देखा। शिखण्डी के वार पर वार करने से उन्हों ने एक बार भी उस पर बाण न चलाया, और न किसी शस्त्र से उस पर चोट की। शिखण्डी के मार की कुछ भी परवा न करके पहले ही की तरह वे और और योद्धाओं पर बाण बर्षा करते रहे। किन्तु शिखण्डी के ध्यान में यह बात न आई। जिसमें शिखण्डी को यह न मालूम हो कि पितामह उस पर शस्त्र नहीं चलाते, अर्जुन बार बार शिखण्डी के उत्साह को बढ़ा कर उन्हें उत्तेजित करते हुए बोले—

हे शिखण्डी! इस समय भीष्म को मारने की जी खोल कर चेष्टा करो। इस इतनी बड़ी सेना में तुम्हें छोड़ कर ऐसा एक भी योद्धा नहीं, जो इस महान् कामको कर सके। यदि तुम्हारी चेष्टा निष्फल हुई तो हमारी तुम्हारी दोनों ही की हँसी होगी।

तब बलके मद से मतवाला होकर शिखण्डी ने अपने बाणों से भीष्म को आच्छादित कर दिया। परन्तु पितामह इससे ज़रा भो विचलित नहीं हुए। उन्हों ने हँसते हँसते उन सब बाणों को अपने शरीर पर धारण कर लिया। शरीर में इतने बाण छिद जाने पर भी उन्होंने व्यथा के कोई चिन्ह नहीं प्रगट किये। उलटा दूने उत्साह से वे पाण्डवों की सेना का नाश करते रहे। दुर्योधन ने देखा कि अर्जुन शिखण्डी की इस तरह रक्षा कर रहे हैं कि किसी भी कौरव वीर की पहुँच शिखण्डी तक नहीं होती। इस लिये दुर्योधन ने ललकार कर कहा—

हे वीरो! तुम लोग शीघ्र ही अर्जुन पर आक्रमण करो। भीष्म तुम्हारी रक्षा करेंगे। कोई तुम्हारा कुछ भी न कर सकेगा।

इस आज्ञा के अनुसार बड़े बड़े राजा और बड़े बड़े बल विक्रम शाली वीर अर्जुन पर टूटने के लिये इस तरह दौड़े, जैसे दीपक पर गिर कर जलने के लिये पतङ्गे दौड़ते हैं। किन्तु अर्जुन के महा बेग शाली बाणों और अस्त्र शस्त्रों की मार से बिकल होकर कुछ ने तो गिर कर वहीं प्राण छोड़ दिये और कुछ भाग निकले। भीष्म की रक्षा करनेवाले लोग शिखण्डी को मारने की जो चेष्टा करते थे, उसे अर्जुन पहले ही की तरह अपने बाणों से व्यर्थ करते रहे। कोई भी शिखण्डी को कुछ हानि नहीं पहुँचा सका।

इसी प्रकार बहुत देर तक युद्ध होता रहा। शिखण्डी तथा अर्जुन के बाणों से पितामह का शरीर अत्यन्त जर्जर हो गया। जो धनुष वे हाथ में लेते, अर्जुन तुरन्त उसे काट कर गिरा देते। अर्जुन के बाणों से अत्यन्त व्यथित होकर पितामह ने पास ही खड़े हुए दुःशासन से कहा—

हे दुःशासन! देव और दानवों पर विजय पाने वाले अर्जुन के बाण हमारे देह में बज्र के समान

लग रहे हैं। ये जितने बाण हमारे शरीर में लग रहे हैं, वे शिखण्डी के नहीं अर्जुन के ही हैं। ब्रह्म दण्डो की तरह बेगवाले अत्यन्त असह्य शर, जो हमारे शरीर की हड्डियों तक को तोड़ कर हमें बेतरह विकल कर रहे हैं, शिखण्डी के धनुष से कभी नहीं छूट सकते। ये अत्यन्त क्रुध फुफकारते हुए विष-धर नाग के समान तीर, जो हमारे मर्म स्थानों के भीतर प्रवेश करके हमारा प्राण ले रहे हैं, अर्जुन के गाण्डीव धनुष से निकले हुए हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं। गाण्डीव को छोड़ कर और कोई हमें ज़मीन पर नहीं गिरा सकता। यह कहते हुए भीष्म ने अर्जुन पर कराल शक्ति फेंका, उसे उन्होंने तीन बाणों से काट कर रास्ते ही में गिरा दिया। फिर उन्होंने ढाल तलवार उठाया। अर्जुन ने उसे भी काट गिराया यह देख कर राजा युधिष्ठिर बहुत प्रसन्न हुए। उनकी आज्ञा से बड़े बड़े योद्धा चारों ओर से भयङ्कर युद्ध करने लगे। उस समय बड़ा घोर युद्ध हुआ असंख्य वाहिनी कट गई। मांस और शोणित से भरी हुई पृथ्वी बड़ी भयावनी मालूम होने लगी। उस समय अर्जुन ने सारी कौरवी सेना को मार भगाया। बाणों के आघात से अत्यन्त अशक्त हो जाने के कारण भीष्म देर तक खड़े न रह सके, उनका सारा अंग शिथिल हो गया। वे ईश्वर का स्मरण करते हुए आँखें मूँद कर गिर गये। उनके शरीर में इतने बाण बिध गये थे कि वे ज़मीन से नहीं छू गये। वीरों के योग्य शरशय्या पर महात्मा भीष्म सो गये।

उस समय कौरवी सेना ने उनके शोक में अपनी अपनी सारी ध्वजाएँ गिरा दी। फिर सचेत होने पर महात्मा भीष्म ने देवताओं के ये वचन सुने—हे महात्मा! अभी सूर्य दक्षिणायन हैं, उत्तरायण होने पर प्राण त्यागिये। भीष्म ने उसे स्वीकार कर लिया।

भीष्म के गिर जाने से पाण्डवी सेना में बड़ा हर्ष मनाया गया। शंख और दुन्दुभी के बजने से दिशाएँ भर गईं। हे महाराज! आप के पुत्र चित्रलिखे से खड़े रह गये कौरवी सेना में शोक छा गया

यह सुनकर धृतराष्ट्र ने कहा—हाय! हमारी मूर्खता के कारण पितृतुल्य भीष्म की यह दशा हुई। इससे अधिक दुःख की बात हमारे लिये और क्या हो सकती है? सूर्य के समान तेजस्वी उस महात्मा के साथ हमारी सारी आशा धूल में मिल गई। हाय! भीष्म के समान सत्यव्रत महात्मा का मरण सुन कर हमारा हृदय फट नहीं जाता है। ऋषियों ने क्षत्रियों के धर्म को बड़ा दुःखदायी बनाया है। उसे उन्होंने ऐसा दारुण कर दिया है कि उसके पालन के लिये पितामह ऐसे महात्मा का बध करा कर हम लोग राज्य करने की इच्छा करते हैं और उधर पाण्डव भी उनका संहार करके राज्य पाने की आशा रखते हैं। बीच धारा में नाव डूब जाने से पार जाने की इच्छा रखनेवाले की जो दशा होती है, भीष्म की मृत्यु से हमारे पुत्रों की ठीक वही दशा हुई है। हाय! भीष्म के बिना इस समय दुर्योधन अब किस के आसरे होंगे? हे सञ्जय! इस युद्ध में हमारे पुत्रों की क्या दशा होगी, यह सोच कर पहले ही से हमारा हृदय शोकाग्नि से जल रहा था। तुमने भीष्म की मृत्यु की ख़बर सुना कर उस आग में मानों घी डाल कर उसे और भी प्रज्वलित कर दिया। उस भीमकर्मा महायोद्धा भीष्म की मृत्युवार्ता सुन कर हमारे मुँह से और अब बात नहीं निकलती। हमारी वाणी मन्द सी हो रही है। हम में और अधिक बोलने की शक्ति नहीं रह गई है।

इधर कुरु सेनापति भीष्म के शरशय्या में सो जाने पर कौरव लोग बेतरह घबड़ा गये। कुछ देर तक एक दूसरे का मुँह देखते हुए सब लोग खड़े रह गये। यह किसी को न सूझा कि अब क्या करना चाहिये। अन्त में दुर्योधन की आज्ञा से दुःशासन, द्रोणाचार्य की सेना की तरफ़ दौड़ता हुआ गया। उसे इस प्रकार जल्दी जल्दी जाते देख सैकड़ों योद्धा यह जानने के लिये कि मामला क्या है? उस को चारों ओर से घेरकर उसी तरफ़ गये।

द्रोण के पास पहुँच कर दुःशासन ने उनसे भीष्म के मरने की बात कही। इस महाअमङ्गल समाचार को सुनते ही द्रोणाचार्य एकायक मूर्च्छित होकर रथ पर गिर पड़े। होश आने पर उन्होंने दूत द्वारा अपने सेनाविभाग को तत्काल युद्ध बन्द करने के लिये आज्ञा दी। तब पाण्डवों ने भी शंखध्वनि करके उस दिन का युद्ध समाप्त किया।

युद्ध बन्द होने पर दोनों दलों के सैनिक लोग अपने अपने कवच उतार कर और हथियार रख कर भीष्म की शरशय्या के पास आये और बड़े आदर से भीष्म को प्रणाम करके उन्हें चारों तरफ़ से घेर कर खड़े हो गये।

सब को शोकाकुल खड़े देख कर महात्मा ने कुशल पूछा और बोले—

हे कौरव, पाण्डव वीरो! आप का स्वागत है। आप के दर्शनों से हमें बड़ा आनन्द हुआ, कुछ देर तक ठहर कर भीष्म फिर बोले—

हे नरेश वृन्द! हमारे सिर के नीचे खाली है और वह लटक रहा है। इससे हमारे लिये पवित्र तकिया दीजिये।

सुनते ही दुर्योधन आदि राजाओं ने कोमल कोमल बहुमूल्य तकिये ला दिये। परन्तु भीष्म ने उन्हें न लेकर अर्जुन की तरफ़ देखा और कहा—

हे पार्थ! यहाँ जैसे उपधान की आवश्यकता है, उसे दो।

आँखों में आँसू भरे हुए अर्जुन ने पितामह के मन की बात जान ली। उन्होंने गाण्डीव उठा कर भीष्म के मस्तक के नीचे तीन बाण मारे। वे सिर और ज़मीन के बीच ठहर गये। बाणों ने उत्तम तकिया का काम दिया। जैसी शरशय्या थी वैसी ही शरों की उत्तम तकिया बन गयी। भीष्म यही चाहते थे। ऐसी तकिया पाकर वे बहुत सन्तुष्ट हुए और अर्जुन को हृदय से आशीर्वाद दिया। उन्होंने कहा—हे अर्जुन! यदि तुम हमें उचित उपधान न दे सकते, तो हम तुम्हें अवश्य शाप दे देते।

इसके बाद शरीर के भीतर धँसे हुए बाणों और दूसरे प्रकार के अस्त्रों को निकालने और मरहम पट्टी करनेवाले बहुत से कुशल वैद्य बुलाये गये। वे लोग नाना प्रकार के यन्त्र और दवाएँ आदि लेकर भीष्म के पास उपस्थित हुए। उन शल्योद्धारक कुशल वैद्यों को देखकर भीष्म बोले—

हे दुर्योधन! तुम इन लोगों का अच्छी तरह आदर सत्कार करके बिदा करदो। क्षत्रियों को जिस गति की वाञ्छा होती है, उसी गति को हम प्राप्त हुए हैं। हमारे लिये औषधोपचार की आवश्यकता नहीं। हमारी मृत्यु हो जाने पर इसी शरशय्या के साथ हमारे शरीर को दग्ध करना। जिस समय घायल होकर हम युद्ध में गिरे हैं उस समय सूर्य दक्षिण दिशा में थे। हमने पिता से वरदान पाया है बिना इच्छा के हमारी मृत्यु न होगी। अतएव सूर्य जब तक दक्षिण दिशा को न छोड़ देंगे तब तक हम शरीर न छोड़ेंगे।

शल्य वैद्यों के चले जाने पर भीष्म ने दुर्योधन से कहा—हे पुत्र! अब तुम्हें क्रोध का त्याग करदेना ही उचित है। हम हृदय से चाहते हैं कि हमारे मरने ही से युद्ध समाप्त हो जाय। हम चाहते हैं कि हमारी मृत्यु के अनन्तर प्रजा को शान्ति सुख मिले। राजा लोग प्रसन्न होकर परस्पर एक दूसरे को गले से लगावें, पिता पुत्र से मिले, भाई भाई से मिले और कुटुम्बी कुटुम्बियों से मिलें। इससे हे राजन्! तुम ईर्ष्या द्वेष छोड़ मन की मलिनता दूर करदो। प्रसन्न हो कर पाण्डवों को आधा राज्य देकर उनसे सन्धि कर लो।

शस्त्र के गहरे घाव लगने के कारण भीष्म पितामह बिकल हो रहे थे। इससे और अधिक न बोल सके। उन्होंने आखें बन्द करली और योगियों की तरह प्राणों को ब्रह्माण्ड में खींच कर चुप हो रहे। पाण्डवों, कौरवों और अन्य राजा लोगों ने तीन बार उनकी प्रदक्षिणा करके प्रणाम किया। फिर उनके चारों तरफ़ खाईं खोद कर और सन्तरी मुक़र्रर करके सब लोग उदास मन अपने अपने डेरों में लौट आये।

जिस मनुष्य की मृत्यु निकट होती है उसे दवा नहीं अच्छी लगती। ठीक यही हाल दुर्योधन का हुआ। उन्हें महात्मा भीष्म का उपदेश बिलकुल ही नहीं रुचा।

रात बीतने पर कौरव और पाण्डव दल के प्रधान प्रधान पुरुष फिर महात्मा भीष्म के निकट गये। हस्तिनापुर से भी बहुत से स्त्री पुरुष आये। सबने चन्दन फूल से उनकी पूजा की। प्रणाम करके सबके बैठ जाने पर महात्मा भीष्म ने आँखें खोलीं, और बहुत धीरे से उन्होंने पीने के लिये पानी माँगा सब लोग चारों ओर दौड़ पड़े। अनेक प्रकार की खाने पीने की सामग्री और ठंढा जल लाया गया। परन्तु इन चीज़ों से पितामह को सन्तोष न हुआ। उन्हों ने कहा—अर्जुन कहाँ हैं? जल्दी हमें शीतल जल देकर शान्त करें। अर्जुन तुरन्त उठे और उनकी प्रदक्षिणा करके उनके दाहिनी ओर गये। वहाँ जाकर उन्हों ने अपने वारुणास्त्र से पाताल तक छेद दिया। जिस से उत्तम शीतल अमृत के समान दिव्य जल धारा निकली उसका पान करके महात्मा भीष्म अत्यन्त सन्तुष्ट और प्रसन्न हुए। उन्हों ने अर्जुन से कहा—

बेटा! तुम्हारे समान धनुर्धर पृथ्वी में दूसरा नहीं है। तुम्हारी कीर्ति पृथ्वी में सदा सूर्य के समान प्रकाशित रहेगी। परशुराम, हम, व्यास, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, विदुर, सञ्जय ने बार बार धृतराष्ट्र के पुत्रों को समझाया, पर उन दुरात्माओं ने कुछ भी ध्यान न दिया। अब कुछ ही दिन में दुर्योधन बन्धु बान्धवों के साथ संग्रामभूमि में शयन करेगा। इतना कह कर वे फिर चुप हो गये और आँखें मूँद लीं।

भीष्म को ध्यानावस्थित देख कर सब लोग अपने अपने शिविर में लौट आये इधर महावीर कर्ण ने जब भीष्म की शरशय्या का हाल सुना, तब वे पहला वैर भूल गये और तुरन्त उनके पास आकर उपस्थित हुए। आँखें बन्द किए हुए लोहू से सराबोर आखिरी शय्या पर लेटे कुरु पितामह को देख कर दयावान् कर्ण का कण्ठ भर आया। वे हाथ जोड़ कर बोले—

हे महाबाहो! योगी, कुरुश्रेष्ठ! आपकी आँखों के सामने होने पर आप सदैव जिस पर अप्रसन्न होते थे, वही राधा का पुत्र कर्ण आपको प्रणाम करता है।

यह बचन सुनकर पितामह ने बड़े कष्ट से आँखें खोलीं। उन्होंने देखा कि कर्ण के सिवा यहाँ और कोई नहीं है। तब उन्हों ने सन्तरियों को दूर हटा कर कर्ण को पिता की तरह दाहने हाथ से छाती से लगाया और बड़े प्रेम से इस प्रकार बोले—

हे वत्स! हम से नारद और व्यास ने कहा है कि तुम राधा के लड़के नहीं, किन्तु कुन्ती के गर्भ से उत्पन्न सूर्य भगवान् के पुत्र हो। तुम्हारे समान शीलवान् और दानी दूसरा नहीं है, क्षात्रधर्म में तुम्हारी प्रौढ़ता प्रसिद्ध है। तुम अर्जुन के समान धनुर्धर और सब अस्त्रों के ज्ञाता हो। हे पुत्र! हम द्वेष अथवा डाह वश कभी तुम से कोई बात नहीं कहते थे। तुम पांडवों का विरोध करते थे, इसलिये हम कभी कभी कठोर वचन कह कर तुम्हें राह पर लाने का यत्न करते थे। हम चाहते थे कि तुम्हें अपने स्वरूप का—अपने तेज का ज्ञान हो जाय। तुमने भी जो पांडवों को कटुवचन कहकर

दुर्योधन के साथ कुमार्ग पकड़ लिया था उसमें केवल संगदोष कारण था। इन्हीं कारणों से हम तुम पर कुछ रुष्ट रहा करते थे, परन्तु आज वह बिलकुल नष्ट हो गया। हे वीर शिरोमणि! पौरुष और प्रयत्न की अपेक्षा भाग्य ही बलवान् है। इसलिये कुल को नष्ट करनेवाले अनर्थकारी युद्ध से क्या लाभ है? तुम अपने सहोदर भाइयों से मेल करके प्रेम बढ़ाओ और अब कुल की रक्षा करो। क्योंकि तुम्हारे मिलने से सब मिल जायँगे और सारा बखेड़ा दूर हो जायगा। हे पुत्र! हमारे प्राणत्याग के साथ साथ इस महायुद्ध की भी समाप्ति कर डालो।

कर्ण ने कहा—हे पितामह! आपने जो कुछ कहा, वह निस्सन्देह सत्य है। पर यह भी सुन लीजिये, कुन्ती ने पैदा होते ही हमें त्याग दिया। सूत अधिरथ ने हमें पड़ा देख दया करके बड़े प्रेम से हमारा लालनपालन किया। इसके बाद दुर्योधन की कृपा से हम बड़े हुए। हमारे ही कारण इस विषम वैर की आग जली है। जैसे पाण्डवों के कृष्ण हितैषी हैं, वैसे ही हम कौरवों के हितैषी प्रसिद्ध हैं। इस बात का अन्त तक पालन करना हमारा धर्म है। भवितव्यता अवश्य प्रबल होती है, वह किसी के टाले नहीं टलती। किन्तु फल चाहे जो हो, पाण्डवों के साथ युद्ध होना अनिवार्य है। इस से आप हमें अर्जुन के साथ युद्ध करनेकी आज्ञा दीजिये। युद्ध-भूमि में प्राण विसर्जन करना क्षत्रियों का धर्म है। हे तात! अज्ञानतावश आज तक हमने जो कटुवचन आप को कहे हैं उन्हें बालक जान कर आप क्षमा कर दें।

तब पितामह ने कहा—हे कर्ण! यह दारुण वैर मेट देना यदि बिलकुल ही असम्भव हो तो हम आज्ञा देते हैं कि स्वर्गप्राप्ति की इच्छा से अहङ्कार छोड़ कर युद्ध करो। हमने पहले ही से इस युद्ध के रोकने की बहुतकुछ चेष्टा की, पर सब व्यर्थ गई। जाओ, अब तुम क्षत्रियधर्म के अनुसार युद्ध ही करो। यह कह कर महात्मा ने फिर आँखें मूद लीं। कर्ण भीष्म को प्रणाम कर अपने रथ पर सवार हो दुर्योधन के पास गये।

द्रोण पर्व

द्रोण युद्ध और अभिमन्यु बध

महात्मा भीष्म का दर्शन करके कर्ण कौरवों की सेना में लौट आये। वहाँ भीष्म के बिना अनाथ हो कर सब कौरव कर्ण, कर्ण, पुकार रहे थे। कर्ण के आ जाने पर सब राजाओं ने एक स्वर से कहा—

धनुर्धर कर्ण भीष्मपितामह के समान महारणधीर वीर हैं। उन्होंने महात्मा परशुराम से अस्त्रविद्या सीखी है। भीष्म के युद्ध करने तक उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि हम युद्ध न करेंगे। उसी प्रतिज्ञा के अनुसार उन्होंने आजतक अपना युद्ध स्थगित रक्खा। अर्जुन के पराक्रम से हम लोग बहुत भयभीत हो गये हैं। इसलिये हे कर्ण! अब आपही पाण्डवों से हम लोगों की रक्षा करें।

तब कर्ण ने उत्तर दिया। हे नरेश वृन्द! बुद्धि, बल और धर्म में अद्वितीय महात्मा भीष्म के मारे जाने पर कौरवी दल में अब तो हमें कोई वीर नहीं दिखाई पड़ता। महावीर अर्जुन का मुक़ाबला करनेवाला कोई वीर नहीं रह गया। परन्तु मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि महात्मा भीष्म के समान ही जी जान से पाण्डवों से युद्ध करूँगा। मुझे पूर्ण विश्वास है कि मैं पाण्डवों पर विजयी होकर दुर्योधन की मित्रता का ऋण चुकाऊँगा। यह कह कर कर्ण ने कवच और अस्त्र शस्त्र धारण किये।

कर्ण को अस्त्र शस्त्र धारण किये हुए देखकर दुर्योधन बहुत प्रसन्न हुए उन्होंने कहा—

हे कर्ण! अब तुम बताओ कि शत्रुओं से किस प्रकार युद्ध करें भीष्म के बिना हमारी सेना अनाथ होगई थी; उसकी रक्षा का भार तुम्हारे ग्रहण करने से इस समय हम उसे सनाथ समझते हैं। अतएव तुम्हीं निश्चय करो कि अब क्या करना चाहिये। क्योंकि बिना सेनापति के सेना की वही दशा होती है, जैसे बिना पतवार की नाव।

कर्ण ने कहा महाराज! यहाँ जितने राजा एकत्रित हैं, वे सभी बुद्धिमान्, बली और धैर्यवान् हैं जो आपको रुचै उसे ही सेना पति बनाइये। परन्तु सर्वमान्य, वृद्ध, रणधीर इस समय आचार्य द्रोण हैं। वे ही सेनापति बनाये जाँय तो बहुत उत्तम हो। किसी दूसरे के सेनापति होने पर आपस में ईर्ष्याद्वेष बहुत बढ़ेगा और द्रोणाचार्य के चुने जाने पर सबको सन्तोष होगा।

इसी सिद्धान्त को निश्चित करके दुर्योधन ने अन्य राजाओं पर प्रगट किया। उन लोगों ने भी इस बात का समर्थन किया। तब सेना के बीच में खड़े हुए आचार्य द्रोण से दुर्योधन ने कहा—

हे आचार्य! आप सर्वपूज्य ब्राह्मण हैं; जन्म भी अपने बड़े ही विमल बंश में पाया है, बुद्धि, वीरता और चतुराई में भी आप सबसे श्रेष्ठ हैं। जैसे इन्द्र देवताओं की रक्षा करते हैं, वैसे ही आप हमारी रक्षा करें। आप सेनापति होकर, देवताओं के आगे स्वामिकार्तिक की तरह हमारे आगे आगे चलें।

दुर्योधन की बात समाप्त होते ही राजा लोगों ने सिंह नाद करके दुर्योधन की प्रसन्नता बढ़ाते हुए द्रोणाचार्य का जय जय कार किया। सैनिकों का आनन्द सूचक कोलाहल बन्द होने पर आचार्य द्रोण ने कहा—

हे राजन् ! हम तुम्हारे यश के लिये सेनापति का पद स्वीकार करते हैं, हम अपने बल बुद्धि भर अवश्य पाण्डवों के साथ युद्ध करेंगे । अपने बाणों की वर्षा से हम पाण्डवों को विवश कर देंगे; किन्तु धृष्टद्युम्न हम से अवध्य हैं ।

इसके अनन्तर द्रोणाचार्य को सेनापति के पद पर नियत करने का मङ्गल कार्य अर्थात् अभिषेक आदि हो चुकने पर कौरवों ने फिर बाजे और शंख बजा कर हर्ष प्रगट किया । पुण्याह और स्वस्तिवाचन हुआ । ब्राह्मणों ने वेद पाठ किया । बन्दीजनों ने स्तुति गान किया । द्विजों ने जय जय कार किया । सेनापति नियत होने पर द्रोणाचार्य का इस प्रकार बहुत अच्छी तरह सत्कार किया गया । सेनापति का पद प्राप्त होने पर द्रोणाचार्य ने सैनिकों के सामने दुर्योधन से कहा—

महाराज ! कौरवों में श्रेष्ठ भीष्म के बाद ही हमें सेनापति बनाकर आपने हमारा जो इतना आदर किया उसके बदले कहिये इस समय हम आप का कौन सा अभिलाषित काम करें ? आप इच्छानुसार वरदान माँगें ।

कर्ण और दुःशासन आदि से सलाह करके राजा दुर्योधन ने कहा—

हे आचार्य ! यदि आप हमें वरदान देना चाहते हैं तो रथियों में श्रेष्ठ युधिष्ठिर को जीता पकड़ कर हमारे पास ले आइये ।

द्रोणाचार्य ने कहा—राजा युधिष्ठिर को धन्य है, जिसके वध की अभिलाषा न रख कर आप भी पकड़ने के लिये कहते हैं । युधिष्ठिर का धर्मप्रेम धन्य है, शत्रु भी जिसकी हितकामना ही करता है । धर्मराज वास्तव में अजात शत्रु हैं, उनका शत्रु आज तक नहीं पैदा हुआ । हे दुर्योधन ! देखो, अन्त तक वे अपना राज्य ले कर सुलह करने को तैयार थे ।

दुर्योधन यह सुन कर अपने दिल की बात न छिपा सके । वे आचार्य से बोले—हे गुरो ! कपट छिपाये से नहीं छिपता, वह आप ही आप प्रकट हो कर प्रसिद्ध हो जाता है । युधिष्ठिर को मार डालने की हमारी इच्छा नहीं, उन्हें मारने से हमारी कार्यसिद्धि न होगी । उन का नाश होने से अर्जुन अवश्य ही हम लोगों का नाश कर डालेंगे, इस में सन्देह नहीं । किन्तु युधिष्ठिर को अपने बश में कर लेने से हम फिर उनके साथ जुआ खेलेंगे और उनसे प्रतिज्ञा करा कर उन्हें बन में भेज देंगे । उन के जाने पर भीम आदि भी उनका साथ देंगे और बहुत दिनों के लिये हमारा मतलब सिद्ध हो जायगा ।

दुर्योधन के इस कुटिल अभिप्राय को जान कर द्रोणाचार्य मन ही मन उन से बहुत अप्रसन्न हुए । उन्होंने दुर्योधन को बरदान तो दिया; पर युधिष्ठिर को बचने के लिये जगह रख छोड़ी । उन्होंने कहा—

हे राजन् ! यदि युधिष्ठिर के साथ रह कर अर्जुन युद्ध न करेंगे, तो हम अवश्य उन्हें पकड़ सकेंगे । क्योंकि अर्जुन के रक्षा करते रहने पर उनको पकड़ लेना हमारी शक्ति के बाहर की बात है । शस्त्रविद्या में हम अर्जुन के गुरु अवश्य हैं, पर देवताओं से अस्त्र प्राप्त करने के कारण अब वे हमसे बढ़ गये हैं । तिस पर केशव उनके सहायक हैं । हाँ, यदि तुम अर्जुन को कहीं दूसरी जगह हटा सको और युधिष्ठिर यदि भाग न जायँ, तो हम तुम्हारी इच्छा पूर्ण करेंगे ।

इसके बाद द्रोणाचार्य 'शकट व्यूह' बनाकर रणभूमि में आये । पाण्डव लोग भी 'क्रौञ्च व्यूह' बनाकर डट गये । जासूसों के द्वारा द्रोणाचार्य और दुर्योधन की बातचीत सुनकर पाण्डव लोग सावधान हो गये । अर्जुन सदा युधिष्ठिर के साथ रहे ।

दोनों ओर शंख दुन्दुभी बजने लगी। घोरयुद्ध आरम्भ होगया। कृप, कृतवर्मा और दुःशासन आदि वीर द्रोण की रक्षा करने के लिये उनकी बाईं ओर नियत किये गये। जयद्रथ, कलिङ्ग नरेश और धृतराष्ट्र के पुत्र उनकी दाहिनीं तरफ़ रहे। मद्रनरेश के साथ कर्ण और दुर्योधन आगे हुए।

कर्ण सब के आगे चले। सिंह चिन्हित, सूर्य के समान चमकदार उनकी पताका कौरवों के सैनिकों का आनन्द बढ़ाते हुए फहराने लगी। कर्ण को अपने आगे देखकर कौरव लोग भीष्म का अभाव भूल गये। सहज शत्रु कर्ण और अर्जुन का आमना सामना होगया।

बन में आग जैसे पेड़ों को जलाती हुई चली जाती है, उसी तरह, चारों तरफ़ तेज़ी से घूमनेवाले सोने के रथ पर सवार द्रोण युद्ध आरम्भ करके पाण्डवों की सेना का नाश करने लगे। बार बार गरजनेवाले मेघों से हवा के झोकों के साथ पत्थरों की वर्षा की तरह द्रोण के बाणों की वर्षा से पाण्डवों का दल व्याकुल हो उठा। यह देखकर बहुत से पाण्डव वीरों के साथ युधिष्ठिर दौड़ पड़े और द्रोण की बाण वर्षा को रोकने लगे।

शकुनि और सहदेव से घोर युद्ध होने लगा। शकुनि ने तीखे बाणों से सहदेव की ध्वजा काट कर उनके सारथि को मार डाला। यह देखकर उन्होंने भी शकुनि के सारथि और ध्वजा का निपात कर दिया। फिर दोनों में घोर गदा-युद्ध होने लगा।

इधर धृष्टद्युम्न और द्रोण से तथा भीमसेन और विविंशति से महासमर आरम्भ हुआ। शल्य से नकुल, धृष्टकेतु से कृपाचार्य, सात्यकि से कृतवर्मा, विराट से सुशर्मा, द्रुपद से भगदत्त और शिखण्डी से भूरिश्रवा भिड़ गये।

अभिमन्यु को कौरवी दल का संहार करते देख कर जयद्रथ उनके समीप आये और खड्ग युद्ध करने लगे। बीर बालक अभिमन्यु के रणकौशल से जयद्रथ को विचलित देखकर शल्य भी उधर ही बढ़े। भीमसेन ने उन्हें बीच ही में रोक लिया और गदायुद्ध करने लगे। दोनों में ऐसा घोर युद्ध हुआ कि दोनों का शरीर लोहूलुहान हो गया। अन्त में दोनों ही मूर्च्छित होकर गिर पड़े। कृतवर्मा ने यह देख लिया और तुरन्त शल्य को अपने रथ पर बिठाकर युद्धभूमि से बाहर निकाल ले गये। इधर भीम सचेत होने पर उठ खड़े हुए और भयङ्कर गर्जना करके गदा हाथ में लिये हुए कौरवी सेना पर आक्रमण किया। पाण्डव लोग अपनी जीत से प्रसन्न होकर सिंहनाद करने और भीमसेन की सहायता करके कौरवी सेना को कँपाने लगे। ब्राह्मणों में श्रेष्ठ सेनापति द्रोणाचार्य ने देखा कि कौरव लोग बेतरह घबरा रहे हैं। इससे पहले तो उन्होंने उन्हें धीरज देकर कहा कि डरने की कोई बात नहीं; घबराओ मत। फिर क्रोध से लाल होकर वे पाण्डवी सेना में कूद पड़े और धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, नकुल, सहदेव आदि वीरों को अपने बाणों से विचलित करते हुए आगे बढ़े।

उन्होंने मोहनास्त्र से सब को मोहित कर दिया और जहाँ राजा युधिष्ठिर थे वहाँ पहुँचगये। युधिष्ठिर से उनका घोर संग्राम होने लगा। द्रोणाचार्य ने देखते ही देखते युधिष्ठिर के चक्ररक्षकों को मार गिराया और उनकी सेना का संहार करके युधिष्ठिर के शरीर को सैकड़ों बाणों से छेद दिया।

उस समय सेना में चारों ओर यह शोर मच गया कि युधिष्ठिर को द्रोणाचार्य पकड़ लेना चाहते हैं। यह ख़बर सुन कर कौरवी सेना आनन्द से फूल उठी। अर्जुन उस समय दूर युद्ध कर रहे थे। उन्होंने भी यह कोलाहल सुना। सुनते ही वे वहाँ से चल दिये। रास्ते में उन्होंने शूरवीरों के हाथ पैर, धड़, सिर आदि बहा ले जानेवाली रुधिर की नदी बड़ी जल्दी से पार की। फिर अपने रथ की

भयानक घरघराहट से दशों दिशाओं को कँपा कर और कौरवों को बड़ी निर्दयता से मार भगाकर तुरन्त ही वे युधिष्ठिर के पास पहुँच गये। उन्होंने उस समय इतनी बाण वर्षा की कि पृथ्वी, आकाश, दिशा, विदिशा, सब कहीं अन्धकार छा गया। हाथ पसारने से नहीं सूझता था। अर्जुन को देखकर द्रोण ने युधिष्ठिर को पकड़ने की आशा छोड़ दी, वे अपना रथ लेकर अपनी सेना में लौट आये।

उसी समय सायङ्काल भी हो गया। द्रोणाचार्य ने लाचार होकर अर्जुन के द्वारा परास्त की गई कौरव सेना को युद्ध बन्द करने की आज्ञा दी। पाण्डव लोग भी प्रसन्न होकर अपने शिविर में लौट गये। जब रात में सेना अपने अपने डेरों में विश्राम करने लगी, तब द्रोणाचार्य ने दुर्योधन से कहा—

महाराज! हमने पहले ही आप से कह दिया था, कि जब अर्जुन युधिष्ठिर के पास न रहेंगे, तभी हम उन्हें पकड़ सकेंगे। अर्जुन के रहते इन्द्र भी युधिष्ठिर को नहीं पकड़ सकते, हमारी क्या गिनती है! यदि आप युधिष्ठिर को पकड़ना चाहते हैं, तो एक उपाय कीजिये। वह यह कि कोई वीर युद्ध के लिये उन्हें ललकारे और युद्ध के मैदान से उन्हें दूर हटा ले जाय। ऐसा होने से उस वीर को परास्त किये बिना अर्जुन कभी न लौटेंगे। इसी अवसर में हम सब को जीत कर युधिष्ठिर को पकड़ लावेंगे और तुम्हें सौंप देंगे। तब तुम अपनी इच्छानुसार विजय का प्रबन्ध करना।

यह सुन कर त्रिगर्तराज ने दुर्योधन से कहा—महाराज! अर्जुन हम लोगों को सदैव परास्त किया करता है। हम लोग कभी उससे नहीं जीतते। इस कारण हम लोग सदा ही क्रोध की आग से जला करते हैं। इसलिये हमी उसे युद्ध के अर्थ ललकारेंगे और मैदान के बाहर जाकर उससे युद्ध करेंगे। वहाँ उसे युद्ध में फँसा कर आप का हित साधन करेंगे। जब तक हम अर्जुन के साथ युद्ध करें आप युधिष्ठिर को पकड़ लीजियेगा। इससे आप का हित और हमारा यश दोनों ही बातें होंगी। इसके बाद त्रिगर्त्तराज ने अपने पाँच भाइयों को बुलाया। उनके अधिकार में जो सेना थी, वह भी इकट्ठी हुई। फिर उन्होंने आग को सामने रखकर स्वर्गप्राप्ति की इच्छा से यह शपथ की कि जब तक शरीर में प्राण रहेंगे, तब तक हमलोग अर्जुन के साथ युद्ध करेंगे।

बारहवें दिन युद्ध आरम्भ होने पर त्रिगर्त लोगों ने अर्जुन को युद्ध के लिये ललकारा और ललकारते हुए दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान किया।

तब रणोत्साही अर्जुन ने धर्मराज से कहा—

महाराज! संसप्तकगण युद्ध के लिये हमारा आह्वान कर रहे हैं। आप कृपा करके हमें उनसे युद्ध करने की आज्ञा दीजिये। आप जानते हैं कि युद्ध के लिये ललकारे जाने पर हम पीछा नहीं दिखा सकते, यही हमारा नियम है।

राजा युधिष्ठिर ने कहा—अर्जुन! द्रोणाचार्य ने हमारे सम्बन्ध में जो प्रतिज्ञा की है, वह तुमने सुनी ही है। उसके विषय में अपना मत देकर युद्ध के लिये जाओ।

अर्जुन ने कहा—महाराज! पाञ्चाल वीर सत्यजित बड़े रणधीर हैं। उनके जीते जी आप को कोई नहीं पकड़ सकता। यदि दैववश वे युद्ध में काम आ जायँ तो आप हमारे पास चले आवें।

इसके बाद अर्जुन ने धर्मराज के चरणों की बन्दना की और उनसे आशीर्वाद लिया। फिर वे भूखे सिंह की तरह त्रिगर्त्तों पर दौड़े। अर्जुन को जाते देख कर दुर्योधन बहुत प्रसन्न हुए। द्रोणाचार्य युधिष्ठिर को पकड़ने के लियेससैन्य आगे बढ़े। दोनों दलों के वीर बड़े वेग के साथ एक दूसरे से भिड़ गये।

इधर जब त्रिगर्त्तों ने देखा कि अर्जुन उनसे लड़ने आ रहे हैं, तब वे मारे ख़ुशी के उछलने कूदने और कोलाहल करने लगे। उन्हें इतना प्रसन्न देख अर्जुन ने कृष्ण से हँस कर कहा—

हे केशव ! मरने की इच्छा रखनेवाले इन त्रिगर्त्त लोगों को देखिये। रोने के बदले ये प्रसन्न हो रहे हैं। अथवा, रण में मरने से हमें स्वर्ग मिलेगा, यह समझ कर सचमुच ही ये लोग आनन्द मना रहे हैं। यह कह कर अर्जुन ने त्रिगर्त्तराज के सामने रथ खड़ा कराया और सोने के कामवाला अपना देवदत्त शंख बड़े ज़ोर से बजाया।

त्रिगर्त्तों ने भी शंख, भेरी, दुन्दुभी आदि बजाकर अर्जुन पर साथ ही बाण वृष्टि की। अर्जुन ने पन्द्रह हज़ार बाण बरसाकर सब के वार व्यर्थ कर दिये। बार बार अपने अस्त्रों से व्यर्थ होने पर संसप्तकगण ने भयङ्कर बाणों की वर्षा से अर्जुन के रथ को तोप दिया। अर्जुन ने क्षण भर में सब बाणों को व्यर्थ करके सब त्रिगर्त्तों के शरीर बाण से बेध दिये। अपनी सेना को अर्जुन के बाणों से अत्यन्त व्यथित देख कर त्रिगर्त्तराज ने कहा—

हे वीरो ! शपथ का विचार कर लो, संग्रामभूमि से भाग कर कौन मुँह लेकर कौरवों के सामने जाओगे। धीरज धर कर लड़ो। मरना एक दिन निश्चित है; फिर यशस्वी होकर क्यों न मरो।

यह सुन कर सारे त्रिगर्त्त वीर उत्तेजित हो उठे। ये सब मिलकर फिर युद्ध के लिये तैयार हुए। अर्जुन उन लोगों को लौटते देख कर कृष्ण से बोले—

हे कृष्ण ! ये त्रिगर्त्तवीर शरीर में प्राण रहते युद्धभूमि का त्याग न करेंगे। आज ये मरने मारने के लिये दृढ़प्रतिज्ञ हैं। इससे हम भी आप को अपने भुजाओं का बल और गाण्डीव का माहात्म्य दिखावेंगे।

तब कृष्णचन्द्र रथ चलाने में अद्‌भुत कौशल दिखाने लगे। कभी उन्होंने चक्र की तरह रथ को चक्कर दिया; कभी उसे आगे ले गये; तत्काल ही पीछे लौटा लाये, इस तरह कृष्ण ऐसी चतुराई से त्रिगर्त्त लोगों की सेना में रथ चलाने लगे कि अर्जुन का उत्साह दूना हो गया। उन्हों ने असंख्य बाणवृष्टि कर सामने के समस्त वीरों को यमपुरी भेज दिया।

त्रिगर्त्तों ने भी जीने की आशा छोड़ कर भयङ्कर युद्ध आरम्भ किया। उन्होंने इकट्ठे होकर अर्जुन के रथ को बाणों से ढँक दिया। कृष्ण, अर्जुन अथवा घोड़े कोई भी न दिखाई पड़े। यह दशा देख कर त्रिगर्त्त लोगों ने समझा कि कृष्ण और अर्जुन दोनों ही मारे गये। तब वे अपना अपना वस्त्र ऊँचा उठाकर हिलाने और हर्ष प्रकाश करने लगे। फिर कृष्णजी ने अत्यन्त खिन्न होकर अर्जुन से कहा—

हे अर्जुन ! तुम जीते ही मर गये, अथवा रथ से ही अलग हो गये ?

कृष्ण की यह बात सुनकर अर्जुन को बड़ा क्रोध आया। उन्होंने वायव्यास्त्र चलाकर सारे बाणों को आकाश में उड़ा दिया। बाणों के जाल के भीतर से कृष्ण और अर्जुन दोनों निकल आये। तब अर्जुन ने त्रिगर्त्तों को मारते मारते व्याकुल कर दिया। वे भल्लास्त्र द्वारा किसी का सिर, किसी का हाथ, किसी का पैर काट काट कर फेंकने लगे। रुण्ड मुण्ड से पृथ्वी पट गई। रुधिर की नदी बह चली।

इधर द्रोणाचार्य ने 'गारुड़व्यूह' बनाकर आक्रमण की तैयारी किया और पाण्डवों ने मुक़ाबले के लिये 'अर्धचन्द्र व्यूह' बनाया। तब युधिष्ठिर ने शङ्कित मन हो धृष्टद्युम्न से कहा—हे धृष्टद्युम्न ! द्रोणाचार्य जिस प्रकार हमें न पकड़ सकें वही उपाय करना चाहिये। धृष्टद्युम्न ने कहा—महाराज !

हमारे जीते जी आचार्य द्रोण आप को कभी न पकड़ पावेंगे। आज हम युद्ध में द्रोण का महत्त्व व्यर्थ कर देंगे। इस प्रकार कह कर धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्य से भिड़ गये। धृष्टद्युम्न को युद्ध करते देख दुर्योधन का भाई दुर्मुख उनसे भिड़ गया। धृष्टद्युम्न ने उसे परास्त कर के फिर द्रोण से युद्ध आरम्भ किया। आचार्य ने भी क्रुद्ध होकर प्रलय मचा दी। घुड़सवार, पैदल आदि एक दूसरे से घोर युद्ध करने लगे। इस प्रकार युद्ध करते हुए द्रोण युधिष्ठिर की ओर बढ़े, वे अपने प्रखर बाणों से व्यूहभेद करते हुए असंख्य वीरों को यमालय भेजने लगे। द्रोण को अपनी ओर आते देख युधिष्ठिर ने अपने बाणों से उनके रथ को तोप दिया। आचार्य ने उसे काट कर बड़ा उग्र रूप धारण किया। इससे पाण्डवी सेना में हाहाकार मच गया। उसी समय अपने धनुष को टङ्कारते हुए सत्यजित द्रोण के सामने आये और उन पर बाणवृष्टि करने लगे।

दोनों ही वीर मतवाले हाथी की तरह भिड़ गये। देखते ही देखते सत्यजित ने उनके अनेकों बाण काट कर द्रोण के सारथी और पार्श्वरक्षकों पर बहुतेरे बाण बरसाये। फिर उन्होंने द्रोण के घोड़े और सारथी को मार कर अपने तीखे बाणों से द्रोण के शरीर को वेध दिया। फिर तो द्रोणाचार्य के क्रोध का ठिकाना न रहा। उन्होंने अर्धचन्द्राकार बाण चला कर सत्यजित का वध कर डाला।

इसके बाद द्रोण ने पाण्डवी सेना में प्रलय मचा दी। अनेकों हाथी, घोड़े, योद्धाओं को मार कर पृथवी पाट दिया। वे असंख्य वीरों का संहार करते हुए धर्मराज की ओर बढ़े। भीमसेन उन्हें रास्ते ही में रोक कर युद्ध करने लगे। इतने ही में भगदत्त ने आकर भीम को ललकारा और घोर युद्ध आरम्भ कर दिया। भगदत्त जैसा वीर था, उसका हाथी भी वैसा ही प्रलय मचानेवाला था। उसने पाण्डवी सेना में बड़ी खलबली मचा दी। चारों ओर हाहाकार मच गया। अपनी सेना का आर्त्तस्वर और भगदत्त के हाथी का चिग्घाड़ सुन कर अर्जुन ने कृष्ण से कहा—

हे वासुदेव! जान पड़ता है भगदत्त इस समय हमारी सेना में प्रलय मचाये है। भगदत्त और उसका हाथी दोनों ही बड़े प्रबल हैं। इससे आप शीघ्र रथ हाँक कर वहाँ ले चलें नहीं तो आज वह हमारी सेना का नाश कर डालेगा।

अर्जुन को जाते देख कर संसप्तक गण ललकारने लगे, इससे अर्जुन को फिर लौटना पड़ा। उन्होंने लौट कर बचे हुए त्रिगर्त्तों को भी यमपुर भेज दिया। फिर वे रास्ते में अनेक वीरों का संहार करते हुए शीघ्र भगदत्त के पास पहुँच गये। उन्होंने वज्र के समान बाण बरसा कर भगदत्त की सेना को विचलित कर दिया। तब भगदत्त ने अर्जुन को मार डालने के विचार से अपना हाथी बढ़ाया। अर्जुन ने अपने बाणों की वर्षा से उसे आगे न बढ़ने दिया। कृष्णजी ने बड़ी शीघ्रता से रथ हाँक कर भगदत्त के हाथी की बाईं ओर कर दिया।

हाथी और उसके सवार को पीछे से मार डालने का अर्जुन के लिये यह अच्छा अवसर था। पर अधर्म समझ कर उन्होंने वैसा न किया। उधर महागज ने पाण्डवों की सेना का संहार आरम्भ कर दिया। इस पर अर्जुन को बड़ा क्रोध आया, हाथी पर लोहे की जाली की जो झूल पड़ी थी, उसे अर्जुन ने अपने तीखे बाणों से काट डाला और भगदत्त के फेंके हुए सारे अस्त्रों को रोक कर उन्हें बेतरह घायल कर दिया। तब भगदत्त ने अर्जुन के सिर पर भाले का प्रहार किया। उसके आघात से अर्जुन का किरीट टेढ़ा हो गया। अर्जुन ने किरीट को सीधा करके बड़े क्रोध में आकर भगदत्त से कहा—

हे प्राग्ज्योतिष नरेश! अब सब लोगों को तुम अच्छी तरह देख लो। तुम्हारा अन्त समय आ पहुँचा। हमारे किरीट को अपनी जगह से हटानेवाला बहुत देर तक जीता नहीं रह सकता।

यह सुन कर भगदत्त क्रोध से जल उठे। उन्होंने मन्त्र पढ़कर वैष्णव नामक अंकुश अर्जुन पर फेंका। कृष्ण ने देखा कि अर्जुन उससे अपना बचाव नहीं कर सकते। इससे उन्होंने अर्जुन को तुरन्त ही आड़ में कर दिया और अपने ही ऊपर उस अंकुश को ले लिया। कृष्ण की छाती पर वह वैजयन्ती की माला होकर शोभित होने लगा।

कृष्ण के इस काम को अनुचित समझ कर अर्जुन ने कहा—हे केशव! हमारे रहते आपने अपना प्रण क्यों छोड़ दिया? क्योंकि आपने युद्ध न करने की प्रतिज्ञा की थी। यदि हम अशक्त हों, या और किसी कारण से अपनी रक्षा न कर सकते हों, तो हमारी रक्षा करना आपका धर्म है। परन्तु इस समय तो हमारे हाथ में अस्त्र शस्त्र हैं और हम युद्ध कर रहे हैं; अतएव ऐसी दशा में आपको युद्ध में हस्ताक्षेप करना उचित नहीं।

यह सुनकर कृष्णजी ने हँसते हुए अस्त्र का प्रभाव बताया। उन्होंने कहा—हे पार्थ! सुनो, हमारी चार मुर्ति हैं—एक पृथ्वी पर उग्र तपस्या में लीन है, एक सत्-असत् का विचार करती है, एक लोक का आश्रय लेकर मायातीत हो अपने कर्म में लीन है, एक हज़ार चौकड़ी युग तक शयन करती है और फिर जाग कर प्रसन्नता के लिये संसार का विस्तार करती है। वह हमारा चौथा रुप ही संसार का नायक है। जो व्यक्ति वर देने के योग्य होते हैं उन्हें समय समय पर वर दिया करती है। इसी कारण एक समय पृथ्वी ने हम से वरदान माँगा कि देव दानवों से अवध्य हमारे एक पुत्र हो, वैसा ही हुआ। नरकासुर जन्मा। उसे हमने यह वैष्णव अंकुश दिया। उसी अस्त्र को भगदत्त ने पाया। त्रैलोक्य में इसका सहन करनेवाला कोई नहीं है। समय पाकर हमने नरकासुर का बध किया था। उन्हीं बातों को समझ कर हमने इसे व्यर्थ कर दिया। अब तुम प्रसन्नता पूर्वक अपने बाणों से भगदत्त का बध करो।

यह सुनकर अर्जुन ने अपने धनुष का टंकार किया। उन्हों ने बाणों की वर्षा से भगदत्त को व्याकुल कर दिया। बड़े तीखे बाणों को धनुष पर चढ़ा कर अर्जुन ने भगदत्त के महागज के मस्तक में मारा, वह उसे बज्र के समान लगा और धँस गया। भगदत्त ने हाथी को आगे बढ़ाने का उद्योग किया, पर वह बलवान् हाथी आर्त्तध्वनि करके गिरा और मर गया। फिर उसने आँख न खोली पुनः तुरन्त अर्जुन ने अर्ध चन्द्र बाण मार कर भगदत्त का सिर धड़ से अलग कर दिया। उसका शरीर भी पृथ्वी पर गिर गया धनुष बाण हाथ से छूट गये। भगदत्त का प्राण पखेरू उड़ गया।

इसके बाद अर्जुन ने पल भर में असंख्य वीरों को यमलोक भेज दिया। तब शकुनि के दो पुत्रों ने बड़ा घोर युद्ध किया। अर्जुन के बाणों से वे भी यमलोक को गये। इससे शकुनि बड़ा क्रुद्ध हुआ। वह माया युद्ध करने लगा। संसार में जितने प्रकार के अस्त्र हैं। वे सब अर्जुन पर गिरने लगे। भूत, पिशाच, सर्प, रीछ, शृगाल आदि भयङ्कर शब्द करते हुए अर्जुन की ओर आने लगे। देखते ही देखते अर्जुन ने दिव्यास्त्र चला कर शकुनि की सब माया दूर हटा दी। फिर वे शकुनि पर बाणों की वर्षा करने लगे। यह देख कर शकुनि ने तमोमयी माया का विस्तार किया। अर्जुन के रथ पर घोर अन्धकार छा गया। अर्जुन ने ज्योतिशस्त्र से उसका लोप कर दिया। इसी प्रकार जलमयी माया को भी व्यर्थ होने पर शकुनि घोड़े पर चढ़ कर भाग गया।

उस समय अर्जुन काल रुद्र के समान होकर कौरवी सेना का संहार करने लगे। कौरवी सेना अनाथ की तरह भाग चली। हाथी, घोड़ा, रथ, आदि लेकर सभी खिसक गये। कोई दुर्योधन के पास और कोई द्रोणाचार्य की शरण में जा छिपे।

इसी प्रकार युद्ध करते हुए अर्जुन सेना के दक्षिण भाग में गये ।

इधर द्रोणाचार्य सेना की यह दशा देख कर बहुत क्रोधित हुए। वे मन में युधिष्ठिर को पकड़ने का विचार करके उन्हें पकड़ने के लिये चले। उस समय ऐसा घमासान युद्ध हुआ कि पृथ्वी काँप उठी। द्रोण पाण्डवी सेना को चीरते हुए आगे ही बढ़ते गये। इसी बीच भीमसेन से उनका मुक़ाबला हो गया। उन्होंने द्रोणके सारे बाण व्यर्थ करके दुर्योधन, कर्ण और द्रोण को अनगिनती बाण मारे। बड़ा घोर युद्ध हुआ। अनेकों हाथी, घोड़े, रथी धराशायी हो गये। द्रोणाचार्य ने अनुपम रणकौशल दिखाया। इतने में अर्जुन संसप्तकों को जीत कर वहाँ आ गये। उन्होंने बाणों की वर्षा से चारों ओर पिँजड़ा बना दिया। अर्जुन के बाणों से विकल होकर कौरवी सेना भागी। कितने ही वीर त्राहि त्राहि करते हुए कर्ण की शरण गये।

कर्ण तुरन्त अर्जुन के पास पहुँचे, घोरयुद्ध आरम्भ हो गया। अर्जुन ने कर्ण के तीन भाइयों को मार गिराया। इतने में भीमसेन अपने रथ से कूद कर कर्ण के रथ पर जा विराजे। उन्होंने कर्ण को दस बाण मार कर उनके सारथी को घायल कर दिया। धृष्टद्युम्न आदि अन्य वीरों ने भी बहुत से कौरव वीरों को मार गिराया। कौरवी सेना इस आक्रमण से बड़ी बेचैन हुई। द्रोणाचार्य इस दिन भी सफलमनोरथ न हो सके। उन्हों ने वहाँ से हट जाना ही उचित समझा। सायङ्काल भी हो चुका था, इससे युद्ध बन्द हो गया। कौरव लोग चिन्तित होकर अपने शिविर में लौट गये। पाण्डव लोग विजय दुन्दुभी बजाते हुए अपने डेरों में आये।

तीसरे दिन सबेरे ही दुर्योधन उदास मन होकर द्रोणाचार्य से बोले—हे आचार्य! युद्ध में आप के कर्म से हमें बड़ा दुःख हो रहा है। आप हम पर और पाण्डवों पर समान प्रीति रखते हैं। इससे युद्ध में मृदुता दिखा रहे हैं और युधिष्ठिर को निकट में पाकर भी नहीं पकड़ते। क्या आप को अपनी प्रतिज्ञा भूल गई? यदि आप पकड़ना चाहें तो दिक्पाल भी पाण्डवों को नहीं बचा सकते।

द्रोण ने कहा—हे दुर्योधन! कृष्ण जिसके सहायक हैं उस पर विजय पाना असम्भव है। किन्तु आज प्रतिज्ञा करते हैं कि पाण्डवों के एक महारथी वीर का अवश्य बध करेंगे। आज हम ऐसा व्यूह बनावेंगे जिसमें जाकर कोई भी पाण्डव बीर नहीं बच सकता।

द्रोण की इन बातों से दुर्योधन को प्रसन्नता हुई। बचे हुए संसप्तक वीरों ने अर्जुन को ललकारा। फिर वे युद्ध करते हुए अर्जुन को दूर ले गये और वहाँ उन्हें घोर युद्ध में लगा रक्खा।

इधर द्रोणाचार्य ने अपने कहे अनुसार अभेद्य चक्रव्यूह की रचना की। कृतवर्मा, कर्ण आदि दस हज़ार महारथियों के साथ दुर्योधन को बीच में रक्खा। इस प्रकार विकट मोर्चे-बन्दी करके द्रोणाचार्य पाण्डवी सेना को विचलित करते हुए आगे बढ़े। वे पाण्डव दल को चीर कर युधिष्ठिर को पकड़ने की इच्छा से बराबर आगे ही बढ़ते गये। इस प्रकार द्रोण को अपनी ओर आते देख युधिष्ठिर ने उनके मुक़ाबले का भार अभिमन्यु पर सौंप कर कहा—

हे वत्स! देखो, आचार्य द्रोण ने चक्रव्यूह की रचना की है। तुम, अर्जुन, कृष्ण और प्रद्युम्न को छोड़ कर और कोई भी यहाँ ऐसा नहीं जो इसका भेद कर सके। इसलिये हे पुत्र! तुम्हीं इस काम को करो। इस समय वही काम करना चाहिये जिससे अर्जुन को हमारी निन्दा करने का अवसर न मिले।

अभिमन्यु ने कहा—माहाराज! आप के हित के लिये हम अवश्य व्यूह भेद करेंगे और

शत्रु की सेना का संहार कर भीतर घुस जायँगे। परन्तु वहाँ से बाहर निकलने की विधि हमें नहीं मालूम है। इससे जलती हुई आग में पतंगे की तरह इस विपद जनक व्यूह के भीतर घुसना क्या आप उचित समझते हैं?

युधिष्ठिर ने कहा—तुम यदि एक बार व्यूह को तोड़ कर भीतर घुस जाओगे तो तुम्हारे पीछे हम लोग भी घुस कर तुम्हारी रक्षा और कौरवों का नाश करेंगे।

भीमसेन ने कहा—हे पुत्र! तुम व्यूह को भेद कर रास्ता भर दिखा दो। हम तुम्हारे साथ रह कर महारथियों का निपात करेंगे। तुम्हारे साथ रास्ता देख लेने पर हम बाहर भीतर दोनों जगह गिने गिने वीरों का संहार करेंगे।

तब बालक अभिमन्यु ने अपने धनुष का टङ्कार किया और वीर रस से सनी हुई बात बोले—

हम अपने बाणों से शत्रु समूह का नाश करेंगे। व्यूह में हमारे प्रवेश को देखकर आप लोग प्रसन्न हों। फिर उन्होंने अपने सारथि से कहा—

हे सुमित्र! तुम द्रोणाचार्य की सेना के सामने हमारा रथ ले चलो।

अभिमन्यु के इस तरह आज्ञा देने पर सारथि बोला—हे राजकुमार! द्रोणाचार्य जीतने के योग्य वीर नहीं हैं। आप बहुत बुरा काम अपने ऊपर ले रहे हैं। आपने कठिन युद्ध कभी नहीं देखा है, इसीसे व्यूह का भेद करना आसान समझ रहे हैं। अभी आप बालक हैं, ऐसे साहस का काम अपने ऊपर न लें। समझ बूझ कर काम करना उत्तम होता है।

यह सुनकर अभिमन्यु ने हँसते हुए कहा—द्रोणाचार्य की किस वीरता पर तुम इतने भयभीत हो रहे हो? जिसके कृष्ण मामा, अर्जुन पिता हों उसे भय किस बात का? देवताओं के साथ ऐरावत हाथी पर चढ़ कर यदि इन्द्र भी आवें तो उनसे भी हम पीछे नहीं हट सकते। निःशंक होकर रथ ले चलो और हमारे पराक्रम को देखो?

सारथि अभिमन्यु की बात से लाचार हो गया। वह रथ हाँक कर द्रोणाचार्य के सामने चला। अभिमन्यु को आते देख कौरव वीर भिड़ गये। घोर युद्ध होने लगा। अन्य पाण्डव वीर भी अभिमन्यु के पीछे पीछे चले, पर जयद्रथ ने द्वार ही पर उनकी सारी चेष्टाएँ व्यर्थ कर दीं। सब ने मिल कर बहुत प्रयत्न किया, किन्तु पाण्डवों की एक भी न चली। महाबली जयद्रथ को हटा कर एक भी पाण्डव वीर व्यूह के भीतर न धँस सका, अकेले वीर बालक अभिमन्यु भीतर घुस गया। इसके बाद कौरवों ने टूटे हुए व्यूह को फिर सुधार लिया और अभिमन्यु को भीतर पाकर चारों तरफ़ से उन्हें घेर लिया।

तदनान्तर पहले दुर्योधन ही ने अभिमन्यु पर आघात किया, किन्तु प्रबल वीर अभिमन्यु का प्रचण्ड प्रताप दुर्योधन से न सहा गया। अभिमन्यु ने शीघ्र ही उनके नाकोंदम कर दिया। तब द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, कृप, कर्ण, शल्य और कृतवर्मा ने मिल कर दुर्योधन को अभिमन्यु के पंजे से छुड़ाया। शिकार का इस तरह जाल से निकल जाना अभिमन्यु से न सहा गया। मारे क्रोध के वे अधीर हो उठे और अपने तेज़ बाणों से सब के सारथियों और घोड़ों को व्याकुल करके उन महारथियों को उन्होंने वहाँ से शीघ्र ही मार भगाया। उन्हें इस तरह युद्ध के मैदान से पराङ् मुख देख अभिमन्यु ने बड़े जोर से सिंहनाद किया।

कुछ देर बाद अभिमन्यु को कुछ दूर पर शल्य दिखाई दिये। अभिमन्यु अपने विषम बाणों से उन्हें इतना घायल किया कि शल्य को मूर्च्छा आ गई। यह देखकर शल्य की सेना इस तरह भागी,

जैसे सिंह से पीछा किये जाने पर हिरन भागते हैं। शल्य का छोटा भाई उस समय वहीं था। उसने बड़े भाई को मूर्च्छित देख अभिमन्यु पर आक्रमण किया। अभिमन्यु का युद्धकौशल यहाँ तक बढ़ा-चढ़ा था कि उन्होंने शल्य के छोटे भाई उनके सारथि और उनके दोनों चक्ररक्षकों को एक ही दफे में मार गिराया।

तब हज़ारों योद्धा कोई घोड़े पर सवार होकर कोई रथ पर सवार होकर, कोई हाथी पर सवार होकर एक ही साथ 'मार मार' करते हुए अभिमन्यु पर दौड़े। परन्तु अभिमन्यु इससे ज़रा भी न डरे। उनमें से जो उन के सामने आया, उसे उन्होंने हँसते हँसते भूमि पर सदा के लिये सुला दिया। इसके बाद अर्जुनतनय अभिमन्यु ने युद्ध के मैदान में चारों ओर चक्कर लगाकर द्रोण, कर्ण, शल्य आदि सेनाध्यक्षों को अपने तीखे बाणों से बेधना आरम्भ किया। उस समय अस्त्रशस्त्र चलाने में अभिमन्यु ने अनुपम हस्तकौशल दिखाया। मालूम होने लगा कि एक ही समय में वे चारों तरफ़ युद्ध कर रहे हैं। यह देखकर द्रोणाचार्य बहुत प्रसन्न होकर कृपाचार्य से कहने लगे—

हे आर्य ! देखो, अर्जुन का पुत्र कैसा अद्भुत काम कर रहा है। ये पिता पुत्र दोनों ही धनुर्विद्या में अद्वितीय हैं। इनके समान रणपण्डित कोई नहीं। आज यह सम्पूर्ण कौरवी सेना का निपात कर डालना चाहता है।

द्रोणाचार्य की इन बातों से दुर्योधन क्रुद्ध होकर कर्ण आदि से कहने लगे—

हे नरेश वृन्द ! देखिये, अपने शिष्य अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु को आचार्य स्नेह के कारण नहीं मारना चाहते। यदि वे इसे मारने पर उद्यत होते तो यह बालक कभी न जीता बचता। द्रोण, अर्जुन के पुत्र की रक्षा करते हैं इसी से यह अपने को बड़ा बीर समझता है। इस मूर्ख का शीघ्र ही संहार कीजिये। वीरता विषयक इसका झूठा अभिमान दूर कर देना चाहिये।

यह सुन कर घमण्डी दुःशासन बोला—

सब लोग खड़े रह कर देखते रहें। जैसे राहु सूर्य को ग्रसता है, वैसे ही हम अभी अभिमन्यु का संहार करते हैं।

फिर दुःशासन ने अभिमन्यु को ज़ोर से ललकारा और बड़े क्रोध में आकर उन पर बाण बरसाना आरम्भ किया। अभिमन्यु और दुःशासन दोनों ही रथ युद्ध में प्रवीण थे। अतएव दोनों में बड़ा भीषण युद्ध होने लगा। कभी दाहिनी कभी बाईं तरफ़ होकर इधर से उधर मण्डलाकार चक्कर लगाते हुए अभिमन्यु और दुःशासन परस्पर एक दूसरे पर आघात करने लगे। बीर अभिमन्यु ने दुःशासन से कहा—

आज बड़े भाग्य से तुम हमें सामने मिले हो। सभा में पूजनीया द्रौपदी का वस्त्र खींच कर जो तुमने अपमान किया है और हमारे गुरुजनों को कटुवाक्य कहे हैं उन सब का बदला आज हम लिये लेते हैं।

इस प्रकार कह कर दुःशासन का नाश करने के लिये अभिमन्यु ने आग के सदृश तेजवाले बाण मारे। वे तीखे बाण दुःशासन की छाती में धँस गये। वह व्यथित होकर रथ पर गिर पड़ा और मूर्च्छित हो गया। दुःशासन की यह दशा देख कर सारथि उसे मैदान से भगा ले गया।

दुःशासन की दुर्दशा देख कर दुर्योधन ने कर्ण से कहा—जैसे सिंह गजेन्द्रों का विदारण करता है वैसे ही अभिमन्यु हमारे दल में घुस कर सैनिकों का नाश कर रहा है। प्रचण्ड सूर्य के समान वह आज ही प्रलय मचा देना चाहता है। हे कर्ण ! तुम शीघ्र उसका बध करो।

यह सुनकर कर्ण ने वीर बालक का मुकाबला किया। पर वे क्षणमात्र भी उसके तेज को न सह सके। संग्रामभूमि से विमुख हो गये।

इस प्रकार कर्ण को भी पराङ्मुख करके अभिमन्यु भीषण बाणों की वर्षा करने लगे। उन्होंने अनगिनती वीरों को यमालय भेज दिया। कालरुद्र के समान वीर अभिमन्यु धनुष बाण लेकर समरभूमि में घूमने लगे।

इधर अन्य भाइयों के साथ युधिष्ठिर, सात्यकि, धृष्टद्युम्न, द्रुपद, विराट, धृष्टकेतु आदि वीरों ने भीतर घुसने का प्रयत्न किया। पर जयद्रथ ने फाटक पर ही रोक दिया। कोई कुछ न कर सका। अकेले बालक अभिमन्यु ने घुस कर सारी कौरव सेना को पीड़ित कर दिया।

धीरे धीरे अभिमन्यु ने युद्ध में बड़ा ही भीषण रूप धारण किया। कर्ण आदि वीरों को भगाकर जब अभिमन्यु ने दुर्योधन के पुत्र लक्ष्मण और मद्रराज के पुत्र रुक्म आदि बहुत से राजकुमारों और कोशल देश के राजा महारथ बृहद्बल को मार गिराया, तब कौरव लोग बेतरह घबरा कर द्रोणाचार्य की शरण गये।

कर्ण ने कहा—हे आचार्य! अर्जुन का पुत्र अभिमन्यु इन्द्र के समान रणपण्डित मालूम होता है। यह रुद्र के समान बाणों की वर्षा करके क्रम क्रम से सब को मार डालना चाहता है। अब आप वृथा धर्म का त्याग कर शीघ्र इसे मारिये।

द्रोणाचार्य अपने प्रिय शिष्य अर्जुन के पुत्र का अद्भुत युद्धकौशल देख कर प्रसन्न हो रहे थे। कर्ण की बात सुन कर उन्होंने कहा—

हे वीरो! इस कुमार अभिमन्यु का रणकौशल देखो। आज यह अद्भुत काम कर रहा है। जब से युद्ध आरम्भ किया है, तब से धनुष को मण्डलाकार बनाकर अनवरत बाणों की वर्षा कर रहा है। कौरव दल का कोई वीर नहीं कि जिसका पैर न उखड़ गया हो। मारे बाणों के उसने हमें भी व्यथित कर दिया है; फिर भी उसकी रणचातुरी से हमें प्रसन्नता हो रही है।

कर्ण ने कहा—हे आचार्य! हमें तो ऐसा जान पड़ता है कि यह आज ही सब कौरवों का संहार कर अपने पिता को विजयी बना देगा, अपने धर्म के विचार से बड़ा धैर्य्य धारण कर हम यहाँ किसी तरह अड़े हुए हैं। अब तो अभिमन्यु के बाण की चोट से हमारे प्राण निकलने चाहते हैं।

तब द्रोणाचार्य्य ने विचार कर कहा—हे कर्ण! हमने प्रसन्न हो कर अर्जुन को एक कवच दिया था, जो न टूट सकता, न फूट सकता और न कट सकता है। वही कवच अभिमन्यु पहने हुए है। इससे उस पर चलाये हुए तुम लोगों के सम्पूर्ण अस्त्र व्यर्थ हो रहे हैं। यदि उसे जीतने की इच्छा है तो तुम लोग रथ पर चढ़ कर युद्ध करना बन्द करदो। सब लोग मिल कर पहले अभिमन्यु के हथियार छीन लो, फिर उसे रथ से उतार दो। तब उसके साथ युद्ध करो। अभिमन्यु के हाथ में अस्त्र रहते उसे परास्त कर देव दानवों की शक्ति के बाहर की बात है, तुम लोग किस गिनती में हो।

यह सुन कर सब ने मिल कर एक साथ ही बालक अभिमन्यु पर आक्रमण किया। कर्ण ने उनका धनुष काट गिराया, भोजराज ने रथ घोड़ों को मार डाला, कृपाचार्य्य ने दोनों पार्श्वरक्षकों की सफ़ाई कर डाली, उसी प्रकार सारथि का भी संहार किया गया। इस तरह अभिमन्यु को विरथ और अस्त्र रहित करके कौरवों ने बड़ी ख़ुशी मनाई और फिर उस अकेले बालक पर बाण बर-

खाने लगे । तब अभिमन्यु ढाल तलवार लेकर कूद पड़े और बड़े ज़ोर से सिंहगर्जन करके बिजली की तरह तलवार घुमाने लगे। इससे क्षण ही भर में असंख्यों बीर कट कर धराशायी हो गये। इतने ही में द्रोण ने उनकी तलवार को और कर्ण ने ढाल को काट डाला । फिर अभिमन्यु रथ का चक्का उठा कर निर्भयता के साथ द्रोण पर दौड़े। उस समय वीरों से घिरे हुए रुधिर से लथपथ अल्पवयस्क बालक अभिमन्यु के रूप ने बहुत ही अनूपशोभा धारण की। कौरव दल के राजा लोग उस दिव्य तेजस्वी बालक को देख कर घबरा गये और सब ने एक ही साथ अस्त्रों की बर्षा करके अभिमन्यु के चक्र के टुकड़े टुकड़े कर दिये ।

उस समय दुःशासन के पुत्र ने हाथ में गदा लेकर अभिमन्यु पर आक्रमण किया और उनके माथे पर गदा मारी। अद्वितीय वीर अभिमन्यु की इह लोक लीला समाप्त हो गई। वे पृथ्वी पर पड़े हुए ऐसे मालूम होने लगे मानों असंख्यों हाथियों को मार कर सिंह का बच्चा सो गया हो। उस दिन अभिमन्यु अपने हाथों दस हज़ार योद्धाओं का संहार कर सदा के लिये धराशायी हो गये।

उस समय कौरवों की प्रसन्नता की सीमा न रही। पर कितने ही बुद्धिमान् कौरवों ने कहा कि यह अधर्म युद्ध हुआ है। उधर पाण्डवों को अभिमन्यु के मृत्यु-समाचार से महाशोक हुआ। सूर्यास्त हो जाने के कारण दोनों ही दल अपने अपने शिविर में लौट गये।

जयद्रथ का बध

रात में अत्यन्त दुखी होकर राजा युधिष्ठिर अन्य राजाओं के साथ बैठे हुए अभिमन्यु के गुणों का वर्णन करके विलाप कर रहे थे। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। उसी समय व्यास जी कृपा करके वहाँ आ गये। धर्मराज ने उन्हें सत्कार से बैठा कर अभिमन्यु के बध की सारी कथा कह सुनायी और फिर विलाप करने लगे।

तब व्यासजीबोले—हे धर्मराज ! यह मृत्युलोक प्रसिद्ध है। शरीर धारण कर जो यहाँ आता है, समय आने पर वह अवश्य मृत्यु के वश होता है।

फिर धर्मराज के मृत्यु विषयक प्रश्न करने पर व्यासजी ने कहा—

हे राजन् ! सुनिये, देवर्षि नारद ने इस विषय में अकम्पन राजा से जो कथा कही थी, वह मैं तुम से कहता हूँ।

जब ब्रह्मा ने सृष्टि रचना की, जीवों के समूह से पृथ्वी भर गई। दिन दिन उत्पत्ति बढ़ती गई पर मृत्यु किसी की न हुई। तब पृथ्वी भार से व्याकुल होकर ब्रह्मा के पास गई और उन से अपना दुःख कह सुनाया। यह सुन कर ब्रह्मा को बड़ा क्रोध आया। उनके नेत्रों से बड़ी विकराल ज्वाला निकलने लगी। उससे भयभीत होकर सारा संसार जलने लगा।

यह दशा देख कर शिवजी ब्रह्मा के पास गये और कहने लगे—हे विधाता ! बड़े प्रयत्न से जिसका निर्माण किया, उसे इस प्रकार नष्ट कर डालना उचित नहीं। आप अपने क्रोध को रोक कर क्षमा करें।

शिवजी की बातों से ब्रह्मा की क्रोधाग्नि शान्त तो हुई, किन्तु उस ज्वाला से एक स्त्री प्रगट हुई। जो श्याम वर्णा, रक्तनेत्रा, कुण्डल आदि आभूषणों को धारण किये हुए थी। वह ब्रह्मा के दाहिनी ओर जाकर खड़ी हो गई। तब ब्रह्मा ने उससे कहा—

हे मृत्यु! तुम जाकर क्रम से जीवों का संहार करो, इसी लिये हमने तुम्हें प्रगट किया है।

यह सुन कर मृत्यु ने बहुत रुदन किया। फिर अपने निन्दित कर्म को विचार कर उसने ब्रह्मा से कहा—

हे नाथ! मुझे क्रूर कर्म करने के लिये आपने क्यों प्रगट किया? इस अधम कर्म से मेरा मन बहुत शङ्कित हो रहा है। जिनके माता, पिता, भाई, पुत्र आदि मरेंगे, वे महा दुखी होकर सिर और छाती पीटते हुए रोवेंगे। वह दशा देख कर बड़ी करुणा उत्पन्न होगी। ऐसे स्थानों में निर्दयता करनेवाला महापापी कहा जाता है। हे प्रभो! सुनिये, मैं किसी के घर न जाऊँगी, मैं धेनुकाश्रम में जाकर तपस्या करना इससे कहीं अच्छा समझती हूँ।

ब्रह्मा के बार बार समझाने पर भी मृत्यु ने इसे स्वीकार न किया। वह उन्हें प्रणाम कर धेनुकाश्रम में चली गई। वहाँ उसने कई हज़ार वर्ष तक विधिपूर्वक तपस्या की। उसकी उग्र तपस्या से प्रसन्न होकर ब्रह्मा वहाँ गये और वरदान माँगने के लिये कहा।

मृत्यु ने कहा—प्रभो! यदि आप वर देना चाहते हैं तो हिंसा रूपी निर्दय काम में मुझे न फँसाइये।

ब्रह्मा ने कहा—हे मृत्यु! सुनो, हमारी बात व्यर्थ नहीं होती। तुम निःशंक होकर जीवों का कर्षण करो। तुम्हें कोई पाप न लगेगा। कारण कि तुम्हारे रोने से जो आँसू गिरे हैं वे बल, बुद्धि और गर्व को हर लेने वाले अनेकों रोग हुए हैं। वे प्राणियों को जीर्ण कर अपयश के भागी होंगे और तब तुम अपना कार्य साधन कर लेना। तुम्हें अयश अथवा अधर्म छू तक न जायगा।

यह सुन कर मृत्यु ने हाथ जोड़ कर कहा—हे नाथ! मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगी। परन्तु मेरी सहायता के लिये लोभ, चिन्ता, मोह ईर्ष्या, दुर्व्यसन, क्रोध, अविचार, इन सब को भी दीजिये। यह सुन कर ब्रह्मा ने 'तथास्तु' कहा और मृत्यु ने सब का संहार करना स्वीकार किया।

हे राजन्! संसार में लोग रोग के वश होकर, युद्धभूमि में अथवा असद्व्यवहार से मरते हैं। मृत्यु किसी को नहीं मारती। देव, दानव, मनुष्य आदि संसार में जितने प्रकार के प्राणी हैं, आयु के क्षीण होने पर वे सभी मृत्यु के वश होते हैं। अभिमन्यु समरभूमि में मर कर स्वर्गलोक को गये हैं। इसलिये आप दुःख को त्याग कर धीरज धारण कीजिये।

इस के बाद अनेक धर्मात्मा राजाओं की कथा कह कर व्यासजी ने धर्मराज को धीरज दिया और कहाः—हे राजन्! काम्यक वन में द्रौपदी हरण करने के कारण भीम ने जो जयद्रथ का अपमान किया था, उससे लज्जित होकर उसने शिवजी की बड़ी तपस्या की। महादेव ने प्रसन्न होकर उसे वर दिया कि अर्जुन को छोड़ कर अन्य पाण्डवों को एक दिन युद्ध में तुम अवश्य परास्त करोगे। इसी से जयद्रथ ने आप लोगों को भीतर न घुसने दिया और अभिमन्यु अकेले पड़ जाने के कारण मारे गये। इस प्रकार समझा बुझा कर व्यासजी अपने आश्रम को चले गये। राजा को भी कुछ शान्ति मिली। सब लोग कलेजा थाम कर अर्जुन के आने की प्रतीक्षा करने लगे।

अपने दिव्य अस्त्रों से संसप्तकों का समूह संहार करके अर्जुन विजयी रथ पर सवार कृष्ण से युद्ध की बातें करते हुए अपनी सेना के पड़ाव में आ पहुँचे। वहाँ बड़ी उदासी देख कर उनके मन में शङ्का हुई। वे कृष्ण से कहने लगे—

हे केशव ! हमारा हृदय क्षुब्ध हो रहा है । सारे शरीर में जलन और कँपकँपी हो रही है । तरह तरह के अशकुन देख पड़ते हैं । क्या भाइयों के साथ राजा कुशल से नहीं हैं ?

कृष्ण ने कहा—राजा के लिये तो कोई चिन्ता की बात नहीं है पर और कोई विघ्न हमें जान पड़ता है । आगे चलने पर मालूम होगा ।

सेना निवेश के पास पहुँच कर अर्जुन ने कहा—हे माधव ! न आज दुन्दुभी बज रही है , न शंखध्वनि हो रही है और न बन्दीजन बिरुदावली पढ़ रहे हैं । यह क्या बात है ? योद्धा लोग हमें देख कर मुँह फेर लेते हैं । सबकी आँखों में आँसू भरा हुआ है । हम लोगों पर कोई भारी विपत्ति आई जान पड़ती है

इस तरह बातें करते हुए कृष्ण और अर्जुन ने शिविर में प्रवेश किया । वहाँ उन लोगों ने देखा कि पाण्डव लोग मन मलीन, मुँह लटकाये, अधमरे से बने बैठे हैं । यह दशा देखते ही अर्जुन के पेट में खलबली पड़ गई । उन्होंने अपने सब भाइयों और पुत्रों को तो देखा; परन्तु अभिमन्यु को न देख व्याकुल होकर बोले—

हे वीरो ! प्रसिद्ध वीर बालक अभिमन्यु हमें नहीं दिखाई पड़ता है । हमने सुना है कि द्रोणाचार्य ने आज चक्रव्यूह की रचना की थी । उसको तोड़ने के लिये अभिमन्यु उसके भीतर तो नहीं चला गया ? उसे भीतर घुसने की रीति तो हमने बतला दी थी, किन्तु निकलने का घात उसे नहीं मालूम था । सबकी बातें मान कर अभिमन्यु व्यूह के भीतर जाकर मारा तो नहीं गया ? मेरा प्राणों से भी प्यारा लाल अभिमन्यु कहाँ है ? बुद्धिमान्, सुशील, सुकृती, अभिमन्यु कहाँ गया ? यदि वह मर गया तो हमारा जीना भी व्यर्थ है । गुरुजनों की आज्ञा का उल्लंघन जिसने कभी नहीं किया, जो सदा नम्र रहकर प्रियवचन बोलता था, वह शुद्धमन, कृतज्ञ अभिमन्यु यदि मर गया, तो हमारे लिये भी मरजाना ही श्रेयस्कर है । जिसको अनुचित काम करते हुए कभी किसी ने नहीं देखा, ऐसे प्यारे पुत्र का मरना सुन कर सुभद्रा सिर पीटते पीटते मर जायगी । सारी स्त्रियाँ हमारे बल पौरुष का निरादर करेंगी । सुकुमारी उत्तरा जिसके देवतुल्य शरीर को देखकर प्रसन्न होती थी, आज उसके शरीर पर कौये, सियार आनन्द मना रहे होंगे । हाय ! युद्धभूमि में हमें जोहते हुए अभिमन्यु ने प्राण त्याग किया होगा। इस प्रकार विलाप करके अर्जुन रोने लगे ।

तब कृष्णजी अर्जुन को अङ्क में लेकर समझाने लगे—

हे आर्य ! इस प्रकार शोक करना तुम्हें योग्य नहीं । शरीर धारण करने पर मृत्यु होना अवश्यम्भावी है । क्षत्रिय के लिये युद्धभूमि में मरने से बढ़कर दूसरी कोई उत्तम गति ही नहीं है । बड़े पुण्य से वीरलोग समरभूमि में मर कर इस उत्तम गति को पाते हैं । योद्धा लोग सदा इस गति की कामना किया करते हैं । समराग्नि में अपने शरीर को जलाकर वीर अभिमन्यु सीधे स्वर्गलोक को गया है । इसलिये हे अर्जुन ! शोक को त्यागकर धीरज धरो । तुम्हारी अधीरता से तुम्हारे भाई लोग बिकल हो रहे हैं । अब कर्त्तव्यकर्म के विचार करने की आवश्यकता है ।

कृष्ण की बात सुनकर अर्जुन अपने भाइयों से बोले—हे भाइयो ! हमारा पुत्र किस प्रकार युद्धभूमि में परमपद को प्राप्त हुआ । युद्ध में वीर कहलानेवाले आप लोग उस समय कहाँ थे । आप लोगों के बल पौरुष को धिक्कार है, केवल अपने मुँह आप लोग वीर हैं । यह कवच, धनुष, बाण, आप लोग केवल शोभा के लिये धारण किये हैं । अपने अपने प्राणों के भय से आप लोग अभिमन्यु की रक्षा न कर सके, क्षत्रियों के लिये यह बड़े लज्जा की बात है । हमें इस बात पर पूर्ण सन्तोष

था कि आप लोगों के रहते हुए हमारे पुत्र पर इन्द्र भी विजयी नहीं हो सकते। पर आज वह आशा धूल में मिल गई। हाय! यदि हम जानते कि पाण्डव और पाञ्चाल लोग हमारे पुत्र की रक्षा नहीं कर सकते तो उसकी रक्षा के लिये हम खुद युद्ध के मैदान में उपस्थित रहते। आप लोगों के देखते देखते अभिमन्यु मारा गया। हाय!

पुत्र शोक से दुखी अर्जुन ने आँसू भरे हुए इस प्रकार कुछ देर तक बिलाप करके अपने बन्धु बान्धवों को धिक्कारा। फिर धनुष और तलवार उठा कर बैठे बैठे, इस तरह ज़ोर ज़ोर से साँस छोड़ने लगे, जैसे क्रोध से भरा हुआ काला नाग फुफकारता है। उस समय युधिष्ठिर और कृष्ण को छोड़ कर तीसरा कोई भी उनकी तरफ़ देखने या उत्तर देने को समर्थ न हुआ। तब दुःख से ऊँची साँस लेकर धर्मराज ने धीरे धीरे कहा—

हे प्रिय अर्जुन! जब संसप्तकों से युद्ध करने के लिये तुम चले गये, तब द्रोणाचार्य्य ने एक ऐसा व्यूह बनाया जिसका तोड़ना बहुत ही कठिन था। व्यूह की रचना करके हमारे पकड़ने के लिये उन्होंने जी जान से यत्न करना आरम्भ कर दिया। यद्यपि असंख्यों वीर हमारी रक्षा कर रहे थे, तथापि द्रोणाचार्य्य के आक्रमण से हम बेचैन हो गये। शत्रुओं के उस व्यूह को तोड़ना तो दूर रहा, उनके सामने एक क्षण भर भी ठहरना हम लोगों के लिये असह्य हो गया। तब हमने महापराक्रमी अभिमन्यु से कहा—

द्रोणाचार्य्य की व्यूह रचना का भेद करो; हम तुम्हारी रक्षा करेंगे।

निर्भय अभिमन्यु ने हमारे कहने के अनुसार उस विकट काम को अपने ऊपर लेने से, उत्तम घोड़े की तरह ज़रा भी आनाकानी न की। बड़े वेग और बड़े उत्साह से वह द्रोण की सेना के भीतर घुस गया। हम लोग उसके पीछे पीछे चले और उसी की तरह शत्रु सेना के भीतर घुसने का प्रयत्न करने लगे। परन्तु उसी समय जयद्रथ ने, (क्षुद्र होकर भी) शिवजी के वरदान के प्रभाव से हम लोगों को रोका और अभिमन्यु के द्वारा तोड़े गये व्यूह का द्वार बन्द कर दिया।

तब द्रोण, कर्ण, आदि छः महारथियों ने उस असहाय बालक को चारों तरफ़ से घेर लिया। महावीर अभिमन्यु के हाथ से सैकड़ों सैनिक, घोड़े, हाथी, राजकुमार और योद्धा मारे गये; सैकड़ों रथ चूर हो गये। यहाँ तक कि महारथी राजा बृहद्रथ को भी यमराज का घर देखना पड़ा। तब अभिमन्यु को बहुत थका हुआ और खाली हाथ देखकर दुःशासन के पुत्र ने गदा मारी। उसी से प्यारे अभिमन्यु की मृत्यु हुई। हे धनञ्जय! तुम्हारे पुत्र ने अद्भुत काम करके स्वर्गलोक को गमन किया है।

युधिष्ठिर की बात समाप्त होने पर, अर्जुन—हा पुत्र!—बस इतना कह कर भूमि पर गिर पड़े। उन्हें मूर्च्छा आ गई, वे बेहोश हो गये। इस तरह अचेत और व्याकुल पड़े हुए अर्जुन को घेर कर सब लोग बैठ गये और बिना पलक बन्द किये परस्पर एक दूसरे को देखने लगे। कुछ देर में वीरश्रेष्ठ अर्जुन को होश आया। तब वे विषमज्वर चढ़े हुए आदमी की तरह काँपने और ज़ोर ज़ोर से साँस छोड़ने लगे। उनकी आँखों से आँसुओं की धारा बह चली। इस तरह कुछ देर तक अभिमन्यु के बध से सम्बन्ध रखनेवाली बातें सोचते सोचते अर्जुन धीरे धीरे क्रोध से अधीर हो उठे। तब बड़े ज़ोर से हाथ मल कर और पागल की तरह इधर उधर देख कर वे कहने लगे—

सब वीर लोग सुन लें, हम सत्यप्रतिज्ञा करके कहते हैं। यदि कृष्ण और धर्मराज की शरण में जयद्रथ न आया अथवा कहीं भाग न गया, तो कल हम अवश्य उसका बध करेंगे। यदि हम कल

उसका बध न कर सके, तो उसके लिये यह शपथ है—कृतघ्नी या माता, पिता तथा ब्राह्मणों को दुःख देनेवाले जिस लोक को प्राप्त होते हैं, वह लोक हमें मिले। अगम्या स्त्री से गमन करनेवाले, पराई जीविका छीननेवाले, छली, अपकारी, विश्वासघाती, चुगुल, निन्दक, मिथ्यावादी, चोर, गुरुजन तथा साधु सन्तों का निरादर करनेवाले, गौ, ब्राह्मण, अग्नि को पैर से छूनेवाले, जल में मूत्र और विष्ठा का त्याग करनेवाले, आत्मघाती, बालकों को न देकर अपना ही पेट भरनेवाले, ये सब पाप के भागी होकर जिस लोक में जाते हैं, वही लोक हमें प्राप्त हो जो हम कल जयद्रथ का बध न कर डालें।

यदि जयद्रथ इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर के पास भी भाग कर जायगा, तो भी उसका बध करेंगे। एक प्रतिज्ञा और भी करते हैं, उसे भी सुन लीजिये! सूर्य्यास्त होने के पूर्व यदि हम जयद्रथ का बध न कर डालें, तो सायंकाल होने पर धनुष, बाण, कवच का त्याग कर जलती हुई आग में घुस कर अपने शरीर को जला डालेंगे।

इस प्रकार प्रतिज्ञा करके अर्जुन ने चारों ओर घूम कर बड़े ज़ोर से अपने धनुष का टङ्कार किया, जिसके शब्द से दिशाएँ भर गईं। श्रीकृष्ण ने भी प्रसन्न होकर अपने पाञ्चजन्य शंख को बजा कर अर्जुन की भीषण प्रतिज्ञा का समर्थन किया। इसके बाद चारों तरफ पाण्डवी सेना में हज़ारों शंख, दुन्दुभी, तुरुही और भेरी आदि बाजे बजने और वीरलोग सिंहनाद करने लगे। इस घोर ध्वनि से दशों दिशाएँ भर गईं।

गुप्तचरों द्वारा कौरवों ने अर्जुन की भीषण प्रतिज्ञा का समाचार सुना। सिन्धुराज जयद्रथ तो सुनते ही मारे भय के काँप उठा। कुछ देर तक सोच कर दुर्योधन के पास गया और बोला —

महाराज! अर्जुन ने हमारे बध की भयङ्कर प्रतिज्ञा की है। वे अपनी प्रतिज्ञा पूरी करेंगे, इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं। यह सोच कर हम अधीर हो रहे हैं। कृपा करके आज्ञा दीजिये हम अपने घर चले जाँय और छिप कर अपने प्राण बचावें। या द्रोण, कृप, कर्ण, दुःशासन आदि से सलाह करके आप हमारी रक्षा का प्रबन्ध करें, नहीं तो जल्द जाने के लिये कहिये। हमारा जी बहुत घबरा रहा है।

दुर्योधन अपना मतलब गाँठने में पूरे प्रवीण थे। जयद्रथ को इस तरह भयभीत देख कर उन्होंने कहा—

हे सिन्धुनरेश! आप किसी प्रकार का भय न करें। हमारे महारथियों के रहते आप का कोई कुछ न कर सकेगा। हम अपनी ग्यारह अक्षौहिणी सेना को आज्ञा देंगे कि और सब काम छोड़ कर कल वह केवल आपकी ही रक्षा करे। कर्ण, भूरिश्रवा, शल्य, सुदक्षिण, अश्वत्थामा, शकुनि आदि वीर आपको बीच में डाल कर आपके चारों ओर रहेंगे। आप खुद भी रथी वीरों में एक श्रेष्ठ योद्धा हैं। फिर अर्जुन की प्रतिज्ञा से क्यों डर रहे हैं?

दुर्योधन जयद्रथ को इस तरह ढाढ़स देकर उनके साथ द्रोणाचार्य की शरण गये। द्रोणाचार्य ने जयद्रथ को अभयदान दिया। उन्होंने कहा—तुम निश्चिन्त रहो, हम तुम्हारी रक्षा करेंगे। फिर वे बोले—

हे सिन्धुराज! घबराने की कोई बात नहीं, हम तुम्हें अर्जुन से अवश्य बचावेंगे। तुम्हारी रक्षा के लिये कल हम एक ऐसा व्यूह बनावेंगे जिसके भीतर अर्जुन कभी न घुस पावेंगे। तुम कदापि भयभीत न हो; निर्भय होकर ख़ूब युद्ध करो।

द्रोणाचार्य के इस प्रकार कहने से जयद्रथ का डर छूट गया। उन्होंने कहा—बहुत अच्छा,

हम अवश्य युद्ध करेंगे। तब सारी कौरव सेना अनेक प्रकार के बाजे बजाने और सिंहनाद करने लगी।

जासूसों द्वारा यह समाचार पाकर कृष्ण ने अर्जुन से कहा—

हे पार्थ! तुमने बड़ी कठिन प्रतिज्ञा कर डाली है। यह वैसी ही कठिन है जैसे रत्नों के लिये समुद्र में कूद पड़ना। जिस जयद्रथ की रक्षा के लिये कृप, कर्ण, द्रोण आदि छे महारथी सन्नद्ध हैं, उसका बध करना सहज काम नहीं। द्रोणाचार्य ने शकटव्यूह बनाकर उसके बीच में कमलव्यूह की रचना की है। उसमें बीज के समान जयद्रथ को सुरक्षित किया है। उसका बध करना हमें बड़ा दुस्तर मालूम हो रहा है। इसलिये इस प्रतिज्ञा को त्याग कर तुम मन्त्रियों से सलाह करो और उसके मारने के लिये कोई दूसरा उपाय सोचो।

अर्जुन ने कहा—हे केशव! आप जिन छे महारथियों की सराहना कर रहे हैं, उन सब को हम सर्वत्र अर्द्धरथ के समान समझते हैं। बस, इतना ही कहना है। अनगिनती वीरों को काट कर और असंख्य योद्धाओं को बिचला कर शत्रु के व्यूह को भेद कर जयद्रथ के पास हम वैसे ही पहुँचेंगे, जैसे भ्रमर कमल के पास पहुँच जाता है। जयद्रथ को मारकर अपनी जलन मिटावेंगे। और वहीं विजय दुन्दुभी बजवावेंगे। हे नाथ! आप जिसके सहायक हों, उसका प्रण कभी भंग हो सकता है। अब आप अपनी बहन सुभद्रा के पास जाकर उसे शान्त करें। वह बहुत विकल हो रही है।

तब कृष्णजी रोती हुई सुभद्रा के पास गये और समझाने लगे—

हे सुभद्रा! अच्छे कुल में जन्म लेनेवाले धर्मज्ञ क्षत्रिय को जिस तरह प्राण छोड़ना चाहिये तुम्हारे पुत्र ने उसी तरह छोड़ा है। इससे तुम अब और शोक न करो। पिता के समान पराक्रमी अभिमन्यु को बड़ा भाग्यशाली समझना चाहिये; इसीसे वीरजनों की गति को वह प्राप्त हुआ है। वीर लोग इसी तरह रण में वीरता दिखाकर प्राण छोड़ने की इच्छा रखते हैं। तुम वीरमाता, वीर पत्नी, वीरपुत्री और वीर बान्धवा हो। इसले अभिमन्यु के स्वर्गगमन के कारण तुम्हें शोक न करना चाहिये। हे बहन! बालहन्ता पापी जयद्रथ बन्धु बान्धवों सहित अपने इस कर्म का फल बहुत जल्द पावेगा।

इसी समय उत्तरा को साथ लिये हुए द्रौपदी वहाँ आ उपस्थित हुई। उत्तरा को देख कर उन लोगों का शोक नया हो गया। वे फिर रोने और विलाप करने लगीं। उन्हें बाल बिखराये हुए ज़मीन पर पड़ी देख कृष्ण को बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने अपनी शोकविह्वला बहन के शरीर पर हाथ रख कर कहा—

हे सुभद्रा! तुम्हारे पुत्र को पुण्यलोक प्राप्त हुआ है। फिर उसके लिये इतना शोक क्यों? हे पाञ्चाली! तुम अपने शोक को रोक कर उत्तरा को समझाओ। हे चन्द्रवदनी! हमारी तो यही कामना है कि यशस्वी अभिमन्यु ने जो गति पाई है, अन्तकाल में हम सब लोग वही गति पावें। अकेले अभिमन्यु ने जैसे कठिन काम किये हैं, जीसे हमारी यही इच्छा है कि हम सब लोग मिलकर वैसे ही काम कर सकें।

सुभद्रा द्रौपदी और उत्तरा को इस प्रकार समझा बुझा कर श्रीकृष्ण फिर अर्जुन के पास लौट आये। उन्होंने गोबर से लिपवा कर पवित्र आसन बिछवाये और उस पर अर्जुन को बिठाकर उनके चारों ओर अस्त्र रखवा दिये। फिर शिवजी की आराधना का उपदेश देकर दारुक के साथ अपने डेरे में चले गये।

अपनी शय्या पर बैठकर कृष्ण ने दारुक से कहा—

हे दारुक ! अर्जुन ने बड़ी भीषण प्रतिज्ञा की है। यदि वह पूरी न हुई तो सन्ध्या होने पर वे अग्नि में प्रवेश कर जायँगे । अर्जुन हमें बहुत प्यारे हैं, उनके बिना एक क्षण भी हम यहाँ नहीं रह सकते। इसलिये यदि अर्जुन जयद्रथ का बध न कर सकेंगे, तो हम अवश्य उसका बध करेंगे। तुम कवच पहन कर अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित हमारा रथ तैयार रक्खो। युद्धभूमि में जब हमारे शंख की ध्वनि सुनो, शीघ्र रथ लेकर तुम वहाँ पहुँच जाओ।

दारुक ने कहा—हे पुरुषोत्तम ! आप जिनके सारथि हुए हैं उनका काम अवश्य ही सिद्ध होगा। आपने जिस तरह आज्ञा दी है, सब काम उसी तरह होगा आपको उसी तरह रथ तैयार मिलेगा। ईश्वर करे अर्जुन ही के विजय होने के लिये आज प्रातःकाल हो।

अर्जुन की भी रात महादेवजी के दिये हुए अस्त्रों की चिन्ता करते करते बीत गई। प्रातः-काल होने पर दुन्दुभी आदि तरह तरह के बाजे बजने लगे। बन्दी मागध स्तुति पाठ करने लगे। धर्मराज ने अग्निहोत्र करके बहुतसा दान किया फिर वस्त्र भूषणों से सुसज्जित होकर सभा में विराजे। सबके बैठ जाने पर युधिष्ठिर ने कृष्ण से कहा—

हे प्रभो ! अगाध कौरवी सेना को पार करने के लिये हमें आप ही का सहारा है। अर्जुन की कठिन प्रतिज्ञा का स्मरण करके हमारे प्राण सूखे जा रहे हैं। परन्तु आपको सहायक समझ कर कल्याण की आशा से सन्तोष हो रहा है। हे नाथ ! सूर्य्यास्त के पूर्व ही शत्रु सेना में प्रवेश करके जयद्रथ का बध कराइये।

कृष्ण ने कहा—हे धर्मराज ! आप धीरज धारण करें, अर्जुन के सामने आकर उन्हें रोक ले ऐसा वीर पृथ्वी में कौन है ? अर्जुन का इन्द्र पर विजय पाना संसार प्रसिद्ध है। शत्रुसेना में घुस कर अर्जुन अवश्य जयद्रथ का बध करेंगे। इतने में अर्जुन भी आ गये, युधिष्ठिर ने उन्हें गले लगाया।

उधर द्रोणाचार्य ने अपने रथ के घोड़ों की रास खुद अपने ही हाथ में ली और बड़ी फुरती से सेना की देख भाल करके व्यूहरचना आरम्भ कर दी। जब व्यूहरचना हो गई और जिन सैनिकों को जहाँ रहना चाहिये वे वहाँ अपनी अपनी जगह पर डट गये, तब द्रोण ने जयद्रथ से कहा —

हे सिन्धुराज ! तुम छे कोष हमारे पीछे रहो। कर्ण, भूरिश्रवा, कृपाचार्य, वृषसेन, शल्य और अश्वत्थामा एक लाख सेना लेकर तुम्हारी रक्षा करेंगे। कई बड़े बड़े वीर अपना दल लेकर बीच में रहेंगे। इससे तुम्हारे समीप पहुँचने के पहले पाण्डवों को हमारी सेना पार करना पड़ेगा; फिर बीच वाले सेनाध्यक्षों की सेना में घुसकर उस तरफ जाना होगा और सूर्य्यास्त के पहले हम सब को पार करके तुम तक पहुँच जाना पाण्डवों के लिये तो क्या खुद देवताओं के लिये असम्भव है।

द्रोण के इस कहने से जयद्रथ को बहुत कुछ धीरज हुआ। गान्धार देश के बहुत से योद्धाओं और कवचधारी बहुत से सवारों को लेकर वे आचार्य के बतलाये हुए स्थान पर उनके पीछे की तरफ गये। धृतराष्ट्र के पुत्र दुःशासन और दुर्मर्षण आगेवाली सेना में रहे। उसके पीछे द्रोणाचार्य ने सेना को शकट के आकार में खड़ा करके व्यूह बनाया और अपने रथ को उस के द्वार पर खड़ा किया। उसके पीछे भोजराज, कृतवर्म्मा और काम्बोजराज सुदक्षिण ने अपने अपने दलको चक्र के आकार में खड़ा करके जयद्रथ के पास पहुँचने का रास्ता रोका।

इस इतने बड़े व्यूह के पीछे कई योजन का बीच देकर सूची नामक एक और बहुत ही गूढ़ व्यूह की रचना की गई। उसके मध्य भाग में कर्ण, दुर्योधन, शल्य कृप आदि वीर जयद्रथ को बीच में डाल कर

खड़े हुए। अद्भुत कौशल से भरे हुए इन दोनों व्यूहों को देख कर कौरवों ने मन ही मन इस बात का निश्चय कर लिया कि जयद्रथ अब बच गये और अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार अर्जुन चिन्ता में जल मरे।

इधर पाण्डवों ने भी अपनी सेना का व्यूह बनाया उसके बन चुकने पर युधिष्ठिर की रक्षा के लिये उचित प्रबन्ध करके अर्जुन ने कृष्ण से कहाः—

हे जनार्दन! जिस जगह दुर्मर्षण हैं वहीं पहले हमारा रथ ले चलिये। इस हाथियों पर सवार सेना को पार करके हम शत्रुओं के व्यूह में घुसना चाहते हैं।

अर्जुन के कहे अनुसार कृष्णजी वहीं रथ ले गये। कौरवों के साथ प्रलयकारी युद्ध आरम्भ हो गया। वर्षा काल के मेघ पर्वतों के ऊपर जैसे पानी बरसाते हैं उसी तरह महा पराक्रमी अर्जुन ने अपने शत्रुओं पर बाण बरसाना आरम्भ कर दिया। क्षण मात्र में असंख्य रथ, हाथी और पैदल सेना काट डाली। साथही हज़ार हज़ार बीर अर्जुन पर आक्रमण करने लगे, पर वे पाँखी की तरह जल भुन कर वहीं के वहीं रह गये। अर्जुन ने ऐसा भीषण रूप धारण किया कि कौरवी सेना में हाहाकार मचगया। दुर्मर्षण इतना विकलहुआ कि वह बची हुई सेना लेकर दुःशासन के पास भागा।

दुर्मर्षण के भागनेसे दुःशासन को बड़ा क्रोध आया। वह आगे बढ़कर अर्जुन का सामना करने आया और हाथियों पर सवार सेनासे उन्हें घेर लिया। वे बाण शक्ति, तोमर आदि तरह तरह के अस्त्रों का प्रहार अर्जुन पर करनेलगे। वीर श्रेष्ठ अर्जुन ने उनके अस्त्रों को व्यर्थ करके अपने बाणों से कितने ही हाथियों के मस्तक फाड़ डाले; असंख्य सवार और पैदल सेना के सिर गेंदे की तरह काट कर गिरादिये। देखते ही देखते कितने ही हाथियों के हौदे ख़ाली हो गये और अनगिनती हाथी पृथ्वी पर गिर कर मरगये। तब घुड़सवारों ने मुकाबला किया। अर्जुन ने बात की बात में उन्हें ज़मीन पर सुला दिया। पृथ्वी रुण्डमुण्ड से भरगई। अर्जुन के बाणों से बहुत घायल हो कर दुःशासन ने भी द्रोण के द्वारा रक्षित व्यूह में घुस कर अपने प्राण बचाये।

तब अर्जुन शकटव्यूह के द्वार पर पहुँच गये। वहाँ उनका आचार्य द्रोण से सामना हुआ। उन्होंने हाथ जोड़ कर आचार्य कहाः—

हे गुरो! हम आपकी कृपा पाकर अपने बल से व्यूह के भीतर घुसना चाहते हैं और प्रतिज्ञा के अनुसार जयद्रथ का बध करना चाहते हैं। पिता पाण्डु युधिष्ठिर तथा कृष्ण के समान आप हमारे पूजनीय इन्हीं लोगों के समान आप से हम रक्षा करने के योग्य हैं। अश्वत्थामा के समान हम आपके प्यारे हैं। इसलिये वही उपाय कीजिये जिससे हमारा प्रण भंग न हो, द्रोणाचार्य ने हँस कर कहाः—

हे पार्थ! हमको विना जीते तुम जयद्रथ को नहीं पा सकते। इसलिये मन लगा कर युद्ध करो।

यह कह कर द्रोण ने अपने तीखे बाणों से अर्जुन को तोप दियो। तब लाचार होकर अर्जुन को गुरू के साथ युद्ध करना पड़ा। दोनों ही गुरु शिष्य धनुर्विद्या में पूर्ण पण्डित थे। आचार्य ने अर्जुन के धनुष की डोर काट कर उन पर असंख्य बाण बरसाये। फिर अर्जुन ने क्रोध करके दस हज़ार बाण मारे। उन्होंने द्रोणाचार्य के असंख्य योद्धाओं हाथियों और घोड़ों को मार कर पृथ्वी पाट दी, फिर दोनों ओर से दिव्य अस्त्र चलने लगे और एक दूसरे के अस्त्र को व्यर्थ करने लगे। बहुत देर तक बड़ा ही अद्भुत युद्ध हुआ। कृष्ण ने देखा कि दोनों ही महाधनुर्धर हैं। यदि इसी प्रकार युद्ध होता रहा तो जयद्रथ वध रूपी मुख्य कार्य में बाधा पड़ जायगी। यह विचार कर उन्होंने अर्जुन से कहाः—

हे अर्जुन! यदि द्रोणको जीत कर चलना चाहते हो तो सारा दिन यहीं समाप्त हो

जायगा। इससे और समय नष्ट करना उचित नहीं। आचार्य के साथ बहुत दिन तक युद्ध हो चुका। अब उन्हें यहीं छोड़ व्यूह के भीतर घुसना चाहिये।

अर्जुन को कृष्ण की बात बहुत पसन्द आई। उन्होंने आचार्य की प्रदक्षिणा करके प्रणाम किया। तब कृष्ण ने बड़ी तेजी से रथ हाँका और उनके पीछे निकाल ले गये। अर्जुन के रथ को आगे बढ़ने से रोकना द्रोणाचार्य ने अपनी शक्ति के बाहर समझा। इससे उन्होंने पुकार कर कहाः—

हे अर्जुन! हमें छोड़ कर तुम कहाँ भागे जा रहे हो? शत्रु को बिना पराजित किये पीठ दिखाना तुम्हें उचित नहीं।

अर्जुन तो जयद्रथ को मारने के लिये उतावले हो रहे थे। उन्होंने कहाः—

हे आचार्य! आप हमारे पूज्य गुरु हैं; शत्रु नहीं। यह बात संसार जानता है। इसलिये हमारा वह नियम आपके विषय में नहीं लग सकता।

यह कह कर युधामन्यु और उत्तमौजा नामक दो चक्ररक्षकों को साथ लेकर उन्होंने शत्रुओं की विशाल सेना में प्रवेश किया। तब कृतवर्मा और काम्बोज नरेश आदि ने वहीं रोकना चाहा। भयङ्कर युद्ध होने लगा। महा प्रतापी पार्थ के विषम बाणों के प्रभाव से अनगिनत वीर कट मरे। अकेले अर्जुन पर असंख्य कौरवी सेना टिड्डीदल के समान टूटने लगी। यह देख कर अर्जुन को उत्तेजित करने के लिये कृष्ण ने कहाः—

हे अर्जुन! इन वीरों पर दया करने की ज़रूरत नहीं। इन्हें यमपुर भेजने में विलम्ब न करो। हमें जो काम आज करना है उसके लिये अब बहुत थोड़ा समय रह गया है।

श्रीकृष्ण की बात सुन कर अर्जुन बड़े वेग से बाण बरसाने लगे। वह मार कृतवर्मा और सुदक्षिण से न सही गई। वे मूर्छित हो गये। इस अवसर को अच्छा समझ कर कृष्ण ने रथ को इस तेज़ी से दौड़ाया कि उसका देख पड़ना मुश्किल हो गया। रास्ते में श्रुतायुध, सुदक्षिण आदि राजे तथा अनेक राजकुमारों का संहार करते हुए अर्जुन बराबर आगे बढ़ते गये। अपनी सेना के बड़े बड़े वीरों को मरते और विचलित होते देख दुर्योधन बहुत घबराये। उनको मालूम हो गया कि अर्जुन शकटव्यूह से निकल आये और अब सूची-व्यूह की तरफ दौड़े चले आरहे हैं। इससे वे शीघ्र द्रोणाचार्य के पास पहुँच कर बोलेः—

हे आचार्य! क्रोध की वायु के साथ दावाग्नि के समान अर्जुन हमारी सेना को जलाते चले जा रहे हैं। हमारे पक्ष के राजा लोग जयद्रथ के बध के विषय में शङ्कित हो रहे हैं। पहले तो सब लोगों को यह विश्वास था कि आपसे ही अर्जुन को छुटकारा न मिलेगा वे आगे कहाँ से बढ़ सकेंगे। परन्तु वे बिना आपको परास्त किये ही जयद्रथ के बध की अभिलाषा से बहुत आगे बढ़ गये। महाराज! हम आपको गुरू समझ कर आज तक निश्छल भाव से आपकी सेवा करते थे और आपही के भरोसे विजय की आशा बाँधी थी। परन्तु हम देखते हैं कि आप सदा से पाण्डवों की ही विजय की इच्छा किया करते हैं, आपका रुख उन्हीं की ओर रहता है यदि आप जयद्रथ की रक्षा न कर सकने की बात पहले ही कह दिये होते, तो हम उन्हें ढारस देकर क्यों रखते। इसलिये हे आचार्य। अब वह काम कीजिये जिससे जयद्रथ के प्राण बचें। चाहे कोई मनुष्य यमराज के हाथ से बच जाय, पर आज अर्जुन के सामने पड़ कर बचता हुआ हमें कोई नहीं दिखाई पड़ता है। यदि आप अर्जुन से युद्ध न करेंगे, तो बताइये उनका सामना करनेवाला दूसरा कौन वीर है? हम अत्यन्त

दुखी होने के कारण ऐसी बातें कह रहे हैं, इस कारण आप क्रोध न कीजियेगा। जयद्रथ आपकी शरण हैं। जिस तरह उनकी रक्षा हो वही उपाय कीजिये।

इस प्रकार दुर्योधन की बातें सुन कर द्रोणाचार्य ने कहा—महाराज! तुम पर हम हृदय से प्रेम करते हैं, इससे तुम्हारी बात से बुरा नहीं मानते। सच मानो, इस विषय में हमारा कुछ भी अपराध नहीं। श्रीकृष्ण बहुत ही अच्छे सारथि हैं। उनके हाँके हुए घोड़े हवा से बातें करते हैं। इस कारण बहुत थोड़ा सा रास्ता पाने से भी अर्जुन बड़ी तेजी से रथ निकाल ले जाते हैं। फिर, अर्जुन जवान आदमी ठहरे। हम जैसा बुड्ढा उन्हें कैसे रोक सकता है? आप तो जानते हैं कि अर्जुन कैसे पराक्रमी हैं। वह देखिये, राजा युधिष्ठिर अपनी सेना बढ़ाकर हमसे युद्ध करने के लिये उतावले हो रहे हैं। ऐसी दशा में हम व्यूह का द्वार छोड़कर कैसे दूसरी जगह जा सकते हैं? यदि हम चले ही जायँ तो बताइये आपकी सेना में कौन ऐसा वीर है जो भीम और धृष्टद्युम्न का मुक़ाबला करेगा? वे तुरन्त भीतर घुस आवेंगे फिर कुछ न करते बन पड़ेगा। पाण्डवोंकी जीत अवश्य हो जायगी। इसलिये दुःशासन को साथ ले कर आप खुद युद्ध करें, क्योंकि अर्जुन आपके मुकाबले के हैं। फिर वे असहाय और अकेले हैं और आपके अनेकों योद्धा सहायक हैं। आपको लड़ते देख कर कोई भी वीर पीछा न दिखावेंगे।

दुर्योधन ने कहा—हे आचार्य! जो अर्जुन आपके समान योद्धाओं को जीत कर चले गये हैं, उन्हें भला हम कैसे जीत सकते हैं।

द्रोण ने कहा—हे राजन्! तुम्हारा कहना बहुत सही है। लो, हम तुम्हारे शरीर पर एक ऐसा कवच बाँधे देते हैं, जिसे छेद कर कोई भी शस्त्र तुम्हें घायल न कर सकेगा।

यह कह कर द्रोणाचार्य ने दुर्योधन के शरीर पर मन्त्रों से पवित्र किया हुआ एक महा अद्भुत कवच बाँधा और उन्हें उस भयानक युद्ध में भेज दिया। दुर्योधन एक हज़ार चतुरंगिनी सेना और बहुत से महारथी योद्धा लेकर मारू बाजा बजाते हुए बड़े ठाटबाट के साथ अर्जुन को रोकने दौड़े।

इधर द्रोणाचार्य और सात्यकि से महा घोर समर हुआ। असंख्य रथी, हाथी, घोड़े कट मरे। रुण्ड मुण्ड से पृथ्वी भर गई। भीमसेन, धृष्टद्युम्न आदि ने दुःशासन आदि कौरव वीरों के छक्के छुड़ा दिये।

इधर दो पहर दिन बीत गया। तब तक अर्जुन ने कौरवों के असंख्य योद्धा और सैनिक मार गिराये। सारी सेना को उन्हों ने मथ डाला। चारों ओर हाहाकार मच गया। देर तक भीषण युद्ध करने से अर्जुन बहुत थक गये। उनके रथ के घोड़े भी बहुत घायल हो गये। कौरवों की सेना में महाप्रलय मचाकर किसी तरह जल्दी जल्दी वे शकटव्यूह से निकल आये। तब उन्हें बहुत दूर पर आगे वह जगह दिखाई दी जहाँ सूचीव्यूह के बीच में बड़े बड़े महारथियों से रक्षित जयद्रथ सूर्यास्त की प्रतीक्षा कर रहे थे।

तब अर्जुन ने धीरे धीरे कृष्ण से कहा—हे केशव! घोड़े बहुत थक गये हैं और उनकी देह में बहुत से बाण धँस गये हैं। हमारी समझ में रथ को खड़ा कर और उनकी देह से बाण निकाल कर उन्हें कुछ विश्राम करा देना चाहिये। जब तक आप यह काम करें तबतक हम शत्रुओं का मुक़ाबला करते हैं।

श्रीकृष्ण ने इस बात का समर्थन किया। तब अर्जुन रथ से उतर पड़े और गाण्डीव को

हाथ में लेकर घोड़ों की, रथ की और कृष्ण की रक्षा करने लगे। उधर कौरवों ने अर्जुन को विरथ देख कर एक साथ ही चारों ओर से उन पर आक्रमण किया। पर महा पराक्रमी अर्जुन ने सब के अस्त्रों को व्यर्थ करके सब को व्यथित कर दिया। इधर कृष्ण ने देखा कि अर्जुन रक्षा कर ही रहे हैं, घोड़ों को खोल देना चाहिये। इस से उन्हों ने घोड़ों को रथ से खोल दिया। फिर टूटे हुए बाण उनके शरीर से निकाल कर उन्हें खूब मला। अर्जुन ने पृथ्वी में बाण मार कर पवित्र जल प्रगट कर दिया, जिसके पीने से घोड़े फिर ताजे हो गये।

कुछ देर तक आराम करने पर घोड़ों की थकावट दूर हो गई। शस्त्र के लगने के कारण उत्पन्न हुई पीड़ा भी जाती रही। तब कृष्ण ने उन्हें फिर रथ में जोता और अर्जुन को सवार कराकर आप भी सवार हो गये। घोड़े बड़ी तेजी से उसी तरफ भागे जहाँ जयद्रथ एक एक पल दिन का हिसाब लगा रहा था।

रास्ते में अर्जुन चतुरंगिनी सेना का संहार करते हुए जा रहे थे। उनको देख कर कौरवी सेना के योद्धा भाग रहे थे, जैसे नास्तिक वेद को देख कर भागते हैं। अर्जुन को देख कर कितने ही राजा कहने लगे —

अर्जुन जयद्रथ के बध की प्रतिज्ञा अवश्य पूर्ण करेंगे। जयद्रथ के बच जाने में इतनी ही आशा बँधी हुई थी कि द्रोणाचार्य से छूट कर अर्जुन न निकल सकेंगे। परन्तु द्रोणाचार्य के जाल को तोड़कर निकलते ही हमारी वह आशा भंग हो गई। अब उन्हें रोकनेवाला कौन है? जब वे अपने बल-बाहु से पहाड़ को ही उड़ा रहे हैं, तब पेड़ उन्हें क्या रोक सकते हैं? जब तक जयद्रथ को अर्जुन देखते नहीं तभी तक उसके जीवन की घड़ी शेष है।

इतने में दुर्योधन अर्जुन के सामने आ पहुँचे, बड़े वेग से अपने रथ को बढ़ाकर वे अर्जुन के सामने हुए। तब कौरवी सेना में दुन्दुभी शंख आदि बाजे बजने लगे। जयद्रथ की रक्षा करनेवाले महारथी लोग भी प्रसन्न हुए। दुर्योधन को सामने देखकर कृष्ण ने कहा —

हे कुलदीप अर्जुन! आज भाग्य से दुर्योधन सामने आये हैं। इसके एक-एक अपकारों को समझ समझ कर, दुस्सह क्रोध प्रगट करो। इन्हें यमालय भेज देने में ही कल्याण है। यही सम्पूर्ण अनर्थों का मूल है।

अर्जुन ने कहा हे वासुदेव! आपका कहना बहुत सही है। घोड़ों को हाँक कर जल्दी वहाँ चलिये।

दुर्योधन ने विचार कर अर्जुन से इस प्रकार कहा—हे अर्जुन! पृथ्वी पर आकर तुमने जितने अस्त्र पाये हैं; यदि सच्चे वीर हो तो उन्हें प्रगट कर के दिखावो। इस प्रकार कह कर उन्हों ने अर्जुन की छाती में तीन बाण मारे। अर्जुन ने भी उत्तर में चौदह बाण मारे, जो वृक्ष और पर्वत को भी भेद देने वाले थे। पर वे बाण व्यर्थ हो गये, दुर्योधन के कवच में लग कर गिर पड़े। यह देख कर कृष्ण ने अर्जुन से पूछा—

हे अर्जुन! तुम्हारे बज्र के समान बाण दुर्योधन के शरीर में क्यों नहीं धँसे? क्या गाण्डीव धनुष छोटा हो गया? अथवा शत्रु का नाश करनेवाला तुम्हारा बल घट गया? हमें बड़ा आश्चर्य हो रहा है।

यह सुन कर अर्जुन ने कृष्ण से कहा—हे वासुदेव! दुर्योधन के इस अभेद्य कवच को द्रोणाचार्य ने आज अपने हाथों बाँधा है। इस कवच को भेदने की शक्ति हमारे बाणों में नहीं है। यद्यपि वह कवच अभेद्य है, फिर भी हम दुर्योधन को हराते हैं, आप देखें।

यह कह कर अर्जुन ने घनघोर युद्ध आरम्भ कर दिया।

इस प्रकार कहकर अर्जुन ने अपने बाणों को अभिमन्त्रित किया और दुर्योधन के धनुष को लक्ष्य करके मारा। पर अश्वत्थामा ने उसे दूर ही से काट दिया। तब अर्जुन ने दशों दिशाओं में असंख्य बाण बरसाये। दोनों ओर से ख़ूब युद्धकौशल दिखाई देने लगा। कभी वे उनके बाण काटते कभी अर्जुन दुर्योधन के। अनन्तर अर्जुन ने कराल काल के समान बाण बरसाये। उन्होंने दुर्योधन के रथ के घोड़ों को मार गिराया और सारथि को यमालय भेज दिया। अर्जुन ने दुर्योधन के पार्श्व रक्षकों को मार उनके धनुषको भी काट डाला और उनके हाथों में कई बाण मारे। तब सैनिकों ने दुर्योधन को आड़ में कर स्वयं अर्जुन पर टूट पड़े, पर पार्थ ने उन्हें बात की बात में मार गिराया। इस पर असंख्य कौरवी सेना ने उन्हें एक कोस का घेरा देकर ढँक लिया तब कृष्ण ने क्रोध करके कहा—

हे अर्जुन! इतने कोमल क्यों हो गये हो? अपने बाणों से शत्रु दल को हरा दो।

अर्जुन धनुष को मण्डलाकार करके सूर्य्य की किरणों के समान बाण बरसाने लगे उन्होंने बात की बात में शत्रुदल को कुहरे की तरह हटा दिया।

इधर द्रोणाचार्य युधिष्ठिर को पकड़ने के लिये जी तोड़ कोशिश करने लगे। उन्हों ने बार बार भयङ्कर आक्रमण किया। तब सात्यकि और धृष्टद्युम्न आदि वीर धर्मराज को घेर कर उनकी रक्षा करने लगे। इन लोगों को हरा कर युधिष्ठिर तक पहुँचने की द्रोण ने बहुत कोशिश की। पर वे बार बार विफल प्रयत्न ही होते गये। तब उन्होंने लाचार युधिष्ठिर के पाने की आशा छोड़ दी और सब के देखते पाञ्चाल लोगों का संहार आरम्भ कर दिया।

बहुत देर तक घोर युद्ध होता रहा। जब युधिष्ठिर को गाण्डीव धनुष का टङ्कार न सुनाई देने लगा, तब उन्हों ने घबरा कर सात्यकि से कहा—

हे वीर वर सात्यकि! तुम सम्पूर्ण शास्त्रों के पारंगत और बड़े चतुर हो। तुम सदा से सत्कर्म करने में प्रसिद्ध हो। वृष्णि वंश में दो ही प्रसिद्ध वीर हैं, एक प्रद्युम्न दूसरे तुम। द्वैतवन में अर्जुन ने हमसे तुम्हारी बड़ी प्रशंसा की थी कि सात्यकि कृष्ण के समान हमारे हितचिन्तक हैं। हे वीर! इस समय तुम्हारे परम प्रिय मित्र और गुरु अर्जुन शत्रु सेना के बीच में चले गये हैं। उनके जाने के बाद फिर हमें कोई ख़बर नहीं मिली, इससे हमारा चित्त चञ्चल हो रहा है, जब तक गाण्डीव धनुष का टङ्कार सुनाई पड़ता था तब तक तो हमें कुछ सन्तोष था, पर अब वह भी नहीं सुनाई पड़ता है इसलिये व्यूह में घुस कर तुम शीघ्र अर्जुन के पास जाओ। भीमसेन आदि यहाँ युद्ध करके द्रोणाचार्य का मुक़ाबला करेंगे।

सात्यकि ने कहा—हे धर्मराज! आपका कहना बहुत यथार्थ है। अर्जुन के लिये हम यह शरीर तृण के समान त्याग सकते हैं। उनके लिये हम इन्द्र और यम से भी युद्ध करने में मुँह न मोड़ेंगे। व्यूह को भेद कर अर्जुन के पास जाने में हमें कोई शंका नहीं है। पर एक सन्देह हमारे मन में है वह हम आप से कह देना चाहते हैं। जब अर्जुन यहाँ से जाने लगे तब उन्होंने हम से कहा था कि 'तुम यहीं रहना और धर्म्मराज की हर प्रकार से रक्षा करना' क्योंकि द्रोणाचार्य ने उनके पकड़ने की प्रतिज्ञा की है। इसी कारण हम साथ छोड़कर वहाँ जाने से हिचकते हैं। यदि दुर्योधन आपको पकड़ पावेगा तो अर्जुन की सारी विजय व्यर्थ हो जायगी और हम उन्हें क्या जवाब देंगे। कृष्ण के साथ अर्जुन तीनों लोक को जीतने में समर्थ हैं कौरव दल तो किसी गिनती में नहीं है। इससे आप

किसी प्रकार का सन्देह न करें। हाँ, आप हमारे गुरु के भी पूज्य हैं, इसलिये आपकी आज्ञा का पालन करना भी हमारा धर्म है। अब आप समझ कर जो आज्ञा दें वह हम शिरोधार्य करेंगे।

युधिष्ठिर ने कुछ देर तक सोचकर कहा—हे सात्यकि ! तुम्हारा कहना सही है, पर हमारे मन का भ्रम दूर नहीं हो रहा है। बिना उनकी ख़बर पाये हमें सन्तोष न होगा। तुम शीघ्र वहाँ जाओ। भीमसेन आदि वीर हमारी रक्षा कर लेंगे।

युधिष्ठिर की बात सुन कर सात्यकि ने विचार किया कि यदि हम नहीं जाते हैं तो लोग हमें अधीर और डरपोक कहेंगे। इसलिये उन्होंने जाना ही निश्चय किया। वे उसी मार्ग से आगे बढ़े जिधर से अर्जुन गये थे। युधिष्ठिर भी द्रोण के आक्रमण से उनकी रक्षा करने के लिये बहुत से वीर लेकर उनके पीछे पीछे चले। इस पर कौरवों की सेना के बड़े बड़े वीरों ने उनका सामना किया; परन्तु उन्हें इन लोगों ने मार गिराया, तब द्रोणाचार्य ने तीखे बाण बरसा उन्हें रोका। वीर श्रेष्ठ सात्यकि इससे ज़रा भी न घबराये। उन्होंने द्रोण की ध्वजा काट दी उनके रथ के घोड़ों को मार गिराया, तथा उनके सारथि को भी बाणों से छेद कर भूमि पर सुला दिया। यह देखकर द्रोणाचार्य को बड़ा क्रोध हुआ। वे बोले—

हे सात्यकि ! तुम्हारे गुरु अर्जुन हमसे सामने युद्ध न करके कापुरुषों की तरह भाग गये। यदि तुम भी वैसे न भागे तो जीते न बचोगे।

द्रोणाचार्य से अन्त तक युद्ध न करके जिस युक्ति से अर्जुन आगे बढ़ गये थे वह सात्यकि को मालूम हो गया था। इससे द्रोण के बचन सुनकर उन्हों ने कहा—

हे द्विजश्रेष्ठ ! आप हमारे आचार्य के आचार्य हैं। सब प्रकार से आप हमारे पूज्य हैं। हम धर्मराज की आज्ञा से अपने गुरु अर्जुन के पास जाते हैं फिर शिष्य का धर्म है कि जिस ढंग से उसका गुरु कोई काम करे उसी ढंग से वह भी करे। अतएव लीजिये, हम आपको छोड़कर अपने गुरु के पास चले।

यह कह कर सात्यकि ने द्रोण को छोड़कर व्यूह में प्रवेश किया। वे कौरवी सेना को मथते और नामी नामी योद्धाओं का संहार करते हुए बराबर आगे बढ़ते गये।

सात्यकि को अगाध शत्रु सागर में घुसते देख युधिष्ठिर सोचने लगे—सात्यकि को हमने अर्जुन के पास तो भेजदिया, पर उनकी रक्षा का कोई उचित उपाय नहीं किया। पहले तो हमें अकेले अर्जुन ही के लिये चिन्ता थी किन्तु अब सात्यकि और अर्जुन दोनों के लिये हमारा जी ऊब रहा है। संसार में कोई बात ऐसी नहीं जो भीम के लिये असाध्य हो। वे क्या नहीं करसकते ? उन्हीं के बल पौरुष के भरोसे हम लोगों ने बनवास के बारह वर्ष बिताये हैं। इसलिये वीरवर भीमसेन को सात्यकि और अर्जुन के पास भेजने से उन्हें अवश्य सहायता मिलेगी। मन ही मन इस तरह निश्चय करके युधिष्ठिर ने भीम के पास रथ ले जाने की आज्ञा दी। उनके पास पहुँच कर उन्होंने कहा—

हे भीम! जिस वीर ने एक ही रथ की सवारी से देव, दानव और गन्धर्वों को परास्त किया है, उन्हीं तुम्हारे भाई अर्जुन का ध्वज दण्ड अब और नहीं देख पड़ता। यह कहते कहते युधिष्ठिर मोहित हो गये। दुःख से उनका कण्ठ भर आया। भाई की यह दशा देख भीम घबरा उठे। उन्होंने कहा—

हे धर्मराज ! हमारे आते ही आप इतने कातर क्यों हो रहे हैं ? पहले जब कभी किसी कारण से हम घबरा जाते थे तब आप ही हमें धीरज देते थे। पर आपका इस तरह दुखी होना हम किसी तरह नहीं सह सकते। इस समय इस शोक को दूर करके आज्ञा दीजिये हमें कौन काम करना होगा ?

किसी प्रकार का सन्देह न करें। हाँ, आप हमारे गुरु के भी पूज्य हैं, इसलिये आपकी आज्ञा का पालन करना भी हमारा धर्म है। अब आप समझ कर जो आज्ञा दें वह हम शिरोधार्य करेंगे।

युधिष्ठिर ने कुछ देर तक सोचकर कहा—हे सात्यकि ! तुम्हारा कहना सही है, पर हमारे मन का भ्रम दूर नहीं हो रहा है। बिना उनकी ख़बर पाये हमें सन्तोष न होगा। तुम शीघ्र वहाँ जाओ। भीमसेन आदि वीर हमारी रक्षा कर लेंगे।

युधिष्ठिर की बात सुन कर सात्यकि ने विचार किया कि यदि हम नहीं जाते हैं तो लोग हमें अधीर और डरपोक कहेंगे। इसलिये उन्होंने जाना ही निश्चय किया। वे उसी मार्ग से आगे बढ़े जिधर से अर्जुन गये थे। युधिष्ठिर भी द्रोण के आक्रमण से उनकी रक्षा करने के लिये बहुत से वीर लेकर उनके पीछे पीछे चले। इस पर कौरवों की सेना के बड़े बड़े वीरों ने उनका सामना किया; परन्तु उन्हें इन लोगों ने मार गिराया, तब द्रोणाचार्य ने तीखे बाण बरसा उन्हें रोका। वीर श्रेष्ठ सात्यकि इससे ज़रा भी न घबराये। उन्होंने द्रोण की ध्वजा काट दी उनके रथ के घोड़ों को मार गिराया, तथा उनके सारथि को भी बाणों से छेद कर भूमि पर सुला दिया। यह देखकर द्रोणाचार्य को बड़ा क्रोध हुआ। वे बोले—

हे सात्यकि ! तुम्हारे गुरु अर्जुन हमसे सामने युद्ध न करके कापुरुषों की तरह भाग गये। यदि तुम भी वैसे न भागे तो जीते न बचोगे।

द्रोणाचार्य से अन्त तक युद्ध न करके जिस युक्ति से अर्जुन आगे बढ़ गये थे वह सात्यकि को मालूम हो गया था। इससे द्रोण के बचन सुनकर उन्हों ने कहा—

हे द्विजश्रेष्ठ ! आप हमारे आचार्य के आचार्य हैं। सब प्रकार से आप हमारे पूज्य हैं। हम धर्मराज की आज्ञा से अपने गुरु अर्जुन के पास जाते हैं फिर शिष्य का धर्म है कि जिस ढंग से उसका गुरु कोई काम करे उसी ढंग से वह भी करे। अतएव लीजिये, हम आपको छोड़कर अपने गुरु के पास चले।

यह कह कर सात्यकि ने द्रोण को छोड़कर व्यूह में प्रवेश किया। वे कौरवी सेना को मथते और नामी नामी योद्धाओं का संहार करते हुए बराबर आगे बढ़ते गये।

सात्यकि को अगाध शत्रु सागर में घुसते देख युधिष्ठिर सोचने लगे—सात्यकि को हमने अर्जुन के पास तो भेजदिया, पर उनकी रक्षा का कोई उचित उपाय नहीं किया। पहले तो हमें अकेले अर्जुन ही के लिये चिन्ता थी किन्तु अब सात्यकि और अर्जुन दोनों के लिये हमारा जी ऊब रहा है। संसार में कोई बात ऐसी नहीं जो भीम के लिये असाध्य हो। वे क्या नहीं करसकते ? उन्हीं के बल पौरुष के भरोसे हम लोगों ने बनवास के बारह वर्ष बिताये हैं। इसलिये वीरवर भीमसेन को सात्यकि और अर्जुन के पास भेजने से उन्हें अवश्य सहायता मिलेगी। मन ही मन इस तरह निश्चय करके युधिष्ठिर ने भीम के पास रथ ले जाने की आज्ञा दी। उनके पास पहुँच कर उन्होंने कहा—

हे भीम ! जिस वीर ने एक ही रथ की सवारी से देव, दानव और गन्धर्वों को परास्त किया है, उन्हीं तुम्हारे भाई अर्जुन का ध्वज दण्ड अब और नहीं देख पड़ता। यह कहते कहते युधिष्ठिर मोहित हो गये। दुःख से उनका कण्ठ भर आया। भाई की यह दशा देख भीम घबरा उठे। उन्होंने कहा—

हे धर्मराज ! हमारे जीते ही आप इतने कातर क्यों हो रहे हैं ? पहले जब कभी किसी कारण से हम घबरा जाते थे तब आप ही हमें धीरज देते थे। पर आपका इस तरह दुखी होना हम किसी तरह नहीं सह सकते। इस समय इस शोक को दूर करके आज्ञा दीजिये हमें कौन काम करना होगा ?

यह सुन कर युधिष्ठिर कुछ शान्त हुए। उन्होंने कहा—हे भीम! जयद्रथ को मारने के लिये आज सूर्य्योदय होते ही अर्जुन ने कौरवों की सेना में प्रवेश किया था। अब सायङ्काल हुआ चाहता है, वे लौटे नहीं। अर्जुन के धनुष का टङ्कार सुनाई नहीं पड़ता है, केवल कृष्ण के पाञ्चजन्य शंख की ध्वनि सुनाई पड़ती है जिससे यह मालूम होता है कि वे हम लोगों का आह्वान कर रहे हैं। यही समझ कर हमने सात्यकि को वहाँ भेज दिया। इन्हीं कारणों से मारे शोक के हम जल रहे हैं। यदि हमारी बात मानना तुम अपना कर्त्तव्य समझते हो तो उनकी रक्षा के लिये तुम शीघ्र जाओ।

भीम ने कहा—महाराज! अर्जुन के लिये कोई चिन्ता की बात नहीं। पर आपकी आज्ञा मानना हमारा धर्म है। इसलिये हम जाते हैं। उनके पास पहुँच कर हम शीघ्र ही आपको ख़बर देंगे।

इसके बाद सेनापति धृष्टद्युम्न से कह कर भीमसेन ने प्रस्थान किया। उन्होंने अस्त्र शस्त्र लेकर चलते समय शंखध्वनि करके बड़े ज़ोर से सिंहनाद किया। हवा के समान जानेवाले घोड़ों के रथ पर सवार होकर कौरवों की सेना को मारते काटते और वे राह रोकने वालों को हटाते हुए बड़े वेग से उस व्यूह की ओर दौड़े जिसके द्वार की रक्षा द्रोणाचार्य बड़ी सावधानी से कर रहे थे।

उन्हें आते देखकर द्रोणाचार्य ने कहा—हे भीम! बिना हमारे जीते अब तुम व्यूह में नहीं धँस सकते। हमारी कोमलता के कारण अर्जुन भाग कर निकल गया पर तुम्हारा जाना असम्भव है।

भीम ने कहा—हे आचार्य! आप सब प्रकार से हमारे पिता के समान मान्य हैं। परन्तु इस समय आप शत्रुओं का पक्ष लेकर हमसे युद्ध कर रहे हैं, इससे सुन लीजिये। हम अर्जुन नहीं, किन्तु प्रसिद्ध भीमसेन हैं। आपको जीत कर तब व्यूह में प्रवेश करेंगे।

यह कह कर पराक्रमी भीमसेन ने कालदण्ड के समान गदा घुमाकर आचार्य पर फेंकी। उससे बचने का कोई उपाय न देख कर द्रोण तत्काल रथ से कूद पड़े। पर उस गदा के आघात से रथ, सारथि और घोड़े चूर चूर होगये। दुःशासन ने आचार्य को अपने रथ पर बिठा लिया और भीम पर शक्ति चलायी। उसे व्यर्थ करके भीम ने प्रलय मचा दी। असंख्यों वीरों को काटते मारते वे प्रचण्ड आँधी की तरह व्यूह के पिछले हिस्से तक पहुँच गये।

वहाँ जाकर भीम ने देखा कि भोज और काम्बोज राज के दल के साथ सात्यकि घोर युद्ध कर रहे हैं। भीम को यह अच्छा अवसर मिला। वे चुपचाप शकटव्यूह को पार करके निकल गये, किसी ने उन्हें न देखा। आगे जाते ही उन्हें अर्जुन का कपिध्वज रथ कृष्णार्जुन सहित देख पड़ा। तब उन्होंने वर्षाकाल के मेघ के गम्भीर गर्जन के समान भयङ्कर सिंहनाद किया।

कृष्णार्जुन ने भीम की आवाज़ पहचान ली। भीम को अपनी सहायता के लिये आया हुआ देखकर वे लोग बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने भीम के सिंहनाद का उत्तर हर्ष सूचक ध्वनि से दिया। धर्मराज भी इस गर्जन को सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। वे भीम की प्रशंसा कर मन ही मन कहने लगे—

भीम ने सचमुच ही हमारी आज्ञा का पालन करके अर्जुन का कुशल समाचार हमें ज्ञात कराया। शत्रुओं पर विजय पानेवाले अर्जुन के सम्बन्ध में जो हम इतना घबरा रहे थे, वह हमारी घबराहट अब दूर हो गई। हमारे मन में जो अनेक प्रकार की चिन्ताएँ हो रही थीं, वे सब इस समय निर्मूल हो गईं।

व्यूह को पार करके भीम को निकल जाते देख धृतराष्ट्र के पुत्रों ने जीने की आशा छोड़ दी और उन पर पीछे से फिर आक्रमण किया। यद्यपि वे लोग बहुत अधिक थे, तथापि महाबली भीम ने उनकी अधिकता की कुछ भी परवा न करके अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार एक एक को यमपुरी

भेजना आरम्भ कर दिया। इस प्रकार जब धृतराष्ट्र के इकतीस पुत्र मारे जा चुके तब भीम का सामना करने के लिये महापराक्रमी कर्ण सूचीव्यूह से निकल कर आगे आये।

तब दोनों वीरों में महा घोर युद्ध होने लगा। कर्ण अस्त्रविद्या में बहुत प्रवीण थे ही, उन्होंने भीम के चलाये हुए सारे अस्त्र शस्त्रों को काट कर टुकड़े टुकड़े कर डाला। भीम ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर कर्ण के घोड़े और सारथि को मार गिराया। कर्ण भी बाणों से व्यथित हो कर वृषसेन के रथ पर चले गये। भीम और सात्यकि से अपनी सेना को परास्त होती देख दुर्योधन द्रोणाचार्य के पास जाकर बोले—

हे आचार्य! अर्जुन, सात्यकि, भीम, तीनों ही आपको जीत कर जयद्रथ के पास पहुँच गये। समुद्र के सूखने के समान आपका पराजित होना हुआ है। अब तो हम कर्त्तव्यमूढ़ हो गये हैं, किससे क्या कहें?

दुर्योधन की बात सुनकर द्रोण ने कहा—हे दुर्योधन! तुम्हारा कहना झूठ नहीं है। हमें जीत कर वे सब वहाँ गये हैं। तुमने जितने अनर्थ किये हैं, यह सब उन्हीं का फल है। शकुनि की नीच सलाह में पड़कर तुमने पाण्डवों का अधिकार छीन लिया। अब युद्ध के जुआ में तुम धर्मराज को जीत सको, तब तारीफ़ है। आज के जुआ का खिलाड़ी अर्जुन है और जयद्रथ का दाँव लगा हुआ है। यह भयङ्कर जुआ अब शकुनि के अधिकार में नहीं है। इसलिये सामने वीरों को लेकर जाओ और युद्ध करो। हार जीत ईश्वराधीन है। हम यहाँ रहकर पाण्डव वीरों का मुक़ाबला करते हैं।

यह सुनकर दुर्योधन बड़े बड़े वीरों को साथ लेकर अर्जुन के सामने चले। रास्ते में अर्जुन के पृष्ठरक्षक उत्तमौजा और युधामन्यु से घोर संग्राम होने लगा।

इधर कर्ण दूसरे रथ पर चढ़ कर भीम से युद्ध करने लगे। भीम ने देखा कि कर्ण के साथ धनुष बाण लेकर युद्ध करना व्यर्थ है। इससे ढाल तलवार लेकर वे रथ से उतर पड़े, तब कर्ण ने अस्त्र द्वारा उनकी ढाल तलवार काट डाली। इससे भीम को बड़ा क्रोध आया और उन्होंने कर्ण को एक घूँसा मारा। इच्छा तो उनकी हुई कि जान से मार डालें, पर अर्जुन की प्रतिज्ञा का स्मरण कर उन्होंने छोड़ दिया। तब तक कर्ण ने अनगिनत बाण मार कर भीम को मूर्च्छित कर दिया। जब वे मूर्च्छित हो गये तब कर्ण अपने रथ से कूद कर उनके पास आये। उस समय वे चाहते तो भीम को जान से मार डालते, पर वे कुन्ती से प्रतिज्ञा कर चुके थे कि अर्जुन को छोड़ कर अन्य पाण्डवों का बध हम न करेंगे। इस कारण वीराग्रणी कर्ण ने भीम का बध करना उचित न समझा। कर्ण अपने धनुष से उन्हें खोदने लगे। इससे क्रोधित सिंह के समान भीम ने उठ कर उनके मस्तक में एक घूँसा फिर जमाया। तब कर्ण ने हँस कर कहा—

अरे लड़के! तू युद्ध के योग्य नहीं है। तू बहुत खा खा कर केवल फूला हुआ है। तू युद्ध का काम छोड़कर मुनियों की तरह वन में रह। मेरे समान वीरों के साथ युद्ध की चाहना न कर।

तब भीमसेन ने हँस कर कहा—रे सूतपुत्र! अनेकों बार हम तुझे हरा चुके हैं, वह सब समझ कर भी तुझे लज्जा नहीं आती। हम आज मूर्छित हो गये इतने ही से तू बढ़ बढ़ कर बातें करता है। यदि तू अपने को बलवान् समझता है तो आ, हमसे मल्लयुद्ध कर। जैसे हमने कीचक का बध किया था, वैसे ही तुझे पछाड़ कर गिरावेंगे।

कर्ण भीम के बल को जानते थे, इससे सब के सामने मल्लयुद्ध करना उन्होंने उचित न-

समझा और अस्वीकार कर दिया। उन्हों ने चुपके से वहाँ से प्रस्थान किया। इस बीच भोज और काम्बोज लोगों को हराकर सात्यकि अर्जुन के पास जाने लगे। कृष्ण ने उनको दूर से देख कर कहा—

हे अर्जुन! तुम्हारे प्रिय शिष्य सात्यकि बड़ी बहादुरी दिखा कर तुम्हारी सहायता के लिये आ रहे हैं।

अर्जुन इस बात को सुन कर प्रसन्न न हुए। उन्हों ने कहा—हे केशव! हमने सात्यकि को धर्मराज की रक्षा का भार सौंपा था। तब फिर क्यों वे हमारे पास आ रहे हैं? इसके सिवा थके हुए घोड़े और प्रायः चुके हुए अस्त्र लेकर इस शत्रुओं से परिपूर्ण स्थान में आकर सात्यकि करेंगे क्या? इस समय हमें सिर्फ़ जयद्रथ के वध की चिन्ता है और कोई काम हमें न करना चाहिये। परन्तु सात्यकि के आने से अब हमें उनकी रक्षा भी करनी होगी, और इसमें व्यर्थ समय का नाश होगा। जान पड़ता है धर्मराज की भी बुद्धि मारी गई है। द्रोण से न डर कर उन्हों ने व्यर्थ ही सात्यकि और भीम को हमारे पास भेजा है। यह काम उनसे नहीं बना।

इस प्रकार अर्जुन कह ही रहे थे कि सात्यकि को आगे बढ़ने से रोकने के लिये विकट वीर भूरिश्रवा दौड़ पड़े। भूरिश्रवा उस समय बड़े जोश में थे। पर सात्यकि बहुत थके हुए थे। मतवाले हाथी की तरह वे सात्यकि पर टूटे और बात की बात में उनके सारथि को मार कर रथ को चूर चूर कर डाला। सात्यकि बिना रथ के होकर ज़मीन पर आ रहे। तब कृष्ण ने फिर कहा—

हे अर्जुन! देखो, यादवश्रेष्ठ सात्यकि इस समय कैसी विपद में हैं। तुम्हारे ही कारण तुम्हारे प्यारे शिष्य की यह दशा हुई है। इसलिये शीघ्र उनकी रक्षा करो।

युधिष्ठिर को छोड़ कर चले आने के कारण एक तो अर्जुन सात्यकि पर नाराज़ थे, दूसरे भूरिश्रवा का उत्तम युद्ध कौशल देख कर मन ही मन प्रसन्न हो रहे थे। इस से न तो कृष्ण की बात का उन्हों ने कोई उत्तर दिया और न सात्यकि को बचाने का कोई प्रयत्न ही किया।

इसके अनन्तर रथहीन सात्यकि के पास पहुँच कर कृष्ण और अर्जुन के सामने ही भूरिश्रवा ने उन्हें लात मार कर ज़मीन पर गिरा और उनके बाल पकड़ कर मियान से तलवार निकाली। अब क्या हो! जिस हाथ से भूरिश्रवा ने सात्यकि के बाल पकड़ रक्खे थे, उस हाथ समेत सात्यकि ने अपने मस्तक को तलवार की धार बचाने के लिये इधर उधर घुमाना आरम्भ किया। तब रथ को और पास ले जाकर कृष्ण ने कहा—

हे अर्जुन! सात्यकि तुम्हारे ही समान वीर हैं। परन्तु इस समय भूरिश्रवा के हाथ में पड़ कर देखो, प्राण खोना चाहते हैं। हे महाबाहु! उनकी ज़रूर रक्षा करो।

तब अर्जुन ने देखा कि शिष्य की विपद की और अधिक उपेक्षा करने से काम न चलेगा। अब सात्यकि की प्राणरक्षा का उपाय करना ही होगा। अर्जुन ने कहा—

हे केशव! हम एकाग्रचित्त होकर जयद्रथ के बध की चिन्ता करते थे, इसी से हमने भूरिश्रवा को न देखा। यद्यपि इन दो वीरों के पारस्परिक युद्ध में दख़ल देना उचित नहीं, तथापि इस समय हम भूरिश्रवा पर ज़रूर प्रहार करेंगे।

यह कह कर अर्जुन ने एक छुरे की धार के समान तेज़ बाण गाण्डीव पर रक्खा। उसका छूटना था कि तलवार और बाजूबन्द समेत भूरिश्रवा के दोनों हाथ कट कर ज़मीन पर गिर पड़े। बिना हाथों के हो जाने से भूरिश्रवा युद्ध के काम के न रहे। तब सात्यकि को छोड़ कर भूरिश्रवा अर्जुन को इस प्रकार धिक्कारने लगा—

हे अर्जुन ! प्रसिद्ध वीर होकर भी तुमने यह कैसा निन्दित काम कर डाला ! जिस समय और सब कहीं से अपने मन को खींच कर हम दूसरे काम में लगे थे, उस समय हमारे दोनों हाथ काट कर तुमने बड़ा ही अधर्म किया है । ऐसी अवस्था में शस्त्र चलाने का उपदेश तुम्हें किसने दिया है ? इन्द्र ने दिया है कि शिव ने अथवा द्रोणाचार्य्य ने दिया है ? तुम क्षत्रियों में श्रेष्ठ माने जाते हो और दूसरे वीरों की अपेक्षा तुम्हें क्षत्रियधर्म का ज्ञान भी अधिक है । ऐसी दशा में भी तुम्हारे भ्रष्ट होने का कारण यह है कि पतित वृष्णिवंश के लोग तुम्हारे सलाहकार मिले हैं । फिर गोप जिसके मंत्री हों उसकी बुद्धि क्यों न भ्रष्ट हो जाय । कृष्ण के साथ रहने के कारण ही तुमसे यह निन्द्य काम हुआ है ।

अर्जुन ने कहा—हे राजन् ! जो पुरुष अपने आसरे हो, उसकी रक्षा करना क्षत्रियों का धर्म है । तुम्हीं कहो, इतनी बड़ी चतुरङ्गिनी सेना से परिपूर्ण इस भीषम समरसागर में एक ही मनुष्य के साथ कैसे युद्ध हो सकता है ? अपनी रक्षा की परवा न करके दूसरों को मार डालने पर तुम उद्यत थे । क्या तुम्हें यही उचित था ? अतएव भ्रम वश यदि ऐसा काम हमसे हो गया तो आश्चर्य ही क्या है ?

भूरिश्रवा ने अर्जुन का यह युक्तिपूर्ण उत्तर मान लिया और चुप चाप बैठ जाने का निश्चय किया । सूर्य की तरफ़ दृष्टि करके वे शरशय्या पर बैठ गये और योगारूढ़ होकर मौनव्रत धारण कर लिया । पराजित होने के कारण सात्यकि क्रोध से पागल हो रहे थे । उस समय उन्हें उचित अनुचित का ज्ञान न रह गया । अतएव उन्होंने उस तरह चुप चाप बैठे हुए भूरिश्रवा का सिर तलवार से काट लिया । सात्यकि को ऐसा नीच काम करते देख चारों तरफ से लोग उनकी निन्दा करने लगे । अर्जुन को भी सात्यकि का यह काम अच्छा न लगा । मन ही मन भूरिश्रवा की प्रशंसा करते करते उन्होंने जयद्रथ की तरफ़ अपना रथ फेरा ।

जिस समय अर्जुन ने इसके पहले कौरवों की सेना को पार किया था, उस समय उनके दोनों चक्ररक्षक उनके साथ उस सेना समुद्र को पार न कर सके थे । परन्तु पीछेसे युधामन्यु उत्तमौजा दोनों ही कौरवी सेना को पार कर गये और अर्जुन को ढूँढ़ते हुए धीरे धीरे सेना के बाहरी भाग से आकर वहाँ उपस्थित हुए । भीम और सात्यकि दोनों के रथ टूट गये थे इससे इन चक्ररक्षकों को देखकर वे बड़े प्रसन्न हुए । वे इनके साथ एक ही रथ पर सवार होकर अर्जुन के पीछे पीछे चले । तब जयद्रथ की रक्षा करनेवाले दुर्योधन कर्ण, कृप, अश्वत्थामा आदि वीर और स्वयं जयद्रथ युद्ध के लिये तैयार हुए ।

सारे दिन की चेष्टा के बाद जयद्रथ को सामने देख कर क्रोध से जलते हुए नेत्रों से अर्जुन मानों उन्हें जलाने लगे ।

दुर्योधन ने कहा—हे कर्ण ! अर्जुन के साथ युद्ध करने का अब तुम्हें अवसर मिला है । अतएव ऐसा उपाय करो जिसमें जयद्रथ की जान बचे । सूर्यास्त होने में कुछ ही देरी है । इससे यदि हम लोग अर्जुन के युद्ध में विघ्न डाल सकें तो जयद्रथ की प्राणरक्षा भी हो जाय और अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार अर्जुन के जल मरने से युद्ध में हमारी जीत भी हो जाय ।

कर्ण ने कहा—महाराज ! इसके पहले ही महाबल शाली भीमसेन के साथ युद्ध करने में हमारा शरीर बेतरह घायल हो चुका है । खैर कुछ भी हो, आप के लिये हम जब तक प्राण धारण किये हुए हैं, जहाँ तक हो सकेगा अर्जुन को रोकने की चेष्टा करेंगे ।

इतने में जयद्रथ के पास पहुँच जाने के लिये अर्जुन ने कौरवों की सेना का संहार आरम्भ कर दिया। वीरों की भुजाएँ और मस्तक काट काट कर उन्हों ने रुधिर की नदियाँ बहादीं। अन्त में जयद्रथ को अपने पीछे करके दुर्योधन, कर्ण, शल्य, कृप और अश्वत्थामा ने अर्जुन पर आक्रमण किया। इसके साथ ही कौरवों के अन्यान्य वीर भी सूर्य को लाल रङ्ग धारण करते देख बड़े उत्साह में आकर अर्जुन पर अनन्त बाण बरसाने लगे।

महा पराक्रमी अर्जुन ने क्रोध में आकर पहले तो सब के आगे बढ़कर युद्ध करनेवाले कर्ण के सारथि और घोड़ा को मार गिराया। फिर कर्ण के मर्मस्थानों को बाण से छेद कर उन्हें बेतरह घायल कर दिया। कर्ण का सारा शरीर लोहू से लथपथ हो गया। उनका रथ बेकाम हो चुका था इससे उन्हें अश्वत्थामा के रथ पर सवार होना पड़ा। तब अर्जुन अश्वत्थामा और मद्रराज के साथ युद्ध करने लगे। कौरवों ने इस बीच में बाणों की इतनी बर्षा की कि चारों तरफ़ अन्धकार छा गया। अर्जुन ने इस अन्धकार को दिव्यास्त्र द्वारा दूर कर दिया। इस प्रकार अपने शत्रुओं के प्राण और यश दोनों का नाश कर के वीर श्रेष्ठ अर्जुन युद्ध के मैदान में साक्षात् काल के समान विचरण करने लगे।

इन्द्र के वज्र के प्रचण्ड गर्जन के समान गाण्डीव का टङ्कार सुनकर तूफ़ान आने से क्षुब्ध हुए सागर के समान कौरवों की सेना में बेतरह खलबली मच गई। चारों तरफ़ सेना तितर बितर हो गई। परन्तु प्रधान प्रधान कौरव वीरों ने जब देखा कि अब सुर्यास्त होने में बहुत देर नहीं है, तब वे ख़ुशी के मारे फूल उठे और अपने अपने रथों को एक दूसरे से भिड़ाकर जयद्रथ की रक्षा करने में बड़ी तत्परता दिखाने लगे। ख़ूब जी कड़ा करके और मन लगा कर उन्होंने अर्जुन के बाणों का निवारण किया। इससे वीरवर अर्जुन को जयद्रथ पर आक्रमण करने का ज़रा भी अवसर न मिला।

तब कृष्ण ने अर्जुन से कहा—हे पार्थ! जबतक ये कर्ण आदि छे महारथी जीवित हैं, तब तक तुम जयद्रथ का बध न कर पाओगे। दिन अब बहुत थोड़ा रह गया है, इससे समझ कर काम करने की आवश्यकता है। हम सूर्य को अन्धकार में छिपा देते हैं और शत्रुलोग यह देखकर ख़ुशी मनाने लगेंगे। तब तुम अवसर देखकर तुरन्त जयद्रथ का बध कर डालना।

यह कहकर उन्होंने सूर्य को छिपा दिया, कौरवों ने भी जाना कि सूर्यास्त हो गया। जयद्रथ भी व्यूह के बाहर होकर प्रसन्न हुए। तब कृष्ण ने फिर कहा—हे अर्जुन! इस अवसर को तुम हाथ से न जाने दो। तुरन्त ही जयद्रथ का सिर धड़ से अलग कर दो।

इतनी बात सुनते ही अर्जुन जयद्रथ के रथ के सामने तत्काल ही दौड़ पड़े। जो लोग जयद्रथ की रक्षा करते थे वे पहले की तरह सावधान तो थे ही नहीं। इससे जयद्रथ को घेर कर खड़े होने का उन्हें अच्छा अवसर न मिला। अर्जुन को क्रोध से भरे हुए आते देख सैनिक लोग भी डर गये और उन्हें घुस जाने के लिये राह दे दी। तब वे अभिमन्यु के मृत्यु के कारणीभूत जयद्रथ के पास पहुँच गये और अपना होंठ दाँतों से काटते हुए एक अत्यन्त भीषण बाण छोड़ा। बाज़ जैसे किसी चिड़िया को लेकर उड़ जाता है, उसी प्रकार गाण्डीव से छूटा हुआ वह बाण जयद्रथ के मस्तक को ले भागा।

तब सूर्य का प्रकाश फिर ज्यों का त्यों हो गया। सब ने देखा कि सूर्यास्त होने के पहले ही अर्जुन ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की है।

उस समय जीत की सूचना देने के लिये कृष्ण ने अपना पाञ्चजन्य शंख बड़े ज़ोर से बजाया और भीम ने महा घोर सिंहनाद करके पृथ्वी आकाश को भर दिया। उसे सुन कर युधिष्ठिर समझ गये कि जयद्रथ का बध हो गया। इससे उन्हें परम आनन्द हुआ। उन्होंने दुन्दुभी आदि बाजे बजवा-

कर उनकी ध्वनि से दिशाओं को कँपा दिया। इसके बाद अर्जुन को हृदय से लगा कर कृष्ण ने कहा—

हे धनञ्जय ! हम लोगों को अपना भाग्य सराहना चाहिये क्योंकि तुम जयद्रथ को मारकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर सके। कौरवों की इस विशाल सेना में देवताओं के सेनापति स्वामिकार्त्तिक उतर पड़ते तो उन्हें भी व्याकुल होना पड़ता। तुम्हारे सिवा और किसी के हाथ से यह काम होने योग्य न था।

अर्जुन ने कहा—हे नाथ ! आपकी ही दया से हम इस कठिन प्रतिज्ञा को पूरी कर सके हैं। जिसके सहायक आप हैं, उसकी जीत होने में आश्चर्य ही क्या ?

इसके अनन्तर धीरे धीरे रथ चलाकर कृष्णजी पाण्डवी सेना की तरफ़ लौटे। युधिष्ठिर के पास रथ पहुँचने पर वे रथ से उतर पड़े और बोले—

हे धर्मराज ! हमलोगों के भाग्य से वीरवर अर्जुन ने आज अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। जयद्रथ को मार कर आज वे अपनी महा भयङ्कर प्रतिज्ञा की फाँस से छूट गये।

कृष्ण के वचन सुन कर युधिष्ठिर भी रथ से उतर पड़े और दौड़ कर कृष्णार्जुन को गले से लगा लिया। वे बोले—हे वासुदेव ! आपकी सहायता पाकर संसार में कौन ऐसा कार्य है जो सफल नहीं हो सकता। आप जो चाहते हैं वही होता है। आज आपके ही अनुग्रह से अर्जुन को विजय मिली है। उनको विजयी बनाने के लिये ही तो आप उनके सारथि हुए हैं।

इस प्रकार कृष्णजी की स्तुति करके युधिष्ठिर ने भीम सात्यकि आदि वीरों को भी गले लगाया। सब लोग आनन्द सागर में मग्न हो गये।

द्रोण का देहावसान।

इधर जयद्रथ के मारे जाने से दुर्योधन बहुत अधीर हो गये। उनकी आँखों से आँसू बहने लगा। मुखाकृति बिगड़ गई। बहुत ही दीन वदन होकर दाँत उखाड़े गये साँप की तरह वे ठंढी साँस लेने लगे और धीरे धीरे द्रोणाचार्य के पास जाकर बोले—

हे आचार्य ! अर्जुन, भीम, सात्यकि आदि आपको जीतकर निर्भय हमारे व्यूह में घुस आये और असंख्य राजाओं तथा योद्धाओं का संहार कर डाला। जयद्रथ को मार कर अर्जुन ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी करली। कोई भी हमारी सेना का वीर जयद्रथ की रक्षा न कर सका। जिन कर्ण आदि महारथियों की अद्वितीय वीरों में गिनती है, वे भी खड़े भौचक्के से देखते रह गये। आज कर्ण के सात्यकि द्वारा परास्त होने से हमारे मन में बड़ी ग्लानि उत्पन्न हुई है। हाय ! हाय ! हमारे लिये हमारे प्रिय भाइयों का और बड़े बड़े राजाओं का अनायास संहार हो रहा है। जैसा पापकर्म हमने किया है उसी का फल मिल रहा है। हे आचार्य ! हमें आपका बड़ा भरोसा था। पर आप भी अर्जुन पर कृपा रखने के कारण हमारा कार्य नहीं कर रहे हैं।

यह सुन कर द्रोणाचार्य ने कहा—हे दुर्योधन ! अपने वचन रूपी बाणों से हमारे हृदय को क्यों बेध रहे हो ! शकुनि और कर्ण की अनुचित सलाह से सभा में तुमने द्रौपदी का अपमान किया। प्रमादवश विदुर आदि महात्माओं की बातों का तिरस्कार कर दिया। अब उसका फल प्रगट हो

रहा है, उसे भोगो। जिसने इक्कीस दिन तक परशुराम से घोर युद्ध करके उन्हें परास्त किया था, उन भीष्मपितामह को तुम्हारे देखते देखते अर्जुन ने रणभूमि में सुला दिया। तब तुमसे कुछ न करते बन पड़ा। मान लो, हमने अर्जुन पर दया करके यहाँ से चले जाने दिया। पर वहाँ कर्ण, कृप, अश्वत्थामा आदि वीरों के साथ तुमने क्या किया? अकेले अर्जुन को इतने लोग मिल कर भी न मार सके। क्यों जयद्रथ का वध होने दिया? अर्जुन के पराक्रम को जानकर भी तुम व्यर्थ हमें दोषी ठहराते हो। ब्राह्मण का युद्ध करना धर्म नहीं है। पर धर्म का आश्रय लेकर हम भी उसका फल भोग रहे हैं। अच्छी बात है, तुम्हारे हित के लिये आज रात को भी हम युद्ध करेंगे। तुम अपनी सेना की रक्षा का प्रबन्ध करो।

यह कह कर मन ही मन दुःखित द्रोण पाण्डवों की सेना के सामने चले और युधिष्ठिर पर आक्रमण किया। भीम और अर्जुन ने देखा कि आचार्य के बाणों से हमारी सेना बेतरह पीड़ित हो रही है। इससे वे दौड़ पड़े और कौरवों की सेना में घुसकर द्रोणाचार्य पर बाण बरसाने लगे।

महा भीषण संग्राम होने लगा। असंख्य वीर कट कट कर ज़मीन पर गिरने लगे। इस घोर युद्ध में जितने तरह के शब्द सुन पड़ते थे, अर्जुन के गाण्डीव के टङ्कार का शब्द उन सबसे अधिक कलेजा कँपानेवाला था। भीमसेन धनुष पर बाण रख कर धृतराष्ट्र के पुत्रों को, वज्र के आघात से गिरे हुए वृक्षों की तरह पृथ्वी पर गिराने लगे। महाधनुर्धर सात्यकि ने भी अपना बल विक्रम दिखाने में कोई कसर न की। उन्होंने अनेक प्रकार के बाण-युद्ध करके वीरों के मस्तक, हाथियों के सूँड़ और घोड़ों की गरदनें काट गिरायी। युद्ध को रात एक तो यों ही भयानक होती है। घायल वीरों, घोड़ों और हाथियों के चीत्कार के कारण उसने और भी भयानक रूप धारण किया।

युद्ध का यह हाल देख कर दुर्योधन ने कर्ण से कहा—हे मित्र! देखो इन्द्र के समान पराक्रमी पाण्डव और पाञ्चाल लोग आनन्दित हो कर किस तरह सिंहनाद कर रहे हैं। इस समय तुम्हीं हमारे पक्ष के योद्धाओं की रक्षा करो।

कर्ण ने कहा—महाराज! हमारे जीते जी आप को खेद करने का कोई कारण नहीं। पाण्डवों के साथ पाञ्चाल केकय और यादव लोग जो ये सब इकट्ठे देख पड़ते हैं उनको जीत कर आज हम आप को भारत का एक छत्रधारी राजा बनावेंगे।

यह बात कृपाचार्य्य को सहन न हुई। वे बोले—हे कर्ण! तुम तो हमें बड़े सत्यवादी मालूम हो रहे हो। दुर्योधन से तुम अपने बल विक्रम की खूब प्रशंसा कर रहे हो परन्तु अर्जुन के सामने तुम्हारी वीरता मालूम नहीं कहाँ चली जाती है। गन्धर्वों से दुर्योधन का पकड़ा जाना और विराट-पुर में गाओं के लिये अर्जुन से युद्ध करते समय हम तुम्हारा बल पौरुष देख चुके हैं। जिस प्रकार उन स्थानों में अर्जुन पर तुमने विजय पाई थी, वह सब प्रसिद्ध है। फिर भी तुमको लज्जा नहीं आती, बारबार अपनी शेखी बघारते हो। जैसे शरदऋतु के मेघ गरजते बहुत हैं पर बरसते नहीं, तुम्हारी वही दशा है। दुर्योधन के सामने झूठा प्रलाप करने से कोई लाभ नहीं है।

कृपाचार्य की बात सुन कर कर्ण ने हँसते हुए कहा—हे ब्राह्मण! समरधुरन्धर वीरों के लिये अपने मुँह अपनी बड़ाई करना उचित नहीं। पर आज हम गर्व के साथ कहते हैं कि अर्जुन को जीत कर सारी पृथ्वी दुर्योधन के आधीन कर देंगे।

कृप ने कहा—हे कर्ण! तुम्हारी बातों पर हमें विश्वास नहीं। तुम्हारे किये कुछ नहीं हो सकता। युधिष्ठिर सर्व गुण सम्पन्न धर्मात्मा हैं। उनमें किसी प्रकार का दोष नहीं। फिर कृष्ण

उनके सहायक हैं। जिस अर्जुन ने शिवजी को प्रसन्न करके अस्त्र पाया है, उसे जीतनेवाला पृथ्वी पर तो हमें कोई नहीं दिखाई पड़ता।

तब कर्ण ने क्रोध करके कहा—हे कृप! शिव इन्द्र आदि ने अर्जुन को अस्त्र दिये हैं, यह सही है। परन्तु इन्द्र से हमने भी अमोघशक्ति पाई है उसी से आज सब के देखते हुए हम अर्जुन का बध करेंगे। अर्जुन के बिना सब पाण्डव विकल होकर बन में चले जायँगे। तब दुर्योधन अकण्टक राज्य करेंगे। रे दुष्ट ब्राह्मण! तू पाण्डवों पर प्रेम रखता है इसीसे हमारे सामने हमारे शत्रुओं की प्रशंसा करता है। यदि फिर ऐसी बात कहोगे तो तुम्हारी जीभ निकलवा लेंगे।

अपने मामा कृपाचार्य के विषय में कर्ण को ऐसे कठोर वचन कहते सुन महा तेजस्वी अश्वत्थामा ने तलवार निकाल ली और कर्ण की तरफ दौड़े। उन्होंने कहा—

रे नराधम! बृद्ध, सर्वमान्य और प्रसिद्ध धनुर्धर कृपाचार्य ने तेरे प्रलाप को सुन कर सच्ची बात कही। उसे सुन कर तू उन पर कटुबचनों का प्रहार कर रहा है। हम अभी तेरा सिर काट कर पृथ्वी पर डाले देते हैं।

दुर्योधन ने देखा कि यह तो महा अनर्थ हुआ चाहता है। उन्होंने दौड़ कर अश्वत्थामा को पकड़ लिया और समझा बुझा कर शान्त किया। तब अश्वत्थामा ने कहा—

हे सूत पुत्र! दुर्योधन के कहने से हम तुझे छोड़ देते हैं। अर्जुन शीघ्र ही तेरा घमण्ड चूर करेंगे।

इसके बाद पाण्डवों के साथ कर्ण का भीषण संग्राम आरम्भ हो गया। इस समय बहुत रात बीत चुकी थी चन्द्रमा भी अस्त हो गये थे। महा घोर अन्धकार छाया था। तब दोनों ओर के राजाओं ने आज्ञा दी कि अन्धकार अधिक हो गया है इसले मशालें जला ली जायँ। तदनुसार असंख्य सोने की मशालें जलाई गईं। युद्ध का वह महा भयङ्कर मैदान जगमगा उठा और वीरों के हाथ में चमचमाते हुए तेज़ धारवाले हथियार बिजली की तरह अपनी दीप्ति प्रकाशित करने लगे। तब कर्ण अश्वत्थामा और कृपाचार्य ने बाण वर्षा करके पाण्डवों की सेना का नाश आरम्भ कर दिया। अपनी सेना को विचलित होते देख कर युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहा—

हे भाई! देखो, इस भयावनी रात में कर्ण ग्रीष्मऋतु के प्रचण्ड सूर्य के समान शोभित हो रहे हैं। हमारे योद्धा उनके प्रबल प्रताप को न सह कर हाहाकार कर रहे हैं। अब ऐसा उपाय करना चाहिये कि हमारी सेना की रक्षा हो।

तब अर्जुन ने आदर के साथ कृष्ण से कहा—हे जनार्दन! कर्ण के पराक्रम को देखकर धर्मराज कुछ भयभीत से हो गये हैं। साँप जैसे पैर का स्पर्श नहीं सह सकता वैसे ही युद्धस्थल में हम भी कर्ण का पराक्रम नहीं सह सकते। इससे बहुत शीघ्र हमारा रथ कर्ण के पास ले चलिये।

कृष्ण ने कहा—हे अर्जुन! इस समय कर्ण दुर्योधन के हित के लिये कराल काल के समान संग्रामभूमि में घूम रहा है। उसको रोकनेवाला कोई बीर नहीं है। इस समय तुम्हें वहाँ जाना उचित नहीं। क्योंकि इन्द्र की दी हुई अमोघ शक्ति लेकर वह तुम्हारे बध के लिये उतावला हो रहा है। हाँ, तुम्हारा पुत्र निशाचर घटोत्कच कर्ण की अच्छी तरह ख़बर ले सकता है। अतएव उसे ही कर्ण का सामना करने के लिये भेजो।

कृष्णचन्द्र की आज्ञा के अनुसार अर्जुन ने घटोत्कच को बुला कर कहा—हे पुत्र! युद्ध में अपना पराक्रम दिखाने का तुम्हारे लिये इस समय अच्छा अवसर मिला है। राक्षसी माया आदि जो कुछ बल-पौरुष तुम्हारे पास हो उससे काम लेकर कर्ण का मुक़ाबला करो।

घटोत्कच ने कहा—हे पिता! आपकी आज्ञा से हम कर्ण के साथ आज ऐसा युद्ध करेंगे जिसका स्मरण लोगों को बहुत दिनों तक बना रहेगा।

शत्रुओं के नाश में परम प्रवीण निशाचर घटोत्कच ने इतना कह कर कर्ण पर आक्रमण किया। दोनों में महा घोर युद्ध होने लगा। कर्ण किसी तरह भी घटोत्कच से पार न पा सके। तब उन्होंने दिव्यास्त्रों से काम लेना आरम्भ किया। यह देख घटोत्कच ने राक्षसी माया रची। पल भर में भयङ्कर शस्त्र धारण किये हुए राक्षसों का एक बहुत बड़ा दल न मालूम कहाँ से अचानक उमड़ आया। घटोत्कच को बीच में डाल कर उसने पत्थरों की वर्षा आरम्भ कर दी। रात्रि में राक्षसों का बल अधिक हो ही जाता है अतएव इन राक्षसों ने कौरवों की सेना के नाकोंदम कर दिया। सब वीर विकल हो उठे।

अकेले कर्ण नहीं घबराये! उन्होंने समझ लिया कि यह सब राक्षसी माया है। इसलिये उन्होंने उस माया को दिव्यास्त्र द्वारा दूर कर दिया। राक्षसों ने देखा कि अब मायावी युद्ध से काम न चलेगा। तब उन्होंने अस्त्रों की वर्षा द्वारा कर्ण के संहार की चेष्टा की। अनन्तर शर, शक्ति, शूल, गदा, चक्र आदि की मार खा कर कौरव वीरों के होश उड़ गये। बहुत सेना मारी गई। जो बची वह भाग गई। घोड़े कट गये; हाथी घबरा कर तितर बितर हो गये; पत्थरों की मार से रथ चूर चूर हो गये।

कर्ण की भी बुरी दशा हुई। राक्षसों ने अस्त्र शस्त्रों से उन्हें तोप दिया। तथापि वे मैदान में डटे ही रहे। उन्हें छोड़ कर कौरवों के पक्ष का एक भी वीर युद्धस्थल में न टिक सका, सब भाग निकले। कर्ण को स्थिर देख घटोत्कच को बड़ा क्रोध हुआ। उसने शतघ्नी का एक ऐसा वार किया कि कर्ण के चारों घोड़े एक ही साथ मर कर ज़मीन पर गिर गये। कर्ण बिना रथ के हो गये। उस समय कर्ण ने देखा कि हम तो इधर रथहीन खड़े हैं, उधर हमारी सेना युद्ध के मैदान में नहीं है। राक्षस घटोत्कच जीत के मद में मस्त हो रहा है। अब क्या करना चाहिये? इस तरह वे सोच ही रहे थे कि चारों ओर से कौरवों का दल बड़े ही कातर स्वर से इस प्रकार विनती करने लगा—

हे सूतनन्दन! जान पड़ता है कौरवों की सेना का आज ही जड़ से नाश हो जायगा। अतएव इन्द्र की दी हुई शक्ति चलाकर तुम तुरन्त ही इस निशाचर का संहार करो। यह घोर और भयङ्कर रात बीत जाने पर अर्जुन को परास्त करने के लिये हमारे वीरों को आगे बहुत मौक़े मिलते रहेंगे। इससे इस अमोघशक्ति को उनके लिये व्यर्थ न रख छोड़ कर इससे राक्षस को इसी समय मार डालिये। इसे अब और अधिक देर तक जीता न रखिये।

इस महा भयङ्कर रात में कर्ण अपने पक्षवालों की दुःख भरी पुकार की उपेक्षा न कर सके। अर्जुन के मारने के लिये बहुत दिनों से बड़े यत्न से रक्खी हुई उस अमोघ शक्ति को उन्हें हाथ में लेना ही पड़ा। बस, उसका छूटना था कि उसने घटोत्कच के हृदय को फाड़ डाला और ऊपर आकाश की तरफ़ उड़ कर इन्द्र के पास लौट गई। कौरव लोग निशाचर घटोत्कच को मरा देख मारे आनन्द के सिंहनाद करने और शंख बजाने लगे। दुर्योधन भी बड़े प्रसन्न हुए उन्होंने कर्ण की यथोचित पूजा की और उन्हें अपने रथ में सवार कराकर सेना में चले गये।

परन्तु भीमसेन के पुत्र की मृत्यु के कारण पाण्डवों को शोक से व्याकुल देखकर श्रीकृष्ण आनन्द प्रकाश करने लगे। उनके इस काम से पाण्डवों का दुःख दूना हो गया। उनके हृदय पर और भी अधिक चोट लगी। तब अर्जुन ने कृष्ण से कहा—

हे माधव! पुत्र घटोत्कच की मृत्यु से हम लोग तो मारे शोक के विकल हो रहे हैं और आप क्यों ऐसे कुसमय में ख़ुश हो रहे हैं?

कृष्ण ने कहा—हे धनञ्जय ! इन्द्र की दी हुई महाशक्ति को छोड़ कर कर्ण ने आज बहुत ही अच्छा काम किया है। कर्ण के पास इस महाअस्त्र के रहते साक्षात् यमराज भी उसका सामना नहीं कर सकते थे। महा तेजस्वी कर्ण ने अपना कवच और कुण्डल देकर जिस दिन से इस शक्ति को प्राप्त किया था, उसी दिन से उस ने इसे तुम्हारे मारने के लिये बड़े यत्न से रख छोड़ा था। हे पार्थ ! कर्ण के पास से उस शक्ति के चले जाने से अब तुम उसे मरा हुआ समझो। इसी से तुम्हें रोक कर हमने निशाचर घटोत्कच को कर्ण से युद्ध करने भेजा था। यह शक्ति तुम्हारी मृत्यु का कारण थी। अतएव जब तक इससे बचने का उपाय हम नहीं कर सके, तब तक न हमें निद्रा आई और न किसी प्रकार का हर्ष ही हुआ। आज हमारा कौशल सफल हुआ। इसी से हमें इस समय आनन्द हो रहा है।

कुछ भी हो, इस समय हमारी सेना हाहाकार करती हुई इधर उधर भाग रही है। जान पड़ता है वीरशिरोमणि द्रोण उस पर बड़ी निर्दयता से आक्रमण कर रहे हैं। अतएव हे अर्जुन ! तुम द्रोण के आक्रमण से उसकी रक्षा करो।

इस पर युधिष्ठिर ने द्रोण पर धावा करने के लिये अपनी सेना को उत्साहित किया। सैनिक लोग मन ही मन द्रोण को जीतने का प्रण करके अर्जुन के साथ बड़े वेग से दौड़े। यह देख कर राजा दुर्योधन ने बड़े क्रोध में आकर द्रोणाचार्य्य की रक्षा के लिये बहुत से कौरव वीरों को आज्ञा दी। किन्तु दोनों तरफ़ के वीरों के वाहन सारा दिन युद्ध करने के कारण बेहद थक गये थे और रात अधिक बीत जाने से योद्धाओं को नींद भी आ रही थी। इससे वे लोग चेष्टाहीन काठ की तरह युद्ध करने लगे। उनकी यह दशा देख अर्जुन ने पुकार कर कहा—

हे सैनिक वीरो ! रात बहुत बीत गई है। अँधेरा इतना हो गया है कि हाथ पसारे नहीं सूझता। इसके सिवा तुम लोग थक भी बहुत गये हो। इसलिये थोड़ी देर युद्ध बन्द करके यहीं लड़ाई के मैदान में सो जाओ।

कौरवों के सेनापति द्रोण ने भी यह बात मान ली। इस पर कौरवों और पाण्डवों के सैनिक अर्जुन की प्रशंसा करके कोई हाथी पर कोई रथ पर कोई घोड़े पर और कोई ज़मीन पर लेटकर निद्रा का सुख लेने लगे।

इसके अनन्तर नेत्रों को आनन्द देनेवाले पाण्डुवर्ण चन्द्रमा ने पूर्व दिशा की शोभा बढ़ाकर धीरे धीरे सारे संसार को अपनी चाँदनी से सफ़ेद रंग का कर दिया। उँजेला होते ही सब लोग जाग उठे और पिछली रात में फिर युद्ध के लिये तैयार हो गये। तब द्रोणाचार्य के पास जाकर दुर्योधन ने कहा—

हे आचार्य ! क्षण क्षण पर हमारी सेना घटती जा रही है और पाण्डव लोग प्रबल हुए जाते हैं। अब हम इसके कारण को पुकार कर कहते हैं कि आप प्रतिज्ञा करके अपने अनुरूप युद्ध नहीं कर रहे हैं संसार में कौन ऐसा धनुर्धर है जो आपके सामने आकर ठहर सकता है? आप जिसका बध चाहें भला वह कैसे बचा रह सकता है? आप बराबर पाण्डवों का बचाव करके युद्ध कर रहे हैं।

यह सुनकर द्रोणाचार्य ने क्रोध करके कहा—हे दुर्योधन ! एक तो हम ब्राह्मण दूसरे वृद्ध हैं। अपने बल भर युद्ध करने में कोई बात उठा नहीं रखते हैं। विजय किसी के वश की नहीं, वह तो भाग्याधीन है। फिर तीनों लोक में कौन ऐसा वीर है जो अर्जुन को जीत ले। खाण्डव बन में इन्द्र को परास्त करना, चित्रसेन और निवातकवचों को जीतना अर्जुन का प्रसिद्ध है। फिर कोई मनुष्य उन्हें जीतने का दावा करे, तो वह उसका प्रलाप-मात्र है।

अर्जुन की प्रशंसा दुर्योधन से न सही गई। उन्होंने कहा हे आचार्य! हम कर्ण और शकुनि आज अर्जुन से युद्ध करके उनका वध करेंगे। फिर द्रोण ने हँस कर कहा हे राजन्! यही उचित है। तुम्हीं तीनों अनर्थ के कारण हो, अर्जुन के वध की अवश्य प्रतिज्ञा कर लो। परन्तु ध्यान रहे, विधाता ने ऐसा वीर नहीं बनाया है जो अर्जुन का वध करके विजयी हो। अच्छी बात है तुम अपना दल लेकर अर्जुन से युद्ध करो। हम पाञ्चाल दल का मुक़ाबला करते हैं।

इसके बाद कौरवों की सेना के दो भाग हुए। एक भाग द्रोणाचार्य के, दूसरा दुर्योधन और कर्ण के आधीन हुआ। पाण्डवों के पक्ष की सेना से फिर घोर युद्ध आरम्भ हो गया। तब युधिष्ठिर ने कहा—

हे वासुदेव! अभिमन्यु की मृत्यु के सम्बन्ध में जयद्रथ का बहुत ही थोड़ा अपराध था। किन्तु अर्जुन उसका वध करके ही शान्त हुए। हमारी समझ में तो यदि किसी प्रधान शत्रु को मारने की सब से अधिक ज़रूरत है तो अर्जुन को पहले द्रोण और कर्ण का वध करना चाहिये। इन्हीं की सहायता से दुर्योधन अब तक युद्ध कर रहे हैं।

यह कह कर युधिष्ठिर ने द्रोण पर आक्रमण किया। अन्यान्य वीरों के साथ अर्जुन उनकी रक्षा करने लगे। सब से आगे द्रुपद और विराट द्रोण पर दौड़े। किन्तु द्रोण ने बिना विशेष परिश्रम के ही उनके चलाये हुए अस्त्र शस्त्रों के टुकड़े टुकड़े कर डाले। तब द्रुपद ने एक प्रास, विराट ने एक तोमर चलाया। इस पर द्रोण बेहद क्रुद्ध हुए और उन दोनों हथियारों को खण्ड खण्ड करके अपने तीक्ष्ण बाण द्वारा द्रुपद और विराट दोनों को एक ही साथ यमलोक का अतिथि बना दिया।

यह देख कर द्रुपद के पुत्र धृष्टद्युम्न ने प्रतिज्ञा की यदि आज हम द्रोण का वध न करें तो हमें उत्तम गति न मिले।

तदनन्तर एक ओर से पाञ्चाल लोगों ने और दूसरी तरफ़ से अर्जुन ने द्रोणाचार्य पर अस्त्र चलाना आरम्भ किया। परन्तु देवराज इन्द्र ने क्रुद्ध होकर जिस तरह दानवों का संहार किया था, उसी तरह वीरवर द्रोणाचार्य पाञ्चाल लोगों के प्राण हरण करने लगे। तब पाण्डवों ने कहा—

जब आचार्य पर हाथ उठाने के लिये किसी तरह अर्जुन राज़ी नहीं, तब इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि हमें आचार्य से पराजित होना पड़ेगा।

यह सुन कर कृष्णचन्द्र ने कहा—हे अर्जुन! तुम्हारे सिवा और किसी में इतना बल पराक्रम नहीं कि द्रोणाचार्य को मार सके। अतएव यदि और किसी के हाथ से आचार्य का नाश करना होगा तो बिना कोई कौशल रचे काम न चलेगा। यदि आचार्य के कान में यह बात पड़े कि अश्वत्थामा मारे गये तो वे ज़रूर ही शोक से व्याकुल होकर निस्तेज हो जायँगे। इससे कोई उनसे कहे कि अश्वत्थामा मारे गये।

इस बात पर अर्जुन ने कान ही नहीं दिया, उन्होंने अनसुनी कर दिया। परन्तु कृष्णचन्द्र के कहने से युधिष्ठिर ने उनकी सलाह बड़े कष्ट से किसी तरह मानली। खोज करने से मालूम हुआ कि अवन्तिराज के पास अश्वत्थामा नाम का एक हाथी है। अतएव सब बातों का निश्चय हो जाने पर भीमसेन ने इस हाथी को मार डाला। फिर वे मन ही मन बहुत लज्जित होकर द्रोण के पास गये और अश्वत्थामा मारे गये, अश्वत्थामा मारे गये—कह कर चिल्लाने लगे।

यह महादारुण समाचार सुन कर शोक के मारे द्रोणाचार्य विकल और विह्वल हो उठे। किन्तु अश्वत्थामा को परम पराक्रमी समझ कर पुत्र की मृत्यु पर उन्हें विश्वास न हुआ। इससे

धीरज धारण कर वे पाञ्चाल लोगों से फिर भयङ्कर युद्ध करने लगे। ब्रह्मास्त्र चलाकर उन्होंने बात की बात में बीस हज़ार रथियों को ज़मीन पर सुला दिया। वे महाभीषण रूप धारण करके बड़ी निर्दयता से पाञ्चालदल का संहार करने लगे। यह दशा देख कर कृष्ण ने युधिष्ठिर से कहा—

हे धर्मराज! यदि क्रोध के वशीभूत होकर और आधा दिन आचार्य इसी तरह युद्ध करेंगे तो निश्चय ही तुम्हारी सारी सेना मारी जायगी। अतएव तुम्हें अश्वत्थामा के मरने का समाचार द्रोण को सुनाना चाहिए। बिना तुम्हारे ऐसा किये सेना को बचाने का और द्रोण के मरने का और कोई उपाय नहीं। प्राण बचाने के लिये झूँठ बोलने से पाप नहीं होता। भीम की बात पर आचार्य को विश्वास नहीं। तुम्हारे ही कहने से उन्हें विश्वास होगा।

भीमसेन ने कहा महाराज! मालव देश के राजा इन्दुवर्मा का अश्वत्थामा नाम का एक हाथी था। हमने उसे मार कर अश्वत्थामा के मरने का शोर मचाया, पर द्रोणाचार्य को इस पर विश्वास न हुआ। इससे कृष्णजी की बात मान कर आप ही कहिये।

युधिष्ठिर ने सोचा कि भावी नहीं टलती—जो होने को होता है, वह हुए बिना नहीं रहता। उन्होंने यह भी देखा कि आचार्य धर्म अथवा अधर्म का विचार न करके बड़ी ही निर्दयता से सेना का संहार कर रहे हैं। इससे सब बातों का बिचार करके कृष्णचन्द्र के कहने के अनुसार वे काम करने को तैयार हो गये। किन्तु जब द्रोण के पास गये तब झूठ बोलने से बहुत डरे। उधर जीतने की अभिलाषा भी उनके हृदय में बड़े ज़ोर से जगी। अतएव पाप के डर और जीत की इच्छा के झूले में झोंके खाने लगे। अन्त में उन्हें एक युक्ति सूझी। अश्वत्थामा मारे गये—यह बात साफ़ साफ़ ज़ोर से कह कर—हाथी शब्द उन्होंने धीरे से कहा। पहला वाक्य तो द्रोण ने सुन लिया; परन्तु पिछला शब्द उन्हें न सुन पड़ा। इस तरह भीम की बात का युधिष्ठिर द्वारा समर्थन होने पर द्रोणाचार्य ने समझा कि अश्वत्थामा सचमुच ही मारे गये। इससे पुत्र-शोक के कारण वे अत्यन्त विकल हो गये। उनकी चेतनाशक्ति जाती रही।

ऐसा अच्छा अवसर हाथ आया देख तलवार को घुमाते हुए धृष्टद्युम्न रथ से कूद पड़े। उस समय अर्जुन को आचार्य पर दया आई। वे बार बार पुकार कर आचार्य को न मारने के लिये धृष्टद्युम्न को रोकने लगे। किन्तु धृष्टद्युम्न आचार्य के पास पहुँच गये और उनके सिर को धड़ से अलग करके ज़मीन पर गिरा दिया। आचार्य द्रोण समरभूमि में परमगति को प्राप्त हुए। उनके मरते ही कौरवी सेना में हाहाकार मच गया। सारी सेना भाग चली।

उस समय अश्वत्थामा दूसरी जगह युद्ध कर रहे थे वे बहुत कोलाहल सुन कर और सेना को विचलित होते देख दुर्योधन के पास आये और उनसे कारण पूछा। पर दुर्योधन शोक के कारण कुछ भी बोल न सके। अन्त में कृपाचार्य ने सब हाल कह सुनाया। पिता की मृत्यु सुनकर अश्वत्थामा बहुत विकल हुए। फिर क्रोध से पागल हो कर उन्होंने पाण्डवी सेना का संहार आरम्भ कर दिया।

यह देखकर युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहा—हे भाई! पिता की मृत्यु से क्रुद्ध होकर प्रचण्ड रुद्र के समान अश्वत्थामा इस समय हमारी सेना का संहार कर रहे हैं। इस समय तुम रक्षा न करोगे तो कोई न बच सकेगा।

तब द्रोण के बध से दुखी अर्जुन ने कहा—महाराज! देवतुल्य गुरु ने जब अस्त्र का त्याग कर दिया और योगक्रिया से समाधिस्थ हो गये, तब धृष्टद्युम्न ने उनका बध करके बड़ा अनर्थ कर डाला।

इस समय अश्वत्थामा धृष्टद्युम्न के बध की प्रतिज्ञा करके युद्ध कर रहे हैं, उनका मुक़ाबला करनेवाला देव दानवों में हमें कोई नहीं दिखाई पड़ता।

अर्जुन की बात से भीम बड़े क्रुद्ध हुए। उन्होंने कहा—हे अर्जुन! बनवासी मुनियों की तरह तुम कैसी बातें कर रहे हो? कर्ण आदि से तुम युद्ध करो। हम गदा लेकर अश्वत्थामा का मुक़ाबला करते हैं।

धृष्टद्युम्न ने कहा—हे पार्थ! ब्राह्मण तो उसे कहते हैं जो छहों कर्मों में रत हो। द्रोण ने तो क्षात्रधर्म ग्रहण कर अधर्मयुद्ध तक किया है। उन्होंने अधर्म ही से अभिमन्यु का बध कराया। जो सदा हमारे पिताके शत्रु बने रहे और जिनके बध के लिये ही हमारा जन्म हुआ। समय पाकर हमने उनका बध किया, इसमें अधर्म क्या है? शिखण्डी को आगे करके तुमने भीष्म पितामह का बध किया, वह तो अधर्म नहीं हुआ और इस समय शान्ति की बातें करके द्रोणबध को अधर्म कहते हो? शोक को छोड़ दो, अपना विजय समझ कर प्रसन्न होओ।

यह सुनकर सात्यकि ने क्रोध करके कहा—रे मूढ़! गुरु की हिंसा करके तुझे लज्जा नहीं आती। ऐसा कहते हुए तेरी जीभ नहीं गिर पड़ती। शस्त्र का त्याग किये हुए गुरु का बध करके अपनी बड़ी बड़ाई कर रहा है। यदि फिर इस प्रकार अविचार की बातें करेगा तो हम तेरा बध करेंगे।

धृष्टद्युम्न ने हँस कर कहा—हे सात्यकि! तुम बड़े सत्यवक्ता हो। पर तुम्हारे समान हमने कुत्सित काम नहीं किया है। जब भूरिश्रवा ने पछाड़ कर तुम्हारी छाती में लात मारा, तब तुम्हारा बल पौरुष कहाँ गया था; जो इस समय बहुत बहक रहे हो। तुम्हारा केश पकड़ने पर अर्जुन ने जब उनकी भुजाएँ काट दीं और वे निरस्त्र होकर बैठ गये तब तुमने उनका बध किया, पर वैसा पातक हमने नहीं किया है। यदि फिर ऐसे कठोर बचन कहोगे तो अपने बाणों से अभी तुम्हें ज़मीन पर सुला देंगे।

यह सुन कर सात्यकि गदा लेकर धृष्टद्युम्न को मारने दौड़े। पर कृष्णचन्द्र ने पकड़ कर दोनों को समझा बुझा कर शान्त किया।

उधर अश्वत्थामा नारायणास्त्र का प्रहार करके पाण्डवी सेना का निपात करने लगे। उन्होंने अपने बाणों से धृष्टद्युम्न को मूर्च्छित कर दिया। अपनी सेना को विचलित देख कर अर्जुन आगे बढ़े। उन्होंने अश्वत्थामा के सारे अस्त्रों को व्यर्थ कर दिया। अश्वत्थामा अपने अस्त्रों को व्यर्थ होते देख अपनी सेना में लौट आये। पाण्डव लोग भी प्रसन्नता पूर्वक अपने शिविर में लौट गये।

इसके अनन्तर प्रति दिन के नियम के अनुसार रात होने पर सञ्जय धृतराष्ट्र के पास गये और आचार्य के मारे जाने का हाल उनसे कहा। उस महाशोकदायक समाचार को सुन कर धृतराष्ट्र को इतना दुःख हुआ कि उसका वर्णन नहीं हो सकता। वे बेतरह कातर और विकल हो उठे। कुछ देर तक वे काठ की तरह चेष्टाहीन बैठे रहे। उन्होंने पुत्रों की जीत की आशा छोड़ दी। शोक का वेग कुछ कम होनेपर उन्होंने पूछा—हे सञ्जय! द्रोणाचार्य तो बड़े विचित्र योद्धा थे। शस्त्र चलाने में उनके समान बीर इस संसार में नहीं देख पड़ता। फिर धृष्टद्युम्न उन्हें किस तरह मार सके। हमारे मूढ़ पुत्रों को जिनके बल विक्रम का इतना भरोसा था उन्हीं शूरशिरोमणि उग्रकर्मा द्रोणाचार्य ने दुर्बुद्धि दुर्योधन के लिये प्राण छोड़ दिया! इस समय हम बल पौरुष को व्यर्थ और भाग्य ही को प्रधान समझते हैं।

इसके उत्तर में द्रोणाचार्य के युद्ध और मृत्यु का वर्णन विस्तार-पूर्वक करके सञ्जय ने कहा—

महात्मा द्रोणाचार्य ने दुर्योधनके कल्याण की इच्छा से पाण्डवों की दो अक्षौहिणी सेना को मार कर अनेक बड़े बड़े योद्धाओं को यमपुरी भेजा और कितनेही महारथी वीरों का मान मर्दन किया। ऐसे न मालूम कितने महा कठिन काम कर के सब लोगों को दारुण दुःख देकर प्रलयकाल के जलते हुए सूर्य की तरह परम प्रतापी आचार्य द्रोण सदा के लिये इस लोक से अस्त हो गये। हमें धिक्कार है जो अपनी आँखों से यह सब देख कर भी अब तक जीते हैं। इस प्रकार संजय के मुख से आचार्य का अन्त होना सुन कर धृतराष्ट्र मन में बहुत दुखी हुए और उन्हें निश्चय हो गया कि मेरे पुत्रों की पराजय अवश्यम्भावी है।

कर्णपर्व ।

कर्ण का सेनापतित्व और भीम अश्वत्थामा युद्ध ।

द्रोणाचार्य के मारे जाने पर दुर्योधन अत्यन्त दुखी हुए। और रात ही में कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कर्ण आदि योद्धाओं को बुला कर कहने लगे—

हे बुद्धि-विशारद वीरो ! अबतो हमारी दशा बहुत ही शोचनीय हो गयी है। आचार्य के वध से मुझे बड़ी निराशा उत्पन्न हुई है; परन्तु साहस त्याग करना उचित नहीं, इसलिये अब जो कर्त्तव्य है उसकी सलाह कीजिये कि कलह शत्रु से किस प्रकार युद्ध करना होगा।

यह सुन कर अश्वत्थामा ने कहा—हे राजन्! आप शोक को त्याग कर प्रसन्नता-पूर्वक कर्ण को सेनापति बनाइये, कर्ण अकेले ही पाण्डवों की सेना को जीतने में समर्थ हैं।

अश्वत्थामा के चुप होने पर दुर्योधन ने कर्ण से कहा—हे मित्र रणधीर कर्ण! आप बुद्धि और बल के खान हैं तथा मन क्रम वचन से मेरी भलाई करने में सदा तत्पर रहते हैं। आप की ही सम्मति से हमने भीष्म और द्रोण को सेनापति बनाया था; किन्तु वे पन्द्रह दिन संग्राम करके शरीर से जर्जर हो रणभूमि में सो गये। अब एक आप के ही पुरुषार्थ से विजय की आशा है। हे तात! आप सेनापति होकर मेरी विजय कराइये। पहले जो आपने अर्जुन के बध की प्रतिज्ञा की है उसका स्मरण कीजिये। आपको युद्धस्थल में देखते ही पाण्डवों के सहित उनके सेनापति इस तरह हिम्मत छोड़ देंगे जैसे चक्र लिये हुए विष्णु भगवान को देख कर दानव भयभीत हो जाते हैं। राजा दुर्योधन की बात सुनकर कर्ण ने हँसते हुए कहा—

राजन्! आप किसी बात की चिन्ता न करें। मैं सेनापति होकर शत्रुओं से संग्राम करके अवश्य ही कलह विजय प्राप्त करूँगा।

कर्ण की बात सुन कर दुर्योधन को बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने उसी समय मंगल द्रव्यों को मँगवा कर बड़े समारोह के साथ कर्ण का अभिषेक किया और ब्राह्मणों ने आशीर्वाद दिया। इस प्रकार स्वस्त्ययन को सुन कर बुद्धिमान् कर्ण ने बहुत सा रत्न, हाथी, गाय आदि दान दिया। वह श्रेष्ठ वीर कौरवों की सेना में इस प्रकार शोभित होने लगा जैसे देवताओं की सेना में कार्त्तिकेय शोभित होते हैं।

कर्ण ने सेना को तैयार होने की आज्ञा दी। बड़े प्रातःकाल नित्यकर्म से निवृत्त होकर सब योद्धा सजधज कर रणभूमि में आ डटे। कर्ण ने अत्यन्त दुर्दमनीय मकरव्यूह की रचना की। व्यूहके सब अंगों में बड़े बड़े धनुर्द्धर उद्धत वीरों को नियत किया। कर्ण मुख पर, शकुनि आँख और अश्वत्थामा सिर स्थान पर खड़े हुए। सेना के सहित मध्यप्रदेश में दुर्योधन, बाएँ पद में ससैन्य कृतवर्मा, शल्य, त्रिगर्त आदि तथा दाहिने चरण में सेना के साथ निर्भीक गौतम सुखेण वीर स्थित हुआ। चित्रसेन, भाई और कटक के सहित अस्त्रों से सुसज्जित पुच्छदेश में युद्ध की आकांक्षा से उत्साहित होकर खड़े हुए।

इधर धर्मराज की आज्ञा पाकर वीर शिरोमणि अर्जुन ने अर्द्धचन्द्रव्यूह की रचना की। बाँई ओर रणधीर भीमसेन, दाहिनी ओर वीरवर धृष्टद्युम्न, मध्य में अर्जुन और धर्मराज स्थित हुए।

उनके पृष्ठरक्षक होकर सहदेव तथा नकुल निर्भय सेनायुक्त शोभायमान हो रहे थे। युधामन्यु, और उत्तमौजा, पाञ्चाल नरेश चक्र की रक्षा के हेतु विकराल असंख्य वीरों को साथ लिये हुए चारों ओर अपने अपने स्थान पर डटे थे।

दुन्दुभी आदि घने बाजे बज रहे थे। वीररस से उत्साहित योद्धा लोग आगे बढ़े और परस्पर भीषण युद्ध आरम्भ हो गया। पैदल से पैदल, सवार से सवार, रथी से रथी और हाथी से हाथी भिड़ गये। बरछा, शक्ति, भाला, ढेलवाँस, मुग्दर, गदा, तलवार, भलुहा और चोखे बाणों की भयंकर वर्षा होने लगी। एक पक्ष दूसरे को जीतने की इच्छा से भीषण संग्राम कर रहे थे। चारों ओर 'मारो काटो' की ध्वनि सुनाई पड़ती थी। कितने ही सिर, भुजाएँ कट कट कर धरती पर गिर रही थीं। रक्त की धारा बह चली। हाथी घायल होकर इस प्रकार गिरते हैं मानों पर्वतखंड टूट टूट अरमरा कर पृथ्वी पर गिर रहे हों।

भीम, सात्यकि, शिखंडी और धृष्टद्युम्न महारथियों ने जुट कर शत्रु की सेना के बीच धँसना चाहा, इसलिये सब साथ हो आगे बढ़े। भीमसेन हाथी पर बिराजमान हुए बाणों की वर्षा करते बढ़ रहे थे, क्षेमधूर्त्ति अपना गयन्द बढ़ा कर सामने आया और भीमसेन से भिड़ गया। उन दोनों में परस्पर बड़ा ही तुमुलयुद्ध हुआ। एक दूसरे को बाण मारते थे और असंख्यों हाथी, घोड़े, पैदलों का संहार करते थे। क्षेमधूर्त्ति का हाथी घायल होकर भाग चला, किन्तु उस वीर ने उसे फेर कर भीम के ऊपर बाणों की झड़ी लगा दी। भीमसेन के हाथी को मार डाला, फिर भीम ने भी उसके हाथी का तुरन्त बध किया। दोनों पैदल लड़ने लगे, भीम ने अत्यन्त क्रोध करके ऐसी गदा मारी कि उसकी खोपड़ी चूर चूर हो गई। क्षेमधूर्त्ति को गिरते देख कर उसकी सेना धीरज छोड़ कर भाग गई। इस विजय से पाण्डव बड़े प्रसन्न हुए।

अपनी सेना को बिचलित होते देखकर सेनापति कर्ण मन में क्रुद्ध होकर बाण बरसाने लगा जिससे पाण्डवों की सेना में हलचल मच गई। इस तरह अपनी सेना का संहार देख कर अत्यन्त क्रोध से ललकारते हुए नकुल कर्ण पर बाणवृष्टि करने लगे। अश्वत्थामा से भीमसेन तथा राजा विन्द अनुविन्द से सात्यकि, श्रुतिकर्मा से चित्रसेन, क्रोध से भरा दुर्योधन धर्मराज से, संसप्तकगण अर्जुन से, धनुर्धर कृपाचार्य गौतम धृष्टद्युम्न से, शिखण्डी से कृतवर्मा, श्रुतिकीर्त्ति से शल्य और सहदेव से दुःशासन भिड़ कर युद्ध करने लगे। परस्पर बाणों की वर्षा से दोनों दिशाओं में अन्धकार सा हो गया। कितने बाण बाणों से कट कट कर धरती पर गिर रहे थे। बड़ा भयंकर घमासान युद्ध हुआ। वीर सात्यकि ने तीखे बाण से अनुविन्द की गरदन काट डाली। कुंडल मुकुट के सहित उसका सिर ज़मीन पर जा गिरा। इस तरह भाई को मरते देख राजा विन्द ने अत्यन्त पैने साठ बाण सात्यकि को मारे, फिर सात्यकि ने बाण चलाकर उसे घायल किया। दोनों वीर ढाल तलवार से युद्ध करने लगे, वे ऐसे मालूम होने लगे मानों वृत्रासुर और इन्द्र लड़ रहे हों। सात्यकि ने अपने रणकौशल से विन्द को भी मार कर विजय लाभ की। तब वे युधामन्यु के रथ पर चढ़ गये और आगे बढ़कर केकयराज की सेना का मर्दन करने लगे। चित्रसेन और श्रुतिकर्मा दोनों सुभट इन्द्र और बलि के समान युद्ध करते हुए शोभित हो रहे थे। श्रुतिकर्मा ने चित्रसेन के हृदय में एक बाण मारा जिससे वे मूर्छित होकर गिर पड़े। होश आने पर भाला मार कर शत्रु के धनुष को काट गिराया। क्षुरप्र चलाकर चित्रसेन का सिर काट डाला वह मृतक होकर भूमि पर गिर पड़ा। फिर असंख्य बाणों की वर्षा करके शत्रु की सेना को तितर बितर कर दिया।

चित्र और प्रतिविन्ध्य का उसी तरह घमासान युद्ध हुआ। अन्त में प्रतिविन्ध्य ने चित्रभट को वज्र के समान बाण मार कर प्राण विहीन कर दिया।

इस प्रकार पाण्डव वीरों ने अपार शत्रुदल का संहार किया उधर भीम और अश्वत्थामा परस्पर क्रोध से युद्ध करते हुए एक दूसरे को पराजित करने के लिये प्रयत्न कर रहे थे। दोनों ओर से बाणों की वर्षा हो रही थी। मतवाले सिंह की भाँति दोनों योद्धा लड़ते हुए शोभित हो रहे थे। दोनों महारथियों का पराक्रम देख कर देवतागण आश्चर्य से चकित हो रहे थे। पराक्रमी भीमसेन और वीरवर अश्वत्थामा के शरीर बाणों से घावमय हो गये। शरीर, सारथी, रथ, सब रक्तमय दिखाई देने लगे। दाहिने, बाएँ, आगे पीछे घूम फिर कर अस्त्रों का प्रहार करते थे। अन्त में दोनों वीर साथ ही मूर्छित होकर गिर पड़े। चतुर सारथिगण अपनी अपनी छावनियों में दोनों को लेकर चले गये।

विजयी पार्थ ने संसप्तकों की सेना पर बाणों की वर्षा कर असंख्यों योद्धाओं का संहार कर डाला। शिर भुजा पाँव और धड़ों के कटने से धरती पट गयी। धनुष, बाण त्रिशूल, शक्ति, भलुहा, भाला, गदा और पताकायें टूट टूट कर रक्त की नदी में जलजीव के समान बहे जाते थे। बलवान् अर्जुन प्रलयकाल के रुद्र के समान शत्रुओं का विनाश कर रहे थे। अर्जुन की बहादुरी देख कर दोनों दल के योद्धा उनकी प्रशंसा करते थे। अश्वत्थामा की मूर्छा दूर हुई और वे तुरन्त रणस्थल में आये, देखा कि अर्जुन यमराज की तरह कौरवी सेना का निपात करते हैं। द्रोणतनय ने क्रुद्ध होकर धनुष्टंकार करते हुए अर्जुन के सामने आकर ललकारा कि अरे अर्जुन उन पैदल सिपाहियों को क्या मारता है ? इधर देख, मैं तेरा काल आ गया हूँ। ऐसा कह कर उन्हों ने चार बाण अर्जुन को और साठ बाण कृष्णचन्द्र को मारा, तब अर्जुन ने अपने बाणों से उनका धनुष काट गिराया।

फिर दूसरा धनुष लेकर अश्वत्थामा बाणों की वृष्टि करने लगे। दशों दिशाओं में बाण भर दिया और तीन बाण श्रीकृष्णचन्द्र को मारा। बाणों का पंजर बनाकर ब्राह्मणकुमार ने अर्जुन के रथ को तोप दिया। इस प्रकार अर्जुन को बन्धन में डाल कर वीरवर अश्वत्थामा ने प्रसन्न होकर गर्जन किया। तब अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्णचन्द्र से कहा कि यह दुष्ट ब्राह्मण मेरा संहार समझ कर ललकारता हुआ सिंहनाद कर रहा है। मैं क्षण भर में उसको बाणों की मार से विदीर्ण किये देता हूँ ऐसा कह धनुष पर बाण चढ़ा कर वर्षा करने लगे। शत्रु के सम्पूर्ण बाणों को काट कर धरती पर गिरा दिया जिस तरह कुहरे से सूर्य बाहर होते हैं उसी तरह बाणों के जाल से रहित हो अर्जुन का रथ दिखाई देने लगा। असंख्यों योद्धाओं का संहार करके पार्थ ने अश्वत्थामा पर इतने बाण बरसाये कि वह बाणों के जाल में पड़कर दिखाई नहीं देता था। फिर महाक्रोध में भर कर द्रोणनन्दन ने अर्जुन और श्रीकृष्णचन्द्र पर पाँच पाँच बाण चलाये। तब कृष्णभगवान ने कहा—हे अर्जुन। यह ब्राह्मण लोह के समान शरीरवाला काल रूप हो कर बाणों का प्रहार करता है। इसको युक्ति से परास्त करो।

कृष्णचन्द्र की बात सुन कर धनुर्द्धर अर्जुन ने तीक्ष्ण बाण मार कर अश्वत्थामा के रथ के घोड़ों को घायल कर दिया वे भयभीत हो रथ लेकर भाग निकले। ब्राह्मण वीर ने लौटाने का बहुत प्रयत्न किया; किन्तु सफल नहीं हुआ। तब अर्जुन से लड़ने की इच्छा त्याग कर कर्ण की सेना में जा मिला।

उसी समय पाण्डवी सेना के उत्तरी भाग में बड़ा हाहाकार होता सुनाई पड़ा। भगवान ने अर्जुन से कहा—उधर राजा दंड जो भगदत्त के समान श्रेष्ठ योद्धा है, वह विजय की अभिलाषा से हाथी पर सवार हो चतुरंगिनी सेना का नाश कर रहा है। वहाँ चलकर पहले उसका वध करके तब संसप्तकों का संहार पीछे करना।

इतना कह कर श्रीकृष्णचन्द्रजी रथ बढ़ा कर मगधेश्वर के सामने ले गये। वहाँ पहुँचते ही उसने बारह बाण घोड़ों को तथा सोलह सारथि को मारा। अर्जुन ने उन्हें अपने बाणों से काट कर बीच ही में गिरा दिया और पीलवान को एक ही बाण से मार डाला। तब वह राजा बाणों की वर्षा करता हुआ हाथी बढ़ाकर अर्जुन के पास पहुँच गया। धनुर्द्धर पार्थ ने ऐसा तीखा बाण मारा कि उसकी गरदन कट गई और शिर ज़मीन पर जा गिरा। फिर उसके हाथी और असंख्यों योद्धाओं का संहार किया। जिस प्रकार वृत्रासुर का संहार करके इन्द्र शोभित हुए थे, उसी प्रकार रणस्थल में अर्जुन शोभा पाने लगे। इसी तरह अर्जुन ने मगधेश्वर के भाई का वध किया फिर संसप्तकों के बीच जाकर प्रलय मचा दी।

कृष्णचन्द्र ने कहा— हे बीर अर्जुन! अब जहाँ कर्ण है वहाँ चल कर उससे युद्ध करना चाहिये। अर्जुन ने कहा— हे यदुनन्दन! मैं बाणों की वर्षा से मार्ग किये देता हूँ आप शीघ्र ही रथ कर्ण के सम्मुख ले चलें।

भगवान रथ बढ़ा कर चले और रणभूमि का दृश्य देख कर बोले हे अर्जुन! संग्राम-भूमि का अत्यन्त भीषण रूप देखो। सुवर्ण और रत्नों से जड़े हुए असंख्यों धनुष कहीं बीरों के हाथ में और कहीं अलग पड़े हुए शोभित हो रहे हैं। कितनों ही के शरीर खंड खंड हो गये हैं और कितने ही योद्धा अधमरे होकर धरती पर पड़े कराहते हैं। बहुतेरे वीर रक्त से सराबोर हुए हैं उनके शरीर में सर्प की तरह बाण घुसे दिखाई पड़ते हैं। असंख्यों ध्वजा, पहिया, जोत, छत्र और चामर कटे हुए पड़े हैं। हे पार्थ! मनुष्य, हाथी और घोड़ों का समुदाय धरती में रास्ता बन्द किये जहाँ तहाँ सदा के लिये शयन करता है। उनके शरीर से रक्त की धार बह रही है, डाकिनियाँ सद्यः शोणित पान करती हैं, उन्हें घृणा नहीं मालूम होती है। धनुष के सहित कटी हुई भुजाएँ पड़ी हैं, वे ऐसी जान पड़ती हैं मानों बहुत से राहु लड़ने के अर्थ धनुष लिये भूमि पर पड़े हों। जम्बुकों की जमात प्रसन्न हुई दिखाई देती है। धरती मज्जा, मांस, रक्त से परिपूर्ण देखी नहीं जाती है। गिद्ध, बाज, कौए आदि मांसभक्षी खग एक दूसरे से छीन कर भोजन करते हैं, दूसरे उनकी निन्दा करते देखे जाते हैं कि इस राशि में भी तुम लोगों का दरिद्रपन नहीं जाता है।

इस तरह बातें करते हुए कर्ण की सेना के समीप पहुँच गए। उस समय राजा पाण्ड्य जो अर्जुन के समान रणधीर भट थे, वे बाण बरसाते हुए कर्ण की सेना में घुसे और जहाँ कर्ण थे उसी ओर चले। इस तरह पाण्ड्य को निर्भय सेना में घुसते देख कर अश्वत्थामा ललकारते हुए आगे बढ़े और बज्र के समान बाणों की वर्षा करके पाण्ड्य की गति को रोक दिया। राजा पाण्ड्य ने तीक्ष्ण बाण मार कर ब्राह्मण को विदीर्ण कर दिया तब अश्वत्थामा ने चोट सहन कर अपने तीव्र बाणों की झड़ी लगा दी। परस्पर दोनों योद्धा विजय की कामना से भीषण युद्ध में अनुरक्त हुए। पाण्ड्य ने बाण से अश्वत्थामा के चक्ररक्षकों को मार गिराया। यह देख कर अश्वत्थामा अत्यन्त क्रोधित हो असंख्यों बाण चलाये जिससे राजा पाण्ड्य का रथ अदृश्य हो गया। फिर पाण्ड्य ने वायव्यास्त्र से समस्त बाणों को काट कर ज़मीन पर गिरा दिया। इस प्रकार दोनों रणधीरों ने परस्पर बाणों की वर्षा करके असंख्य भटों को धराशायी करते हुए हाथी घोड़े और रथों का निपात किया।

वे शत्रु के वार को बचाकर अपना प्रहार करते थे। उस समय अश्वत्थामा ने घोर गर्जन करके दो बाण मारे जिससे राजा पाण्ड्य की दोनों भुजाएँ कट गईं। फिर तीक्ष्ण बाण से उनका सिर काट डाला और राजा के बन्धुओं को भी मार गिराया। वीरवर अश्वत्थामा ने अपार सेना का संहार

किया। इस प्रकार राजा का विनाश देख कर उनकी फ़ौज में हाहाकार मच गया और बची बचाई सेना भयभीत होकर भाग गई।

राजा पाण्ड्य का मरण सुन कर अर्जुन, भीमसेन और सात्यकि आदि वीरों ने अत्यन्त कुपित होकर धावा किया। उधर अश्वत्थामा की सहायता के लिये कर्ण, कृपाचार्य और शल्य आदि अपनी अपनी सेनाओं के सहित आ पहुँचे। दोनों ओर के सुभट धरो धरो मारो मारो करते हुए भिड़ गये और तुमुल संग्राम होने लगा। भाला, तलवार, गदा, भलुहा, त्रिशूल, तीर और कटारों की चमचमाहट से आँखें चकाचौंध हो रही थीं। रथ, हाथी और घोड़ों के सवार कट कट कर धरती पर गिर रहे थे। वे वीरशिरोमणि राम और सीताराम शब्द उच्चारण करते हुए प्राण विसर्जन कर रहे थे। उस लोमहर्षण युद्ध में असंख्यों योद्धा वीरगति को प्राप्त हुए जिनका वर्णन करना असम्भव है।

नकुल-कर्ण युद्ध और सत्यसेन आदि वध।

सेनापति कर्ण ने बाणों की वर्षा करके शत्रु की सेना में भयंकर प्रलय मचा दिया। द्रुपदराज के अत्यन्त पराक्रमी पन्द्रह रथियों का संहार कर डाला और पल भर में असंख्यों हाथी, घोड़े, रथारूढ़ भटों तथा पैदलों का निपात कर दिया। पाण्डवी सेना के इतने योद्धा कट गये कि लोहू की नदी बह चली। इस तरह अपनी फ़ौज का क्षय देखकर धनुर्द्धर सहदेव, नकुल सात्यकि और वीरवर धृष्टद्युम्न बाण बरसाते हुए कर्ण के सामने आ पहुँचे। इन महारथियों को अपनी ओर आते देख कर कर्ण ने बाणों की वर्षा करके उनकी गति रोक दी। परस्पर भीषण युद्ध होने लगा। दोनों दलों से तीखे बाण, भाला, बरछा, शक्ति, ढेलबाँस, मूशल, गदा, कटार, तलवार, खड्ग, बन्दूक आदि अस्त्र शस्त्र वीर लोग रण रस में उन्मत्त हुए प्रहार करने लगे। वज्र के समान वे हथियार वीरों और वाहनों के शरीर में घुस कर पार होने लगे। असंख्यों योद्धा कट कर धरती पर गिरने लगे, कितने ही घायल होकर फिर संग्राम में तत्पर हो जाते हैं। पृथ्वी पर हाथी, घोड़े, रथी, और योद्धाओं के शव का ढेर लग गया। रक्त की नदी बहने लगी। 'मारो धरो' की ध्वनि चारों ओर से सुनाई पड़ने लगी। हाथी से हाथी, घोड़े से घोड़े, रथी से रथी और पैदल से पैदल भिड़कर मारते तथा मरते थे।

दुर्योधन की आज्ञा पाकर विहार बंगाल और मगधेश्वर हाथियों का दल लेकर बाणों की वर्षा करते हुए धृष्टद्युम्न की ओर चले। इस तरह मेकल, कोशलनाथ और निषादराज को अपनी ओर आते देख कर सेनाध्यक्ष धृष्टद्युम्न को बड़ा क्रोध हुआ। उन्हों ने साथ ही प्रत्येक हाथी और उनके सवारों को दस दस बाण मारे। सेनापति की चोट को सहन करते हुए वह दल समीप आ गया और मनुष्यों को पकड़ पकड़ सब हाथी लगे संहार करने। कितने ही को पैरों तले दबा देते थे, कितने ही को चीर डालते तथा दाँत के आघात से विनष्ट करते थे। इस तरह वीरों का संहार होते देख कर रणधीर धनुर्द्धर सहदेव, नकुल, सात्यकि, धृष्टद्युम्न, चेकितान और शिखण्डी आदि प्रधान भट अत्यन्त कुपित हो प्रचण्ड बाण बरसाने लगे। उन वीरों ने अपार बाण वृष्टि की, ऐसा मालूम होता था मानों पर्वत पर उमड़ घुमड़ कर मेघ पानी बरसा रहे हों।

विहारनरेश अत्यन्त वेग से अपना हाथी बढ़ा कर और बाणों की वर्षा करते हुए सात्यकि के सम्मुख आये। वीरवर सात्यकि ने लक्ष्य कर हाथी के मर्मस्थल में ऐसा बाण मारा कि वह धरती पर गिर कर प्राणहीन हो गया। हाथी को गिरते देख कर अंगनरेश कूदना ही चाहता था कि इतने में रणधीर सात्यकि ने तीक्ष्ण बाण से उसे काट कर दो टुकड़े कर दिया। उसी तरह

पुण्ड्नाथ अपना हाथी बढ़ा कर सहदेव पर झपटे, इधर वीरवर सहदेव ने बाण बरसा कर उसकी ध्वजा काट कर पीलवान को मार डाला । घायल पुण्ड्पति बाण चलाने लगा तब तक नकुल ने तुरन्त उसके सामने आकर साथ ही एक सहस्र तीर मार कर उसके हाथी को गिरा दिया और तीखे बाण से राजा पुण्ड् का सिर काट कर धड़ से भिन्न कर दिया । तब उड़ीसाधिपति, मेकल, निषाद, ताम्रलिप्तक और कलिंगराज आदि बड़े बड़े रणधीर योद्धा ललकार कर साथ ही नकुल पर अस्त्रप्रहार करने लगे । इस प्रकार अधर्मयुद्ध करते देख कर धृष्टद्युम्न और सात्यकि आदि वीर गण बाणों की वर्षा करते हुए नकुल सहदेव की सहायता के लिये पहुँच गये । उस समय उभय पक्ष के महारथियों और सेनाओं से तुमुल संग्राम होने लगा । एक दूसरे को तक कर अस्त्रप्रहार करते थे । किसी के हाथ पाँव, किसी के सिर, किसी की छाती कट जाती थी । असंख्यों भट बात की बात में धराशाई हो गये । सब सुभट विकराल काल के समान संहार में अनुरक्त हुए दिखाई देते थे । गजदल को विचला कर पैदलों का नाश करते हुए सब पाण्डव वीर कर्ण की ओर बढ़ने लगे ।

सहदेव को अपनी सेना का विनाश करते देख कर दुःशासन उनकी ओर दौड़ा । क्रोध से धनुष टंकार कर के बाण बरसाने लगा । उसने ललकार कर चार बाण सहदेव को मारा, वे बाण उनके शरीर में घुस कर निकल गये । फिर सहदेव गर्जन कर के आगे बढ़े और सारथि को मार कर घायल कर दिया, सारथि को मूर्छित हुआ देख कर दुःशासन क्रोध से लाल हो धनुष बाण छोड़ खड्ग लेकर सहदेव पर झपटा, उन्होंने वार बचा कर बाणों से दुःशासन को बन्दी बना दिया । खड्ग से बाणों को काट कर दुर्योधन के बन्धु ने पुनः धनुष बाण उठा लिया और साठ बाण सहदेव को मारा । वीरवर सहदेव ने उसके समस्त बाणों को टुकड़े टुकड़े कर के बीच ही में गिरा दिया । अपने बाणों की वर्षा कर के आकाश को भर दिया । फिर पाण्डव वीर ने कालदंड के समान शिलीमुख का प्रहार कर के दुःशासन को ज्ञानशून्य कर दिया, वह चेतनारहित होकर धरती पर गिर पड़ा । इस तरह बली सहदेव शत्रु को पराजित कर के रथ बढ़ा कर कौरवी सेना का काल के समान विनाश करने लगे ।

कर्ण और नकुल का सामना हुआ । नकुल ने अपना रथ आगे बढ़ा कर कर्ण को ललकारा और कहा—अरे दुष्ट ! इस अनर्थकारी कलह का मूल तूही है । तेरी ही पापबुद्धि से शीघ्र ही कौरवों का नाश होगा । आज तुझको यमलोक भेज कर मैं पिछली कसक मिटाऊँगा ।

यह सुन कर मुस्कुराते हुए कर्ण बोले—हे राजपुत्र ! तुम्हारे हृदय में अच्छी अभिलाषा है, परन्तु कायरों की भाँति प्रलाप क्यों करते हो । जो कुछ पुरुषार्थ तुममें है उसे कर के दिखाओ । पहले युद्ध कर के मेरी बराबरी प्राप्त कर सको तब अहंकार की बात मुँह से निकालो, अन्यथा व्यर्थ बकवाद मत करो । इस प्रकार कह कर बलवान् कर्ण ने नकुल को तिहत्तर बाण मारे, बदले में नकुल ने अस्सी बाण उसे मारा । परस्पर बाणों की वर्षा होने लगी । नकुल ने कर्ण के धनुष को काट गिराया और तीखे तीरों से कर्ण के शरीर को छेद डाला । सूतपुत्र की देह से रक्तप्रवाह होने लगा, फिर उन्होंने क्रोध करके नकुल के चाप को दो टुकड़े कर दिया और बाणों से नकुल का शरीर बेध दिया । बार बार परस्पर धनुष काटते, वार बचाते अस्त्रप्रहार करते थे । दोनों योद्धाओं की बाणवृष्टि से आकाश भर गया, ऐसा मालूम होता था मानों युगल धनुर्द्धर बाण के पींजड़े में बन्द हों । असंख्यों सेना कटने लगी, कर्ण ने अपने रणकौशल से नकुल के धनुष को काट कर उनके रथ के घोड़े और सारथी को मार डाला । तब नकुल ने कर्ण पर गदा चलायी, पर उस बली ने उसे टुकड़े टुकड़े कर के बीच ही में

गिरा दिया और बाण मार कर नकुल के रथ को चूर चूर कर दिया। माद्रीनन्दन को बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ। वे ढाल तलवार लिये हुए गर्ज कर कर्ण की ओर चले। सूतपुत्र ने बाणों के अघात से उनकी ढाल तलवार को काट कर सैकड़ों टुकड़े कर दिया और अपरिमित शिलीमुखों से बेध कर नकुल को जर्जर कर दिया। इतने पर भी अपनी चोट की कुछ भी परवाह न कर नकुल इस प्रकार कर्ण पर झपटे जैसे मतवाले हाथी पर सिंह टूटता है। नकुल का पराक्रम देख कर कर्ण हँसते हुए वेग के साथ रथ से कूद पड़े और नकुल के गले में धनुष डाल कर उन्हें इस तरह बाँध लिया जैसे कुपित व्याल को मदारी मंत्र से बन्धन में कर देता है। धनुष के पींजड़े में विवश करके सूतपुत्र गम्भीर वचन रूपी बाणों से नकुल को बेधने लगा—

कर्ण ने कहा—रे नकुल! तू इसी अल्प पराक्रम के भरोसे मुझ से युद्ध करने आया था? तेरी क्या सामर्थ्य है कि मुझ से विजयी होगा। तेरी माता की बात स्मरण करके मैं बध नहीं करता हूँ। जा बराबर के योद्धा से युद्ध कर, अब कर्ण के सामने प्राण गँवाने की इच्छा से कभी लड़ने के लिये मत आना। इस प्रकार नकुल को लज्जित करके कर्ण ने उन्हें छोड़ दिया, नकुल अपनी सेना में चले गये।

कर्ण रथ पर सवार हो बाणों की वर्षा करते हुए पाञ्चाल नरेश की सेना का विमर्दन करने लगे। धनुषटंकार करते हुए बारम्बार बाणों को बरसाने लगे। सेना का बेतरह विमर्दन होना देख कर उलूक भट क्रुध होकर आगे बढ़े, उनकी युयुत्सु से मुठभेड़ हुई। दोनों रणधीर अस्त्रशस्त्र चलाकर मारने लगे। उलूकने शत्रु के सारथी को बाण मार कर प्राणहीन कर दिया इससे भयभीत हो युयुत्सु भाग गया। इस प्रकार शत्रु को पराजित कर बीर वर उलूक सिंह के समान गर्जे।

शतानीक और श्रुतिकर्मा परस्पर युद्ध करते थे। शकुनि और सोमतनय दोनों प्रसिद्ध बीर मतवाले हाथी के समान गर्जन करके रणलीला में उन्मत्त हो रहे थे। शकुनि ने बाणों से सोमसुत के घोड़ों को मार गिराया। अत्यन्त क्रोध में भर कर प्रतापी सोमपुत्र रथ त्याग बड़े उत्साह के साथ शीघ्रता से इस प्रकार शकुनि पर बाण बरसाने लगे जैसे पर्वत पर मेघ बूँदों की झड़ी लगाते हैं। तब राजा शकुनि ने ललकार कर भल्लबाण मारा जिससे सोमसुत का धनुष कट गया फिर उस साहसी बीर ने ढाल तलवार ले शकुनि के बाणों को काट कर निष्फल कर दिया। शकुनि ने खड्ग को भी काट डाला तब दूसरा खड्ग लेकर सोमकुमार ने शकुनि के धनुष को दो टुकड़े कर दिया। इस प्रकार शकुनि को निरस्त्र कर वह बीर अपनी कटक में जा मिला।

कृपाचार्य से सेनापति धृष्टद्युम्न की भिड़न्त हुई। बीर शिरोमणि कृपाचार्य ने बड़ा ही पराक्रम प्रदर्शित किया। बाणों की झड़ी लगा कर धृष्टद्युम्न को पुरुषार्थ हीन कर दिया। तीरों से बिध कर वह बीर कुछ न कर सका। सेनाध्यक्ष को बाणों से जर्जरित देख कर कौरवी सेना बलवान् धृष्टद्युम्न को बधप्राय जान कर हर्षध्वनि करने लगी। सब चिल्ला कर कहने लगे कि आज आचार्य तेरा संहार किये बिना न छोड़ेंगे। पाण्डवों के दल में कौन ऐसा बीर है जो आचार्य की क्रोधाग्नि से बचावेगा। इस तरह सब बीर परस्पर कह रहे थे कि आज रणधीर ब्राह्मण इस मानी भट का बध कर डालेगा। तब धृष्टद्युम्न ने अपने सारथी से कहा कि इस प्रलयकारी विप्र के सामने मेरा कोई वश नहीं चलता है तुम रथ लौटा कर जहाँ भीमसेन हैं, वहाँ ले चलो। सारथी ने तुरन्त उन्हें बीर शिरोमणि भीम के पास पहुँचा दिया।

राजा कृतवर्मा और बीर शिखण्डी घोर युद्ध करते थे। दोनों भट एक दूसरे पर मेघ के

समान बाण वर्षा रहे थे। युगल योद्धाओं का शरीर रक्त से सराबोर हो गया था। राजा कृतवर्मा ने शिखण्डी को बज्र के समान बाण मारा जिससे वह अचेत होकर धरती पर गिर पड़ा। सारथी ने रथ पर लाद कर शिखंडी को अपनी सेना में पहुँचा दिया।

दुर्योधन ने सुना कि अर्जुन ने इस समय हमारी सेना में प्रलय मचा रक्खा है। उसने सत्यसेन, श्रुतिराज, चित्रसेन, मित्रवर्मा, मित्रदेव, शत्रुंजय, चन्द्रदेव, शिव, शाल्वगण, त्रिगर्त और संसप्तकगण आदि रणधीर धनुर्द्धर राजाओं को ससैन्य धावा करने की आज्ञा दी। सब अमर्ष से भरे अपनी अपनी फ़ौज के सहित अस्त्रप्रहार करते हुए साथ ही अर्जुन पर टूट पड़े। धनुर्धारी अर्जुन ने अपार बाणों की वर्षा करके असंख्य भटों को काट डाला। जिस प्रकार इन्द्र दैत्यों का नाश करते हैं, उसी तरह अर्जुन कौरवी सेना का संहार करने लगे। शत्रुंजय को यमलोक भेज दिया। सौश्रुति का निपात करके चन्द्रदेव को तीक्ष्ण बाण मार कर प्राणहीन कर दिया। अचूक वार करनेवाले धीरधुरीण पार्थ ने पाँच पाँच चोखे बाण मार कर अन्यान्य नरपालों को घायल किया।

राजा सत्यसेन ने फुर्ती से उछल कर श्रीकृष्णचन्द्र के बाहु पर ऐसा भयंकर भाला मारा कि वह भुजाओं को छेद कर पार हो गया और उनके हाथ से चाबुक गिर पड़ा तब अर्जुन ने क्रुद्ध हो कर कहा—

हे प्रभो ! आप चाबुक हाथ में उठाकर मेरा रथ सत्यसेन के सामने तुरन्त ले चलिये। मैं बाणों से उसका शिर कुम्हड़े के समान टुकड़े टुकड़े कर दूँगा।

यह सुन कर कृष्णचन्द्र घोड़ों को चलाकर सत्यसेन के पास जा पहुँचे। अर्जुन ने तीव्रबाणों से सत्यसेन का सिर काट कर धड़ से भिन्न कर दिया। फिर मित्रवर्मा का विध्वंस किया और मित्रसेन आदि राजाओं को पराजित करके सहस्त्रों संसप्तक वीरों का बध किया। अर्जुन ने कौरवी सेना में प्रलय काल मचा कर राजपूत क्षत्रियों के शव से धरती को पाट दिया। असंख्यों सिर कुण्डल किरीट के सहित रणभूमि में पड़े दिखाई देने लगे। कितने ही मणियों की मालाएँ और तरह तरह के आभूषण भूमि पर इस तरह शोभित हो रहे हैं जैसे रक्तवर्ण के आकाश में तारागण दिखाई देते हों। धनुष, रथ, ध्वजा और घोड़ों का वृन्द कट कर ढेर सा लगा दिखाई पड़ने लगा। अनगिनती हाथी प्राणहीन होकर धरती पर पड़े हैं। शत्रुओं के चलाये बाण, त्रिशूल, गदा, भाला, बरछा आदि रणधीर अर्जुन ने काट काट कर खलिहान लगा दिया। रक्त की धारा नदी के समान चारों ओर बहती दिखाई देने लगी।

इस प्रकार असंख्यों महारथियों का संहार होते देख कर कौरवों की बची बचाई सेना डर कर संग्रामभूमि से भाग गई। पाण्डुनन्दन शत्रुओं को जीतकर रणस्थल में प्रज्वलित अग्नि के समान शोभित हुए।

राजा दुर्योधन धनुषटंकार कर बाणों की वर्षा करते हुए धर्मराज के सम्मुख आये। प्रबल धनुर्द्धर दोनों भाई परस्पर बाणों की वृष्टि करने लगे। नये नये अत्यन्त चोखे बाणों का दुर्योधन ने युधिष्ठिर पर प्रहार किया, तब धर्मराज ने अतिशय कुपित हो तेरह बाण चला कर घोड़े, सारथी, ध्वजा और धनुष साथ ही विध्वंस करके पाँच पैने तीर दुर्योधन को मारा। धृतराष्ट्रतनय रथ से कूद कर भूमि पर खड़े हो गये और उनकी रक्षा के लिये कृपाचार्य आदि योद्धा पहुँच गये। इधर धर्मराज की रक्षा के हेतु भीमसेन आदि महाबली भट पहुँच कर बाण बरसाने लगे। कोई शक्ति, कोई भाला, बरछा, गदा और कोई मुग्दर, भलुहा आदि भाँति भाँति के भीषण अस्त्र शस्त्रों का वार करने लगे।

ललकारते हुए पैदल से पैदल, हाथी से हाथी, रथी से रथी और घुड़सवार से घुड़सवार भिड़ गये। दोनों दलों में उस समय भीषण संग्राम होने लगा। इस प्रकार जनसंहार हो रहा था, मानों प्रलयकाल के समय काल जीवों का अन्त कर रहा हो।

दुर्योधन दूसरे रथ पर सवार होकर सूत से कहा कि तुरन्त युधिष्ठिर के सामने रथ ले चलो। सुनते ही सारथी शीघ्रता से रथ चला कर धर्मराज के सामने आ पहुँचा। दुर्योधन को आते देख राजा युधिष्ठिर बड़े उत्साह से बाणों का प्रहार करते हुए उस ओर बढ़े। दोनों बन्धु धनुर्विद्या में निपुण परस्पर बाणों की वर्षा करने लगे। दुर्योधन ने बाण मार कर धर्मराज के धनुष को काट डाला, उसी प्रकार कुन्तीकुमार ने धृतराष्ट्र नन्दन के चापको टुकड़े टुकड़े कर दिया। दूसरा धनुष बाण ले लेकर पुनः नवीन उत्साह से परस्पर प्रहार करने लगे। राज्य के कारण युगल योद्धा लड़ते हुए इस तरह शोभित हो रहे हैं मानों दो मतवाले सिंह परस्पर युद्ध करते हों।

धर्मराज ने तीन बाण दुर्योधन की छाती में मारा, उसी प्रकार दुर्योधन ने शक्ति चलाई; किन्तु युधिष्ठिर ने अपने बाणों से काट कर उसे धरती पर गिरा दिया। दुर्योधन गदा लेकर झपटा, धर्मराज ने ऐसा बाण मारा कि वह मूर्छित होकर धरती पर गिर पड़ा। दुर्योधन को गिरते देख राजा कृतवर्मा ने बाणों का पंजर बना उनकी रक्षा की।

असंख्यों भट, घोड़े, हाथी कट कर रणभूमि में पड़े दिखाई देने लगे। कितने ही कटे हुए सिर धरती में गिरे मारो मारो की ध्वनि करते हैं और बहुतेरे रुंड हाथ में तलवार लिये दौड़ते दिखलाई पड़ने लगे। बहुत बीर अधमरे रणाङ्गण में पड़े कराह रहे हैं। सिर, बाहु, पाँव और अस्त्र लोहू के प्रवाह में बहे जाते दिखाई देते थे। उस बीभत्स का वर्णन करते नहीं बनता है।

सात्यकि और कर्ण का भयंकर युद्ध हुआ। जब दुर्योधन की मूर्छा दूर हुई धनुषबाण ले रथ पर चढ़ कर फिर वे रणस्थल में अर्जुन के सामने आये। दोनों ओर से बड़ी मार काट हुई। अश्वत्थामा और दुःशासन अर्जुन की ओर झपटे, किन्तु धनुर्द्धर पाण्डुपुत्र ने दोनों को बाण से बेध कर विवश कर दिया।

इस तरह राजा दुर्योधन को पार्थ से ग्रसित देख कर सेनापति कर्ण सात्यकि से युद्ध करना छोड़ अर्जुन की ओर बढ़े। आते ही घोर गर्जन कर उन्होंने तीन बाण अर्जुन को और बीस बाण श्रीकृष्णचन्द्र को मारा। फिर सात्यकि वीर ने वहाँ पहुँच कर सौ बाण साथ ही कर्ण पर प्रहार किया। वे बाण उसके शरीर को छेद कर पार हो गये। तुरन्त ही असंख्यों योद्धा वहाँ जुट गये। युधामन्यु उत्तमौजा, ससैन्य शिखण्डी, धृष्टद्युम्न, नकुल, सहदेव आदि धनुर्द्धर वीरों ने कर्ण की गति को अवरुद्ध कर दिया। उस समय सूतपूत्र बाणों के जाल से घिर गये; किन्तु महारथी कर्ण ने इस प्रकार बाणों की वर्षा आरम्भ की कि शत्रुओं के बाणों को काट कर टुकड़े टुकड़े करके सब राजाओं को साथ ही घायल कर दिया। इस प्रकार कर्ण का पराक्रम देख कर अर्जुन को बड़ा क्रोध हुआ उन्हों ने सूतपुत्र के बाणों का वारण करके उसे बाणों के पींजड़े में इस तरह बन्द कर बेबश कर दिया जैसे लोह के पंजर में काला नाग विवश होकर बँध जाता है। दोनों दलों के योद्धा घोर घमासान में अनुरक्त थे। इस प्रकार भीषण संग्राम करते वह दिन बीत गया। जब सूर्य अस्त हो गये तब युद्ध बन्द हुआ और दोनों सेनाएँ अपनी अपनी छावनियों की ओर चल पड़ीं। रणस्थल में भूत; पिशाच, डाकिनी, शृगाल आदि बिहरने लगे।

कर्णप्रतिज्ञा और शल्य दुर्योधन-विवाद।

अनन्त योद्धाओं का विध्वंस सोच कर दुर्योधन को चिन्ता के मारे नींद नहीं आई। प्रातः-काल सेनापति कर्ण आये और राजा दुर्योधन को चिन्तित देख कर बोले—

राजन्! आप शोक त्याग कर मेरी प्रतिज्ञा सुनिये। आज मैं निश्चय ही अर्जुन का बध करूँगा या वही मेरा संहार करेगा। मैं प्रण करके रणस्थल में जाता हूँ कि अर्जुन का बध किये बिना न लौटूँगा। मुझे शोक इसी बात का है कि कलह के संग्राम में डर कर अर्जुन मेरे घात में नहीं आया। उसके सिवा पाण्डवी दल में मेरी बराबरी का कोई वीर नहीं है। विश्वकर्मा ने पहले विजय नामक धनुष निर्माण किया था। इन्द्र ने दैत्यों से जीत कर उसे परशुराम को दिया जिससे उन्हों ने पृथ्वी के समस्त क्षत्रियों को इक्कीस बार पराजित किया था। वही धन्वा प्रसन्न होकर प्रसादरूप परशुरामजी ने मुझको दिया है।

हे नरेश्वर! विजय-धनुष गाण्डीव से भी बढ़ कर है। उससे आज अर्जुन को मार कर मैं आप को विजयी बनाऊँगा। जिस प्रकार वृक्ष भीषण अग्नि की आँच नहीं सह सकते उसी तरह अर्जुन मेरे बाणों की वर्षा को न सह सकेगा; किन्तु एक ही बात में हम अर्जुन से कमजोर हैं कि उसके सारथी महारथी यदुवीर हैं और मेरे पास कोई वैसा चतुर सूत नहीं है।

महाराज! शल्य कृष्ण के समान सारथीपन में प्रवीण हैं, यदि धीरधुरीण राजा शल्य इस कार्य का सम्पादन करना स्वीकार करें तो मैं निश्चय ही आप को विजय-यश देने की प्रतिज्ञा करता हूँ।

इस प्रकार कर्ण की बात सुन शोक त्याग कर धृतराष्ट्रतनय बड़ी उत्सुकता से शल्य के समीप जाकर नम्रतापूर्वक बोले—

हे शत्रुदल नाशक, धर्मधुरीण, राजाओं में सिंह मद्रनरेश! मैं आप से एक प्रार्थना करने आया हूँ। आशा है कि मेरी दीनता की ओर देख कर आप उसे स्वीकार करेंगे। उधर श्रीकृष्ण अर्जुन का सारथीपन करके उनकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार इस ओर आप कर्ण के सारथी हो रक्षा करके मुझे विजयदान दीजिये। पाण्डवों ने छल करके भीष्म द्रोण आदि उद्धत योद्धाओं का संहार किया उसका बदला लौटाने में सेनापति कर्ण सब प्रकार समर्थ हैं पर बिना चतुर सारथी के वे इस कार्य को यथोचित सम्पन्न नहीं कर सकते।

इस तरह दुर्योधन के वचन सुन कर क्रोध से आँखें लाल किये हुए राजा शल्य बोले—

हे दुर्योधन! यह आप क्या कह रहे हैं, क्या मैं योद्धा नहीं हूँ जो कर्ण को मुझ से अधिक बलवान समझ कर आप मुझे उसका सूत बनने के लिये निवेदन करते हैं? यह तो आप मेरे बाहुबल का अपमान कर रहे हैं। मैं सूतपुत्र को अपनी बराबरी का योद्धा नहीं समझता। उस सेना में जिसको आप सब से अधिक बलवान समझते हों, उसका नाम मुझे बतला दीजिये। मैं आज ही उसको मार कर और शंख बजा कर अपनी राजधानी को लौट जाऊँगा। यदि आप शत्रु की समूची सेना से लड़ने को कहिये तो अकेले ही मैं अपने बाणों के बल से प्रलय मचा दूँगा।

भला! यह तो कहिये कि कहीं सारथी का कोई क्षत्री सारथी हुआ है? वह सूतपुत्र स्वयम् सारथी है फिर उसका सारथी कौन होगा?

हे राजन्! आप जो मुझ से कह रहे हैं वह उचित नहीं है। मैं प्रसिद्ध रणधीर मद्रदेश का

तिलकधारी राजा हूँ, उससे आप सूतपुत्र का सारथी होने के लिये कहते हैं ? इतना बड़ा अपमान सह कर मैं यहाँ रहना नहीं चाहता, आज्ञा कीजिये मैं अपनी राजधानी को चला जाऊँ।

इस प्रकार कह कर राजा शल्य क्रोध से उठ कर खड़े हो गये, तब दुर्योधन उनका हाथ पकड़ कर बड़ी नम्रता से कहने लगे—

हे क्षितिपाल ! आप मेरे हृदय की सारी व्यथा जानते हैं इससे वही उपाय कीजिये जिससे शत्रु का विनाश हो। जिस प्रकार आपने अनगिनती यज्ञ करके अपार दान दिया है उसी तरह आज रणमेध करके मुझे विजययश का दान दीजिये। आप शत्रु के लिये सेल के समान हैं, इससे मेरी रक्षा का भार अपने ऊपर लीजिये। इसमें सन्देह नहीं कि दोनों सेनाओं में आप से बढ़ कर कोई भी योद्धा नहीं है और कर्ण कदापि आप से श्रेष्ठ नहीं। मैं आप को कृष्ण से अधिक समझ कर यह वर माँगता हूँ। अमर्ष त्याग मेरे हृदय का भाव अनुमान करके जो मैं माँगता हूँ उसे प्रसन्नता से दीजिये।

दुर्योधन की प्रार्थना सुन कर मद्रराज का क्रोध जाता रहा और वे दयालु होकर बोले—

हे राजन् ! आप की भलाई के लिये मैं इस कार्य को उस दशा में स्वीकार करूँगा जब कि कर्ण मेरी इस प्रतिज्ञा को मंजूर करेगा कि प्रत्येक स्थल में जो बातें मुझे रुचेंगी, वही मैं कहूँगा और उससे वह बुरा न माने।

दुर्योधन राजा शल्य की बात अंगीकार कर बोले—हे वीर शिरोमणि नरपाल ! जिस प्रकार तारकाक्ष, कमलाक्ष और विद्युन्माली त्रिपुर दैत्य के संहार के समय ब्रह्मा ने शिव जी का सारथीपन करके उनको विजयी बनाया था, उसी तरह कर्ण का सारथ्य कर आप मुझे विजय लाभ देने में समर्थ हैं। ब्रह्मा की सहायता पाकर शिवजी ने दैत्य को मार जैसे इन्द्र को स्वस्थ चित्त किया था, वैसे ही आप की सहायता से कर्ण शत्रुदल का नाश करेंगे। कर्ण पाण्डवों को जीतकर मुझे विजय यश देंगे; किन्तु यह सर्वथा आप के ही आधीन है।

आप मुझे आनन्द देने में उसी प्रकार सुयोग्य हैं जैसे पाण्डवों को कृष्ण। परशुरामजी ने जिन अस्त्रों को शिवजी से प्राप्त किया था वह सब उन्होंने कर्ण को दे दिये हैं। कर्ण धीरधुरीण और क्षात्रधर्म में अनुरक्त हैं वे सूतकुल में उत्पन्न नहीं बरन कवच कुण्डल के सहित महान् देवकुल में उत्पन्न हुए हैं।

हे राजन् ! आप मन में विचार कर देखिये कि कहीं मृगी बाघ का बच्चा जनती है ? आप कर्ण को तुच्छ मत मानिये, वे प्रधान पुरुष हैं। इसलिये आप क्रोध त्याग कर सारथी हो मुझे विजयदान दीजिये। आप कृष्ण के समान घोड़ों को चलाना जानते हैं। जब रथी से सारथी अधिक बलवान और प्रवीण होता है तब रथी की निश्चय ही जीत होती है।

दुर्योधन की प्रार्थना सुन कर राजा शल्य प्रसन्न होकर बोले—

हे धृतराष्ट्रनन्दन ! मैं आप के कहने से कर्ण का सारथी होना सहर्ष स्वीकार करता हूँ; परन्तु यह तो बताइये कि कदाचित् बली कर्ण अर्जुन का बध कर डालेंगे तब कृष्णचन्द्र गदा चक्र धारण कर अवश्य ही सेना के सहित तुम्हारा नाश करने को उतारू हो जाँयगे। उस समय उनका पराक्रम नष्ट करनेवाला तुम्हारी सेना में कोई भी सुभट नहीं है। यदि ऐसा हुआ तो आप इसका किस तरह प्रतीकार करेंगे ?

यह सुन कर दुर्योधन ने कहा—हे भूपालमणि ! कर्ण के समान पराक्रमी योद्धा जगत में कौन है ? वे सब शास्त्रों के ज्ञाता और शस्त्रविद्या में दक्ष हैं। उनके धनुष का टंकार सुन कर बड़े बड़े

रणधीर भट युद्धस्थल में धीरज त्याग देते हैं। उन्होंने अपने बाहुबल से भीम, सहदेव को परास्त कर दिया, नकुल को बाँध कर अपना बचन पालन करके उसे जीता छोड़ दिया। उन्होंने सात्यकि और घटोत्कच जैसे उद्दंड बीरों को पराजित किया है और उनके डर से अर्जुन सदा सशंक रहते हैं, भला उस कर्ण को, मनुष्य की क्या गिनती है वरुण, यम और इन्द्र तो जीत ही नहीं सकते।

उसी तरह आप भी अजेय हैं तीनों लोकों में कौन ऐसा पराक्रमी है, जो रण में आप के सामने मोह को न प्राप्त होगा? कृष्ण आप से बढ़ कर पुरुषार्थी नहीं हैं। वृक्षों के हीर से उसकी छाल जिस तरह मज़बूत नहीं होती उसी प्रकार कृष्ण आप से अधिक बली नहीं हो सकते। जैसे पाण्डवी सेना में कृष्ण हैं, वैसे ही दुर्द्धर्ष योद्धा हमारी सेना में आप हैं। चक्र गदा धारण कर केशव जो पराक्रम रण-स्थल में करेंगे, उनसे बढ़ कर पुरुषार्थ आप धनुष बाण हाथ में लेकर दिखावेंगे।

इस प्रकार दुर्योधन की बात सुन कर राजा शल्य आनन्द को प्राप्त होकर बोले—हे कुरुनाथ! आप अपने और बैरियों के दल से तथा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र से मुझे अधिक अपने स्वार्थ के लिये कह रहे हैं। अच्छा, आप कर्ण से कह दें, कि वे मेरी बात सहन करेंगे, तब मैं प्रसन्नता से उनका सारथी होकर युद्ध में पूरा योग दूँगा।

दुर्योधन ने शल्य की बात यथातथ्य कर्ण से कही। फिर कर्ण मद्रनरेश के पास आकर बोले—

राजन्! आपको जो रुचे वही बात कहियेगा; किन्तु सूत होकर मेरी सहायता कीजिये।

जब शल्य ने सहर्ष सारथित्व स्वीकार कर लिया तब दुर्योधन प्रसन्न होकर कर्ण से कहने लगे—

हे धनुर्द्धर वीर! राजा शल्य आप के रथ सञ्चालक हुए हैं। आप को और मद्रनाथ को एक स्थल में देख कर शत्रुदल भयभीत होकर व्याकुल होगा अब आपकी विजय में सन्देह नहीं है।

फिर कर्ण ने राजा शल्य से कहा—हे मद्रनरेश! आप ब्रह्मा और कृष्ण के समान रथ सञ्चालन में दक्ष हैं और मेरे पक्ष की रक्षा करनेवाले हैं। अपनी स्तुति तथा पराये की निन्दा करना महापाप है सत्पुरुष ऐसा नहीं करते। यहाँ प्रयोजन वश कुछ अपना व्यवसाय कहता हूँ कि आप को सारथी पाकर मैं इन्द्र की सहायता करने योग्य अपने को मानता हूँ फिर पाण्डवी सेना की कौन सी गणना है?

राजा शल्य ने कहा हे वीर कर्ण! अब आप शंका त्याग कर अर्जुन से संग्राम करें और सेना के सहित शत्रु का विनाश कर अक्षय यशलाभ करेंगे।

यह सुन कर दुर्योधन, राजा शल्य और कर्ण को गले लगा कर मिले तथा युगल योद्धाओं के प्रति घनी कृतज्ञता प्रकाश की।

कर्ण अस्त्र शस्त्रों से सज कर रथ पर सवार हुए और मद्रनरेश ने सारथी होकर रथ को रणभूमि की ओर बढ़ाया। उस समय असंख्यों युद्ध के बाजे बजने लगे और अपार चतुरंगिनी सेना साथ में चली।

कर्ण शल्य सम्वाद।

राजा शल्य ने रथ ले जाकर पाण्डवी सेना के सामने खड़ा कर दिया और बोले हे सूतकुल दीपक कर्ण! अब तुम अपना पुरुषार्थ दिखाओ। राजा की बात सुन कर कर्ण सगर्व कहने लगा—

हे राजन् ! आप घोड़ों को चला कर मेरा रथ अर्जुन के पास ले चलिये जो बड़े बलवान और महारथी कहलाते हैं वे आज रणस्थल में मेरा पराक्रम देखें। आज मैं अपने तीक्ष्ण बाणों की वर्षा से शत्रु दल में प्रलय मचा दूँगा, बड़े बड़े महारथियों को मार कर यमलोक पठाऊँगा। जिस तरह प्रचण्ड वायु बादलों की पंक्ति को तितर बितर कर देता है उसी प्रकार मैं पाण्डवी दल में भगदड़ डालूँगा। उस ओर कौन ऐसा प्रबल योद्धा है जो युद्ध में मेरे सामने ठहर सकेगा ?

यह सुन कर राजा शल्य ने आँखें लाल करके कहा—हे सूतपुत्र ! तुम अपने पुरुषार्थ के विपरीत पाण्डवों का निरादर करके क्यों इतनी बढ़ कर बातें करते हो ? जबतक गाण्डीव की दुःख-दाई ध्वनि नहीं सुनाई पड़ती है, तबतक चाहे जो कुछ अपना पराक्रम वर्णन कर लो। जबतक भीम गदा नहीं प्रहार करते हैं और युधिष्ठिर, सहदेव, नकुल के बाण नहीं छूटते हैं और धृष्टद्युम्न सात्यकि आदि वीर युद्ध के लिये सामने नहीं दिखाई पड़ते हैं, तब तक अपनी शेख़ी बघार लो; पर पाण्डव वीरों की मुठभेड़ से तुम्हारे छक्के छूट जाँयगे।

इस तरह मद्रनरेश की बात सुन कर कर्ण ने उसे अनसुनी कर दिया और कहा — हे मद्रनाथ ! आप सारथीपन का श्रेष्ठधर्म ध्यान में रख कर रथ शत्रुओं के समीप ले चलिये। राजा शल्य ने रथ आगे चलाया, उस समय बहुत से अशकुन दिखाई देने लगे। दिग्दाह, उल्कापात, भुकम्प आदि तरह तरह के उत्पात सूचक दृश्य दिखाई पड़े।

तब कर्ण धनुष टंकार कर के राजा शल्य से इस प्रकार बोले—हे क्षितिनाथ ! मुझे इन असगुनों की कुछ भी परवाह नहीं है। आज यदि इन्द्र को भी युद्ध के लिये रणभूमि में उत्सुक देखूँगा, तो निःशंक उनसे भी संग्राम करने से मुख न मोड़ूँगा। पाण्डवों ने यद्यपि भीष्म और द्रोण जैसे महारथियों का संहार किया है तो भी मैं मन में शंका नहीं रखता हूँ। या तो आज पाण्डवों का बध करूँगा, या जहाँ भीष्म और द्रोण गये हैं, वहाँ जाऊँगा। दुर्योधन के कार्य के लिये मुझे रण में मारना और मरना दोनों उचित है। आज अपनी धनुर्विद्या का कौशल प्रगट करके सेना के सहित अर्जुन का नाश किये बिना न रहूँगा। यदि वह इन्द्र के पास जायगा तो भी मेरे बाणों से जीता न बचेगा।

कर्ण का अहंकारपूर्ण वचन सुन कर राजा शल्य से नहीं रहा गया, वे फिर बोले— हे कर्ण ! तुम इस योग्य नहीं हो, झूठ मूठ गप क्यों मारते हो ? तुम सूर्य्य और चन्द्रमा में ग्रहण की अभिलाषा रखते हो। जब गन्धर्वराज ने दुर्योधन को बन्दी बना लिया था, तब तुमने वहाँ पराक्रम क्यों नहीं दिखाया ? जिस समय दुर्योधन विराट नगर में सेना लेकर गये और अर्जुन से युद्ध हुआ, उस समय तुम भी साथ में थे। क्या अर्जुन का वह पराक्रम तुम्हें स्मरण नहीं है। वह इच्छा करे तो कल्पवृक्ष का फल खा सकता है, उसके रक्षक वासुदेव हैं। अर्जुन श्रेष्ठ योद्धा, मनुष्यों में आर्य्य है और तुम पुरुषाधम जारज सन्तान हो। यदि तुम अर्जुन के सामने से भाग न जाओगे, तो निश्चय ही आज वह तुम्हें मार डालेगा।

इस प्रकार शल्य की बातें सुन कर और मन में सोच कर सूतपुत्र ने कहा —हे नरेश्वर ! छल छोड़ कर सारथीपन कीजिये फिर मेरे पराक्रम को देखिये। कृपा पूर्वक मौन रह कर घोड़ों को तेज कीजिये और अर्जुन के समीप में तुरन्त रथ लेकर चलिये।

इस प्रकार मद्रनाथ से कह कर फिर वीर कर्ण ने अपने सेनापतियों की ओर दृष्टि घुमाकर सगर्व गम्भीर स्वर में पुकार कर कहा— हे वीरो ! तुम में से जो राजा का सच्चा हितैषी हो, वह

अर्जुन को मुझे दिखादे, उसको मैं ख़ूब इनाम दूँगा। आज मैं अर्जुन और कृष्णचन्द्र का संहार कर उनके शस्त्रों को अपने आधीन करूँगा।

कर्ण की यह बात सुन कर राजा शल्य ने कहा — हे सूतजात! तुम बालबुद्धि से दाम ख़र्च करने की इतनी दानशीलता क्यों हाँक रहे हो। यह काम तो बिना किसी ख़र्च के आपही आप होगा। तुझे मारने के लिये पार्थ योंही तेरे पास आवेंग और जो तुम कृष्ण अर्जुन को मारने के लिये कहते हो वह कार्य बड़ा कठिन है। भला कहीं सिंह को हाथी मार सकता है। तुम गले में पहाड़ बाँध कर समुद्र में तैरने की इच्छा करते हो। पर्वत से धरती पर कूदने का उमंग कर रहे हो। मेरी बात याद रखना कि अर्जुन के सामने जाने का दुस्साहस कदापि न करना, नहीं तो जीते न बचोगे। अन्य वीरों से युद्ध करो, यदि अपना जीवन चाहते हो तो जलती आग में मत कूदो। यह बात दुर्योधन की भलाई के लिये मैं ने तुमसे कही है।

इस प्रकार शल्य के दुस्सह वचन सुन कर रणधीर कर्ण ने कहा— हे राजन! मैं अपनी भुजाओं के बल से अर्जुन से संग्राम करने का दावा रखता हूँ। यद्यपि आप मित्र हैं, तथापि शत्रु के समान भय उत्पन्न करानेवाली बातें करते हैं। यदि इन्द्र भी लड़ने को आवेंगे तो भी मैं पीछे पाँव न रक्खूँगा, फिर अर्जुन और कृष्ण की कौन सी बात है।

सूतपुत्र की वाणी सुनकर मद्रपति आँखें तरेर कर बोले—हे कर्ण! तू क्रोधित सर्प के मुख में हाथ डाल कर मरना चाहता है। गाण्डीव धनुष से निकले हुए वज्र के समान बाणों को आते देखकर तुझे अपना धनुष थाम्हने का ज्ञान न रह जायगा। तू अर्जुनरूपी सिंह का जूठा मांस खाकर सियार की तरह उनसे लड़ना चहता है? पार्थ रूपी गरुड़ के पास तू साँप बनकर जाना चाहता है? भूखे मेढ़क के समान व्याल के शरीर से लिपट कर अपना कल्याण समझता है। जिस तरह ख़रगोशों से पूजित बन में शृगाल अपने को तब तक सिंह मानता है जबतक वह विकराल सिंह को नहीं देखता। उसी तरह तुम कुछ योद्धाओं को संग लेकर अपने को धनुर्धर वीर समझ रहे हो, परन्तु तुम्हारी डींग तभी तक चल सकती है, जब तक अर्जुन का सामना नहीं होता है। जब पार्थ वज्र के समान बाणों की वर्षा करने लगेंगे, तब तुम कादरों की भाँति युद्धस्थल छोड़ कर भाग जाओगे। जैसे मूसे के लिये बिलाव और गीदड़ के लिये सिंह काल रूप हैं, उसी तरह तुम्हारे हेतु वीर वर अर्जुन हैं, तुम उनसे कदापि पार नहीं पा सकते।

राजा शल्य की बात सुनकर कर्ण क्रोध से कहने लगे—अरे छली नरेश! गुणी ही गुण को जानते हैं और निर्गुणी उसे नहीं जान सकता। तू गुणों से रहित गुण की बात क्या जाने? सब को बिना गुण का समझता है। अर्जुन और कृष्ण का पुरुषार्थ मैं भलीभाँति जानता हूँ। अर्जुन कृष्ण के बल पर युद्ध करना चाहता है, वे दोनों कादरों को भयभीत कर सकते हैं। तू युद्धकला को नहीं जानता, इसीसे उनकी बार बार बड़ाई करता है। जो अप्रवीण, कुदेशनिवासी, अनाचारी और मूर्ख हैं, उनको भारी भट कह कर बखानता है? मैं पहले उन दोनों का संहार कर फिर तेरा वध करूँगा और मद्रदेश में प्रलय मचाऊँगा। तू मित्र बनकर शत्रु की भाँति वैरी की प्रशंसा करता है? अजीत भट को मरा कह कर तू उसकी विजय चाहता है। यदि हज़ारों कृष्ण और अर्जुन सामने आवेंगे तो भी संग्राम में मैं उनका संहार कर डालूँगा अथवा वे ही मुझे मार कर धर्मराज को आनन्दित करेंगे। दोनों प्रकार क्षत्रिय के लिये उत्तम है। तू हृदय का डरपोंक बार बार भय की बात मुख से उच्चारण करता है। सब देशों में मद्रदेश अत्यन्त नीच है, जहाँ के पुरुष मित्रद्रोह करके ज़रा भी लज्जित नहीं

होते। जहाँ वर्ण-विचार नहीं, अनाचार ही की प्रधानता है, न तो गोत्र का कुछ भेद है और न कोई गुणज्ञ है। जिस देश की स्त्रियाँ बिना रोक टोक के मद्यपान करती हैं और नंगी होकर पुरुषों के सामने नाचती गाती हैं तथा प्रत्येक मनुष्य के साथ विहार करने में उत्सुक रहती हैं। भला उन बेहया स्त्रियों से उत्पन्न हुआ पुत्र धर्मपूर्वक मित्र का हितकारी कैसे हो सकता है? जितने पापाचारी उस देश के स्त्री-पुरुष हैं उनका वर्णन करना असम्भव है। जिस देश के निवासियों का संग शास्त्र वर्जन करते हैं फिर ऐसे भ्रष्ट देश का राजा इस प्रकार जल्पना करे तो वह कौन से आश्चर्य की बात है।

हे मद्रनाथ! यदि अब तुम फिर ऐसी बात मुख से निकालोगे तो मैं गदा प्रहार कर तुम्हारी खोपड़ी चूर चूर कर डालूँगा। इसलिये तुमको सावधान करता हूँ कि यदि अपना कल्याण चाहते हो, तो शीघ्र रथ हाँक कर अर्जुन के सामने ले चलो।

इस प्रकार क्रोध युक्त और निन्दा से भरे हुए कर्ण के वचन सुन कर राजा शल्य ने कहा—

हे सूतज! मैं यज्ञकर्त्ता धर्म में तत्पर राजकुल में उत्पन्न हूँ, तू मतवाले मद्यपी की तरह अनर्गल बातें कह रहा है। मैं विषम-सम, बलाबल और सगुन असगुन को अच्छी तरह जानता हूँ इसलिये कहता हूँ। जैसा तू कहता है कि पुरुष का धर्म मित्र की रक्षा करना है, वही बात सोच कर मैं तेरे और राजा दुर्योधन के हित की बात कहता हूँ। तू अमर्ष त्याग कर मेरी बात को सुन। तुझे मेरी बात नीम के समान कड़वी लगी है, वह श्रेष्ठ प्रिय नहीं समझ पड़ी, इसीसे सदर्प बातें करते हुए तू लज्जित नहीं होता है। जैसे कौए ने उड़ने में हंस की बराबरी करके धोखा खाया और यदि हंस गण उसे समुद्र से निकाल कर स्थल में न पहुँचाते, तो वह प्राण गँवा देता। उसी प्रकार तू भी डींग हाँक कर, अन्त में नष्ट होना चाहता है। जिन अर्जुन ने भीष्म, द्रोण, कृप और तुमको कई बार पराजित किया तू उनको जीतने की इच्छा करता है। अर्जुन सूर्य के समान है, तू जुगनू की भाँति उनकी बराबरी करने योग्य नहीं है।

राजा शल्य की सारगर्भित बातें सुन कर क्रोध त्याग करके कर्ण बोले—हे मद्रपति! कृष्ण और अर्जुन के पराक्रम को मैं अच्छी तरह जानता हूँ, किन्तु मुझे इसकी शंका नहीं है। मैं आत्मश्लाघा नहीं करता, स्वाभाविक अपनी वीरता आप से कहता हूँ, सुनिये।

पहले मैंने परशुरामजी के पास जाकर और अपने को ब्राह्मण कह कर उनसे धनुर्विद्या सिखाने के लिये प्रार्थना की। उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर मुझे विद्याध्ययन कराया। एक दिन परशुरामजी मेरी जाँघ पर सिर रख कर सो गये। उस समय मेरा अहित करने की इच्छा से इन्द्र कीड़े का रूप धारण कर नीचे से जंघा में छेद कर घुसने लगे। गुरुजी की निन्द्रा भंग होने के भय से मैं अटल बैठा रहा। जब जाँघ छेद कर वह कृमि ऊपर आया, रक्त की धारा बह चली तब परशुरामजी जाग गये। रक्त देख कर उन्होंने कारण पूछा, मैंने सब भेद बतला दिया। उन्होंने मेरा साहस देख कहा कि तू ब्राह्मण नहीं है, सच बता कौन है? मैंने शाप के डर से तुरन्त कह दिया कि मैं क्षत्री हूँ।

यह सुन कर क्रोधित हो राम ने मुझे शाप दिया कि तूने जितने अस्त्रों को मुझसे पाया है, वे सब कार्यकाल के समय तेरे पास उपस्थित न रहेंगे।

हे राजन्! यह सुन कर आप मुझे शस्त्रहीन न समझें। पीछे मैंने अनगिनती भीषण अस्त्र प्राप्त किये। उन अस्त्रों की वर्षा करके आज मैं शत्रु की सेना में महाप्रलय मचा दूँगा। प्रबल धनुर्धर अर्जुन को धरती पर शयन कराऊँगा। देवताओं को जीतनेवाले बाणों से मैं अर्जुन को प्राण रहित किये बिना न छोड़ूँगा। मैं सच कहता हूँ कि पार्थ जैसे धनुर्धर योद्धा को जीतनेवाला एक मुझे ही ब्रह्मा ने निर्माण

किया है। यदि आप की तरह दूसरा कोई योद्धा मुझे इतनी बातें कह कर भय दिखाता तो अबतक उसको मैं काल के मुँह में भेज देता। आप राजा के हितैषी मित्र, मेरे श्रेष्ठ हैं और कल्याण का काम करते हैं तथा पहले ही आपने बचनबद्ध करा लिया है; इससे बच गये हैं। अब अधिक विवाद मत कीजिये। मैं तुम्हारे बिना भी अपनी भुजाओं के बल से अर्जुन को पराजित करूँगा, यह न समझो कि तुम्हारे बल से ही मैं विजयी हो सकता हूँ।

सूतपुत्र की बात श्रवण कर क्षितिनाथ शल्य ने कहा—हे कर्ण! जिस प्रकार अपने हाथ उरोज मलने से स्त्री को आनन्द नहीं मिलता, उसी तरह अपने मुख से बड़ाई नहीं शोभा देती। तुम मुझे अजान समझ कर बिना प्रयोजन अपनी प्रशंसा की लम्बी चौड़ी डींग क्यों हाँकते हो? मैं भलीभाँति जानता हूँ तुम अर्जुन का बाल भी बाँका न कर सकोगे।

राजा की बात सुन कर कर्ण को फिर क्रोध हो आया। वे क्षुब्ध होकर कहने लगे—

राजन्! मद्रनिवासियों की चाल ही महाभ्रष्ट होती है, इसको मैं धृतराष्ट्र की सभा में एक ब्राह्मण से सुन चुका हूँ। जो उस पंडित वृद्ध ब्राह्मण ने कहा था, उसको सुनो। ब्राह्मण ने कहा कि मद्रदेश में समस्त स्त्री-पुरुष अधर्मी, अन्यायी, अपवित्र और भ्रष्ट आचरणवाले निवास करते हैं। उनकी वृत्ति बड़ी निन्दनीय है, वहाँ की स्त्रियाँ व्यभिचारिणी होती हैं, वे पुत्र और भाई के साथ सहवास करने में नहीं सकुचातीं। उस देश में जो मुर्गा, सुअर, गदहा और गोमांस नहीं भक्षण करता, उसका जीवन व्यर्थ माना जाता है। यह नगर तथा देश सिन्धु नद के पूर्व भाग में स्थित है। उस देश के रहनेवालों का कोई ब्राह्मण अन्न नहीं ग्रहण करता; क्योंकि वे सब भक्ष्याभक्ष्य और अगम्यागम्य का विचार ही नहीं रखते। मद्रदेश म्लेच्छों से भरा है वहाँ के क्षत्रिय पुरोहित आदि सब भ्रष्ट होते हैं। आप उसी देश के राजा हैं। फिर ऐसी बातें क्यों न कहें? पर याद रखना, अब फिर ऐसी बात मुख से निकालोगे, तो मैं बिना मारे तुम्हें न छोड़ूँगा। मित्र जानकर अबतक तुम्हारे बहुत गुनाहों को मैंने क्षमा किया है।

सूततनय की बात सुनकर राजा शल्य ने कहा—

हे कर्ण! जो सम्पूर्ण दूषणों का स्थान होता है वही दूसरों के दोषों को कथन करता है। पाप, पुण्य, धर्म, अधर्म, सत्कर्म और सदाचार किसी जाति विशेष में जन्म लेने से मनुष्य उनका कर्त्ता नहीं होता। ये सब मनुष्य के स्वभाव से होते हैं। दोष और गुण किस देश और किस व्यक्ति में नहीं हैं? पर श्रेष्ठजन गुण के सिवा दोष की ओर दृष्टिपात नहीं करते और तुम्हारे समान नीच दोष ही ढूँढ़ा करते हैं। क्या तुम मेरे देश का दोष कह कर अर्जुन को जीतना चाहते हो और जिस तरह इधर उधर युद्ध करते रहे हो उसी तरह पार्थ से भी संग्राम करने की इच्छा रखते हो?

इतने में दुर्योधन ने आकर दोनों महारथियों से क्षमा प्रार्थना करके विवाद शान्त किया। फिर न कर्ण ने उत्तर दिया और न राजा शल्य ही बोले।

तब कर्ण ने हँसकर कहा—हे मद्रराज! अब अर्जुन के समीप रथ को ले चलिये।

व्यूहरचना और संसप्तक अर्जुन युद्ध।

रणधीर कर्ण और शल्य सेना के सहित आगे बढ़े। कृपाचार्य, कृतवर्मा, शाल्व, और मगधराज ससैन्य दक्षिण पार्श्व में रक्षार्थ बढ़ रहे थे। उत्तर पार्श्व में शकुनि और उलूक दुन्दुभी बजवाते

जा रहे थे। वाम भाग में चौबीस हज़ार रथी काम्बोज नरेश और संसप्तक गण तथा दाहिने भाग में अपार यवनों की सेना गर्व से भरी जा रही थी। मध्य में सेनापति कर्ण थे। उनके अंगरक्षक धृष्तराष्ट्र के सब पुत्र थे, दुःशासन हाथी पर सवार सदल बल पृष्ठ-रक्षक होकर चल रहा था। अश्वत्थामा आदि कितने ही महारथी सेना के चारों ओर से रक्षा करते हुए जा रहे थे।

इस तरह व्यूह रचना के साथ कर्ण को आते हुए देख कर धर्मराज ने अर्जुन से कहा—

हे वीर! देखो, कर्ण व्यूहरचना करके हम पर आक्रमण करने को चला आ रहा है अब तुम भी महान रणकौशल से विजय पाने का प्रयत्न करो।

युधिष्ठिर की बात सुन कर अर्जुन ने हाथ जोड़ कर कहा—हे धर्मराज! जिस प्रकार आप आज्ञा करेंगे मैं उसी प्रकार संग्राम का प्रबन्ध करने में विलम्ब न करूँगा।

तब धर्मराज बोले—हे अर्जुन! तुम तो धनुष बाण लेकर कर्ण से युद्ध करो और प्रचण्ड बाणों की वर्षा करते हुए भीमसेन दुर्योधन से भिड़ें, वृषसेन से नकुल, सौबल से सहदेव, दुःशासन से शतानीक, कृतवर्मा से सात्यकि, अश्वत्थामा से पाण्ड्यनरेश और दुर्योधन के अन्यान्य बन्धुओं से द्रौपदी के पुत्र तथा वीर शिखंडी आदि संग्राम करें। कृपाचार्य से धनुष बाण लेकर मैं युद्ध करूँगा और धृष्टद्युम्न सेना की चारों ओर से रक्षा करते हुए जहाँ आवश्यक हो मोरचा लें।

धर्मराज के कथनानुसार व्यूह बना कर अर्जुन दुन्दुभी बजवा कर अपना रथ कर्ण के सामने ले चले। अपार बाजे बजने लगे जिनकी भीषण ध्वनि दिशाओं में भर गई। दोनों ओर से अस्त्रप्रहार होने लगा।

भयंकर काले मेघ के समान अर्जुन को आते देख कर मद्रनरेश ने कर्ण से कहा—

हे कर्ण! जिस अर्जुन को तुम ढूँढ़ते थे, वह काल के समान आ रहा है, अब जो कुछ पुरुषार्थ तुम में हो, करके दिखाओ। बहुत से असगुन हो रहे हैं, जिससे अनुमान होता है कि आज रणधीर अर्जुन इधर के बहुतेरे योद्धाओं का संहार करेगा। देखो, वह भयंकर धनुष टंकार करता हुआ निर्भय सिंह के समान तुम्हारी ओर बढ़ रहा है। जिसकी ध्वजा कपि के चिन्ह से युक्त बिजली के समान चमक रही है और छत्र हंस की पंक्ति के समान शोभित हो रहा है। चक्रगदाधारी श्रीकृष्णचन्द्र, जिनके हृदय में कौस्तुभ मणि विराजमान है, पीताम्बर पहने हाथ में चाबुक लिये सारथीपन करते हुए आ रहे हैं। सफेद रङ्ग के अर्जुन के रथ के घोड़ों को देखो, वे इस तरह पैर उठाते और रखते हैं मानों धरती को रौंद डालेंगे। अर्जुन के बाणों से कौरवी सेना बेतरह भयभीत और व्याकुल हो गई है। जिस प्रकार सहस्रों मृगों के झुण्ड में अकेला सिंह खलबली डाल देता है उसी तरह अर्जुन ने हमारी सेना को चंचल कर रक्खा है। जिसको देखने के लिये तुम धन खर्च करते थे, वही वीर अर्जुन तुम्हारी सेना को छिन्न भिन्न करते आ रहे हैं। एक ही रथ पर अर्जुन और केशव नर नारायण के समान शोभित हैं। भला कहो तो इनकी बराबरी करनेवाला तीनों लोक में कौन योद्धा है? इसलिये विजयेच्छुक पुरुष को इनसे लड़ने की इच्छा न करनी चाहिये।

राजा शल्य की बात सुनकर आँखें लाल किये हुए कर्ण ने धनुष्टंकार करके अपने वीरों को उत्साहित किया।

उस समय संसप्तक गण उमङ्ग से भरे सहस्रों योद्धाओं को साथ लेकर अर्जुन पर अस्त्रप्रहार करने लगे। एक क्षण में पार्थ के रथ को अदृश्य कर दिया।

यह देख कर कर्ण ने बड़े गर्व के साथ राजा शल्य से कहा—राजन्! देखो, संसप्तकों ने

अर्जुन को बाणों की लघुता से आच्छादित करके वध करना ही चाहते हैं। अब वह मेरे समीप तक नहीं आ सकता।

कर्ण की बात सुनकर शल्य ने कहा—हे सूतपुत्र! विचार कर बोलो, अर्जुन से युद्ध ठान कर कौन ऐसा सुभट है जो उन्हें मार सकता है? कहीं ईंधन डालने से आग बुझती है? वे अभी असंख्यों भटों का संहार कर तुम्हारे पास आ पहुँचते हैं।

शल्य की बात समाप्त होते होते अर्जुन संसप्तकों के अस्त्र निवारण करके और उन्हें परास्त कर कर्ण के समीप पहुँच गये। धृष्टद्युम्न आदि प्रमुख योद्धा भी अर्जुन के साथ बाणों की वर्षा करते हुए भिड़ गये। परस्पर अस्त्र चलने लगे और भीषण मार काट आरम्भ हो गयी!

कर्ण ने पाण्डवी सेना में घुसकर बड़ी भयङ्कर मार की। क्षण भर में उन्होंने पाञ्चाल नरेश के अतिरथियों को मार डाला। चेदिराज के असंख्यों भटों का संहार किया। बड़ी लघुता से बाणवृष्टि करके भानुदेव को यमपुर भेज दिया। इस प्रकार वीर कर्ण ने अपार सेना और बहुत से सेनापतियों का नाश कर डाला। वे साक्षात् काल के समान पाण्डवों की फौज का विध्वंस कर रहे थे।

अपनी सेना को विमर्दन करते देख कर भीमसेन क्रोध से भर कर धनुष बाण लिये अत्यन्त वेग से कर्ण के पास आ पहुँचे और उनके अंगरक्षकों को दस दस बाण मार कर घायल कर दिया तथा साथ ही तिहत्तर बाण कर्ण को मारा। दुःशासन को तीन बाण से बेध दिया और भानुसेन के पुत्र को यमलोक भेज दिया। भीमसेन का भयङ्कर पराक्रम देख कर कर्ण ने उन पर अपार बाणों की वर्षा की। नकुल और सुषेण का भीषण युद्ध हुआ। उसी तरह सात्यकि से बली वृषसेन का घमासान संग्राम हो रहा था।

कर्ण ने धर्मराज पर बाणों की इतनी वर्षा की कि दिशाओं में बाण ही बाण दिखाई देने लगे; किन्तु वीरवर युधिष्ठिर और उनके सहायकों ने कर्ण का सारा उद्योग विफल कर दिया।

फिर युधिष्ठिर ने क्रोध करके दश बाण कर्ण को मारा, जिससे वह वीर सेनापति मूर्छित होकर रथ पर गिर पड़ा। धर्मराज ने अत्यन्त तीखे बाणों का प्रहार करके कर्ण के समस्त अंगरक्षकों को घायल कर दिया। जब कर्ण को होश हुआ, तब वह असंख्यों बाण धर्मराज तथा उनकी सैन्य पर बरसाने लगा। कर्ण का साहस देख कर सात्यकि, चेकितान, पाण्ड्य, युयुत्सु, शिखंडी, भीम, नकुल, सहदेव और धृष्टद्युम्न आदि महारथियों ने क्रुद्ध हो कर्ण पर अस्त्र शस्त्रों का प्रहार करना आरम्भ किया। कर्ण ने बड़ी शीघ्रता से ब्रह्मास्त्र द्वारा सब के अस्त्रों को नष्ट कर दिया और युधिष्ठिर को ऐसा बाण मारा कि वे घायल हो रणभूमि त्याग छावनी की ओर रथ हँकवा कर चल पड़े।

धर्मराज को विचलित करके कर्ण काल के समान सेना का संहार करने लगा। पाण्डवी सेना व्याकुल होकर और राजा को भागते देख हतोत्साह हो गई तथा रणस्थल से भाग चली। तब तक धर्मराज की व्यथा दूर हुई। उन्होंने अपना रथ लौटा कर सब वीरों को ललकारा कि कादर बन कर भागने की अपेक्षा युद्ध में प्राण गँवाना क्षत्रियों के लिये स्वर्गदायक और यश बढ़ानेवाला है। युधिष्ठिर के बचन सुनकर सब वीर लौट पड़े तथा भीषण संग्राम करने लगे। दोनों दल के योद्धा मतवाले हाथी के समान पराक्रम दिखाते हुए एक दूसरे का संहार करने लगे। असंख्यों भट बाण, तलवार, भाला, गदा आदि हथियारों से छिन्न भिन्न होकर धरती पर गिरने लगे।

भयङ्कर रक्त की नदी बह चली, उसमें सिर, धड़, हाथ, पाँव कट कर बहते हुए ऐसे मालूम होने लगे मानों जलजन्तुओं के समुदाय हों। कौरवी सेना में हाहाकार मच गया। कर्ण ने देखा कि

भीमसेन अपार सेना का नाश रहे हैं, तुरन्त अपना रथ बढ़वा कर भीम के सामने आये और भयङ्कर बाणों की वर्षा करने लगे। भीमसेन सात्यकि और धृष्टद्युम्न को धर्मराज की रक्षा का भार समर्पण कर कर्ण से जा भिड़े।

भीमसेन को बाण बरसाते काल के समान आते देख राजा शल्य ने कर्ण से कहा—

हे सूतपुत्र! देखो, भीमसेन हमारी सेना पर बाण प्रहार करते हुए विकराल काल के समान इस ओर आते हैं। वे तुम्हारे वध की प्रतिज्ञा किये आ रहे हैं, तुम अपने बचाव का स्मरण रख कर युद्ध करना।

कर्ण ने कहा—हे राजन्! आप ठीक कहते हैं इसमें सन्देह नहीं कि भीमसेन महाबली है, और मुझ पर अत्यन्त क्रोध करके झपटा चला आ रहा है। इसने कीचक आदि भटों का नाश किया है, यद्यपि प्रबल भट है; तो भी; मैं इसको तृण के बराबर समझता हूँ। अभी इसका संहार करके पीछे अर्जुन का बध करूँगा। इतना कहकर मेघ के समान गर्जन कर बाण प्रहार करते हुए कर्ण भीमसेन के समीप पहुँच गये दोनों वीरों में परस्पर भीषण बाण वृष्टि होने लगी। दोनों पुरुषसिंह धनुर्विद्या-विशारद अपना अपना रण कौशल दिखाते हुए लड़ने लगे। भीमसेन के बाणों ने कर्ण की गति में शिथिलता ला दी, कर्ण व्याकुल हो गये।

दुर्योधन ने अपने भाइयों को कर्ण की सहायता के लिये उत्तेजित किया। वे सब साथ ही अस्त्र शस्त्र प्रहार करते हुए भीमसेन पर टूट पड़े। बली भीम ने तीखे बाणों से विवित्सु, विकट, नन्द, उपनन्द, क्राथ, आदि का बध करके शत्रु सेना में प्रलय मचा दिया। शेष भट डर कर भाग गये। कौरवी सेना में आतंक छा गया, तब रणधीर कर्ण ललकार कर फिर भीम से युद्ध करने लगे।

दोनों महावीरों ने बाणों की वर्षा करके रणस्थल को पिँजड़ा के समान कर दिया। एक दूसरे के अस्त्रों को काटते और प्रहार करते थे। भीमसेन हाथ में गदा लेकर टूट पड़े, सवारों के सहित सात सौ हाथियों का निपात कर डाला। सहस्रों पैदल, घुड़सवार और रथियों को घायल कर धरती पर गिरा दिया। भीमसेन का पराक्रम देख कर्ण मन में विस्मित हो उन्हें परास्त करने का उपाय सोचने लगे, तब तक राजा शकुनि ने तीन हजार घुड़सवारों के साथ भीमसेन पर आक्रमण किया। भीमसेन गदा प्रहार कर दंड भर में उन योद्धाओं का विमर्दन करके शकुनि से युद्ध करने लगे। भीम से छुटकारा पाकर कर्ण धर्मराज से जा भिड़े और बाण मारकर उनके सारथी को प्राणहीन कर दिया। यह देख कर सात्यकि, धृष्टद्युम्न आदि योद्धा कर्ण पर बाण बरसाने लगे। शक्ति, तोमर, भाला, तलवार, गदा, बाण, त्रिशूल आदि तरह तरह के हथियार चलाते थे। उस समय महा भीषण संग्राम हुआ। योद्धा लोग रण रस में मतवाले हो गये उन्हें अपने पराये का ज्ञान जाता रहा।

उधर संसप्तकों को जीत कर अर्जुन कर्ण की ओर चले तब फिर संसप्तकों ने नवीन उत्साह से भर कर महाभयंकर युद्ध किया। राजा सुशर्मा पूर्व का वैर स्मरण कर चौदह हजार वीरों को साथ लिये हुए अर्जुन से संग्राम करने लगा। धनुर्धर अर्जुन ने बाणों के प्रहार से असंख्यों योद्धाओं का संहार करके पृथ्वी को रुड-मुंडमय कर दिया। इस प्रकार संसप्तकों को परास्त कर महाबली अर्जुन ने शंखध्वनि करके अपना रथ कर्ण की ओर बढ़ाया ज्यों ही रथ चला त्यों ही राजा सुशर्मा ने बाण बरसाते हुए दस हज़ार वीरों को साथ लिये अर्जुन के रथ को चारों ओर से घेर लिया। जब अस्त्र-प्रहार से काम निकलते नहीं देख पड़ा, तब संसप्तक योद्धा 'धरो बाँधो' करते सब साथ ही अर्जुन के रथ पर टूट पड़े। कितने

ही कृष्णचन्द्र और अर्जुन के बाहु, पैर और शरीर में चिपट गये कितनों ही ने घोड़े, चक्र और लगाम को दृढ़ता के थाम लिया। इस प्रकार का कुतूहल करके सब आनन्द से हल्ला मचाने लगे।

श्रीकृष्णचन्द्र और अर्जुन ने अपने अपने शरीर को झकझोर कर सब भटों को धरती पर गिरा दिया और चाबुक लगाकर घोड़ों को आगे बढ़ाया।

अर्जुन ने भगवान् कृष्णचन्द्र से कहा—प्रभो! इस प्रकार रणस्थल में रथ बँध कर आज तक किसी वीर का उद्धार नहीं हुआ था। यह आप ही की महिमा का प्रभाव है जो ऐसी विकट स्थिति से हमें छुटकारा मिला है। अब आप देखिये मैं शत्रुओं का अभी संहार करता हूँ, ऐसा कहकर अर्जुन ने अपना देवदत्त शंख तथा श्रीकृष्ण ने पाँचजन्य को बजाया।

अर्जुन ने धनुष सन्धान कर अपार बाणों की वृष्टि की, जिससे शत्रु दल में खभार पड़ गया। महाबली पार्थ ने नागअस्त्र चला कर बैरी की सेना को बाँध दिया और असंख्यों भटों का विध्वंस किया।

अर्जुन के इस महान् पराक्रम को देख कर राजा सुशर्मा को बड़ा क्रोध हुआ, उसने गरुड़ास्त्र चला कर नागास्त्र को नष्ट कर दिया। सब योद्धा बन्धन से छूट कर फिर लड़ने लगे। वे 'मारो मारो' करते हुए अनगिनती बाण, बरछा, शक्ति आदि अर्जुन को लक्ष्य कर मारते थे और वीरवर अर्जुन अपने बाणों से शत्रु के चलाये हथियारों को काट काट बीच ही में गिराते जाते थे। फिर क्रोध करके अर्जुन ने बाणों की झड़ी लगा दी, जिससे शत्रु दल का भीषण संहार होने लगा। बहुतों के सिर, हाथ, पाँव, छाती कटती थी। अपरिमित भट प्राणहीन होकर धराशायी होगये। इतनी लाशें धरती पर ढेर लग गईं, कि पैदल तथा रथ का चलाना कठिन हो गया।

राजा सुशर्मा ने अर्जुन को बाण मारा और अर्जुन ने बदले में उसे बाण मारकर मूर्छित कर दिया। फिर सुशर्मा ने ऐसा बाण मारा कि अर्जुन मूर्छित हो रथ पर गिर पड़े। यह देख कर शत्रु-दल आनन्द से विह्वल हो उठा, उन सबको विश्वास हो गया कि अर्जुन मारे गये। थोड़ी देर में अर्जुन की मूर्छा दूर हुई और उन्होंने ऐन्द्र अस्त्र का प्रयोग किया। हज़ारों बाण उससे प्रगट होकर शत्रुदल का निपात करने लगे। किसी योद्धा को शस्त्र चलाने का अवसर ही नहीं मिला, दो मुहूर्त्त में दस हज़ार योद्धा कटकर वीरगति को प्राप्त हुए। संसप्तकों की सेना में कोई युद्ध करने योग्य शेष नहीं रह गया। तीसरे प्रहर तक इस प्रकार भीषण युद्ध हुआ।

तुमुलसंग्राम और कर्ण-वध।

उभय पक्ष के महारथियों और सेनाओं से परस्पर भीषण संग्राम हो रहा था। भीमसेन कौरवी सेना का रुद्र के समान संहार करते थे। संसप्तकों के बीच अर्जुन घोर घमासान मचाये हुए थे। माद्रीतनय और धर्मराज काल के सदृश भीषण बाणों की वर्षा करते हुए सहस्र सहस्र भटों का साथ ही संहार कर रहे थे। जब दुर्योधन धर्मराज की ओर बढ़े तब सेनापति धृष्टद्युम्न ने अपने बाणों को बरसाते हुए उनकी गति रोक दी। परस्पर बड़ी मार काट हुई। धृष्टद्युम्न ने दुर्योधन के रथ और सारथी का निपात कर उन्हें विरथ कर दिया और धनुष को काट डाला। दुर्योधन को रथहीन देख दंडधर अपने रथ पर बैठा कर उन्हें दूसरी ओर ले गया।

कर्णवीर ने राजा द्रुपद की सेना में घुस कर सोलह रथियों का पल भर में विध्वंस कर

डाला। अनगिनती घुड़सवार, हाथी और पैदल योद्धाओं का निपात किया। जैसे दावानल से वन का नाश होता है, इसी प्रकार धनुर्धर कर्ण के द्वारा पाञ्चाल नरेश की सेना का संहार हुआ।

द्रुपदराज की सेना में हाहाकार होते देख कर ससैन्य धर्मराज, सहदेव, नकुल, धृष्टद्युम्न आदि योद्धाओं ने साथ ही कर्ण पर आक्रमण किया और जिस प्रकार कर्ण ने प्रलय मचा रक्खा था, ठीक वही दशा शत्रु की सेना में इन वीरों ने उपस्थित कर दी। भीमसेन, कृतवर्मा, सात्यकि आदि वीरों ने जैसी प्रलयकारी मारकाट मचाई वह वर्णन नहीं हो सकती।

उधर संसप्तकों को जीतकर अर्जुन ने वासुदेव से कहा—भगवन्! कर्ण हमारी सेना का संहार कर रहा है शीघ्र रथ उसके सामने ले चलिये।

यह सुन कर भगवान कृष्णचन्द्र ने कहा—हे अर्जुन! पहले कौरवी सेना का निपात करके तब कर्ण के पास चलो।

ऐसा कह कर कृष्णचन्द्रजी तुरन्त रथ सेना के बीच ले गये। धनुर्धर अर्जुन बाणवृष्टि कर सेना का निपात करने लगे। संसप्तकों का दूसरा दल सजधज के साथ कौरवी सेना की सहायता के लिये आया। वे सब चारों ओर से घेर कर अर्जुन पर अस्त्र शस्त्र मारने लगे। जैसे बादलों के मंडल से सूर्य ढँक जाते हैं, उसी प्रकार हथियारों से अर्जुन का रथ अदृश्य सा हो गया। वीर अर्जुन ने बाणों की वर्षा करके सब अस्त्र शस्त्रों को काट डाला और अनगिनती भटों को अंगभङ्ग कर दिया। पल भर में दस हज़ार योद्धाओं का विनाश किया।

अपनी सेना में हाहाकार होते देख कर अश्वत्थामा ने सिंह के समान गर्जन करके अपना रथ अर्जुन की ओर शीघ्रता से चलवाया और ललकारा कि—अरे अर्जुन! मेरी ओर आ, मैं तेरा दर्प चूर्ण करने को आ पहुँचा हूँ। इस प्रकार कहते हुए मतवाले हाथी के समान वे अर्जुन से भिड़ गये। दोनों एक ही गुरु से दीक्षित और समान बली थे, अद्भुत कला से युद्ध करने लगे। जब अश्वत्थामा ने अपने पराक्रम से अर्जुन को चकित कर दिया, तब भगवान् कृष्णचन्द्र बोले—

हे अर्जुन! तुम इस ब्राह्मण को गुरुपुत्र जान कर कोमलता दिखा रहे हो। इसकी भुजाओं को छेदने में क्या तुम्हारा गाण्डीव निर्बल हो गया है? शीघ्र क्यों नहीं इसे मारते हो?

इस प्रकार मित्र की बात सुन कर अर्जुन ने क्रोध से धनुषटंकार कर वज्र के समान बाण चलाये, वह अश्वत्थामा की छाती में लग कर पार होगया जिससे द्रोणपुत्र को मूर्छा आगई। उनके सारथी ने रथ भगा कर उन्हें रक्षित स्थान में पहुँचा दिया।

इस तरह अश्वत्थामा को परास्तकर अर्जुन सैन्य संहार करने लगे। कौरवी सेना को नष्ट-प्राय करके तब कृष्णचन्द्र से कहा—

प्रभो! अब दिन बहुत थोड़ा है, धर्मराज को मैं देखना चाहता हूँ फिर कर्ण से युद्ध करूँगा।

अर्जुन की बात सुन कर भगवान् रथ हाँक कर तुरन्त धर्मराज के पास आये। युधिष्ठिर को सकुशल देख अर्जुन परम प्रसन्न हुए।

भगवान् कृष्णचन्द्र बोले—हे अर्जुन! रणस्थल की भीषणता तो देखो, असंख्यों हाथी घोड़े और सुभट मर रहे हैं रथ टूट टूट कर बिखरे हैं। कटे हुए हाथ पाँव सिर और धड़ों से धरती पट गई है। कितने घायल कराहते हैं। बड़ा ही भीषण दृश्य उपस्थित है।

देखो, बली भीमसेन, धृष्टद्युम्न, सात्यकि आदि भट कैसा भीषण संग्राम कर रहे हैं। कर्ण बाणों की वर्षा से प्रलय मचा रहा है। दोनों दलों के सहस्र सहस्र सुभट खंड खंड होकर धराशायी

हो रहे हैं। युद्धस्थल में बड़ा भयंकर काण्ड उपस्थित है। कर्ण और सात्यकि का युद्ध सराहनीय है, दोनों धनुर्धर एक दूसरे पर कैसी बाणवृष्टि करते हुए लघुता दिखा रहे हैं।

उधर जब अश्वत्थामा सचेत हुए तो वे फिर रणस्थल में आकर युद्ध करने लगे। धृष्टद्युम्न पर उन्होंने अपार बाण बरसाये। अश्वत्थामा ने सेनापति धृष्टद्युम्न को बाणों के जाल में अवरुद्ध करके उनके सारथी को मार कर रथ चूर चूर कर दिया और गर्जन करके कहा—अरे नीच विप्रद्रोही! अब तू भाग जावे, तो भले ही तेरे प्राण बचेंगे या अर्जुन सहायता करे तो कदाचित् बच जाय, नहीं तो मैं अभी तेरा विनाश किये देता हूँ। अब तू मेरे हाथ से बच कर नहीं जा सकता।

इस प्रकार धृष्टद्युम्न को अश्वत्थामा से त्रस्त देख कर कृष्णचन्द्र ने कहा—हे अर्जुन! अश्वत्थामा जय की इच्छा से द्रुपदपुत्र को मारना चाहता है, तुरन्त उसकी रक्षा करो।

ऐसा कह कर भगवान् ने वेग से उस ओर रथ चलाया और पहुँचते ही अर्जुन ने द्रोणकुमार पर बाणों की झड़ी लगा दिया। अश्वत्थामा भी बड़ी वीरता से बाण चलाने लगे। दोनों धनुर्धरों के बाणों से आकाश भर गया, अर्जुन ने अश्वत्थामा के हृदय में ऐसा बाण मारा कि वे मूर्छित हो रथ पर गिर पड़े। यह देख कर उनका सारथी रथ लेकर भाग गया। फिर अर्जुन शत्रु सेना का संहार करने लगे।

भीमसेन, सात्यकि, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी आदि योद्धा कर्ण की सेना का संहार करते थे, उधर कर्ण, शकुनि आदि भट पाण्डवी सेना का विध्वंस कर रहे थे। देवासुर संग्राम के समान बड़ा ही लोमहर्षण युद्ध हो रहा था।

दुःशासन और शकुनि वीरों ने देखा कि भीमसेन बेतरह हमारी सेना का संहार कर रहे हैं वे दोनों महाबली अपार गजदल लेकर गर्जन करते हुए भीमसेन के समीप आ पहुँचे। उस समय क्रोध से भर कर गदा हाथ में लिये हुए भीम गर्जन करके शत्रुदल पर टूट पड़े। उन्होंने अपने अद्भुत पराक्रम से देखते ही देखते सारी सेना का इस तरह निपात कर डाला जैसे ग्रीष्म के दिनों में फूस के ढेर को आग पल भर में जला देती है। रणस्थल में मरे हुए हाथी और भटों का ढेर लग गया। बड़ी भयावनी रक्त की नदी बहने लगी। भीमसेन का वह पराक्रम वर्णनातीत है, उसको लेखनी द्वारा व्यक्त करना सर्वथा असम्भव है।

दूसरी ओर अर्जुन बाण बरसा कर प्रलय मचा रहे थे।

इस प्रकार रणभूमि में अपनी सेना का निपात होते देख राजा दुर्योधन ने एक अक्षौहिणी सेना के सहित धर्मराज पर आक्रमण किया। भीमसेन, नकुल, सहदेव और धृष्टद्युम्न आदि वीरों ने देखा कि दुर्योधन आधी सेना साथ में लिये धर्मराज की ओर बढ़ता जा रहा है। समस्त महारथी साथ ही बाणों की वर्षा करते हुए सामने आ गये। सहदेव ने दुर्योधन को बाण मार कर घायल कर दिया।

दुर्योधन के शरीर से रक्तस्राव होते देख कर कर्ण को बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने बेशुमार बाणों की वृष्टि करके असंख्यों योद्धाओं का संहार किया। दसों दिशाओं को बाण के जाल से मढ़ दिया। फिर दुर्योधन आगे बढ़ कर धर्मराज से युद्ध करने लगे। दोनों राजाओं में परस्पर खूब ही अस्त्रप्रहार हुआ। दुर्योधन के बाण से घायल हो युधिष्ठिर बिकल हो गये। उन्होंने सारथी से कहा मेरा रथ तुरन्त शिविर की ओर ले चलो। सूत रथ भगा कर छावनी की ओर चला।

कर्ण पाण्डवी सेना का इस प्रकार निपात करने लगे मानों शरीरधारी काल जनसंहार करता हो।

राजा शल्य ने कर्ण से कहा—हे सूतपुत्र ! तुम यहाँ क्या युद्ध करते हो ? जिसको जीतने के लिये दुर्योधन ने तुम्हारा पालन पोषण किया है, उस अर्जुन से चलकर संग्राम करो तब तुम्हारी बहादुरी सराहनीय कहने योग्य होगी। इन पैदल सिपाहियों का संहार करना तुम्हें उचित नहींहै।

हे भाई ! तुमने जो कुन्ती को वर दे रक्खा है उसको भूल जाओ, देखो भीमसेन राजा दुर्योधन का बध करना ही चाहते हैं। शीघ्र चलकर राजा की रक्षा करो, नहीं तो महान अनर्थ होना चाहता है।

यह सुन कर कर्णने कहा— राजन् ! शीघ्र ही मेरा रथ वहाँ ले चलिये।

इधर घायल युधिष्ठिर डेरे पर पहुँच कर पलँग पर लेट गये। उन्हें घाव से बड़ी पीड़ा हो रही थी, किन्तु धीरज धारण करके नकुल से कहा- हे नकुल ! भीमसेन के समीप कर्ण युद्ध करने गया है। तुम दोनों भाई शीघ्र वहाँ जाकर उनकी सहायता करो।

धर्मराज की बात सुन कर दोनों वीर रथों पर चढ़ कर बड़े उत्साह के साथ रणभूमि में जा पहुँचे।

द्रोणतनय सगर्व अर्जुन से विकराल युद्ध कर रहे थे। दोनों वीर अविरल बाणों की वर्षा करते हुए बिलक्षण रणकौशल दिखाते थे। उनका अद्भुत संग्राम देखकर देवताओं को आश्चर्य हो रहा था। अर्जुन ने अश्वत्थामा के सारथी को मार डाला तब उन्होंने स्वयम रथ संचालन करते हुए अपनी संग्राम-पटुता प्रदर्शित की, फिर अर्जुन ने लगाम काट दिया, घोड़े रथ लेकर भाग चले। द्रोणपुत्र को भागते देख उनकी समूची सेना हाहाकार करती हुई भाग निकली और अर्जुन ने बाण वर्षा कर असंख्यों भटों का विनाश किया।

उधर दुर्योधन का आदेश मान कर कर्ण पाण्डवी दल का संहार करते थे। तब अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्णचन्द्र से कहा—हे केशव ! कर्ण हमारी सेना का बेतरह संहार करता है, आप रथ को शीघ्र उसके समीप ले चलें।

कृष्णचन्द्र ने कहा—हे पार्थ ! धर्मराज कर्ण के बाण से घायल हो युद्ध त्याग कर डेरे को चले गये हैं। पहले चल कर उन्हें देखना चाहिये फिर लौट कर कर्ण का वध करना ठीक होगा।

कृष्णचन्द्र की बात सुनकर अर्जुन बड़ी आतुरता से बोले हे—भगवान् ! अवश्य पहले धर्मराज के समीप चलना चाहिये।

तब भगवान् घोड़ों को हाँक कर भीम के पास पहुँचे। अर्जुन ने पूछा—हे भीमसेन ! धर्मराज कहाँ हैं, वे सेना में दिखाई नहीं देते हैं ?

भीमसेन ने कहा—हे पार्थ ! वे दुर्योधन के बाणों से घायल होकर विकलता से डेरे में चले गये हैं।

अर्जुन ने कहा—हे वीरबन्धु ! मैं धर्मराज को देखने जाता हूँ, आप सावधानी से यहाँ का सँभाल कीजियेगा।

इस प्रकार भीमसेन से कह कर अर्जुन धर्मराज के शिविर की ओर चले। तुरन्त वहाँ पहुँच कर रथ से उतर धर्मराज के चरण छुए। कृष्ण और अर्जुन को देख कर धर्मराज ने समझा कि कर्ण का वध होगया। वे अपनी जीत अनुमान कर बड़े हर्ष से बोले—

हे अर्जुन ! परम दुर्जय शत्रु, जो संसार में अद्वितीय धनुर्धर प्रसिद्ध भट था। जिसने काल के समान हमारी सेना का नाश किया था और जो परशुराम का शिष्य दिव्य अस्त्रों को धारण करनेवाला था। जिसका तेरह वर्ष तक मुझे भय बना रहा, उसका संहार करके तुमने परम आनन्दित-

किया है। जिसने गर्व के साथ प्रतिज्ञा की थी कि मैं अर्जुन और श्रीकृष्ण का वध करूँगा तथा जिसने द्रौपदी को भयंकर दुर्वचन कह कर पीड़ित किया था, उसको तुमने कैसे मारा ? जो इन्द्र के समान बलवान् और यमराज के समान भीषण था। हे वीर पार्थ ! शीघ्र कहो, मुझे बड़ी उत्सुकता है उस दुर्जय रणधीर सुभट का तुमने कैसे संहार किया ?

इस प्रकार धर्मराज के वचन सुन कर अर्जुन नम्रतापूर्वक बोले—राजन् ! मैं संसप्तक गण और अश्वत्थामा से युद्ध कर रहा था उनको परास्त करने पर आप के पीड़ित होने की ख़बर पाकर भीमसेन को लड़ाई का भार सौंप कर यहाँ आप को देखने आया हूँ। कर्ण अभी मारा नहीं गया है, परन्तु आप चिन्ता न करें, मैं युद्धस्थल में जाकर निश्चय ही आज कर्ण का बध करके तब शिविर में लौटूँगा।

अर्जुन की बात सुन कर धर्मराज रुष्ट होकर बोले—हे फाल्गुण ! तुम कर्ण के पराक्रम से अपनी सेना का नाश होते देख कर अपने बचने के लिये यहाँ आये हो। तुम्हें यहाँ आने का कौन सा काम था ? यदि तुमने कर्ण का संहार नहीं किया तो तुम्हारा कुन्ती के गर्भ से जन्म लेना व्यर्थ है। तुम उसका वध नहीं कर सकते तो गाण्डीव धनुष कृष्ण को दे दो वे उसका नाश करें। खेद है कि कर्ण के भय से रणस्थल छोड़ कर तुम यहाँ चले आये। तुम्हारे बाहुबल को धिक्कार है ! बाणों को धिक्कार है और गाण्डीव को धिक्कार है ! उसे तोड़ कर फेंक क्यों नहीं देते ?

धर्मराज के मुख से इस प्रकार कठोर वचनों को सुन कर अर्जुन को बड़ा क्रोध हुआ, तुरन्त उन्होंने दाहने हाथ से तलवार खींचना चाहा, तब कृष्णचन्द्र ने उनका हाथ पकड़ कर पूछा—हे अर्जुन ! यहाँ न तो कोई युद्ध करने को तैयार है, न सामने शत्रु ही है, फिर तुम खड्ग की मुट्ठी पर हाथ क्यों लगा रहे हो ?

अर्जुन ने कहा—हे केशव ! हमने यह पूर्व ही में प्रतिज्ञा की है कि जो मेरे पराक्रम, तथा गाण्डीव का निरादर करके धनुष दूसरे को देने के लिये कहेगा, उसका मैं बध कर डालूँगा। इस समय अनुचित उचित का विचार न करूँगा, क्योंकि धर्मराज ने वही किया, इसलिये हम इनको मार डालेंगे।

यह सुनकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने कहा—हे अर्जुन ? तुम यह क्या उत्पात करना चाहते हो ? तुम्हारी बातें सुन कर मुझे आश्चर्य हो रहा है। क्या तुमने वृद्ध चतुर विद्वानों की सेवा नहीं की है ? जो बात कभी मुख से निकालने लायक नहीं, तुम उसे करने को उद्यत हो। मिथ्या भाषण आदि पापों से हिंसा सब से बढ़ कर है, तुम वही करना चाहते हो ?

हे तात ! यह कोई सत्यव्रत नहीं कि तुम श्रेष्ठ बन्धु का वध कर डालो। इस से जगत में तुम्हारी बड़ी अपकीर्ति होगी। आज तुम्हें कौन कार्य करना है और क्या करने के लिये उत्साहित हुए हो ? तुम्हें ऐसा कहना उचित नहीं, शत्रुदल नाश करने की प्रतिज्ञा करो। तुमने कर्ण के संहार का प्रण किया है, उसको पूरा करके दिखाओ। व्यास आदि महात्माओं ने यही बात धर्म विधान कह कर वर्णन की है, कि पाँच स्थानों में मिथ्या भाषण का दोष नहीं है। जहाँ सच कहने से जीवहत्या होने की सम्भावना हो और जहाँ सर्वस्व हरा जाता हो, विवाह कार्य, रसरंग और ब्राह्मण की भलाई के लिये झूठ बोलने से लेशमात्र पाप नहीं होता। एक तो धर्मराज धर्म के मूर्त्ति हैं दूसरे तुम्हारे ज्येष्ठ सहोदर बन्धु हैं, उनका तुम बध करना चाहते हो ?

हे बीर अर्जुन ! सुनो, बुद्धिमान् लोग विचार कर कार्य करते हैं। कहीं हत्या करने से पुण्य होता है और कहीं सत्याचरण से पाप होता है, जैसे व्याध बालक ने पुण्य पाप का फल पाया था।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के वचन सुन कर अर्जुन ने क्रोध त्याग दिया और पूछा—हे प्रभो ! अब आप ऐसी बात कहिये जिससे मेरी प्रतिज्ञा भंग न हो और यह अनर्थ होने से बच जाय।

श्रीकृष्णचन्द्र ने कहा—हे अर्जुन ! धर्म की गति बड़ी सूक्ष्म है और अंगिरा ऋषि के मतानुसार तुम्हें दुष्ट मानियों का मानभंग करना ही श्रेयस्कर है। इसीसे तुम्हारी प्रतिज्ञा पूरी होगी और संसार में किसी तरह की आपकीर्त्ति न फैलेगी।

कृष्णचन्द्र की बात सुन कर अर्जुन ने धर्मराज के पाँवोंपर पड़ कर क्षमा प्रार्थना की। धर्मराज ने क्षमा करके प्रसन्नता पूर्वक कहा—

हे अर्जुन ! कर्ण ने जो दुर्व्यवहार अबतक हम लोगों के साथ किये हैं, उसकी कसक हमारे हृदय से तभी दूर होगी, जब तुम उसका बध करोगे।

यह सुन कर अर्जुन ने उन्हें ढारस देकर कहा—हे धर्मराज ! अब मुझे आज्ञा दीजिये, मैं कर्ण का बध करके ही लौटूँगा।

इस प्रकार कहकर पुनः प्रणाम करके श्रीकृष्ण के साथ रथ पर सवार हो अर्जुन रणभूमि में आये। उन्हों ने कर्ण के मारने की दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली। तब कृष्णचन्द्र कहने लगे—

हे अर्जुन ! तुम जगत में अद्वितीय योद्धा हो, तुम्हारे पराक्रम का वारापार नहीं है। तुमने ऐसे ऐसे भटों को रण में जीत लिया है कि जिनके जीतने योग्य संसार में कोई भट नहीं है। भीष्म, भगदत्त आदि असंख्यों महारथियों का तुमने रण में संहार किया है। तुम्हारे पराक्रम को स्मरण करके मन में आश्चर्य उत्पन्न होता है। तुमने देवता, गन्धर्व और असुरों को जीत लिया। तुम्हारी कीर्त्ति देवता लोग गान करते हैं।

हे वीर पार्थ ! जगत में यदि तुम्हारी बराबरी का कोई योद्धा है तो वह कर्ण ही है। तेज में अग्नि, क्रोध में काल के समान अस्त्रविद्, सिंह पुरुष, अत्यन्त शूर, दुर्योधन का हितैषी, अभिमानी, महान् पराक्रमी, देवता और दैत्यों से अवध्य कर्ण के सिवा दूसरा इस समय धरती पर योद्धा कोई नहीं है।

हे गाण्डीवी ! एकमात्र तुम्हीं उसका बध करने में समर्थ हो। आज बाणों की वर्षा करके उसका संहार करो। आज सत्रह दिन युद्ध करते बीत गया। दोनों ओर की सेनाएँ बहुत क्षीण हो चुकी हैं। उस सेना में अभी पाँच महारथी हैं। अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कृतवर्मा, कर्ण और शल्य। उनको मार कर विजय प्राप्त करो, फिर दुर्योधन का बध करो और उसके अन्य भाइयों का सर्वनाश कर डालो।

यदि अश्वत्थामा को गुरुपुत्र और शल्य को मामा समझ कर न मारो तो न सही, परन्तु दुर्बुद्धि, महानीच अभिमानी कर्ण का अवश्य ही आज तुम्हें निपात करना योग्य है। वही सारे अनर्थों का मूल है और उसे मारने की तुम ने पहले ही प्रतिज्ञा भी कर रक्खी है जिसने दुर्योधन की सभा में बैठ कर बड़े घमण्ड से अनेकों बार कहा है, कि मैं पाण्डवों का बध करूँगा। जिसके बल पर दुर्योधन विजय की आशा रखता है, जिसने सभा के बीच पतिव्रता द्रौपदी का घोर अपमान किया था और जिसने धनुष काट कर अभिमन्यु का वध करवा दिया आज उस दुराचारी का संहार तुम अवश्य करो।

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की बात सुन कर और मन में कर्ण के वध की प्रतिज्ञा किये हुए अर्जुन बोले—हे माधव ! आप जिस पर दया रखते हैं विजय-लक्ष्मी सदा उसके समीप निवास

करती है। प्रभो! आप की सहायता से मैं तीनों लोक के योद्धाओं को अकेले जीत सकता हूँ, फिर कर्ण मेरे सामने क्या चीज़ है। देखिये, इस समय कर्ण हमारी सेना में मतवाले हाथी के समान चारों ओर विचरता हुआ अनन्त बाणों की वर्षा करके प्रलय ढाह रहा है। उसको अमोघ बाण मार कर मैं आज अवश्य यमलोक पठाऊँगा। कर्ण के मरने से राजा धृतराष्ट्र महादुखी होंगे और दुर्योधन का रणोत्साह भंग होकर निराशा के समुद्र में बह जायगा। भाई, पुत्र, मित्र के सहित दुर्योधन को आज स्वर्गगामी बनाऊँगा। कर्ण का शिर काट कर समूची कौरवी सेना का निपात किये विना न छोड़ूँगा। कुँवर अभिमन्यु के शत्रुओं का आज निश्चय ही विनाश करूँगा। जिस प्रकार इन्द्र ने सम्बर का बध किया था, उसी तरह मैं कर्ण का संहार करूँगा।

उधर भीमसेन दुःशासन और संसप्तकों से बड़ा भयंकर युद्ध हो रहा था। शिखंडी और कृपाचार्य, सात्यकि और दुर्योधन, युयुधान और बृषसेन, नकुल और कृतवर्मा, सुषेण और उत्तमौजा परस्पर घोर संग्राम कर रहे थे।

राजा उत्तमौजा ने बड़ी फुर्ती से सुषेण का सिर काट कर धरती पर गिरा दिया। कर्ण ने सुषेण को मरते देख बाणों की वर्षा करके उत्तमौजा के रथ के घोड़ों को मार गिराया। उस समय उत्तमौजा ने बड़ी चालाकी की, कृपाचार्य के सारथी को मार डाला और आप शिखंडी के रथ पर जा बिराजे। यह देख कर अश्वत्थामा वहाँ आये, उन्हों ने कृपाचार्य की रक्षा करके उन्हें बचाया।

भीमसेन ने संसप्तकों को परास्त कर सूत से कहा मेरा रथ शत्रुदल के बीच में शीघ्र ही ले चलो।

सारथी ने कौरवी सेना में भीम का रथ पहुँचा दिया, वे विकराल काल के समान सेना का विनाश करने लगे। उसी समय रणस्थल में अर्जुन का आगमन सुन कर भीमसेन दूने उत्साह के साथ शत्रुदल का प्रलय करने लगे।

अर्जुन अपार बाणों को बरसाते आगे बढ़ रहे थे, असंख्यों हाथी, घोड़े, रथी, पैदल कट कर ढेर लगते जा रहे थे। अर्जुन के सामने जितने भट आये, वे काल के मुख में समा गये। दोनों बन्धु कौरवी सेना का इस प्रकार भयानक संहार कर रहे थे, जैसे मृगों के झुंड का सिंह निपात करता है।

पराक्रमी भीम व्यूह भेदन करके इस तरह बाहर निकल आये जैसे जाल फाड़ कर महामत्स बाहर निकल आता है। उन्होंने वेशुमार भट, घोड़े, रथी, पैदलों का विनाश किया; जिनको गणना सर्वथा असंभव है।

भीमसेन को अपनी सेना का भीषण संहार करते देख दुर्योधन ने शकुनि से कहा—हे मामा! आप तुरन्त अपनी सेना के साथ भीमसेन पर आक्रमण करके उसका संहार कर दें। वह प्रलयकाल के काल के समान पराक्रमी योद्धा है। उसको जीत कर आप ही मुझे विजयी बना सकते हैं।

यह सुन कर रणदुंदुभी बजवाते हुए शकुनि भीमसेन की ओर बढ़े। शकुनि को आते देख भीम बाणों की वर्षा करते हुए आगे बढ़े, फिर शकुनि ने भी असंख्यों बाण चला कर अद्भुत पराक्रम प्रदर्शित किया। परस्पर दोनों योद्धाओं में अस्त्रप्रहार हो रहा था और भीमसेन विजयशील शकुनि की सेना का विध्वंस बड़ी तेजी से कर रहे थे। तब शकुनि ने महाक्रोध करके भीमसेन के रथ और सारथी को बाण मार कर चूर चूर कर दिया। बली भीमसेन ने कराल शक्ति से शकुनि को व्याकुल कर दिया तथा रथ सारथी का नाश कर डाला। दूसरी शक्ति छाती में मारा, जिससे शकुनि मूर्छित होकर ज़मीन पर गिर पड़ा। धृतराष्ट्र के पुत्रों ने उसे रथ पर लाद कर रणस्थल से भाग प्राण बचाये। कौरवी सेना में भगदड़ मच गई। सब कर्ण के पास जाकर पाहि पाहि करने लगे।

उन डरे हुए वीरों को आश्वासन देकर कर्ण भीमसेन की ओर बाणप्रहार करते हुए चले। अपनी ओर आते देख कर भीमसेन, नकुल, सहदेव, द्रौपदी के पाँचों पुत्र, वीरवर सेनापति धृष्टद्युम्न शिखंडी, सात्यकि, आदि योद्धाओं ने अस्त्र शस्त्रों की मार से उसकी गति का अवरोध कर दिया।

उस समय वीरवर कर्ण ने अद्भुत पराक्रम प्रदर्शित किया। अपने बाणों की झड़ी लगा कर साथ ही शत्रुओं के समस्त बाण तथा अन्यान्य अस्त्रों को काट कर बीच ही में गिराते थे। बार बार प्रचार कर बाण मारते तथा वीरों को घायल कर धराशायी करते थे। भीम आदि महारथियों को व्याकुल कर मन में प्रसन्न हुए। कर्ण ने एक एक करके सभी वीरों को परास्त कर दिया। उसी प्रकार पाण्डवी सेना का विनाश किया, जैसे दावानल वन को विध्वंस करता है। सिर, धड़, हाथ, पाँव, सूँड़ के कटने से सारी धरती पट गई। इस प्रकार महापराक्रमी वीर कर्ण ने अपने बाणों से अनगिनती सेना और वीरों का निपात किया।

यह देख कर अर्जुन ने कृष्णचन्द्र से कहा—भगवन्! देखिये, कर्ण हमारी सेना का अतिशय संहार कर रहा है, शीघ्र ही आप रथ लेकर उसकी ओर चलिये। घोड़ों को हाँक कर भगवान ने रथको कर्ण के सामने चलाया और वीर अर्जुन अनन्त बाणों की बर्षा करते हुए कर्ण की ओर चले।

इस प्रकार कपिध्वज पार्थ को आते देख कर राजा शल्य ने कहा—हे सूतपुत्र! देखो रक्त की नदी बहाते हुए वीर अर्जुन तुम्हरी ओर बढ़े आ रहे हैं। सब योद्धाओं को कँपाता और व्याकुल करता हुआ धनुर्धर भट तुम्हारा संहार करने के लिये आ पहुँचा। अब तुम धीरज के साथ आगे बढ़ो। सभा में जो तुमने पांडवों को अनुचित बचन कहा था और आज धर्मराज को बाण मार कर घायल किया तथा भीमादिक वीरों के प्रति अद्भुत कर्म कर उन्हें पीड़ा पहुँचाया है, उन सब का बदला लेने के लिये काल के समान प्रलयकारी बाणों की वृष्टि करते तथा मछली रूपी सुभटों को बाण रूपी जाल में फँसाते हुए, यह देखो विकराल भट अर्जुन समीप में आगये। निश्चय ही वे इस समय तुम्हारा संहार करने को आ रहे हैं, अब तुम अपना पराक्रम जो अब तक लम्बी डींग हाँक कर बखान करते थे, उसे प्रत्यक्ष करके दिखाओ।

शल्य के वचन सुन कर कर्ण ने कहा—हे राजन्! आप शंका न करें, मैं अनुपम कार्य कर दिखाऊँगा आज अपने तीक्ष्ण बाणों से अवश्य ही अर्जुन का वध करूँगा। या तो अर्जुन ही मेरा वध करेगा या मैं ही उसको मारूँगा, दुर्योधन के कल्याणार्थ मैं भीषण संग्राम करके आज पूर्ण रीति से अपने बाहुबल का परिचय दूँगा।

कर्ण की बात सुन कर राजा शल्य ने कहा—हे सूतनन्दन! अर्जुन के समान संसार में कौन योद्धा है? उनके अमानुषिक कर्म को सुन कर किसे आश्चर्य न होगा। शिवजी और इन्द्रादि लोकपालों ने उन्हें दिव्यास्त्र दिये हैं, उनकी बराबरी तुम केवल गर्व भरी बातों को कह कर नहीं कर सकते।

कर्ण ने कहा—हे शल्यराज! आप भाट की तरह बार बार अर्जुन का गुणगान करते हैं। मैं उसके अतुल पराक्रम को बख़ूबी जानता हूँ; किन्तु इसका कुछ भी मेरे मन में भय नहीं है।

इस प्रकार शल्य से भाषण कर कर्ण ने राजा दुर्योधन से कहा—हे महाराज! आप, कृपाचार्य, गान्धारनरेश और अश्वत्थामा, सेना के सहित अर्जुन को चारों ओर से घेर लें तथा मैं उससे सामने युद्ध करके बध करूँगा। तदनुसार सब वीरों ने अर्जुन को घेर लिया और भीषण संग्राम आरम्भ हुआ

अर्जुन ने घोर पराक्रम करके बाणों का जाल शत्रुदल में फैला दिया। अश्वत्थामा, कृपाचार्य आदि भटों के अस्त्रों को काट कर धरती पर गिराते जाते थे और साथ ही अपने बाणों से सहस्र सहस्र योद्धाओं को घायल कर धराशायी करते थे। शत्रुदल के प्रत्येक रथियों को विरथ कर दिया। कौरवी सेना में कोई भी वीर ऐसा नहीं बचा, जिसको अर्जुन ने अपने बाणों से घायल न किया हो। दसों दिशाओं में बाण इतने भर गये कि अन्धकार छा गया। पल भर में धनुर्धर अर्जुन ने कर्ण की सेना का बहुत भाग नष्ट कर दिया। कितने ही हाथी, घोड़े, रथी, पैदल मर कर ढेर लग गये। रक्त की बड़ी भयंकर सरिता बह चली और कौरवी सेना में बड़ा हाहाकार मच गया।

अपने सैन्य का संहार देख दस महारथियों के साथ दुःशासन अर्जुन की ओर बढ़ा, किन्तु वीर अर्जुन ने बाण प्रहार कर बीच ही में सारी सेना को छिन्न भिन्न कर दिया। नब्बे संसप्तक रथी और तेरह सौ गजसवार क्रुद्ध होकर पार्थ की ओर बढ़े, पर महारथी अर्जुन ने बाणों से एक एक को घायल कर जहाँ का तहाँ ही बैठा दिया। उन्होंने काल के समान संहार करते हुए कौरवी दल में प्रलय पसार दिया।

अर्जुन के समीप बड़ी भीड़ देखकर भीमसेन अपना रथ बढ़ाकर वहीं आगये और अत्यन्त क्रुद्ध हो गदाप्रहार करने लगे। जैसे रूपधारी काल लोहदंड लेकर संहार करे, उसी प्रकार भीमसेन ने अपार सेना का पल भर में विध्वंस कर डाला। बचे बचाये दुर्योधन की सेना के भट कर्ण के पीछे भाग गये।

यह देख कर दुर्योधन का धीरज छूट गया, उन्होंने कर्ण को उत्तेजित किया। महारथी कर्ण कालरूप हो बाण बरसाने लगे। उन्होंने अर्जुन की तरह बाण बरसा कर ठीक वही दशा पांडवी सेना में मचा दी। दुःशासन बहुत बड़ी सेना लेकर भीमसेन से भयानक संग्राम करने लगे। दोनों भट परस्पर बाण बरसा कर एक दूसरे को चोट पहुँचाते थे। कभी बरछा, भाला, शक्ति चला कर वार करते थे। युगुल योद्धाओं का ऐसा भीषण युद्ध हुआ, कि लोग कहते थे; ऐसा भयानक समर देवता और दैत्यों में भी नहीं हुआ था।

दुःशासन ने भीम के धनुष को काट गिराया और साथ ही बाण प्रहार करके भीमसेन को घायल कर दिया, किन्तु चोट की परवाह न करके भीमसेन गदा लेकर टूट पड़े और ललकार कर ऐसा प्रहार किया जैसे इन्द्र पर्वत पर वज्र छोड़ते हैं। भीषण गदा की चोट से दुःशासन कई हाथ पीछे जाकर अचेत धरती पर गिर पड़ा। रथ घोड़े चूर हो गये और वीर दुःशासन को चेतना-रहित प्राणकंठगत हुआ मूर्छित पृथ्वी पर पड़ा देख, उसकी सेना भाग गई।

दुःशासन को अचेत देख वीरवर भीमसेन रथ से उतर कर उसके पास गये और सभा में की हुई अपनी पूर्व प्रतिज्ञा का उन्हें स्मरण हो आया। भीम ने सोचा कि यह दुष्ट बेहोश है, इसका शरीर छेदन कर कैसे रक्त पान करूँ। इस समय इसको कैसे जान पड़ेगा कि मैंने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की है।

ऐसा सोच कर भीमसेन ने वस्त्र से उसके मुख पर वायु करके उसे सचेत किया। जब उसको होश हुआ तब भीमसेन उसकी छाती पर अपना लात रख भुजा उठा कर बोले—

कृपाचार्य, कृतवर्मा आदि महारथियो! हमारी बात सुन लो। मैं इस दुष्ट का संहार करता हूँ। जिसको बचाना हो आकर बचावे। पर किसी को साहस न हुआ कि भीम के पास जाय और दुःशासन की रक्षा करे।

तब क्रोध से भरे हुए भीमसेन दुःशासन की ओर निहार कर बोले—रे नीच दुःशासन ! मैंने सभा के बीच तेरा रक्तपान करने की प्रतिज्ञा की थी, उसको इस समय पूरी करता हूँ, जो तुझे बचा सके, उसको तू शीघ्र बुलावे।

रणधीर दुःशासन ने कहा—अरे भीम ! मेरी भुजाएँ हाथी के मस्तक को तोड़ने वाली हैं। इन्हीं हाथों से मैं ने सहस्रों हाथी, घोड़े और गौ दान दिये हैं। मेरे भुजाओं के बल से तुम हारे हो, हमारे ही बदौलत तेरह वर्ष बनवासी रहे हो। मेरी वही बाहें हैं, जिससे द्रौपदी के सिर के बाल खींचे गये हैं। यह सब तुमने आँखों देखा है, पर उस समय कुछ नहीं कर सके। अब हम समरभूमि में अचेत पड़े हैं, जो तुझे रुचे वह कर। तू मेरा रक्तपान करने को कहता है इसका मुझे क्रोध नहीं, मैं क्षात्रधर्म पालन कर रणस्थल में प्राण त्याग करता हूँ। जब मेरे रक्त को सियार कौए पान करेंगे तब तू भी उन्हीं में से कोई होगा इसकी मुझे चिन्ता नहीं है।

सुनते ही भीमसेन ने उसकी भुजा उखाड़ डाली और हाथ से छाती फाड़ कर रक्त पान करने लगे। देखनेवाले इस घिनावने दृश्य को देख आपस में कहने लगे कि भीम मनुष्यों में महा अजेय असुर हैं। इनके समान कोई बलवान नहीं है।

फिर भीमसेन कुम्भकर्ण के समान गर्जन करके दाँतों से योद्धाओं की गर्दन काट काट कर फेंकने लगे। यह भीषण कर्म देख कर लोग कहने लगे कि भीम राक्षस है। अबतक यह मनुष्य रूप में छिपा था, आज अपना असली रूप प्रगट किया है।

फिर भीमसेन ने दुःशासन के अन्य तेरह भाइयों का विनाश किया। उनका विकरालपन देख भयभीत होकर कौरवी सेना भाग गई।

दुःशासन आदि का संहार सुन कर दुर्योधन, कृपाचार्य, कर्ण और अश्वत्थामा आदि बेचैनी से व्याकुल होकर हाय हाय करने लगे।

भीमसेन ने दुर्योधन के सुवर्चस आदि और भी दस भाइयों का सामने आते ही वध कर डाला। इन सब के मरने से विशेषतः दुःशासन के मारे जाने से कर्ण को बड़ी व्याकुलता हुई।

सूतपुत्र को बेचैन देख कर राजा शल्य ने कहा—हे कर्ण ! तुम इतने व्याकुल क्यों हो रहे हो ? सोच त्याग करो। युद्ध में क्षत्रिय के लिये मरना मंगलकारी है। विजय वा पराजय लड़ाई में एक होती ही रहती है, इसलिये आलस्य त्याग कर तुम्हें संग्राम करना चाहिये। अर्जुन आदि भट बाण बरसाते हुए तुम्हारी ओर आ रहे हैं। शोच छोड़ कर तुम भयंकर संग्राम करो और शत्रुओं को मार कर राजा के हृदय की चिन्ता दूर कर दो। युद्ध का सारा भार तुम्हारे ही ऊपर है इसलिये बाणों का जाल रच कर चलो। राजपुत्रों का शोक त्याग कर लड़ो, जीतने पर सुयश और मरने पर स्वर्ग होगा।

राजा शल्य की बात सुन कर वीर कर्ण ने शत्रुदल का संहार करना आरम्भ किया। फिर दोनों दलों में भीषण युद्ध होने लगा और कितने ही प्रसिद्ध प्रसिद्ध योद्धा कट कट कर धरती पर गिरने लगे।

कर्ण-पुत्र ने उस समय बड़ा ही पराक्रम प्रदर्शित किया, उसने भीम, नकुल और श्रीकृष्णचन्द्र को बाण मार कर घायल कर दिया। यह देख कर वीरवर अर्जुन ने उसे बहुत से तीरों से भेदन किया फिर उसने अर्जुन पर तीखे बाण बरसा कर इस प्रकार चकित कर दिया जैसे नमुचि ने इन्द्र पर आघात किया था। उसने कृष्णचन्द्र को तथा अर्जुन को कई एक बाणों से मार कर युगल महारथियों के शरीर को छेद कर जर्जर कर दिया। तब अर्जुन को बड़ा क्रोध हुआ, उन्होंने उच्चस्वर से कर्ण को पुकार कर कहा—

अरे कर्ण ! तैने समाज के सहित अन्यायपूर्वक युद्ध करके मेरे पुत्र का नाश किया था। उस अधर्म युद्ध से अभिमन्यु को मार कर आनन्दित हुआ था। आज मैं दुर्योधन, कृपाचार्य और तेरे देखते हुए तेरे पुत्र का संहार करता हूँ जो रक्षा कर सके तो आकर इसको बचावे। शकुनि, दुर्योधन, दुःशासन और तू इस प्रलयकारी युद्ध कराने का मूल कारण है। क्रम से मैं सब को स्वर्गगामी बनाऊँगा। जहाँ दुःशासन गया है, वहीं तुम लोगों को भी भेजूँगा।

ऐसा कह कर पार्थ ने दस तीव्र बाण मार कर कर्ण-पुत्र के सिर और बाहु को काट कर धरती पर गिरा दिया। वृषसेन का बध देख कर कर्ण पागल हो गये, फिर धीरज धारण कर अजेय पारथ की ओर जय की इच्छा से आगे बढ़े।

कृष्ण भगवान ने अर्जुन से कहा—हे पार्थ ! कर्ण खेद के साथ तुम्हारी ओर आ रहा है, आज तुम अपनी अद्भुत धनुर्विद्या का कौशल दिखा कर उसका बध करो।

अर्जुन ने कहा—हे भगवान् ! आप की कृपा का बल पाकर मैं अवश्य ही कर्ण का बध करूँगा।

यह कह कर अर्जुन ने कठिन गाण्डीव धनुष पर बाणों का सन्धान किया और सूतपुत्र पर बाणों की वर्षा करने लगे। उसी प्रकार रणधीर कर्ण अपने विजय-धनुष का टंकार कर अद्भुत कला से अविरल बाण प्रहार करने लगे।

दोनों धनुर्धर भट ललकार कर दिव्य बाण बरसाते थे। हाथी के चिन्हवाली कर्ण की ध्वजा और बन्दर के निशानवाली अर्जुन को ध्वजा फहरा रही थी। दोनों ओर विविध प्रकार के बाजे बज रहे थे और युगल दिशि के योद्धा परस्पर बाण वृष्टि करते थे।

अर्जुन और कर्ण दोनों योद्धा इन्द्र और सम्बरासुर के समान अद्भुत युद्ध कर रहे थे, उसे देखकर देवता, सिद्ध, गन्धर्व, किन्नर, यक्षगण अर्जुन की बड़ाई करते थे तथा दैत्य, राक्षस, पिशाच आदि कर्ण की प्रशंसा करते थे।

अर्जुन और कर्ण के बाण दोनों ओर समान रीति से जलविन्दु की तरह गिर रहे थे। असंख्यों हाथी, घोड़े और वीरों का संहार हुआ। कृप शकुनि आदि भट घायल हो अर्जुन के बाणों से चेतनारहित हो गये।

काम्बोज का यवन नरेश सौ रथी, एक सहस्र हाथी और बहुतेरे घुड़सवार लेकर अर्जुन पर शस्त्र प्रहार करने लगा। बीर पार्थ ने उसके अस्त्रों को निष्फल कर सारी सेना पल भर में काट कर खलिहान कर दिया। अर्जुन का यह अद्भुत पराक्रम देख कर देवता गण प्रसन्न हो प्रशंसा करने लगे।

देवताओं के मुख से अर्जुन की प्रशंसा सुन कर अश्वत्थामा ने राजा दुर्योधन से कहा—

हे राजन् ! पाण्डव लोग अब भी शान्ति के इच्छुक हैं, आप मेरी शिक्षा मान कर बन्धु विरोध त्याग दीजिये। धर्मराज से मिल कर आधा राज्य बाँट कर उनसे मेल कर भाई भाई जैसा व्यवहार कीजिये। अब भी कुशल है, इसी से सन्देह दूर होगा और दूसरा कोई उपाय इस अमिट के मिटाने का नहीं है। मैं अपने मरने के डर से ऐसा नहीं कह रहा हूँ; क्योंकि आप जानते हैं मैं अमर हूँ। इससे मुझे मरने का डर नहीं है। यह बात मैं तुम्हारी भलाई के लिये ही कहता हूँ।

अश्वत्थामा की बात सुनकर दुर्योधन ने कहा—हे बिप्रवर ! आपने जो कहा, वह अनुचित नहीं है, आप के समान मेरा हितैषी कौन होगा ? पर मेरी बात सुनिये, मेरे मन में यह बात कुछ भी नहीं रुचती है। सिंह के समान बली भीम ने मेरे भाई को मार कर उसका रक्तपान किया और गर्व की बात बोला था, वह मुझे वज्र के समान खलती है।

हे तात! अब मैं किस प्रकार मेल करूँ। मैंने पाण्डवों की कौन सी भलाई की है? इससे आप शंका न करें। कर्ण अवश्य ही अर्जुन का संहार करेगा।

यह सुन कर अश्वत्थामा ने फिर कुछ नहीं कहा।

कर्ण और अर्जुन युद्ध में अद्भुत पराक्रम प्रकाश कर रहे थे। दोनों योद्धा इन्द्र के समान बाण-रूपी वज्र की लगातार वर्षा करने में प्रवृत्त थे। उन महारथियों के शरीर पर बाणों की अपार वृष्टि हो रही थी और अपनी अपनी रण-चातुरी से एक दूसरे का अस्त्र निवारण करते हुए वार करते थे।

जब बाणों के प्रहार से कर्ण ने अर्जुन की एक न चलने दी तब वीरवर पार्थ को बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ, उन्होंने आग्नेयास्त्र का प्रहार किया जिससे कर्ण का रथ जलने लगा। फिर कर्ण ने वरुणास्त्र चला कर ज्वालमाला को शान्त कर दिया। वीर पार्थ ने वायव्यास्त्र मारा, उससे असंख्यों बाणों की धाराएँ निकल कर घोड़ों के सहित कर्ण के शरीर को भेदन कर दिया।

कर्ण ने दूने उत्साह से भार्गवास्त्र को चला कर पांचालनरेश की बहुत सी सेना का निपात कर दिया। फिर उन्होंने अर्जुन पर इस प्रकार बाण बरसाये जैसे श्रावण भादों के मेघ जमकर पर्वतों पर बुन्दों की झड़ी लगाते हैं। उसी प्रकार धनुर्धर अर्जुन ने भी बाणा की वृष्टि करके कर्ण के रथ को बाणों के जाल से रूँधकर अदृश्य कर दिया। दोनों महारथियों के शरीर बाणों से छिद्र कर विशिखमय दिखाई देते थे।

उस समय भीमसेन ने क्रुद्ध होकर अर्जुन से कहा—हे वीर पार्थ! तुमने पहले गन्धर्वों को जीत लिया और शिवजी से विकट संग्राम किया। इन्द्र को जीत कर वनदाह किया तथा दैत्यों को पराजित करके यशस्वी हुए हो। इस समय शिथिल होकर कर्ण के अस्त्रों की चोट क्यों सहन कर रहे हो? इसके पूर्व अपकारों का स्मरण करके तुरन्त संहार करो अब देरी करने की आवश्यकता नहीं है।

भीमसेन की बात सुन कर भगवान् कृष्णचन्द्र ने कहा—हे अर्जुन! इस समय कर्ण बड़ी प्रबलता दिखा रहा है, फिर तुम क्यों शिथिलता की चाल पकड़े हो? इसी लिए तुम इसका संहार करो।

कृष्णचन्द्र की बात सुन कर अर्जुन ने अत्यन्त क्रोध से कर्ण पर ब्रह्मास्त्र चलाया, किन्तु वीर कर्ण ने उसे निष्फल कर दिया।

कर्ण की दक्षता देख कर भीम ने फिर अर्जुन से कहा—हे भाई! क्या आप अस्त्रविद्या को भूल गये? दिन बीतना चाहता है आप ने धर्मराज के सामने आज ही कर्ण के वध की प्रतिज्ञा कर रक्खी है, शीघ्र ही अमोघ बाण चला कर उसको पूरी कीजिये।

उसी समय अश्विनीकुमारों ने आकर अपनी सुचारु चिकित्सा से धर्मराज को पूर्ववत् स्वस्थ कर दिया। वे रथ पर चढ़ कर अपनी सेना में आये और कर्ण को युद्ध करते देखा।

अर्जुन ने कर्ण के दो हज़ार अंगरक्षकों को बाणों से पल भर में मार कर धराशायी कर दिया। शेष भट कर्ण को अकेले छोड़ अर्जुन के बाणों से भयभीत होकर भाग गये। फिर किसी की हिम्मत समीप आने की नहीं हुई।

रणवीर कर्ण अकेले ही बाण प्रहार करते हुए पाण्डवी सेना का द्विगुण उत्साह से विमर्दन कर रहे थे। दोनों दलों के वीर जहाँ तहाँ निराश होकर कहते थे कि आज के युद्ध में किसी के बचने की आशा नहीं है। अर्जुन और कर्ण के बाण प्रलय पसार रहे हैं। दिशाओं में बाणों के भर जाने से अन्धकार छा गया है। धरती पर लाशों, रथों और अस्त्र शस्त्रों के ढेर से डोलना कठिन है

फिर कोई कहाँ भाग सकता है? लोग जहाँ के तहाँ खड़े त्राहि त्राहि करने लगे। सब को प्राणान्त होने का निश्चय हो गया।

कर्ण ने तीव्र बाण पार्थ के मस्तक में मारा जिससे उन्हें मूर्छा आगई, फिर सचेत होकर बड़े क्रोध से धनुष हाथ में लेकर उन्होंने बाण का सन्धान किया। मघा का मेघ जैसे बुन्दों की झड़ी लगाता है, उसी प्रकार वीर अर्जुन बाणों की वर्षा करते थे। कर्ण बार बार अर्जुन के धनुष की प्रत्यंचा काटते थे और वीर वर अर्जुन दूसरी प्रत्यंचा चढ़ा कर बाण बरसाते थे, परन्तु यह काम इतनी तेज़ी से अर्जुन सम्पन्न करते थे कि देखनेवालों को लखाव ही नहीं होता था।

परशुरामजी के शाप के अनुसार जब कर्ण का काल समीप आ गया तब अकस्मात् उनके रथ की पहिया धरती में धँस गयी। घोड़ों ने हर प्रकार से ज़ोर लगाया, शल्य ने चाबुक लगा कर निकालना चाहा, पर रथ की पहिया धरती में जुड़ सी गई, तब वीर कर्ण ने बाण का चलाना छोड़ दिया और रथ चलाने की इच्छा से नीचे उतरे। उन्होंने अपनी सारी शक्ति लगा दी पर रथ टस से मस नहीं हुआ, तब उनको निश्चय हो गया कि अब मेरा काल आ गया और अर्जुन अवश्य ही इस समय मेरा संहार करेगा।

कर्ण ने कहा—हे अर्जुन! हम तुमसे दीन होकर नहीं कहते हैं, किन्तु तुम्हारा इस समय बाण चलाना वीरोचित कार्य और क्षत्रियधर्म नहीं है, जब कि मैं निरस्त्र होकर रथ को धँसान से बाहर निकाल रहा हूँ। पाप कर्म त्याग कर अल्प समय के लिये बाणवृष्टि बन्द करो, मैं भी रथ पर सवार हो जाऊँ, तब इच्छानुसार बाण चलाओ।

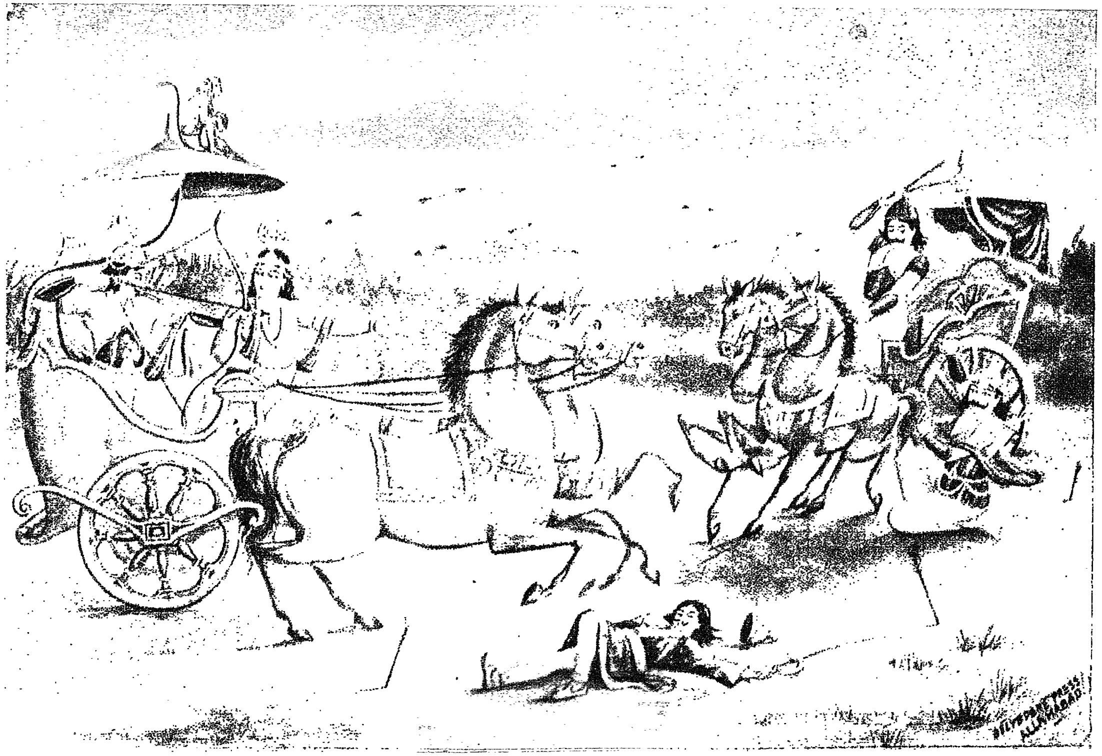
श्रीकृष्णचन्द्र ने कहा—हे कर्ण! तुम दुर्योधन और शकुनि ने तो धर्म का सदा पालन ही किया है। भीमसेन को धोखे से विष खिला कर साँप से डँसवाया, षड्यंत्र रच कर पांडवों के सर्वनाश का प्रयत्न किया और उनको लाक्षागृह में रख कर आग लगवा दी। राजसभा में द्रोपदी के प्रति अधर्ममय दुर्वाक्य उच्चारण किया, तब तुम्हारा धर्म कहाँ था? तेरह वर्ष पांडवों को व्यर्थ वन-वास का दुःख दिया और राज्य लौटाने को कहा उससे मुकर गये, तब तुमने धर्म का विचार नहीं किया? इस समय धर्मोपदेश सूझ रहा है। किसी अवस्था में तेरा बध करना अर्जुन का परम धर्म है।

फिर भगवान् ने अर्जुन से कहा—हे पार्थ! अब तुम दिव्य बाण से शीघ्र ही इस अधर्मी का संहार करो।

वासुदेव की बात सुनते ही कर्ण रथ पर चढ़ गये और अपने बाण चलाने लगे। अर्जुन ने उनके समस्त अस्त्रों को काट काट कर धरती पर गिरा दिया फिर अर्जुन ने चक्र, त्रिशूल, वज्र, कालदंड और प्रलयकाल के सूर्य के समान अमोघ बाण धनुष पर चढ़ाया। चारों दिशाओं की ओर दृष्टिपात करके क्रोध से भरे हुए कर्ण को ललकारा कि देख बचा, मैं इसी बाण से तेरा सर्वनाश करता हूँ। ऐसा कह कर बाण प्रहार किया उस से कर्ण का सिर धड़ से अलग होकर धरती पर जा गिरा। मणियों से विभूषित कर्ण भट का शरीर प्राणशून्य हो पृथ्वी पर सूर्य के समान शोभित दिखाई पड़ने लगा।

कर्ण का बध देख कर श्रीकृष्णचन्द्र और पाण्डव लोग परम प्रसन्न हुए। पाण्डवी सेना में शंख आदि विजय के बाजे बजने लगे। कौरवी सेना में भय से हाहाकार मच गया, बची हुई सेना व्याकुलता से भाग चली।

राजा दुर्योधन मित्र कर्ण वीर का संहार सुन कर अतिशय विकल हो रुदन करने लगे। हृदय



कर्णवध ।

सुनि यदुपति उपदेश तब, तानि सराशन तीर ।
कर्ण हृदय महँ लक्ष करि, हने धनञ्जय वीर ॥

पृष्ट ३०६

बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग ।

में हार कर बार बार पश्चात्ताप करके कर्ण का यश बखान करते थे। परन्तु अपनी सेना के वीरों को हताश देख धीरज धारण करके ढारस बँधाते हुए बोले—

हे सुभटो! क्षात्रधर्म भूल कर कहाँ भागे जा रहे हो। लौटो, लौटो, कह कर फिर अपने सारथी से कहने लगे। तुम सन्देह रहित घोड़ों की चाल तेज करके मुझे अर्जुन के समीप ले चलो। मैं अपनी भुजाओं के बल उससे युद्ध करूँगा। भीम, अर्जुन और कृष्ण क्या चीज़ हैं? वे मेरे पास नहीं आ सकते और मैं इनका अवश्य ही बध करूँगा।

राजा की आज्ञा सुन कर सारथी धीरे धीरे रथ लेकर चला, साथ में पचीस हजार बाँके योद्धा भी चले। दुर्योधन को आते देख सात्यकि, भीम, नकुल, सहदेव और धृष्टद्युम्न आदि योद्धाओं ने बीच ही में रोक कर भीषण संग्राम मचा दिया। भीमसेन ने अपनी गदा से कई सहस्त्र भटों का निपात कर डाला। कौरवी दल भयभीत हो दुर्योधन को अकेला छोड़ कर भाग गया। दुर्योधन अकेले भूरि भूरि बाणों की वर्षा करते हुए समस्त योद्धाओं से लड़ने लगे।

राजा शल्य दुर्योधन के पास जाकर बोले—राजन्! इतने योद्धाओं के साथ आप का अकेले युद्ध करना ठीक नहीं है। इस समय वीर कर्ण के मारे जाने से सेना के वीर हताश हो गये हैं और दिनान्त भी हो गया, इससे शिविर की ओर चलिये।

शल्य की बात सुन कर दुर्योधन युद्ध त्याग कर डेरे को लौट आये और कर्ण कर्ण पुकार कर रोने लगे। राजा शल्य, कृपाचार्य और अश्वथात्मा ने बहुत समझा बुझा कर उन्हें शान्त किया।

इधर पांडव लोग विजय-दुन्दुभी बजवाते और शंखध्वनि करते हुए अपने अपने डेरे को लौटे।

श्रीकृष्णचन्द्र और अर्जुन धर्मराज के पास आये और भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने कहा—

हे धर्मराज! जैसे पूर्व में इन्द्र ने वृत्तासुर का संहार किया था, उसी प्रकार आज रणस्थल में अर्जुन ने कर्ण का बध कर डाला।

भगवान् की बात सुनतेही धर्मराज परम आनन्दित होकर उठे और श्रीकृष्ण तथा अर्जुन को गले लगा कर बड़े आदर से आसन पर बैठाया। धर्मराज ने बार बार श्रीकृष्ण भगवान को बन्दन किया और स्तुति करके कहा—

प्रभो? यह आप ही की महिमा है कि सब स्थलों में मेरी ही विजय हो रही है।

सब योद्धागण अर्जुन और कृष्ण की प्रशंसा करते हुए डेरे में गये। कर्ण का बध सुन कर राजा धृष्टराष्ट्र को बड़ा दुःख हुआ, वे व्याकुलता से अचेत हो गये। संजय, विदुर ने बहुत समझाया परन्तु पुत्रों का नाश सोच कर उन्हें किसी प्रकार धीरज नहीं होता था। तब विदुर ने कहा—

राजन्! मैंने पहले इस कुमंत्र को दूर करने के लिये कई बार प्रार्थना की, पर उस समय होनहार बश आपने मेरे कहने पर ध्यान नहीं दिया। उसका फल सामने आ रहा है, अब व्यर्थ विलाप करने से क्या हो सकता है?

इति

शल्यपर्व ।

शल्य धर्मराज युद्ध ।

दुर्योधन ने अश्वत्थामा से कहा—हे आचार्यपुत्र ! आप मेरे हितैषी और सर्वज्ञ हैं। यह बतलाइये कि अब हम किसको सेनापति बनाकर शत्रु से युद्ध करें ?

अश्वत्थामा ने कहा—हे राजन् ! आप मद्रनरेश को अपना सेनापति बना कर शोक त्याग धैर्य धारण करके शत्रु से संग्राम कीजिये।

द्रोणतनय की बात सुन कर दुर्योधन ने हाथ जोड़ कर बड़ी नम्रता के साथ राजा शल्य से निवेदन किया। हे महाराज ! अब हमारी कीर्त्ति की रक्षा आप के ही हाथ में है।

दुर्योधन की आर्त्त वाणी सुन कर राजा शल्य बोले—हे कुरुराज ! सुनो, आप के लिये मैं अपना राज्य और प्राण दे डालना व्यर्थ नहीं समझता। जो आप कहें मैं वही करने को तैयार हूँ।

शल्य की बात सुन कर राजा दुर्योधन ने कहा—आप हमारे सेनापति होकर जैसे स्कन्द ने देवताओं को विजय दिया था, उसी प्रकार मुझे विजयी कीजिये।

यह सुन कर बड़े उत्साह के सहित शल्य ने कहा—हे दुर्योधन ! मैं अवश्य आप का सेनापति होऊँगा। कृष्ण और अर्जुन मेरे बराबर बली नहीं हैं, सात्यकि तथा भीम का वीरों में आदर नहीं है। दो प्रहर में पाण्डवों का संहार करके विजय लाभ करूँगा। आप चिन्ता त्याग दीजिये।

शल्य की बातों से दुर्योधन के मन में भरोसा हुआ, उन्होंने राजा शल्य का विधिवत् अभिषेक करके दुन्दुभी आदि बाजे बजवाये और ब्राह्मणों ने स्वस्त्ययन पढ़ कर शुभाशीर्वाद दिये। कौरवी सेना में नवीन उत्साह का संचार हुआ। कर्ण के मरने का शोक सब के हृदय से जाता रहा और शल्य को सेनापति पाकर उनको आशा हुई कि युद्ध में हमारी जीत अवश्य होगी।

धर्मराज को गुप्तचरों द्वारा यह समाचार मिला, उन्होंने केशव से कहा—हे भगवन् ! दुर्योधन ने सम्मति करके शल्य को सेनापति बनाया है। शल्य को जीतना बड़ा दुस्तर कार्य है, उससे विजय का उपाय बताइये ?

युधिष्ठिर की बात सुन कर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने कहा—हे धर्मराज ! आप मन में संशय न करें। यद्यपि राजा शल्य युद्धविद्या में भीष्म, द्रोणाचार्य और कर्ण से कम नहीं हैं, तो भी उनका बध कठिन नहीं है। शल्य का संहार आप ही कर सकते हैं। कहीं मामा समझ कर हृदय में दया न लाना। क्षत्रियधर्म के अनुसार उसका वध आप को करना चाहिये।

इस प्रकार युधिष्ठिर से कह कर कृष्णचन्द्र अपने शिविर में चले गये। रात बीतने पर प्रातःकाल बड़े उत्साह से दुर्योधन ने सेना सजवायी और सेनापति शल्य को आगे करके संग्रामभूमि की ओर चले।

शल्य ने सर्वतोभद्र नामक व्यूह रचा और आप व्यूह के मुख-स्थान पर स्थित हुए। त्रिगर्तराज और कृतवर्मा वाम भाग में, धनुर्धर कृपाचार्य और यवनगण भारी भारी भट दाहिने भाग में, काम्बोज नरेश के सहित वीर अश्वत्थामा पृष्ठ भाग के रक्षक तथा कौरवी दल के सहित राजा दुर्योधन मध्य भाग में स्थित हुए। शकुनि सेना के चारों ओर प्रधान भटों को साथ लिये रक्षक नियत हुआ।

पाण्डव वीरों ने भी उसी प्रकार व्यूह रचना करके युद्ध के लिये तैयारी की । सत्रह दिन के युद्ध के बाद छे हज़ार हाथी, छे हज़ार रथ, दसहज़ार घुड़सवार और एक करोड़ पैदल पाण्डवी सेना में शेष थे । उसी प्रकार दस हज़ार सात सौ हाथी, ग्यारह हज़ार रथी, दो लाख घुड़सवार और तीन करोड़ पैदल कौरवी सेना में लड़ने योग्य बच रहे थे ।

दोनों ओर के योद्धाओं से युद्ध छिड़ गया । धर्मराज और शल्यराज, अर्जुन और संसप्तक गण, सोमदत्त से भीम, कृपाचार्य से नकुल सहदेव आदि वीर 'मारो काटो' की ध्वनि करते हुए परस्पर युद्ध करने लगे ।

बड़ा भयानक युद्ध दोनों दलों में हुआ, रक्त की नदी बहने लगी । इस नदी में रथ भँवररूप, धनुष सोता, ध्वजा वृक्षरूप, हाथ पाँव मगर रूप, बाण और तलवार मछली रूप, ढाल कच्छप, मज्जा मेद फेन, मुख-कमल, चामर केश सेवार और छत्र मानों पक्षी रूप शोभित होते दिखाई देने लगे । हाथियों का गिरना करार का भहराना था । यह नदी वीरों को आनन्दवर्द्धिनी और कादरों के लिये अपार भयदायिनी प्रतीत होने लगी ।

इस प्रकार भीषण संग्राम होने से असंख्यों भट कट कट कर धराशायी हो गये । रणधीर अर्जुन ने बाणवृष्टि करके कौरवी दल को व्याकुल कर दिया । कौरवी सेना को छिन्न भिन्न हुई देख कर धर्मराज निर्भय अपना रथ आगे बढ़ा कर शल्य की ओर चले । शल्य की सेना हाहाकार करती हुई भाग चली । बाणों के प्रहार से चिग्घाड़ते हुए हाथियों का दल भागने लगा ।

अपने सेना को विचलित होते देख कर शल्य ने सूत से कहा—मेरा रथ धर्मराज के सामने तुरन्त ले चलो । शल्य ज्योंही आगे बढ़े त्योंही पाण्डवी सैन्य के योद्धा आगे बढ़ कर शल्य से घमासान युद्ध करने लगे । घोर संग्राम हुआ, जिससे दोनों ओर की बहुतेरी सेना कट गई ।

वीरवर नकुल ने बाणों की वर्षा करते हुए चित्रसेन पर आक्रमण किया । कुछ देर तक परस्पर बाणों से युद्ध किया । जब नकुल ने देखा कि शत्रु पराजित नहीं होता है, तो धनुष-बाण त्याग ढाल तलवार लेकर उछले और चित्रसेन के रथ पर पहुँच कर एक ही वार से उसकी गरदन काट कर धड़ से भिन्न कर दी ।

कर्ण-पुत्र के बध से पाण्डवी दल में प्रसन्नता हुई और प्रतिपक्षी की सेना में शोक से हाहाकार मच गया ।

अपने भाई का वध देख कर सत्यसेन और सुषेण नकुल पर बाण बरसाने लगे । नकुल ने सत्यसेन के घोड़ों को मार गिराया और उसके धनुष को काट कर दो टुकड़े कर दिया । सुषेण ने नकुल का धनुष काट कर ललकारा कि अब तू बच कर नहीं जा सकता । ऐसा कह कर सत्यसेन तथा सुषेण ने नकुल को बाणों से भेदन किया । वीरवर नकुल ने घोर युद्ध किया और वज्र के समान बाण सत्यसेन की छाती में मारा, जिससे वह प्राणहीन होकर धरती पर गिर पड़ा । भाई को मरते देख सुषेण क्रुद्ध हो भयंकर बाणों की बर्षा करके द्वन्द्व युद्ध करने लगा ।

राजा शल्य बाणों की झड़ी लगाकर अपनी सेना की रक्षा करने लगे । उस समय धर्मराज की ओर के वीरों ने शल्य से युद्ध कर अद्भुत पराक्रम प्रकाश किया । रणस्थल में चारों ओर मारो काटो की ध्वनि भर रही थी ।

धनुर्धर अर्जुन ने संसप्तकों का निपात कर डाला, फिर कौरवी सेना का बाणों की वृष्टि करके विमर्दन करने लगे । उसी तरह भीमसेन और कृपाचार्य विपक्षियों में प्रलय मचाये हुए थे ।

अपनी सेना को विकल देख कर मद्रनरेश पाण्डवों पर प्रचण्ड बाण बरसाते हुए आगे बढ़े, उन्होंने बड़ी तेज़ी से दस दस बाण भीम, नकुल, सहदेव, सात्यकि, द्रौपदी के पाँचों पुत्र और धृष्ट-द्युम्न आदि प्रमुख योद्धाओं को लक्ष्य करके मारा। जैसे मेघ बुन्दों की झड़ी लगाते हैं, उसी प्रकार राजा शल्य अविरल बाण वृष्टि कर रहे थे। असंख्यों हाथी, घोड़े और भटों का संहार किया। पाण्डवी सेना विचलित हो धर्मराज के पीछे भाग भाग कर प्राण बचाने लगी।

यह देख कर धर्मराज क्रुद्ध हो धनुष पर बाण सन्धान कर बाण प्रहार करने लगे। दोनों राजाओं ने बड़ा ही भयंकर संग्राम किया जैसा युद्ध आज तक किसी ने नहीं किया था। भीमसेन से कृतवर्मा, द्रौपदी-पुत्रों से शकुनि, नकुल सहदेव से अश्वत्थामा और राजा दुर्योधन समाज के सहित क्रोध कर अर्जुन से युद्ध करते हुए अपना अपना रणकौशल दिखा रहे थे।

शल्य ने सहदेव के रथ के घोड़ों को मार गिराया, तब क्रोध से भर कर वीर सहदेव तलवार लेकर कूदे और राजा शल्य के पुत्र को एक ही वार से काट कर दो टुकड़े कर दिया। शल्य ने महाक्रोध करके धर्मराज पर बाण बरसाये और उन्हें व्यथित कर दिया। देखते ही भीमसेन शल्य पर गदा लेकर झुके, किन्तु सेनापति ने तीव्र बरछा चलाया, पर भीम ने गदा प्रहार से सारथी और घोड़ों को प्राण रहित कर दिया। शल्य भी गदा धारण कर युद्ध करने लगे। परिणाम यह हुआ कि भीषण युद्ध के अनन्तर शल्य और भीमसेन साथ ही बेहोश होकर गिर पड़े। यह देख कर दोनों दलों में हाहाकार मच गया।

कृपाचार्य ने अपने रथ पर शल्य को लाद कर दूसरे स्थान में पहुँचा दिया। क्षण भर के बाद भीमसेन को होश हुआ फिर वे गदा लेकर शल्य को ललकारने और पुकारने लगे।

दुर्योधन ने भयंकर बाणवृष्टि करके चेकितान का संहार कर डाला। कृपाचार्य, कृतवर्मा, राजा सौबल और शल्य अपनी अपनी सेनाओं के सहित धर्मराज से घमासान युद्ध कर रहे थे। धृष्ट-द्युम्न और दुर्योधन परस्पर बाणवृष्टि करते थे। तीन सहस्र रथियों को साथ में लिये अश्वत्थामा राजा विजय से भिड़े हुए थे। जैसे सरोवर में प्रवेश कर हंस शोभित होते हैं उसी प्रकार दोनों ओर के योद्धा रणसागर में शोभा पा रहे थे।

राजा शल्य ने अपनी बाणवृष्टि से भीम, सात्यकि, नकुल, सहदेव, युधिष्ठिर आदि वीरों के नाकों दम कर दिया। असंख्यों भटों का संहार करके स्वर्गगामी बना दिया। शल्य का अपरिमित पराक्रम देख कर राजा दुर्योधन को बड़ी प्रसन्नता हुई, उन्हें कर्ण के मरने और पराजय का शोच विस्मरण हो गया।

अर्जुन और अश्वत्थामा परस्पर बाणों की वर्षा करके भयानक संग्राम कर रहे थे। वीरवर अर्जुन कितने ही वीर, हाथी, घोड़ों का संहार काल के समान बाणों की झड़ी लगा कर करते थे। जैसे मेघनाद बाण बरसाता था, उसी प्रकार अर्जुन ने शत्रुदल पर तीरों की वृष्टि से अश्वत्थामा की सेना का बध कर धरती पर शवों का ढेर लगा दिया। रक्त की धारा स्रोत के समान बड़ी भयंकर बहने लगी।

राजा शल्य बारम्बार नकुल, सहदेव, सात्यकि और धर्मराज को बाणों से मार मार कर उन्हें अस्त्रचालन का अवकाश ही नहीं देते थे। शल्य का अद्भुत पराक्रम देख कर आकाश में देवगण उनकी वीरता सराहते थे।

फिर धर्मराज ने बड़ा क्रोध किया और भीमसेन, अर्जुन, सात्यकि, शिखंडी, नकुल, सहदेव,

आदि प्रबल योद्धा अपने अपने अस्त्र शस्त्र से शल्य पर साथ ही मेघ के समान झड़ी लगाये हुए थे। राजा शल्य सब के अस्त्रों को निवारण करते हुए कितने ही भटों का सर्वनाश करते थे।

दुर्योधन और भीमसेन गदायुद्ध करने लगे। फिर अपने अपने धनुष बाण लेकर एक दूसरे पर प्रहार कर रणचातुरी दिखा रहे थे। भीम ने अत्यन्त क्रोध से शक्ति चलाई, उसके लगते ही दुर्योधन मूर्छित हो गिर पड़े। दूसरा सारथी रथ लेकर भाग गया। कौरवी सेना में हाहाकार मच गया।

उधर राजा शल्य और धर्मराज का भीषण युद्ध चल रहा था। राजा शल्य ने अपने अद्भुत पराक्रम से धर्मराज के सहित प्रधान प्रधान वीरों के छक्के छुड़ा दिये। उसकी रणपटुता देख सब के मन में आशंका उत्पन्न हुई कि इससे विजय प्राप्त करना आसान नहीं है। तब धर्मराज को बड़ा क्रोध हुआ और भगवान कृष्णचन्द्र की बात स्मरण करके त्रिशूल, चक्र और कालदंड के समान अमोघ बाण धनुष पर संधान करके शल्य को ललकारा कि अब तेरा काल आ गया। तू इस बाण के प्रहार से प्राणहीन होता है, ऐसा कह कर बाण का प्रहार किया, राजा शल्य ने सीधी छाती कर ओड़ने का प्रयत्न किया, परन्तु वह शक्ति छाती में घुस कर पार होगई जिससे राजा प्राणशून्य होकर धरती पर गिर पड़े। रक्त से सराबोर राजा का शरीर इन्द्रधनुष के समान शोभित होने लगा।

इस प्रकार भाई का नाश देख कर खाण्डव वीर महा क्रोध कर युधिष्ठिर के संहार करने की प्रतिज्ञा करके बाणवृष्टि करने लगा। धर्मराज ने बड़ी शीघ्रता से बाण प्रहार कर उसका भी सिर काट डाला। इस विजय से पाण्डवी सेना में आनन्द छा गया और कौरवी दल हाहाकार करता भाग चला।

राजा शल्य के मित्र सात रथी प्रतिज्ञा करके पाण्डवों से भिड़ गये। वे सब बाणों की ऐसी घनी वृष्टि करने लगे कि पाण्डवी दल में आतंक छा गया। अर्जुन बाण बरसाते हुए वहाँ आ गये और धृष्टद्युम्न, सात्यकि तथा पांचालनरेश आदि धनुर्धर मद्रनाथ की सेना का संहार करने लगे। जैसे सरोवर को मकर-समूह मथते हैं उसी प्रकार उन वीरों ने सेना का मंथन कर डाला। अपार सुभटों का अंगभङ्ग करके धराशायी कर दिया।

इस प्रकार मद्रसेना का संहार होते देख शकुनि और दुर्योधन उसकी सहायता के लिये ससैन्य जा पहुँचे। वे धर्मराज से युद्ध करने लगे। भीमसेन रथ से उतर कर गदा प्रहार करते हुए शत्रु सेना का विध्वंस करने लगे। जैसे मृगों के वृन्द को सिंह विदीर्ण करता है उसी प्रकार भीमसेन ने सुभटों, रथों और हाथी के झुंडों का नाश करके प्रलय मचा दिया।

धर्मराज और दुर्योधन परस्पर बाणवृष्टि करते हुए युद्ध करते थे। तबतक म्लेच्छपति शाल्व काल के समान मतवाले हाथी पर सवार दुर्योधन की सहायता के लिये आ गया। उसने विकट रूप से बाण चला कर पाण्डवी सेना में महा भय उत्पन्न कर दिया। धृष्टद्युम्न ने शाल्व के हाथी को ऐसा बाण मारा कि जिससे घायल होकर उसने पीछे भागना चाहा; परन्तु शाल्व ने हाथी रोक कर धृष्टद्युम्न पर बाणों की झड़ी लगा दी। सात्यकि वीर ने कूद कर शाल्व के हाथी के सिर पर वज्र के समान गदा मारी, जिससे वह अरमरा कर धरती पर गिर गया, वीर सात्यकि ने एक ही वार में शाल्व का सिर काट डाला। फिर क्षेममूर्ति को मार कर प्राण विहीन कर दिया।

इस प्रकार उभय प्रमुख योद्धाओं का बध करते देख राजा कृतवर्मा सात्यकि पर बाण बरसाने लगे। वीर सात्यकि ने बाणों से कृतवर्मा का रथ विध्वंस कर उसकी छाती में बाण मार बेहोश कर दिया। कृपाचार्य अपने रथ पर लाद कर कृतवर्मा को लेकर दूसरी जगह चले गये और कौरवी सेना भयभीत हो इधर उधर भाग चली।

शकुनिबध और दुर्योधनपराजय ।

सेना को बिचलित देख कर अत्यन्त क्रुद्ध होकर राजा दुर्योधन भयानक बाण वृष्टि करते हुए पाण्डवी सेना की ओर बढ़े तथा दूसरे रथ पर सवार हो राजा कृतवर्मा तीरों की झड़ी लगाते दुर्योधन की सहायता के हेतु आ गये । उस समय दुर्योधन ने बड़ा ही उत्कट पराक्रम किया । अपार बाणों की वर्षा करके धर्मराज, भीमसेन, नकुल, सहदेव, सात्यकि आदि प्रधान प्रधान भटों को घायल कर दिया। फिर पाण्डव वीर भी सँभल कर अस्त्रप्रहार करने लगे । भीमसेन और अश्वत्थामा अद्भुत रण-कौशल दिखाते हुए परस्पर युद्ध करते थे । नकुल और उलूक, सात्यकि और कृतवर्मा घोर रण में प्रवृत्त थे ।

शकुनि को धर्मराज ने विरथ कर दिया, वह दूसरे रथ पर चढ़ कर धर्मराज के रथ सारथी का निपात करके गर्जा । नकुल ने धर्मराज को अपने रथ पर बैठा लिया । तब धर्मराज ने शकुनि पर बाण बरसाये ।

इसी प्रकार सब योद्धा गण परस्पर लोमहर्षण संग्राम करते थे । धरती रुण्ड मुण्डमय दिखाई देने लगी । एक बार फिर कौरवी सेना डर कर भाग चली, पर दुर्योधन ने उत्तेजना देकर लौटाया और तुमुल युद्ध होने लगा । धर्मराज ने कृतवर्मा के रथ का विध्वंस कर दिया, अश्वत्थामा ने राजा कृतवर्मा को अपने रथ पर बैठा लिया ।

सात रथी धर्मराज पर बाण बरसाने चले, परन्तु पाण्डव वीरों ने पल भर में उनका विमर्दन करके उन्हें धराशायी कर दिया । फिर शकुनि ने बहुत से योद्धा भेजे, उन सब को पाण्डवों ने यमलोक भेज दिया ।

राजा सौबल ने दस हज़ार घुड़सवार साथ में लेकर विजय की इच्छा से घात ताक कर पाण्डवी सेना के पृष्ठभाग की ओर जाकर आक्रमण किया । भाले की मार से सेना का विमर्दन करने लगा । हाहाकार सुनकर धर्मराज ने सहदेव से कहा—

हे सहदेव ! देखो, सौबल पृष्ठभाग पर उपद्रव कर रहा है, तुम द्रौपदीपुत्रों के सहित शीघ्र वहाँ जाकर सेना की रक्षा करो ।

सहदेव वहाँ जाकर शकुनि की सेना से युद्ध करने लगे । वीर सहदेव ने घोर संग्राम करके सवारों का नाश कर उन्हें भगा दिया । फिर आप धर्मराज के पास लौट आये ।

तीन पहर दिन बीत जाने पर जब शकुनि के पास केवल सात सौ भट शेष रहे और समूची सेना लड़ कर कट गई, तब वह युक्ति से निकल कर दुर्योधन के पास गया और कहा—

राजन् ! मेरी सेना कट गई अब मुट्ठी भर सुभट विशाल सेना से किस प्रकार युद्ध कर विजयी हो सकते हैं ? इसलिये आप ससैन्य आक्रमण करने में विलम्ब न कीजिये ।

शकुनि की बात सुन कर दुर्योधन ने डंका बजवा कर प्रस्थान किया । फिर भीषण संग्राम ठन गया । अन्धाधुन्ध मार काट होने लगी । हथियारों की चमक बिजली को मात करने लगी । वीर लोग खंड खंड होकर धरती पर धड़ाधड़ गिरने लगे । दोनों दलों के योद्धाओं में नवीन उत्साह भर गया । वे काल के समान एक दूसरे का संहार करते हुए रणरस में मतवाले से हो रहे थे ।

इस प्रकार भीषण मार काट होते देख कर अर्जुन ने कहा—हे केशव ! शत्रुदल में रथ शीघ्र ले चलिये आज उस का मैं विनाश ही कर डालूँगा । भीष्मपितामह, विदुर और आपने उसकी भलाई के

लिये कितना समझाया; किन्तु मूर्ख दुर्योधन ने किसी का कहना नहीं माना ! भीष्म, द्रोण, कर्ण और शल्य आदि अद्वितीय योद्धा जूझ गये, तब भी इस निर्बुद्धि हठी को ज्ञान नहीं हुआ ! इसके सहोदर बन्धु सब मर गये। पर जब तक यह जीता रहेगा तब तक इसी तरह हत्याकाण्ड होता रहेगा, इसलिये इस अधर्मी का शीघ्र संहार होने ही में व्यर्थ का रक्तपात बन्द होगा।

अर्जुन की बात सुन कर भगवान रथ बढ़ा कर शत्रुदल के मध्य जा पहुँचे। अर्जुन बाण प्रहार करने लगे। वे वज्र के समान बाण चलाकर शत्रुदल का इस तरह विध्वंस करने लगे, जैसे दावानल वन को भस्मीभूत करता है। प्रत्येक योद्धाओं के शरीर पर पार्थ ने अपार बाणों की धारा बरसाई जिससे रथ, धनुष, ध्वजा, घोड़ा, हाथी, सुभट अंगभंग होकर धरती पर गिरने लगे। अर्जुन के बाण रूपी अग्नि की लपट में कौरवी दल बेतरह झुलसने लगा। बहुत से योद्धा हहरकर भाग निकले और कितने ही घायल हुए धरती पर पड़े कराहने लगे। सारांश अर्जुन वीर ने शत्रु की सेना में भीषण प्रलय मचा दी।

दुर्योधन और धृष्टद्युम्न अमर्ष के साथ परस्पर बाणवृष्टि करते थे। दोनों प्रबल धनुर्द्धर भट असंख्यों विशिख चलाकर घोर युद्ध में प्रवृत्त अपना अपना रणकौशल दिखाने में लगे थे। फिर रण-विशारद धृष्टद्युम्न ने दुर्योधन के रथ और सारथी का विध्वंस कर डाला। दुर्योधन शकुनि के पास किसी तरह बच कर जा पहुँचे।

धृष्टद्युम्न और सात्यकि वीरों ने बड़ा भयंकर संग्राम किया। भीमसेन अपनी गदा के प्रहार से कितने ही हाथी, रथ और भटों का संहार करते थे। फिर धनुष बाण लेकर भीषण बाणवृष्टि करके दुर्विमोच, दुर्मर्षण, दुर्विष, जयत्सेन, सुकान्त और सुजान आदि प्रमुख शत्रु के सुभटों को यमलोक भेज दिया। पाँच सौ रथी, सात सौ हाथी और एक लाख पैदल का भीमसेन ने पल भर में संहार कर डाला। भीम को विकराल काल के समान विमर्दन करते देख भयभीत होकर कौरवी सेना भाग चली।

सात्यकि ने विजय करके संजय को बँधुआ बना लिया। तब दुर्योधन ने घुड़सवार सेना का व्यूह बना कर आप बीच में स्थित हो अपनी रक्षा का प्रबन्ध किया। कृपाचार्य, अश्वत्थामा और कृत-वर्मा उसके पास सहायतार्थ खड़े थे।

भगवान् कृष्णचन्द्र ने अर्जुन से कहा—हे पार्थ ! अब पाँच सौ घुड़सवारों के सहित शकुनि बच रहा है और दुर्योधन के साथ सौ हाथी, दो सौ रथी और तीन सहस्र पैदल सिपाही रह गये हैं। सेनापतियों में कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कृतवर्मा, त्रिगर्त्त, सुशर्मा और उलूक बचे हैं। तुम शीघ्र इनका भी संहार करो तभी युद्ध समाप्त होगा।

श्रीकृष्णचन्द्र की बात सुनकर अर्जुन बोले—प्रभो ! यदि ये राजा रणस्थल से भाग न गये, तो आज मैं सब का बध करूँगा। शकुनि ने अधर्म से जो हमारे साथ ठगबाजी किया था, उसका बदला भी मैं लिये बिना न छोड़ूँगा। आप रथ आगे बढ़ाइये।

इतना कह कर अर्जुन बाणवृष्टि करते हुए आगे बढ़े। उनके साथ भीमसेन, नकुल और सहदेव आदि भट धनुटंकार करते हुए चले। पाण्डव वीरों को आते देख वीर शकुनि और सुशर्मा आगे बढ़ कर भिड़ गये।

दुर्योधन सहदेव से और सुदर्शन भीमसेन से युद्ध करने लगे। धनुर्धर अर्जुन ने समूची सेना पर बाणों की वर्षा प्रलयकाल के मेघों के समान मचाई। जैसे मृग वृन्द को सिंह विमर्दन करता

है उसी प्रकार पाण्डव भट शत्रुदल का विनाश करने लगे। रथियों के सहित पल भर में अर्जुन ने सुशर्मा को मार कर प्राणहीन कर दिया। त्रिगर्त्त के दल का संहार कर भीमसेन ने सुदर्शन को यम-पुरी का रास्ता पकड़ाया।

शकुनि और सहदेव परस्पर युद्ध करते थे। रणभूमि में मुर्दों का ढेर लग गया। सिर, धड़, कटे हाथ, पाँव और रक्त मांस से पूर्ण धरती बड़ी ही भयानक हो गई। कौए, सियार, गिद्ध घूम घूम कर रक्तपान करते थे।

सहदेव ने भाला मार कर उलूक भट का सिर काट धरती पर गिरा दिया। शकुनि पुत्र का मरना देख विदुर की बात याद कर मन में दुखी हुआ। वह क्रोध कर सहदेव पर बाण प्रहार करने लगा, उन्होंने बाणों को बीच ही में काट गिराया। तब सहदेव पर शकुनि ने तलवार से वार किया, उन्हों ने खड्ग को भी बाण मार कर टुकड़े टुकड़े कर दिया।

यह देख शकुनि डर गया और पीछे हटा. फिर सहदेव ने महान् क्रोध कर तीखे बाणों से उसकी भुजा और सिर काट डाला। शकुनि प्राण रहित हो धरती पर गिर पड़ा। शकुनि के सेना-पतियों ने घोर रूप से संग्राम करना आरम्भ किया; उन्हें अर्जुन ने तीव्र बाण मार कर पल भर में परलोकगामी बना दिया।

शकुनि का सर्वनाश देख दुर्योधन ने बची हुई सेना लेकर पाण्डवों पर बड़े क्रोध से आक्र-मण किया। एक मुहूर्त्त भर भीषण युद्ध हुआ, पाण्डव वीरों ने उस सेना का भी संहार कर डाला। ग्यारह अक्षौहिणी सेना दुर्योधन के पास थी, अन्त में वह अकेला रह गया। पाण्डवों के पास सात सौ हाथी, दो हज़ार रथ, पाँच हज़ार घुड़सवार और दस हज़ार पैदल शेष रहे। बाक़ी सात अक्षौहिणी सेना इनकी भी कट गई।

दुर्योधन हाथ में गदा लिये पैदल भाग कर सरोवर के जल में जा छिपे। सात्यकि ने संजय को मारने के लिये खड्ग उठाया उस समय व्यासजी ने आकर मना कर दिया तब सात्यकि ने संजय को छोड़ दिया।

संजय उस तालाब पर आये जहाँ दुर्योधन छिपे थे। संजय को देख कर दुर्योधन को बड़ी करुणा उत्पन्न हुई। उन्होंने कहा—

हे संजय! हमने भीष्म और विदुर आदि का कहना नहीं माना, उसी का फल पाया कि एक भी योद्धा मेरी सेना का नहीं बच रहा।

संजय ने कहा—हे राजन्! वृद्धों के वचन की अवहेलना करने से परिणाम भयंकर होता ही है, परन्तु अब पछताना व्यर्थ है। आप की सेना में कृपाचार्य; अश्वत्थामा और कृतवर्मा यही तीन योद्धा बचे हैं; इतना कह कर संजय चले गये। अश्वत्थामा, कृप और कृतवर्मा दुर्योधन की ख़बर संजय से पाकर पहले शिविर में आये। वहाँ देखा कि सब स्थान ख़ाली पड़ा है। स्त्रियाँ पति, पुत्र, भाई, पिता, श्वसुर के नाम ले ले बिलख कर रो रही हैं। वे सब रोती, छाती पीटती हस्तिना-पुर में आईं।

इति।

गदापर्व ।

भीम-दुर्योधन गदा-युद्ध ।

अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा कुछ रात बीतने पर सरोवर के किनारे जाकर अत्यन्त दुःखपूर्ण हृदय से दुर्योधन को खोज कर कहने लगे ।

हे राजन् ! हम तीनों प्रचण्ड महारथी आप की विजयकामना से अब भी युद्ध करना चाहते हैं । आप इसी समय मेरे साथ चलें; पाण्डवी सेना का नाश करके विजय प्राप्त करें ।

यह सुन कर दुर्योधन दुःखी होकर बोले—बड़े सौभाग्य की बात है कि आप लोग बच गये हैं । इस समय मैं लड़ने योग्य नहीं, बहुत थक गया हूँ । रात यहीं बिता कर स्वस्थ होने पर प्रातःकाल आप लोगों को संग में लेकर पाण्डवों से युद्ध करूँगा ।

दैवयोग से उस समय एक बहेलिया जो भीमसेन का पुराना नौकर था, पानी पीने तालाब के किनारे आया । उसने बातचीत करते सुन कर समझ लिया कि दुर्योधन यहाँ आकर छिपे हैं । वह भीमसेन को सूचना देने के लिये चला ।

उधर पाण्डव लोग विजय प्राप्त कर दुर्योधन को भगा जान कर चिन्तित थे और रणस्थल में बहुत से दूत भेज कर खोज कराते थे इतने में वह व्याधा भीमसेन के पास पहुँच कर बोला—

हे महाराज ! राजा दुर्योधन द्वैपायन सरोवर में छिपे हैं । जो बातचीत उसने सुना था यथातथ निवेदन कर दिया । भीमसेन ने बहेलिये को ख़ूब इनाम देकर विदा किया और प्रसन्नता के साथ धर्मराज, श्रीकृष्णचन्द्र के सहित ससैन्य शंख बजा कर सरोवर की ओर चले ।

कृपाचार्य और अश्वत्थामा आदि ने दुर्योधन से कहा—राजन् ! जान पड़ता है धर्मराज सेना के सहित डंका बजवाते इधर आ रहे हैं, इसलिये हमलोग यहाँ से हट जाते हैं । दुर्योधन उन्हें विदा करके आप ताल में जल के भीतर जा छिपे । वे तीनों योद्धा दूर जाकर शोक से खिन्न एक वट वृक्ष के नीचे जाकर बैठ गये ।

राजा युधिष्ठिर बन्धुगण, मित्र और सेना के सहित वहाँ गये । दुर्योधन की चालाकी अनुमान कर धर्मराज ने कहा—

हे केशव ! दुर्योधन की माया देखिये, जलस्तम्भन करके तालाब के भीतर छिपा है । वह किस प्रकार से मारा जा सकता है ? क्योंकि जल के भीतर मनुष्य की गति नहीं है ।

श्रीकृष्णचन्द्र ने विचार कर कहा—हे धर्मराज ! आप सत्य कहते हैं, वह युक्ति से मारा जायगा, आप उसको ललकारिये तब बाहर आवेगा ।

भगवान् की बात सुन कर धर्मराज ने कहा—हे दुर्योधन ! बाहर आओ, तुमने कादरों की तरह रणस्थल से भाग कर प्राण बचाने के लिये जल के भीतर निवास किया है । क्षत्रीधर्म को त्याग भाई तथा पुत्रों का समर में संहार कराकर अपने जीने की आशा से भाग कर छिपा है ? तुम्हारा गर्व और शूरता कहाँ लोप हो गई ? क्या दूसरों ही के बल पर डींग हाँकते थे ? सामने आकर युद्ध करो, कुरुवंस में कलंक मत लगाओ ।

जल के भीतर से दुर्योधन ने कहा—हे धर्मराज ! मैं पानी के बीच विश्राम करने की इच्छा से आया हूँ। मुझे प्राण का भय नहीं है। इस समय मैं बहुत थक गया हूँ इसलिये आप सब रात्रि में विश्राम करें और मैं भी आराम करूँगा। सबेरे मैं आप से फिर युद्ध करूँगा।

युधिष्ठिर ने कहा—हे अभिमानी ! हम सब थके नहीं हैं, तुम अपनी वीरता के अनुसार पानी से बाहर आकर पुरुषार्थ प्रकट करो। या तो मुझे जीत कर अखंड राज्य भोगो अथवा जगत से सिधार कर देवलोक का आनन्द उपभोग करो।

दुर्योधन ने कहा—जिन पुत्र और बन्धुओं के लिये मैं राज्यवृद्धि का उद्योग करता था, वे सब स्वर्गगामी हो गये, अब मुझे राज्य की इच्छा नहीं है, मैंने उसे त्याग दिया तुम जा कर राज्य का सुख भोग करो। तुम्हें मारने के लिये हमारे मन में अब भी पूर्ववत् उत्साह है किन्तु पुत्र और बन्धुओं के न रहने से मैं राज्य की इच्छा त्याग देता हूँ। अब मृगचर्म धारण कर बन में निवास करूँगा, तुमको राज्य दिये देता हूँ जाकर निर्भय राज्यसुख का भोग करो।

दुर्योधन की अद्भुत वाणी सुनकर धर्मराज बोले—अरे कुलाङ्गार नीच ! पहले तो तू कहता था कि सूई के अग्रभाग बराबर धरती न दूँगा, अब इतनी उदारता तेरे हृदय में कैसे आगई है कि समूचा राज मुझे देने को कह रहा है। यदि अपने को अबतक देने योग्य समझता है तो इस बेहयापन का कोई ठिकाना नहीं है। कुल की रक्षा के लिये हमलोगों ने केवल पाँच ग्राम देने को कहा था, पर तूने उस समय अस्वीकार कर दिया। सर्वनाश करके अब उदारता दिखाने चला है, मैं युद्ध में बिना तेरा बध किये राज्य भोग न करूँगा। क्योंकि जबतक तू जीता रहेगा तबतक मैं कुशल से राज्य नहीं भोग सकता, इसलिये दो में एक नहीं होकर ही जो बच रहेगा, वही राज्य का उपभोग करेगा। रण से भाग कर पानी में छिपा हुआ राज्य का दान करते हुए तुझे लज्जा नहीं आती है ? कादरों की तरह आड़ में छिप कर बातें करता है, तेरे पुरुषार्थ पर धिक्कार है ! शीघ्र बाहर आ, क्षत्रियत्व खोकर जीना धिक् है।

इस प्रकार धर्मराज के कटुवचन को सुन कर दुर्योधन क्रोध कर कहने लगे—युधिष्ठिर ! तुम सब सशस्त्र रथ पर सवार और सेना के सहित हो, इसलिये यदि तुम धर्मयुद्ध करो तो मैं अब भी तुम्हारे साथ गदायुद्ध करने को तैयार हूँ। पाँचो भाइयों में एक एक करके अथवा तुम्हारी सेना का कोई योद्धा एकाकी लड़े तो मैं लड़ कर अवश्य परास्त किये बिना न छोड़ूँगा।

धर्मराज ने कहा निस्सन्देह ऐसा ही होगा। तुम एक एक करके जिससे लड़ना चाहोगे, वही युद्ध करेगा, शेष लोग खड़े होकर तुम दोनों की रणलीला देखेंगे। यह सुन कर अभिमानी दुर्योधन गदा हाथ में लिये हुए पानी के बाहर निकल आया। क्रोध से आँखें लाल, भौंहें टेढ़ी विकराल रूप मानों साक्षात् यमराज दंड धारण किये हुए जल से बाहर हुए हों।

दुर्योधन को युद्ध के लिये अकेला बाहर आया देख पाण्डवी दल के कुछ योद्धा उपहास कर मुस्कुराने लगे। शत्रु को हँसते देख दुर्योधन क्रोध से लाल होकर बोले— हँसने का फल अभी तुम लोगों को यमलोक भेज कर दूँगा। फिर कहने लगे—हे धर्मराज ! मैं पुकार कर तुमसे कहता हूँ कि पाँचों भाइयों में से चाहे जो कोई सामने आकर मुझसे धर्म-पूर्वक संग्राम करे। न मेरे पास रथ है न दूसरा कोई सहायक है, न शरीर पर कवच ही है, इसलिये धर्मयुद्ध करो।

दुर्योधन की बात सुन कर धर्मराज ने कहा—रे कुलाधम ! मैं धर्मयुद्धही करूँगा, ले तू यह कवच पहन कर शिरस्त्राण धारण करने के अनन्तर युद्ध करे। ऐसा कह कर उन्होंने दृढ़ कवच

दुर्योधन को दे दिया । दुर्योधन ने कवच और शिरस्त्राण धारण कर हाथ में गदा लिये सामने खड़ा हो गया और कहा कौन वीर युद्ध करने को आता है ? सुनतेही बली भीमसेन गदा ले कर सामने आगये। सात्यकि और धर्मराज ने भीम के पुरुषार्थ की प्रशंसा करके कहा—हे वीर वर ! दूर्योधन का गर्वप्रहार करने में एकमात्र तुम्ही समर्थ हो, आज इसको अभिमान का मज़ा अच्छी तरह चखा दो। भीम श्रेष्ठबन्धु की बात सुन कर दुर्योधन के संहार की प्रतिज्ञा करके आगे बढ़े और दोनों योद्धाओं में गदायुद्ध होनेलगा ।

उसी समय वहाँ बलरामजी आ गये । श्रीकृष्णचन्द्र, धर्मराज आदि ने उठ कर बड़े आदर से उनका स्वागत किया। सन्मानपूर्वक आसनपर बैठाकर धर्मराज निवेदन करने लगे । प्रभो ! ये दोनों रणधीर गदायुद्ध में प्रवृत्त हैं । आप और श्रीकृष्णचन्द्रजी मध्यस्थ होकर निरीक्षण कीजिये । धर्मराज की बात सुन कर बलरामजी ने कहा—हे राजन् । मैं ने बयालिस दिन तीर्थयात्रा करके अन्यत्र बिताया है, आज यहाँ आया हूँ । अच्छी बात है, दोनों भटों का गदायुद्ध देखूँगा ।

बलरामजी की बात सुन कर दोनों वीर उनकी वन्दना करके लड़ने लगे । दोनों मतवाले हाथी के समान भिड़ कर एक दूसरे पर गदा प्रहार करते थे । बहुत देरतक युगल वीरों में भयंकर गदायुद्ध हुआ किन्तु एक दूसरे को परास्त करने की हज़ार चेष्टा करने पर जीत न सके । तरह तरह के दाँव पेच से प्रहार करते और वार बचाते हुए लड़ते थे । गदा के आघात का शब्द दिशाओं में भर गया । जिस प्रकार इन्द्र और वृत्रासुर का भयानक युद्ध हुआ था, उसी प्रकार दोनों योद्धाओं का अत्यन्त भीषण संग्राम होने लगा । कई बार दोनों भट मूर्छित होकर गिरे फिर उठ कर युद्ध करने लगे ।

अन्त में अर्जुन के इशारे से भीमसेन ने दुर्योधन की बाँई जाँघ में बज्र के समान गदा का प्रहार किया जिससे दुर्योधन की जाँघ टूट गई और वे मूर्छित हो कर धरती पर गिर पड़े । उस समय उल्कापात आदि क्षत्रभंग के असगुन दिखाई पड़ने लगे । श्रृगाल आदि भीषण नाद करने लगे । जब दुर्योधन को चेत हुआ, तब भीमसेन ने उसके सिर पर पाँव रख कर कहा—अरे नीच दुर्योधन ! सभा में धन जीत कर जो तूने बार बार मेरा उपहास किया था और निःशंक होकर द्रौपदी का अपमान किया था, आज तुझे उसी का फल मिला है । मैं ने सभा में तेरे भाई के सहित तुझे मारने की जो प्रतिज्ञा की थी, उसे पूरी कर चुका ।

भीमसेन को दुर्योधन के सिर पर पाँव रक्खे देख धर्मराज ने कहा—हे भीम ! तुम बड़ा अनुचित करते हो, वह भाई और राजा है, इस समय असहाय हो धरती पर गिर गया है, उसके सिर पर पाँव रख कर महापाप मत करो । हमारा इनका जीवन पर्यन्त वैर था, मरने के बाद सज्जन लोग बैर नहीं मानते । इस प्रकार कह कर आँखों से आँसू बहाते हुए धर्मराज दुर्योधन से बोले ।

हे भाई दुर्योधन ! आप ने धरती और धन के लोभ में पड़ कर अज्ञानता से बहुत ही अनर्थ किया था, उसी पाप से इस समय धरती पर पड़े हो । इसी से तुम्हारे भाई; सहायक सेना, सब का सर्वनाश हुआ और तुम असहाय होकर दुर्दशाग्रस्त हो रहे हो; किन्तु कुलध्वंस का अपार शोक मुझे भोगना पड़ेगा ।

भीमसेन का जाँघ में गदा मारना देख कर बलराम जी ने क्रुद्ध होकर कहा—

अरे भीम ! तू ने अधर्मयुद्ध करके दुर्योधन को मारा । शास्त्रों में गदायुद्ध का उल्लेख है, कमर के नीचे प्रहार करना सर्वथा निषेध है । इतना कह कर हाथ में हल मूशल लिये भीम को मारने दौड़े, तब श्रीकृष्णचन्द्र ने उन्हें रोक कर समझाया ।

हे भाई! आप क्रोध न करें, भीमसेन ने सभा के बीच दुर्योधन की जाँघ तोड़ने की प्रतिज्ञा की थी, उसी को उन्होंने पूरी की है। इसमें भीमसेन ने कौन सा अधर्म किया है? आप व्यर्थ उन पर रुष्ट न हों। मैत्रेय ने पूर्व में दुर्योधन को शाप भी दिया है, कि भीमसेन की गदा से तेरी जाँघ टूटेगी तब तू मृत्यु को प्राप्त होगा।

श्रीकृष्णचन्द्र की बात सुन कर क्रोध त्याग बलरामजी रथ पर सवार हो द्वारिका को चले गये। युधिष्ठिर को चिन्तित देख यदुनाथ ने कहा—

हे धर्मराज! हर्ष के समय आप किस कारण चिन्तित हैं?

युधिष्ठिर ने कहा—प्रभो! मुझे और किसी बात का शोक नहीं है, भीमसेन का निन्द्य कर्म अनुमान कर मेरे मन में बड़ा दुःख है कि विवश शत्रु के सिर पर इन्होंने पैर रख दिया।

भीमसेन ने हाथ जोड़ कर कहा—हे धर्मराज! क्रोध के कारण जो मुझ से अनुचित हुआ, उसे क्षमा कीजिये। आप के ही धर्म के बल से हमने शत्रु की जंघा तोड़ कर उसे पराजित किया है। अब आप पृथ्वी का राज्य भोग कीजिये।

धर्मराज ने कहा—यह सब श्रीकृष्ण की सहायता से हुआ है। फिर सब प्रसन्न होकर शंख भेरी आदि बाजे बजाते हुए वहाँ से चलने को तैयार हुए। कोई भीमसेन के पराक्रम की प्रशंसा करने लगा, कोई धर्मराज के भाग्य की बड़ाई और बहुतेरे प्रेम के साथ श्रीकृष्णचन्द्र का गुणगान करने लगे।

श्रीकृष्णचन्द्र ने कहा यह मूर्ख अपने ही दुष्कर्मों के कारण मारा गया है, इसने स्वार्थवश गुरुजनों की बात का तिरस्कार किया और दुष्ट प्रतिज्ञा मन में ठान ली। जैसा कर्म किया वैसा फल पाया।

केशव की बात सुन कर दुर्योधन ने क्रुद्ध होकर कहा—

अरे अहीर के छोकरे! तेरा नाना मेरा सेवक है और तू अहीर के घर में पला है। तुझे इस प्रकार कहते हुए लज्जा नहीं लगती है? मुझे मरा हुआ समझ कर अपनी बुद्धि प्रकाशित करता है। तू ही अधर्म से संकेत करा कर भीम से जाँघ में गदा मरवा कर मेरी मृत्यु का कारण हुआ है। शिखंडी की ओट से भीष्म का वध कराना तेरा ही काम है। हाथी मरवा कर अश्वत्थामा का नाम कहला कर छल से तूने द्रोण का नाश किया और धरती से पहिया निकालते हुए, अर्जुन से कह कर कर्ण का संहार कराया। पाण्डवों के लिये अधर्म का पक्ष लेकर तू ने क्या नहीं किया? अब उलटे मुझ पर अधर्म स्थापन करता है? जितने हमारे प्रमुख भट रणस्थल में मारे गये उनके मरवाने में तेरी ही कपट की करतूत है।

दुर्योधन की दर्प भरी कड़वी वाणी सुन कर मुस्कुराते हुए कृष्णचन्द्र कहने लगे—

हे दुर्योधन! तू कालवश हुआ है, इसी से बे शिर पैर की हाँकता है। भला यह तो बतला कि पाण्डवों का अंश देने के लिये हमने तुझे कितना समझाया जिससे कुलध्वंस न हो; परन्तु तू ने एक न सुनी। भीम को ज़हर खिलाया, लाक्षागृह में पाण्डवों को बन्द कर आग लगवाया, सभा में द्रौपदी की दुर्दशा करवाया और अधर्म से छल का पासा बनवा सर्वस्व हर कर पाण्डवों को वन में निकाल दिया। अर्जुन के पुत्र को अकेला पाकर बड़े बड़े धनुर्धरों को साथ लेकर तू ने संहार कर डाला। इन्हीं अधर्मों के कारण तेरी यह दशा हुई है।

केशव की बात सुन कर दुर्योधन ने सगर्व कहा—मैं ने प्रबल शत्रुओं को वनवासी करके सारी पृथ्वी का आनन्द-पूर्वक राज्य किया। इच्छानुसार धरती और धन मित्रों को दिया। जिस

समय जो मन में अच्छा लगा वही किया । जैसे देवताओं में इन्द्र सोहते हैं, उसी प्रकार मैं राजाओं के मध्य में शोभित होता था । जो सुख देवराज इन्द्रलोक में पा रहे हैं वह सुख मुझे पृथ्वी पर प्राप्त था । इस प्रकार ऐश्वर्य भोग कर संग्राम में शरीर त्यागता हूँ, इसलिये शरीर त्यागने का मुझे कुछ भी शोच नहीं है, पर शोक इस बात का है कि रणस्थल में पाण्डवों का वध मैं नहीं कर सका ।

इस प्रकार दुर्योधन की बात सुन कर सब लोग डेरे की ओर चले । धृष्टद्युम्न द्रौपदेय आदि योद्धा अपने अपने शिवर में विश्राम के लिये गये । पाँचों पाण्डव, सात्यकि और श्रीकृष्णचन्द्र पहले दुर्योधन के डेरे में आये वहाँ सब लोग रथ से उतर पड़े । रथ से घोड़े खोल कर अलग कर दिये गये । ध्वजा में स्थित हनूमानजी अन्तर्धान हो गये । उसी समय वह रथ जल कर भस्मीभूत हो गया ।

यह दृश्य देख कर अर्जुन को बड़ा आश्चर्य हुआ, उन्हों ने कृष्णचन्द्र से हाथ जोड़ कर इसका कारण पूछा—तब भगवान् बोले ।

हे पार्थ ! द्रोण और कर्ण के चलाये ब्रह्मास्त्र से यह रथ उसी समय भस्म हो जाता; किन्तु मेरे प्रभाव से बचा था । अब युद्धकार्य समाप्त हो गया इससे यह जल कर राख हो गया है ।

फिर श्रीकृष्णचन्द्र ने धर्मराज से कहा—हे युधिष्ठिर ! अब आप अपना सब कर्त्तव्य पालन करें । आज रात्रि में आप को सतर्क रहना चाहिये, वीर वर अर्जुन रक्षा कार्य में तत्पर रहें । इतना कह कर पांडव वीरों के साथ नदी तट पर गये । वहाँ धर्मराज ने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र से कहा—

हे केशव ! आप गान्धारी के पास जाकर उन्हें आश्वासन दें । धर्मराज के कथनानुसार दारुकि से रथ मँगवा कर केशव प्रसन्नता पूर्वक गान्धारी के पास चले ।

धर्मराज ने सोचा कि दुर्योधन का अधर्मयुद्ध से वध किया गया है, यदि गान्धारी सुन कर शाप देगी, तो मैं भाइयों के सहित भस्म हो जाऊँगा । इसलिये चतुराई के साथ उसका क्रोध शान्त करने की इच्छा से भगवान् को भेजा ।

श्रीकृष्णचन्द्रजी धृतराष्ट्र के महल में गये और दम्पति को अभिवादन किया । राजा गन्धारी के सहित बिलख कर रोने लगे । और यदुनन्दन भी उनके साथ करुणा प्रकाश कर धृतराष्ट्र को आश्वासन देते हुए बोले—

हे वृद्ध राजन् ! आप तो शास्त्रविद् हैं, यह जानते ही हैं कि भावी के अनुसार मनुष्यों की बुद्धि पलट जाती है । आप के पुत्रों ने पाण्डवों का कितना अपकार किया, वह सब आप जानते हैं । फिर कहिये उस पाप और अत्याचार के फल से उनका नाश क्यों न होता ? द्रौपदी की दुर्दशा करके पाण्डवों को वनवास दिया । वन में उन्हें अपार दुःख भोगना पड़ा ।

युद्ध की आशंका उत्पन्न होने पर मैं ने कितना समझाया और कहा कि पाण्डवों को केवल पाँच गाँव दे दीजिये, परन्तु होनहार वश आपने स्वीकार नहीं किया । भीष्म, द्रोण, विदुर, कृपाचार्य और सोमदत्त आदि ने कितना कहा पर आपने किसी की बात पर ध्यान नहीं दिया ।

हे राजन् ! इसमें आपका दोष नहीं, काल ज्ञान हर लेता है । होनहार के समान बुद्धि हो जाती है । इससे पाण्डवों का दोष नहीं, क्योंकि भावी के अनुसार पहिले ही आप की मति वैसी हो गई थी । पाण्डु जैसे भाई के पुत्रों का सर्वस्व हरण कर आपने पाँच गाँव भी देना स्वीकार नहीं किया, वे कुल की रक्षा के विचार से युद्ध कदापि नहीं करना चाहते थे, पर भावीवश उनके विचारानुसार बातें नहीं हो सकीं । इससे होनहार को प्रबल समझ कर धैर्य धारण कीजिये । इतना कह कर फिर केशव गान्धारी से कहने लगे—

हे माता ! धीरज धरो, ब्रह्मा का लिखा अंक मिट नहीं सकता। आपने भी दुर्योधन को कितना समझाया; किन्तु कालवश उसने तुम्हारी बात नहीं मानी। इसलिये भीषण शोक, जो होनहारवश हुआ, उसे सहन करो और अब पाण्डवों के विनाश का क्रोध हृदय में न ले आवो। आप चाहें तो क्रोध से लोक का नाश कर सकती हैं, परन्तु अब कुल की रक्षा करना ही उचित है। इस प्रकार समझा बुझा कर प्रणाम कर भगवान् विदा होकर वहाँ से चल दिये और धर्मराज के डेरे में पहुँच गये।

राजा दुर्योधन के आहत होने का समाचार पाकर संजय, कृपाचार्य, अश्वत्थामा और कृतवर्मा वहाँ आये। उन्होंने देखा कि दुर्योधन रक्त से सराबोर धूल में सने धरती पर पड़े हैं। गिद्ध, सियार, योगिनी और भूत प्रेत चारों ओर से घेरे हैं। यह दशा कुरुराज की देखकर वे सब रुदन करके विलाप करने लगे।

अश्वत्थामा आदि को विलाप करते सुनकर दुर्योधन को होश आया, वे धीरज धारण करके कठिनता से उठ बैठे और बोले—

हे द्विजश्रेष्ठ ! आप विषाद न करें, होनहार को कोई मिटा नहीं सकता। जिसके साथ भीष्म, द्रोण और कर्ण के समान योद्धा वह इस प्रकार पराजित हो, द्रोण-तनय, कर्ण-सुत, राजा भगदत्त और शकुनि आदि सेनाध्यक्ष तथा ग्यारह अक्षौहिणी सेना जिसके साथ वह आज सहाय-हीन हो धूल में पड़ा है ? यह हाल सुनकर मेरे वृद्ध पिता और माता की कैसी दशा होगी ? हाय ! जिनके सैकड़ों पुत्र तथा पौत्र साथ ही नाश को प्राप्त हुए, उन्हें कौन समझा कर धीरज बँधावेगा ? पतोहुओं और नतोहुओं के भयंकर विलाप से वे बड़े ही दुःख को प्राप्त होंगे। भीम ने अधर्म से मेरा वध किया, अधर्म तो पाण्डवों के हिस्से में पड़गया है।

हे संजय ! तुम राजा को समझाना और समय पाकर पाण्डवों का कैतव निवेदन करना। फिर नेत्रों से आँसू पोंछते हुए दुर्योधन ने अश्वत्थामा से कहा—

हे गुरुकुमार ! मर्त्यलोक में आकर सब जीवों का नाश किसी न किसी दिन होना निश्चय है। मेरा अब वही अन्तिम काल आ गया। इन्द्र के समान राज्यसुख भोग कर मैं युद्ध में शत्रु के आघात से मृत्यु को प्राप्त हो रहा हूँ इसलिये इसका कोई खेद नहीं है। पर पाण्डवों ने विजय प्राप्त किया, यह समझकर मुझे बड़ा दुःख हो रहा है। भीम ने अधर्म से मुझे आहत किया, यह कहकर दुर्योधन आँखों से आँसू बहाने लगा—

दुर्योधन की बात सुनकर द्रोण-पुत्र का कलेजा दहल गया, उन्होंने क्रोध कर कहा—हे राजन् उन दुष्टों ने धोखा देकर मेरे पिता को मार डाला था, उस समय मुझे उतना दुःख नहीं हुआ था जितना इस समय आप को देखकर हो रहा है।

हे तात ! सुनिये, मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि जिस प्रकार से बन पड़ेगा, आज की रात्रि में पाण्डवों का तथा उनके बचे हुए वीरों का संहार कर डालूँगा, आप मुझे आज्ञा दीजिये।

अश्वत्थामा की बात सुन मन में प्रसन्न हो कुरुराज ने कहा—हे कृपाचार्य ! आप राजनीति के अनुसार गुरुपुत्र का अभिषेक करके सेनापति कीजिये जिससे शत्रु से ये बदला चुकावें।

कृपाचार्य ने वैसा ही किया, फिर तीनों वीर राजा दुर्योधन से विदा होकर वहाँ से चल दिये और दुर्योधन पड़े पड़े विजय की आशा से अश्वत्थामा के आगमन की प्रतीक्षा करने लगे।

इति

सौप्तिक पर्व।

अश्वत्थामा का निन्दितकर्म।

अश्वत्थामा, कृपाचार्य और राजा कृतवर्मा के सहित पाण्डवों के शिविर के पास आये। उस समय योद्धा लोग जाग रहे थे। इससे तीनों भट एक वट वृक्ष के नीचे बैठ कर आपस में बातचीत करने लगे।

अश्वत्थामा ने देखा कि उस वट वृक्ष पर बहुत से कौए घोसला बना कर अंडा दिये हैं। जब रात में सब कौए निद्रावश हो गये, तब उस समय एक उलूक आया और उसने क्रम क्रम से प्रत्येक घोसलों में जा जाकर कितने ही कागों का सिर, पंखा काट डाला और कितनों ही का हृदय फाड़ कर प्राणहीन कर दिया। इस प्रकार कौओं का नाश करके वह उलूक अपने निवासस्थान में उड़ कर चला गया।

उलूक की चतुराई देखकर द्रोणकुमार को वही युक्ति शत्रु नाश करने की मन में जँची। मानों उलूक की करनी से छिप कर सोते हुए में शत्रुओं पर घात करने की उन्हें शिक्षा प्राप्त हुई। अश्वत्थामा ने अनुमान किया कि पाण्डव स्वयम् प्रबल हैं और उनके पास महारथी तथा सेना भी बची है। उनसे सामने युद्ध करने पर मैं किसी प्रकार जीत न सकूँगा। क्रोध से राजा के सन्मुख प्रतिज्ञा करके आया हूँ वह इसी प्रकार पूरी हो सकती है। यदि धर्म का विचार करता हूँ तो मृत्यु होने के सिवा जीतना महा कठिन है। फिर छल बल किसी प्रकार से शत्रु को जीत लेना धर्म ही है। बस, आज ही रात्रि में सोते हुए शत्रुओं का बध करके विजय प्राप्त करूँ। इसप्रकार मन में निश्चय करके कृपा और कृतवर्मा को सोते से जगा कर कहा—हे कृपाचार्य! भीम ने राजा के सिर पर पाँव रक्खा था, वह सोच कर मेरा क्रोध क्षण क्षण बढ़ता जा रहा है। राजा की दशा देखकर आप लोग भी शत्रु नाश की प्रतिज्ञा करके यहाँ आये हैं। बली पाण्डवों ने भीष्म, द्रोण, कर्ण आदि महारथियों के सहित ग्यारह अक्षौहिणी सेना का विनाश कर डाला है। उन्हीं प्रबल वीरों को सेना के सहित हम मारने की इच्छा रखते हैं, कहिये कौन सा उपाय करना चाहिये?

द्रोणतनय की बात सुनकर कृपाचार्य्य ने प्रीतिपूर्वक कहा—हे तात! मर्त्यलोक का तो यह नियम ही है कि जितने प्राणी जन्म लेते हैं, वे सब एक न एक दिन अवश्य मरते हैं। दैव और कर्म के बल सारा काम होता है। अपनी इच्छानुसार पुरुष कार्य नहीं कर सकता, भावी प्रधान है। देखिये, पर्वतों पर वृक्ष बिना सींचे हरे भरे रहते हैं और सींचने से कुम्हिला जाते हैं, दैवकर्म की सहायता की बात निराली है। भावी को ध्यान में रख कर कर्त्तव्य का विचार कर धर्म पूर्वक गुरू का आज्ञानुसार जो कार्य किया जाता है वह सिद्धिदायक होता है।

हे विप्रवर! दुर्योधन ने लोभ में पड़ कर जिनकी नीचबुद्धि थी, उनसे सलाह करके पाण्डवों से व्यर्थ ही बैर किया। भीष्म, विदुर और द्रोण आदि महापुरुषों के मन का निरादर किया। फिर कहिये, ऐसी दशा में वे पराजय के सिवा विजयी कैसे हो सकते हैं?

हाँ—आप मेरी सम्मति पूछते हैं इसलिये मैं अपना विचार प्रकट करता हूँ, सुनिये। मेरी

बात कल्याणकारी समझ कर पहले राजा धृतराष्ट्र के पास चलिये, जैसी उनकी, गांधारी और विदुर की सम्मति हो उसी के अनुसार लौट कर कार्य करो ।

कृपाचार्य की बात सुन कर अश्वत्थामा नाराज होकर बोले—हे कृपाचार्य ! आप की सलाह बहुत अच्छी है, परन्तु होनहार के अनुसार कारणवश बुद्धि पलट जाती है । वैद्य निदान समझ कर रोगी को जीवन के लिये औषधि देता है, किन्तु कालवश रोगी की मृत्यु हो ही जाती है । तब लोग वैद्य को नासमझ कहने लगते हैं, पर उसमें वैद्य का क्या दोष ? पुरुष सिंह राजा दुर्योधन ने धर्म-पूर्वक राज्य किया है, आज उनका सब दैव-इच्छा से नष्ट हो गया, तो सब कहते हैं कि उन्होंने कुत्सित कर्म किया । मैं ब्राह्मण होकर अपना धर्म त्याग क्षत्रियधर्म को ग्रहण किये हुए कार्य कर रहा हूँ । झूठ बोल कर धर्म को तिलाञ्जलि दे, उन्होंने मेरे पिता का बध किया है, इसलिये नीति धर्म को भुला कर आज मैं उनका बध करूँगा ।

इस समय उनकी सेना नींद के वश अचेत है । मैं शिविर में जाकर एक एक करके सब को सोते ही में काट डालूँगा और विजय की दुन्दुभी बजवाऊँगा । धर्मराज आदि पाँण्डवों का बध करके उन्हें काललोक भेज कर पिता के ऋण से मुक्त होऊँगा ।

अश्वत्थामा की अत्याचार भरी बात सुनकर आचार्य ने कहा—हे आर्य्य ? ऐसा कुत्सित कर्म करना आप के लिये उचित नहीं है । रात्रि में विश्राम कीजिये, सवेरा होने पर धनुषटंकार करके हम लोगों के सहित युद्ध कर विजय लाभ करना चाहिए । रणस्थल में कौन ऐसा योद्धा है जो आप के सामने आकर युद्ध कर सकता है ? आप की दुस्सह बाणवर्षा को इन्द्र नहीं सहन कर सकते फिर मनुष्यों की क्या बात है । उसी तरह राजा कृतवर्मा रणधीर हैं और मैं भी यथासाध्य पराक्रम प्रदर्शित कर अग्नि जैसे तृण को जलाती है, उसी प्रकार पांडवी सेना को भस्मीभूत करूँगा । इसलिये विश्राम कर थकावट दूर करके प्रातःकाल हम लोग पाण्डवी दल का संहार करेंगे ।

इस प्रकार मामा की बात सुन कर अश्वत्थामा क्रोध से झुँझला कर कहने लगा—हे आचार्य्य ! सुनिये, क्रोध से ब्याकुल प्राणी को नींद कैसी ? जिसे चिन्ता ने घेर रक्खा है, उसको निद्रा नहीं आ सकती । ये सब मेरे हृदय को व्यथित कर रहे हैं । पिता के वध से बढ़ कर दूसरा कौन दुःख है ?

इसलिये हे मामा ! जब तक मैं धृष्टद्युम्न का बध नहीं करता हूँ, तब तक मुझे चैन नहीं है । पाण्डवों का संहार किये बिना मेरे हृदय का शोक और करुणा नहीं जा सकती । सोते हुए शत्रुओं को आज की रात में बध करके हम अपने हृदय का शोक दूर करेंगे और तभी मेरी चिन्ता छूटेगी ।

द्रोणतनय की बात सुन कर मतिमान् कृप ने कहा—हे वीर अश्वत्थामा ! जो तुमने कहा है ऐसा निन्दितकर्म करना तुम्हारे लिये शोभा नहीं देता । तुम तो शास्त्रज्ञ हो और वृद्धों की सेवा की है । धर्म, अधर्म, सुकर्म, कुकर्म, सत, असत सब अच्छी तरह जानते हो । फिर ऐसा अधर्म करने के लिये क्यों बद्धपरिकर हो रहे हो ? जो जन्म जन्मान्तर के पापी हैं वे ही पापकर्म करते हैं, किन्तु तुम सुकृती धर्मज्ञ होकर ऐसा कुत्सित कार्य करने को क्यों उतारू हो रहे हो ! लक्ष्मी रहे चाहे जाय; किन्तु धर्मशील पुरुष सन्मार्ग तथा धर्म का त्याग नहीं करते । तुम श्रेष्ठ धर्म और कर्म करनेवाले हो । यह घृणित विचार हृदय से दूर करके सदाचार की रक्षा करो । हठ करना ठीक नहीं । बिना शस्त्र, कवच और रथविहीन, भागते और सोते हुए को न मारना चाहिये तथा जो दीन होकर शरण आवे, उसका बध करना महापाप है । वे दिन भर युद्ध करके थके हुए अस्त्र त्याग कर सुख की नींद सो रहे

है। इस अवस्था में उनका बध करना जान बूझ कर रौरव नरक में जाने का मार्ग पकड़ना है। इस कारण ऐसी दुर्मति त्याग कर रात्रि में विश्राम करो, सवेरे ललकार कर बध करेंगे। यदि शत्रु बलवान है तो इसकी कौन सी चिन्ता है?

अश्वत्थामा ने फिर कहा—हे तात! आप का कहना सत्य है; परन्तु जो करणीय है, उसमें कुछ भी अधर्म नहीं दिखाई देता। भीष्म, द्रोण, भूरिश्रवा, कर्ण और राजा दुर्योधन सब छल से ही मारे गये हैं, उन्हों ने अपनी विजय के लिये कौन सा कार्य धर्मानुसार किया है? अब मुझ से पिता के बध का भीषण दुःख नहीं सहा जाता है। ऐसा कह कर सुन्दर रथ पर सवार हो द्रोणकुमार शिविर की ओर चला।

कृपाचार्य और राजा कृतवर्मा भी पीछे चले। सेनाद्वार पर तीनों सुभट पहुँच गये। वहाँ देखा कि एक उद्धत पुरुष सूर्य के समान प्रकाशमान, व्याघ्रचर्म पहने, सर्पों का विकराल भूषण धारण किये जिनकी आँख और मुख से समूह ज्वाला निकल रही है, प्रलयकाल के भानु की तरह हाथ में त्रिशूल लिये खड़ा है।

द्रोणपुत्र ने उस पुरुष के प्रभाव को देख कर क्षण भर मन में चिन्ता की, फिर वह वीर धीरज धर कर शोक त्याग दिव्य अस्त्रों की वर्षा करने लगा। जैसे नदियों को समुद्र अपने में मिला लेता है, उसी प्रकार दिव्यास्त्र उस तेजस्वी पुरुष के शरीर में लीन हो गये। अस्त्रों को व्यर्थ होते देख ब्राह्मण-कुमार ने मारने के लिये अमोघशक्ति का प्रहार किया, किन्तु वह भी निष्फल हो गई। तब उस ब्राह्मण ने क्रोध कर तलवार चलाई, उस पुरुष ने व्यर्थ करके नीचे गिरा दिया। फिर क्रुद्ध होकर गदा-प्रहार किया, उसको उस महापुरुष ने पकड़ लिया। अश्वत्थामा ने अपनी सारी शक्ति लगा दी, पर फल कुछ न हुआ और वह थक कर हार गया।

जनार्दन के समान उस पुरुष का अतुल प्रभाव देख कृपाचार्य विचार कर कहने लगे—

हे तात! हठ से अनिष्टकार्य करने से विपत्ति ही उठानी पड़ती है। जो वृद्ध और शास्त्र की आज्ञा नहीं मानता वह दुःख के सिवा सुख नहीं पाता। हमने कितना समझाया पर तुमने हठ नहीं छोड़ा। स्वप्न का प्रत्यक्ष और प्रत्यक्ष का सपना दैववश होता है, मनुष्य की कल्पना झूठी है। होनहार के अतिरिक्त दूसरा हो नहीं सकता। मनुष्य जो कुछ हाथ पाँव और मुख से करता है वह सब कार्य दैवेच्छा पर ही निर्भर है। ऐसा विचार कर जो करने योग्य है उस कार्य में लग जाओ।

मामा की बात सुन कर अश्वत्थामा रथ से नीचे उतर कर शिवजी की स्तुति करने लगा। भक्तिपूर्वक गद्गद कंठ से उसने बड़ी प्रार्थना की और अग्नि प्रज्वलित करके उसमें प्रवेश कर गया। अश्वत्थामा की प्रगाढ़ भक्ति और निष्ठा देख शिव भगवान् प्रसन्न होकर बोले—

हे विप्रवर! वर माँगो।

अश्वत्थामा ने हाथ जोड़ कर कहा—

प्रभो! आप यहाँ से हट जाइये और मुझे इच्छानुसार कार्य करने में बाधा न डालिये।

शिवजी भावी का विचार करके अश्वत्थामा का खड्ग लौटा कर गणों के सहित अन्तर्धान हो गये। तब रणधीर अश्वत्थामा हाथ में तलवार लेकर शिविर में पैठ गया और कृप तथा कृतवर्मा दरवाज़े पर चौकसी के लिये खड़े रहे।

पहले धृष्टद्युम्न के खेमे में गया, वहाँ उत्तम पलँग पर उनको सोते हुए देख लात मार कर जगा दिया। धृष्टद्युम्न जाग कर और अश्वत्थामा को पहचान कर उठने लगे, तब तक उनका बाल

पकड़ धरती पर पटक छाती पर चढ़ बैठा। आलस्य से भरे सेनापति धृष्टद्युम्न कुछ न कर सके। अन्त में उन्होंने कहा—

अरे दुराचारी ब्राह्मण ! मुझे शस्त्र चला कर क्यों नहीं मारता ? अश्वत्थामा ने कहा तू गुरु-द्रोही है, तेरी मृत्यु इसी तरह होगी। इतना कह कर गला दबा दिया उनका प्राणपखेरू कूच कर गया।

धृष्टद्युम्न की स्त्रियाँ भूत समझ कर डर से बोल न सकीं, अश्वत्थामा सगर्व रथ पर सवार हो गया। पीछे स्त्रियों ने शोर मचाया तब आसपास के शिविर से जाग कर लोग आये और धृष्टद्युम्न को मृतक देख कारण पूछने लगे।

स्त्रियों ने कहा, न जाने दैत्य है या मनुष्य, उसीने इन्हें मारा और वह रथ पर खड़ा है। सुनते ही भटों ने रथ घेर लिया। पर रुद्रास्त्र चला कर अश्वत्थामा ने समस्त वीरों को रुई के समान भस्म कर डाला।

इसके बाद अश्वत्थामा तुरन्त राजा उत्तमौजा के शिविर में गया। जिस प्रकार धृष्टद्युम्न को मारा, उसी तरह उनका भी बध किया। युधामन्यु राजा राक्षस समझ जागे और अश्वत्थामा की छाती, में गदा का प्रहार किया। उस ब्राह्मण ने खड्ग से उनका बध कर डाला। फिर नींद से भरे कितने ही वीरों का गला द्रोणकुमार ने काट काट कर प्राणशून्य कर दिया। न्याय और धर्म को दूर बहा कर अश्वत्थामा ने बेशुमार हाथी, और सिपाहियों को सोते ही में तलवार से काट डाला।

इस तरह प्रत्येक शिविर को निर्जन करते हुए जहाँ द्रौपदी के पाँचों रणधीर पुत्र शयन करते थे, द्रोणतनय वहाँ जा पहुँचा। शिविर के योद्धा जाग कर शोर करने लगे। धृष्टद्युम्न का मरण सुन कर द्रौपदी के पाँचों पुत्र तथा शिखंडी ने धनुष बाण लेकर अश्वत्थामा को घेर लिया और अस्त्रप्रहार करने लगे। द्रोण के कुमार्गी पुत्र ने हाथ में ढाल तलवार लिये अत्यन्त वेग से उछल कर प्रतिविन्ध्य का बध कर डाला। सोम का संहार करके शतानीक, श्रुतकर्मा, श्रुतिकीर्त्ति को उसी प्रकार प्राणशून्य कर दिया। इस प्रकार द्रौपदी के पुत्रों को मार कर पीछे ललकार कर शिखंडी का बध किया। सारे वीरों और पशुओं को जो सोते तथा जागते थे सब का संहार करके मत्स्य, पांचाल आदि तथा पाण्डवों की सेना एक एक करके क्षण भर में उसने काट कर मुर्दों का ढेर लगा दिया। जिस प्रकार कल्पान्त में रुद्र सृष्टि का संहार करते हैं, उसी प्रकार अश्वत्थामा ने प्रलय मचा दी। जागते, सोते, भागते, बैठे हुए मनुष्य तथा पशुओं को निर्दयता पूर्वक तलवार से काट कर अश्वत्थामा राक्षसीपन का परिचय दे रहा था। बहुत से योद्धा बिना जाने आपस में ही एक दूसरे को पिचास समझ कर मारते और मरते थे। पीछे से अश्वत्थामा चारों ओर से शिविर में आग लगा दी, जो कुछ बचे बचाये भट रह गये थे, वे सब अग्नि में जल कर ख़ाक हो गये। जो भागते थे दरवाज़े पर खड़े कृपाचार्य और कृतवर्मा उनका बध कर डालते थे। जब समूची सेना का संहार हो गया तब अश्वत्थामा प्रसन्न होकर दरवाज़े के बाहर आया और दोनों वीरों को अपनी अधम करनी सुनाते हुए दुर्योधन के पास चला।

राजा धृतराष्ट्र ने संजय से कहा—हे संजय ! अश्वत्थामा को जब यही कुत्सितकर्म करना थाँ तो हमारे पुत्रों के बध के पहिले क्यों नहीं किया ?

संजय ने कहा—महाराज ! कृष्ण और अर्जुन के डर से पहिले अश्वत्थामा को ऐसा करने का साहस नहीं हुआ। उस रात्रि में सात्यकि, पार्थ और श्रीकृष्णचन्द्र को अन्यत्र गया जान कर तब उसने यह निन्द्य कार्य्य करने को शत्रु की सेना में प्रवेश किया।

फिर कृतवर्मा और कृपाचार्य के सहित द्रोणपुत्र दुर्योधन के पास पहुँच कर देखा कि वे

मृतप्राय होकर धरती पर पड़े हैं। मुख से रक्त बहा जाता है और श्वासा बढ़ी हुई अचेतन अवस्था में रुद्धकंठ हुए तड़प रहे हैं। दुर्योधन की इस प्रकार भीषण अवस्था देख कर तीनों भट शोक से विह्वल हो बैठ कर रोने लगे। उनके पराक्रम और ऐश्वर्य को कह कह कर विलाप करते थे; किन्तु दुर्योधन को कुछ ज्ञान नहीं कि मेरे पास कौन आया है। अश्वत्थामा ने पुकार कर कहा—

हे राजन्! स्वर्ग जाते समय एक आनन्द की बात सुन लीजिये। मैं ने धृष्टद्युम्न द्रौपदी के पाँचों पुत्र और बची हुई सारी सेना का निपात कर डाला। पाँचों पांडव कृष्ण और सात्यकि ये सात सुभट डर से भाग कर उधर बचे हैं और तीन योद्धा इधर रह गये हैं। यह सुन कर दुर्योधन खुश होकर बोला—हे वीर! तुम मुझ से उऋण हो गये। इतना कह कर राम राम मुख से उच्चारण करते दुर्योधन स्वर्गगामी हो गया।

श्रीकृष्णचन्द्र की कृपा से राजा युधिष्ठिर ने विजयलाभ किया। रामकृपा से सुख का सब सामान प्राणियों को प्राप्त होता है। जिसका पक्ष स्वयम् भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने ग्रहण किया, उसकी विजय होना स्वाभाविक ही है।

इति

ऐषिक-पर्व ।

युधिष्ठिर शोक और अश्वत्थामा का अन्वेषण

प्रातःकाल होने पर धृष्टद्युम्न का सारथी सौतिक, जो किसी तरह छिप कर बच गया था, जहाँ धर्मराज थे वहाँ गया और हाथ जोड़ कर निवेदन करने लगा—

हे महाराज ! आज रात्रि में अश्वत्थामा ने बड़ा अनर्थ किया। द्रौपदी के पाँचों पुत्र, महा बली द्रुपदतनय, युधामन्यु, उत्तमौजा आदि सेनापतियों और सुभट समूह तथा हाथी घोड़े को सोते समय नीति त्याग कर उस दुराचारी ब्राह्मण ने सब का संहार कर डाला। इसके सिवा शिविर में आग लगा कर सारी सामग्री भस्मीभूत कर दी और जो बचे बचाये योद्धा भागते थे, उन्हें दरवाज़े पर खड़े कृप तथा कृतवर्मा बाण मार कर धराशायी करते थे। मेरे सिवा सेना का एक भी कोई भट वा पशु जीता नहीं बचा है, दैवयोग से अकेला मैं किसी तरह बच कर यहाँ समाचार देने आया हूँ।

सुनते ही धर्मराज पुत्रशोक से व्याकुल हो धरती पर गिर पड़े, सात्यकि ने दौड़ कर उन्हें उठाया; परन्तु राजा युधिष्ठिर व्यथित हृदय शोक से विह्वल हो पागल से हो कर विलाप करने लगे—

हाय ! अर्थ ही अनर्थों का मूल है, उसी के लिये इतनी रोमाञ्चकारी हत्याएँ हुई हैं। यह जीत कालरात्रि के समान भयंकर और पराजय से कहीं बढ़ कर हुई है। सेवक, मित्र, हितैषी, सरदार, सम्बन्धी और कुटुम्बी सब मर गये, अब मैं राज्य ही लेकर क्या करूँगा ? हाय ! भीष्म, द्रोण और कर्ण जैसे अजेय महारथियों के रणसागर से पार पाकर अश्वत्थामा के अधर्म-नदी में हमारी सेना डूब गई। पिता, भाई और पुत्रों का बध सुन कर द्रौपदी की कौन दशा होगी ? वह कैसे प्राण रक्खेगी ? इस प्रकार भूरि विलाप करते हुए और रुदन करते धर्मराज नकुल से कहने लगे—

हे नकुल ! तुम द्रौपदी के मन्दिर में जाकर जो अनर्थ आज हुआ है वह कहो, उसे होनहार की बात समझा कर लिवा लाओ पुत्रों की दशा आँख से देख ले।

धर्मराज की आज्ञा पाकर नकुल रथ पर सवार हो द्रौपदी के भवन की ओर गये और धर्मराज भाइयों के सहित रणस्थल में आये। वहाँ पुत्रों के शव को देखा, फिर करुणा से बड़ा रुदन किया। सात्यकि और भीमसेन राजा को समझा रहे थे, तब तक द्रौपदी को रथ पर लिये हुए नकुल भी आ गये।

पुत्रों की दशा देख कर हाय हाय करके विलाप करती हुई कृष्णा धरती पर गिर पड़ी। भीमसेन ने द्रौपदी को उठा कर बैठाया और बहुत प्रकार समझाया।

द्रौपदी रोती हुई धर्मराज से कहने लगी—हे राजन् ! यदि इस समय अश्वत्थामा मारा जायगा तभी मैं जिऊँगी, नहीं तो जहाँ मेरे प्यारे पुत्र गये हैं वहाँ मैं भी जाऊँगी। जैसा नीचकर्म उस अधम ब्राह्मण ने किया है उसका फल उसे मिलना चाहिये।

धर्मराज ने कहा—हे प्रिये ! द्रोणतनय न जाने कितनी दूर चला गया होगा, अब उसका पकड़ा जाना असम्भव है। तुम ब्रह्मा के लिखे अंक को अमिट अनुमान कर धीरज धारण करो।

धर्मराज की बात सुन कर द्रुपदसुता ने भीमसेन से कहा—हे प्यारे ! आपने हमारे लिये

कीचक का वध किया था, आज अश्वत्थामा को ढूँढ़ कर और उसका वध करके उसके सिर में जो श्रेष्ठमणि है, उसे ले आइये। उस मणि को राजा के सिर पर विभूषित कीजिये।

कृष्णा की अत्यन्त दुःख भरी वाणी सुन कर भीमसेन तुरन्त उठे और नकुल को सारथी बना कर रथ पर सवार हो धनुष्टङ्कार करते हुए बड़े वेग से उत्तर की ओर चले।

जब भीमसेन चले गये तब श्रीकृष्णचन्द्र बोले—हे धर्मराज! सुनिये, भीमसेन पुत्रशोक से क्षीण हुए क्रोध से अश्वत्थामा का बध करने जाते हैं; किन्तु वह प्रचंड भट है, तिस पर द्रोण ने उसको ब्रह्मास्त्र दे रक्खा है। यद्यपि उन्होंने मना कर दिया है कि मनुष्य को जीतने की इच्छा से इसका प्रहार कदापि न करना, किन्तु भीम से डर कर वह अवश्य ब्रह्मास्त्र का प्रहार करेगा।

हे राजन्! अश्वत्थामा बड़ा ही कुटिल है। ब्रह्मास्त्र पाने पर एक बार वह मेरे समीप आया और कहने लगा—हे जनार्दन! आप ब्रह्मबाण लेकर अपना चक्र मुझे दे दीजिये। तब हमने उससे कहा कि तुम अपना अमोघ अस्त्र मुझे मत दो अपने ही पास रक्खो, किन्तु चक्र हम देते हैं, इसे भी ले जाओ। उसने अपनी सारी शक्ति लगा दी, पर चक्र नहीं उठा सका। थक कर नीचे सिर करके बैठ गया, तब हमने कहा—हे ब्राह्मण! सुनो। अर्जुन, बलराम, शाम्ब और प्रद्युम्न मुझे विशेष प्रिय हैं, किन्तु जिस वस्तु को उन लोगों ने हम से कभी नहीं माँगा, उसको तुम मूर्खतावश माँगने से नहीं हिचकिचाये। तब उसने कहा—मैं आप से अजेय होना चाहता था, इसी से चक्र को माँगा, पर वह हम से उठता नहीं इससे विवश हूँ। मैंने उसको हेममणि देकर बिदा कर दिया।

हे धर्मराज! अश्वत्थामा कुटिलता का स्वरूप ही है। इस प्रकार कह कर भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र ने सब पाण्डवों को सुन्दर रथ पर बैठा कर जिधर भीमसेन गये थे, शीघ्रता से घोड़ों को चला कर उसी ओर चले।

द्रोणपुत्र का पता लगाते हुए भीमसेन गङ्गातट पर पहुँच गये और साथ ही यदुनाथ भी पाण्डवों के सहित जा पहुँचे। ऋषियों के सहित वहाँ तपशाली व्यास मुनि बैठे थे, मुनियों के बीच अश्वत्थामा भी बैठा था। द्रोणपुत्र को देखते ही भीमसेन ने उसे ललकारा—भाइयों के सहित भीमसेन और श्रीकृष्ण को देख कर वह जान गया कि अब मेरा बचना कठिन है। तब उसने दिव्यास्त्र अमोघ ब्रह्मबाण पाण्डवों को तक कर चलाया। उस लोकनाशक अस्त्र को देख कृष्णचन्द्र दुचित होकर बोले—

हे अर्जुन! यह ब्रह्मास्त्र तुम्हारे हृदय में लगेगा इसलिये इसके शमनार्थ शीघ्र अस्त्रप्रहार करो, नहीं तो वह कुटिल विप्र जीत जायगा।

भगवान् कृष्णचन्द्र की बात सुनकर अर्जुन रथ से उतर कर देवता गुरु की वन्दना करके अनूपास्त्र का प्रहार किया। वह अग्नि की ज्वाला उगलते हुए ब्रह्मास्त्र से इस प्रकार टकराया जैसे दो शेषनाग आपस में युद्ध के लिए भिड़ गये हों। प्रलयकाल के समान भीषण ध्वनि हुई। धरती डगमगाने लगी और ऋषिगणों में आतंक छा गया।

जगत का नाश अनुमान कर वहाँ नारदजी आये और दोनों अस्त्रों के बीच खड़े होकर इस प्रकार बोले—पूर्व में बड़े बड़े धनुर्धर हुए थे, पर उन सबों ने ऐसा कर्म नहीं किया था कि आप लोगों ने यह क्या कर डाला?

नारदजी की बात सुन कर अर्जुन ने अपने अस्त्र को प्रार्थना करके लौटा लिया फिर देवर्षि से उन्होंने कहा—हे महर्षि! मैं ने आप की आज्ञानुसार अपना अस्त्र लौटा लिया, अब द्रोणतनय के अस्त्र का प्रशमन कीजिये। परन्तु अश्वत्थामा अपने अस्त्र को लौटाने में असमर्थ होकर

मुनि से कहने लगा—हे महात्मन् ! मैं ने भीम के डर से प्राणरक्षा के लिये घबरा कर अचेत हो इस अस्त्र को चला दिया । भीमसेन ने अधर्म से दुर्योधन को मार डाला, उसका दुष्कर कर्म सोच कर पाण्डवों के विनाशार्थ मैं ने ब्रह्मबाण चलाया; किन्तु इसका शमन हो नहीं सकता, यह अमोघ होने के कारण चलने पर शत्रु का वध किये बिना न रहेगा ।

अश्वत्थामा की बात सुन कर व्यासजी बोले—हे अर्जुन ! तुम अस्त्रविद्या में पूर्ण पंडित हो, अपने दिव्य अस्त्र चला कर इसके प्रभाव को नष्ट कर सकते हो, फिर उन्होंने अश्वत्थामा से कहा—हे ब्राह्मण ! ब्रह्मबाण जहाँ धरती पर गिरेगा, वहाँ बारह वर्ष तक वर्षा न होगी, इससे इस अस्त्र का तुरन्त संहार करो । पाण्डव धर्मात्मा और निर्मल विचारवाले हैं, वे तुम्हारा वध न करेंगे; किन्तु तुम्हारे सिर में उत्तम मणि है वह द्रौपदी को अत्यन्त प्रिय है । यदि पाण्डव उस मणि को पा जायँगे तो बिना तुम्हें मारे लौट जायँगे ।

व्यासजी की बात सुन कर अश्वत्थामा बोला—महाराज धृतराष्ट्र के घर में बहुतेरी मणियाँ हैं, पाण्डव लोग वहाँ जाकर उसे क्यों नहीं लेते ? मैं अपनी मणि कदापि न दूँगा, पाण्डव लोग चाहे जो करें उसकी मुझे चिन्ता नहीं । मेरा अस्त्र शमन के योग्य नहीं है. उत्तरा के गर्भ का यह नाश किये बिना न छोड़ेगा । उसने गर्भ नष्ट करने के लिये ब्रह्मास्त्र को प्रेरित किया ।

अश्वत्थामा की बात सुन कर मुस्कुराते हुए श्रीकृष्णचन्द्र बोले—अरे नीच विप्र ! राजा विराट की पुत्री, अर्जुन की पतोहू; अभिमन्यु की स्त्री उत्तरा गर्भवती है । तू क्या बकता है । कुरु कुल क्षीण हो ही गया है; किन्तु उत्तरा के गर्भ से परीक्षित नामक पुत्र उत्पन्न होगा । उसी के द्वारा इस कुल की वृद्धि होगी, मेरा वचन झूठा नहीं हो सकता ।

कृष्णचन्द्र की बात सुन कर दुष्ट अश्वत्थामा ने कहा—मेरा अस्त्र भी व्यर्थ न होगा और न गर्भ पुष्ट होने पावेगा, यह उसका सर्वनाश कर डालेगा ।

द्रोणतनय की कुटिलता भरी बात सुन कर केशव बोले—ठीक है अस्त्र निष्फल न जायगा गर्भ को निर्जीव कर डालेगा, परन्तु फिर भी गर्भ चैतन्य होकर समय पर प्रसव होगा और बालक उत्पन्न होकर चिरजीवी होगा । समय पाकर वही धर्मात्मा नीतिकुशल राजा होकर पृथ्वी और प्रजा का पालन करेगा । तू पापात्मा अधर्मी बालघात के दोष को प्राप्त और इस भ्रूणहत्या के पाप से महा रोग से व्याकुल हो तीन सहस्र वर्ष तक निर्जन स्थान में घूमता रहेगा । अभिमन्यु का पुत्र परीक्षित राजा होगा, वह कृपाचार्य से धनुर्विद्या सीख कर अत्यन्त बलवान और यशस्वी होगा । तेरे अस्त्र से गर्भ निर्जीव हो जायगा किन्तु हम उसे जीवित करके पाण्डवों को प्रसन्न करेंगे ।

अरे दोषी ब्राह्मण ! तू मेरे तप का प्रभाव देख कि मैं इस अनोखी दिव्य गति को प्रगट करता हूँ या नहीं । जब इस प्रकार भगवान् कृष्णचन्द्र ने अश्वत्थामा से कहा, तब व्यासजी बोले—हे ब्राह्मण ! तू ने सन्मार्ग का त्याग करके बड़ा अनर्थ किया, इसी से जनार्दन का कोप तुझ पर हुआ है । अब यदि जीवित रहना चाहता है तो मणि देकर मुनियों का व्रत धारण करके वन में बसे ।

व्यासजी की बात सुन कर श्रेष्ठमणि को पाण्डुपुत्रों के हाथ देकर वह वन में चला गया और पाण्डव लोग मुनि वृन्द की बन्दना करके लौट आये । धर्मराज की आज्ञा से भीमसेन ने मणि द्रौपदी के हाथ में दी और कहा—

हे प्रिये ! धीरज धारण कर शोक त्याग दो, क्षात्रधर्म मनमें विचार कर दुःख न करो । हमने दुःशासन का वध करके उसका रक्त पान किया । भाई के सहित दुर्योधन, शकुनि, कर्ण आदि का

बध किया। अपने पराक्रम से अश्वत्थामा को जीत कर उसकी अमूल्य मणि ले ली और उसको गुरु पुत्र जान कर बध नहीं किया। अब इससे अधिक प्रतीकार क्या हो सकता है ?

भीमसेन की बात सुन कर द्रौपदी ने सन्तोष धारण किया और शोक को त्याग दिया। फिर श्रीकृष्णचन्द्र से धर्मराज कहने लगे—

हे केशव! असंख्य भटों के सहित बलशाली धृष्टद्युम्न को अकेले अश्वत्थामा ने बध कर डाला। यह विचार कर मुझे बड़ा शोक हो रहा है कि हमारे वे वीर कहाँ चले गये ?

यह सुन कर मतिमान श्रीकृष्णजी बोले—हे धर्मराज! अश्वत्थामा ने शिवजी की स्तुति करके उन्हें प्रसन्न किया और उनकी कृपा प्राप्त करके इस अन्याय कर्म में सफल हुआ है। उसने शंकर भगवान के आशीर्वाद से अमरत्व प्राप्त कर भयंकरता के साथ भटों का निपात किया। इसमें दूसरा कोई कारण नहीं है। श्रीकृष्णचन्द्र ने शिवजी के प्रभाव को बहु प्रकार वर्णन कर कहा कि रुद्र भगवान सब कुछ करने में समर्थ हैं।

मेरी रक्षा के कारण तुम पाँचों भाई बच गये हो, यदि मैं न होता तो शिवजी के प्रसाद से वह तुम लोगों का भी संहार कर डालता।

धृतराष्ट्र का विलाप।

पुत्रों काससैन्य बध सुन कर राजा धृतराष्ट्र नीचे सिर करके मूक हो शोक में डूब गये, तब संजय ने कहा—हे राजन्! आप शोक से अधीर न हों, जो कर्त्तव्य है वह कीजिये। अब पुत्रों की अन्त्येष्टि क्रिया करवाइये। इस प्रकार संजय की बात सुन कर राजा अचेत हो उखड़े हुए वृक्ष की तरह धरती पर गिर पड़े और हाय पुत्र! हाय पुत्र! कह कर रोने लगे। कुछ देर के बाद रोते हुए संजय से कहने लगे—हे संजय! अब मेरा जीना व्यर्थ है। सब पुत्र, नाती, सेवक, मित्र और सेना का संहार हो गया, मैं सब से रहित होकर परकटे हुए पक्षी के समान हो गया हूँ। नारद, व्यास और श्रीकृष्ण की सुखदायिनी बात को मैं ने नहीं मानी। भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य और विदुर ने मेरे कल्याण के लिये कितना समझाया बुझाया पर मैं ने उनकी शिक्षा पर कान न दिया, फिर मेरा हृदय दुःख से क्यों न परिपूर्ण हो ? शकुनि, दुःशासन, दुर्योधन और कर्ण की दर्प भरी बातों के फेर में पड़ कर मैं ने नीति को भुला दिया, तो मुझे क्यों न मर्मान्तिक कष्ट हो ? इस प्रकार दुर्हठ करके अपने से महान् भीषण विपत्ति मैं ने अपने सिर पर बुलाई है, हाय! मेरे समान अभागा कौन होगा।—

राजा धृतराष्ट्र का विलाप सुन कर मतिमान् संजय ने कहा—हे सुजान नरेश! सुनिये, जो वृद्ध तपस्वी और मित्रों का कहना नहीं मानता तथा लोभी, अभिमानी, मूर्ख युवक के कहने से खोटाई कर बैठता है, वह विपत्ति को प्राप्त होता है और उसका हृदय सदा शोक से जला करता है। आपने वही किया, फिर आपका हृदय दुःख की आँच से जलता है, तो इसमें कुछ अचरज की बात नहीं है।

हे राजन्! बुद्धिमान् लोग ऐसा कहते हैं कि पहिले विचार कर और वृद्धों से सम्मति लेकर तब कार्य करना चाहिये। जो ऐसा करता है उसपर विपत्ति नहीं आती। कदाचित् ऐसा करने पर भी आपदा आ जाय, तो धीरज धर कर उसे सहना उचित है। विपत्ति पड़ने पर जो धीरज और धर्म की रक्षा करता है, वही परम सुकृती है। गुरुजनों की बात मान कर विपत्तिकाल में मन में धीरज धारण करना चाहिये।

आप शोक त्याग कर प्रेतविधि कीजिये। जैसे कोई अपने हाथ से घर में रूई भर कर स्वयम् आग लगा दे और मकान जल जाने पर पश्चात्ताप करे, ठीक ऐसा ही आप का पछताना है। द्वेष रूपी अग्नि में लोभ का घी डालकर बातों की हवा से प्रज्वलित कर, सेना रूपी लकड़ी डाल आप के पुत्र पाँखी होकर जल मरे हैं। मधु के लोभ से पर्वत की दरी में गिर कर अंगभंग हुआ प्राणी पछताता है। हे महाराज! आप का सोच करना भी ऐसा ही है।

विपत्ति आने के पहिले उसके बचाने का पूरा प्रयत्न करना चाहिये और आई हुई विपत्ति को धीरज धारण करके बिताना पंडिताई है।

हे राजन्! सुनिये, इस लोक में प्राणियों का मरना आश्चर्य नहीं है। काल जिसको युक्ति से खींचता है, तब वह प्राणी शरीर त्यागता है। इसलिये काल के बचाव के सम्बन्ध में मनुष्यों की उक्ति और चतुराई सब व्यर्थ है। जो युद्ध में जाता है वह बच कर लौट आता है और जो घर में रहता है वह मर जाता है। सब प्रमाण पर्यन्त जीते हैं किन्तु काल का प्रमाण पल भर भी हटने नहीं पाता। काल के हृदय में किसी प्राणी के प्रति छोह नहीं है, दिन पाकर वह सभी प्राणियों को क्रम से समेटता जाता है। काल न किसी का शत्रु है, न मित्र। इसलिये मोह त्याग दीजिये, जैसे द्रव्य और तृणादिकों का दैवयोग से संयोग वियोग होता है, उसी प्रकार जीवों का जगत में रहना और जाना समझिये। न वे आप के कोई थे और न आप हो उनके कोई हैं, फिर आप किसके लिये शोक करते हैं। आपके पुत्रों ने जीते यश और मर कर स्वर्ग पाया, उनका दोनों प्रकार से कल्याण हुआ। जीव जैसा कर्म करता है वैसा फल पाता है। अच्छा कर्म करनेवाला सुख और बुरा कर्म करनेवाला दुःख पाता है। अपना कर्म ही मित्र और शत्रु है। जो कर्म किया जाता है, उसी का फल प्रकट होता है, बिना कर्म के फल नहीं हो सकता। आप के समान् मतिमान की बुद्धि को कर्म ही ने पलट दिया और दूसरा कारण नहीं है।

संजय की बात सुन कर राजा कुछ शान्त हुए, फिर उन्हों ने विदुर से कहा—हे विदुर! बिना इच्छा के दुःख का प्राप्त होना और इच्छित का नाश, इन दोनों दुःखों से जीव का छुटकारा किस प्रकार होता है?

विदुर ने कहा—हे राजन्! जब इच्छित नष्ट हो जाता है और आपदा आती है, तब श्रेष्ठ पुरुष धीरज धारण करके सहन शक्ति से दुःख को छिपा देते हैं। उसी प्रकार सुख प्राप्त होने पर प्रवीण मनुष्य दम्भ त्याग कर आनन्द का उपभोग करते हैं। संसार कदली स्तम्भ के समान सारहीन है। धनवान और निर्धन सभी मर जाते हैं, भले बुरे कर्म द्वारा यश और अयश जगत में रह जाता है। स्वर्ग, नरक, सुख और दुःख कर्मानुसार ही मिलता है। जैसे मिट्टी कारण है, उससे बने कच्चे या पके बर्तन थोड़े दिन वा अधिक काल में टूट टूट कर फिर मट्टी हो जाते हैं, उसी प्रकार गर्भबास, जन्म, लड़कपन, जवानी और बुढ़ाई के बाद शरीर नष्ट होता है तथा कर्म की गति के अनुसार जीव संसार में परिभ्रमण करता रहता है। जीव की इस निरन्तर चाल को समझ कर आप शोक त्याग दें।

विदुर की बात सुनकर राजा धृतराष्ट्र ने कहा—हे मतिमान-बिदुर! गर्भवास करके प्राणी किस प्रकार जन्म लेते हैं, इसे समझा कर कहिये विदुर बोले—

हे राजन्! सुनिये, रज और वीर्य मिलकर बुदबुदाकार हो मांस का पिण्ड बनता है, फिर उससे पाँचवें मास पर्यन्त सब अंग तैयार होकर तब कर्मफल सहित उसमें जीव का प्रवेश होता है।

गर्भवास का दुःख सह कर समयानुसार प्रसववायु की प्रेरणा से योनिमार्ग द्वारा ऊपर पाँव नीचे सिर किये बाहर निकलता है। क्रम से काल पाकर इन्द्रियों सहित पुष्ट होता है तब काम, क्रोध और लोभ आदि के वश हो तरह तरह के कुकर्म करता है। कितने ज्ञान में तत्पर हो सुन्दर मार्ग अवलम्बन करके श्रेष्ठ धर्म करते हैं। मांस रक्त में कोई भेद नहीं है, किन्तु कर्मानुसार मूर्ख-पण्डित, निर्धन-धनवान कुलीन और अकुलीन होता है। ऐसा विचार कर जो सन्मार्ग का अनुसरण करते हैं, वे दोनों लोकों में आनन्द पाते हैं।

यह सुनकर धृतराष्ट्र ने कहा—हे विदुर! अटल धर्म धारण करके मनुष्य किस प्रकार चलते हैं, वह विस्तार से कह कर आप मुझे शान्ति प्रदान कीजिये।

राजा की उत्कंठा देख कर विदुरजी कहने लगे—हे राजन्! सुनिये एक घना जङ्गल था। जिसमें सिंह, व्याघ्र, भालु आदि हिंसक जीव भरे थे उसमें कोई ब्राह्मण दैवयोग से जा पड़ा और वन देख कर वह मन में डरा। तब वह इधर उधर देखने लगा। उसको जान पड़ा कि मैं वृक्ष से बँधा हूँ उसकी रस्सी एक स्त्री पकड़े हुए खड़ी है। बड़ा भारी पाँच सिर का सर्प, छे मुख और चरणवाले बारह हाथी लताओं में फँसे हुए धीरे धीरे चल रहे हैं। उन सब को देख कर वह मतिमान ब्राह्मण डर कर कुएँ में गिर पड़ा। वहाँ लताजाल में फँस कर बीच में लटक गया। ऊपर पाँव नीचे सिर हुआ, अब बिना ईश्वर के उसे कौन निकाले? एक भीषण साँप मुँह बाये काटने की घात लगाये था। भौंरों की छात थी, वे भयंकर शब्द करते हुए चारों ओर उड़ रहे थे। सफ़ेद और काले दो चूहे लता की जड़ काट रहे थे जिसमें फँसा हुआ वह ब्राह्मण लटक रहा था। मधुमक्षिका की छात से मधु टपक कर उस विप्र के मुख में पड़ रही थी और उसे खाकर जीने की आशा से वह अपने को कृतार्थ समझता था। ऐसी विकट स्थिति में भी उसे जीने की बड़ी आशा लग रही थी।

यह सुन कर धृतराष्ट्र ने आश्चर्य से पूछा—हे विदुर! उस ब्राह्मण का कौन सा देश है, मुझे समझा कर कहिये।

विदुर ने कहा—हे राजन्! संसार गहनबन है, जरावस्था स्त्री है, व्याल रोग है, जीव ब्राह्मण है, शरीर कुआँ है, आयु लता, है, कुएँ के बीच विकराल सर्प काल है। एक वर्ष के बारह मास हाथी हैं, ऋतु मुख और चरण हैं। दिन रात चूहे हैं काम, क्रोधादि भ्रमर हैं, कामेच्छा मधु है। इस बन में पड़ कर जो आशा को जीत लेता है वही सुखी रहता है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धमय व्याधि और बुढ़ाई के बश सब जीवों का नाश होता है। शरीर रथ है और शील सारथी है, इन्द्रियाँ अश्व हैं, कर्म तथा बुद्धि बाग है। जिधर इन्द्रियाँ रूपी घोड़े जाते हैं रथ भी उधर ही जाता है। इसी तरह सदा संसार चक्र में घूमा करता है और मुँहजोर घोड़े रोकने से रुकते नहीं। इसलिये प्रयत्न करके इन्द्रियों को रोकना ही चतुरता है। जो इन्हें वश में कर लेता है वह दोनों ओर सुखी रहता है और जो इन्द्रियों को नहीं जीतता, लोभ में पड़ कर कार्य करता है, उसका आप ही के समान अनिष्ट होता है।

हे महाराज! दुःख रूपी व्याधि की एक महान औषधि ज्ञान है। जो शान्ति रूपी श्रेष्ठ रस्सी के योग से मनस्थिति रूपी उत्तम रथ पर चलते हैं, वे उत्तम पद को प्राप्त होते हैं। जीवमात्र को मरने का महा भय रहता है, इसलिये समस्त प्राणियों पर दया करनाप रम धर्म है।

विदुर की बात सुन कर और पुत्रों की मृत्यु का स्मरण करके राजा धृतराष्ट्र मूर्छित होकर धरती पर गिर पड़े। विदुर ने उनके मुख पर गुलाब जल छिड़क कर पंखा से हवा की, तब कुछ देर के बीतने पर राजा को होश हुआ। फिर वे अत्यन्त दुःख से रोते हुए विलाप करने लगे।

राजा को बहुत दुखी देख कर व्यासजी ने कहा—हे राजन ! शोक त्याग करो, मर्त्यलोक की गति ही ऐसी है कि मृत्यु सदा प्राणियों के सिर पर नाचती रहती है। जब तक मृत्यु न हो, तब तक उससे बचने का उपाय करना और मर जाने पर शोक न करना ही बुद्धिमानी है। तुमने पहिले मृत्यु के निवारण का यत्न नहीं किया, फिर व्यर्थ क्यों सोच करते हो ? तुम तो बुद्धिमान हो और सब जानते हो, भावी बुद्धि को पलट देती है। दुर्योधन संसार के लिये काल रूप होकर उत्पन्न हुआ था, इसी से उसने क्षात्रवंश का हठ करके नाश करा दिया। इस बात को हमने देवसमाज में विस्तार से सुनी है। पाण्डवों को अपना पुत्र सुखदायक समझ कर शोक त्याग दो। युद्धिष्ठिर धर्मज्ञ हैं वे आप की सेवा करेंगे। यदि शोक से आप गान्धारी के सहित प्राण त्याग करेंगे तो धर्मराज भी शरीर छोड़ देगें।

इसलिये हे राजन् ! दया पूर्वक आप धर्मराज को अपना हितकारी पुत्र अनुमान कर ब्रह्मा की गति समझ और मेरी सलाह मान कर प्राणत्याग न करें।

व्यासजी का आदेश स्वीकार कर राजा ने प्रसन्नता से उन्हें प्रणाम किया और वे विदा होकर अन्तर्धान हो गये।

इति

स्त्रीपर्व।

पाण्डवमिलाप और अन्त्येष्टिक्रिया।

समय विचार कर संजय ने राजा धृतराष्ट्र से कहा—हे राजन्! अब धीरज धारण करके चल कर प्रेतकर्म कीजिये।

संजय की बात सुन कर राजा धृतराष्ट्र मोह वश फिर विलाप करने लगे। राजा को व्याकुल देख कर विदुर ने कहा—हे नरपाल! आपका इस प्रकार शोक करना उचित नहीं है। समय पाकर संसार के समस्त प्राणियों का विनाश होता है। आवागमन होना जीव की प्रणाली है और शोक करने से मरा हुआ प्राणी लौट नहीं सकता। इसलिये दुःखदायी शोक को त्याग दीजिये। आप के पुत्र रणभूमि में शरीर त्याग कर देवलोक का आनन्द भोग करते हैं उनके लिये शोक करने की बात नहीं है। यज्ञ, दान, व्रत और तपस्या करके जो गति नहीं मिलती, वह गति शूरवीरों को प्राप्त होती है।

हे राजन्! क्षत्रियों के लिये युद्ध में तन-त्याग करने के समान दूसरी श्रेष्ठगति नहीं है। उन्होंने सुन्दर धर्म पालन करके स्वर्ग प्राप्त किया, इसलिये अब जो करना उचित है चल कर उसे कीजिये। इस प्रकार विदुर की बात सुन कर समय का विचार करके राजा धृतराष्ट्र उठे और गान्धारी को बुलवाया। वे कुन्ती आदि स्त्रियों के सहित विलाप करती हुई आईं और राजा के सहित रथ पर चढ़ कर रणक्षेत्र की ओर चलीं।

कुरु कुल की सारी स्त्रियाँ अत्यन्त दुःख के साथ रुदन करती हुई जारही थीं, उनका रोना सुन कर राजा का हृदय शूल से व्यथित होरहा था। जिन रानियों को कभी सूर्यदेव नहीं देख सकते थे, उन्हें रुदन करते हुए सारी जनता अवलोकन कर दुखी हो रही थी। उनके बाल खुले हैं, शरीर पर कोई आभूषण नहीं, विविध प्रकार प्रताप वर्णन करती हुई सकरुण रुदन कर रही हैं। सहस्रों स्त्रियाँ रुदन करती पैदल जा रही हैं। हा नाथ! हा नाथ! करती हुई महा मोह से व्याकुल अचेत हो सिर और छाती लज्जा त्याग कर पीट रही थीं। गिरती उठती रुदन करती रणभूमि की ओर चली जा रही थीं। एक दूसरी से लिपट जाती हैं और शोक पसार कर रुदन करती हैं। एक दूसरी को हाथ पकड़े समझाती थीं और कितनी ही पति, पुत्र तथा बन्धु का नाम लेकर पुकारती और रुदन करके धरता पर गिर पड़ती थीं।

इस प्रकार राजा शोक से भरे स्त्रियों के सहित नगर के बाहर गये। शिल्पकार, वणिक आदि राजा के साथ रोते हुये जा रहे थे। जब नगर से कोस भर दूर आये; कृप, कृतवर्मा और अश्वत्थामा आकर मिले। वे तीनों भट आँखों से आँसू बहाते हुए सखेद राजा से कहने लगे हे महाराज! आपके पुत्र क्षात्रधर्म पालन कर स्वर्गलोक सेना के सहित पधारे हैं। वे रण में निर्भीकता से युद्ध कर अस्त्र के आघात से शरीर त्याग दिव्य शरीर धारण कर अमर धाम के निवासी हुए हैं। अश्वत्थामा ने अपनी कुत्सित करनी कह सुनाई और कहा कि इसको सुन कर प्रसन्न हो दुर्योधन स्वर्गलोक गये हैं। इसलिये आप शोक त्याग कर धीरज धारण करें और हमलोग अब जाते हैं, क्योंकि पाण्डव यहाँ आवेंगे तो युद्ध मचने की आशंका है।

ऐसा कह कर राजा की प्रदक्षिणा करके तीनों वीर चले गये। कृपाचार्य हस्तिनापुर को, कृतवर्मा अपनी राजधानी को और द्रोणपुत्र व्यासमुनि के आश्रम की ओर गया जहाँ भीमादिकों ने उस की मणि ली थी।

वृद्ध राजा स्त्रियों के सहित रणस्थल में आये। यह ख़बर पाकर भाइयों के सहित दुःखित हृदय से धर्मराज उनके समीप गये। वीर सात्यकि, युयुत्सु, और पांचालगण की स्त्रियाँ तथा द्रौपदी सब साथ थीं। एक बार दोनों ओर के रुदन से व्योममंडल पूर्ण होगया। अपना अपना नाम कह कर पाण्डवों ने पिता की वन्दना की। राजा के मन में पुत्र के मारनेवाले पाण्डवों पर बड़ा क्रोध हुआ किन्तु वे अपनी पापबुद्धि को छिपा कर धर्मराज से मिले और लम्बी साँस लेकर भीम का नाश करने के लिये उन्हें मिलने को पुकारा। श्रीकृष्णचन्द्र राजा के अभिप्राय को जानते थे, उन्हों ने भीम को दूर करके छिपा दिया और लोह की मूर्त्ति जो भीमसेन के आकार की पहले से तैयार कराई गई थी, उसे धृतराष्ट्र से मिलने के लिये आगे कर दिया। राजा ने भीम को दोनों हाथों से पकड़ कर छाती से लगाया और इतने ज़ोर से दबाया कि लोहमूर्त्ति दब गई और धृतराष्ट्र के मुख और नाक से रक्त बहने लगा, वे अचेत होकर धरती पर गिर पड़े

संजय ने दौड़ कर राजा को उठा कर बैठाया और उन्हें शान्त करते हुए पुकार कर उचित वचन बोले—हे राजन! भीम को मरा हुआ जान कर क्रोध त्याग दीजिये। संजय की बात सुन कर राजा धृतराष्ट्र हाय भीम! कह कर रोने लगे। राजा को क्रोध रहित विचार कर भगवान् कृष्णचन्द्र बोले—हे राजन्! मैं आपके अतुल पराक्रम को जानता था और आपके हृदय में जैसी उग्रबुद्धि उत्पन्न हुई थी मैं उसे समझ गया था, इसलिये लोहमूर्त्ति को भीम कह कर आप से मिलाया। जिसे भीम समझ कर आपने ध्वंस किया वह योद्धा भीम नहीं है, भीम आपकी कृपासे जीते जागते हैं आप विषाद न करें। आप तो वेद, शास्त्र और पुराण सुनते हैं। राज नीति और योग्यायोग्य की विधि जानते हैं। अपने अपराध का विचार न करके इतना क्रोध आप काहे को करते हैं? भीष्म, विदुर, संजय और हमने कितना आपको समझाया कि पराक्रम में तथा शूरता में पाण्डव अधिक हैं। बलाबल विचार कर और देश काल देख कर वैर प्रीति करना उचित है; किन्तु आपने उस समय हठ से एक भी सीख नहीं मानी। अपना कर्म विचार कर और दूसरे के दोषादोष को समझ कर विचारिये, अपने कर्मों का फल प्राप्त होने से दूसरों पर रुष्ट होना उचित नहीं है।

श्रीकृष्णचन्द्र की यह बात सुन कर राजा धृतराष्ट्र शान्तहृदय से विचार कर बोले—हे केशव! सचमुच मैंने पुत्रस्नेह के कारण बड़ी निषिद्ध टेक पकड़ ली थी, इस समय आपने बुद्धिमानी करके मुझे बड़े भारी पाप से बचा लिया है। हे प्यारे! अब हम पाण्डवों को स्नेहपूर्वक हृदय से लगाना चाहते हैं।

राजा की बात सुन कर पाँचों भाई उनसे मिले और सब करुणा से भरे हुए रुदन करने लगे। फिर राजा की आज्ञा पाकर श्रीकृष्णचन्द्र पाण्डवों के सहित गान्धारी के पास गये।

गान्धारी को अत्यन्त क्रुद्ध जान कर व्यासजी वहाँ आये और समझाने लगे—हे गान्धारी! अब तुम पाण्डवों पर क्रोध करके अनर्थ मत करो। उन्हें अपने पुत्र के समान जान कर रक्षा करो। तुम्हारे पुत्रों ने अपनी करनी का फल पाया है। तुमने हमने और विदुर ने कितना समझाया और बार बार कहा कि जहाँ धर्म है जीत वहीं होगी। पाण्डवों ने धर्म ही के बल युद्ध में विजय प्राप्त की है। इसलिये तुम मेरी बात मान कर अपना धर्म कर्म विचार दैवगति को सोच कर हृदय में क्षमा ले आओ।

इतनी बात होने के अनन्तर पाण्डवलोग श्रीकृष्ण के सहित आये और प्रणाम करके बड़ी नम्रता से क्षमा प्रार्थना करने लगे। तब गान्धारी ने कहा—

हे धर्मराज ! तुम लोगोंने जुट कर मेरे पुत्रों से युद्ध किया और उन्हें मार डाला, मुझे इसका दुःख नहीं और न इसमें तुम्हारा दोष ही है; परन्तु दुर्योधन ताल में छिपा था उसको ललकार कर तुमने बाहर किया और भीम ने अधर्म से उसकी जाँघ में गदा मार कर बध किया, यह सोच कर मेरे हृदय में बड़ा क्रोध हो रहा है।

गान्धारी की बात सुन कर भीमसेन भयभीत हो हाथ जोड़ कर बोले—हे माता ! आपका कहना सत्य है, मैं ने बिना अधर्म के जीत होना असम्भव जाना। परन्तु मैं ने अपनी प्रतिज्ञा पालन की, यह बिचार कर आप क्षमा करें। जब दुःशासन द्रौपदी को सभा में घसीट लाया, तब दुर्योधन ने अपनी जाँघ दिखा कर उसका तिरस्कार किया। उस समय हमने पुकार कर कह दिया था जिस जाँघ को दिखा कर तुम द्रौपदी का अपमान करते हो उसको हम युद्ध में गदा से तोड़ डालेंगे। उसी कारण से हमने ऐसा किया।

भीमसेन की बात सुन कर गान्धारी बोली—अरे भीम ! तू मांसाहारी राक्षस है। लड़ कर दुःशासन को जब तू ने बध कर डाला तब उसका रक्त क्यों पान किया ?

भीमसेन ने नम्रतापूर्वक कहा—हे माता ! दुःशासन मेरा प्रिय बन्धु था, उसका रक्त अपने रक्त के समान जान कर मुझे कुछ घृणा नहीं हुई और दूसरा कारण छिपा नहीं है उसको सब लोग जानते हैं, सुनिये। द्रौपदी रजोधर्म युक्त थी, उस दशा में दुःशासन यह कहता हुआ कि तेरे पति नपुंसक हैं कुछ कर नहीं सकते, पकड़ कर सभा में ले आया। उसको ऐसा नहीं करना चाहता था, इसी पर मैं ने उसके रक्तपान की प्रतिज्ञा की थी उसको पूरी किया। अब आप हृदय से ईर्ष्या, क्रोध और दुःख दूर करके दया करें भावी किसी के वश की नहीं।

यह सुन कर गान्धारी ने कहा कि तुमने अन्धे वृद्ध राजा का कुछ भी ख्याल न करके सब पुत्रों को मार डाला, एक को भी जीता नहीं छोड़ा। सौ पुत्रों का नाश देख कर भला कौन सन्तोष धारण कर सकता है ?

तब धर्मराज भयभीत हो नम्रतापूर्वक बोले—हे माता ! आप के पुत्रों का विजयाभिलाषी मैं ही संहार करनेवाला हूँ। अब हम पाँचों भाई हाथ जोड़ कर आप के सामने खड़े हैं, चाहे आप शाप दें अथवा आशीर्वाद। मुझे भाइयों के बध का बड़ा दुःख है, राज्य और जीना कुछ भी अच्छा नहीं लगता है।

धर्मराज की बात सुन कर क्रोध त्याग गान्धारी ने दयापूर्वक अभयदान दिया। फिर आज्ञा माँग कर प्रसन्नता से पाण्डव लोग अपनी माता कुन्ती के पास गये।

कुन्ती ने बहुत दिनों के बाद पुत्रों को देखा, इस ने वे विषाद करके रोने लगीं। उन्होंने पुत्रों के शरीर पर हाथ फेरा और घाव देखकर अत्यन्त दुःखी हुईं। द्रौपदी रुदन करती हुई बड़े दुःख से गिर पड़ी, सब स्त्रियों ने उन्हें उठा कर समझाया। फिर कुन्ती सब स्त्रियों के सहित जहाँ गान्धारी थीं वहाँ गईं। करुणा से भरी हुई सब ने रुदन किया। गान्धारी ने कुन्ती से कहा—

हे पृथा ! ब्रह्मा ने कपाल में लिखा था वही दुःख प्रगट हुआ है। सब पर दुस्सह शोक आ पड़ा है। कौन किसको समझावे ? जैसी हमारी दशा है वही तुम्हारा हाल है। भीषण दृश्य देख कर छाती नहीं फटती है।

इतने में राजा धृतराष्ट्र, पाण्डव, श्रीकृष्ण और स्त्रियों को साथ में लेकर जहाँ भीषण संग्राम हुआ था वहाँ चले। पति, पुत्र और बन्धुओं को मृतक देख कर सब स्त्रियाँ करुणा करती हुई लाशों पर जा गिरती थीं। उस समय रणस्थल में बड़ा आर्त्तनाद होने लगा। गान्धारी पुत्रों का शव देख कर उनका बल, प्रताप, ऐश्वर्य बखान बखान करुणा के साथ रुदन करती थी। ऐसा मालूम होने लगा मानों करुणा की सेना रणस्थल में उमड़पड़ी है। रुदन करने और विलाप के सिवा किसी को कुछ ज्ञान नहीं रह गया। उत्तरा अभिमन्यु की लाश पकड़ कर और द्रौपदी पुत्रों के शव को थाम कर महा विलाप करके रुदन करती थी।

राजा धृतराष्ट्र रुदन करते हुए श्रीकृष्णचन्द्र से कहने लगे—हे केशव! देखिये। स्त्रियों का रुदन हृदय को फाड़े डालता है। न जाने कौन से पाप का फल मुझे प्राप्त हुआ है। धनुर्धर बली कर्ण मरा पड़ा है, उसकी स्त्री उसके शरीर से लिपट कर रुदन करती है। राजा भूरिश्रवा, शकुनि, जयद्रथ सेना सहित मृतक हुए हैं। द्रुपद, विराट सपरिवार धरती पर पड़े हैं उनकी स्त्रियाँ बिलप रही हैं। राजा भगदत्त, द्रोण आदि महारथी धूल में पड़े लोट रहे हैं। जिन्होंने इक्कीस दिन परशुराम से युद्ध किया वे महान् पराक्रमी भीष्मपितामह प्राणावशेष होकर बाणशय्या पर पड़े हैं। मद्रनरेश, उलूक आदि भटों की लाशें पड़ी हैं। जिन पर चँवर चलतेथे, दासी दास दिन रात मुख जोहा करते थे, उन वीर राजाओं की लाश को कौआ, गिद्ध, शृगाल नोच नोच कर खाते हैं।

रोती हुई गान्धारी ने कृष्णचन्द्र की ओर देख क्रोध से कहा—हे कृष्ण! बैर का प्रपञ्च बढ़ा कर तुम्हीं ने यह अनर्थ कराया है, तुम्हारे ही उद्योग से हमारे वंश का नाश हुआ है। इसलिये आज से छत्तीस वर्ष बाद तुम्हारा कुटुम्ब आपस में ही क्रोध से लड़ कर नाश होगा। तुम्हारे मित्र, पुत्र और परिवार के लोग द्रोह करके परस्पर की मारकाट कर बिध्वंस हो जाँयगे। जो दशा हमारे कुल की स्त्रियों की हुई है वही गति तुम्हारे वंश की युवतियों की होगी।

गान्धारी की बात सुन कर श्रीकृष्णचन्द्र मुस्कुराते हुए बोले—हे गान्धारी! जो बात आपने कही है, हम वह चाहते ही थे क्योंकि संसार में कोई शस्त्रधारी ऐसा नहीं था जो यदुवंशियों का युद्ध में संहार कर सके। इसलिये उनका नाश किसी न किसी तरह मुझे करना पड़ता। आप ने मेरी इच्छानुसार वही बात की है। फिर भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने कहा कि आप के वंश का नाश राजा के दोष से हुआ है। आपके पुत्र कपटी, कुटिल, बन्धुद्रोही, दुष्ट और आततायी थे, जहाँ इतने अनर्थ हों वहाँ सर्वनाश कैसे न हो? दूसरों पर दोषारोपण करना मूर्खता के सिवा और कुछ नहीं है।

यह सुन कर गान्धारी चुप हो गई। तब धृतराष्ट्र ने धर्मराज से कहा—हे युधिष्ठिर! तुम्हें मालूम होगा रणस्थल में कितने जीवों का संहार हुआ है वह मुझ से कहो। धर्मराज बोले—

हे महाराज! छाछठ करोड़ चालीस लाख पचास हजार पाँच सौ योद्धा बीरगति को प्राप्त हुए हैं और हाथी तथा घोड़ों की संख्या का अटकल लगाना असम्भव है।

यह सुन कर धृतराष्ट्र ने कहा—हे मतिमान! इन सब को कौन सी गति प्राप्त हुई है?

धृतराष्ट्र की इच्छा सोच कर धर्मराज बोले—हे वृद्ध नरेश! जो उत्साह के साथ युद्ध करके आगे बढ़ते हुए मरे हैं, वे स्वर्गलोक को प्राप्त होंगे। जिन्हों ने धर्म विचार कर शूरता के साथ प्राण तजा, वे गन्धर्व लोक पावेंगे। जो कुछ डर से पीछे मुड़ कर मरे हैं, वे यक्षलोक में निवास करेंगे। जो निरस्त्र घायल वीर उत्साह से आगे बढ़ कर मरे, वे शूर क्षत्री ब्रह्मलोक को गये हैं।

राजा धृतराष्ट्र ने धर्मराज की ये बातें सुन कर फिर पूछा—हे युधिष्ठिर! इस सिद्धान्त को तुम किस ज्ञान से जानते हो, वह कहो।

धर्मराज प्रसन्नता पूर्वक कहने लगे। हे महाराज! जब आप की आज्ञा पाकर हम वन को गये, तब वहाँ परम तेजस्वी तपोराशि लोमशमुनि आये। तीर्थयात्रा करते हुए उन्होंने मुझे दिव्यदृष्टि प्रदान की। इससे मैं यह सब जानता हूँ। इस प्रकार कह कर फिर मन में विचार करके धर्मराज विदुर की ओर देख कर बोले— हे विदुर! आप और संजय सेवकों को साथ लेकर सब सुभटों के शरीर का दाहकर्म कीजिए।

विदुर ने लकड़ी, घृत के संयोग से प्रधान प्रधान भटों की लाशें ढूँढ़ ढूँढ़ चिता बनाकर दाहकर्म कराया। बहुत सी स्त्रियों ने अपने पति और पुत्रों का दाहकर्म किया। फिर बहुत सी लकड़ी की राशि में घी तेल डाल कर समस्त मनुष्यों की लाशें जलाई गईं। उसको पृथक् पृथक् कहना असम्भव है। धुआँ से आकास भर गया। दाहकर्म समाप्त होने पर रात्रि का प्रवेश हुआ, तब राजा स्त्रियों के सहित गंगाजी के किनारे गये वहाँ सविधि तिलाञ्जलि देकर सब शोक से रुदन करने लगे।

कुन्ती ने धीरज धारण करके धर्मराज से कहा—हे पुत्र! मेरे मन में कर्ण का बड़ा छोह है, उसकी मृत्यु से मुझे अपार कष्ट हुआ है। कर्ण मेरा ज्येष्ठ पुत्र और तुम्हारा सहोदर भाई है जिसको अर्जुन ने बाण मार कर वध किया है। वह कुंडल कवच धारण किये पैदा हुआ था और अपार बली था।

यह सुन कर धर्मराज को बड़ा दुःख हुआ, वे विलाप करके माता से कहने लगे—हे माता! कर्ण तुम्हारा पुत्र कैसे था? तब कुन्ती ने कर्ण की उत्पत्ति का हाल कह सुनाया। उसको सुन कर धर्मराज को बड़ा दुःख हुआ और वे करुणा करते हुए बोले—

हे माता! यह कारण तू ने पहले नहीं बतलाया, अब जानने ही से क्या हो सकता है? यदि यह बात पहले तू बतलाये होती तो भाई भाई से बिरोध न होता।

ऐसा कह कर भाइयों के सहित धर्मराज ने कर्ण को तिलाञ्जलि दी और उसकी स्त्री को पालनार्थ अपने डेरे में लिवा लाये।

इति

शान्तिपर्व ।

धर्मविचार और युधिष्ठिर का राज्याभिषेक ।

गंगाजी के तट पर राजा धृतराष्ट्र और पाण्डव लोग जलाञ्जलि देकर श्रीकृष्णचन्द्र, विदुर और सब स्त्रियों के सहित हस्तिनापुर के पास आये और एक मास पर्यन्त नगर के बाहर डेरा डाल कर निवास किया। फिर वहाँ शिष्यों के सहित व्यासजी, देवल और नारद आदि मुनीश्वर सुखदायी उपदेश देने के लिए आये। कण्व आदि बड़े बड़े महात्मा इकट्ठे हुए, देश काल के अनुसार राजा ने सब की पूजा करके आसन पर बैठाया। शोकाकुल राजा युधिष्ठिर को आश्वासन देते हुए नारदजी बोले—

हे राजन्! सावधान मन करके सुनिये। आप बड़े ही भाग्यशाली हैं कि जिनके सहायक भगवान श्रीकृष्णचन्द्रजी हैं। अपने धर्म के बल से आपने प्रबल शत्रुओं पर विजय पाई है। ऐसी अनुपम विजय मिलने पर अब आप किस लिये अनुतप्त हैं? जय पाकर क्षत्रिय को खेद करना उचित नहीं है। आपने सब दिन धर्म का पालन किया और दुर्योधनादि ने सदा हठ से अधर्म का आश्रय लिया था। तुमने शान्ति स्थापन के लिये सब तरह से उनको समझाया, पर उन्होंने नहीं माना। तब विवश होकर युद्ध किया और पूर्णरीति से क्षात्रधर्म का पालन करके श्री प्राप्त किया, अब इस प्रकार दुखी होना उचित नहीं है। क्षात्रधर्म विचार कर अपने सौभाग्य की ओर देख आप को प्रसन्न होना चाहिये।

नारदजी की बात सुन कर धर्मराज ने नम्रतापूर्वक कहा— हे मुनिवर्य्य! यह श्रीकृष्णचन्द्र की कृपा और ब्राह्मणों के आशीर्वाद का फल है। भीमसेन और अर्जुन के पराक्रम से विजय पाकर मैं ने सारी पृथ्वी का राज्य पाया, इसमें सन्देह नहीं।

परन्तु हे मुनिराज! जो जाति बन्धुओं का नाश हुआ और द्रौपदी के पाँचों पुत्र, अभिमन्यु, भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य आदि प्रिय तथा पूज्यवरों का संहार हुआ और मेरा सहोदर बन्धु बल का धाम कर्ण जिनके गुणों की प्रशंसा नहीं की जा सकती, उनका तथा विविध सुभट सम्बन्धियों का बध होने से यह जीत मुझे यमयातना के समान दुखदायी प्रतीत होती है। समझ समझ कर मेरी छाती जल रही है, जिन स्त्रियों के पति और पुत्र मरे हैं, वे किस प्रकार धीरज धारण करेंगी? सुभद्रा और द्रौपदी जिनके परम प्यारे रणधीर पुत्र मरे हैं, वे कैसे धैर्य धरेंगी। दस हजार हाथी के बराबर बलवान निर्भय कर्ण मेरा जेठा भाई मर गया। हाय! मैं पहले नहीं जान पाया कि कर्ण मेरा सोदर भाई है। माता ने इस सच्चे वृत्तान्त को मुझ से पहले नहीं कहा, नहीं तो उनसे प्रेम बढ़ा कर मैं इस युद्ध ही को टाल देता। जिसने परशुराम से शिक्षा ग्रहण की और हमने सुना है कि भृगुनाथ ने कर्ण को शाप दिया था। ऐसा आज्ञाकारी शिष्य पाकर परशुराम ने किस कारण शाप दिया?

हे मुनिश्रेष्ठ! यह मुझे समझा कर कहिये—युधिष्ठिर की बात सुन कर बुद्धिराशि नारदजी बोले—हे राजन्! जब तुम सब द्रोणाचार्य से धनुर्विद्या सीखते थे, तब गुरु को एकान्त में पाकर कर्ण ने बड़ी नम्रता के साथ विनती की और कहा—

हे आचार्य ! ब्रह्मास्त्र की महिमा प्रसिद्ध है, हम उस विद्या को सीखना चाहते हैं। हम युद्ध विद्या में अर्जुन से बढ़कर गौरव प्राप्त करना चाहते हैं। आप कृपा कर मुझे बताइये।

यह सुन कर और उसके हृदय का कपट पहचान कर द्रोणाचार्य क्रुद्ध होकर बोले—अरे छली! ब्रह्मास्त्र विद्या ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय को सिखाना उचित है, शूद्र उस विद्या का अधिकारी नहीं है।

आचार्य की बात सुन कर कर्ण वहाँ से चल कर परशुराम के आश्रम में गया। उनके समीप पहुँच कर प्रणाम किया और कहा कि मैं ब्राह्मण हूँ, बाणविद्या सीखने की इच्छा से आप की सेवा में आया हूँ। इस प्रकार उसकी प्रार्थना सुन कर परशुरामजी ने उसे शिक्षा देना स्वीकार कर रख लिया और शिक्षा देने लगे। वहाँ कर्ण से यक्ष, गन्धर्व और राक्षसगण से समागम हुआ।

एक दिन कर्ण धनुष-बाण लिये वन में घूम रहा था, एक ब्राह्मण की गाय चरती थी। उसको मृग जान कर बाण मार दिया, समीप में जाकर गैया को देख पछताने लगा। इतने में ही मुनि आ गये, उन्हें देख कर्ण भयभीत हो पाँव पकड़ कर कहने लगा—

हे मुनिराज ! मृग के भ्रम से हमने गैया को बाण मार दिया, क्षमा कीजिये। छोटों के उत्पात पर बड़ों को क्षमा ही शोभा देती है। अनजाने में जो दोष हुआ है, वह मेरी प्रार्थना के अनुसार क्षमा करने योग्य है।

कर्ण की बात सुन कर मुनि ने क्रोध करके कहा—अरे दुष्ट! तू मूर्ख मतवाला अज्ञानी है। तू जीत के लिये धनुर्विद्या का अभ्यास करता है; किन्तु जिस दिन शत्रु को जीतने की आशा से तू रणस्थल में जायगा, उस दिन यह पाप घूम कर तेरे सिर पर सवार होगा। तेरे रथ की पहिया को धरती ग्रस लेगी, फिर उसी समय तेरा शत्रु तेरे सिर को काट डालेगा। यह सुन भावी को बली समझ कर दुखी हो कर्ण परशुरामजी के आश्रम में चला आया और पूर्ववत दिन रात भृगुनाथ की हर तरह सेवा करते हुए समय बिताने लगा। उसके पराक्रम, पवित्र कर्म, बुद्धि और गुण को देख कर परशुरामजी ने ब्रह्मास्त्र विद्या विधिवत सिखा दी और धनुर्वेद पढ़ा कर उसे दक्ष बना दिया।

एक दिन का आश्चर्य सुनिये, परशुरामजी कर्ण की जाँघ पर सिर रख कर सो गये। एक मांसभक्षी विषैला कृमि जाँघ के नीचे आया और लगा छेदने। पर कर्ण जरा भी हिला नहीं। यहाँ तक कि वह कीड़ा जाँघ में छेद कर ऊपर आ गया और रक्त की धारा बह चली तब परशुराम जागे। रक्त देख कर कारण पूछा, कर्ण ने कहा—

महाराज ! आप सो रहे थे, निद्रा भंग होने के डर से मैं ने शरीर नहीं हिलाया। परशुराम ने देखा कि वह कीट शूकर के आकार का आठ पाँववाला है और सूजा के समान उसके चोखे दाँत और सूई की भाँति विकराल रोएँ हैं। परशुरामजी को देखते ही वह कृमि मर कर राक्षस रूप होकर कहने लगा—

हे मुनिराज ! मैं कृमि नहीं राक्षस हूँ। पहले मूर्खता वश मैं ने भृगुपत्नी को हर लिया था जिससे क्रुद्ध हो मुनि ने कृमि होने का शाप दिया। फिर विनती करने पर कहा कि परशुराम का दर्शन पाने पर तू फिर राक्षस देह पावेगा। आज आप की कृपा से मैं अपनी पूर्व देह पाकर प्रसन्न हुआ हूँ। यह कह और राम को प्रणाम करके वह राक्षस चला गया तब परशुरामजी क्रोध करके कर्ण से बोले—

हे कर्ण ! ब्राह्मण इतना दुस्सह दुःख नहीं सह सकता, इतना साहस क्षत्री ही दिखा सकता है। सच कह तू कौन है?

यह सुन कर शाप के डर से कर्ण ने कहा—महाराज ! मैं क्षत्री हूँ। ब्रह्मास्त्र की विद्या प्राप्त

करने के लोभ से मैं ने अपनी जाति छिपाई थी। आप मेरे गुरु और पिता के तुल्य रक्षक हैं, मेरा अपराध क्षमा कीजिये। ऐसा कह कर पाँव पर गिर पड़ा।

परशुरामजी ने कहा—जिस कार्य के लिये झूठ बोल कर तूने श्रम किया है, वह ब्रह्मास्त्र समय पर तुझे न प्राप्त होगा। जो झूठ बोलता है वह मुझे नहीं सुहाता, इसलिये तुम यहाँ से चले जाओ। तुम उद्भट योद्धा होगे इसमें सन्देह नहीं।

परशुरामजी की वन्दना करके कर्ण घर लौट आया और दुर्योधन के साथ दारुण दम्भ पूर्वक रहने लगा।

हे राजन्! अब कर्ण के पराक्रम की कथा सुनिये, उसने कलिंगपुर में बड़ी दुस्तर वीरता प्रदर्शित की थी। राजा चित्राङ्गद ने अपनी कन्या का स्वयम्बर रचा था। वहाँ बड़े बड़े पराक्रमी शूर-वीर राजा आये थे और कर्ण के सहित दुर्योधन भी गये थे। असंख्यों राजा रंगभूमि में आकर बैठे। महाबली जरासन्ध, शिशुपाल, भीष्मक, नील, शृगाल, भोज, विशोक, कपोतरोमा और शतधन्वा आदि राजे महाराजे रंगशाला में विराजमान थे। हाथ में अनुपम जयमाल लिये हुए कन्या रंगभूमि में आई और प्रत्येक राजाओं की नामवरी तथा कुल की प्रशंसा सुनती हुई आगे बढ़ने लगी। जब वह दुर्योधन की बड़ाई सुन कर आगे चली, उसको जयमाल नहीं पहनाया, तब दुर्योधन उसके इस तिरस्कार को न सह सका। झपट कर कन्या को उठा लिया और रथ पर बैठा कर कर्ण के सहित चला।

दुर्योधन की धृष्टता को अन्य राजा लोग नहीं सह सके, वे अपने अपने रथों पर सवार हो ससैन्य ललकारते हुए दौड़े। राजाओं की ललकार सुन कर दुर्योधन कर्ण के सहित लौटे और अबिरल बाण बरसाने लगे। बड़ा भीषण युद्ध हुआ, कर्ण ने अद्भुत वीरता दिखाई। रथ, धनुष, ध्वजा, गदा, बाण और शक्ति सब राजाओं के चलाये अस्त्रों को काट काट कर धरती पर गिराते हुए असंख्यों बाण चला कर कर्ण ने अनगिनती हाथी, घोड़े, सारथी और योद्धाओं का निपात कर डाला। सब राजाओं को पराजित कर विजय का डंका बजवाते और राजा दुर्योधन की रक्षा करते हुए हस्तिनापुर में आया। इस प्रकार कर्ण रणधीर और अद्वितीय विकट योद्धा था।

हे धर्मराज! कर्ण की और बड़ाई सुनिये, मैं उसकी मिथ्या बड़ाई नहीं करता हूँ। वीर कर्ण के पराक्रम को सुन कर उसे पराजित करने की इच्छा से राजा जरासन्ध रणनिमंत्रण देकर उससे द्वन्द युद्ध करने लगा। पहले सुन्दर रथों पर चढ़ कर दिव्य बाणों की वर्षा करके दोनों योद्धाओं ने घोर संग्राम किया। फिर खड्ग युद्ध करने लगे। पुनः मल्लयुद्ध आरम्भ हुआ। जब जरासन्ध की सन्धि को दबा कर कर्ण ने पीड़ित किया, तब मगधराज जान गया कि कर्ण महाबली है। उसने युद्ध त्याग कर प्रसन्न हो कर्ण की बड़ी प्रशंसा की और मालिनी नगर का स्वामी बनाकर अंग देश दे दिया। तब से कर्ण राजा होकर कुरुराज का मंगलसाधन करता था। यदि परशुरामजी शाप न दिये होते तो कर्ण समस्त संसार को जीत लेने योग्य था। ब्राह्मण का शाप न हुआ होता और यदि इन्द्र कवच न ले लिये होते तो कर्ण से जगत में कौन विजय पा सकता था? उसने क्षात्रधर्म का पालन करके रणस्थल में प्राणत्याग किया जो क्षत्रिय के लिये उत्तम गति है। फिर तुम उसका शोक व्यर्थ किस लिये करते हो?

इस प्रकार युधिष्ठिर से कह कर नारदजी चुप हो गये। धर्मराज शोक से विह्वल हुए कुछ बोल न सके। पुत्र को शोकाकुल देख नेत्रों के आँसू पोंछते हुए कुन्ती उन्हें समझाने लगी—

हे पुत्र! शोक त्याग दो, काल के घर में सब का स्थान है। हमने कर्ण को बहुत समझाया

और सूर्यदेव ने मंगलकारी उपदेश दिया; किन्तु उसने हठ करके नहीं माना। इसलिये होनहार को मुख्य जान कर विषाद दूर करो।

कुन्ती की बात सुन कर कुलदीपक धर्मराज ने कहा—हे माता! तू ने इस वृत्तान्त को मुझ से गुप्त रक्खा, इसी से इतना बड़ा अनर्थ हो गया। फिर क्रुद्ध होकर धर्मराज ने शाप दिया कि स्त्रियों के हृदय में आज से गुप्तमत न छिप सके अर्थात् कोई भी छिपाने योग्य सलाह को वे न छिपा सकें।

इतना कह कर धर्मराज शोक से भाँवर हो गये और अर्जुन की ओर देख कर कोमल वचन बोले—हे पार्थ! मैंने राज्य के लोभ में पड़ कर बड़ा अनर्थ किया। मैं ने राज्य की आशा की, इसी कारण क्षत्रियवंश का नाश हो गया। लड़ाई करके बड़ा खोटा कर्म किया, उसका सारा दोष मुझ पर है। धृतराष्ट्र के पुत्र सब मेरे भाई थे वे मारे गये। नहीं कहते बनता है कि मैं किस गति को पाऊँगा। नातेदार, सगोत्री, हितैषी, बन्धु, पुत्र, नाती, मित्र और राजाओं को जिसके लिये संहार कराया, हाय! उस राज्य को पाकर मैं कौन सा सुख भोगूँगा? जिस प्रकार सूखी हड्डी चबा कर कुत्ता प्रसन्न होता है, वैसे ही यह पृथ्वी और राज्य का सुख है। बिना बन्धुवर्ग की धरती अवलोकन कर यह राज्यसुख मुझे नहीं सुहाता है। दुर्योधन की दुर्बुद्धि से क्षात्रवंश का नाश हो गया। हे भाई! मुझे राज्य प्राप्त करने में आपने बड़ा पराक्रम किया और आप ही के बल से राज्य मिला है, इसलिये आप राज्याधिकार स्वीकार करके नीतिपूर्वक प्रजापालन करें। मैं वन में मुनियों के साथ तपश्चर्या में अनुरक्त रह कर सुख से जीवन व्यतीत करूँगा। मुझे राज्य भोगने की इच्छा नहीं है।

धर्मराज की इस प्रकार वैराग्य और ग्लानि भरी वाणी सुन कर मतिमान अर्जुन बोले—हे धर्मराज! आप नीतिशास्त्र के ज्ञाता और धर्म के रूप हैं। आप व्याकुलता से अज्ञानियों की तरह ऐसी बातें क्यों कह रहे हैं? ब्राह्मणों को वन में रह कर तप करना और क्षत्रियों को प्रजा का पालन करना धर्म है। इसमें पाप की कौन सी बात है? सारा संसार समय प्राप्त होने पर नाश होता ही है। भावी जैसी होती है उसके लिये कोई न कोई कारण आप ही आप उत्पन्न हो जाता है। यह संहार दैववश हुआ है, इसमें आप का कुछ दोष नहीं है।

हे राजन्! आप व्यर्थ ही खेद करते हैं। इस तरह प्रबल शत्रु को मार; जीत पाकर विषाद करना बड़ा ही निन्द्य है। कोई भी भाग्यवान् पुरुष इस प्रकार राज्य पाकर उसका त्याग नहीं कर सकता। आप का इस समय राज्य का त्यागना देख कर लोग क्या कहेंगे? जिसके लिये ऐसा कर्म हुआ उसका त्याग करना कौन सा धर्म है? जो राजा कुटिल और पापी होता है वही भिखारी बनता है और दिनोदिन जिसकी सुबुद्धि बढ़ती है, उस भाग्यशाली नरेश की जगत में नित्य नई कीर्त्ति फैलती है। राजाओं की हितकारी सम्पत्ति और नीति है। दरिद्र सब पापों का मूल है और रौरव नरक का किनारा है। जैसे पापी प्राणी दिन रात चिन्तित रहता है, उसी प्रकार दरिद्र को कभी चैन नहीं मिलता। जो राजा दरिद्र हो जाता है उसकी दशा कहने योग्य नहीं। इसलिये विशाल सम्पत्ति और ऐश्वर्य त्याग कर दरिद्र से प्रेम करना नीतिमानों के लिये अच्छा नहीं है। दरिद्री प्राणी कुछ नहीं कर सकता, उसका लोक और परलोक दोनों भ्रष्ट हो जाता है। बुद्धिमान धनी मनुष्य की दोनों दिशाएँ उज्वल रहती हैं। धनी पुरुष के अर्थ, धर्म और काम सब पूरे होते हैं; किन्तु निर्धनी के काम ग्रीष्मकाल के सरोवर की तरह क्षीण हो जाते हैं। धन ही से धन होता है और धन ही से सुकर्म इस तरह प्रकट होते हैं जैसे पर्वतों से नदियाँ निकलती हैं। धन से राजाओं के सभी उद्योग पूरे होते हैं। जो संसार में धनी है, वही पण्डित, गुणज्ञ, श्रेष्ठ, दाता, शूर और चतुर है उसी के भाई, सेवक तथा

मित्र हैं। जो गैया, हाथी, सेवक, भाई और मित्र से हीन है, वह दुर्बल है। शरीर से दुबला दुर्बल नहीं है; किन्तु धनहीन सब प्रकार से खिन्न है। मुनियों के संग धरती पर सोना, छाल पहनना, कुशासन कमंडलु राजा के लिये योग्य नहीं, अतः मेरी बात मान कर आप राज्य करें।

इस प्रकार अर्जुन की बात सुन कर धर्मज्ञ राजा मन में तथ्यातथ्य का विचार करके बोले—हे अर्जुन! तुम्हारा कहना बहुत यथार्थ है इसमें सन्देह नहीं कि दरिद्र पाप का मूल है। सब काम धन ही द्वारा सपम्न्न होता है। ये गृहस्थ ही को सुख और दुःखदायक होते हैं; किन्तु मृगों के समान वनवासियों को वन ही सुख की खान है। उन्हें धन से कोई काम नहीं और न दरिद्र हो कुछ दुःख दे सकता है। दरिद्र तो उसी को दुःख देता है, जिसे धन की चाह है और गृहस्थ के लिये धन की कामना अनिवार्य है, परन्तु वनवासी तो सदा कन्द, मूल, फल, कुश, छाल से सन्तुष्ट रहते हैं। इसलिये मैं संसार की ममता त्याग कर मुनियों का व्रत ले मृगों के संग और मृगों के समान दृढ़ता से वन में जाकर निवास करूँगा।

राजा की बात सुन कर सुजान भीमसेन नाराज़ होकर कहने लगे—हे राजन्! जैसा आप कहते हैं कोई बुद्धिमान् ऐसा नहीं कह सकता। यदि आप का ऐसा ही विचार था तो पहले ही क्यों नहीं कहा? हम लोग हथियार न उठाते और यह उत्पात न होता। मोक्ष के लिये भीख ही माँगते फिरते। यदि आप यह समझते थे कि राजाओं के लिये विजयलाभ करना अनिष्ट है तो कपटी, अभिमानी, प्रबलशत्रु धृतराष्ट्र के पुत्रों का संहार करने से आप को कौन सा फल मिला? जिससे धर्म विचार कर आप राज्य का त्याग करना चाहते हैं। जिस प्रकार प्यासा सरोवर के पास जाकर जलपान न करे, वृक्ष पर चढ़ कर मधु पा कर जो भय से उसका स्वाद न ले सके, जैसे कोई सैकड़ों कोस चल कर किसी नगर के समीप जाकर उसमें प्रवेश न करके लौट पड़े, भूखा भोजन तैयार करके न भोजन करे और जैसे तरुणी पति को एकान्त में पा रूठ कर चली जावे, राज्य त्यागने से आप की वही दशा हो रही है। हमारे लिये पराजय अच्छी थी, विजय पाने से कौन सा कार्य हुआ? ऐसा विजययश पाकर आप अयश लेना चाहते हैं। जो बाज़ पक्षी मांस त्याग देता है उसको लोग कबूतर कहते हैं। सर्वस्व हार कर तेरह वर्ष वनवास करके भीषण युद्ध किया तब राज्य मिला, फिर उसे त्याग कर वनवासी होना बड़ा अनर्थ है। राजा सगर, नहुष, ययाति आदि ने संग्राम करके राज्य किया उन्हों ने नरक पाया? भैंसा, कोल, शूकर, हाथी, मृग वन में रह कर नरकगामी होते हैं और गाँव में रहनेवाले प्राणी मोक्ष पाते हैं। संसारी मनुष्यों से विरक्त होकर वृक्षों ने मोक्ष पाया हो, यह बात आज तक मेरे सुनने में नहीं आई है।

हे धर्मराज! सुनिये, गृहत्याग में बड़ी सिद्धि नहीं बसती। सिद्धि सुकर्म और पुण्य में बसती है, धन पुण्य का पोषक है। जीव कर्म के अनुसार ही गति पाते हैं, इसलिये कर्म करना पुरुष का कर्त्तव्य है।

भीमसेन की बात सुन कर मतिमान अर्जुन धर्मराज से कहने लगे—हे राजन्! एक पुरानी कथा सुनिये। कोई गृहस्थ ब्राह्मण घर त्याग कर वन में बसने चला। उसकी भलाई के लिये इन्द्र ने पक्षी का शरीर धारण किया और उसके त्याग की निन्दा करते हुए बोले—

हे ब्राह्मण! वह श्रेष्ठ गृहस्थ धन्य है जो किसी का उच्छिष्ट भोजन नहीं करता।

उस पक्षी की वाणी सुन कर उस ज्ञानी विप्र ने कहा—हे खग! अपने वचन का अर्थ कहिये। श्रेष्ट गृहस्थ कौन है और उच्छिष्ट भोजन क्या है?

पक्षी बोला—हे विप्रवर! सुनिये, चतुष्पदों में गौ श्रेष्ठ है। द्रव्यों में सुवर्ण, मन्त्रों में राम नाम और द्विपदों में ब्राह्मण श्रेष्ठ है। विप्र के लिये वैदिक धर्म प्रधान है। प्रत्येक ऋतु और महीने में यज्ञ करे और करावे; क्योंकि यज्ञ स्वर्ग का उत्तम मार्ग है तथा वैदिक कर्म सर्व श्रेष्ठ है। गृहस्थाश्रम अनुपम है, वह परमसिद्धि का क्षेत्र स्वरूप है जिसमें देवता और पितरों की पूजा, अतिथि सत्कार और सब कर्म करने का अधिकार है। उसके आश्रित अन्य तीनों आश्रमी और सारा संसार है। जो सविध पवित्रता से अन्नपाक बना कर देवता पितरों को अर्पण करके फिर आदर से अतिथि को भोजन कराकर तब सपरिवार भोजन करता है, वही श्रेष्ठ गृहस्थ है और वही सुन्दर स्वर्ग का सुख भोग करता है।

जो घर छोड़ कर वन में जाता है और कुटुम्ब का त्याग करके सन्यास धारण करता है, देवता और पितरों को निराश करता है, धूल शरीर में लपेट कर क्षुधा से क्षीण हो जङ्गल में भटकता है, पक्षी, मृग और कृमियों के जूठे फल, मूल, पत्तों को खाता है, वह उच्छिष्ट भोजी है अपने पूर्व कर्म के अनुसार उपद्रव सहता है और इस दुःख को सहन करके कल्याण की इच्छा रखता है। वनवास का कठिन नियम पालन हो सके तो कल्याण मिलता है; किन्तु उसका निर्विघ्न पालन होना बड़ा ही दुस्तर है।

हे धर्मराज! पक्षी रूपी इन्द्र की बात सुन कर वह ब्राह्मण घर लौट आया और नित्य सुखदायक कर्म करने लगा। उसी प्रकार आप मोह को त्याग कर धीरज धारण करें। आप धर्मज्ञ और न्यायमूर्त्ति हैं, पृथ्वी और प्रजा का पालन करते हुए कल्याण का साधन कीजिये जिससे आप की निर्मल कीर्त्ति बढ़ेगी और परलोक में सुख होगा।

गम्भीर अर्थ से भरी अर्जुन की बात को सुन कर मतिधीर नकुल बोले—हे प्रिय धर्मनरेश! मेरी सुहावनी बात सुनिये। वैदिक कर्म मनवांछित फल देनेवाला है। सत्कर्म से देवता प्रसन्न होते हैं और बिना कर्म के कुछ हो नहीं सकता। गृहस्थ के लिये कर्म ही उत्तम कहा गया है। सुन्दर कर्म करके मनुष्य देवलोक पाते हैं, घर का त्याग देना त्याग नहीं कहाता। वास्तव में ममता त्याग करना त्याग है। जो हठ से व्रत कर शरीर त्यागते हैं, उसको विद्वान् लोग तामसी त्याग कहते हैं। घर छोड़ कर फल मूल खाकर जो रहते हैं वे भिक्षुक त्यागी हैं। जो घर में रह कर वेदोक्त कर्म करते हुए सदा अपने धर्म को विचारते रहते हैं। वृद्ध मतिमानों द्वारा प्रतिपादित जिनको समीचीन मार्ग अच्छा लगता है। जो सुख दुःख में चंचल नहीं होते और किसी का अपकार नहीं करते वे आनन्दवर्द्धक त्यागी हैं। जो सम, दम, नियम, धैर्य और सत्य बढ़ाते हुए पवित्र रह कर बालकों को सत्कर्म की शिक्षा देते हैं। देवता, पितर और अतिथियों की पूजा करते हैं, वेद पुराणों की चर्चा करके सदुपदेश से लोगों को सुख देते हैं। पालनेयोग्य धर्म का पालन करते हैं और फलाशा त्याग कर कर्म में तत्पर रहते हैं। वे त्यागी बनवास नहीं कर विधानपूर्वक सन्तानोत्पत्ति करते हैं।

जो धनी गृहस्थ लोभ वश यज्ञ नहीं करता और न दान ही करता है, वह गृही महामूर्ख और पापात्मा है। इससे आप प्रजापालन करते हुए यज्ञानुष्ठान कीजिये। जो राजा प्रजापालन नहीं करता और न विधिवत दान देता है तथा सुन्दर राज्यसुख का उपभोग नहीं करता, वह नादान है। शरणागतों की रक्षा नहीं करता और शत्रुओं को दंड नहीं देता, वह राजा शरदकाल के मेघ के समान शीघ्र नष्ट हो जाता है। आपने क्षात्रधर्म से अपने कपटी भाई को मार कर धरती लिया है इसलिये नीति विचार कर शोक त्याग दीजिये और राज्य का सुख भोगिये।

नकुल की बात सुन कर प्रसन्न मन से सहदेव मंगलमयी बात कहने लगे—हे धर्मराज!

सुनिये, धरती त्यागी नहीं जा सकती और बनप्रेमी होने से ही सिद्धि नहीं प्राप्त होती। सिद्धि तो राग, द्वेष, ममता, मद त्याग कर श्रेष्ठ गृहधर्म में अनुरक्त होने से होती है। प्राणियों की मृत्यु ध्रुव है, नाश रहित एक ब्रह्म है। ब्रह्मज्ञानी को कर्म की बाधा इस कारण नहीं होती कि वे अपने को कर्त्ता नहीं समझते, ईश्वर को व्यवस्था करनेवाला मानते हैं। जो सृष्टि समाज को ब्रह्ममय देखता है, वह सर्वत्र सुखी रहता है। वेदोक्त पथ पर चलनेवाला कभी दुखी नहीं होता। इसलिये अयुक्त वैराग्य त्याग कर आप राज्य का आनन्द उपभोग कीजिये। जो राजा पृथ्वी को पाकर भोग नहीं करता उसका जन्म निष्फल होता है। धरती पाकर त्यागना बड़ी भद्दी नीति है, ऐसी बुद्धि त्याग कर राज्य भोगिये।

सहदेव की बात सुन कर रानी द्रौपदी बोली—हे नाथ! आप की बात को आप के सब भाई दूषित कहते हैं और आप की दशा देख कर दुखी हो रहे हैं। पृथ्वी के भोग की इच्छा से नहीं, किन्तु इन लोगों के प्रसन्नतार्थ आप को वह करना चाहिये जैसा ये कहते हैं। धर्म के लिये आपने पराक्रम भुला कर ब्राह्मण के समान हो बन का दुःख सहन किया। हे स्वामिन्! द्वैतवन में भाइयों को दुखी देख उद्विग्न होकर आपने क्यों कहा कि बन्धुगण के सहित दुर्योधन का नाश करके राज्य भोग करूँगा और धन संग्रह करके ब्राह्मणों को दान देकर यज्ञ करूँगा। अपने मुँह से ऐसा कह कर अब आप इतनी ग्लानि काहे को करते हैं?

हे राजन्! क्षात्रधर्म विचार कर नीतिपूर्वक राज्य कीजिये। वीर ही शत्रु का संहार करते हैं, वीर ही राज्य सुख भोगते हैं और वीर ही दान यज्ञ करते हैं। दुर्योधन कर्ण आदि के उत्पात कर्म को समझ कर और प्रख्यात क्षात्रधर्म अनुमान कर वैराग्य त्याग दीजिये। पहले जुआ खेल कर हारने पर आपने सब को बनवासी बनाया, फिर युद्ध करके क्षात्रवंश का नाश करवाया, और अब बन जाने को कहते हो।

प्रभो! यह कौन सा श्रेष्ठधर्म है? आप सर्वज्ञ और सुन्दर मतिवाले हैं। विचारिये तो सही, इस समय का त्याग सत्कर्म है? यदि आप के बन्धु भ्रातृसेवी न होते तो आप को कैदखाने में बन्द करके राज्य का प्रबन्ध करते। आप राज्य त्याग कर आपदा का आह्वान क्यों कर रहे हैं? जैसे अम्बरीष और नहुष ने धर्म से राज्य किया था वैसा ही कीजिये।

द्रौपदी की बात सुन कर विजयी अर्जुन ने कहा—हे महीपाल! मैं राज्यपद स्वीकार न करूँगा। साम, दाम, भेद और दण्ड राजाओं के ये चार उपाय हैं। पहले तीन का प्रयोग किया गया; किन्तु उस दुष्ट ने हठ से जब नहीं माना तब दण्डविधान से अपनी भूमि लौटाई गई, इसमें दोष का कौन सा विचार है? प्रबल राजा के लिये दुष्ट के हेतु दण्ड ही उत्तम उपाय है और दण्ड से सब काम पूरा पड़ता है। जो नरेश दण्ड देने में असमर्थ होता है उसका राज्य नहीं रह जाता। अर्थ, धर्म, काम और प्रजापालन दण्ड ही से होता है। धन, धान्य, गृह, नगर और देश की रक्षा दण्ड से होती है। मनुष्य, घोड़ा, हाथी आदि पशु सब दण्ड से ही वश में होते हैं। दंड से कौआ गिद्ध, चील्ह, सर्प, बिड़ालादि दुष्ट जीव उपद्रव नहीं करते। दण्ड ही के भय से गुप्त रहते हैं सहसा प्रगट नहीं होते। ब्राह्मण को वाक्‌दण्ड, क्षत्रिय को बाहुदंड वैश्यको अर्थदंड और शूद्र को सेवादंड देने योग्य है। दंड के भय से आश्रम वर्ण की मर्यादा रहती है। दंड के भय से मतवाले मनुष्य पागलपन प्रकाश नहीं करते। दंड के भय से पशु बोझा ढोते हैं और बालक विद्याध्ययन करते हैं। बिना दंड भय के उद्धत स्त्रियाँ उत्पात करती हैं, प्रजावर्ग पूर्वपथ त्याग कर देता है। नीति युक्त दण्ड देनेवाला राजा सदा वृद्धि को प्राप्त होता है। वृत्रासुर को मार कर इन्द्र प्रशंसित

हुए थे उसी प्रकार प्रबल शत्रुओं को पराजित करने से राजा प्रसिद्ध होता है। आततायियों को दण्ड देकर पैतृकभूमि ली गई है, वन में घूमने का विचार त्याग कर सुख-पूर्वक राज्य का सुख भोगिये।

अर्जुन की बात सुन कर आँखें लाल किये हुए वीर भीमसेन बोले—हे राजन्! मैं कुछ कहना नहीं चाहता हूँ, परन्तु बिना कहे भी नहीं रहा जाता है। इसलिये उचित और नीति की बात कहता हूँ, सुनिये। व्याधि दो प्रकार की होती है, दैहिक और मानसिक। गरमी, सरदी और वायु के प्रकोप से होनेवाली दैहिक व्याधि है। सत्य, रज, तम से उत्पन्न होनेवाले उपद्रव मानसिक व्याधि हैं। दुःख हर्ष को दूर करनेवाला है उसी प्रकार हर्ष दुःख को दूर करता है। आप न सुख में सुखी होते हैं, न दुःख में दुखी। दैवगति और उनके पूर्वकृत अपकर्मों को आप क्यों भूल रहे हैं? वन का दुःख विस्मरण करके अब विजय पाने पर पछता रहे हैं। भाग्य के बल से आपने वसुन्धरा को पाया है इसलिये उसका भोग कीजिये और विविध प्रकार के यज्ञ करके तथा दान देकर लोगों को प्रसन्न करना चाहिये।

भीमादिकों की बात सुन कर द्वैपायन जी बोले—हे धर्मराज। आपके बन्धुगण उचित और पवित्र वचन कहते हैं। घर छोड़ कर वनवास करना तुम्हें उचित नहीं है। देवता, पितर, अतिथि, सेवक, भिक्षुक, पशु और समस्त जीवजन्तु पर्यन्त धनी गृहस्थ से सन्तुष्ट होते हैं। यह तुम्हारे पिता पितामह का राज्य है। तुम कुल के दीपक हो। सम, दम, संयम और क्षमा सहित उनका भोग करते हुए सुन्दर यज्ञ और दान करो। राजा को द्रव्य सञ्चय करने में चतुर होना चाहिये और पात्र विचार कर उदारता पूर्वक उसका व्यय करना चाहिये। दंडविधान में कुशल होना उत्तम राजनीति है। जिस प्रकार सुद्युम्न राजाने दंडविधान में निपुणता प्राप्त कर राज्य विस्तार किया था, उसी तरह तुम्हें भी प्रवीणता प्रकट करनी चाहिये। इसलिये खेद छोड़ अपना धर्म विचार कर सुखपूर्वक राज्य करो।

भीम आदि तुम्हारे भाइयों ने वन में रह कर जो मनोरथ किया, वह सिद्ध हुआ। महा दुःख का अन्त समझ कर उन्हें सुख भोगने दीजिये। सुन्दर धर्म पालन करते हुए यज्ञ कीजिये और परम पद का लाभ लीजिये। विचार पूर्वक धर्म और लोक की रक्षा करते हुए शास्त्रों के श्रवण से मन को प्रसन्न कीजिये। साधु, पंडित, कवि, गुणी, शूर, धनी, चतुर और बुद्धिमानों का आदर सत्कार करना कर्त्तव्य है। जो राजा राजमद से इनका निरादर करके विषयों में लीन होता है उसके राज्य को चोर डाकू और शत्रु छिन्न कर देते हैं। जो धरती को सहज में बिना युद्ध के पराये हाथ में न जाने दे, उस राजा की कीर्त्ति बढ़ती है और स्वर्ग प्राप्त होता है तथा उसकी नीति और धर्म प्रशंसनीय है।

व्यासजी के वचन सुन कर धर्मराज ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ! विकराल वंश विनाश सोच कर मेरे हृदय से ग्लानि नहीं दूर होती है। सब स्त्रियों का विलाप सुन कर धीरज नहीं धरते बनता। हे प्रभो! इसी से मुझे राज्य नहीं सुहाता है बरन अत्यन्त दुःखदायी प्रतीत होता है।

धर्मराज की बात सुन कर व्यासदेव ने कहा—हे धर्मराज! कोई प्राणी बिना काल के नहीं मरता। जैसा ब्रह्मा ने लिखा है समय पाकर सब उसी के अनुसार नष्ट होते हैं। बिना मृत्यु के कोई किसी के मारने से मर नहीं सकता। उत्पत्ति, वृद्धि और नाश यह सृष्टि का क्रम आप ही आप होता रहता है। समय पाकर धनी निर्धनी होता है, तुच्छ गुणवान, कृष्ण और शुक्ल पक्ष होता है। वृक्षों में अंकुर, पत्ते, फूल, फल लगते और गिर जाते हैं। उत्पत्ति, पालन और प्रलय सब समय पाकर स्वयम् होता है। सम्पत्ति प्राप्त होने पर शुभ कर्म करना चाहिये। आपदा में चिन्तित न होना चाहिये और सुख प्राप्ति में धीरज धर कर सौम्यता से व्यवहार करना चाहिये। तृष्णायुक्त प्राणी अत्यन्त दुःख

पाता है। सुख के अन्त में दुःख को नहीं मानता, जो प्राप्त होता है उसे कर्मजन्य समझता है, वही सुखी रहता है।

हे राजन्! सुनिये, सम्पूर्ण जीव नाशमान् हैं और उनके नाश का कारण उत्पन्न होना निमित्तमात्र समझना चाहिये।

इस प्रकार व्यासजी के वचनों को सुन कर और मन में विचार कर युधिष्ठिर ने अर्जुन से प्रिय वाणी से कहा—

हे अर्जुन! यज्ञ करना उत्तम और अत्यन्त कल्याणकारी है। विधिवत प्रजापालन और यज्ञ करने से राजा को स्वर्ग होता है। जीव काल प्राप्त होने पर देह त्याग कर संसार में आते जाते रहते हैं, तुम्हारा यह कहना सत्य है परन्तु मेरी बात सुनिये। अभिमन्यु का मरण समझ कर मुझ से धीरज नहीं धरा जाता। द्रौपदी के पुत्र, राजा विराट, धृष्टद्युम्न, द्रुपद और धृष्टकेतु आदि वीरों की मृत्यु विचार कर मन से क्षोभ नहीं मिटता है। जिन्होंने मुझे गोदी में लेकर लालन किया था और सुन्दर धर्म की शिक्षा दी थी। जो परशुराम के समान रणकुशल और श्रेष्ठ व्रतधारी थे। जिनके सद्गुणों का वर्णन नहीं हो सकता, राज्य के लोभ से हमने उन पितामह का बध करवाया?

जो सब के पूजनीय, योग्य, ब्राह्मण, धनुर्विद्या के आचार्य, योगी, गुरु और गिनती के वीर थे। पाण्डवों के आदरणीय योद्धा द्रोण ने पुत्रबध सुन कर सचाई के लिये मुझ से पूछा, किन्तु राज्य के लोभ से झूठ बोल कर हमने उनका बध कराया।

मैं ने ही हठ से अभिमन्यु को पुकार कर व्यूह भेदन के लिये भेजा, उसने मतवाले हाथी के समान सिंह की गुफा में पैठ कर बेहद पराक्रम किया। विजय की इच्छा से हमारे ही सहोदर बन्धु धनुर्धर कर्ण ने उसका बध करवा दिया।

हे आर्य! राज्य के लोभ से हमने असंख्यों दुष्कर कार्य किये। इसलिये मैं शरीर त्याग दूँगा, अब किसके लिये मन को शोकाग्नि में जलाऊँगा।

राजा युधिष्ठिर की बात सुन कर व्यासमुनि ने उनका हाथ पकड़ कर कहा—हे राजन्! ऐसा न कहिये। सब काल के वश मारे गये हैं, तुमने एक को भी नहीं मरवाया है। आप अपने को कर्त्ता मानते हैं, यह अज्ञानियों का मत है। प्राणी मात्र का संयोग और वियोग अटल है, जिस प्रकार पानी में बुल्ला प्रगट होकर नष्ट हो जाता है, जीव की भी यही दशा है। सुख, दुःख, हर्ष और शोक एक समान सदा नहीं रहते। पूर्व कर्मानुसार ये होते हैं और पूर्व कर्म ही भावी है। राजा जनक और अश्म मुनि का सम्बाद सुना कर व्यासजी ने कहा—

हे राजन्! तुम मोह त्याग दो और क्षात्रधर्म को हितकारी जान कर पैतृक राज्य का उपभोग करो, यही उचित है।

व्यासजी की बात सुन कर राजा चुप होगये। तब अर्जुन ने श्रीकृष्णचन्द्र से कहा—

हे केशव! राजा जातिनाश के शोकरूपी सागर में डूब रहे हैं, अपने वचन रूपी हाथ से पकड़ आप उन्हें बाहर निकाल कर बचाइये।

अर्जुन की प्रार्थना सुन कर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र कहने लगे—हे धर्मराज! आप लोकरीति और नीति के विरुद्ध क्यों बेचैन हो रहे हैं? सब सुभट क्षात्रधर्म विचार कर संग्राम में मरे हैं, अब वे शोक करने से नहीं मिल सकते। उनका वियोग अवश्यम्भावी मान कर धीरज धरिये और आततायी दुष्टों का बध करना राजा का धर्म है। इसलिये नीति पूर्वक प्रजापालन और वैदिक कर्मों को

कीजिये। आपने जो कुछ किया है वह अपना धर्म पालन किया है, फिर अब व्यर्थ शोक मन में क्यों लाते हो? राजपद से रुचि कीजिये और खेद को त्याग दीजिये।

श्रीकृष्णचन्द्र की बात सुन कर धर्मराज ने कहा—हे प्रभो! मुझे धर्म की शंका नहीं है, शंका इस बात की है कि राज्य के कारण मैं ने अवध्य का वध किया। इस शोक से हृदय जलता है और धीरज नहीं धरते बनता।

धर्मराज की बात सुन कर व्यासजी बोले—हे राजन्! सुनिये। कर्त्ता ईश्वर है वही जीव को कर्मानुसार फलाफल देता है। ईश्वर नियामक है और प्राणी उसके बश होकर कर्म करता है, जैसे पुरुष के आधीन होकर टाँगा वृक्ष को काटता है। यदि यह कहो कि नियामक दूसरा नहीं है पुरुष ही कर्त्ता है तो भी राजनीति के अनुसार तुम्हें शंका न करनी चाहिये; क्योंकि दुष्कर्मी को दंड देने से राजा को पाप नहीं लगता। सदा दंडवृत्ति स्थापन करना राजा को उचित ही है। मनुष्य शुभाशुभ कर्मों का फल पाता है। स्वधर्म पालन करके तुम शरीर क्यों त्यागना चाहते हो? प्रसन्नता पूर्वक राज्यसुख स्वीकार करो। जिसकी मृत्यु ब्रह्मा ने जिस प्रकार से लिखी है उसकी उस तरह होती है। जीवों का आवागमन संसार में कर्म के अनुसार होता है। जाति बन्धुओं की मृत्यु का दोष तुम्हें कदापि नहीं है; क्योंकि वे विजयलक्ष्मी और यशप्राप्ति के लिये शूरत्व प्रकाश करके मरे हैं। तुमने सुना होगा कि देवता और दैत्य एक ही पिता के पुत्र हैं। दोनों में ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये बड़ा भयंकर युद्ध हुआ, अन्त में असुरों का संहार कर देवताओं ने विजय पाई जिससे वे यशस्वी और लोकनायक हुए। जो दुष्टों का बध करता है उसको पुण्य होता है; किन्तु जो उनका पालन करता है उसे पाप होता है। न तो अपनी इच्छा से तुमने युद्ध ही किया और न मन में क्रोध ले आये, यह युद्ध तथा वीरों का नाश दुर्योधन के दोष से हुआ। तुम शोक तज कर राज्य करो, इसमें कुछ भी कलंक की बात नहीं है। यदि पाप की शंका करते हो तो अश्वमेध यज्ञ करो। असुरों को मार कर इन्द्र ने क्रम से सौ यज्ञ किया इससे वे शतक्रतु प्रसिद्ध हुए और तेज बढ़ाकर अमरावती में राज्य भोग करते हैं। उसी प्रकार तुम पृथ्वी के स्वामी बन कर समाज के सहित विलास करो और आधीन राजाओं के पुत्र पौत्रों को उनका राज्य दे दो जिनके पुत्र न हों उनकी कन्या अथवा पत्नी को राज्यशासन प्रदान कर दो। इस प्रकार सब को सुखी कर यज्ञ करो और राज्य का आनन्द लाभ करो।

व्यासजी की बात सुन कर धर्मराज स्थिर होकर बोले—हे मुनिराज! किस कर्म के करने से पाप होता है। और किस कर्म से वह पाप छूटता है?

व्यासजी धर्मराज का प्रश्न सुनकर प्रसन्न हो समाधान करने लगे—हे राजन्! सुनिये, सूर्य के उदय और अस्त के समय में सोना, छल से अनुचित मिथ्या कर्म करना, बड़ी कन्या का छोटे वर के साथ विवाह करना वा कराना पाप है। जो व्रत को त्याग देता है, मांस बेचता है और अपात्र को दान देता है वह पापी है। जो आग लगाता है- गुरु ब्राह्मण का घात करता है और वृद्ध पशु को मारता अथवा मरवा डालता है वह पापात्मा है। जो कन्याविक्रय करता है और विश्वास देकर धोखा देता है वह महापातकी है। जो लोक और वेद के विरुद्ध कार्य करता है, अपना धर्म त्याग कर दूसरे का धर्म ग्रहण करता है, शरणागत का त्याग करता है, अभक्ष्य भक्षण करता है, सेवक और आश्रितों का पालन नहीं करता वह कलुषी प्राणी है। जो जल बेचता है, पशु पक्षियों का वध करता है, पिता से विवाद करता है और रजस्वला स्त्री के साथ सहवास करता है, ये सब अधर्म के कार्य हैं। प्रायश्चित्त करने से ही मनुष्य इन पापों से छूटते हैं।

शरणागत की प्राणरक्षा, कन्या के विवाहार्थ, अपना सर्वस्व जाते हुए और गुरु ब्राह्मण के कल्याण के हित झूठ बोलने में पाप नहीं होता। स्वप्न में परस्त्री का संग होने से अधर्म नहीं लगता है। आपदा में गुरु का धन यदि चुरा ले और सुसमय प्राप्त होने पर प्रीति पूर्वक अधिक संख्या में उसे लौटा दे तो शास्त्रों के मत से वह प्राणी दोष से मुक्त कहा जाता है। दान प्रत्येक पातकों का शमन करनेवाला है।

हे राजन्! अब पापों का प्रायश्चित्त वर्णन करता हूँ उसको सुनिये। ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर क्रोध रहित हो विविध स्थानों में भ्रमते हुए भिक्षा माँग कर एक बार भोजन करके बारह वर्ष पर्यन्त निरन्तर राम नाम का जाप करे तो प्राणी ब्रह्महत्या के पाप से छूट जाता है। अथवा छे वर्ष कृच्छ्रायन व्रत (जिसमें पंचगव्य पान कर प्रति दूसरे दिन उपवास करना होता है) करके वा सर्वस्व ब्राह्मणों को दान कर राम नाम का स्मरण करते हुए तीर्थों में परिभ्रमण करने से ब्रह्मघ्न निष्पाप होता है। गो ब्राह्मण की रक्षा के लिये लड़ कर प्राण त्यागनेवाला ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त हो जाता है। जो मनुष्य एक लाख गौवा का दान सुपात्रों में करता है अथवा पचीस हज़ार सवत्सा कपिला गऊ का दान करता है वह ब्रह्महत्या के दोष से छूट जाता है। सौ घोड़े सजा कर जो ब्राह्मणों को दान देता है वह अन्य पापों से मुक्त होता है। जो इच्छानुसार याचकों को देता है वह सब पापों से मुक्त हो जाता है। जो द्विजाति मद्यपान करते हैं वे या तो जन्म भर मरु भूमि में निवास करें अथवा अग्नि में प्रवेश करके जल मरें तो पाप से छूट सकते हैं। जो धोखे से मदिरा पान कर लेता है वह शास्त्र के मत से संस्कार करके शुद्ध हो जाता है। गुरु की सेज पर गुरुपत्नी के साथ सोनेवाला तप्त लोह को अंक में मिला कर प्राण त्याग से शुद्ध होता है। परस्त्रीगामी एक वर्ष पर्यन्त नियम पूर्वक कृच्छ्रायन व्रत करने से शुद्ध होता है। जो पशुपक्षियों का वध करता है वह तीन दिन निर्जल व्रत करने से शुद्ध होता है। इसी प्रकार प्रत्येक पापों के प्रतीकार के लिये भिन्न भिन्न प्रायश्चित्तों की विधि शास्त्रों में कही गई है, परन्तु यह आस्तिकों के लिये है नास्तिकों के लिये नहीं।

हे राजन्! कलियुग में केवल राम नाम का निरन्तर जाप करने से सारे पाप छूट जाते हैं। सुकर्म करना उचित है और कुत्सित कर्मों का त्याग श्रेयस्कर है। परोपकार करना और अहिंसाव्रत पालन के समान पुण्य नहीं तथा दूसरे का अपकार करना और हिंसा के समान कोई पाप नहीं है।

मुनिश्रेष्ठ व्यासदेव के अनुपम वचन सुन कर युधिष्ठिर ने कहा—हे महात्मन्! भक्ष्य पदार्थ कौन कौन है और अभक्ष्य कौन है तथा सुपात्र कुपात्र का लक्षण क्या है? कृपा पूर्वक मुझे समझा कर कहिये।

युधिष्ठिर की बात सुन कर व्यासजी कहने लगे—हे पुत्र! सुनो, ऊँटनी, भेड़ी, मृगी, घोड़ी और खरी का दूध अभक्ष्य है। प्रेत अन्न और सूतिकान्न तथा विना पुत्र पतिवाली स्त्री का अन्न अभक्ष्य है। वेश्या, शूद्र-अन्त्यज, सोनार और पुंश्चली स्त्री का अन्न अखाद्य है।

भय उत्पन्न करनेवाला, अयशी, नृत्य, गान और भँड़ई करनेवाला, जिसका अंगभंग हो, वर्णसंकर, कपटी, व्रतहीन, चाकर तथा वैद्यब्राह्मण दान के लिये अपात्र कहे गये हैं। विद्वान् श्रोत्रिय क्रियायुक्त ब्राह्मण दान देने योग्य सुपात्र हैं। जैसे गीली लकड़ी पाकर अग्नि वृद्धि नहीं करती उसी प्रकार कुपात्र को दिया हुआ दान निष्फल जाता है। भूखा प्राणी दान का पात्र है और पेट भरा हुआ अपात्र है। भूखे को अन्न दान देना श्रेष्ठ है। तुम प्रजा पालन करते हुए शोक त्याग कर धर्म पूर्वक राज्य करो, इसमें ग्लानि की कोई बात नहीं है।

व्यासजी की बात सुन कर भगवान कृष्णचन्द्र बोले—हे राजन् ! जो व्यासजी कहते हैं शोक और मोह त्याग कर उनकी आज्ञा पालन करने में आप का सब तरह कल्याण है। नगर में प्रवेश करके ग्रामदेव, कुलदेव और ब्राह्मणों की पूजा कीजिये उन्हें दान मान से सन्तुष्ट कर बिधिवत राज्य करिये, फिर भीष्मपितामह के पास चल कर उनका सदुपदेश ग्रहण कीजिये।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की बात सुन कर धर्मराज का भ्रम दूर हो गया, वे उठे और केशव को प्रणाम किया। सुन्दर रथ पर श्रीकृष्णचन्द्र तथा धृतराष्ट्र को बैठा कर और माताओं, कुटुम्ब की सब स्त्रियों को सुन्दर पालकी पर सवार कराकर आप भी रथ पर सवार हुए। भीमसेन सारथी बन कर बैठे, अर्जुन छत्र लिये, सहदेव चँवर, नकुल व्यजन हाथ में लिये शोभित हो रहे थे। सात्यकि, युयुत्सु आदि सावन्त रथ, हाथी और घोड़ों पर सवार हो प्रसन्नता से नगर की ओर चले। वन्दीजन स्तुतिपाठ करते जाते थे, ब्राह्मण स्वस्त्ययन पढ़ते थे और शंख, दुन्दुभी आदि तरह तरह के बाजे बजते थे। गान्धारी और धृतराष्ट्र को आगे किये हुए इस प्रकार आनन्द पूर्वक राजा युधिष्टिर ने हस्तिनापुर में प्रवेश किया। राजा को पुर में प्रवेश करते देख नगरवासी स्त्री-पुरुष सुन्दर मंगल कलश सजवाये और स्त्रियाँ थारों में मंगलद्रव्य लिये वृन्द की वृन्द मंगल गान करने लगीं। ब्राह्मणों को दान देते, भिक्षुकों को मुक्ता रत्न लुटाते, इन्द्र के समान सुशोभित धर्मराज आशीर्वाद सुनते हुए सुख पूर्वक राजद्वार पर पहुँच गये।

राजमहल में प्रवेश कर कुल देवों का पूजन किया, फिर प्रसन्न हो बाहर आये। धौम्य आदि ब्राह्मणों की विधिवत पूजा करके प्रणाम किया और वस्त्र, आभूषण, सुवर्ण, मणि, गैया आदि विविध पदार्थों का दान सत्पात्रों को दिया। जय जयकार और शुभाशीर्वाद की ध्वनि से आकाश गूँज उठा।

राजा दुर्योधन का मित्र चारवाक नामक राक्षस था, वह छल से सन्यासी का रूप बना कर ब्राह्मणों और ऋषियों के वृन्द में आ मिला और युधिष्ठिर से कर्कश वाणी में कहने लगा—

हे धर्मराज ! तुम कुलनाशक हो, जाति का विध्वंस करके मूर्खतावश धरती का राज्य भोगना चाहते हो इसका परिणाम बड़ा भयंकर होगा। तुम्हें धिक्कार है।

सन्यासी की बात सुन कर धर्मराज को बड़ी शंका हुई, उन्हों ने सोचा कि आजतक मुझे किसी ने धिक् नहीं कहा, पर इस अतीत ने ऐसा क्यों कहा ?

धर्मराज मन में सोचते ही थे कि धौम्य आदि ब्राह्मणों ने अपने तपोबल से जान लिया कि यह राक्षस है। राजा के कल्याणार्थ हुंकार करके उसे भस्म कर दिया।

सन्यासी की हत्या मंगल के समय होना महान् अनिष्ट समझ कर धर्मराज को बड़ा खेद हुआ, तब भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बोले—

हे धर्मराज ! आप मन में खेद न करें। यह चारवाक नामक दुष्ट राक्षस दुर्योधन का मित्र है। सन्यासी का रूप छल से बना कर आप के राज्यपद में विघ्न उपस्थित करने आया था। इस दुष्ट पापात्मा ने मित्र बध का बैर मन में रख कर कपट से तुम्हें ठगना चाहा, इसी से हितेच्छुक ब्राह्मणों ने उसे भस्म कर दिया। न तो इसके कहने पर ध्यान दो और न मरने का कुछ दोष मानो। यही एक कुटिल दुर्योधन का मित्र बचा था, यह इस प्रकार स्वयम् आकर मरा। निस्सन्देह आप बड़े ही भाग्यवान हैं, अब दिव्य राजसिंहासन पर विराजमान होकर नीति और धर्म पूर्वक प्रजाओं का पालन कीजिये।

तब केशव की आज्ञा पाकर धौम्य आदि महर्षि अभिषेक की तैयारी करने लगे। वेदी रचकर

व्याघ्रचर्म बिछवाया, उस पर मंगल ध्वनि श्रवण करते हुए द्रौपदी के सहित राजा युधिष्ठिर बैठ गये। विधिवत हवन करके धर्मराज का अभिषेक किया। स्वस्त्यन, मंगल गान और शंख, दुन्दुभी आदि बाजों की ध्वनि दिशाओं में भर गई। ब्राह्मणों का पूजन करके धर्मराज ने उन्हें हाथी, घोड़े, रथ, सुवर्ण, गैया, वस्त्राभूषण आदि तरह तरह के दान देकर प्रसन्न किया और ब्राह्मणों की आज्ञा पाकर सिंहासन पर बैठे, वे इन्द्र के समान शोभित होने लगे। सूत, मागध, बन्दीजन गुणगान करते हुए वंश की बड़ाई वर्णन करने लगे।

फिर धर्मराज ने बन्धुओं, सभासदों, सेवकों और पुरजनों से कहा कि महाराजाधिराज धृतराष्ट्र हमारे परम गुरु हैं। मैंने उनकी सेवा करने के लिये ही प्राण रक्खा है और यह हमारा कर्त्तव्य है। आप लोग सदा हमारे इस सिद्धान्त की ओर ध्यान रख कर वृद्ध राजा का सन्मान करें जिससे मुझे परम संतोष होगा।

भीमसेन को धर्मराज ने युवराज बनाया, नकुल को सेनानायक और नगर की रक्षा का भार, सहदेव को आत्मरक्षक और अर्जुन को शत्रु विमर्दन का कार्य सौंपा। धौम्य को पुरोहिती का पद दिया, विदुर और संजय को मन्त्री बनाया। इस प्रकार प्रबन्ध की घोषणा करके सभाविसर्जन हुई और सब लोग अपने अपने मन्दिर में गये।

धर्मराज ने धौम्य मुनि को बुला कर राजा विराट द्रुपद, धृष्टद्युम्न, कर्ण, अभिमन्यु, घटोत्कच और द्रोण आदि वीरों के श्रद्धा पूर्वक नियम के साथ पृथक् पृथक् श्राद्ध करके ब्राह्मण भोजन करा कर तरह तरह के दान किये। आश्रयहीनों को आश्रय दिया और राजपत्नियों का सत्कार किया। सेवकों को सुविधा देकर राजा ने देवता, पितर बन्धुगण, पुरजन, प्रजा सब को प्रसन्न किया। श्रीकृष्णचन्द्र की कृपा से धर्मराज विजय पाकर सुन्दर नीति और धर्म से राज्य करते हुए समय बिताने लगे।

भीष्मपितामह का सदुपदेश।

धर्मराज ने कृतज्ञता पूर्वक श्रीकृष्णचन्द्र से कहा—हे केशव! आप की कृपा से मुझे विजय प्राप्त हुई और आपस की द्वेषाग्नि बुझ गई। आप की ही दया से पराक्रमी राजा की भाँति मैं ने भूमि लौटाई है और समूह सम्पत्ति का स्वामी हुआ हूँ।

आप अच्युत, विष्णु, बैकुण्ठनाथ, लोकेश्वर और देवदेव हैं। जगत की उत्पत्ति पालन तथा संहार करनेवाले वेदों के प्राण परमेश्वर आप ही हैं। आप मेरे सहायक और कल्यालकर्त्ता हैं, यह सोच कर मैं अपने को धन्य समझता हूँ। अब कृपा करके यह बतलाइये कि आप की आज्ञानुसार मैं कौन सा कार्य करूँ।

धर्मराज की नम्रता और भक्तिपूर्वक कोमल वाणी सुनकर भगवान् बोले—हे राजन्! वीरवर भीष्म शरशय्या पर अविचल ध्यान में निमग्न हैं। वे वशिष्ठ मुनि के शिष्य, ज्ञान और धर्म्म के रूप तथा तीनों काल की बातें जानते हैं। मेरी इच्छा है कि आप उनके पास चल कर धर्मोपदेश श्रवण करें; क्योंकि उनके स्वर्ग चले जाने पर श्रेष्ठ ज्ञान का उपदेश पाना असम्भव हो जायगा।

भगवान श्रीकृष्णचन्द्र की बात सुन कर धर्मराज ने कहा—प्रभो! यह तो आपने मुझ पर अभूतपूर्व कृपा की है, अच्छी बात है अब रथ पर सवार हो मुझे साथ में लेकर वहाँ चलिये

जहाँ (बुद्धिराशि) भीष्मपितामह हैं, उनके दर्शन कराइये और धर्म का इतिहास कहला कर मुझे कृतार्थ कीजिये।

धर्मराज की उत्सुकता देख श्रीकृष्णचन्द्र ने सात्यकि से कहा कि मेरा रथ तुरन्त तैयार करके ले आओ। सब समाज के तथा पाण्डवों के सहित रथ पर सवार होकर कृष्णचन्द्र प्रसन्नता पूर्वक भीष्मपितामह के पास चले।

उधर मुनिसमुदाय जैमिनि, व्यास, नारद, भृगु, अश्मक, वत्स्य, हारीत, लोमश, मौद्गल, दुर्वासा, कपिल, बाल्मीक, कश्यप, परशुराम, सनत्कुमारादि, पुलह, पिप्पल, पुलस्ति, गालव, गौतम, धौम्य, अंगिरा, विभाण्ड, माण्डव्य, भौतिक, भास्करि, मरीच, सुमन्त, मार्कण्डेय, सम्वर्त, याज्ञवल्क्य तृणविन्दु, भरद्वाज, पराशर, देवल, शुकदेव, आदि महात्मा भीष्म के चारों ओर बैठे हुए उनके ज्ञान से पूर्ण सुन्दर उपदेश सुन रहे थे। भीष्मपितामह मुनियों से श्रीकृष्णचन्द्र की भूरि भूरि प्रशंसा कर रहे थे कि वे सब थल व्यापी परमप्रभु नारायण हैं। भगवान की स्तुति सुन कर मुनि लोग परमानन्द में निमग्न हो रहे थे।

उसी समय पाण्डवों, सात्यकि, कृपाचार्य, युयुत्सु, संजय, विदुर आदि को साथ लिये हुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र वहाँ पहुँच गये। सब लोग रथ से उतर कर प्रणाम करके यथा स्थान में बैठ गये। देखा कि भीष्मपितामह शरशय्या पर शयन करते हुए सूर्य के समान शोभित हो रहे थे। मुनि लोग कृष्ण भगवान का दर्शन पाकर ऐसे प्रसन्न हुए जैसे धनराशि पाकर रंक प्रसन्न होता है।

फिर श्रीकृष्णचन्द्र नम्रतापूर्वक भीष्म से कहने लगे—हे गांगेय! आप बालब्रह्मचारी, धैर्यवान, जगतविजयी, समस्त धर्मों के ज्ञाता और देवताओं को शिक्षा देने के योग्य हैं। भूत, वर्तमान और भविष्य की बातें कहने में आप समर्थ हैं। आप सम, दम, दान, तपस्या, सत्य के स्वरूप और धनुर्वेद के सुयोग्य ज्ञाता तथा वेद शास्त्र के तत्व को जाननेवाले हैं। भृगु और नारदादि महर्षि आप की प्रशंसा करते हैं। आप प्रसिद्ध वसु ज्ञानसम्पन्न हमारे परमभक्त हैं और मुझे बहुत ही प्यारे हैं। मैं जिस कारण यहाँ आया हूं उसे सुनिये।

राजा पाण्डु के ज्येष्ठ पुत्र अत्यन्त सत्यवादी, धर्मात्मा और विचारशील हैं। क्षात्रवंश का संहार देख कर उनके मन में बड़ा शोक उत्पन्न हुआ है, इसलिये आप धर्म की व्यवस्था वर्णन कर उनके दुःखदायी शोक को दूर करने की कृपा कीजिये। आप सांख्ययोग, पुराने इतिहास, आश्रम वर्ण के धर्म, देश, जाति, कुल रीति के विधान, शास्त्र, वेद, पुराण, लोक तथा बेद रीति सब जानते हैं। युधिष्ठिर आप के नाती हैं, वही उपदेश दीजिये जिससे इनके हृदय का शोक दूर हो जाय।

श्रीकृष्णचन्द्र की बात सुन कर कुछ शिर उठा हाथ जोड़ कर भीष्म कहने लगे—हे हृषी-केश! आप विश्वात्मा, जगदीश्वर, अजन्मा अविनाशी और, परमप्रभु हैं। वेद कहते हैं स्वर्ग आपका सिर है, सूर्य नेत्र हैं, अश्विनीकुमार नाक हैं, दिशाएँ भुजा हैं और पृथ्वी पाँव है। आप लीलावतारी, वेदों के प्राण साक्षात् परब्रह्म हैं।

हे यदुनाथ! आप मुझसे ज्ञानधर्म का उपदेश करने को कह रहे हैं, इससे मैं अपने को धन्य मानता हूँ। मेरा अहोभाग्य है, परन्तु यह तो बतलाइये कि जहाँ गुरू विद्यमान हैं वहाँ शिष्य का ज्ञान कथन उचित है? भला आपके सामने हम क्या ज्ञान कह सकते हैं? दूसरे बाणों के घात से मेरा शरीर जर्जर होगया है, उस की पीड़ा से बुद्धि स्थिर नहीं होने पाती है और प्राचीन इतिहासों का विकलता के कारण स्मरण नहीं रह गया है। व्यथा से बोला नहीं जाता है। ऐसी दशा में ज्ञानोपदेश किस प्रकार मैं कर सकता हूँ?

भीष्मपितामह की बात सुन कर भगवान श्रीकृष्णचन्द्र बोले— हे मतिमान भीष्म ! आप धीरधुरीण अद्वितीय योद्धा और हमारे श्रेष्ठभक्त हैं । मैं वरदान देता हूँ आपके शरीर की पीड़ा तुरन्त जाती रहेगी और पूर्ववत बुद्धि का विकाश होकर समस्त इतिहास स्मरण होजाँयगे । आप तत्वदर्शी हैं और देवता, गन्धर्व, मुनिगण आपकी सदा सेवा करते हैं । आपके स्वर्गगामी होने पर मर्त्यलोक ज्ञानियों से खाली हो जायगा । इसलिये सब आप की सेवा में उपस्थित हुए हैं, धर्म की विधिवत् व्याख्या करके धर्म को सन्तोष प्रदान कीजिये ।

श्रीकृष्णचन्द्र की बात सुन कर देवता लोग प्रसन्न होकर आकाश से फूल बरसाने लगे । मुनि लोग साधु साधु कह कर हर्ष प्रगट करने लगे और पितामह के शरीर से पीड़ा आदि बिकार दूर हो गये । वे स्वस्थ दिखाई देने लगे ।

भीष्म ने भगवान कृष्णचन्द्र से कृतज्ञता प्रगट करते हुए कहा—भगवान ! आप के प्रसाद से मेरे शरीर की व्यथा जाती रही और अब पूर्व के समान स्वस्थ हूँ । प्राचीन कथाओं का स्मरण हो आया । धर्मराज जो पूछना चाहें पूछें, मैं सहर्ष समाधान करूँगा । आपकी आज्ञा पालन करना मेरा परम धर्म है ।

पितामह की बात सुन कर भगवान ने धर्मराज से प्रश्न करने के लिये कहा; परन्तु धर्मराज सकुच से कुछ बोल न सके । तब केशव ने कहा—हे भीष्मपितामह ! धर्मराज का हृदय अत्यन्त स्वच्छ है, इनके मन में इस बात का बड़ा क्षोभ है कि मैंने राज्य के लोभ से पूज्य पुरूषों का संहार किया है । इसी भय से और लज्जा के मारे वे आप से प्रश्न करने में सकुचते हैं ।

वह सुन कर भीष्म ज्ञानोपदेश करने लगे —हे भगवन् ! युद्ध में चाहे भाई, पिता, पुत्र, गुरु प्रतिवादी हो वह शत्रु के समान है, उसका वध करने में कुछ भी दोष नहीं होता । ब्राह्मण के लिये सन्ध्योपासनादि कर्म और क्षत्रिय के लिये युद्ध में प्राण त्यागना श्रेष्ठधर्म है । इसलिये सुजान धर्मराज को जो जानने की इच्छा हो संकोच त्याग कर प्रश्न करें ।

भीष्मपितामह की बात सुनकर धर्मराज हर्ष से उठे और उनके पाँव को हाथ से छू कर प्रणाम किया । भीष्म ने उनके सिर पर हाथ फेर कर बैठने के लिए कहा । आज्ञा पाकर धर्मराज बोले—

हे पितामह ! जैसे हाथी के लिए अंकुश और घोड़े के लिए लगाम है, उसी प्रकार धर्मों को बढ़ानेवाला सुखदाई राजधर्म है । पहले आप राजधर्म का व्यवहार बर्णन कीजिये; क्योंकि राजा को उसका जानना परमावश्यक है ।

राजा युधिष्ठिर की बात सुन कर विज्ञ पितामह राजधर्म वर्णन करने लगे—हे धर्मराज सुनो, मैं अनुपम राजधर्म तुमसे कहता हूँ । देवता और ब्राह्मण की पूजा जाति के अनुसार निरन्तर समयानुसार करते रहना, तथा प्रारब्ध और पुरुषार्थ दोनों को श्रेष्ठ समझना चाहिये; जब पुरुषार्थ करने पर सफलता न हो तब प्रारब्ध जानना चाहिये । सत्य के बराबर राजा के लिये दूसरी सम्पत्ति नहीं है, जो राजा सत्य में तत्पर रहता है वह लोक परलोक दोनों में सुखी होता है सुन्दर, गुणी, जितेन्द्रिय, चतुर, शान्त, कोमल, अहिंसक और शत्रु को दमन करने वाला, लोभजित, दानशील गुणग्राही और प्रसन्नमुख होने से राजाओं की श्रेष्ठता मालूम होती है । अपने दोषों को छिपाना और पराये दोषों पर पूरी दृष्टि रखना उत्तम है । न तो अत्यन्त कोमल और न अधिक उग्र स्वभाव होना चाहिये; क्योंकि अधिक कोमलता से शासन में शिथिलता आती है और विशेष उग्रता से प्रजा में अरुचि उत्पन्न होती है यदि नीति के अनुसार ब्राह्मण का कर्म वध के योग हो तो उसे प्राणदण्ड न

देकर अपने राज्य से बाहर निकाल देना चाहिए। बलवान होने के लिये सदा सेना और दुर्ग की रक्षा करता रहे। आगत पुरुषों के गुण दोष को परख कर योग्य सत्कार करे। विरह, विषय और गर्व के आधीन होकर कभी आत्मसंयम का त्याग न करे। प्रजा की भलाई के लिए स्वार्थत्याग करे। छोटे मनुष्यों से हँसी दिल्लगी की बात न करे। शास्त्र और शस्त्र का अभ्यास रक्खे। आश्रमधर्म और वर्ण की रक्षा मन लगाकर करे। दंडविधान से वर्णसंकर न होने दे। जिसको कार्यभार समर्पण करे उस पर अविश्वास न करे और शिकायत सुनने पर गुप्त तथा प्रकट रूप से अनुसन्धान करने से ढिलाई न करे। छोटे शत्रु से युद्ध के लिये चले तब भी तैयारी पूरी करे। सेना का भार सेनापति पर रख कर किन्तु स्वयम् ग़ाफ़िल न रहे और युद्धकला में दक्षता प्राप्त करे। धन को न्याय पूर्वक बटोरकर सदा खज़ाने को भरते रहना उत्कृष्ट राजनीति है। वृद्ध, गुणवान, विज्ञ, धर्मात्मा, ज्योतिषी, अनुभवी वैद्य और सगुन जाननेवाले को चतुर राजा सदा अपने साथ रक्खे। शूर, कवि, स्वभक्त, नातेदार, कुटुम्बी, साधु और विद्वान् ये सातों राजा के लिए सदा माननीय हैं। जिस राजा के राज्य में ठगी, धोखेबाजी, अन्याय कर्म और अनुचित जोरावरी प्रजा न कर सके, वह श्रेष्ठ भूपाल है। जैसे बालक पिता के घर में सुख से विहार करता है उसी प्रकार जिस राजा की प्रजा निर्भय रहती है, वह अजेय होता है। जिस राजा के गुप्तचर नगर और देश की सच्ची खबर देते रहते हैं और जिसका मन्त्र गुप्त रहता है, वही श्रेष्ठ राजा है।

दुर्बल शत्रु को देख कर उसको तुच्छ न समझे, क्योंकि अवसर पाकर थोड़ी सी आग बड़े बड़े नगरों को जला देती है। राजनीति का पूर्णरीति से निर्वाह करना बहुत कठिन है, यह अल्पज्ञ से पूरी नहीं पड़ सकती। इसलिये राजा को सर्वज्ञ होना चाहिए।

इस प्रकार राजनीति वर्णन कर भीष्मपितामह ने कहा—हे धर्मराज! यदि तुम्हें कहीं सन्देह हो तो पूछ सकते हो।

भीष्म के वचन सुन कर नारदादि मुनि, कृष्ण, युधिष्ठिर सब मधुर वाणी से साधु साधु कहने लगे। सन्ध्या जान कर ब्राह्मणों को प्रणाम कर सब रथ पर सवार हो घर गये। सन्ध्यावन्दन करके रात बिता कर प्रातःकाल के कृत्य से छुट्टी पाकर कुरुक्षेत्र में जहाँ भीष्म थे वहाँ आये। व्यास आदि मुनियों को प्रणाम करके सब यथास्थान में बैठ गये।

युधिष्ठिर ने भीष्म की वन्दना करके कहा—हे पितामह! मनुष्य के जन्म-मरण का व्यापार, हाथ, पाँव, सिर, कान, गर्दन, छाती और कमर सब बराबर हैं तथा सभी ईश्वर के उपासक हैं, फिर राजा श्रेष्ठ किस कारण माना जाता है?

युधिष्ठिर की बात सुन कर भीष्मपितामह ने कहा—हे कुरुराज! सुनो, पहले सतयुग में न कोई राजा था, न राजदंड था और न कोई दंड ही देने योग्य था। प्रजावर्ग आपस में धर्म के अनुसार समझौता करके जहाँ जैसा होना चाहिए, कार्य करते थे। जब कुछ काल बीतने पर लोभ की बढ़ती हुई तब लोग अपने अपने कार्य की सिद्धि के लिए मनमाना आचरण करने लगे, किसी को किसी का भय नहीं रह गया, तब भले बुरे, भक्ष्याभक्ष्य, अगम्यागम्य का विचार सब ने त्याग दिया; क्योंकि कोई दंडदाता नहीं था इससे स्वार्थवश देखादेखी लोग निर्लज्ज हो गये।

इस प्रकार अन्याय की वृद्धि और धर्म की हानि देख देवगण घबरा कर ब्रह्माजी के पास गये और सारा हाल निवेदन किया। विधाता ने अनुमान किया कि बिना दंड देनेवाले के जगत का यथोचित कार्य चलना दुष्कर है, फिर उन्होंने कहा—

हे देववृन्द ! न्याय सब फलों के साधन का सार है, वह राजा के बिना दृढ़ता से स्थापित हो नहीं सकता। राजपुत्र के लक्षण, राजनीति, मंत्र, प्रजा की रक्षा, देशरक्षण का विधान विस्तार पूर्वक वर्णन करके सब को साथ लिये विष्णु भगवान के समीप जाकर निवेदन किया। त्रिलोकनाथ ने अपने तेज से अत्यन्त सचेत विरजनाथ नामक शासक राजा उत्पन्न करके और देवताओं को आश्वासित कर बिदा किया।

विरजनाथ के कीर्तिमान प्रणीता और प्रणोता के तपोराशि कर्दम पुत्र हुए। उनके अनंग-विशाल, अनंगविशाल के मृत्यु नामक पुत्र नीति के ज्ञाता हुए। मृत्यु के सुनीथा नाम की कन्या हुई जिससे वेणु नाम का पुत्र हुआ। वेणु अन्यायी राजा हुआ। उसके अत्याचार से दुखी होकर मुनियों ने शाप देकर उसे प्राणशून्य कर दिया। जब देश में बिना राजा के अराजकता फैलने लगी, तब सम्मत करके वेणु की दाहिनी जाँघ का ऋषियों ने मन्थन किया। उससे इन्द्र के समान तेजस्वी राजा पृथु उत्पन्न हुए। वे वेद वेदाङ्ग और धनुर्वेद के पूर्ण ज्ञाता हुए, उन्होंने मुनियों से पूछा कि मेरा कर्त्तव्य और आचार क्या है?

पृथुराज की बात सुनकर ऋषियों ने कहा—तुम धरती पर नीतिपूर्वक प्रजा का पालन करो, क्योंकि बिना शासक के सारी प्रजा निर्भयता के साथ अधर्ममार्ग पर चल रही है। फिर सलाह करके मुनियों ने शुक्र को उनका पुरोहित, बालखिल्य को मन्त्री और गर्ग को ज्योतिषी बनाया। स्तुति के लिये सूत, बन्दीजन और मागध उत्पन्न किये। राजा पृथु ने पहले पृथ्वी को समतल करके प्रजा बसाई और पर्वतों को स्थान नियत कर उन्हें एक जगह रक्खा। विष्णु, ब्रह्मा और इन्द्रादिकों ने मिलकर पृथु का राज्याभिषेक किया। इन्द्र और कुबेर ने उन्हें अपार धन प्रदान किया। हाथी, घोड़े, रथ और करोड़ों मानसिक पुरुष राजा पृथु की श्रीवृद्धि के लिये प्रगट हुए। राजा पृथु ने समस्त धरती पर फिर से धर्म स्थापन किया। पृथ्वी को गौ की भाँति दोहन करके सत्रह प्रकार के श्रेष्ठ अन्न उत्पन्न किये। धरती उनकी पुत्री रूपिणी हो गई इसी से उसका पृथ्वी नाम पड़ा। राजा पृथु की आनन्ददायिनी कीर्त्ति लोकों में फैल गई। जगत को क्षत से बचाया इस से गुण के अनुसार वे क्षत्री कहलाये। राजा में विष्णु के तेज का अंश रहता है। ब्रह्मा की प्रेरणा से राजाओं के लिये शास्त्र निर्माण हुए हैं, इसलिये सदा राजाओं को शास्त्र की आज्ञा सावधानी से पालन करना उचित और कर्त्तव्य है।

धर्मराज ने पूछा—हे पितामह ! श्रावक वर्ण का धर्म वर्णन कीजिये, किस सिद्धान्त से राजा वृद्धि को प्राप्त होता है? प्रजा कैसे धन सम्पन्न हो सुखी रहती है।

धर्मराज की बात सुन कर भीष्म पितामह प्रसन्नता पूर्वक कहने लगे—हे धर्मराज ! चारों वर्णों का धर्म सुनिये। पढ़ना, पढ़ाना, दान देना, दान लेना, यज्ञ करना और कराना ये छे कर्म ब्राह्मण के श्रेष्ठ हैं।

पढ़ना, दान देना और यज्ञ करना ये तीन कर्म क्षत्रिय के हैं। प्रजा पालन, ठग चोर के दंड की इच्छा रखना, वर्णाश्रम धर्मरक्षा करना, राजनीति में निपुणता, यज्ञादि कर्मों में उत्साह, धनसंचय, युद्ध में निर्भय रहना क्षत्रिय राजा का धर्म है।

सम्पूर्ण पशुओं का पालन और वाणिज्य करना वैश्यों का धर्म है।

तीनों वर्ण की सेवा करके जीविका करना शूद्र का धर्म है। प्रजापति ने पूर्व में रचना कर चारों वर्णों के धर्म भिन्न भिन्न नियत कर दिये हैं। यज्ञ दान करने का अधिकार सब वर्णों को है; किन्तु शूद्र को पुजाना निन्द्य है।

ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास इन चारों के धर्म सुनिये—संस्कार पूर्वक ब्राह्मणत्व प्राप्त करके ब्रह्मचर्य पालन करते हुए जितेन्द्रिय होकर और गुरु की सेवा करते हुए शास्त्रों के अध्ययन कर निपुणता प्राप्त करना ब्रह्मचारी का धर्म है।

सविधि विवाह कर देवता, पितर, अतिथि का निरन्तर पूजन सत्कार करना और कुटुम्बियों का पालन करना तथा धर्म में प्रीति, अधर्म से घृणा रखना गृहस्थियों का धर्म है।

स्त्री के सहित अथवा अकेला वन में रह कर शास्त्रों का अवलोकन और ईश्वर की आराधना करे। जितेन्द्रिय होकर तत्वज्ञान में तत्पर हो और शीलावृत्ति से जो अन्न मिल जाय उसी में सन्तुष्ट रहना वानप्रस्थ का धर्म है।

सन्यास का श्रेष्ठधर्म यह है कि त्याग के बाद फिर ग्रहण न करे। जो ब्राह्मण ब्रह्मचर्य धारण किये निराश्रित रह कर प्राप्त भोजन में सन्तुष्ट, अविकार, जितेन्द्रिय, मननशील और निरन्तर निष्काम रहता है, वह आनन्ददायक परमपद को प्राप्त होता है।

गृहस्थ ब्राह्मण को नित्यप्रति षट्कर्म करना उचित है। जो सनियम वन में निवास करता है वह अधिक श्रेष्ठ है। कृषिकर्त्ता, कुटिल, सिपहगीरी करनेवाला, वेश्यागामी, हिंसक, चुगुल, व्यभिचारी, आचारभ्रष्ट और शूद्रों की पुरोहिती करनेवाला ब्राह्मण शूद्र के समान यज्ञमन्दिर में जाने का अधिकारी नहीं है।

प्रजा पालन, ब्राह्मणों की रक्षा, दुष्टों को दंड देना, वर्णाश्रम धर्म का सँभाल, दुर्ग की हिफ़ाजत, यज्ञ करना, शास्त्रचिन्तन, प्रत्येक पर्व पर दान और व्रत करने से राजा वृद्धि को प्राप्त होता है। बिना राजा की रक्षा के धर्म का लोप हो जाता है और धर्म लुप्त होने से प्रजा निन्दित कर्म करने लगती है जिससे दरिद्री होकर नाना प्रकार का कष्ट भोगती है। नीति धर्म का पालन करने ही से प्रजा धन धान्य से सम्पन्न होती है। राजा के अज्ञानी होने से प्रजा में पापवृद्धि होती है और पाप नाश का कारण है। जितेन्द्रिय राजा शत्रुओं से विजय पाता है, जो अपनी इन्द्रियों को वश में नहीं कर सकता, वह शत्रु को कैसे जीत सकता है?

भीष्म के अमृतमय उपदेशों को सुन कर धर्मराज ने कहा—हे पितामह! राजा किस आचरण से दोनों लोकों में यशस्वी होता है? भीष्म प्रसन्न होकर बोले—हे राजन्! जो राजा रागद्वेष से रहित अपना स्वाभाविक धर्म कर्म करता है और निष्ठुरता के बिना अर्थसंचय करता है। सदा निर्भय मधुरभाषी, प्रसन्नमुख रहता है, गुणीजन तथा बन्धुवर्ग से मन में विरोध नहीं रखता और दुष्टों की भलाई नहीं करता। लोभी और अयशी को न्यायभार नहीं समर्पण करता, अहितकर मीठे पदार्थों को नहीं खाता और प्रमाण से अधिक स्त्रियों के संग में नहीं रहता; दया त्याग कर उग्रता नहीं ग्रहण करता और सच बोलता है; बिना परीक्षा किये किसी वस्तु का ग्रहण नहीं करता और दंड की बात प्रकाश नहीं करता; साधु पुरुषों से धन नहीं लेता, न असाधुओं को देता है; दम्भ से देवार्चन नहीं करता और कुत्सित धन नहीं ग्रहण करता; गुरु और मान्य पुरुषों से कपट का भाव मन में नहीं रखता; छल बल से शत्रु का सर्वस्व नाश करके मन में पश्चात्ताप न करनेवाला भूपाल दिनोदिन द्वितीया के चन्द्रमा की तरह उन्नतिशील और यशस्वी होता है।

जो प्रातःकाल उठकर गुरु और इष्टदेव का ध्यान करके विधिपूर्वक सन्ध्यावन्दन, देवपूजन करता है। फिर ब्राह्मणों को दान देकर आशीर्वाद और स्वस्त्ययन सुनने के अनन्तर राजकार्य, नीति का विचार रख कर करता है, वह उत्तम राजा है। भोजन से ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करने से ईश्वर

प्रसन्न होते हैं। भगवान् के मुख से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, जंघा से वैश्य और चरण से शूद्र उत्पन्न हैं। ब्राह्मण विष्णु को अधिक प्रिय हैं इसलिये राजा को उचित है कि सदा ब्राह्मणों को सन्तुष्ट रक्खे। ब्राह्मणों के अनुग्रह से राजा के श्रेष्ठ ऐश्वर्य की वृद्धि सदा होती रहती है।

राजा का पुरोहित क्रियावान्, धर्मात्मा, सरल-हृदय, बहुश्रुत, स्वच्छ, मंत्रविद् और शास्त्रज्ञ होना चाहिये। पुरोहित की कुशलता से राजा का बहुत कुछ कल्याण होता है। पूर्व में पुरोहित ब्राह्मण के प्रभाव से राजा मुचकुन्द अलकेश्वर कुबेर से विजय पाकर यशस्वी हुए थे। नीति, धर्म का पालन और विप्रों की सेवा से राजा उभय लोक में यशस्वी होता है।

राजधर्म का व्याख्यान।

राजा युधिष्ठिर ने फिर नम्रतापूर्वक पूछा —हे पितामह! आप गणेश के समान श्रेष्ठ वक्ता हैं, कृपा कर कहिये कि राजा लोग कौन सा आचरण करके प्रजा की वृद्धि करते हैं।

हे धर्मराज! धर्मात्मा, दानी, यज्ञकर्त्ता, तपी और व्रतशील राजा विधान के सहित प्रजावृद्धि करने में समर्थ होता है। जिस आचरण को राजा करता है, प्रजा भी उसी में अनुरक्त होती है। शास्त्र की सम्मति के अनुसार प्रजा का चतुर्थांश राजा को ग्रहण करना चाहिये और यदि प्रजा का धन चोर चुरा ले; किन्तु राजा चोर को न पकड़ सके तो उतना धन प्रजा को देना राजा को उचित है, ऐसा न करना अनीति है। इसलिये चोर को पकड़ने में राजा को सदा दत्तचित्त रहना चाहिये और पकड़कर बध करा देने से उपद्रव नहीं बढ़ता। जो ब्राह्मण की जीविका अपहरण करे और ब्राह्मणों से वैरत्व करता हो उस प्राणी को देशनिकाले का दंड देना राजा का धर्म है, इससे देश में दुष्टव्यवहार बढ़ने नहीं पाता।

जो ब्राह्मण समदर्शी, विद्वान्, प्रवीण, कर्मकुशल और वेदज्ञ होते हैं वे ब्रह्म के समान हैं। जो कर्महीन, विद्यारहित, अज्ञानी और नाचनेवाला ब्राह्मण है वह शूद्र के समान है। भिखमंगा, मन्दिरों का पुजेरू और दान लेनेवाला ब्राह्मण शूद्र से भी हीन है। पराई स्त्री से प्रेम करनेवाला, यज्ञ-कर्त्ता, दुताई करनेवाला, अमात्य और जासूसी करनेवाला पुरोहित ब्राह्मण, क्षत्रिय के समान है। जो ब्राह्मण हाथी घोड़े पर सवार होता है, वह वैश्य के समान है। इनसे और जो खेती करता हो उस ब्राह्मण से राजा को कर लेना चाहिये। यदि दरिद्रता की बाधा से ब्राह्मण चोरी करने लगे तो बुद्धिमान् लोग इसे राजा ही का अपराध कहते हैं। कुकर्मी ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तथा अन्य समस्त वर्णों की सम्पत्ति हर लेने में राजा का दोष नहीं होता। ब्राह्मण को कुकर्मी न होने देना राजा का परम धर्म है। इस प्रकार जो नीति और धर्म से व्यवहार करता है उस राजा की प्रजा सदा वृद्धि करती है।

फिर धर्मराज ने प्रश्न किया—हे वृद्ध पितामह! यदि ब्राह्मण पर विपत्ति आ पड़े और अपने धर्म में निस्तार न हो तथा क्षात्रधर्म पालन में भी समर्थ न हो तो वह अपने परिवार का पालन किस व्यवसाय से कर सकता है?

राजा युधिष्ठिर के प्रश्न को सुन कर भीष्म कहने लगे—हे धर्मराज! ऐसी दशा में कृषि गोपालन और वाणिज्य करके ब्राह्मण को जीविका करनी चाहिये; किन्तु मदिरा, नमक, तिल, घोड़ा पशु, सिद्ध अन्न, मांस और मधु का विक्रय करना ब्राह्मण के लिए अत्यन्त निषिद्ध है, इसलिये इन्हें न

बेचे और काँस धातु की बिक्री न करे। वेद की प्रति, देवता की मूर्ति, यज्ञ और तप का विक्रय न करे। ब्राह्मणवंश का पालन करना राजा का कर्त्तव्य है।

हे राजन्! अब मैं ऋत्विज का लक्षण कहता हूं, सुनिये। जो सम्पूर्ण वेद वेदाङ्ग का ज्ञाता, शास्त्रज्ञ, बुद्धिमान, सत्कर्म में तत्पर, शुद्ध आचरणवाला, सत्यवक्ता, निरभिमान, क्रोधरहित, शम दम साधनेवाला, क्षमावान, विरतशील, निष्काम, उदार, स्वच्छ, अहिंसक, ज्ञानी और सरल स्वभाववाला हो वह ऋत्विज कर्म करके राजा की वृद्धि करता है।

धर्मराज ने कहा यज्ञों का अंग दक्षिणा वेद वर्णन करते हैं, यदि द्रव्य न होने पर श्रद्धावान प्राणी यज्ञ करना चाहे तो वह किस प्रकार यज्ञ कर सकता है?

भीष्म ने कहा—हे धर्मराज! धनहीन मनुष्य यज्ञ करके यथाशक्ति दान दे, उसका स्वल्पदान भी अधिक के बराबर है। वह दीनता पूर्वक श्रद्धा के साथ थोड़ा दान देकर भी पूर्ण फल को पाता है। वेद कहते हैं कि ब्राह्मण का यज्ञ तपस्या है। सत्य, अहिंसा, दम और दया का साधन धर्म परम-तप है। जो वेद शास्त्रों के वचनों का उल्लंघन करता है और अपनी बुद्धि ही को श्रेष्ठ मानता है, वह अपने को नष्ट करनेवाला है।

युधिष्ठिर ने कहा—हे पितामह! बुद्धिमान राजा किस स्वभाववाले को मन्त्री बनावे और कौनसा लक्षण देख कर विश्वास या अविश्वास करे?

पितामह ने कहा—हे धर्मराज! सुनो, मित्र चार प्रकार के होते हैं। जो सहायता पाने की इच्छा से मित्रता करता है, वह सहार्थ मित्र है। पिता, भाई, पुत्र और श्वसुर सहज मित्र हैं। धन के लिए सेवा करके जो मित्र बनता है वह कृत्रिम मित्र है तथा परस्पर व्यवहार से मित्रता करनेवाले भजमान मित्र कहे जाते हैं। पर जो निर्लोभ प्रेम रखकर अनुमान बल से सहायता करता है और किसी प्रकार के स्वार्थ की इच्छा नहीं रखता, वह श्रेष्ठ मित्र है राजा को धर्मात्मा निःस्वार्थी मित्र का विश्वास करना चाहिये, शेष का नहीं। मित्रों के साथ कुव्यवहार कभी न करना चाहिए क्योंकि इससे मित्र भी शत्रु बन जाते हैं। जिसका चित्त अव्यवस्थित हो, उसका विश्वास राजा को करना उचित नहीं है।

राजा किसी का अत्यन्त विश्वास न करे और पुत्र, भाई, मंत्री तथा सेनापति का एकान्त-स्थल में विश्वास न कर बैठे। पड़ोसी राजा का भी विश्वास न करना चाहिये और उसके मर्मी सेवकों को रहस्य जानने के लिये अपनी ओर मिला रखने की पूरी चेष्टा करता रहे।

मंत्री, धर्माध्यक्ष, वैद्य, ज्योतिषी, अंगरक्षक, कोशाध्यक्ष और आयव्यय के हिसाब रखनेवाले पर राजा विश्वास रक्खे और उदारता के साथ सदा प्रसन्नमुख हो सम्भाषण करे; किन्तु इनके कामों की परीक्षा गुप्तभाव से करने में चूक न करे।

शीलवान, कुलीन, प्रवीण, धर्मात्मा, सलज्ज, मर्यादा युक्त और धीरजवान मनुष्यों को गुरुतर कार्य समर्पण करे। ज्ञाति के लोग जो पराक्रमी और कुछ दावीदार हों, उनको मित्र न समझ कर सदा चौकन्ना रहना चाहिये। जातिवालों को जाति का ऐश्वर्य नहीं सुहाता, पूर्व में आहुकि और अक्रूर से इसी सम्बन्ध में वैर हुआ था। सब जातिवालों को यथायोग्य भाग देकर और उचित प्रकार प्रीति के साथ उनका पालन करे।

अभ्यन्तर और बाह्य आपदा दो प्रकार की है। बन्धुवर्ग से दुःख होना आभ्यन्तरिक और शत्रु आदि द्वारा संकट होना बाह्य है। इसलिये बन्धुवर्ग का पालन राजनीति है, जातिवर्ग को नष्ट

करना तथा आत्महत्या करना दोनों विरुद्ध कार्य हैं। जातिवर्ग का आदर करना तीव्र शस्त्र है और उस पर शस्त्र प्रयोग करना महान् अनिष्ट का रूप है।

चतुर बुद्धिमान् द्वारपाल रखना और उसका सत्कार करते रहना राजनीति है। जिसको अपना मित्र बना कर दिन रात साथ में रक्खे, उसे सदा धन मान देकर सुखी करते रहना चाहिये। प्रधानमंत्री, ख़जानची और माल का काम करनेवाले को समय समय पर पुरस्कार देकर प्रसन्न करता रहे तथा उन पर प्रत्यक्ष विश्वास रक्खे और गुप्तरूप से उनके काम का अन्वेषण करता रहे कि किसी प्रकार छल तो नहीं हो रहा है। सावधान न रहने से कभी कभी दुष्ट कर्मचारी राजा को नष्ट कर देते अथवा ख़राब कर देते हैं। अयोध्या के राजा क्षेमदर्श के मंत्रियों ने ऐसा ही किया था, फिर कालमुनि के उपदेश से युक्ति पूर्वक क्षेमदर्श ने कपटी अमात्यों को दंड देकर राज्य की रक्षा की थी।

पुन: धर्मराज ने कहा—हे पितामह! किस प्रकार प्रजापालन करने से राजा यशस्वी होता है? और सपरिवार किस बनावट के नगर में निवास करके राजा सुख पूर्वक रह सकता है? और राजा को किस प्रकार देश की रक्षा करते हुए धनसंग्रह करना चाहिये।

भीष्म ने कहा—हे सुजान भूप! जो राजा शुद्ध व्यवहार से प्रजा का पालन करता है वह दोनों लोकों में यशस्वी होता है। राजा को आठ मंत्री रख कर प्रत्येक कार्य खूब सोच समझ कर करना चाहिये। व्यवसायी, धर्मात्मा चतुर प्राणियों को कर्मचारी नियत करे। अपराध दूसरा कोई करे उसके बदले में दूसरे को दंड न दे और जैसा अपराध हो न्याय के अनुसार वैसा ही दंड देना चाहिये। मंत्र की बात को प्रकाशित न करे और मंत्रज्ञों को अपने समान जान कर उनका सदैव सम्मान करे। जैसे कछुआ अपने अंगों को छिपा लेता है उसी प्रकार अपने दोषों को छिपावे। शत्रु के दोषों पर दृष्टि रक्खे तथा गुणियों का पोषण करता रहे।

जिस राजा का मंत्री प्रवीण और मंत्र गुप्त रहता है, सलाह के बिना कोई कार्य नहीं करता, उसका यश संसार में फैलता है। राजा दूत को कभी न मारे चाहे वह कितना ही कठोर वचन कहे, जो दूत का वध करता है वह राजा घोर नरक में वास करता है। दूत सत्यवक्ता, चतुर, स्मृतिमान्, पवित्र, कुलीन और सत्संगी होना चाहिये।

धर्मशास्त्र के रहस्य का ज्ञाता, सन्धिविधान का जाननेवाला, धीर, साहसी, बुद्धिमान्, कलाकुशल, शूर, किलाबन्दी तोड़ने में दक्ष, कुलीन, हँसमुख और सौम्य स्वभाव का सेनापति होना चाहिये।

राजा को धर्मात्मा मंत्री रखना चाहिये; क्योंकि अधर्मी मंत्री राजा को हानि पहुँचाने के सिवा उन्नतशील नहीं बना सकते। अतः विचार कर मंत्री रक्खे। नीति के अनुसार वेदोक्त काम करनेवाला और सत्संग से प्रेम रखनेवाला राजा आनन्द पाता है, उसकी लोक में कीर्ति बढ़ती है और वह परलोक में सुखी होता है।

राजा को अपनी राजधानी पर्वत, वन और नदी के किनारे बनाना चाहिये। वहाँ नगर बसावे और किले के चारों ओर मज़बूत चहारदीवारी और गहरी खन्दक खुदवावे। सेनापतियों को चारों दिशा में सेना के सहित रहने का प्रबन्ध करे। प्राकार में चार दरवाजा प्रवेश के लिये निर्माण करावे, वहाँ चतुर पहरेदारों को नियत करे जिसमें बिना आज्ञा के न कोई भीतर आवे और नां बाहर जाय। प्रतिवर्ष अन्न का संग्रह करे और सदाव्रत चलावे। नगर के पास, कुआँ, बावली तालाब, देवालय और वाटिका जगह जगह बनवावे। अन्न का भाव अधिक न घटने देवे। व्यापारियें

की रक्षा करे, उनसे विशेष चुंगी न ले। चोर, उठाईगीर और ठगों को खोज खोज कर दंड दे। सब तरह के शिल्पकारों को बसावे; वैद्य, ज्योतिषी और शास्त्रज्ञों को आदर के साथ रक्खे। देश देशान्तरों के गुणी याचना करने आवें, उन्हें आदर-पूर्वक धन देकर विदा करे। शास्त्री जितने आवें उन्हें यदि न रख सके तो धन देकर सम्मान करके बिदा करना चाहिये। घोड़ा, हाथी, हथियार, किला, नगर, खाँई और वाटिकाओं का प्रतिमास राजा को निरीक्षण कर उनकी त्रुटियों को दूर करते रहना चाहिये। साल में एक वार अपने अधीन देशों को देखता रहे और सरहद पर सेना का दिखौआ प्रबन्ध विशेष रूप से रक्खे। नगर में यज्ञ दान का विशेष प्रचार करावे, देवाराधन की न्यूनता न होने पावे। निर्बल, सबल और मध्यम पुरुषों में समान व्यवहार हो कोई किसी का अपकार न करने पावे। विधवा और तपस्वियों को जिन्हें कोई आमदनी नहीं है उनको प्रतिमास अपने ख़ज़ाने से धन दिया करे। गुप्तचर रख कर सब स्थान का पता लेता रहे। इस तरह के नगर में बसने से राजा सुखी होता है।

शूर, सुजान, धर्मात्मा, चतुर और शास्त्रज्ञ नगर निवासी अथवा नात गोत के लोगों को सभासद बनावे तथा इसी प्रकार प्रवीण पुरुषों को जगह जगह कुछ योद्धा उनके अधीन रख छावनी बनवा कर प्रजा से मालगुजारी वसूल करे और निरन्तर प्रजारक्षण पर दत्तचित्त रहे। जैसे गऊ के थन में बछड़े को लगा कर स्वामी दुग्ध निकालता है उससे गैया को कोई कष्ट नहीं होता, उसी प्रकार प्रजा को प्रसन्न रख कर राजा को कर संग्रह करना चाहिये। प्रत्येक तहसीलदार का कर्त्तव्य है कि यत्न पूर्वक द्रव्य संचय करके उसके आयव्यय के हिसाब के सहित रक्षा पूर्वक राजधानी के ख़ज़ाने में प्रतिमास भेज दिया करे। प्रजा को पीड़ा पहुँचा कर और जोरावरी से अनुचित कर अथवा घूस लेना कर्मचारियों के लिये अनर्थ स्वरूप है, इससे उन्हें बचना चाहिये तथा राजा को उचित है कि कर्मचारियों को वेतन उनके निर्वाह योग्य दे, जिससे वे अपने को अधर्म से बचा सकें। ख़ज़ाने का लेखा सदा राजा को देखते रहना और उसकी रक्षा करना सर्वोत्कृष्ट राजनीति है। अन्न, धन, योद्धा, शस्त्र और शास्त्रों का संग्रह राजाओं को विजयी बनाता है।

राजा को सेना उस हद तक रखनी चाहिये जिससे वह अपने अधिकृत देश की रक्षा शत्रु की चढ़ाई से भलीभाँति कर सके। प्रजा में परस्पर विद्रोह न उत्पन्न होने पावे और व्यापारी निर्भयता पूर्वक एक स्थान से दूसरे स्थान में माल लेकर गमनागमन कर सकें। जैसे बिल्ली अपने बच्चों को मुँह से उठा कर एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाती है; किन्तु न तो उस बच्चे को दाँत की चोट लगने पाती है और न कुछ कष्ट होने पाता है, राजा को उसी प्रकार प्रजा से कर वसूल करना चाहिये। प्रजा को पीड़ा न हो, वह प्रसन्नता से राज कर दे सके, उतना ही लेकर सन्तुष्ट रहना चाहिये।

जो अन्याय से धमका कर प्रजा से धन ले, ऐसे प्राणी को राजा का धर्म है कि दंड देवे। चोर और दुष्टों से सदा प्रजा की रक्षा करना राजा का परम कर्त्तव्य है। दान और यज्ञ देश की भलाई के लिये करता रहे जिससे ईति का भय न हो। अनावृष्टि, अतिवृष्टि, चूहा, टीड़ी और सुग्गों का उपद्रव, राजसेना का गमन, पाला और पत्थर पड़ना कृषि के लिये ईति है। इस प्रकार धन लेकर राजा देश की रक्षा करते हुए उत्तम प्रबन्ध के साथ राज्य कार्य सम्पन्न करने से सदा सुखी रहता है। अपना बल, शत्रु का बल, देश और काल का पूर्ण विचार रखने से समृद्धि की वृद्धि होती है। धर्म का व्यवहार करना और वर्णाश्रम धर्म का पालन करने से राजा यशस्वी होता है। अधर्म से

राज्य का नाश और धर्म से बढ़ती होती है। यह बड़े बड़े राजनीतिज्ञ और धर्मात्मा पुरुषों का सिद्धान्त है।

हे धर्मराज! अधर्मी राजा की लक्ष्मी थोड़े ही काल में नष्ट हो जाती है। राजा ही के आचरण से प्रजा अधर्मी और सुन्दर धर्मवाली होती है। इसलिये राजा को प्राणपण से धर्म की रक्षा करनी चाहिये। ब्राह्मण धर्म की योनि हैं इसलिये उनकी पूजा करना सदा राजा के लिये श्रीवर्द्धक है। ब्राह्मण के क्रोध से सब प्रकार की क्षीणता और ब्राह्मण की कृपा से सब तरह कल्याण होता है, परन्तु जो ब्राह्मण पाखण्डी, उन्मत्त, पतित, अधर्मी और परद्रोही हो, उसे राजा अपने समीप न फटकने दे।

बालिका, अविवाहिता, स्वेच्छाचारिणी, बन्ध्या और पराई स्त्री के साथ भूल कर भी सहगमन न करे। राजा जब धर्म का विचार न करके अधर्म पथ में पाँव रखता है, तब बहुत से उपद्रव बढ़ते हैं और प्रजा पाप में रत हो जाती है। मेघ धर्मात्मा राजा के राज्य में समय पर जलवृष्टि करते हैं और राजधर्म के प्रभाव से प्रजा का घर धन धान्य से भरा रहता है। जो राजा नीति पूर्वक दंड देकर प्रजा के पापों को नहीं धो डालता, वह अनभिज्ञ धोबी के समान है। सुन्दर धर्म और नीति पूर्वक शासन करनेवाला राजा सदा इन्द्र के समान सुखी रहता है।

इस प्रकार भीष्मपितामह के उपदेश सुन कर धर्मराज परम प्रसन्न होकर बोले—हे महात्मन्! धर्म में स्थिति चाहनेवाला राजा किसको बाधा पहुँचावे और किसकी पालना करे, जिससे वह यशलाभ कर सके? तथा युद्ध करके पर राज्य पर अधिकार करे तो उस राज्य की प्रजा का पालन किस प्रकार राजा को करना उचित है?

भीष्मपितामह ने कहा—हे धर्मराज! पूर्व में राजा वसुमन ने वामदेव से ऐसा ही प्रश्न किया था और उन्होंने विस्तृत उत्तर देकर समझाया था, उसको मैं संक्षेप से वर्णन करता हूँ, सुनो, जो राजा अधर्मी और मिथ्याभाषी होता है वह थोड़े ही दिन में भयंकर आपदा में फँस जाता है। धर्म चारों फल का देनेवाला है, इसलिये राजा को धर्म में प्रीति करनी चाहिये। सत्यवक्ता, धर्मात्मा, मतिमान, दानी, यज्ञकर्त्ता, जितेन्द्रिय, नीति के अनुसार प्रजापालक; मित्र, पुरोहित, बन्धुगण, सुभट, कुटुम्बी, सम्बन्धी, अर्थी, प्रतिष्ठितव्यक्ति और गुणवानों का उचित सत्कार करनेवाला राजा सदा यशस्वी होकर वृद्धि को प्राप्त होता है।

पाप में अनुरक्त, जल्दबाजी से बिना विचारे कार्य करनेवाला मिथ्यावादी और अधर्मी राजा न तो लोक में गौरव पाता है, न परलोक में सुखी होता है। बुराई करनेवाले की जो राजा भलाई करता है उसका यश अतिशय वृद्धि को प्राप्त होता है।

जो राजा स्त्री, शिकार, जुआ, दुष्टों की संगति और मादक वस्तुओं में अधिक अनुरक्त रहता है, वह विपत्ति में पड़ता है। लोभी, आलसी और न्याय में पक्षपात करनेवाला राजा महान पाप का भागी होता है। जो राजा युक्ति से अपनी और देश की तथा रक्षकों की रक्षा करता है, उसकी प्रजा सदा धन धान्य से सम्पन्न सुखी रहती है।

जो अपने वर्ग को दूर करके पर वर्ग को संग में लेता है, वह राजा दोनों भुजा उठा कर आपदा को बुलाता है। अपने को शत्रुहीन समझ कर अथवा दुश्मन को दूर जान कर जो राजा सेना भंग कर देता है, वह पराजय की आपदा से ग्रस्त होता है। युद्ध में शत्रुदल का संहार कर भूमि जीत

कर धर्म और नीति से प्रजापालन करनेवाला राजा सदा प्रसन्न रहता है। मंत्र, युद्ध, शासन, न्याय और प्रजारक्षण में कुशल राजा वृद्धि पाता है।

सब प्रवीण पुरुषों की धारणा एक समान नहीं होती, इसलिये प्रत्येक कार्य के नियम पालन की देखरेख राजा को करते रहना चाहिये। शास्त्रज्ञ और वयोवृद्ध के वचनानुसार योग्यपुरुषों को कार्यभार समर्पण करे तो सदा प्रसन्नता के सिवा खेद नहीं होता।

जो प्राणी सुन्दर उपदेश को अपनी तुच्छ बुद्धि के सामने ग्रहण नहीं करता वरन् अपनी ही लघुमति को बड़ी समझता है, उसको राजनीति विचार कर कोई भी काम राजा न समर्पण करे। राजा को पुरुष की परीक्षा करना परमावश्यक है। उसकी बुद्धि और व्यवसाय की परख करके तदनुसार कार्य सौंपना उचित है।

जिस मंत्री को बन्दी बनाया हो, स्त्री, हाथी, घोड़ा और साँप का कभी विश्वास न करे। जिस राजा का मन्त्री बुद्धिमान होता है, योद्धा प्रसन्न और प्रजा धनसंपन्न रहती है, उसकी जड़ मज़बूत समझना चाहिये और मंत्री मूर्ख, सुभट क्षुधित तथा प्रजा दरिद्री एवम् आप झूठ बोलनेवाला है तो उस राजा की जड़ सदा कमजोर रहती है।

यदि राजा युद्ध करके दूसरे का राज्य अपने अधिकार में करे तो पहले प्रजावर्ग को अभय की घोषणा से प्रसन्न करके उन्हें विश्वास दिलावे कि तुम सब हमारी प्रजा हुए हो, तुम्हारी पालना हम पुत्र के समान करेंगे। जिस प्रकार तुम लोग पहले कर देते थे उसी प्रकार दो और खेद त्याग कर निर्भय रहो। हम निरन्तर तुम्हारी रक्षा करेंगे। सेना और चतुर प्रबन्धकों को नियत करके शासन करने से किसी तरह की त्रुटि नहीं होने पाती और नवीन प्रजा वश में हो जाती है।

धर्मराज ने कहा—हे महामते! धर्मयुद्ध, क्षात्रधर्म और संग्रामभूमि में जो लड़ कर प्राण त्यागते हैं वे कौन से लोक में बसते हैं? शूर के लक्षण, जय पराजय के शकुन अशकुन को कहिये।

पितामह ने कहा—हे युधिष्ठिर! समान बलवान एक दूसरे से पराक्रम प्रदर्शित करके युद्ध करते हैं जिसमें छल न किया जाय वह धर्मयुद्ध है। जिस योद्धा का वाहन नष्ट हो गया हो, जिसके पास अस्त्र न हो, हार मान कर दीन वचन कहता हो और लड़ाई छोड़ कर भागनेवाले पर कभी अस्त्रप्रहार न करना युद्ध का धर्म है। जो धर्मयुद्ध करके विजय पाता है, वह राजा सच्चा विजयी है और जो अधर्म से विजयी होता है उसकी कीर्त्ति नष्ट हो जाती है। धर्म रख कर हार जाना श्रेष्ठ है; किन्तु धर्म खोकर विजयी होना पाप का रूप ग्रहण करना है।

हे धर्मराज! पूर्व में राजा अम्बरीष बड़े धर्मात्मा थे, वे शरीर त्याग कर अमरलोक में गये। वहाँ उन्होंने अपने सेनापति को देखा कि वह ऊँचे पद पर श्रेष्ठ विमान में दिव्य तेज से शोभित हो रहा है। राजा अम्बरीष ने देवराज इन्द्र से कहा—हे अमरनाथ! मैंने विधिवत सारी धरती का राज्यसुख भोग किया। वर्णाश्रमधर्म पालन, यज्ञ, व्रत, दान और अतिथि-पूजन निरन्तर श्रद्धा के साथ किया। वेद शास्त्र का अभ्यास, प्रजा का पालन तथा विचार कर राजनीति का अनुसरण किया। देवता, ब्राह्मण, ऋषि, पितर और श्रेष्ठों का सम्मान किया; किन्तु हमारे सेनापति ने ऐसा कोई धर्म नहीं किया था फिर उसको हम से ऊँचा पद कैसे मिला? इन्द्र ने अम्बरीष की बात सुन कर मुस्कुराते हुए कहा—

हे राजन्! सेनापति ने युद्ध रूपी यज्ञ में शरीर त्याग किया है, इससे वे ऊँचे पद पर विराजमान हैं। इन्द्र के मुख से रण में शरीर त्याग की महिमा सुन कर अम्बरीष बहुत प्रसन्न हुए। एक बार काशिराज और मिथिलेश्वर से परस्पर युद्ध हुआ था, वह इतिहास सुनिये। राजा जनक ने अपने सुभटों को भयभीत देख कर योगबल से उन्हें स्वर्ग का दृश्य दिखाया कि जो शूरवीर लड़ कर मरे हैं, वे स्वर्गलोक में विपुल ऐश्वर्य और सुख भोग रहे हैं। यह देखते ही राजा जनक के योद्धाओं ने भय त्याग कर भीषण संग्राम किया था।

राजा को चाहिये कि सेना को दसपति, सतपति और सहस्रपति का विभाग कर दे तथा व्यूहरचना करके उत्साहपूर्वक शत्रु से युद्ध करे। प्रधान सेनापति और यूथपों का आदर करके स्थान स्थान में नियत कर आप मध्य में रहे। अस्त्रादिकों को अपने समीपस्थल में सुरक्षित रक्खे तथा भाई, पुत्र, मन्त्री आदि पूर्ण विश्वासी सुभटों के संग पर्याप्त हाथी, घोड़े, रथी और पैदल नियत कर पृष्ठ रक्षा में रक्खे। सब दिशाओं में सेना के बीच अपना रथ ले जाने का मार्ग रक्खे और सुन्दर वचनों से वीरों को उत्साहित करता रहे। विजय की दृढ़ आशा से निरन्तर यत्न करे और हरकारे द्वारा क्षण क्षण समूची सेना के दुःख तथा कल्याण की ख़बर लेता रहे। जहाँ वीरों को बिचलित होते देखे, वहाँ तुरन्त सहायतार्थ दूसरी सेना भेज दे। सब दिशाओं के यूथपों के पास बार बार सन्देशा भेजता रहे कि मुझे अपने ही पास समझ कर ख़ूब उत्साह से लड़कर शत्रु का दमन करो। हमारी प्रतिष्ठा का दारमदार आप सब सुभटों के हाथ में है। या तो शत्रु को जीत लेना या लड़ कर प्राण देना क्षत्रिय का श्रेष्ठधर्म है। जीतने से लोक में यश और मरने से स्वर्गसुख प्राप्त होता है। इस प्रकार वीरों को मान देकर उत्साह बढ़ाता रहे और जुझाऊ बाजे बजवाता रहे, जिससे सुभटों के युद्ध का उमंग न्यून न होने पावे।

जब युद्ध के लिये प्रस्थान करना हो, तब सुन्दर दिन निश्चय करके काल, योगिनी और चन्द्रमा की अनुकूलता पर अवश्य ध्यान रक्खे; इष्टदेव, कुलदेव, ग्रामदेवों की पूजा कर के ब्राह्मणों को दान से तथा भटों को सुन्दर बचनों से सन्तुष्ट कर स्वस्त्ययन सुनते और गुरु के चरण कमलों का ध्यान करके गम्भीर बाजा बजवाते हुए प्रस्थान करे। बन्दीजन नवीन ललित छंदों में नामवरी बखानते हुए चलें, इस तरह उत्साह के साथ सुयोग से प्रस्थान कर राजा विजय प्राप्त करता है। जहाँ रात को सेना के सहित पड़ाव हो, वहाँ चारों तरफ दूर दूर सौ सौ सवार और चतुर यूथपों को रक्षा के लिये नियत करे, उसके भीतर किसी अनजान मनुष्य का प्रवेश न होने पावे। सेनापतियों को बुला कर रात्रि में सभा करके परदिन का कार्य सर्वसम्मति से निश्चय करे। जिनके भाई, पुत्र, पिता आदि मरे हों उन्हें हाथी, घोड़े, धन, धरती देकर समवेदना पूर्वक सन्तुष्ट करे और घायलों की चिकित्सा का समुचित प्रबन्ध कर उन्हें स्वयम् देखने जावे और कृतज्ञता प्रगट करते हुए आश्वासन दे। चारों ओर की पूरी ख़बर लेने के बाद शयन करे और ब्राह्ममुहूर्त में उठ कर प्रातः कृत्य से निवृत्त हो कूच करे।

जिस पुरुष की चाल और चितवन सिंह के समान हो, वह शूर होता है। गम्भीर स्वरवाला, निर्भीक, क्रोधी तथा उद्धत स्वभाव का मनुष्य शूरवीर होता है। उग्र शरीर, उग्रतेज, उग्रस्वर, उग्रप्रकृति, मानी और टेढ़ी भौंहवाला पुरुष लड़ाका भट होता है। कितने सरलप्रकृति के मनुष्य भी शूरवीर होते हैं। युद्ध में पीठ न दिखा कर शत्रु को पराजित करना अथवा वीरगति को प्राप्त होना क्षात्रधर्म है। जो पुरुष क्षात्रधर्म का विधिवत पालन करता है, सच्चा शूर और क्षत्रिय वही है।

हे धर्मराज ! किसी कारण से क्रोधित हुआ ब्राह्मण सामने आ जाय तो उस समय अजय विचार कर राजा शत्रु के सम्मुख युद्धार्थ प्रस्थान न करे ! रण की यात्रा के समय यदि हाथी घोड़े खिन्न मन हुए पीछे भागने लगें, धूल से पूर्ण सामने से जोर की हवा आती हो, इन्द्रधनुष सम्मुख दिखाई पड़ता हो, सियार बोलते हों, गिद्ध सामने उड़ते हुए आते हों तो समझना चाहिये कि पराजय होगी। ऐसे अशकुनों को देख कर पयान न करना चाहिये।

योद्धा प्रसन्न हों, पीछे से मन्द पवन आता हो और वाम भाग पीछे की ओर मृगों का झुंड जाता हुआ दिखाई पड़े तो निश्चय जीत समझनी चाहिये। प्रथम साम का प्रयत्न करे, जब तीन उपायों से काम निकलते न देखे तब ब्राह्मणों की पूजा करके दंड का विधान करने से निश्चय राजा विजयी होता है। उत्तम कुल के श्रेष्ठ रणधीर शूरवीर एकमत होकर पचास ही क्यों न हों, वे सहस्रों भटों का युद्ध में संहार करके विजय प्राप्त कर सकते हैं। युद्ध में तीक्ष्ण स्वभाव धारण कर कोमलता न लावे, यदि शत्रु हथियार रख दे, तब अस्त्रप्रहार त्याग दे और सेना को हथियार चलाने से मनाही करवा देनी चाहिये।

भीष्मपितामह के अमृतमय उपदेश को सुन कर युधिष्ठिर ने कहा—हे पितृवर ! राजा को कहाँ मृदुता और कहाँ तीक्ष्ण भाव ग्रहण करना चाहिये ? यदि धर्मात्मा राजा मंत्री के छल से निर्धन हो जाय तो वह किस प्रकार सुखी हो सकता है ? किसकी सेवा उत्तम है जो शरीर धारण करने को सार्थक करके श्रेष्ठगति देती है ?

भीष्मपितामह बोले—हे मतिमान ! पूर्व में अमरपति का प्रश्न सुन कर बृहस्पति ने जो कहा था, वह मैं कहता हूँ सुनो। बुराई करते देख कर क्रोध से तुरन्त कलह न बढ़ावे, अनजान बन कर कोमलता का व्यवहार करे। जैसे पक्षियों को पकड़ने के लिये बहेलिया मौन रहता है, उसी प्रकार प्रत्यक्ष प्रेम बढ़ा कर राजा कठोर वचन न बोले। अपने विश्वासी सलाहकार मंत्री के सिवा इस भेद को दूसरे पर प्रगट न होने दे। मन लगा कर छिद्र का अवसर देखता रहे। उसके मित्रों में भेदनीति से अन्तर डाल कर समय पर मंत्रीगण के सहित पकड़ कर बध कर डाले। वहाँ मृदुता त्याग कर तीक्ष्ण स्वभाव ग्रहण करे। न सदा मृदुता और न तीक्ष्ण स्वभाव ग्रहण करना चाहिये; क्योंकि अधिक मृदुता से दुष्टजन प्रबल होते हैं तथा तीक्ष्णता से अनुचर वर्ग, कुटुम्बी और प्रजाजन विरुद्ध हो जाते हैं।

दुष्टों का संग राजा को न करना चाहिये, इसलिये दुष्टों का लक्षण कह देना आवश्यक है। जो पीठ पीछे दूसरे का गुण छिपा कर निन्दा करता है और पराये की प्रशंसा सुन कर दुखी होता है। आँखें टेढ़ी कर गरदन हिला हँस कर सच्ची बात को झूठ बनाने की चेष्टा करता है, जो हँसने का कारण न होने पर भी हँस कर बातें करता है और जगह जगह अपनी बड़ाई करता फिरता है। जो पराये अपकार के लिये कष्ट उठाता है, सदा कटुवचन बोलने में अनुरक्त और अधर्म को सुधर्म कहने वाला प्राणी दुष्टात्मा है। ऐसे मनुष्य जगत के अमंगलकारी तथा पाप के रूप हैं। ठीक इनके विपरीत आचरणवाले परोपकारी पुरुष साधु समझे जाते हैं।

अयोध्या के राजा क्षेमदर्शी बड़े दक्ष और धर्मात्मा थे, वे मन्त्री के छल से धनहीन हो दुखी हुए, फिर कालकवृक्ष नामक मुनि की सेवा में उपस्थित होकर निवेदन किया कि—महाराज ! मैं मन्त्री के कपट व्यवहार से निर्धन होकर मर्मान्तक दुःख भोग रहा हूँ, इसलिये आप की शरण आया हूँ, मुझे उचित मन्त्र दीजिये। राजा की बात सुन कर मुनि ने कहा—

हे राजन् ! तुमने पहले चेत नहीं किया, उसके लिये अब काहे को सोच करते हो ? तुम्हारे

समान बुद्धिमान राजा का शोक करना अयुक्त है; क्योंकि वर्तमान की रक्षा करना उचित है और बीती हुई बात का शोक करना व्यर्थ है। संसार अनित्य है, तुम्हारे पिता, पितामह आदि श्रेष्ठ योद्धा थे वे कहाँ चले गये? प्रत्येक वस्तुओं का नाश समय पाकर आप से आप हो जाता है। राजा को धर्म की रक्षा प्राणपण से करनी चाहिये। धर्म की हानि के बिना आपदा नहीं आती।

हे नरनाथ! देखो, ज्ञानी पुरुष पुत्र, पौत्र, स्त्री, धन आदि को प्रसन्नता से त्याग देते हैं, क्योंकि अर्थ ही सारे अनर्थों का रूप है। इसमें सन्देह नहीं कि दरिद्रता को दूर भगाने के लिये धन अपूर्व साधन है; किन्तु कभी निर्धनता ही आनन्ददायक होती है। प्रथम तो सदा निर्धनता एक समान रहती नहीं, दूसरे उसमें शत्रु मित्र की पहचान हो जाती है। किसी प्राणी के पास एक सी लक्ष्मी निवास नहीं करती, धनी दरिद्री और दरिद्री धनवान होते रहते हैं। कोई धन ही से चैन और प्रतिष्ठा मानते हैं, धन के बिना दूसरे में कल्याण नहीं समझते। कितने ही धन को तुच्छ जान कर निर्धन रहना उत्तम मानते हैं, वे धर्म के सामने धन को कोई चीज़ नहीं समझते। कितने ही जीवन से बढ़ कर धन को विचारते हैं और धन के लिये प्राण तक दे देते हैं। कितने ही धन पाकर उसे भोगते नहीं, वे अपने को अमर समझते हैं। धन पुरुष ही से उत्पन्न होता है, उसके लिये शोक करना यथेष्ट नहीं। श्रेष्ठ तो धर्म की विधिवत रक्षा करना है। इन्द्रियों को रोक कर सन्तोष के साथ कुछ दिन अकिञ्चनता का दोष सहन करो। मेरे यहाँ विदेह राजा आते हैं, उनसे तुम्हारी मित्रता होगी उनकी सहायता से तुम पूर्ववत राज्य प्राप्त करके सुखी होगे। मुनि की बात सुन कर राजा क्षेमदर्शी प्रसन्न हो उनके आश्रम में रहने लगे। कुछ समय बाद राजा जनक वहाँ आये और मुनि के द्वारा सब प्रसंग सुन कर उन्होंने मंत्री पर चढ़ाई की, उसे जीत कर क्षेमदर्शी को राज्यासन पर बैठाया। कोशलेश को सब प्रकार सुखी करके मिथिलेश अपने नगर को लौट गये।

इस प्रकार सत्पुरुषों की सम्मति से राजा नीति और धर्म के बल छली मंत्री से विजय पाकर सुखी होता है।

माता, पिता और गुरु की सेवा जन्म को सार्थक बनाकर श्रेष्ठगति देती है। ये सब के लिये प्रत्यक्ष देवता, अतिशय पूजनीय और सेवा के योग्य हैं। इनके समान दूसरा कोई देवता नहीं है। पिता गार्हस्पत्य अग्नि रूप, माता दक्षिण अग्नि रूपिणी और गुरु आहवनीय अग्नि के समान पूज्य हैं। पिता इस लोक में तथा माता परलोक में सुधार करती है और गुरु ब्रह्मलोक में निवास देते हैं। इस प्रकार ये तीनों देव तीनों लोक सुधारते हैं। इस क्रिया से सन्तति, सम्पत्ति, सुन्दरधर्म, तेज और सुयश की वृद्धि होती है। गुरु तीनों से सर्वश्रेष्ठ है जिनकी कृपा से मोक्षपद प्राप्त होता है। माता भी गुरु के समान ही है; क्योंकि वह जन्म देकर पालन पोषण करती है, अंक में लगा कर प्यार करती है, बहुत सहती है और सुख देती हुई कभी निष्ठुरता नहीं ग्रहण करती। यदि ये बुरे युग के अनुसार कार्य करें तो भी पूजने के योग्य हैं।

जो आदर के साथ धन देकर पालन करता है और जो विद्यादान देता है, वे दोनों पिता माता के समान पूज्य हैं। जो सत्कर्म करके धर्म में अभिलाषा रखता है और गुणीजनों की पूजा करता है, वेद कहते हैं कि वह समस्त पदार्थों को पाता है। जो गुरु का पूजन करता है वह ब्रह्म के ध्यान का फल पाता है, इसलिये मोक्ष की इच्छा रखनेवाला प्राणी गुरु का सेवन मन लगा कर करे।

जो माता, पिता और गुरु का निरादर करता है, वह भ्रूणहत्याकारी, मित्रद्रोही, कृतघ्नी, गुरुघातक और स्त्रीहत्या करनेवाले के समान महापापी है।

सत्यासत्य और आपद्धर्म विवेचन।

युधिष्ठिर ने नम्रता-पूर्वक पुनः प्रश्न किया—हे पितामह! धर्म और सत्यासत्य का सविधि वर्णन कीजिये। सुशील कुशील रूप और कुशील सुशील स्वरूप होकर किस प्रकार पहचाने जाते हैं? आलस्य करने से कौन सा फल होता है? बिना विचारे कर्म करने से क्या दोष होता है और प्रबल शत्रु के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये?

धर्मराज के प्रश्नों को सुन कर भीष्म प्रसन्न हो कर बोले—हे धर्मराज! सत्य के समान दूसरा कोई यज्ञ नहीं है, न पूजा, न तपस्या और न अन्य कोई पुण्य है। असत्य के समान पाप भी दूसरा कोई नहीं है, वह रौरव नरक का किनारा है। कहीं सत्य से पाप और असत्य से पुण्य बढ़ता है। जो हिंसा और परपीड़ा आदि असत को नसाता है, वह पाप पुण्यमय है तथा जिस सत्य से हिंसादिक पाप होते हैं, वह श्रेष्ठगति में बाधा डालनेवाला है। हिंसा अनगिनती जन्मों को नष्ट करती है उससे बढ़ कर दूसरा पाप नहीं। किन्तु युद्ध और यज्ञ में हिंसा करने से धर्म की वृद्धि होती है, उसमें पाप नहीं होता। परोपकार अत्यन्त पुनीत धर्म है और पराये को पीड़ा पहुँचाना घोरतर पाप है। दान परमोत्तम धर्म है, यही पुण्य सागर है। जो पापी को दान देता है उसका पुण्य पाप होता है।

संसार में सुन्दर जातिधर्म, आश्रमधर्म, प्रतिज्ञापालन धर्म, सन्मार्ग में चलना और सत्संग में प्रीति करना अतिशय कल्याणकारी श्रेष्ठधर्म हैं। इन धर्मों का पालन करने से मनुष्य जगत में धन्य और देवताओं से प्रशंसनीय होता है।

हे राजन्! जो न हिंसा करते हैं और न दूसरों को कष्ट पहुँचाते हैं, दान देते हैं किन्तु लेते नहीं, वे प्राणी परमपद को प्राप्त होते हैं। जो मनुष्य अधर्मों से बच कर अतिथियों को सुपास देता है और निर्लोभी तथा सत्यवादी है, वह स्वर्ग में निवास करता है। जो पराई स्त्री को माता के समान समझता है, देव पितरों की पूजा और यज्ञ करता है उसकी बुद्धि प्रशंसनीय है। जो युद्ध करने में अत्यन्त शूर हैं, मरने से नहीं डरते और धर्मपूर्वक विजय का इच्छा रखते हैं, वे देवलोक में जाते हैं। तपस्वी, वेदाभ्यासी और अध्यापक ब्रह्मचारी संसार सागर से सहज ही पार हो जाते हैं। जो अपने समीप राजा रंक को समान समझता है और सत्संग से प्रेम कर रामचन्द्रजी के चरणों में अनुरक्त रहता है। वह निस्सन्देह परमपद को प्राप्त होता है।

पूर्व में एक पैरिक नाम का राजा था, वह बड़ा अभिमानी और सदा हिंसा में तत्पर रहता था। समय पाकर शरीर त्यागने पर वह शृगाल हुआ। उसे पूर्वजन्म का ज्ञान बना रहा। इससे उसने अनामिष रहने का व्रत धारण किया। गिरे हुए फलों को खाकर दिन व्यतीत करने लगा। उसके उत्तम आचरण को देख कर दूसरे दुष्ट सियार अप्रसन्न होकर कहने लगे कि हमारी जाति की वृत्ति यह नहीं है। हिंसा करना और मांस खाना हम लोगों के लिये बड़े पुण्य का काम है, इसलिये तुम्हें भी यही करना चाहिये। इस प्रकार कुटुम्बी और ज्ञातिवर्ग की बात सुन कर उस शृगाल ने कहा—

हे भाइयो! तुम लोग इतनी तुच्छ और निन्दनीय बात क्यों कह रहे हो? तुम लोगों ने कुत्सित वृत्ति धारण करके जम्बुक-कुल में दाग़ लगा दिया। मैं वह आचरण करना चाहता हूँ जिससे संसार में श्रेष्ठ यश का विस्तार हो। जो वंश को प्रशंसनीय करता है, वह निश्चय ही उत्तमगति पाता है। यह सोचकर आत्मशुद्धि के लिये मैं इस वृत्ति को कल्याणकारी जान कर ग्रहण कर चुका हूँ, अब

इसे त्याग नहीं सकता। मेरा विश्वास है कि इससे फिर ऐसी मलिन देह न प्राप्त होगी और न दुःख भोगना पड़ेगा। सुख, दुःख, स्वर्ग, नरक, लघुता और श्रेष्ठता का कारण कर्म है। जो जैसा कर्म करता है, वह वैसा ही फल पाता है इसमें सन्देह नहीं। यह सुन कर पापी सियार तो चुप रह गये, पर एक सिंह उस शृगाल की बात सुन रहा था। उसने शृगाल को अत्यन्त बुद्धिमान समझ कर कहा—

हे जम्बुक! तुम्हारी चतुराई भरी विवेकपूर्ण बातें सुन कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। अत्यन्त बुद्धिमान को अपना मंत्री बनाना राजाओं की नीति है, इसलिये हम तुम्हें अपना मंत्री बनाना चाहते हैं, तुम प्रसन्नता से इस श्रेष्ठ-पद को स्वीकार करो। सिंह की बात सुन कर शृगाल बोला—

हे मृगराज! आप ठीक कहते हैं राजा को चतुर मंत्री रखना उचित है, क्योंकि विचारवान मंत्री से ऐश्वर्य की वृद्धि होती है। मैं आप का मंत्री होने में अपने को धन्य समझता हूँ, परन्तु आप बड़े बलवान हैं और सेवा को न समझ सकेंगे, इससे साहस नहीं होता है। जितने पूर्व के मंत्री आप के हैं वे कपटी, चुगुल और नीचबुद्धि हैं। जिसके सहवासी दुष्ट होते हैं उसके समीप प्रवीण सज्जनों का निर्वाह नहीं होता। राजा अज्ञानी हुआ और उसके साथी दुष्ट हुए वहाँ साधु-पुरुषों का कुशल कैसे हो सकता है? यदि आप यह स्वीकार करें कि मेरे सम्बन्ध में उनकी चुगुली न सुनें और उनके कहने से बिना जाँच किये हमें दंड न दें तो मैं आप का मंत्री हो सकता हूँ। जब सिंह ने प्रतिज्ञा की, तब वह मतिमान शृगाल उसका मंत्री होकर रहने लगा। दुष्ट जम्बुक उसका निरन्तर दोष ढूँढ़ा करते थे। एक दिन सिंह सो रहा था, पास ही में उसके खाने का मांस रक्खा था। कपटी मंत्रियों ने मांस को सिंह के पास से उठा कर साधु शृगाल को वध कराने की इच्छा से उसके घर में आँख बचा कर रख दिया। थोड़ी देर में सिंह जागा और क्षुधित हो मांस ढूँढ़ने लगा तो उसे न पाकर क्रोध से पूछा। उन दुष्ट शृगालों ने कहा—महाराज! नवीन मंत्री को आपने बहुत मुँह लगा रक्खा है, यह गुस्ताख़ी उसी ने की है कि आप के खाने का मांस अपने घर में उठा ले गया है। वह आप को पुरुषार्थहीन समझता है। साधुता दिखा कर वह इसी प्रकार नीच कर्म करता है। सुनते ही सिंह को क्रोध आ गया, वह उसे मार डालने की इच्छा से उठा। व्याघ्र की माता ने उसे समझा कर शृगाल को बचा दिया। फिर वह वन में जाकर ईश्वर स्मरण करने लगा और समय पाकर शरीर त्याग स्वर्गगामी हुआ। राजा होकर बुरी करनी करके शृगाल योनि पाया और सियार होकर अच्छी करनी करके स्वर्ग गया। इससे कर्म प्रधान है। बुरे कर्मों का त्याग देना ही श्रेष्ठ है।

हे राजन्! आलस्य आपदा का रूप है, उससे सब तरह की हानि होती है। जो राजा आलस्य त्याग कर समुचित उद्योग करता है, वह सदा प्रसन्न रह कर धन धान्य और ऐश्वर्य की निरन्तर वृद्धि करता है।

प्रबल शत्रु के साथ नम्र व्यवहार करना चाहिये। राजा सदा बलवान बैरी से सावधानी के साथ नम्रता ग्रहण कर कार्य साधन करे, फिर समय आने पर उच्चता का भाव ग्रहण करने से आनन्दलाभ होता है।

युधिष्ठिर ने फिर हाथ जोड़ कर पूछा—हे महात्मन्! यदि ढिठाई से हठ करके मूर्ख जन पंडित को दुर्वचन कहने लगें तो पंडित को किस तरह उससे बर्ताव करना चाहिये? अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष चारों पदार्थों को समझा कर कहिये। राजा की बात सुन कर पितामह बोले—

हे धर्मराज! पंडित को चाहिये कि मूर्ख के वाक्यबाणों को सहन करे। उसके समान आप

कटुवचन न कहे। गुणवान चतुर हंस कौए के साथ बकवाद नहीं करते। उस समय पंडित को यह सोच कर चुप रहना चाहिये जैसे मूर्ख मुरैला पूँछ उठा कर नाचता है और गुदा दिखाने में उसे लज्जा नहीं आती। कितने ही मुख पर प्रशंसा करके ओट में निन्दा करते हैं, किन्तु बुद्धिमान उनकी बातों पर क्रोध नहीं करते। जो चलनी के समान गुण को दूर कर अवगुण रूपी तुष का संग्रह करता है, ऐसे खलों से चतुर को दूर ही रहना चाहिये। जिस प्रकार पागल कुत्ते से मनुष्य दूर रहते हैं, उसी तरह सुजान लोग ऐसे अधम मनुष्यों से किसी प्रकार का कलह न करके दूर भागते हैं।

ऋतुसमय अपना धर्म विचार कर जो पुत्र के लिये काम किया जाता है, वह व्यापार अर्थ, धर्म और काम है। अर्थ का मूल धर्म है और काम का मूल अर्थ है। ऋतुकाल उसकी उत्पत्ति का समय है, इसलिये विचारवान् उस समय को व्यर्थ नहीं जाने देते। अर्थ और धर्म से जो फल प्राप्त होता है, वही काम है। मुक्ति विलक्षण फल है, वह ईश्वर की उपासना से प्राप्त होती है। अर्थ धर्म युक्त काम उत्तम है और उसके बिना निन्द्य है। बिना अर्थ धर्म के जो मतिमन्द राजा काम का चाकर होता है, वह अज्ञानी और पापी है तथा प्रजा के लिये गृहवासी सर्प की भाँति दुःखदायी है। अपने पापों का विचार कर ग्लानि के साथ जो राजा सत्संग में प्रेम कर दुर्गुणों को त्याग देता है और नियम धारण कर लेता है वह फिर भी सुधर जाता है। जगत में धर्म की स्वभावतः प्रशंसा होती है इसलिये राजा को स्वधर्म में अनुरक्त होना परमावश्यक है। राजा को शील का त्याग कदापि न करना चाहिये, क्योंकि जहाँ शील रहता है वहाँ सारे ऐश्वर्य निवास करते हैं।

हे राजन्! आशा के समान दुःखदायी वस्तु संसार में दूसरी नहीं है। आशा के पीछे पड़ कर मनुष्य बावला हो जाता है। सर्वस्व त्याग कर जिसने आशा का त्याग नहीं किया उसने कुछ नहीं त्यागा। आशा अपमान की जड़ है, इसलिये बुद्धिमान को यत्नपूर्वक उसे त्यागना चाहिये। जो राजा आशायुक्त अर्थी को देख कर उसकी आशा पूरी करता है, वह काशीपति के समान सुखी होकर सदा विलास करता है। जो पहले आशा देकर पीछे निराश करता है, वह पानी में डाले हुए बतासे की तरह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

परम प्रवीण पितामह के उपदेशों को सुनकर धर्मराज ने कहा—हे महामते! आप की अमृतमयी वाणी को श्रवण कर मेरी इच्छा पूरी नहीं होती है। जो बात आप के मुख से जानने योग्य है, उसको मैं श्रद्धापूर्वक सुनना चाहता हूँ। आपदा प्राप्त होने पर राजा किस मार्ग में चल कर सुखी होता है? और हृदय में पीड़ित हो कर जो प्रत्यक्ष में क्रुद्ध होता है, वह राजा सहनशक्तिहीन हो जाता है फिर उसे कौन सा पथ अवलम्बन करना चाहिये?

राजा युधिष्ठिर के प्रश्न को सुन कर पितामह बोले—हे धर्मराज! जिस राजा की सेना नष्ट हो जाती है और चतुर भलाई चाहनेवाले मित्र नहीं होते तथा जिसका मंत्र प्रगट सब के जानने योग्य होता है, वह अवश्य आपदाग्रस्त होता है। जिस राजा का मन्त्री लोभी और शत्रु प्रबल होता है तथा बिना विचारे कार्य करता है, वह आपदा में घिर जाता है। प्रत्येक कार्य में विलम्ब करनेवाला राजा विपत्ति में फँसता है। वह जिस प्रकार पुनः सुख सम्पति पा सकता है, उस अनुपम यत्न को मैं कहता हूँ, सुनो। पवित्रतापूर्वक इष्टदेव का ध्यान करते हुए धर्म का चिन्तन करे और नीति से मन्त्र दृढ़ करके जीतने की युक्ति का विचार करे। सदा सावधान प्रसन्न रह कर धीरज रक्खे हृदय में सहम कर सन्तोष करके हार मान यत्न न त्याग दे। विचार के साथ आत्मरक्षा के लिये धनव्यय करे। भावी समय के लिये धन का संचय रक्खे। शत्रुदल में दाम और भेद नीति से अन्तर डालने का प्रयत्न

करे। अवसर पाकर निर्भयता के साथ द्रव्य खर्च करके धरती प्राप्त करने का उद्योग करे। जब साम, दाम और भेद से काम न सधे तब विजययश पाने की इच्छा से युद्ध करना चाहिए। जो शूरता के साथ थोड़े शुद्ध भटों की सहायता से संग्राम करता है वह विजयी होता है शत्रु बध करके धरती का राज्य और मरने से देवलोक का सुख प्राप्त होता है। इस सिद्धान्त से युद्ध करने पर दोनों तरह से जीत समझनी चाहिये।

शत्रुप्रबल हो तो साम उपाय से भाग लेकर चुप रह जाय किन्तु उसका विश्वास न करके कौए की भाँति सदा चौकन्ना रहे। कोष, सेना को बढ़ाता रहे और चतुर मन्त्री की सम्मति से अवसर पाकर युद्ध करके धरतीरत्न प्राप्त करे। नीति त्यागे बिना आपदा नहीं आती, नीति के सेवन से भारी आपदा भी शीघ्र नष्ट हो जाती है। राजा अपने राज्य से तथा पर राज्य से कोष की वृद्धि करे, क्योंकि राजा के लिये यह परम धर्म है, निर्धनता महान दोष है। कोष राज्य की जड़ है और राजा को बढ़ानेवाला है। राजा को न तो निस्पृह और न अत्यन्त लालची होना चाहिये। उच्च वृत्ति से पतन होना मृत्यु के समान दुखदाई है इसलिये धन, सेना और मित्रों की वृद्धि करना चतुर राजा का परम कर्म है।

यदि प्रबल शत्रु से कोई उपाय न चल सके तो चोरों का संग कर चोरी से धन संग्रह करे। दिन को वन में निवास कर स्थान बदलता रहे। इस प्रकार यद्यपि धन इकट्ठा करके सेना तैयार करे और फिर प्रगट रूप से शत्रु का मुकाबला करे।

चोरी में भी तीन बात वर्जित है। मनुष्य वध, सर्वस्व हरण और सोते हुए को मारना। किन्तु ब्राह्मण का धन कदापि अपहरण नहीं करना चाहिये। धर्म का पालन करने में कभी असावधान न हो। राजा का बल धर्म ही से बढ़ता है और अधर्म से खिन्न होता है। बलवान और बुद्धिमान असाध्य को भी साध्य कर देता है और दुराचारी सदा दुखी रहता है। सदाचारी पुरुष दोनों लोकों में प्रसन्न रहता है और दुराचारी को सर्वत्र शोक ही प्राप्त होता है।

धर्मराज ने कहा—हे पितामह! यदि धर्मात्मा राजा के राज्य में चोरों का अधिक भय उत्पन्न हो तब राजा को कौन सी नीति का अवलम्बन करना चाहिये।

भीष्म बोले—हे युधिष्ठिर! मैं एक पूर्व का इतिहास कहता हूँ उसको सुनो। सौवीरपुर नामक नगर में शत्रुंजय राजा राज्य करता था। वह चोरों के उपद्रव से आपदाग्रस्त होकर भरद्वाज मुनि के पास गया और आपदा दूर करने का उपाय पूछा। भरद्वाज ने कहा—

राजन्! राजा निपुनाई से दंड द्वारा समस्त कार्यों को सम्पन्न करे। प्रजा, सेवक और बन्धु वर्ग के छिद्रों को परखता रहे। अपराध प्रमाणित होने पर क्षमा न कर दंडविधान करे। दंडनीति की बुद्धिमान प्रशंसा करते हैं और दंड ही धर्म की रक्षा करता है। दंड प्रजा का पालन, अर्थसंचय और शत्रु को समय पाकर पराजित करना राजा का कर्त्तव्य है। जिस प्रकार ऋण तथा अग्नि का शेष वृद्धि को प्राप्त हो हानिकारी होता है उसी प्रकार शत्रु भी समय पाकर बलवान और नाशकारी होता है। हारे हुए शत्रु का शेष न रहने देना चाहिये। जनसंहार, नगर विध्वन्स और मन्दिर आदि तोड़ फोड़ कर तथा मार्ग नष्ट करके शत्रु के गढ़ को अपने अधिकार में करना चाहिये। साम, दाम, और भेद से शत्रुवर्ग के मनुष्यों को अपने बश में करके सब काम नरमी से साधन करे। शत्रु के ललकारने पर पीछे न मुड़े किन्तु समान से युद्ध करे और प्रबल शत्रु से साम और दाम नीति करके उसे अपने वश में करे। शरणागत की रक्षा करना वीर राजा का परम कर्त्तव्य है। चोरी करनेवाले को दंड देने में कदापि नरमी न दिखावे।

पितामह के कहे हुए आपद्धर्म को सुन कर धर्मराज बोले—हे पूज्यवर! उत्तम धर्म के नष्ट होने पर जब मर्यादा भंग होकर अधर्म ही धर्मरूप हो जाता है तब राजा और इतर मनुष्यों को किस प्रकार व्यवहार करना चाहिये। विविध आपदाओं से ग्रस्त होने पर ब्राह्मण को कौन सी आजीविका करके कुटुम्ब का पालन करना चाहिये। भीष्मपितामह ने कहा—

हे धर्मराज! सुनिये, वर्षा न होने से देश में चारों ओर दुकाल का राज्य हो जाता है। उस समय धर्म की मर्यादा लोप हो जाती है और अधर्म (चोरी ठगी आदि) ही का साम्राज्य धरती पर फैलता है जिससे राज्यव्यवस्था पर घना आघात पहुँचता है। ऐसे भीषण आपद् के समय धीरवान को अपने धर्म में दृढ़ रह कर जीवन व्यतीत करना योग्य है। इस पर मैं एक इतिहास कहता हूँ उसको सुनो। एक बार त्रेता और द्वापर युग के सन्धिकाल में बारह वर्ष पर्यन्त वर्षा नहीं हुई जिससे संसार में अत्यन्त भीषण दुर्भिक्ष पड़ा। नदियाँ सूख गयीं, कुएँ, झरने, तालाब, बावली आदि जलाशयों में जल का अभाव होगया। अन्नजल के विना जीवों का अधिकता के साथ विनाश होने लगा। जो जहाँ अवसर पाता लूटखसोट कर किसी प्रकार जीवन निर्वाह करता था, सदाचार और उत्सव देवपूजन की चर्चा का लोप सा होगया। लता वृक्ष सूख कर नष्ट होगये, धरती श्मशान सी दिखाई देने लगी। दुकाल की भीषणता यहाँ तक बढ़ गयी कि मनुष्य मनुष्य को खाने लग गये। उस महाकाल के समय क्षुधा से पीड़ित होकर महर्षि विश्वामित्रजी अपना आश्रम छोड़ कर भोजन के लिए इधर उधर दौड़ने लगे। उन्हें एक चाण्डाल का घर दिखाई पड़ा जिसके चारों ओर हड्डियों का ढेर जमा था। कुत्ते गदहे, शूकर, मनुष्य आदि के अस्थिपञ्जर से वह घर घिरा हुआ बड़ा ही घिनावना था। मांसभक्षी जीव जन्तु और पक्षी परस्पर कलोल करते हुए दिखाई देते थे। विश्वामित्रजी इतने क्षुधार्त थे कि उस मकान के भीतर घुस गये, वहाँ अपने योग्य भिक्षा की कोई भी वस्तु नहीं देखी। कुत्ते का मांस बिखरा हुआ पड़ा था उन्हों ने आपत्तिकाल में प्राण बचाने के लिये चोरी करना श्रेष्ठ समझा। जब विश्वामित्र ने कुत्ते की जङ्घा उठाना चाहा तब वह चाण्डाल जाग पड़ा, उसने डाँट कर पूछा तू कौन है? मुनि ने कहा—

हे चाण्डाल! तुम मुझे चोर समझ कर मत मारो। मैं विश्वामित्र हूँ और क्षुधा से अत्यन्त पीड़ित हो तुम्हारे घर भिक्षा के लिये आया हूँ परन्तु भिक्षा के योग्य कोई वस्तु न पाकर कुत्ते की जङ्घा चुराना चाहता था, तुम मेरे इस अपराध को क्षमा करो।

विश्वामित्र का नाम सुनते ही वह मातङ्ग नामक चाण्डाल चौंक कर उठा और उनके चरणों पर गिर कर अश्रुपात करते हुए भयभीत हो हाथ जोड़ कर बोला—हे ब्राह्मणदेवता! यह चाण्डाल का घर है और यह कुत्ते की जङ्घा आपके लिये सर्वथा त्याज्य और अखाद्य वस्तु है। मेरे पास कोई ऐसी सामग्री नहीं, जिससे मैं आपका सत्कार करूँ।

चाण्डाल की बात सुन कर विश्वामित्र ने कहा—हे मातङ्ग! तू मन में डर न मान, मैं भूखा और निर्बल हूँ इस समय मुझ में भक्ष्याभक्ष्य का विवेक नहीं रह गया है। मुनि की बात सुन कर चाण्डाल फिर बिनती करने लगा।

हे महाराज! मैं आपको उपदेश देने योग्य नहीं हूँ, पर इतनी प्रार्थना करूँगा कि कुत्ते का मांस शृगाल से भी निकृष्ट कहा जाता है। वह किसी प्रकार ब्राह्मण के लिये भक्ष्य नहीं है। आप आपद्ग्रस्त हैं इसमें सन्देह नहीं, परन्तु ऐसे ही समय में धर्म की रक्षा करना परमावश्यक है इसलिये जिसमें धर्म का नाश न हो और आपकी बड़ी तपस्या का निर्मूल न हो जाय ऐसा उपाय कीजिये। फिर विश्वामित्र ने कहा।

हे चाण्डाल ! तू सत्य कहता है, परन्तु मैं क्षुधा से पीड़ित हो दौड़ते दौड़ते इतना थक गया हूँ कि अब कुछ ही समय में यदि भोजन न मिला तो प्राण न रहेंगे । पुरुष को चाहिये कि प्राण-रक्षा का विचार करके धर्माचरण करे । क्षत्रिय का धर्म इन्द्र से और ब्राह्मण का धर्म अग्नि से सम्बन्ध रखता है । मृत्यु से जीवन श्रेष्ठ है, इसलिये मैं इसको अग्नि में पवित्र करके भक्षण करूँगा । जिससे प्राणरक्षा हो सकेगी तभी धर्म भी होगा । यदि मर जाऊँगा तो फिर धर्म किस प्रकार हो सकेगा ? तपस्या करके मैं इस पाप को इस तरह दूर कर दूंगा जैसे अन्धकार को सूर्य दूर कर देते हैं ।

इस प्रकार बहुत वाद विवाद के अनन्तर विश्वामित्र कुत्ते की जङ्घा लेकर अपने आश्रम में आये और अग्नि प्रज्वलित कर उसे सिद्ध किया । जब देव पितरों का पूजन कर उसे अर्पण करना चाहा तब देवराज से नहीं रहा गया वे हव्यान्न लिये हुए विश्वामित्रजी के समीप आये और विनती करके उन्हें भोजन कराया और वर्षा भी किया जिससे भाँति भाँति की ओषधियाँ, अन्नादि उत्पन्न हुए और दुकाल का कष्ट जाता रहा ।

हे कुन्तीनन्दन ! इस प्रकार संकट के समय साहसी और चतुर मनुष्य युक्ति से अपने को बचावे । जीवन से ही मनुष्य पुण्य को प्राप्त होकर कल्याण का उपभोग करता है । धर्माधर्म का निश्चय करके ज्ञानी पुरुष को संसार में कर्म करना योग्य है ।

पितामह के वचनों को सुन कर धर्मराज ने कहा—हे पितामह ! शरणागत की रक्षा करने का धर्म मुझ से कृपा कर कहिये ।

भीष्म पितामह ने प्रसन्न होकर कहा—हे धर्मराज ! सुनिये, शरणागतों पर कृपा करने से शिवि आदि राजाओं ने बड़ी सिद्धियाँ प्राप्त की हैं, इससे बढ़ कर महान् पुण्य पुरुष के लिये दूसरा नहीं । जो अपनी अनभलाई सोच कर शरणागत का त्याग करता है उसे देखने से पाप लगता है । पूर्व में एक कबूतर ने शरण में आये हुए शत्रु की व्याध से अपने शरीर का बलिदान करके उसकी प्राण रक्षा की और श्रेष्ठगति को प्राप्त हुआ वह कथा मैं तुमसे कहता हूँ । किसी महा वन में एक महा पापी हिंसक चिड़ीमार प्रतिदिन जाल लेकर पक्षियों को फँसा कर उन्हें मारता और भक्षण करता था । इस प्रकार का भीषण कर्म करते उसे बहुत दिन बीत गया । एक दिन वह वन में शिकार के लिये निकला और खूब ज़ोर से अन्धड़ आया तथा गहरी वृष्टि हुई । बिजली चमकने लगी, ओले पड़े, सन्नाटे की हवा से जाड़ा उत्पन्न हुआ वह व्याधिक हिलता काँपता इधर उधर छायादार वृक्ष ढूंढते हुए भटकता फिरता था । एक कपोती हवा के झोंके से अपने घोंसले से गिर कर धरती पर बेहोश पड़ी थी व्याध ने उसे देखते ही दौड़ कर उठा लिया और पिंजड़े में डाल मन में प्रसन्न हुआ । फिर वह एक बड़े वटवृक्ष के नीचे जा पहुँचा और मोटी डाल के नीचे खड़ा हो कर प्राण बचाने की चिन्ता करने लगा । दैवयोग से थोड़ी ही देर के बाद आँधी बन्द हुई और पत्थर पानी भी बन्द होकर आकाश स्वच्छ हुआ किन्तु सन्ध्या होगई । व्याध ने सोचा कि घर दूर है, शीत के मारे शरीर काँप रहा है और भूख से चलना भी कठिन है फिर कैसे घर पहुँच सकता हूँ और भूख की ज्वाला से यहाँ रहने पर भी रात में मर जाऊँगा । उसने वृक्ष के देवताओं से विनती की कि मेरी रक्षा कीजिये यदि अग्नि मिल जाती तो इस कपोतिनी को भून कर खाता इससे क्षुधा शान्त होती तथा शीत से भी रक्षा हो जाती ।

वह वृक्ष पक्षियों का निवासस्थान था और जिस कबूतर की स्त्री व्याध के पिंजड़े में बेहोश फँसी थी वह कबूतर भी सकुटुम्ब उसी वृक्ष पर रहता था । समय पर कबूतरनी के न आने से वह अत्यन्त दुखी हो रहा था कि आज ओरों का आपत्काल सा मालूम होता है प्यारी किसी आफत में

पड़ कर मर गई। हाय ! बिना पत्नी के घर में रहने से सुख नहीं, अब मैं भी अपना प्राण त्याग दूँगा, इतने ही में व्याधा वृक्ष के नीचे आया। कबूतरनी को बेहोश उसके जाल में फँसी देख कबूतर को मर्मान्तिक दुःख हुआ किन्तु व्याध की दुर्दशा सुन कर कबूतर को अपना दुःख भूल गया वह दया से पसीज उठा। इतने में कबूतरनी भी सचेत हो गयी, उसने स्वामी को बिलखते देख कर अपनी भाषा में निवेदन किया।

स्वामिन् ! मेरे इस अनित्य शरीर के लिये आप इतना खेद काहे को कर रहे हैं, यह एक दिन नष्ट होने ही वाला है। यह व्याधा शीत और क्षुधा से उत्पीड़ित हो कर आप की शरण आया है इसलिये आप का धर्म है कि इस की रक्षा कीजिये, कहीं से इस को अग्नि ला कर दीजिये जिसमें यह मुझे भून कर खा के अपनी क्षुधा शान्त करे और आग द्वारा शीत से प्राण बचावे। इस प्रकार कपोती की बात सुन कर और उचित विचार कर कबूतर शोक त्याग मन में प्रसन्न हुआ और उड़ कर समीप के गाँव से अग्नि की चिनगारी लाकर नीचे गिराया और साथ ही अपना घोंसला उजाड़ कर पृथ्वी पर गिरा दिया। व्याध ने आग जलाई जब शीत का विकार दूर हुआ तब उसने कपोती को निकालने के लिये पिंजड़े का दरवाज़ा खोला कि इतने में वृक्ष पर से कबूतर आग में कूद पड़ा और कपोती भी पति के साथ ही अग्नि में जा पड़ी। व्याधा ने आश्चर्य से घबरा कर दोनों पक्षियों को तुरन्त हाथ से पकड़ कर अग्नि से बाहर किया और अपने को कोटि कोटि प्रकार से धिक्कारने लगा कि ये पक्षी हो कर इस प्रकार शरणागत की रक्षा के लिये प्राण देते हैं और मैं मनुष्य हो कर इन्हें खाने को तैयार हूँ। उसके मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ और जाल आदि फेंक कर वन में स्थित हो ईश्वर भजन करने लगा। कपोत कपोती शरीर त्याग कर दोनों स्वर्ग सिधारे और अमरलोक में विविध ऐश्वर्य का उपभोग करने लगे। शरणागत की रक्षा करने से दोनों लोक में धन्य और परलोक में सुखी हुए।

युधिष्ठिर ने फिर हाथ जोड़ कर पूछा—हे महात्मन् ! किन कर्मों के करने से मनुष्य निर्दय कहलाकर नरकगामी होता है और यदि वह अपने को विशुद्ध बनाना चाहे तो किस प्रकार के प्रायश्चित्त करने से पूर्ववत् दोष रहित हो सकता है ?

भीष्मपितामह बोले —हे धर्मराज ! सुनिये, जिसकी प्रीति निन्दित कर्मों के करने में होती है वह ब्रह्मा से रचा हुआ निर्दय प्राणी लोक परलोक दोनों का नाशक होता है। उसके कर्म सब विपरीत और निन्दनीय होते हैं। जो दान देकर अपने मुँह से अपनी बड़ाई करता है, स्नेह से विश्वास दिला कर छलनेवाला, भागों का अच्छी तरह विभाग न करनेवाला, अहङ्कारी, सब पर सन्देह करनेवाला, आश्रमों और वर्णधर्म को नसानेवाला, हिंसक, अविवेक से, अवगुणों से स्नेह रखनेवाला, दूसरे की निन्दा करनेवाला, उपकार करनेवाले को शत्रु और ठग की भाँति माननेवाला और कुटुम्बियों से छिपा कर अकेले उत्तम भोजन करनेवाला प्राणी निर्दय कहा जाता है। जिन दुष्ट और गर्हित आचरणों को ज्ञानी लोग यत्नपूर्वक त्यागते हैं निर्दय पुरुष उन्हीं बुरे कर्मों को बड़े चाव से करता है तथा उसे करने पर अपने को धन्य और श्रेष्ठ कर्मी समझता है। इस तरह के पतितों के साथ रहने, स्नेह करने, ब्राह्मणी के साथ सहवास करने, अगम्यागमन, ब्राह्मण का धन चुराने और मद्य पीने से द्विजाति मात्र पतित हो जाते हैं। पतित के साथ भोजन करने से कर्मी ब्राह्मण भी एक वर्ष में पतित हो जाता है।

अब मैं इन पापों का संक्षेप में प्रायश्चित्त वर्णन करता हूँ। यदि ऐसे पतितों के संग ब्राह्मण एक रात्रि विहार करे तो वह तीन वर्ष व्रत करने से शुद्ध होता है। ब्राह्मण की निन्दा करनेवाले का कोई प्रायश्चित्त नहीं है इसलिये ब्राह्मण की निन्दा कभी न करना चाहिये।

ब्राह्मण के रक्त से जितनी धूल भींगे, रजकण की संख्या के बराबर वर्ष तक मारनेवाला नरक भोग करता है। भ्रूणहत्या करनेवाला युद्ध में शस्त्र द्वारा प्राण त्यागने से शुद्ध होता है। अगम्या स्त्री (गुरुपत्नी ब्राह्मणी, कन्या आदि) के साथ गमन करनेवाला प्राणी जलती हुई लोह की स्त्री से लिपट भस्म हो प्राण त्याग करने से शुद्ध होता है। ब्रह्महत्या करनेवाला बारह वर्ष पर्यन्त कपाली ब्रह्मचारी मुनि होकर तप करने से पाप मुक्त होता है। मद्यपान करनेवाला ब्राह्मण तीन वर्ष अग्निष्टोम यज्ञ द्वारा ईश्वर का पूजन करने से शुद्ध होता है। अथवा एक बैल और हज़ार गोदान करने से मुक्त हो सकता है।

अज्ञानता से छोटे छोटे कृमियों की हत्या करने में पश्चात्ताप ही से पाप मुक्त होता है। गोहत्या का पाप एक वर्ष भिक्षा माँग कर तीर्थों में भ्रमण करने से छूटता है। धोखे से गोहत्या करनेवाला चर्म समेत गौ की पूँछ लेकर तथा हाथ में मट्टी का बरतन लिये प्रतिदिन सर्वत्र अपने पाप को कहता फिरे और सात घरों से भीख माँगने पर जो मिले उसे खाकर रहे इस प्रकार बारह दिन में पवित्र होता है। आस्तिक प्राणी केवल एक गोदान कर देने से ही शुद्ध हो जाते हैं। इसी प्रकार और भी प्रायश्चित्त अज्ञानता से किये गये पापों के हैं किन्तु जान बूझ कर किये गये पापों का प्रायश्चित्त नहीं हो सकता।

मोक्षधर्म का वर्णन।

युधिष्ठिर ने कहा—हे पितामह ! आपने राजधर्म और आपद्धर्मों का वर्णन उत्तमता से किया, जिसके सुनने से मुझे परम सन्तोष हुआ। अब कृपा कर आश्रमों के श्रेष्ठ धर्म का निरूपण कीजिये।

भीष्म पितामह धर्मराज का लोकोपकारी सुहावना प्रश्न सुन कर बोले—हे धर्मराज ! धर्म के अनेक मार्ग हैं और वे सब मोक्ष से सम्बन्ध रखते हैं। प्रायः वर्तमान शरीर से किया हुआ धर्म शीघ्रता से फलीभूत नहीं होता वह जन्मान्तर में प्राप्त होता है, किन्तु जो धर्म ज्ञानपूर्वक किया जाता है वह शरीर रहते इसी लोक में फलप्रद होता है। यदि तुम्हें इस बात की शंका हो कि जब ज्ञानयुक्त धर्म का फल प्रत्यक्ष होता है तब ज्ञान ही के लिये प्रयत्न करना चाहिये, धर्म के लिये उद्योग करना व्यर्थ है। यह ठीक नहीं, क्योंकि श्रेष्ठजनों का कथन है कि ऐसा सन्देह करना ही न चाहिये, क्रिया कभी निष्फल नहीं होती। पुत्रादि, स्वर्ग और वेदान्त-विचार इन तीनों में जो कामना पुरुष के हृदय में निश्चित रूप से स्थान पाती है उसी में वह फल की इच्छा रखता है। ज्यों ज्यों संसार को अनित्य नाशवान समझता जाता है त्यों त्यों उसके हृदय में प्रशंसनीय वैराग्य बढ़ता है। इस दशा में वह संसार को दुःखदायी जान कर मोक्ष के लिये प्रयत्न करता है। माता, पिता, पुत्र, स्त्री, धन आदि का नष्ट होना मनुष्य के लिये दुस्सह शोकदायक है, परन्तु ऐसी अवस्था में संसार को मिथ्या और दुःख रूप जान कर चित्त से खेद को सर्वथा दूर कर देना चाहिये। मैं राजा सेनजित का इतिहास तुम्हारे बोध के लिये वर्णन करता हूँ, वह राजा जिस प्रकार पुत्रशोक से महा व्याकुल हुआ था और एक ब्राह्मण ने उसको अपने सदुपदेश से सावधान किया था उस कथा को मैं संक्षेप से कहता हूँ तुम ध्यान देकर सुनो, इससे हृदय का सन्देह दूर हो जायगा।

राजा सेनजित पुत्रशोक से विह्वल हो बहुत ही दुःखी हो रहे थे, उस समय एक परोपकारी ज्ञानी ब्राह्मण को राजा की व्याकुलता पर दया आई और उन्हों ने समीप आकर कहा—

हे राजन्! तुम विज्ञ होकर मूर्खों की भाँति शोक से सन्तप्त क्यों हो रहे हो? जड़ चेतन संसार के सभी जीव उसी स्थान में जाँयगे जहाँ तुम्हारा पुत्र गया है। एक दिन कुटुम्बवाले तुम्हारे लिये भी इसी प्रकार रुदन करेंगे। संसार अनित्य है, इसमें जिन समूह जीवों को देख रहे हो कोई स्थिर रहनेवाले नहीं हैं। सब कर्मानुसार सुख दुःख के भोगनेवाले हैं इसलिये जो निश्चित नाशवान है उसके निमित्त हर्ष या शोक करना व्यर्थ है। जीवात्मा ईश्वर का अंश है, वह अविनाशी और किसी दूसरे का नहीं है। जब आत्मा ही अपना नहीं है तब पुत्र, स्त्री, भाई, माता, पिता, धन ये कब अपने हो सकते हैं? जिस पर अपना कुछ अधिकार नहीं, उसके लिये शोक करना अथवा उसके स्नेह में पड़कर दुखी होना सर्वथा अनुचित और गहरी भूल के सिवा दूसरा क्या कहा जा सकता है? जगत का समागम तो ऐसा ही है जैसे समुद्र में बहते हुए दो काठ दैवयोग से मिल जाते हैं और फिर लहरों की झोंक से अलग हो जाते हैं उसी प्रकार पुत्र पौत्रादि के समागम को समझना चाहिये। ये सब दुःख के हेतु हैं। ज्ञानी पुरुष ऐसा जान कर इनके स्नेह में नहीं लिप्त होते। न तो तुम अपने पुत्र को जानते हो कि वह कौन था और कहाँ गया उसी तरह तुम्हारा पुत्र भी तुम्हें नहीं जानता है। मैं पूछता हूँ फिर तुम किसका शोक करते हो? यदि आत्मा का शोक करते हो तो वह अविनाशी ईश्वर का अंश सदा एक रस रहता है, कदाचित शरीर के लिये दुखी होते हो तो वह जड़ है, ऐसी दशा में काठ पत्थर और मिट्टी के लिये भी वैसाही दुःख करना होगा। तृष्णा दुःखों की जड़ है, इसके सर्वथा त्याग देने ही से सुख प्राप्त होता है। सुख और दुःख पहिये की तरह मनुष्य के पीछे घूमा करते हैं, पर वे एक समान कभी नहीं रहते। मनुष्य जिस जिस शरीर से जो जो कर्म करता है वह उसी उसी शरीर से उसके फल को भोगता है। ज्ञानी लोग कहते हैं कि स्थूल और सूक्ष्म दोनों शरीर साथ ही उत्पन्न होते हैं तथा विविध रूप प्रकाश कर जगत में साथ ही रह कर विनाश भी हो जाते हैं। प्रिय अप्रिय सुख और दुःख को समान जान कर ज्ञानी पुरुष शोक नहीं करते। शास्त्रज्ञ, शान्तचित्त और जितेन्द्रिय पुरुष को शोक कभी स्पर्श नहीं कर सकता। जब ममता की कल्पना हृदय में की जाती है तभी शोक होता है, वह विषयी जीवों में होती है इसी से वे तरह तरह के दुःखों का अनुभव करते रहते हैं। विषय और स्वर्ग के सम्पूर्ण सुख मिलकर भी वैराग्य के आनन्द को कुछ भी नहीं पा सकते अर्थात् वैराग्य सुख के मुक़ाबिले में संसार के सभी सुख अत्यन्त तुच्छ हैं।

इस प्रकार ब्राह्मण के मुख से सगर्भ बात सुन कर राजा सेनजित के हृदय का शोक दूर हो गया और वे प्रसन्न हुए।

धर्मराज पुनः हाथ जोड़ कर बोले—हे पितामह! यज्ञ के द्वारा मोक्षलाभ होता है और यज्ञों का साधन बिना धन के हो नहीं सकता, फिर निर्धन मनुष्य जो शास्त्र की आज्ञा के अनुसार अपना कर्म करते हैं उन्हें किस प्रकार मुक्ति मिलती है? यदि कर्म करनेवाले पुरुष को धन न प्राप्त हो तो वह धन का लोभी मनुष्य किस प्रकार का कर्म करके सुखी हो सकता है?

युधिष्ठिर की बात सुन कर भीष्मपितामह प्रसन्न होकर बोले—हे कौन्तेय! सुनो, जिसके-पास धन नहीं है और उद्योग करने पर भी उसके हाथ सम्पति नहीं आती है तब मोक्ष की इच्छा रखनेवाला चतुर प्राणी लोभ में पड़ कर नीचकर्म (चोरी, जुआ, परधन अपहरण) न करे, क्योंकि निन्द्य कर्मों से वह पतित होकर नरकगामी होता है। वह संसार को तुच्छ समझ कर विवेक बुद्धि से दैव की प्रधानता पर विचार करे और सन्तोष ग्रहण करके जगत के समस्त सुख दुःख का समान अनुमान, मोक्ष की प्राप्ति के लिये सब का त्याग कर परमात्मा नारायण के चरणों में

मन लगा कर निर्भय चित्त हो जगती पर विचरण करे। बिना त्याग के सुख और मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती, इससे मोक्ष प्राप्ति के लिये यज्ञ से बढ़ कर त्याग को मैं श्रेष्ठ मानता हूँ। पूर्व में एक मंकी नामक वैश्य हुआ था उसका इतिहास तुमसे वर्णन करता हूँ जिससे तुम्हारे प्रश्न का पूर्ण समाधान हो जायगा।

मंकी पहले बहुत बड़ा धनी था, किन्तु धीरे धीरे उसकी सारी सम्पत्ति क्षीण हो गयी। उसके हज़ार प्रयत्न करने पर धन की बढ़ती नहीं हो सकी, जब थोड़ा सा धन बाक़ी रह गया तब उसने बचे हुए द्रव्य से दो बैल मोल लेकर खेती करने का निश्चय किया। एक दिन दोनों बैलों को जुए में जकड़ कर खेत की ओर ले चला। मार्ग में बैल भड़के और एक मतवाला ऊँट बैठा था उसकी गरदन पर जा पहुँचे। ऊँट भी घबरा कर उठा और भाग चला। दोनों बैल लटकते हुए ऊँट के गले पर प्राण-हीन हो गये। इस प्रकार बैलों को मृतक होते देख कर मंकी को बड़ा दुःख हुआ। वह बार बार अपने भाग्य को कोसते हुए विलाप करने लगा। हाय! मेरे प्रारब्ध के प्रभाव से अनायास बैलों ने ऊँट की गरदन पर जाकर प्राण गँवा दिये, बिना प्रारब्ध के उद्योग की सिद्धि नहीं होती। अर्थसाधन की आशा में पड़ कर मनुष्य नाना प्रकार के कष्ट भोगते हैं, आशा ही सम्पूर्ण दुःखों की जड़ है। आशा को त्यागनेवाला वैराग्यवान प्राणी ही सुख से सोता है। वह अपने को बार बार धिक्कारने लगा कि अरे धन के लोभी मूर्ख मन! तू ने आशा की डोरी में बाँध कर मुझे बहुत ही धोखा दिया, धन प्राप्ति की प्रबल इच्छा से तूने ऐसे कर्म कराये जिससे दुःख और अपमान के सिवा एक कौड़ी भी हाथ नहीं लगी। यह मेरी बड़ी अज्ञानता है जो मैं तेरा क्रीड़ामृग बना हूँ। इच्छारहित पुरुष किसी के आधीन नहीं होता और इच्छा का अन्त किसी ने आज तक नहीं पाया। इसलिये अब मैं सारी कामनाओं को त्याग कर ईश्वर में लीन रहूँगा और तेरे आधीन हुआ धन के लोभ में पड़ कर अब अपने को निरादर का पात्र न बनाऊँगा। धन की इच्छा बड़ी ही दुखदायिनी है और हानि होने पर मृत्यु से अधिक कष्ट होता है। धन पाने पर भी इच्छा पूरी नहीं होती वह दोनों प्रकार दुःख के सिवा सुख नहीं प्राप्त होने देती है।

इच्छा के दुर्गुण और उससे उत्पन्न होनेवाले दोषों को विचार कर अब मैं सतोगुण में प्राप्त हो सुख से विचरण करूँगा। वैराग्य के समान आनन्दप्रद दूसरा कोई स्थान नहीं है, इसलिये इन्द्रियों के विषय तथा कामनारूपी भीषण शत्रु को जीत कर मैं अविनाशी परब्रह्म में लीन हो कर अलौकिक आनन्द का अनुभव करूँगा। इस प्रकार मंकी शोक त्याग कर संसारी कामनाओं से विरक्त हो कर ब्रह्मानन्द में लीन हुआ। बैलों का अकस्मात मृतक होना ही उसके लिये परम वैराग्य का कारण हुआ और अन्त को शरीर त्याग कर वह परमपद को प्राप्त हो सुखी हुआ।

युधिष्ठिर ने कहा—हे पितामह! ज्ञानी लोग कौन सा व्रत लेकर धरती पर विचरण करते हैं और कौन सा उत्तम कर्म करके मनुष्य संसार में श्रेष्ठगति को प्राप्त होता है?

भीष्मपितामह बोले—हे धर्मराज! पूर्वकाल में राजा प्रहलाद ने इसी प्रकार अजगर वृत्ति मुनि से प्रश्न किया था वह सम्वाद कहता हूँ। एक बार परम भागवत राजा प्रहलाद ने ब्राह्मण मुनि राग द्वेषरहित दृढ़चित्त अजगर वृत्ति से पूछा कि महात्मन्! आप आत्मनिष्ठ, जितेन्द्रिय, अनारम्भ, सत्य-वक्ता और तत्वज्ञ होकर भी बालक के समान विचरण करते हैं। हानि, लाभ, सुख दुःख से रहित सदा सन्तुष्ट निर्मान और दूसरों को मान देनेवाले होकर वसुन्धरा पर आप विहार करते हैं। तत्वदर्शन और उसका अभ्यास किस तरह किया जा सकता है? वह मेरे कल्याणार्थ कृपापूर्वक कहिये।

प्रह्लाद की बात सुन कर ज्ञानी मुनि प्रसन्न होकर बोले—हे प्रह्लाद ! माया के नष्ट होने पर दृश्यमान पदार्थ ब्रह्ममय दिखाई पड़ते हैं, उस अवस्था में द्वैत नहीं रह जाता। इसी से मैं हर्ष विषाद रहित हूँ। आत्मा नित्य और संसार अनित्य है इसलिये किसी भी चमत्कारपूर्ण संसारी वस्तु को देख कर मैं चकित अथवा प्रसन्न नहीं होता। तत्वदर्शी लोग आत्मभाव की सिद्धि कर अन्तर्दृष्टि से संसार को मिथ्या कहते हैं, योग के अनन्तर वियोग और धन प्राप्ति के पीछे सम्पत्ति नाश का अनुमान कर मैं इन दोनों में चित्त नहीं लगाता। तीनों गुणों से युक्त जीव शरीर धारण करने पर मट्टी के घड़े की तरह रूपान्तर होजाता है, फिर नष्ट हो पूर्वरूप में मिलता है। इस उत्पत्ति और विनाश को देखते हुए ज्ञानी पुरुष को कोई बात करने के योग्य नहीं है। जल, थल और व्योमचारी छोटे बड़े जीव मात्र नक्षत्र, चंद्रमा तथा सूर्यादिग्रहों का नियत समय पर नाश होना देखता हूँ, इससे ब्रह्मज्ञान में तत्पर हुआ सदा सुख से सोता हूँ। अनायास प्राप्त होने पर भोजन कर लेता हूँ और न प्राप्त होने पर बहुकाल पर्यन्त बिना कुछ भोजन किये भी ब्रह्मज्ञान के बल से सुखी रहता हूँ। कभी वृक्ष के नीचे धरती पर और कभी महलों में पलँग पर सोता हूँ, कभी मृगचर्म ओढ़ता बिछाता हूँ उसी प्रकार कभी मूल्यवान शाल दुशालों का व्यवहार करता हूँ। दैव इच्छा से प्राप्त होनेवाले सुन्दर अन्न और वस्त्र का त्याग नहीं करता किन्तु उनकी अप्राप्ति में न क्षोभ करता हूँ और न दुखी होता हूँ। प्राप्त वस्तु की रक्षा में लीन नहीं रहता। पवित्रतापूर्वक इसी अजगर वृत्ति का सदा अनुसरण करता हूँ। यह व्रत कल्याणकारी, शोक रहित, अत्यन्त पुनीत, अज्ञानियों को दुर्गम, ज्ञानियों करके आदरणीय, दोनों लोक के लिये सुखकारी और मृत्यु के भय को दूर भगानेवाला है। इस व्रत में किसी वस्तु के प्राप्त होने का काल नियत नहीं है। विषय की लालसा से परे अजगरव्रत का मैं निरन्तर शुद्धान्तःकरण से सेवन करता हूँ।

लोक में मनुष्यों को धन के अभाव में दुखी देख कर शान्तचित्त से उस सुख दुःख, हानि लाभ को दैवाधीन मान कर अहंकारमय तथा राग से रहित जितेन्द्रिय हो धीरज के साथ अजगर व्रत का सेवन करता हूँ। तृष्णा को सर्वथा त्याग कर मैं सुख से धरती पर मनुष्यों के बीच विचरण करता हूँ और इस महान व्रत के प्रभाव से मुझे कभी किसी प्रकार की विषय वासना नहीं सताती। सदैव ब्रह्म-विचार में निमग्न रहता हूँ। भीष्मजी ने कहा जो महात्मा ज्ञानी पुरुष क्रोध, लोभ, मोह, राग, भय से रहित इस व्रत में तत्पर रहते हैं वे सदा सुख से विहार करते हैं उन्हें किसी प्रकार संसार की बाधा पीड़ित नहीं कर सकती।

हे धर्मराज ! एक बार महातेजस्वी भृगुमुनि कैलास के शिखर पर विराजमान थे। भरद्वाज जी विचरण करते हुए वहाँ पहुँचे और प्रणाम करके विनीत भाव से प्रश्न किया कि—हे मुनिराज ! यह सब स्थावर जंगम जीव कहाँ से उत्पन्न हुए हैं और प्रलय में कहाँ समा जाते हैं ? संसार किससे उत्पन्न होता है तथा पञ्चतत्व कैसे हुए हैं ? धर्माधर्म और जीव क्या है ? मुक्त होकर प्राणी किसमें लीन होते हैं, यह सब कृपा कर मुझसे कहिये।

भृगुऋषि ने कहा—हे भरद्वाज ! सब से प्रथम मानस प्रकाश जो अक्षय, अभेद्य, एकरूप, वृद्धि क्षय से रहित प्रसिद्ध है। उसी अक्षर ब्रह्म से जीवों की उत्पत्ति और नाश होता है। पहले महत्तत्व, उससे अहंकार, अहंकार से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी को उत्पन्न किया। स्थूल तत्ववाले चार प्रकार के जीवों की अहंकार से उत्पत्ति है और आकाश आदि पंचतत्व सब में वर्तमान हैं, वे ही महातेजस्वी ब्रह्म के विराट रूप हैं। जिसके पर्वत अस्थि,

पृथ्वी-मांस और मज्जा, समुद्र,-रुधिर, आकाश-उदर, पवन श्वास, नदियाँ-नसें, अग्नि तथा सूर्य्य नेत्र, चन्द्रमा-मन, ब्रह्मलोक,-सिर, पाताल-चरण, दिशाएँ-भुजाएँ और लोकपालों के लोक अन्यान्य अंग हैं। यह अचिन्त्य आत्मा सिद्धों को कठिनता से ज्ञात होता है, जीवमात्र का आत्मा रूप और अशुद्ध अन्तःकरणवालों को कष्टसाध्य एवम् दुष्प्राप्य है। वही सनातन विष्णु भगवान जीवों की उत्पत्ति के लिये अहंकार को उत्पन्न करनेवाले हैं। यह सारा विश्व उन्हीं से उत्पन्न होकर प्रलयकाल के समय उन्हीं में समा जाता हैं।

स्थूल सूक्ष्म रूप ब्रह्म की नाभिकमल से सब से पहले ब्रह्मा उत्पन्न हुए, वही सर्वज्ञ मूर्त्तिमान धर्म स्वरूप श्रेष्ठ प्रजापति हैं। कमल के मध्य में वर्तमान होकर लोकों के स्वामी ब्रह्माजी जगत को उत्पन्न करते हैं। यह सुन कर भरद्वाजजी को शंका हुई, उन्होंने विनय-पूर्वक निवेदन किया—मुनिश्रेष्ठ! संसार में जीवमात्र की उत्पत्ति तो रज वीर्य्य के योग से होती दृष्टि आती है, इसमें विधाता की कोई करतूति प्रत्यक्ष नहीं दिखाई पड़ती है?

भृगुऋषि ने कहा—हे भरद्वाज! सुनिये, यद्यपि इस विषय के जानने में आप वैसे अनभिज्ञ नहीं हैं जैसा कि अनजान के समान पूछा है, तो भी आप की जिज्ञासा की निवृत्ति के लिये मैं सहर्ष इस प्रसंग को संक्षेप से वर्णन करता हूँ।

सत्यसङ्कल्प मानस देवता ने सृष्टि को मन से उत्पन्न किया है इसलिए वहाँ रजवीर्य की कोई आवश्यकता नहीं है। जब कमल से ब्रह्माजी उत्पन्न हुए तब वे अपने चारों ओर अन्य कोई पदार्थ न देख चिन्ता करने लगे। आकाशवाणी हुई कि तप करो तो शान्ति प्राप्त होगी। ब्रह्माजी ने हृदय कमल की ओर ध्यान लगा योग में स्थित हो वायु भक्षण करते हुए दिव्य सौ वर्ष पर्यन्त तपस्या की। अन्त में हृदयाकाश से दिव्य रूप सरस्वती प्रकट हुई और वेदवाणी उनके कानों में सुनाई पड़ने लगी। जब उस श्रेष्ठ वाणी को सुन कर अन्धकार दूर हुआ तब जल की इच्छा होते ही जल उत्पन्न हुआ। उसके पीछे शब्दायमान पवन और पवन के अनन्तर अग्नि तथा अग्नि के बाद पृथ्वी उत्पन्न हुई जिसको रस, गन्धादि समस्त जीवों के और सारी वस्तुओं के उत्पत्ति का स्थान समझना चाहिये। देह पंचतत्त्वात्मक कहा जाता है इससे सब स्थावर जंगम जीव पंचभूतों से संयुक्त हैं। यदि यह कहो कि स्थावर जीव न देखते, न सुनते, न गन्ध-रस आदि को जानते हैं फिर वे पंचतत्त्वात्मक कैसे माने जा सकते हैं? आकाश, जल, वायु, अग्नि और पृथ्वी का भाग वृक्ष लताओं में समान रूप से वर्तमान है। उनमें निःसन्देह आकाश व्याप्त है क्योंकि बिना आकाश के उनमें फल फूलों का लगना और रस का प्रकट होना असंभव है तथा बिजली आदि के कठोर शब्द से फल फूल पत्ते गिरते हैं, इससे श्रवणेन्द्रिय का होना सिद्ध है। लताएँ वृक्षों से लिपटती हुई सब ओर को जाती हैं किन्तु दृष्टि के बिना मार्ग नहीं सूझ पड़ता इससे उनमें चक्षुरिन्द्रिय भी है। वे पवित्र अपवित्र गन्ध और धूप से ही नीरोग होकर बढ़ते हैं इससे उनमें घ्राणेन्द्रिय भी वर्त्तमान है। जड़ों से जलपान करने तथा रोगों की चिकित्सा द्वारा आरोग्य होने से वृक्षों में रसनेन्द्रिय भी वर्तमान है। वायु के द्वारा जड़ से जल पीने तथा खण्डित डालियों में नवीन शाखा उत्पन्न होने से उनमें जीव का होना सिद्ध होता है। उनके पिये हुए जल को वायु और अग्नि पचाती है जिससे आहार के रस से कोमलता और अंगों की दृढ़ता होती है। इस प्रकार सब जंगम जीवों की देह में पाँचों धातु पृथक पृथक वर्तमान हैं।

त्वक्, मांस, अस्थि, मज्जा और नाड़ी इन पाँचों का एकत्व रूप देह में पृथ्वी है। देहधारियों की देह में अग्नि, तेज, क्रोध, ऊष्मा, नेत्र और जठराग्नि पाँचों अग्नि रूप हैं। कान, नाक, मुख, हृदय,

अन्नादि का कोश, ये पाँचों धातु प्राणियों की देह में आकाशतत्व से उत्पन्न हैं। शरीर को सचेष्ट रखनेवाली प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान ये पाँच वायु हैं। प्राण से चेष्टा और वक्तृत्व शक्ति प्राप्त करने का उद्योग किया जाता है, अपान संचालन करता है, व्यान कंठादि स्थान के विभाग से वार्तालाप करता है, उदान श्वास और समान हृदय के कार्यों को करता है। जीवात्मा नासिका के द्वारा पृथ्वी के गन्ध गुण का अनुभव करता है। जिह्वा जल से रस को, नेत्र अग्नि से रूप को, वायु से स्पर्शेन्द्रिय स्पर्श को जानती है। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द ये आकाशादि पंचतत्वों के गुण हैं, इन्हीं के द्वारा इन्द्रियाँ देहधारियों में सचेष्ट रहती हैं। जीव ब्रह्म का अंश है, शरीर के नष्ट होने पर जीव का स्वरूप ब्रह्म में इस प्रकार लीन हो जाता है जैसे समुद्र में मिलने पर नदियों का रूप प्रत्यक्ष नहीं रहता। काठ के जल जाने पर लकड़ी दिखाई नहीं देती, उसी तरह देह नष्ट हो जाने पर जीव नहीं दिखाई पड़ता। परन्तु जीव के दान और कर्म का नाश नहीं होता, इसी से वह दूसरी देह को पाता है। मायारहित होने पर जीव परमात्मा कहा जाता है और उसे किसी प्रकार के कर्मबन्धन बाधा नहीं करते। चित्त की शुद्धता से शुभ अशुभ कर्मों को त्याग कर आत्मा में निष्ट हुआ ज्ञानी मोक्ष को पाता है। यह ब्रह्मसृष्टि ब्रह्मज्ञान को निश्चय करने के लिये ही प्रकट हुई है।

पहले ब्रह्माजी ने अपने तेज से सूर्य्य के समान तेजस्वी ब्रह्मनिष्ठ सनक, सनातन, सनन्दन, सनत्कुमार और मरीचि आदि प्रजापतियों को उत्पन्न किया। फिर स्वर्ग-प्राप्ति के हेतु सत्य, धर्म, तप, सदाचार और शौचादि निर्द्धारित करके देवता, दानव, गन्धर्व, दैत्य, असुर, यक्ष, राक्षस, पिशाच और मनुष्यादिकों को उत्पन्न किया। इसके अनन्तर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा अन्य जीव-समूह के नाना वर्ण-विभाग किये। पैदा होने पर मनुष्यमात्र का एक ही ब्राह्मण वर्ण है किन्तु कर्मानुसार सब भिन्न भिन्न वर्णों की संख्या मानी जाती है। जैसे—जो ब्राह्मण कामी, क्रोधी, उग्रप्रकृति, रजोगुणी, अपना धर्म त्याग कर बिना विचार कर्म करनेवाला हुआ, वह क्षत्रियवर्ण कहलाया। जो गोपालन कर रजोगुण तमोगुण से युक्त खेती से निर्वाह कर स्वधर्म त्यागी हुए वे वैश्य कहलाये। जो हिंसक, मिथ्याप्रेमी, लोभी, तमोगुणी और शंकारहित नीच कर्मों से जीविका करने में तत्पर हुए वे शूद्र कहलाने लगे। इन कर्मों से भी पतितकर्मी ब्राह्मण अन्यान्य वर्णों को प्राप्त हुए।

जिन चारों वर्णों के लिये ब्रह्माजी ने वेद विहित कर्म नियत किये हैं, उन्हें सब कर्म और धर्म करने का पूर्ण अधिकार है अर्थात् वे अपने अपने कर्म धर्म में निष्ठ रह कर प्रतिष्ठा पाते हैं। परन्तु जिन ब्राह्मणों ने लोभ से अज्ञानता के कारण शूद्रभाव ग्रहण कर लिये वे वेदाधिकार से बहिष्कृत हो गये। वेदोक्ति अनुष्ठान में नियत, वेदाभ्यासी, व्रत और नियम पालनेवाले ब्राह्मण का ब्राह्मणत्व क्षीण नहीं होता। वेद को न जाननेवाला ब्राह्मण नीच-पद को प्राप्त होता है पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना, कराना, दान देना और लेना ब्राह्मण के ये छे कर्म हैं।

पिशाच, राक्षस, प्रेतादि अनेक प्रकार की म्लेच्छ जाति हैं। वह ज्ञान विज्ञान और वैदिक कर्मों से रहित मनमाना भ्रष्टाचार में अनुरक्त हुई शरीर-सुख को ही सब कुछ समझती हैं। उनमें दया धर्म का सर्वथा अभाव रहता है। उनकी सन्तान भी उसी प्रकार के अनाचार में प्रवृत्त होनेवाली होती है।

भृगुजी ने कहा—हे भरद्वाज! हम चारों वर्णों के कर्म किञ्चित विस्तार से कहते हैं, उसको सुनो। जो पुरुष जाति कर्म आदि संस्कारों से संस्कृत, वेद पाठ में प्रवृत्त, स्नान, सन्ध्या, जप, हवन देव-अतिथि पूजन, बलि वैश्वदेव इन षट कर्मों में सावधान, शुद्धाचारी, गुरुभक्त, सत्यपरायण,

धर्मात्मा, ज्ञानी, दयालु, तपस्वी, अहिंसक, द्रोह रहित, परोपकार में तत्पर देवता और ब्राह्मण से बचे हुए अन्न को विधि-पूर्वक भोजन करने वाला है, उसको ब्राह्मण कहना चाहिए। जो हिंसा में अनुरक्त, युद्ध का प्रेमी, वेदपाठी, राज्यकर लेने में तत्पर रहता है, वह क्षत्री है। क्षत्रिय का परम धर्म ब्राह्मण की उपासना है, जो क्षत्री हो कर ब्राह्मणों का तिरस्कार करता है वह क्षत्रिय नहीं है। उसकी गणना अधम गणों में करनी चाहिये। जो पशुपालन कर प्रतिष्ठा पाता है और खेती करता है तथा दानी, श्रद्धालु, पवित्र और वेदपाठी है उसको वैश्य कहते हैं। जो सब वस्तुओं का भोजन करनेवाला, सब कर्म करनेवाला, अपवित्र, वेदत्यागी, और अनाचारी है वह शुद्र कहलाता है।

जो ब्राह्मण के गुण हैं वे शूद्र में दिखाई पड़ें और शूद्र के गुण ब्राह्मण में वर्तमान हों तो वह ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं तथा शूद्र शूद्र नहीं गिना जायगा। क्रोध और लोभ को युक्ति से जीतना तथा चित को चञ्चल न होने देना, यह ज्ञान सबसे श्रेष्ठ है। वेद वाक्यों में विश्वास रखनेवाला, सदाचारी, दयालु, निष्पाप और वैराग्यवान ब्राह्मण आनन्द रूप ब्रह्म को पाता है।

धर्म की रक्षा के लिये ब्रह्माजी ने चार आश्रमों का विभाग किया है। उनमें प्रथम आश्रम ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर गुरु के स्थान में टिक कर वेदाध्ययन करना है। आलस्य त्याग कर हर प्रकार से गुरू की सेवा करते हुए विद्या प्राप्त करके फिर गुरु की आज्ञानुसार द्वितीय गार्हस्थ आश्रम में प्रवेश करना चाहिये। निश्छल कर्मों द्वारा धन प्राप्त कर अपनी स्त्री में रति तथा सन्तानोत्पत्ति करे। गृहस्थ धर्म सब आश्रमों का मूल है। सन्यासी और अन्यान्य व्रत नियम अनुष्ठान करनेवालों की भिक्षा बलि का आधार यही आश्रम है। जिस गृहस्थ के द्वार से अतिथि सेवा रहित विमुख लौट जाता है उस गृहस्थ का पुण्य क्षीण हो अधर्म होता है इसलिये गृहस्थ को अतिथि सेवा का पूरा ध्यान रखना चाहिये। गृहस्थाश्रम में यज्ञादि से देवता और तर्पण से पितर प्रसन्न होते हैं, विद्याभ्यास से ऋषि और सन्तान से प्रजापति प्रसन्न होते हैं। गृहस्थ को मधुरभाषी होना चाहिये, कठोर वचन, कपट, अहंकार, पराई निन्दा, हिंसा और क्रोध का सर्वथा त्याग करना श्रेष्ठ है। धर्म में प्रीति रखते हुए सदैव प्राप्त भोग विलास में सन्तुष्ट रहकर सदा ईश्वर की भक्ति में लीन रहना उत्तम पद देने का उच्चसाधन है। तीसरा वाणप्रस्थ आश्रम है। इसमें धन गृह का त्याग कर साधु वृत्ति ग्रहण करके फल मूलादि का आहार, वेदपाठ और जप का अभ्यास करते हुए देशान्तरों और पवित्र स्थलों में पर्यटन करता हुआ सर्व प्रकार के विषय भोगों का त्यागी और शीतउष्ण वर्षा का सहन करनेवाला ईश्वर के गुणों में अनुरक्त समय को बितानेवाला वाणप्रस्थ आश्रमी है। इन तीनों से परे सन्यासाश्रम है। इसमें अग्नि, धन, स्त्री और शय्या आदि भोगों की सामग्री त्याग आत्मा को निस्संग बना कर प्रीति के बन्धन को दूर बहा देने पर सिद्धि प्राप्त होती है। प्राणीमात्र से द्वेषबुद्धि न रखनेवाला, सब को समान जाननेवाला, पर्वत वन देवालयों में विचरनेवाला, ग्राम और नगरों में आवश्यक होने पर अल्पकाल ठहरनेवाला, ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यों के यहाँ भिक्षावृत्ति से निर्वाह कर सदा ब्रह्म में लय करके एकता प्राप्त करनेवाला, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, कपट, निन्दा, अहंकार और हिंसा आदि दुष्टकर्मों से रहित सन्यासी ब्रह्मपद को पाता है। जो छल, चोरी, निन्दा, मिथ्याभाषण, निर्दयता, अप्रतिष्ठा और दूसरे के गुण में दम्भ से दोषारोपण करता है उसका तप रूपी धर्म नष्ट हो जाता है।

वर्णाश्रम धर्म सुनकर धर्मराज प्रसन्न होकर बोले—हे पितामह! अब तक आपने आचार योग मिला हुआ वर्णन किया किन्तु हम केवल आचार सुनना चाहते हैं, कृपापूर्वक उसे कहिये।

भीष्मजी ने कहा—हे युधिष्ठिर! सुनो, दुर्बुद्धि, दुराचारी, असाधु प्राणी विचारहीन अभव्य कर्म करनेवाले होते हैं पर श्रेष्ठ साधुजनों का स्वरूप आचार ही से ज्ञात होता है। जो मनुष्य गोशाला, देवालय, राजमार्ग और अन्नादि में मल मूत्र नहीं करता वह श्रेष्ठ है। प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व उठकर योग्य स्थल में मल मूत्र का त्याग कर दन्तधावन करके नदी अथवा सरोवर में स्नान, सन्ध्योपासन, तर्पण, सूर्य्यार्घ देकर गायत्री का जप करे। उसी प्रकार सायंकाल सूर्य्यास्त होने के पूर्व सन्ध्योपासन करना और दिन रात में दो बार अथवा एक बार भोजन करे किन्तु भोज्य पदार्थ की निन्दा कभी न करे। रात्रि को सोते समय पैर धोकर शयन करना श्रेष्ठ है क्योंकि इससे दुःस्वप्न और धातुविकार का शमन होता है। यज्ञशाला, तीर्थस्थान, गौ, देवालय और तुरन्त स्नान किये हुए ब्राह्मण को देख प्रणाम करे। कुटुम्बियों को भेदभाव रहित भोजन की सामग्री भाग कर खाना श्रेष्ठ है। सूर्योदय और सूर्य्यास्त के समय सोना अत्यन्त निन्दनीय और हानिकारी है। नित्य हवन करना और ऋतुकाल के अनन्तर अपनी स्त्री के साथ सहवास करनेवाला एक नारीव्रत पुरुष ब्रह्मचारी कहा जाता है। स्वदेश और विदेश सर्वत्र अतिथि का सत्कार करना चाहिये। उत्तम अन्न और श्रेष्ठ फल पहले गुरु, पिता, माता आदि को भेंट करने और उनकी पूजा सेवा यथोचित सत्कार करने से कीर्त्ति और लक्ष्मी प्राप्त होती है। उदय काल के सूर्य और दूसरे की नग्न स्त्री को न देखना चाहिये। सदा सत्य बोलना चाहिये क्योंकि सत्य के समान दूसरा तप नहीं है। बराबरवालोंका नाम लेना अथवा उन्हें तुम शब्द का प्रयोग करना योग्य है किन्तु बड़े बूढ़ों तथा श्रेष्ठजनों को नाम लेकर अथवा तुम कह कर पुकारना उचित नहीं है। सब जीवों पर दया रखना परम धर्म है और धर्म ही सब सुखों का कारण तथा मोक्ष का देनेवाला है।

धर्मराज ने कहा—हे पितामह! आप ने धर्मसम्बन्धी बहुत सी कथाएँ वर्णन कीं, उसको सुन कर मुझे परम आनन्द हुआ। अब मैं आप के मुख से जप का महात्म्य सुनना चाहता हूँ कि जप करनेवाले को कौन सा उत्तम फल प्राप्त होता है।

भीष्मपितामह प्रसन्न होकर कहने लगे—हे कुन्तीनन्दन! मैं जप के सम्बन्ध में एक प्राचीन इतिहास कहता हूँ उसको ध्यान देकर सुनो। एक पिप्पलादि नामक कौशिक गोत्री ब्राह्मण वेद वेदाङ्गों का जाननेवाला यशस्वी धर्मज्ञ और सदाचारी था। वह हिमालय पर्वत में स्थित होकर नियम पूर्वक एक हजार वर्ष पर्यन्त जप करता रहा। उसके जप से प्रसन्न हो भगवती दुर्गा ने दर्शन दिया और बोली कि—हे ब्राह्मण! मैं तुम्हारी तपस्या से सन्तुष्ट हो वर देने आई हूँ जो इच्छा हो वर माँग लो। उस तपस्वी ब्राह्मण ने कहा—हे देवि! यदि आप वस्तुतः प्रसन्न होकर वर देने आई हैं तो यही वरदान दीजिये कि मेरा मन सदा जप में अनुरक्त रहे, इसके सिवा मुझे दूसरी कोई इच्छा नहीं है।

देवी ने तथास्तु कह कर दूसरा वर यह दिया कि तू मेरे प्रसाद से अन्त में ब्रह्मलोक का निवासी होगा और तेरे समीप धर्म, काल, मृत्यु, यमराज ये चारों आवेंगे तब धर्म के विषय में उनसे तेरा शास्त्रार्थ होगा। इस प्रकार वर प्रदान कर भगवती अन्तर्हित हो गईं और वह ब्राह्मण फिर जप यज्ञ में अनुरक्त हुआ। सौ वर्ष बीत जाने पर धर्म शरीर धारण कर उस ब्राह्मण के समीप आये और बोले—हे मुनिराज! आँख खोल कर नेक हमारी ओर देखो, मैं धर्म हूँ तुम्हें जप का फल देने आया हूँ। तुम जप के प्रभाव से अब शरीर त्याग कर परलोक में सुखपूर्वक निवास करोगे।

धर्म की बात सुनकर पिप्पलादि मुनि ने नेत्र खोल दिये और बोले—हे धर्म! मुझे किसी

लोक से प्रयोजन नहीं है क्योंकि देह त्यागने और नया शरीर प्राप्त करने से जो दुःख तथा सुख होता है, मैं उसको नहीं चाहता, इसलिये इसी देह से मुक्त होना श्रेष्ठ समझता हूँ। धर्म ने कहा—

हे मुनिश्रेष्ठ ! आप को शरीर त्याग कर स्वर्ग में निवास करना चाहिये और देह में इस प्रकार चित्त लगाना उपेक्षणीय है। परलोक में सशरीर जाना असम्भव है और वहाँ तुम्हें सब प्रकार से इच्छित आनन्द प्राप्त होगा। धर्म की बात सुन कर उस तपस्वी ब्राह्मण ने फिर कहा—

हे धर्म ! यदि बिना शरीर त्याग किये स्वर्ग का जाना असम्भव है तो मुझे ऐसे स्वर्ग की इच्छा नहीं है। वहाँ मुझे कौन सा विशेष लाभ है ? मैं सदा जप यज्ञ में अनुरक्त हुआ इसी देह से धरती पर निवास करूँगा। इससे बढ़कर आनन्ददायक मुझे स्वर्ग नहीं जान पड़ता है।

इस प्रकार उपेक्षापूर्ण ब्राह्मण का उत्तर सुन कर धर्म बोले—हे विप्रवर ! देखो, तुम्हारा अन्तिम समय अनुमान कर मृत्यु, काल और यमराज तुम्हें लेने आये हैं इससे तुम्हें शरीर त्याग कर स्वर्गलोक में गमन करना आवश्यक है। धर्म के चुप होने पर काल, मृत्यु और यमराज ने नम्रता-पूर्वक अपना अपना परिचय दिया और बारी बारी से निवेदन किया—हे ब्राह्मणदेवता ! अब आपका समय समीप आगया है कि आप इस शरीर को छोड़ कर ब्रह्मलोक में चल सुखपूर्वक निवास कर जप का श्रेष्ठ फल उपभोग करें।

पिप्पलादि ने प्रसन्न होकर कहा आप लोगों की इस कृपा के लिये मैं सहर्ष धन्यवाद देता हूँ। उसी समय तीर्थाटन करते हुए सूर्य्यवंशी राजा इक्ष्वाकु भी वहाँ आगये। परस्पर स्वागत और दंड-प्रणाम करने के अनन्तर ब्राह्मण देव ने राजा से कहा—हे महाराज ! आपका आगमन कल्याणकारी हो। जिस कार्य की इच्छा से आप यहाँ पधारे हैं कृपापूर्वक कहिये मैं उसे करने को तैयार हूँ।

राजा ने कहा—हे ब्राह्मण देव ! मैं क्षत्रिय हूँ, आप छओं कर्म के करनेवाले तपस्वी विप्र हैं आप से मैं किसी प्रकार की सेवा नहीं ले सकता। सुवर्ण रत्नादि जो कुछ आप मुझ से माँगें वह इच्छा-नुसार मैं देने को तैयार हूँ। युद्ध के सिवा संसार में माँगने योग्य मेरे लिये दूसरी वस्तु नहीं है।

राजा इक्ष्वाकु की बात सुन कर ब्राह्मण बोला—हे राजन् ! जिस प्रकार तुम अपने धर्म में प्रसन्न हो, उसी तरह मैं भी अपने धर्म में अटल हूँ। मुझे धन की इच्छा नहीं है, सुवर्णादि किसी अन्य श्रेष्ठ ब्राह्मण को प्रदान कीजिये तपस्या रूपी रत्न के सामने सुवर्णादि कोई चीज़ नहीं है।

इस प्रकार त्याग से भरी वाणी ब्राह्मण के मुख से सुन कर राजा मन में बहुत प्रसन्न हुए और नम्रता-पूर्वक निवेदन किया।

हे तपस्वी द्विज ! यदि आप प्रसन्न होकर मुझे देना ही चाहते हैं तो अपने जप का सारा फल प्रदान कीजिये। ब्राह्मण ने कहा—

हे राजन् ! धर्म, काल, यमराज और मृत्यु इसके साक्षी हैं, मैंने आज तक जो जप किया है उसका समस्त फल प्रसन्नता से आप को देता हूँ, परन्तु अभी आप ने कहा है कि युद्धदान के सिवा अन्य कोई वस्तु जगत में मेरे माँगने योग्य नहीं है फिर जप का फल कैसे माँगा ; ब्राह्मण की बात सुन कर इक्ष्वाकु बोले—

हे विप्रवर ! आप का कथन सत्य है, मैं वास्तव में जप का फल नहीं लेना चाहता, इसलिये आप उसको अपने ही पास रहने दें।

राजा की बात सुन कर ब्राह्मण ने कहा— हे नरनाथ ! यह असम्भव है। मैंने जप का फल आप को दे दिया अब उसे लौटा नहीं सकता। मैंने बिना माँगे नहीं दिया है और न आप के घर उसे

लेने के हेतु बुलाने ही गया था, जब आप ने उसको माँगा और हमने दे दिया फिर दान दी हुई वस्तु को लौटाना अधर्म है इससे कदापि लौटा नहीं सकता। मैं अपने संकल्प को कदापि मिथ्या नहीं होने दूँगा और आप भी सूर्यकुल के दीपक सत्यवादी धर्मपरायण हैं मिथ्यावादी होना किस तरह स्वीकार करेंगे? सत्य ही लोक परलोक दोनों का श्रेष्ठ सहायक है। सत्य ही प्रणव रूप ब्रह्म है, सत्य ही तप यज्ञ, ज्ञान वैराग्य और सर्वस्व है। सत्य ही वेद, वेदान्त, विद्या, बुद्धि और नियम है। सत्य के ही बल से सूर्य प्रकाश करते हैं, अग्नि जलाती है, वायु सामने आती है, कहाँ तक कहा जाय सत्य सारी श्रेष्ठताओं का मूल है। इसलिये जब आप माँग चुके और मैंने दे दिया तो इस दशा में अपने वचन से पलटने में दोनों ओर की गहरी हानि है।

इस प्रकार ब्राह्मण और राजा के बीच विवाद बढ़ता हुआ देख कर धर्म से चुप नहीं रहा गया वे बोले—आप लोग विवाद न करें। जो मुख से परस्पर निवेदन कर चुके हैं, सत्य और धर्म की रक्षा उसी के पालन करने में है। धर्म का निबटेरा सुन कर दोनों महानुभावों ने सहर्ष स्वीकार कर लिया फिर वह ब्राह्मण धर्म काल मृत्यु का सत्कार कर यमराज के आदेशानुसार योग में स्थित हुआ। जप के प्रभाव से ब्रह्मरन्ध्र को फोड़ कर उसकी आत्मा ब्रह्म में लीन हुई और राजा इक्ष्वाकु, धर्मादि सब प्रसन्न हो अपने अपने स्थान को चले गये। फिर भीष्मपितामह ने बृहस्पति और मनुजी का पूर्व सम्वाद जो इसी सम्बन्ध में हुआ था वर्णन किया।

पितामह के मुख से कथा श्रवण कर धर्मराज को परम आनन्द हुआ, उन्हों ने उत्कंठित हृदय से पूछा—हे महात्मन्! पहले कौन प्रजापति हुए और कौन कौन ऋषि किस किस दिशा के निवास करनेवाले हैं?

भीष्मजी बोले—हे धर्मराज! सुनो, सब से पहले ब्रह्मा उत्पन्न हुए, उनके मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्ति, पुलह, क्रतु और वशिष्ठ ये सातों पुत्र स्वयम्भू के समान ही तेजोराशि उत्पन्न हुए थे। तदनन्तर सब प्रजापति और अत्रि के वंश में सनातन भगवान पैदा हुए। उनसे दस प्रचेता के पुत्र दक्ष प्रजापति कहे जाते हैं। मरीचि के पुत्र कश्यप तथा अत्रि के औरस पुत्र पराक्रमी राजा सोम हुए उनके एक करोड़ पुत्र हुए।

कश्यप के पुत्र भव, अंश, अर्य्यमा, मित्रावरुण, सविता, धाता, विवस्वान, महाबल, त्वष्टा, पूषा, इन्द्र और विष्णु द्वादश सूर्य्य कहलाते हैं। आठवें सूर्य्य महाबल के महात्मा नासत्य और दस्र दोनों अश्विनीकुमार कहे जाते हैं जो देवताओं के चिकित्सक हैं। त्वष्टा के पुत्र यशस्वी विश्वरूप हैं। अजैकपाद, अहिर्बुध्नि, विरूपाक्ष, रैवत, हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, सुरेश्वर, सावित्र, जयन्त, पिनाकी और अपराजित यह ग्यारह रुद्र हैं। इनके अतिरिक्त धर, ध्रुव, सोम, सावित्र, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास ये आठों वसु हैं। ऊपर कहे हुए समस्त देवगण मनु के पूर्व उत्पन्न हुए और देवता तथा पितर के नाम से इनके दो भेद हैं। ये सब शुद्ध भाववाले शीलवान सुन्दर और सदा युवावस्था से युक्त रहते हैं। इनके गण मारुत हैं। अंगिरावंशी देवता ब्राह्मण कहे जाते हैं। अदिति के पुत्र क्षत्रिय, विश्वेदेवा के वैश्य तथा अश्विनीकुमार के वंशज शूद्र कहलाते हैं।

इस प्रकार तीनों लोकों के उत्पन्न करनेवाले सप्तर्षि पूर्व दिशा में निवास करते हैं। उन्मुच, विमुच, स्वस्ति, प्रमुच, इध्मवाहु, दृढ़व्रत और अगस्त्य ब्रह्मर्षि दक्षिण दिशा के निवासी हैं। उषंगु, कण्व, धौम्य, पराक्रमी, परिव्याध्र, एकतद्वित और त्रित तथा अत्रि के पुत्र भगवान सारस्वत पश्चिम दिशा में वास करते हैं। अत्रि, वशिष्ठ, कश्यप, गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र, वशिष्ठ और जमदग्नि

उत्तर दिशा में वर्तमान हैं। चारों दिशाओं में यह सब महात्मा साक्षी रूप लोकों की रक्षा करनेवाले हैं। जो मनुष्य इनका कीर्त्तन करता है वह अपने स्थान को प्राप्त होता है।

धर्मराज ने कहा—हे पितामह! अविनाशी श्रीकृष्णचन्द्रजी ने पूर्व में शूकर का शरीर किस कारण धारण किया था? हमें इनके यथार्थ गुण तेज और महत्व सुनने की बड़ी उत्कंठा है।

भीष्म ने कहा—हे युधिष्ठिर! एक बार मैं आखेट करता हुआ महर्षि मार्कण्डेयजी के आश्रम में गया। वहाँ सहस्रों मुनियों को बैठे हुए तपस्या करते देखा। महर्षियों ने मधुपर्क आदि से मेरा यथोचित सत्कार किया। महर्षि कश्यपजी वहाँ बड़ी सुहावनी कथा कह रहे थे, उसे सुनने की इच्छा से मैं ठहर गया और जो सुना है वह तुमसे कहता हूँ जी लगाकर सुनो।

उन्होंने कहा पूर्वकाल में मदोन्मत्त महापराक्रमी नरकासुर प्रभृति दुराचारी दैत्योंके अत्याचार से देवताओं को बड़ा दुःख हुआ। असुरों के भीषण उपद्रव से धरती घबरा गयी, तब देवता और ऋषियों ने ब्रह्मलोक में जाकर ब्रह्माजी से निवेदन किया। विधाता ने उन्हें बहुत तरह से धीरज बँधाया कि आप सब उकतावें नहीं, अल्पकाल इस कष्ट को और सहन करें। आप लोगों का यह कष्ट भगवान से देखा नहीं जाता है वे शीघ्र ही इसका प्रतिशोध करेंगे। ब्रह्माजी की बात सुन कर देवता और ऋषि लोग अपने अपने स्थान को चले गये।

विष्णु भगवान देवता, पृथ्वी और मुनियों को दुखी देख कर दया से द्रवीभूत हो गये। भक्तों पर होनेवाला अत्याचार उनसे सहन नहीं हो सकता। उन्होंने देखा कि नरकासुर ने पृथ्वी को बुरे घेरे में रूँध रक्खा है, इस स्थल में विना शूकर रूप धारण किये काम न चलेगा। तुरन्त वाराह शरीर से पाताल को गये और ऐसा घोर गर्जन किया कि उससे तीनों लोक काँप उठा। भगवान ने विकराल अतुल पराक्रमी दैत्यसमूह का संहार करके पृथ्वी का उद्धार किया जिससे देवता और मुनियों का संकट दूर हुआ। वही कमललोचन योगेश्वर जगत्पति सब जीवों के उत्पन्न करनेवाले महात्मा श्रीकृष्णचन्द्रजी हैं। यही कालरूप होकर सब जीवों के नाश करनेवाले हैं जिनकी कृपा से तुम समरविजयी होकर यशस्वी हुए हो।

प्रधानयोग की व्याख्या।

युधिष्ठिर ने कहा—हे पितामह! अब आप कृपा करके प्रधानयोग जिससे मोक्षलाभ होता है वर्णन कीजिये।

भीष्मपितामह बोले—हे कौन्तेय! तुम्हारे विचारपूर्ण प्रश्नों से हमें बड़ी प्रसन्नता हो रही है, इस सम्बन्ध का पूर्वकालीन एक गुरु-शिष्य सम्वाद में वर्णन करता हूँ, तुम सावधान होकर श्रवण करो।

एक बड़े ही बुद्धिमान कल्याण के खोजी शिष्य ने अपने गुरु के चरणों में सिर नवा कर प्रश्न किया—हे महात्मन्! आप महातेजस्वी, जितेन्द्रिय, योगनिष्ठ, आचारवान और तत्वदर्शी सब कुछ जाननेवाले हैं। यदि मेरी उपासना से आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो कृपापूर्वक मेरा सन्देह निवारण कर कृतकृत्य कीजिये। मैं कहाँ से आया और आप कैसे उत्पन्न हुए हैं? परमश्रेष्ठ ब्रह्म का वर्णन कीजिये। पुरुषों और जीवों में उत्तमदशा, उदय, नाश और विपरीतता आदि बातें निरन्तर क्योंकर

हुआ करती हैं ? वेदों के सिद्धान्तानुसार न्यायिक और लौकिक वचन आप सब कहने में समर्थ हैं इस-लिये मेरी शंका दूर करने का अनुग्रह कीजिये।

इस प्रकार शिष्य के प्रश्न को सुन कर गुरु बोले—हे पुत्र ! तुम लोकोपकारी वेद की गुप्त और सर्व श्रेष्ठ ब्रह्मविद्या को सावधान होकर सुनो। यद्यपि यह गोपनीय विषय है तो भी तुम्हारी प्रीति देखकर और अधिकारी समझ कर मैं प्रसन्नतापूर्वक कहता हूँ।

संसार के आदिकारण प्रणवरूप, सर्वव्यापी, सबरूप, अविनाशी, उत्पत्ति पालन और प्रलय के कर्त्ता, सत्य ज्ञान क्षमा दया और शान्ति स्वरूप वासुदेव जिसको सनातन ब्रह्म कहा जाता है वही श्रीकृष्णचन्द्रजी हैं। वे आदि अन्त रहित साक्षात परमात्मा जगदीश्वर हैं। उनकी आज्ञा से माया त्रिगुणात्मक संसार की रचना करती है। देवता, ऋषि, यक्ष, राक्षस, नाग, असुर और गन्धर्वादि नाना प्रकार के रूप प्रकट होते हैं तथा उनमें काल के अनुसार व्यवहार बुद्धिसे उत्पन्न होनेवाला ज्ञान प्राप्त होता है। महर्षियों ने अपने तप के प्रभाव से ब्रह्माजी के द्वारा वेदों को प्राप्त किया। क्योंकि वेद के सर्वोपरि ज्ञाता स्वयम्भू हैं और वेदान्त के जाननेवाले बृहस्पतिजी हैं। लोकोपकारी नीति के मर्मज्ञ शुक्र, गान्धर्व वेद के नारद, धनुर्वेद के भरद्वाज, ऋषियों के चरित्र ज्ञान में गर्ग, आयुर्वेद के श्रीकृष्णचन्द्र ज्ञाता हैं। अत्रि ऋषि भी आयुर्वेद ज्ञान में प्रसिद्ध हैं। इन्हीं महापुरुषों ने न्याय, सांख्य और पातञ्जलि शास्त्र वर्णन किया है। वेद के प्रमाणों से जो ब्रह्म का वर्णन किया गया है तुम उसी की उपासना करो। वह परमब्रह्म आदिकारण, अद्वितीय, अविनाशी, षड़ैश्वर्यवान जिसको देवता और ऋषि भी यथार्थ नहीं जानते। समस्त देवता, दैत्य, ब्रह्मर्षि, राजर्षि, सिद्ध आदि जिस ब्रह्म को सब दुखों की परमौषधि रूप जानकर सुखी हुए हैं तुम निरन्तर उसी नारायण भगवान की आराधना तन मन से छल त्याग कर करो। संसार की रचना ही प्रकृति ने धर्माधर्म से मिली जुली की है और जैसे हेतुरूप तेल बत्ती के वर्त्तमान रहते हुए एक ही दीपक से सहस्रों दीपक जल उठते हैं उसी तरह प्रकृति भी प्रारब्ध के योग से असंख्यों जीवों को उत्पन्न करती है। उन सब जीवों में सर्वव्यापी ब्रह्म समान रूप के व्याप्त रहता है।

दूसरी देह में आत्मा का जाना स्वप्न के समान है। जब जीव अपने कर्मानुसार एक शरीर को छोड़ कर दूसरी देह में प्रवेश करता है तब उसको पूर्वजन्म के कृत्यों का प्रायः विस्मरण होजाता है किन्तु जिस प्रकार बड़े वृक्षों के स्वल्प बीज में उसका आकार विद्यमान रहता है उसी तरह धर्माधर्म मिलित कर्म, अविद्या विद्यामाया के प्रभाव से शरीर के सामने दौड़ते हैं। अविद्या से उत्पन्न होनेवाले जड़ताभाव चारों ओर से इकट्ठे होते हैं और कर्त्ता रूप जीवात्मा के शुद्धभाव बुद्धि चित्त आनन्द आदि जो ब्रह्म का साक्षात्कार करानेवाले हैं, वे भी इकट्ठे हो जाते हैं। जिस प्रकार प्रवृत्त धर्म सब को स्वीकार होता है उसी तरह ब्रह्मज्ञानियों को विज्ञान के अतिरिक्त दूसरा कोई तत्व नहीं सुहाता। ब्रह्मज्ञान से मोक्ष की सहज में ही प्राप्ति होती है।

सब जीवों में पुरुष श्रेष्ठ है, पुरुषों में ब्राह्मण और ब्राह्मणों में वेदों के ज्ञाता उत्तम हैं। वेदज्ञ ब्राह्मण सब जीवों के आत्मारूप, सर्वज्ञ, सर्वद्रष्टा और शास्त्र के तत्व को जाननेवाले ज्ञानी होते हैं। अज्ञानी पुरुष संसार में अन्धे की तरह भटकते हुए दुःख पाते हैं, किन्तु ज्ञानी पुरुष तत्वदर्शी होने के कारण संसार की गति को जान कर उससे उपेक्षित सदा प्रसन्न रहते हैं। वे क्षमा, सत्य, पवित्रता, धीरता, स्मृति और ब्रह्मचर्य से युक्त अपने धर्म में अटल रूप से स्थित रहनेवाले होते हैं। इसीसे मोक्ष को पाते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि विषयों में लिप्त प्राणी नाना प्रकार के दुःखों से पीड़ित होकर

नरकगामी होते हैं और वैराग्यवान महात्मा पुरुष संसार को जन्म, मृत्यु, जरा, शोक रोगादि से व्याप्त समझ कर मोक्ष के लिये सुन्दर ज्ञान और भक्ति का ही आश्रय लेते हैं। वे मन और शरीर से पवित्र, अहङ्कार रहित, शान्त, प्रसन्न चित्त और निस्पृह होकर पृथ्वी पर विचरण करते हैं। सब जीवों को समान जान कर उन पर दयाभाव रखते हैं और उनके द्वारा किसी को किसी प्रकार का कष्ट नहीं होने पाता। प्रिय और मधुर भाषण करनेवाले होते हैं। दूसरों को मान देकर आप अमानी रहते हैं। ऐसे महात्मा जन शान्तचित्त के द्वारा सदा परम गति (मोक्ष) को प्राप्त होते हैं।

हे पुत्र! व्यक्त संसार मृत्यु का मुख है और एक मात्र अव्यक्त ब्रह्म ही अविनाशी है। प्रवृत्ति धर्म जीव को फिर संसार में लौटानेवाला है और निवृत्ति धर्म मोक्षरूप है। अज्ञानी कहता है ब्रह्म कौन है और ज्ञानी जानता है मैं ब्रह्म हूँ। इस प्रकार एक ही वस्तु में ज्ञान अज्ञान के भेद से दो बातें प्रत्यक्ष होती हैं। ब्रह्मचर्य और हिंसा रहित होना देह का तप कहा जाता है। मन और वाणी को वश में करना चित्त का तप है। ब्रह्मज्ञानी सर्वव्यापी अव्यक्त रूप ब्रह्म में लीन होते हैं उन्हें कर्म-बन्धन की बाधा नहीं होती, किन्तु विविध कर्मों का करनेवाला अज्ञानी सदा जन्म मरण के द्वारा संसार के बन्धन में पड़ा रहता है।

इस प्रकार गुरु शिष्य का सम्वाद सुनकर धर्मराज समाज के सहित अत्यन्त प्रसन्न हुए और बोले—हे पितामह! सुना है मिथिलापुरी के राजा जनक ने भोगों को त्याग कर मोक्ष को प्राप्त किया था। मैं आप के मुख से उनके व्रत का वृत्तान्त सुनना चाहता हूँ कृपाकर के कहिये। भीष्म ने कहा—

हे युधिष्ठिर! सुनो, एक बार राजा जनक के पास योगेश्वर पंचशिख मुनि आये। राजा ने स्वागत करके उन्हें श्रेष्ठ आसन पर बैठाया और बोले। हे महामुने! जिस प्रकार सुषुप्ति अवस्था में स्मरण नहीं रहता उसी तरह मोक्ष में भी पूर्व स्मृति नहीं रहती। सुषुप्ति अवस्था अज्ञान से होती है और मोक्ष ज्ञान से। आप कृपा करके कहिये कि ज्ञान और अज्ञान में क्या अन्तर है?

महामुनि पंचशिखजी बोले—हे राजन्! जब अज्ञान के द्वारा आत्मा के बीच बुद्धि आरोपित की जाती है तब ज्ञान का अभाव हो जाता है, किन्तु जब ज्ञान से आत्मा को जान लेता है तब सारे अनर्थ मिट जाते हैं। फिर शुद्ध निर्विकार आनन्दमय ब्रह्म और श्रेष्ठ बुद्धि का उदय हो जाता है जिससे समस्त संसारी कष्टों का नाश होता है। इसलिये मोक्ष की इच्छा रखनेवाला प्राणी निश्चय ही विषयों का त्याग कर देवे। द्रव्य के त्यागने से सब कर्म हो जाते हैं, भोग के त्यागने से समस्त व्रत, सब सुखों के त्यागने से सारी तपस्या और सब वस्तुओं के त्याग से सम्पूर्ण धर्म होजाते हैं। जो मनुष्य सब त्याग के मार्ग को जानता है वह मोक्ष को प्राप्त होता है। ज्ञान से इन्द्रियों समेत बुद्धि और मनको भी त्यागना योग्य है, क्योंकि मन में कर्मेन्द्रियों का बल वर्तमान रहने से चपलता करती हैं इसलिये बुद्धि का त्याग करने से सब का त्याग होता है। सब इन्द्रियाँ भूतों के आश्रित हैं, विषय इन्द्रियों के आश्रित हैं और इन्द्रियाँ मन के आश्रित हैं इससे मन ही सब का आधार रूप है।

भूतादिकों के समूह को क्षेत्र और उसके आधार को क्षेत्रज्ञ कहते हैं। ये दोनों कर्म के प्रभाव से मिल जाते हैं, फिर किसको सत्य और किसको असत्य समझे? जब तक कर्म का प्रभाव रहता है तबतक ये सब रहते हैं, पर जब कर्म का अंश नहीं रहता तब इनका भी चिह्न नहीं रह जाता। जैसे नदी नद आदि समुद्र में मिलने से अपने नाम और रूप को त्याग देते हैं उसी तरह ब्रह्म में लीन हो जाने पर ये अपने रूप और नाम को खो बैठते हैं। जैसे सर्प बिना कष्ट काँचली को त्याग देता है उसी प्रकार मुक्त प्राणी दुःखों को दूर कर ब्रह्मपद को प्राप्त होता है।

इन्द्रिय के जीतने को दम कहते हैं जिसकी प्रशंसा सब वेदज्ञ और धर्मज्ञ करते हैं। जो ब्राह्मण इन्द्रियों का दमन नहीं करता, उसकी कोई भी क्रिया सिद्ध नहीं होती। क्रिया की सत्यता और तपस्या दोनों दम ही में वर्त्तमान है। दम ही तेज को बढ़ाता है, दम ही पवित्र करनेवाला है, दम ही निष्पाप बनानेवाला और ब्रह्मपद को पहुँचानेवाला है। क्रोधी मनुष्य तेजस्वी नहीं होते, उन्हें दूसरे प्राणियों से सदा भय उत्पन्न हुआ करता है। विधिवत् वर्णाश्रम धर्म पालन करने से जो फल होता है उससे कई गुना धर्म दमन करनेवाले को प्राप्त होता है। इन्द्रिय दमन करनेवाला आस्तिकबुद्धि, सन्तोषी, निर्भीक शान्त, अहङ्कार रहित, गुरु पूजक, दयालु, निस्पृह, शीलवान, स्तुति-निन्दा की उपेक्षा करनेवाला, मनसे भी किसी का अपकार न चाहनेवाला, मृदुभाषी, सर्वप्रिय, उदार और सुन्दर सरल स्वभाववाला होता है। ये बातें दुष्ट प्राणियों में नहीं होतीं। दमी प्राणी इस लोक में सब के प्यारे होते हैं और अन्त में ब्रह्मपद (मोक्ष) को प्राप्त होते हैं।

युधिष्ठिर ने कहा—हे पितामह! वेदों में यज्ञादि हिंसायुक्त कहे गये हैं और हिंसा को आपने भीषण पाप कहा है। मेरे इस सन्देह को कृपा कर दूर कीजिये।

पितामह बोले—हे धर्मराज! तुम्हारा सन्देह बहुत यथार्थ है। जो प्राणी वेद की आज्ञा से विरुद्ध केवल जिह्वा के स्वाद वश तृप्ति की इच्छा से विना यज्ञादि के मांस भक्षण करता है वह पतित गिना जाता है किन्तु मन्त्र दीक्षा से युक्त यज्ञादिकों में फल की इच्छा से मांस खानेवाला यद्यपि स्वर्ग पधारता है, तो भी उसे फिर संसार में गिरना पड़ता है। इससे अहिंसा व्रत ही सर्वश्रेष्ठ मोक्षमार्ग के अनुकूल है। संसारी मनुष्य महीने में होनेवाली तिथियों और दिनों के उपवास को तप कहते हैं, सत्पुरुष इस प्रकार के तप को तप नहीं मानते। वे उसको आत्मविद्या का विघ्न समझते हैं।

जीवहिंसावाले कर्मों का त्याग और प्राणियों की रक्षा यही उत्तम तप है। बहु कुटुम्बी भी जो सदाव्रत करता है वह ब्रह्मचारी होता है। वेदपाठी ब्राह्मण मुनि और देवता भी है, वह धर्मज्ञ, जितेन्द्रिय, निद्रा को जीतनेवाला, अहिंसक, पवित्र तथा निर्लोभी होता है। अतिथि, गुरु और ब्राह्मणों की पूजा करनेवाला एक बार भोजन और ऋतुकाल में स्त्री-प्रसंग करनेवाला ब्राह्मण ब्रह्मचारी कहा जाता है।

इस प्रकार ब्राह्मण धर्म की महिमा वर्णन करके भीष्मजी ने व्यास और शुकदेवजी का पूर्व में कहा हुआ ललित सम्वाद वर्णन किया, जिसको सुनकर समाज के सहित धर्मराज प्रसन्न होकर बोले—हे पितामह! आपने वर्णाश्रम धर्म, ज्ञान, वैराग्य, योग, कर्म, उपासना, मोक्षप्राप्ति के उपाय और विविध धार्मिक इतिहास वर्णन किये, जिसको श्रवण कर मैं कृतकृत्य हुआ। आप के अनुग्रह से मेरे मन का सन्देह सर्वथा दूर हो गया और अब सूर्य्यदेव भी उत्तरायण हो गये, शरशय्या पर पड़े रहने से आप को कष्ट होता होगा।

युधिष्ठिर की बात सुन कर भीष्मजी प्रसन्नता से बोले—हे धर्मराज! तुम्हारे प्रश्नों से मुझे बड़ा ही आनन्द प्राप्त हुआ, अब तुम समाज के सहित राजधानी में जाकर धर्मपूर्वक शासन करो और श्रीकृष्णचन्द्र भगवान की भक्ति में तत्पर रह कर प्रजा का पालन करो। मैं अब इच्छानुसार दिव्य लोक को प्रयाण करता हूँ। इस प्रकार कह धर्मराज को आशीर्वाद दे योगेश्वर श्रीकृष्णचन्द्र का ध्यान करके मुनि मंडली को प्रणाम कर भीष्मजी अनित्य शरीर को त्याग ब्रह्मपद में लीन हो गये। चारों ओर से मुनिगण और आकाश में देवता लोग भीष्म की प्रशंसा करने लगे। इस प्रकार प्रसिद्ध वीर वसु भीष्म सदा के लिये अन्तर्हित हो गये।

इति

अश्वमेध-पर्व ।

परीक्षितजन्म और अर्जुनदिग्विजय ।

गंगाजी के तट पर जलक्रिया करके दुस्सह शोक से पीड़ित हो धर्मराज धरती पर बैठ कर व्याकुलता से रुदन करने लगे। इस प्रकार युधिष्ठिर को विकल देख कर राजा धृतराष्ट्र ने कहा—

हे कुरुकुल दीपक ! अब जो कर्तव्यकर्म है धीरज धारण करके वह करो। तुमने क्षात्रधर्म के अनुसार युद्ध करके विजय पाई और धरती को अपने अधिकार में किया है, इसलिये शोक त्याग कर ऐश्वर्य का उपभोग करो। सोच तो हमें स्त्री के सहित करना चाहिये जिसके सौ पुत्र मारे गये। विदुर, व्यास और भीष्म की बात हमने नहीं मानी तो शोक को क्यों न पाऊँ ? हे तात ! तुम विषाद को त्याग कर सुखपूर्वक प्रजापालन करो।

वृद्ध राजा की इस प्रकार बातें सुन कर श्रीकृष्णचन्द्र बोले—हे युधिष्ठिर ! अत्यन्त शोक करने से तुम्हारे पितर दुखी हो रहे हैं, इसलिए शोक तज कर उचित काम में तत्पर हो। यज्ञ करके ब्राह्मणों को ख़ूब दान दो और प्रसन्नता से देवताओं की पूजा करो। बुद्धिमान विदुर, भीष्म और व्यास से जो तुमने आनन्दवर्द्धक धर्मोपदेश सुना है, फिर भी राज्य त्याग कर अधर्म मार्ग में जाने की इच्छा करते हो यह उचित नहीं है। मरे हुए प्राणी रोने से तो लौट नहीं सकते, ऐसा समझ कर शोक छोड़ दो और नियम-पूर्वक कर्त्तव्यकर्म करो।

केशव की बात श्रवण कर धर्मराज ने कहा—हे प्रभो ! आप अनुपम नीति की शिक्षा दे रहे हैं इसमें सन्देह नहीं, परन्तु गुरु, पितामह और बन्धुओं की हत्या करना अनुमान कर मुझ से धीरज धरते नहीं बनता है। हम कौन सा कर्म करें जिससे यह भीषण पाप नष्ट हो ? नहीं तो आप आज्ञा दीजिए मैं वन में जाकर निवास करूँ।

युधिष्ठिर की बात सुन कर वेदव्यासजी बोले—हे धर्मराज सुनो, तुम बार बार बालकों की तरह धर्मव्यवस्था पूछते हो, किन्तु जो उपदेश दिया जाता है उसको हृदय में धारण नहीं करते हो। इससे तो यह निष्कर्ष प्रकट हो रहा है कि अब तक जो उपदेश हमने तुम्हें किया वह व्यर्थ ही बकवाद किया है। भला यह तो कहो कि जिसे शुद्ध वृद्धावस्था प्राप्त हो गई उसका मरना कौन सा विपर्यय है ? प्राणीमात्र भले बुरे कर्म दैवाधीन होकर करते हैं, फिर बलात उनके मरण का पाप अपने ऊपर स्थापन करके तुम्हारा शोक करना सर्वथा निषिद्ध है। शास्त्र की आज्ञा है विधि-पूर्वक यज्ञ, तप और दान करने से पाप छूट जाता है। तुम राजाओं का परम धर्म अनुमान कर अश्वमेध यज्ञ करो।

व्यासजी के वचन सुन धर्मराज ने निवेदन किया—हे मुनिराज ! यज्ञ के लिये प्रचुर धन की आवश्यकता है किन्तु इस समय हम द्रव्य से हीन हो गये हैं और विना पर्याप्त दान के यज्ञ का काम पूरा नहीं हो सकता। जिन स्त्रियों के पति और पुत्र युद्ध में काम आये हैं उन विधवाओं से धन लेना उचित नहीं है। अश्वमेध विधिवत सम्पन्न हो ऐसा उपाय सोच कर मुझे बतलाइये। तब व्यासजी ने कहा—

हे धर्मराज ! इक्ष्वाकु कुलोद्भव राजा कारन्धम के प्रतापी पुत्र मरुत ने अश्वमेध यज्ञ करके बहुत दान दिया था। जिस तरह उन्होंने नारद मुनि के उपदेश से अंगिरस के पुत्र सम्वर्त को कर्त्ता बना कर यज्ञ कर्म सम्पन्न किया था, उसी प्रकार हम विधि पूर्वक तुम्हें यज्ञ करा कर ऐश्वर्य पूर्ण कर देंगे। पहिले तुम शिव-पार्वती की आराधना करो, इससे सहज ही धन धान्य से सम्पन्न हो जाओगे। किसी प्रकार की चिन्ता न करके जाकर राज्य भोग करो। व्यासजी के उपदेशानुसार धर्मराज समाज के सहित इन्द्रप्रस्थ में आकर राजकार्य करने लगे।

श्रीकृष्णचद्रजी कुछ काल पर्यन्त पाण्डवों के साथ रह कर विविध प्रकार के धर्मों का उपदेश किया, फिर धर्मराज पाँचों भाइयों से विदा होकर सात्यकि आदि यदुवंशियों के सहित द्वारकापुरी में आये। जिस पुरी को देख इन्द्र का मन मोहित हो जाता है, उसे देख कर मन में प्रसन्न हुए। सब नगर निवासियों से मिलते उन्हें आनन्द प्रदान करते हुए अपने मन्दिर में पहुँचे। गुरुजनों के चरणों की वन्दना करके और यथायोग्य सब से मिलजुल कर वसुदेवजी के समीप जा बैठे। उन्हों ने कुशल-प्रश्न के अनन्तर पूछा कि कौरव-पाण्डवों का भयंकर युद्ध किस प्रकार हुआ ? श्रीकृष्णचन्द्र ने युद्ध का वर्णन संक्षेप में किया, जब अभिमन्यु का वध कहा, तब इस अप्रिय वाणी के सुनते ही माता देवकी और वसुदेव अत्यन्त दुखी हुए। वे सुभद्रा की ओर देख कर रुदन करने लगे। तब श्रीकृष्णचन्द्र ने धीरज धारण करने के लिये प्रार्थना करके उत्तरा का गर्भवती होना कहा। यह सुन कर दम्पति को ढाढ़स हुआ फिर पिंडदान करके ब्राह्मण भोजन आदि कराया।

उधर व्यासजी कुन्ती के पास आये और उत्तरा के गर्भाधान की बात कह कर समझाया। उन्होंने कहा—हे कुन्ती ! कुँअरि उत्तरा के गर्भ से जो पुत्र होगा वह बड़ा प्रतापी, प्रजावत्सल और धरती का पालन करनेवाला होगा। यह सुनकर पाण्डवों को बहुत हर्ष हुआ। अश्वमेध के लिये धन का संग्रह करने के लिये उपदेश देकर व्यासजी चले गये।

धर्मराज भाइयों और विद्वानों से सलाह कर के व्यासजी के बताये हुए स्थान में धनप्राप्ति के लिये चलने का सम्मत किया। अनेक प्रकार का दान देकर देवपूजन करके सुन्दर स्वस्त्ययन सुनते हुए समाज के सहित प्रसन्नता पूर्वक उस पर्वत की ओर चले जहाँ धन मिलने की बात व्यासजीने वर्णन की थी। वहाँ पहुँच कर शिवजी की भक्ति पूर्वक पूजा की और मुनियों को सब प्रकार सन्तुष्ट किया, कुबेर की वन्दना करके खानि से नाना प्रकार के रत्न असंख्यों ऊँट, घोड़े, हाथी और रथों पर लदवा पुनः शिवजी का पूजन करके नगर की ओर चले।

श्रीकृष्णचन्द्रजी अश्वमेध का समय जान कर प्रद्युम्न, सात्यकि, बलराम, गद, शाम्ब, निशठ, कृतवर्मा और सारन आदि यदुवंशी तथा सुभद्रा के सहित चल कर हस्तिनापुर में आये। राजा धृतराष्ट्र ने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र का आगमन कल्याणकारी विचार कर विदुर और युयुत्सु को स्वागत के लिये भेजा। उन लोगों ने आदर के साथ लिवा कर उन्हें सुन्दर स्थानों में ठहराया।

उसी समय अश्वत्थामा के मंत्र की प्ररणा से उत्तरा का गर्भ पीड़ित होने लगा और दुस्सह क्लेश से वह रोने चिल्लाने लगी। सात्यकि के सहित कृष्णचन्द्र अन्तःपुर में गये, उन्हें देखते ही कुन्ती दुःख से व्याकुल हुई केशव के समीप आई और सारा हाल निवेदन कर कहा —

हे यदुनाथ ! आपने पूर्व में प्रतिज्ञा की है कि मैं उत्तरा के गर्भ की रक्षा करूँगा। उस प्रतिज्ञा को आप क्यों भूल गये जिससे गर्भ का नाश हो गया। जिस तरह आँखों की रक्षा पलकें करती हैं उसी प्रकार आप पांडवों के रक्षक हैं। आपके भानजे की बहू का गर्भनाश सुन कर युधिष्ठिर, भीम

और अर्जुन आदि कैसे जीवित रहेंगे ? इसी गर्भ की आशा रख कर सब जी रहे थे, अब तो वंश का नाश हो गया। यह शोक कैसे सहा जायगा। इस प्रकार कह कर और रुदन करती हुई कुन्ती केशव के चरणों में गिर पड़ी। कृष्णचन्द्र ने कुन्ती को उठा कर बहुत तरह से समझाया और सुभद्रा को ढाढ़स बँधाकर प्रसव मन्दिर के दरवाजे पर गये। वहाँ बहुत से गुणी विद्वान् वैद्य रक्षा के लिये बैठे यत्न कर रहे थे। द्रौपदी ने उत्तरा से कहा कि तेरे ममिया श्वशुर आये हैं! शोक छोड़ धीरज धर। द्रौपदी के वचन सुन कर उत्तरा मृतक पुत्र को गोद में लिये यदुनाथ के सामने आई और शोक से विह्वल होकर रुदन करने लगी। उसकी व्याकुलता पर दयार्द्र हो केशव ने ब्रह्मास्त्र का आ .र्षण किया उनकी कृपा से मरा हुआ बालक जीवित हो गया। वंश क्षीण होने पर वह छबिनिधि शिशु हुआ इससे श्रीकृष्णचन्द्र ने उसका परीक्षित नाम रक्खा। फिर राजमहल और नगर में मंगलाचार होने लगा तथा स्त्रियाँ मंगल गीत गाने लगीं। जब वह बालक एक मास का हुआ तब धर्मराज बन्धुओं और समाज के सहित धनराशि लेकर आ गये। सब से परस्पर मिलजुल कर और पौत्र होने का समाचार सुन कर बहुत ही प्रसन्न हुए।

फिर पाण्डवों के समीप वेदव्यासजी आये और पूजित होने के अनन्तर उन्हों ने धर्मराज से कहा अब अश्वमेध का शीघ्र आरम्भ कर देना चाहिये। चैत्र की पूर्णिमा को उत्तम मुहूर्त्त में दीक्षित होकर ब्राह्मण भोजन कराओ और सनियम रह रक्षकों को साथ करके घोड़ा छोड़ दो। भीम, नकुल और सहदेव यज्ञ की रक्षा के लिये घर रहें और धनुर्द्धर अर्जुन सेना को साथ लेकर घोड़े की रखवाली करने के लिये जाँय।

व्यासजी की बात सुनकर धर्मराज ने उत्कंठित होकर अर्जुन से कहा—हे बन्धुवर! आप घोड़े की रक्षा के लिये उसके साथ पधारो और पृथ्वी को जीत कर यज्ञ को पूरा करो। यदि कोई बहादुर राजा घोड़े को बाँध लेवे तो पहिले प्रेम से उससे वार्त्तालाप करके समझाना जिसमें विरोध न बढ़े। न मानने पर युद्ध करके उसे जीतना। इस तरह अर्जुन को समझा कर समय आने पर राजा दीक्षित हुए और घोड़ा छोड़ दिया। अर्जुन राजा तथा श्रीकृष्णचन्द्र और बन्धुवर्ग से बिदा होकर स्वस्त्ययन सुनते हुए ईशान कोण की ओर चले।

घोड़े का आगमन सुन कर पुराना वैर याद करके त्रिगर्त्तराज अपनी सेना सजकर आगे बढ़े और घोड़े को पकड़वा लिया। अर्जुन ने बहुत समझाया, परन्तु उसने एक न सुनी, उलटे कुपित हो अर्जुन पर बाणों की वर्षा करने लगा। फिर पार्थ ने प्रलयकारी बाणों की वर्षा करके शत्रु सेना का संहार किया जिससे भयभीत हो उसकी फौज भाग चली। त्रिगर्त्तराज ने धनुष बाण रथ में रख, अर्जुन से पुकार कर कहा—हे पार्थ! अब युद्ध त्याग दो हम तुम्हारे अधीन हैं जो कहो वही करने को तैयार हैं। राजा की बात सुन कर अर्जुन ने कहा—हे त्रिगर्त्तराज! अपने बन्धु बान्धवों के सहित धर्मराज के यज्ञ में पधारना। ऐसा कह कर घोड़े के साथ आगे चले।

जब गोहाटी में पहुँचे तो भगदत्त का पुत्र राजा वज्रदन्त सेना सहित अर्जुन से युद्ध करने को सामने आया। पार्थ ने उसे भी समझाया, जब उसने नहीं माना तब दोनों ओर से भयंकर युद्ध होने लगा। तीन दिन महा घनघोर संग्राम हुआ, अन्त में वीर अर्जुन ने उसको पराजित किया और यज्ञ में आने का आदेश करके आगे बढ़े।

जयद्रथ के मारे जाने का असकस लेकर उसके वर्गवालों ने गहरा युद्ध किया, किन्तु अन्त में वे सब पराजित होकर यज्ञ में आने का वचन देने पर छुटकारा पाया। पर्यटन करते हुए घोड़ा

मणिपुर आया। राजा बभ्रुवाहन निरस्त्र ब्राह्मणों को साथ लेकर मिलने आये। अर्जुन ने उसको निरस्त्र देख कर कहा —

हे बभ्रुवाहन ! क्षात्रधर्म त्याग कर नामर्दों की तरह क्यों यहाँ आते हो ? लज्जा से घर लौट जाओ। मैं यज्ञ के घोड़े की रक्षा करने में तत्पर बार बार धनुष टंकार करके गर्बीले वीरों का मान भंग करता आ रहा हूँ। तुम तुच्छ की भाँति हाथ जोड़ कर आते हो ? यदि मैं निरस्त्र आता तब इस प्रकार प्रीति बढ़ाना तुम्हें योग्य था। यह सुन कर बभ्रुवाहन लज्जा से नीचे सिर करके खड़ा रह गया। इतने में धरती से एक नागिन निकली, उसने बभ्रुवाहन से कहा मैं तुम्हारी माता हूँ और अर्जुन पिता हैं। तुम क्षात्रधर्म का बड़प्पन सोच कर स्नेह का नाता दूर कर के युद्ध करो, नम्र होने की आवश्यकता नहीं है।

इस प्रकार माता उलूपी की बात सुन कर अभिमानी बभ्रुवाहन सुवर्ण का कवच धारण कर अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित हो रथ पर चढ़ कर अत्यन्त क्रोध से बाणों की वर्षा करने लगा। इधर पार्थ भी कुपित होकर युद्ध करने लगे। बड़ा भीषण संग्राम पिता-पुत्र में हुआ। बभ्रुवाहन ने अर्जुन के हृदय में वज्र के समान बाण मारा, वह छाती में घुस कर पीठ की ओर निकल गया और अर्जुन प्राणहीन होकर धरती पर गिर पड़े। समस्त पाण्डवी सेना में अर्जुन के मारे जाने से हाहाकार मच गया। बभ्रुवाहन भी पार्थ के बाणों की चोट से मूर्च्छित होकर धरती पर लेट गया। पति और पुत्र का मरण सुनते ही चित्रांगदा रुदन करती हुई वहाँ आई। इस अनर्थ को देख छाती पीटती हुई अचेत हो पृथ्वी पर गिर पड़ी। फिर होश आने पर विलाप करने लगी। नागकन्या उलूपी भी वहाँ आई, उसको देख कर चित्रांगदा रो रो कर कहने लगी। तेरी सलाह से मेरा पुत्र अपने पिता से लड़ गया, परिणाम यह हुआ कि स्वामी मारे गये। अब शीघ्र ही कोई उपाय करके इन्हें जिला दे। इस प्रकार उलूपा से कह कर पति के चरणों को पकड़ कर फिर करुणा करके रोने लगी।

इतने में बभ्रुबाहन चैतन्य होकर उठा, पिता को मृतक हुआ देख कर वह व्याकुल हो रुदन करने लगा। उसने उलूपी से कहा—हे माता ! तेरी सलाह मान कर मैंने पिता से लड़ाई की और उन्हें मार कर बड़ा भयंकर पाप किया। मैं सच कहता हूँ, अब शरीर न रक्खूँगा। यदि पिता जीवित हुए तो मैं भी जीवन धारण करूँगा, नहीं तो आत्महत्या करके प्राण दे दूँगा।

पुत्र की बात सुन कर उलूपी को बड़ा खेद हुआ। उसने संजीवनीमणि का स्मरण किया उस मणि को बभ्रुवाहन के हाथ में देकर कहा कि अपने पिता की छाती पर इसको रख दो तो वे जीवित हो जाँयगे। बभ्रुवाहन ने वैसा ही किया, मणि के प्रभाव से अर्जुन उठ कर खड़े हो गये। उन्होंने पुत्र को गले से लगा लिया। दोनों पत्नियों को वहाँ देख कर अर्जुन ने उनके आने का कारण पूछा—तब उलूपी ने कहा—

हे नाथ ! आप का बध सुन कर हम दोनों व्याकुल होकर यहाँ आई हैं। इन्द्र, वरुण कुवेर और यमराज से आप जीते जानेवाले नहीं हैं, किन्तु पुत्र के बाण से आप मारे गये उसका कारण दूसरा ही है उसको सुनिये। आपने अधर्म से भीष्म का वध किया था, इससे वसुगण ने गंगाजी के समीप आकर सम्मति करके आप को शाप दिया कि इस कुकर्म का फल तुम्हें यह मिलेगा कि अपने पुत्र के हाथ मार डाले जाओगे। वही कष्ट आज आप को सहन करना पड़ा है। अब आप उस पाप से मुक्त हो गये, आनन्द पूर्वक विहार कीजिये किसी प्रकार का भय नहीं है।

यह बात सुन कर अर्जुन प्रसन्न हुए और पुत्र से बोले—हे तात ! हम तो सेना सहित घोड़े

के पीछे जाते हैं और तुम चैत्र की पूर्णिमा तक अपनी माताओं के सहित धर्मराज यज्ञ करेंगे हस्तिनापुर आना। यह कहकर रथ पर सवार हो सेना के सहित डंका बजवाते हुए अर्जुन घोड़े के पीछे चले।

जब घोड़ा राजमहल के पास आया जहाँ सहदेव का पुत्र मेघसन्धि राजा था, तब वह क्रुद्ध होकर युद्ध के लिये ससैन्य बाहर निकला। परन्तु अर्जुन ने बाणों की अपार वर्षा करके उसे विवश कर दिया और शिक्षा दी कि वैर त्याग कर सकुटुम्ब हमारे यहाँ यज्ञ में पधारना। वहाँ से चल कर चेदिनगर (चन्देरी) के निकट आये। शिशुपाल के पुत्र शरभ ने बड़ा आदर किया, उससे पूजा लेकर नेवता दे आगे बढ़े। बहुत से राजाओं को वश में करते नेवता देते भिलसा के समीप जा पहुँचे। वहाँ का राजा चित्राङ्गद युद्ध करने को आया, उसे जीत कर एकलव्य निषाद के गाँव में घोड़ा पहुँचा। उसको जीत कर दक्षिण दिशा में समुद्र के किनारे गये, वहाँ के द्रविड़, महिष, कोलपति आदि को जीत कर द्वारका में गये। युवा यादवों ने युद्ध करना चाहा पर उग्रसेन आदि वृद्धों ने मना करके अर्जुन का सत्कार किया। पंचनद, होते कन्दहार गये वहाँ शकुनि के पुत्र ने अत्यन्त घोर संग्राम किया, अन्त में पराजय के भय से अधीनता स्वीकार कर यज्ञ में आने का वचन दिया।

फिर घोड़ा हस्तिनापुर की ओर चला। दूतों ने अर्जुन के आगमन का समाचार धर्मराज से आकर निवेदन किया। धर्मराज ने भाइयों से कहा—आज माघ की पूर्णिमा है। अर्जुन अच्छे शुभ दिन में विजय कर नगर में आ रहे हैं। अब यज्ञ की पूरी तैयारी करो, घर घर नगर में बन्दनवार पताकाएँ सजवाओ। दूत भेज कर राजाओं को और ब्राह्मण वृन्द को बुलवाओ। राजा की आज्ञा सुन कर भीमसेन ने तुरन्त सब काम पूरा किया। नेवता पाकर राजा लोग आये उन्हें यथायोग्य निवास स्थान दिये गये। ब्राह्मणों का पूजन कर उचित रमणीक स्थलों में भीमसेन ने सब को ठहराया। सुवर्ण के पात्रों में दूध दही भर भर प्रत्येक डेरे में भेजवाया। दासी, दास हर घड़ी सामग्री लिये तैयार थे जो जिस वस्तु की इच्छा करता उसे वे तुरन्त लाकर उपस्थित करते थे। किसी को प्रवास का कष्ट स्वप्न में भी अनुभव नहीं होता था।

इतने में अर्जुन का आगमन नगर के समीप सुन कर धर्मराज, श्रीकृष्णचन्द्र सब समाज के सहित आगे से उन्हें लेने गये और प्रीति पूर्वक मिलकर मन्दिर में लिवा लाये। उसी समय राजा बभ्रुवाहन माताओं और कुटुम्बियों के सहित आये। सब से यथायोग्य मिलकर प्रसन्न हुए, धर्मराज ने सब का उचित सत्कार करके सन्तुष्ट किया।

यज्ञानुष्ठान

अवसर जान कर व्यासजी आये और धर्मराज से कहा—हे युधिष्ठिर! अब आनन्द-पूर्वक हवन आरम्भ करो और आज सुन्दर मुहूर्त्त है अश्वविधि करके विधिवत दक्षिणा देकर यज्ञ फल प्राप्त करो।

व्यासजी की आज्ञा पाकर राजा युधिष्ठिर ने यज्ञ का आरम्भ किया। पवित्र पलाश का स्तम्भ गड़वा कर समूह कर्म करने लगे। खैर, पलाश और बेल के तीन तीन तथा देवदार के दो स्तम्भ गड़वाये। शास्त्र की आज्ञा के अनुसार सब तैयारी कराकर ज्ञाता ब्राह्मण को ब्रह्मा बनाया। पशुओं के सहित जिन जिन देवताओं का उल्लेख है, विधान पूर्वक सब का आदर के साथ अग्निकर्म किया।

गन्धर्व, किन्नर, सिद्ध, ऋषि, ब्राह्मण प्रसन्नता से यज्ञ अवलोकन करते हुए परस्पर राजा युधिष्ठिर की प्रशंसा करने लगे । तपस्वी विद्वान् ब्राह्मणों ने विधिवत घोड़े का पूजन करवाया । द्रौपदी के सहित धर्मराज ने शास्त्रोक्त हवन किया । इस प्रकार व्यासजी ने शिष्यों के सहित यज्ञ की पूर्णाहुति कराई । यज्ञ पूर्ण होने पर राजा युधिष्ठिर ने बहुत सा धन, धरती, रत्न, गौ, घोड़े, हाथी, आदि का, दान दिया और ऋत्विजों को अनन्त सम्पत्ति देकर मालामाल कर दिया । सब को सन्तुष्ट करके द्रौपदी के सहित धर्मराज ने अवभृथ स्नान किया । फिर कृष्ण बलराम की पूजा की और कहा—

हे केशव ! आप के ही प्रसाद से मेरा यह यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हुआ है, अब जो आप की आज्ञा हो तदनुसार कार्य किया जाय ।

इतने में वहाँ एक नेवला आया और मनुष्य की भाषा में पुकार कर कहने लगा—हे धर्मराज ! आप का यज्ञ पूर्ण नहीं हुआ । उसने कहा-पहले कुरुक्षेत्र में एक ज्ञानी ब्राह्मण स्त्री, पुत्र और पुत्रवधू के सहित निवास करते थे । वे द्विजश्रेष्ठ तपस्या में अनुरक्त थे । शीलावृत्ति से जीवन निर्वाह कर सकुटुम्ब प्रसन्न रहते थे । एक बार भीषण दुर्भिक्ष पड़ा, उन्होंने छः उपवास के अनन्तर थोड़ा अन्न खेतों से बीन कर पाक तैयार कराया । ज्यों ही भोजन के लिये तैयार हुए त्यों ही एक क्षुधित ब्राह्मण ने आर्त्त वाणी से पुकारा । ब्राह्मण ने सत्कार पूर्वक उसे कुटी में बुलाया और क्रमशः चारों भाग उन्हें भोजन कराकर सन्तुष्ट किया और आप सकुटुम्ब भूखे ही रह गये । इस महान् पुण्य के प्रताप से वे देवलोक में सिधारे । ब्राह्मण ने भोजन कर हाथ धोया, उस जल में लोटने से मेरा आधा शरीर सुवर्ण का हो गया । इसी विचार से मैं ने यहाँ आकर ब्राह्मणों के उच्छिष्ट जल में लोट लगाई; किन्तु मेरा शरीर ज्यों का त्यों रह गया, इसी से कहता हूँ कि यह यज्ञ पूरा नहीं हुआ' ।

नेवले की बात सुन कर आश्चर्य से चकित होकर धर्मराज ने श्रीकृष्णचन्द्र से पूछा—

हे केशव ! येज्ञ अपूर्ण होने का क्या कारण है ?

श्रीकृष्ण ने कहा—हे राजन् ! यज्ञ में कोई अपमानित होकर विमुख न जावे तभी वह पूर्ण होता है आप के यज्ञ में एक श्वपच ईश्वर भक्त अनादृत होकर लौट गया है, उसको बुलवा कर आदर से भोजन कराइये तो सब कर्म पूरा होगा । केशव की बात सुन कर धर्मराज ने अर्जुन को उसे बुलाने के लिये भेजा ।

अर्जुन ने द्वारका में श्वपच को पाया और रथ पर बैठा कर हस्तिनापुर ले आये । राजा ने आदर पूर्वक उस भक्त को भोजन कराया, उसके उच्छिष्ट जल में लोट कर नेवला शापमुक्त हो अपनी गति को प्राप्त हुआ ।

फिर धर्मराज ने भाइयों के सहित जितने राजा यज्ञ में आये थे एक एक करके सब का आदर कर उन्हें बिदा किया और आप भाइयों के सहित राज्यकार्य सँभालने में अनुरक्त हुए ।

इति

आश्रमवासिक-पर्व ।

धृतराष्ट्र का वनवास और तनत्याग ।

भाइयों के सहित धर्मराज प्रजापालन करते हुए नीति पूर्वक राज्य कार्य करने लगे। वृद्ध राजा की निरन्तर शुश्रूषा करते थे और उनकी आज्ञा लेकर सब काम करते थे। संजय, विदुर और युयुत्सु युधिष्ठिर की आज्ञा से धृतराष्ट्र और गान्धारी की श्रद्धा पूर्वक सेवा करते थे। व्यासजी नित्य ही नवीन कथा सुनाते थे और मंत्री, सेवक कुटुम्बीजन हाथ जोड़े सदा वृद्ध राजा के सत्कार में तत्पर रहते थे। कुन्ती, द्रौपदी और सुभद्रा आदि समस्त रानियाँ गान्धारी की सेवा करती थीं तथा मधुर वचन कह कर सदा उन्हें सन्तुष्ट रखती थीं।

जिस समय राजा धृतराष्ट्र जो दान करना चाहते थे धर्मराज उनकी आज्ञा का पालन बन्धुओं के सहित सोत्साह करते थे। सब प्रकार से पाण्डवों ने राजा की ऐसी सेवा की कि उन्हें पुत्रों का शोक भुला गया। इस प्रकार दश वर्ष बीत गये।

एक दिन राजा धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर से कहा—हे धर्मराज! तुमने भाइयों के सहित मेरी बड़ी सेवा की, जिससे मैं हृदय से प्रसन्न होकर आशीर्वाद देता हूँ। अब मेरी इच्छा है कि गान्धारी के सहित वनवास करूँ और तुम्हें नीति से प्रजापालन तथा राज्य कार्य का यथोचित निर्वाह करते देख हृदय में प्रसन्न हो अपने भाग्य की सराहना करूँ। मुझे प्रसन्नता से आज्ञा दो, अब मेरे लिये यही उचित है।

राजा की बात सुन कर मन में दुखित होकर धर्मराज ने कहा — महाराज यदि आप दुःख सहन कर वन में निवास करेंगे तो मेरे ऐश्वर्य-भोग को धिक्कार है। आप मेरे पिता-माता और गुरु हैं, मैं सपरिवार आप का सेवक हूँ। मैं ने पाप करके कलंक पाया है, तिस पर आप वनवास करके उसे और बढ़ाना चाहते हैं? यदि ऐसा ही करना है तो युयुत्सु को राज्य दे दीजिये और भाइयों के सहित हम वन में साथ चल कर आप की सेवा करेंगे।

धर्मराज की करुणा युक्त वाणी सुन कर राजा धृतराष्ट्र ने कहा — हे पुत्र! आपने बहुत दिनों तक मेरी शुश्रूषा की, भाइयों और सेवकों के सहित इतना आदर किया कि मुझे भीषण शोक विस्मरण हो गया, किन्तु अब वनबास की आज्ञा देना ही उचित है इसमें कुछ भी कलंक की बात नहीं है। कुल की रीति के अनुसार वृद्धावस्था में हमें वनबास योग्य ही है, मेरी आज्ञा का पालन कर तुम सुख से राज्य करो और गान्धारी के सहित मुझे वन में निवास करने की अनुमति देकर मेरा आशीर्वाद ग्रहण करो इसमें तुम्हारी कीर्त्ति बढ़ेगी और किसी प्रकार का संसार में अयश न होगा।

इतना कह कर धृतराष्ट्र करुणार्द्र हो चुप हो गये। धर्मराज, विदुर संजय अर्जुन आदि रुदन करने लगे। कुन्ती आदि रानियाँ रोने लगीं।

वृद्ध राजा ने धीरज धारण करके सब को समझाया कि स्नेह से मेरा हृदय द्रवीभूत हो रहा है, किन्तु तप की भावना मन में प्रबल हो उठी है। आपलोग प्रसन्नता से आज्ञा दें, इसमें कोई अनुचित बात नहीं है।

तब व्यासजी ने धर्मराज से कहा—हे युधिष्ठिर कुरुकुल दीपक धृतराष्ट्र जो कहते हैं तुम सन्देह छोड़ कर वही करो। यह शास्त्र की आज्ञा है कि वृद्धावस्था में राजा वनवास करके तपस्या करे, इससे राजा का विचार प्रशंसनीय है। उनकी आज्ञा तुम्हें सहर्ष शिरोधार्य करनी चाहिये। इस प्रकार उपदेश देकर व्यासजी अपने आश्रम को चले गये।

व्यासजी के वचन सुनकर धर्मराज ने कहा—महाराज! गुरुजनों की आज्ञा शिरोधार्य करना मेरा परम धर्म है किन्तु आज मेरी प्रार्थना मान कर भोजन और विश्राम कीजिये, कल्ह प्रातः-काल वन को पधारिये।

धर्मराज की बात स्वीकार कर विदुर और परिवार के सहित दम्पति अपने महल में गये। वहाँ सब कृत्य ब्राह्मण-पूजनादि करके भोजन किया, जब सब लोग निश्चिन्त होकर बैठे तब वृद्ध राजा ने युधिष्ठिर से कहा—

हे धर्मराज! भीष्म ने जो राजधर्म और सत्कर्म का उपदेश तुम्हें दिया है सदा उसी के अनुसार पृथ्वी का पालन करना। जिससे प्रजा पीड़ित न हो और असन्तोष न बढ़ने पावे वही प्रयत्न करना। जिस राजा की प्रजा असन्तुष्ट रहती है उस पर शत्रु को छिद्रान्वेषण का अवसर मिलता है राज्य के समस्त अंगों की सावधानी से रक्षा करते रहना। मंत्री पवित्र शुद्ध हृदय और बुद्धिमान को रखना और बिना मंत्र के कोई भी कार्य न करना। मंत्र का भेद दूसरा कोई न जानने पावे। योद्धाओं को दान और मान से सदा प्रसन्न रखना। सेनापति को मित्र समझ कर उसका आदर करना। दूत बहुत होशियार और बुद्धिमान रखना जिससे सम्पूर्ण देशों की सच्ची ख़बर सुनने में धोखा न हो। सुकृती और हितैषी को रक्षक नियत करना। रसोइयादार और पान खिलानेवाले को प्यार करना तथा आमदनी खर्च का हिसाब सदा देखते रहना। हाथी घोड़ों के देखने में आलस्य न करना और जातिकुल के धर्म की सदा रक्षा करते रहना। सुन्दर कर्म करने में अभिलाषा रखना और विद्वान सुकवियों का सदा संग करना तथा शास्त्र का श्रवण प्रतिदिन करना। शत्रु मित्र की पहिचान करते रहना। युवती के आधीन होकर स्वकर्त्तव्य पालन से कभी विरत न हो जाना। परलोक का डर और लोक की लाज को भूल मत जाना। दान पुण्य और सत्कर्म सदा करते रहना।

इस प्रकार उपदेश देकर राजा बाहर आये और ब्राह्मणों को बुलवा कर नाना प्रकार के दान दिये। राजा के वन जाने का समाचार सुन कर सब पुरवासी व्यथित होकर आये, उनसे राजा ने कहा—हे पुरवासियो! मेरे पुत्रों के कुमंत्र से जो महान् अनर्थ हुआ वह कहने योग्य नहीं है। राजा युधिष्ठिर ने भाइयों के सहित मेरी बहुत अच्छी सेवा की जिससे मैं सब तरह से पाण्डवों पर प्रसन्न हूँ। अब मेरे हृदय में वैराग्य उत्पन्न हुआ है इससे गान्धारी के सहित मैं वन में निवास करना चाहता हूँ। अब धर्मराज पूर्वजों की भाँति प्रजापालन और राज्यकार्य करेंगे, इसलिये तुमलोग प्रसन्नता से अब हमें बिदा करो।

यह सुन कर सारी प्रजा अधीर होकर रोने लगी। फिर प्रवीण ब्राह्मण ने धीरज धारण करके कहा—हे राजन्! किसी की दुर्बुद्धि से युद्ध नहीं हुआ है, जो कुछ होता है उसमें प्रधानता भावी की है। आप के इस शुभ संकल्प में हम लोग विघ्न डालना नहीं चाहते, आप प्रसन्नता से वनवास करके परलोक सुधारिये।

फिर सब को बिदा करके राजा गान्धारी के मन्दिर में गये। रात्रि बिता कर प्रातःकाल जब बन को जाने के लिये तैयार हुए तब उन्होंने कहा—आज कार्त्तिक की पूर्णिमा है इसलिये भीष्म, द्रोण

दुर्योधन आदि का श्राद्ध सविधान कर देना उत्तम है। राजा की बात सुन कर विदुर ने धर्मराज के समीप आकर वृद्ध नरेश की इच्छा कह सुनाई।

यह सुन कर भीमसेन अप्रसन्न हुए, उन्होंने कहा श्राद्ध के लिये मैं उनको धन न दूँगा। दुर्योधन आदि उनके पुत्र श्राद्ध के योग्य नहीं हैं। इस समय राजा कोमल बचन बोलते हैं यह बुद्धि पहिले कहाँ चली गई थी?

इस प्रकार कटु बचन कहते सुन कर अर्जुन ने कहा—हे भैया भीमसेन! राजा धृतराष्ट्र मेरे पिता के ज्येष्ठ बन्धु हैं और इस समय पुत्रों के मारे जाने से हमलोगों के आधीन हैं। जब वे वनवास के लिये जाना चाहते हैं तब हमलोगों का धर्म है कि उनकी इच्छाएँ पूरी करें। फिर उनकी बातों का उचित उत्तर देना बड़े बन्धु के अधिकार की बात है, इसमें आप व्यर्थ ही हस्तक्षेप न करें। अर्जुन की बात सुन कर भीमसेन चुप हो गये।

धर्मराज ने विदुर से कहा—हे विदुरजी! यह सब राज्य ख़जाना आदि उन्हीं का है जो आज्ञा करें श्राद्ध के लिये हम सारी सामग्री भेज देंगे।

विदुर ने जाकर राजा धृतराष्ट्र से कहा, सुनकर उन्हें प्रसन्नता हुई। राजा ने अलग अलग सब के श्राद्ध कर नाना प्रकार के दान दिये और ब्राह्मण भोजन कराकर जब ख़ाली हुए तब पाण्डवों को बुलवाया और उनसे बिदा होकर बन को चले। पतिव्रता गान्धारी आँखों में पट्टी बाँधे कुन्ती के कन्धे पर हाथ रक्खे हुए पति के पीछे पीछे जाने लगीं। कुरुकुल की स्त्रियाँ रुदन करती हुई चलीं। पाण्डव पुरजन सब रोने लगे। उस समय की करुणा कही नहीं जाती है। वृद्ध राजा ने समझा बुझा कर स्त्रियों को लौटा दिया और पुरजनों को भी नगर को लौट जाने के लिये विवश किया। अन्त में पाण्डवों को हृदय से लगा कर और आशिर्वाद देकर राजा ने लौटाया।

कुन्ती, संजय, विदुर ये राजा के साथ बन में गये। कुरुक्षेत्र में तपस्वी केकयराज से मिलकर व्यासाश्रम में पहुँचे, वहाँ गान्धारी के सहित राजा तपस्या में अनुरक्त हुए उसी प्रकार कुन्ती, संजय और विदुर भी तप करने करने लगे। राजा रानी और कुन्ती आदि कठिन व्रत निबाहने में बड़ी उत्कंठा रखते थे। तपस्या से उनके शरीर खिन्न हो गये; किन्तु मन का उत्साह दिनोंदिन नया होता जाता था।

राजा की कठिन तपस्या देख कर देवर्षि नारद, देवल और शिष्यों के सहित व्यासजी आये। मुनियों के दर्शन से राजा को बड़ी प्रसन्नता हुई। कुन्ती ने स्वागत करके सब को आसन पर बिठाया। समयानुसार नारदजी ने विविध इतिहास कह कर राजा को सन्तोष प्रदान किया और कहा—हे राजन्! आप की तपस्या सफल होगी। तीन वर्ष और तप करने के बाद आप यक्ष लोक में निवास करेंगे, कुन्ती पतिलोक को जायगी, संजय स्वर्ग को पधारेंगे और विदुर धर्म में लीन होंगे। इस प्रकार कह कर मुनि लोग बिदा हो अपने अपने स्थान को चले गये।

कुछ दिन बीत जाने पर धर्मराज भाइयों, पुरजन और रनिवासों के सहित जहाँ राजा धृतराष्ट्र तप करते थे वहाँ उनके दर्शनार्थ चलने को तैयार हुए। नगर की रक्षा का भार रणधीर युयुत्सु को सौंप कर ससमाज उस ओर चले।

आश्रम के समीप पहुँच कर वाहन त्याग सब पैदल चलने लगे। कुन्ती ने राजा से पुत्र परिजनों का आगमन सूचित किया। पुत्रों को गले लगा कर स्नेह वश राजा-रानी के नेत्रों से जल बहने लगा। सब से मिलने के बाद ठहरने के लिये संजय ने उचित प्रबन्ध किया। पाण्डवों का आगमन सुन कर मुनिवृन्द मिलने आये, वे धर्मराज से मिल कर प्रसन्न हो अपने अपने आश्रम को चले गये।

वृद्ध नरेश ने धर्मराज से कुशल प्रश्न किया, युधिष्ठिर ने उनकी बातों का उत्तर देकर कहा यहाँ विदुरजी नहीं दिखाई पड़ते हैं ?

धृतराष्ट्र ने कहा—हे धर्मराज ! विदुर घोर वन में वायु भक्षण करके तपश्चर्या में अनुरक्त हैं। वे कभी कभी दिशाओं में भ्रमण करते हुए मुनियों को दिखाई देते हैं, किन्तु मुझे भूल गये हैं कभी मेरे समीप नहीं आते।

इतने में धर्मराज को वन में जाते हुए विदुरजी दिखाई पड़े। युधिष्ठिर उठ कर शीघ्रता से उस ओर चले और पुकारा—हे विदुरजी ! मैं धर्मराज हूँ, दर्शन दीजिये। राजा की बात सुन कर विदुरजी घने वन में वृक्ष से लग कर खड़े हो धर्मराज की ओर एक टक से निहारने लगे। धर्मराज ने समीप में पहुँच कर प्रणाम किया। वे अनिमेष और मौन हो युधिष्ठिर की ओर देखते रह गये। योगबल से विदुर शरीर त्याग धर्म में लीन होगये। धर्मराज को विदित हो गया कि महात्मा विदुर अब सजीव नहीं हैं तब उन्हों ने उनके शरीर की दाहक्रिया करना चाहा।

उस समय आकाशवाणी हुई—हे धर्मराज ! विदुर परमयोगी हैं, उन्होंने अपने शरीर को ज्ञान से दग्ध किया है अतएव तुम्हें उनके शरीर का दाहकर्म न करना चाहिये। इस तरह नभवाणी सुन कर धर्मराज लौट आये और विदुरजी का हाल सब से निवेदन किया। उस दिन कन्द मूल आहार करके रात बितायी, प्रातःकाल तपस्वी राजा की आज्ञा पाकर मुनियों के रमणीय आश्रमों को देखने चले। ब्राह्मणों का वन्दन करते और उन्हें थाली, श्रुवा, मृगचर्म, कम्बल, कमण्डलु और स्वर्ण कलश देते हुए तीसरे पहर को समाज सहित लौट आये। धृतराष्ट्र के पैरों पर गिरकर सब लोग बैठ गये, इतने में शिष्यों के सहित व्यासमुनि आगये। राजा ने उनका सत्कार करके पवित्र आसन पर बैठाया। कुशल प्रश्न के अनन्तर व्यासजी ने कहा—माण्डव्य ऋषि ने क्रुद्ध होकर यमराज को शाप दिया था कि तुम पृथ्वी पर जन्म लेकर दासीपुत्र होगे। इसी से यम को शरीर धारण करना पड़ा वे ही विदुर हुए और अन्त में धर्मराज में लीन हो गये। विदुर ही धर्म हैं और धर्म ही विदुर हैं। उसी समय नारद, पर्वत, देवल और विश्वावसु आदि आये, राजा की आज्ञा से धर्मराज ने सत्कार पूर्वक उन्हें आसन दिया। व्यासजी ने विविध इतिहास समयानुसार कहे, फिर धृतराष्ट्र से प्रसन्न होकर बोले—हे धृतराष्ट्र ! तुम्हारी तपस्या से हम प्रसन्न हैं, जो इच्छा हो वर माँगो। यह सुन कर वृद्ध भूपाल ने हाथ जोड़ कर कहा—हे मुनिराज ! हमारे पुत्रों ने मन में कपट रख कर बन्धुओं से बुरा व्यवहार किया, इसी से पौत्र, सम्बन्धी, मित्रों के सहित युद्ध में मारे गये। उनका स्मरण कर मेरा हृदय शोकाग्नि से जल रहा है। यह कह कर राजा चुप हो गये, तब गान्धारी ने नम्रतापूर्वक कहा—हे महात्मन् ! प्रियजनों के वध से राजा, हम और सारी स्त्रियाँ अत्यन्त दुखी हैं। हम लोगों को उनका एक बार दर्शन करा देने का अनुग्रह कीजिये। फिर व्यासजी ने कुन्ती से कहा कि जो तुम्हें प्रिय हो वर माँगो, मैं वही दूँगा। कुन्ती प्रसन्न होकर बोली—कर्ण की उत्पत्ति वर्णन करके निवेदन किया कि न तो मैं ने उसके द्वारा पुत्र का आनन्द पाया और न उसने माता का सुख भोग किया। इस दुख से मैं सदा दुखी हूँ, उसका दर्शन कृपा कर करा दीजिये। तब व्यासजी ने राजा धृतराष्ट्र से कहा—हे राजन् ! तुम दम्पति बहुओं के सहित गंगातट पर चलो, वहाँ तुम्हें सब के दर्शन होंगे। व्यासजी की बात सुन कर राजा पाण्डवों और कुल की स्त्रियों के सहित गंगाजी के समीप गये तथा स्नानादि से निवृत्त होकर सब बैठे।

व्यासजी ने जल में खड़े हो मंत्रजप करके सब का आह्वान किया। पहले जल में भारी

शब्द सुनाई पड़ा और पीछे सब योद्धागण अपने पूर्वरूप से वाहनों के सहित बाहर निकलने लगे। भाइयों और योद्धाओं के सहित दुर्योधन, शकुनि, जयद्रथ, कर्ण, द्रुपद, विराट, शल्य, शिखण्डी, सोमदत्त, वल्हीक, भूरिश्रवा, धृष्टद्युम्न, अभिमन्यु, चेकितान, भगदत्त, हिडिम्ब और अलम्बुष आदि समस्त भट प्रकट हुए। व्यासजी के प्रसाद से दिव्यदृष्टि पाकर पुत्र, पौत्र तथा वीरों को देख कर राजा धृतराष्ट्र और गान्धारी को बड़ी प्रसन्नता हुई। पाण्डवों ने बड़े स्नेह से उठ कर पुत्र और मित्रों से अंकमालिका की। अपने अपने पुत्र और पतियों से मिलकर स्त्रियाँ प्रसन्न हुईं। वे सब मृत पति, पुत्र और मित्रों से मिल कर अपने को कृतार्थ समझने लगीं। इस तरह परस्पर मिलने से वियोग का दुःख सब के हृदय से दूर हो गया। तब व्यासजी ने स्त्रियों से कहा—जो अपने पति के साथ सदा विहार करना चाहती हों, वे अपने पति के संग जल में प्रवेश कर जाँय तो पति लोक में सुख से बसेंगी। पतिव्रता स्त्रियाँ राजा से आज्ञा माँग कर पति के संग जल में प्रवेश कर गईं। जितनी मृत-आत्माएँ प्रकट हुई थीं वे सब एक एक करके जल में विलीन हो गईं।

राजा धृतराष्ट्र, गान्धारी, कुन्ती और पाण्डवों के सहित आश्रम में लौट आये तथा पुरजन और सेना का सम्मान करके उन्हें बिदा किया। अपनी भार्या और कुटुम्बियों के सहित धर्मराज वृद्ध नरेश के समीप रह गये। व्यासजी ने धृतराष्ट्र से कहा—

हे राजन्! तुम पूर्ण ज्ञानी हो और नारदादि से ज्ञान सुना है। अब शोक त्याग कर तप में मन लगाओ। एक मास पाण्डवों को यहाँ रहते बीत गया, इन्हें समझा बुझा कर बिदा कर दीजिये जिसमें ये जाकर प्रजापालन करें। व्यासजी की बात सुनकर धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर से कहा—

हे पुत्र! तुम्हारे आगमन से मुझे बड़ा आनन्द मिला अब तुम हस्तिनापुर जाकर नीतिपूर्वक प्रजापालन करो। यह सुन कर धर्मराज ने कहा—

हे भूपालमणि! हमें अपने ही पास रखिये। भीमसेन आदि बन्धुओं को आज्ञा दीजिये, वे जाकर प्रजापालन करेंगे। तब गान्धारी ने कहा—

हे पुत्र! ऐसा न कहो तम कुरुवंश के श्रेष्ठ हो। राजा की आज्ञा शिरोधार्य करके नगर को लौट जाइये और प्रजापालन कीजिये। तब धर्मराज ने कुन्ती से कहा—

हे माता! राजा मुझे त्याग रहे हैं और उनका बनवास देख कर हमें राज्य सुख अत्यन्त तुच्छ प्रतीत हो रहा है। सहदेव ने कहा—मैं वन में रह कर माता की सेवा करूँगा। हे धर्मराज! आप भाइयों के सहित राजधानी को लौट जाँय।

पुत्रों की बात सुन कर कुन्ती स्नेह से कातर होकर बोली—हे पुत्र! आप लोग जाकर नीति से प्रजापालन करें, आप के यहाँ रहने से मेरी तपस्या भंग होगी इसलिये मेरी आज्ञा मान कर घर जाओ, तुम्हें राजा की आज्ञा पालन करना चाहिये।

इस तरह समझा कर वृद्ध राजा ने सब को बिदा किया। चरणों की वन्दना करके पाण्डव लोग करुणा से भरे हस्तिनापुर लौट आये। नीति धर्म से प्रजापालन करते हुए दो वर्ष बीत गये। एक दिन नारदजी भगवान् का गुणगान करते हुए आ पहुँचे। धर्मराज ने सत्कार करके उन्हें सुन्दर आसन पर बैठाया और पूछा कि—हे मुनिराज! किसलिये आप का आगमन हुआ है? कहिये, मैं सहर्ष उसका पालन करूँगा। धर्मराज की बात सुन कर नारद मुनि बोले—

हे युधिष्ठिर! उत्तर दिशा में जाकर एक वृतान्त हमने देखा, वह तुम से कहता हूँ। जब तुम राजा धृतराष्ट्र के आश्रम से लौट आये, तब राजा कुरुक्षेत्र त्याग कर हरिद्वार चले गये।

वहाँ राजा अनशन व्रत करने लगे, गान्धारी जल के आधार पर और कुन्ती कुछ फल का आधार ले व्रत करने लगीं। संजय छठें दिन फलाहार करके तप में अनुरक्त हुए। दैवयोग से एक दिन गंगा जी के किनारे वन में भयंकर आग लग गई। बहुत से जीव जन्तु जल गये कुछ भाग कर प्राण बचाये। राजा रानी निराहार के कारण शक्तिहीन हो गये वे नहीं भाग सके। उन्होंने संजय से कहा कि अब तुम भावी को प्रधान मान कर स्नेह छोड़ अभी यहाँ से निकल जाओ। किसी प्रकार का मन में संदेह न करो, मेरी आज्ञा मान कर तुरन्त चल दो। राजा की आज्ञा से संजय चले आये और कुन्ती गांधारी सहित राजा धृतराष्ट्र उस अग्नि में जल गये। उन्हें योग के प्रभाव से दिव्य लोक प्राप्त हुआ और जलने का कोई कष्ट नहीं हुआ। अब उनकी अन्त्येष्टि क्रिया जो उचित हो तुम्हें करना चाहिए।

इस दुर्घटना को सुन कर धर्मराज को बड़ा दुःख हुआ। वे विलाप करने लगे। हाय! जिसके भीमसेन और अर्जुन के समान रणधीर पुत्र, वे राजा अनाथ की तरह जल मरें। इस प्रकार धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्ती के यश बखान कर अर्जुन आदि बन्धु, द्रौपदी, पुरजन प्रजा सब रुदन करने लगे। नारदजी ने धर्मराज को समझा कर धीरज बँधाया और बोले—

हे युधिष्ठिर शोक मत करो, इस समय कर्त्तव्य कर्म का विचार करना उचित है। राजा, गांधारी और कुन्ती तीनों ने कठिन तपस्या करके योगाग्नि में शरीर को जला डाला, वे साधारण अग्नि में नहीं जले हैं, इसलिये तुम सोच मत करो। इस प्रकार उपदेश देकर नारदजी ब्रह्मलोक को गये।

राजा ने सब का विधान पूर्वक प्रेतकर्म किया और भाँति भाँति दान दक्षिणा दे ब्राह्मण भोजन कराया। धर्मराज की श्रद्धा की सब एक स्वर से बड़ाई करते थे। पितृकर्म से निवृत्त होकर कुटुम्बियों और विद्वान ब्राह्मणों को बुलवा कर कहा—अब आप सब हरिद्वार जाकर जहाँ राजा, गान्धारी और माता कुन्ती जली हैं उनकी हड्डियाँ गंगाजल में यथाविधि प्रवाह करके लौट आवें।

धर्मराज की आज्ञानुसार सब हरिद्वार गये और अस्थि का जल में यथाविधि प्रवाह करके लौट आये। दुर्योधन के वध के उपरान्त राजा धृतराष्ट्र पन्द्रह वर्ष नगर में रहे और तीन वर्ष तपस्या किया, ठीक अठारहवें वर्ष के अन्त में शरीर त्याग कर स्वर्गगामी हुए।

इति।

मूशल-पर्व

यदुवंश का संहार

राजा युधिष्ठिर ने छत्तीस वर्ष पर्यन्त प्रजा पालन कर राज्य किया। जब उन्होंने भीषण समाचार सुना कि समस्त यदुवंशियों का आपस के कलह से नाश हो गया, तब अत्यन्त शोक से व्याकुल हो सारा संकल्प मन से त्याग कर अधीर हो गये। उसी समय विश्वामित्र, कण्व, नारदादि मुनि आये। स्वागत कर उन्हें आसन पर बिठा कर धर्मराज ने करुण स्वर से पूछा—

हे मुनिराज! यदुवंशियों का नाश किस कारण से और कैसे हुआ हम विस्तार-पूर्वक सुनना चाहते हैं। तब नारदजी ने कहा—

हे धर्मराज! सुनिये, दुर्वासा मुनि द्वारका में तप करते थे। सारण आदि कुमारों ने साम्ब के पेट में लोहे का मूशल बाँध उन्हें गर्भवती स्त्री का रूप बना अज्ञानवश मुनि के पास जाकर पूछा कि—यह स्त्री गर्भ से है, कृपाकर बताइये पुत्र होगा या पुत्री। इस प्रकार मसखरी की बात सुन कर मुनि को क्रोध हो आया, उन्होंने कहा—इसके गर्भ में लोहे का मूशल है, उसी से समस्त यदुवंशियों का नाश होगा। फिर मुनि ने जाकर सारा वृत्तान्त श्रीकृष्णचन्द्रजी से कह दिया और स्वस्थान को चले गये। कुमारों ने उस मुशल को रेतवा कर धूल के समान करके समुद्र में डाल दिया। अन्त में लोह का छोटा टुकड़ा जो रेता नहीं जा सका था उसको एक धीवर ने पाया और बाण में गाँसी बनवा कर लगवाया। उस धूल से समुद्र में एक प्रकार का मोथा जमा जिसकी धार तलवार के समान चोखी हुई।

यदुवंशियों को तरह तरह के अशकुन और दुःस्वप्न दिखाई देने लगे। केशव ने भविष्य पहचान कर सब को तीर्थ करने की आज्ञा दी। सब पुरवासी प्रभासतीर्थ में गये और वहाँ निवास किया। ऊधो सब को ज्ञानोपदेश करके पहले ही समुद्र में प्रवेश कर गये। यदुवंशी मद्यपान करके प्रमत्त हुए। प्रथम कृतवर्मा और सात्यकि से बात ही बात में विवाद हुआ और सात्यकि ने खड्ग से कृतवर्मा को मार डाला। फिर क्या कहना था, मोथे उखाड़ कर लगे एक दूसरे को मारने। क्षण भर की मारकाट में समस्त यदुवंशियों का संहार हो गया। केवल दारुक बभ्रु और श्रीकृष्णचन्द्र बच रहे थे। कुटुम्बियों का नाश देख कर कौतुक सागर भगवान बलरामजी के आश्रम में आकर एक वृक्ष के नीचे बैठ गये और दारुक से कहा, हम इस समय अर्जुन को देखना चाहते हैं। तुम रथ पर चढ़ कर तुरन्त हस्तिनापुर जाओ और अर्जुन को लिवा लाओ। दारुक रथ लेकर हस्तिनापुर की ओर चले।

भगवान् ने स्वयम् द्वारका में जाकर कुलध्वंस का समाचार पिता से निवेदन किया, उन्हें तब तक के लिये स्त्रियों की रक्षा करने का भार दिया जब तक अर्जुन न आ जाँय। द्वारका में भीषण हाहाकार मचा और कृष्णचन्द्र पूर्व स्थल में लौट आये। यहाँ देखा कि बलरामजी सहस्रशीर्ष हो बासुकि आदि से सेवित प्रस्थान कर रहे हैं। गान्धारी के शाप का स्मरण कर केशव ने जान लिया कि उसी से दुर्वासा का प्रलाप भी सत्य हुआ। शोक से धरती पर लेट गये, पाँव को मृग का कान समझ जरा नामी व्याधा ने बाण मारा। जब वह समीप गया तब बड़ा दुःखी हुआ, पाँव पकड़ कर रोने लगा।

कृष्णचन्द्र ने उसे समझा बुझा कर विदा किया और आप योग में निष्ठ हो बैठ गये। आकाश में देवता स्तुति करने लगे।

इधर दारुक यहाँ पहुँच कर सब समाचार कह कर अर्जुन को साथ लेकर द्वारका को गये। वहाँ उन्होंने देखा पुरी हतश्री हो रही है। उन्हें देख कर रुक्मिणी आदि रानियाँ रुदन करने लगीं। अर्जुन को देख वसुदेव विलाप कर कहने लगे—हे पार्थ ? गान्धारी ने जो शाप दिया था और पीछे दुर्वासा ने, उनके कारण यह अनर्थ प्रत्यक्ष हुआ है। जब यदुवंशियों का नाश हो गया तब केशव हमारे समीप आये थे और कहा कि दारुक अर्जुन को बुलाने गया है वे आते होंगे। अर्जुन को मुझे ही समझना वे स्त्री और बालकों की रक्षा करेंगे। जिस दिन अर्जुन द्वारका में आवेंगे उस के सातवें दिन समुद्र बढ़कर नगरी को डुबा देगा। यह कर कर जहाँ सब यदुवंशियों का नाश हुआ था कृष्णचन्द्र वहाँ चले गये।

हे अर्जुन ! अब मुझे संसार सूना दिखाई देता है, इससे शरीर त्यागने ही में कुशल है।

वसुदेव की बात सुन कर अर्जुन को बड़ा दुःख हुआ। उन्हों ने कहा—हे महाराज ! द्रौपदी और भाइयों के सहित हम बिना कृष्ण की सहायता के अब जगत में नहीं रह सकते। कृष्णचन्द्र की यात्रा से विदित हो गया कि हम लोगों का अन्त समय आ गया। यहाँ के बालक वृद्ध और स्त्रियाँ अचेत हैं; रक्षा के लिये हम सब को इन्द्रप्रस्थ ले जाँयगे। यह कह कर दारुक के सहित सभाभवन में आये। राज्य कर्मचारियों को समझा कर कहा—

भाइयो ! आज के सातवें दिन समुद्र बढ़ कर द्वारकापुरी को डुबा देगा, इसलिये सब सामान और स्त्री बालों के सहित आप लोग बाहर निकल जाँय। अर्जुन की बात सुन कर सब निकलने की तैयारी करने लगे। रात्रि में कृष्ण बलराम का स्मरण करते हुए प्रातःकाल वसुदेव स्वर्ग सिधारे। नगर में बड़ा हाहाकार मचा। देवकी, रोहिणी, सुभग और मदिरा चारों रानियाँ पति के साथ सती हो गयीं। उनकी क्रिया करके अर्जुन वहाँ आये जहाँ सब यदुवंशी परस्पर लड़कर मरे थे। कृष्ण बलराम के शरीर को देख कर बहुत रुदन किया फिर प्रेतकर्म करके द्वारका को लौट आये। स्त्रियाँ छाती पीट पीट कर रुदन करने लगीं। शीघ्र ही दासी दास, हाथी, घोड़े और रानियों को साथ लेकर वज्र कुमार बाहर निकले। सब को संग में लेकर अर्जुन हस्तिनापुर की ओर चले। जिस दिन सब बाहर हुए उसी दिन द्वारकापुरी को समुद्र ने अपने उदर में छिपा लिया।

वन पर्वत पार करते सबको साथ लिये अर्जुन ने रात्रि में पंजाब प्रान्त में आकर निवास किया। उन्हें बालक, वृद्ध और स्त्रियों के सहित वन में आया जान दुष्ट आभीरों ने आपस में सलाह की कि अकेला अर्जुन क्या कर सकता है ? चलो चारों ओर से घेर कर स्त्रियों और बालकों के गहने लूट लें। वे सब लोहदंड लेकर सामने आये, अर्जुन ने हँस कर कहा—

अरे मूर्खो ! लौट जाओ, यदि जीना चाहते हो तो लालच त्याग कर सीधे अपनी राह लो, नहीं तो मेरे बाण से कोई भी जीते न बचोगे। परन्तु उन दुष्टों ने अर्जुन के वचन की कुछ परवा न करके आक्रमण कर ही दिया। पार्थ ने ज्यों त्यों करके गाण्डीव पर रोदा चढ़ाया और दिव्य अस्त्र चलाने का विचार किया; किन्तु एक का भी स्मरण नहीं हुआ। कुछ बाण चलाये पर उनसे डाकुओं की कुछ क्षति नहीं हुई, वे कई एक स्त्रियों को आभूषणों के सहित उठा ले गये। अर्जुन के मन में बड़ा खेद हुआ, उन्होंने समझ लिया कि बिना श्रीकृष्णचन्द्र के अब मेरा पुरुषार्थ हीन हो गया। वहाँ से चल कर सब का साथ लिये कुरुक्षेत्र में आये। भोजकुल की स्त्रियों, बालकों और वृद्धों को अच्छे स्थानों में ठहराकर सब प्रकार का सुपास कर दिया।

अक्रूर की स्त्री ने सन्यास ग्रहण कर लिया। रुक्मिणी और जाम्बवती आदि ध्यान धर कर पति वियोग से दुखित हो वन में रहने लगीं।

फिर अर्जुन हस्तिनापुर की ओर चले। मार्ग में व्यासजी को देख रथ से उतर कर प्रणाम किया और नीचे सिर करके बैठ गये। अर्जुन को शोकाकुल देख कर व्यासजी ने कहा—

हे पार्थ! तुम इतने खिन्न क्यों हुए हो? मैंने इतनी दीन दशा में कभी तुम्हें नहीं देखा था, इसका क्या कारण है?

अर्जुन ने कहा—हे मुनिराज! क्या कहूँ, कुछ कहते नहीं बनता है। बड़ा भीषण अनर्थ हो गया। महापुरुष महिमाधाम कमलनेत्र घनश्याम और बलराम शरीर त्याग कर स्वर्ग सिधारे। यदुकुल शाप वश आपस में युद्ध करके लोप हो गया। हमारे देखते हुए वृष्णि वंश की स्त्रियों को आभीर हर ले गये और मैं कुछ कर न सका, इसका मुझे अत्यन्त दुःख है। अब केशव के वियोग का कष्ट सहा नहीं जाता है।

अर्जुन की करुणा भरी वाणी सुन कर व्यासजी ने कहा—हे पार्थ! कृष्ण भगवान् महिमा के स्थान वे तीनों लोकों को मारने और जिलाने में समर्थ हैं। ब्राह्मण के शाप के मिटाने की शक्ति रखते हैं। वे साक्षात् सनातन विष्णु हैं, धरती का बोझ हटाने के लिये खेलवश मनुष्य देह धारण किया था। तुम्हें सखा बनानेवाले लोकनाथ विष्णु पृथ्वी का भार दूर करके अपने लोक को चले गये। इसलिये तुम तत्त्व विचार कर शोक त्याग दो। अब भाइयों के सहित तुम्हारे गमन का समय समीप आ गया है। तुम्हारे अस्त्र शस्त्र अपना काम कर के जहाँ के तहाँ चले गये। बन्धुओं के सहित प्रसन्न मन से तुम भी महाप्रस्थान करो, यही बात तुम्हारे लिये कल्याणकारी है।

व्यासजी के उपदेश सुन कर और उन्हें प्रणाम कर बिदा हो अर्जुन आप के समीप आये और सब हाल कह सुनाया जिससे आप भी श्रीकृष्ण बलदेव और यदुवंशियों की स्वर्गयात्रा सुन कर दुखी हुए हैं।

इस प्रकार धर्मराज से कह कर नारदादि मुनीश्वर बिदा होकर चले गये। पाण्डवगण श्रीकृष्णचन्द्र के वियोग से बहुत उद्विग्न हुए और हर घड़ी उन्हीं की चर्चा करते हुए समय बिताने लगे।

इति।

स्वर्गारोहण-पर्व।

पाण्डवों का महाप्रस्थान।

यदुकुल का संहार सुन कर राजा युधिष्ठिर ने बन्धुओं के सहित महाप्रस्थान करने का निश्चय किया। परीक्षित को राज्याभिषेक करके युयुत्सु को कार्यभार समर्पण कर सुभद्रा से कहा—तुम नीतिपूर्वक नाती की रक्षा करना। इन्द्रप्रस्थ का राज्य अर्जुन ने कृष्णचन्द्र के पौत्र वज्र को दिया है, दोनों राज्यों में परस्पर प्रेम की वृद्धि होती रहे इसका सदा स्मरण रखना। फिर कृपाचार्य को परीक्षित का हाथ पकड़ा कर निवेदन किया—हे विप्रवर! यह बालक आप का शिष्य है, इसकी रक्षा-दीक्षा का सारा भार आप ही पर है, जिससे प्रजा को किसी प्रकार का कष्ट न हो ऐसा प्रयत्न सदा कीजियेगा।

कृष्ण बलराम और समस्त यदुवंशियों का पिण्डदान करके मणि, वस्त्र और बहुमूल्य आभूषण, हाथी, घोड़े दान किये तथा ब्राह्मण भोजन कराकर निवृत्त हुए। फिर समस्त प्रजा को समझा बुझा कर अपने प्रस्थान का समाचार सुनाया। सुनते ही सारी प्रजा व्याकुल हो उठी, सब का धीरज छूट गया। जब बन्धुओं और द्रौपदी के सहित बल्कल चीर धारण करके धर्मराज गढ़ से बाहर निकले तब प्रजागण रुदन करते साथ हो लिये। वे लोग दूर तक चले आये और समझाने से भी घर की ओर नहीं लौटे। धर्मराज के हृदय में प्रजा के दुःख से बड़ा दुःख हुआ, वे खड़े हो गये और बहुत तरह से समझा बुझा कर स्त्रियों के सहित सबको लौटाया फिर राजा परीक्षित, युयुत्सु और कृपाचार्य आदि को यथायोग्य सम्मान करके बिदा किया। द्रौपदी, पाँचों बन्धु और एक कुत्ता यही सातों वन की ओर प्रस्थान किये।

गुरु कृपाचार्य, युयुत्सु और स्त्रियों के सहित उदास मन से राजा परीक्षित हस्तिनापुर को लौट आये।

द्रौपदी, बन्धुओं और श्वान के सहित धर्मराज पृथ्वी के पवित्र स्थलों में विचरण करते हुए हिमवान पर्वत के समीप जा पहुँचे और उत्तर की ओर बढ़ने लगे। जब बहुत दूर निकल गये तब भीषण बर्फ़ का मैदान सामने आया जिसमें चलना कठिन था तोभी धर्मराज रुके नहीं। आगे युधिष्ठिर तब भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव, द्रौपदी और वह कुत्ता क्रमशः जा रहे थे कुछ दूर चल कर द्रौपदी-अचेत हो गिर पड़ी। भीमसेन ने देख कर कहा—

हे तात! देखिये, बड़े दुःख की बात है कि द्रौपदी मूर्छित होकर गिर पड़ी है। धर्मराज ने कहा—यह अर्जुन से विशेष स्नेह रखती थी, उसी पाप के फल से गिरी है। इस प्रकार भीम से कह कर धर्मराज आगे चले तब पाले से जकड़ कर सहदेव गिरे। भीम के कहने पर युधिष्ठिर ने कहा इन्हें अपनी बुद्धिमानी का गर्व था इसी पाप से गिरे हैं। कुछ दूर चलने पर नकुल, अर्जुन और भीमसेन भी गिर गये। सब को रूप, शत्रुसंहार करने की डींग हाँकना और बल के घमंड करने के पापों से गिरना कह कर धर्मराज आगे बढ़े। वह कुत्ता धर्मराज के साथ जा रहा था। आगे से रथारूढ़ देवराज आते हुए दिखाई पड़े, उन्हों ने कहा—हे धर्मराज! आप पुण्य के राशि हैं, हमारे रथ पर चढ़ कर इन्द्रलोक को चलिये। इन्द्र की बात सुन कर युधिष्ठिर ने कहा—हे देवराज! मेरे भाई

और द्रौपदी यहाँ गिर गये हैं, उनके बिना हमें अमरलोक में जाना स्वीकार नहीं है तब इन्द्र ने कहा—हे धर्मराज ! वे सब मनुष्यदेह त्याग कर अमरावती में विराजमान हैं और आप सदेह चल कर उन्हें देख कर प्रसन्नता प्राप्त कीजिये।

युधिष्ठिर ने कहा—हे देवराज ! मेरे साथ यह कुत्ता आया है, इसको छोड़ कर देवलोक में चलने से मुझे लघुता और पाप लगेगा। इन्द्र ने कहा—हे धर्म ! आपने परमधर्म पालन कर श्रेय प्राप्त किया है, कुत्ते का त्याग करने से कुछ भी दोष नहीं लग सकता। क्योंकि कुत्ता अपवित्र जीव है, अशुचि का त्याग करने से कहीं लघुता और पाप होता है ? जिसके स्पर्श से पाप लगता है और दान पुण्य का फल नष्ट हो जाता है ऐसे अपावन जीव को अपने साथ ले चलने का आग्रह करना आप के लिये उचित नहीं है।

धर्मराज ने कहा—हे देवराज ! भक्त शरणागत का त्याग करना आर्यों को उचित नहीं है। शरणागत का त्याग करने से ब्रह्महत्या का पाप होता है इसलिये स्वर्ग की इच्छा से हम कुत्ते को कभी छोड़ नहीं सकते। मेरे प्राणों पर चाहे जो संकट आ पड़े उसे सहर्ष सहन करूँगा, किन्तु शरणार्थी का त्याग कदापि न करूँगा।

इस प्रकार युधिष्ठिर के वचन सुन कर धर्म कुत्ते की देह त्याग अपने रूप से सामने खड़े होकर बोले—हे कुरुकुल दीपक ! तुम धन्य हो, तुम्हारे बराबर दूसरा कोई धर्म का पालनेवाला पृथ्वी पर नहीं हुआ। हमने पहले भी तुम्हारी परीक्षा की प्रश्नोत्तर न देने पर तुम्हारे चारों बन्धु अचेत हुए थे। तुमने उत्तर देकर पहले नकुल को जीवित होने के लिये कहा, वहाँ हमने तुम्हारी धर्मनिष्ठा की परीक्षा कर सन्तोष लाभ किया। तुम्हारे समान स्वर्ग में भी कोई राजर्षि नहीं है।

इतना कह कर धर्म और इन्द्र, युधिष्ठिर को विमान पर बिठाकर स्वर्ग को सिधारे।

वहाँ युधिष्ठिर ने देखा कि दुर्योधन दिव्य रूप धारण किये सिंहासन पर विराजमान हैं। सिद्ध लोग चारों ओर घेर कर बैठे हुए उनकी शुश्रूषा करते हैं। यह देख कर धर्मराज ने पुकार कर इन्द्र से कहा—हे देवराज ! इस दुष्कर्मी के साथ हम स्वर्ग में निवास न करेंगे। इसने सभा के बीच कुमंत्र से द्रौपदी की लज्जा नष्ट की थी, और दुर्वचन कह कर व्यर्थ ही युद्ध में कुल और देश का सर्वनाश करा डाला। हम यहाँ भी इसे देखना नहीं चाहते ! धर्मराज की बात सुन कर नारदजी ने हँस कर कहा—हे कुरुराज ! आप ऐसा भाषण न करें, यहाँ सब विरोध त्याग कर निवास करते हैं इसलिये क्रोध छोड़ एकत्र बास कीजिये। दुर्योधन ने क्षात्रधर्म का पालन किया है इससे शरीर त्याग कर स्वर्ग का आनन्द भोग रहे हैं। वैरभाव दूर कर प्रेम से उनसे मिलिये। स्वर्ग में वैर को स्थान नहीं है। ब्रह्मर्षि नारद की बात सुन कर फिर धर्मराज बोले—

हे मुनीश्वर ! जिसने अपरिमित कुत्सित कर्म किया वह इस प्रकार देवलोक में सुख से विहार करे ! आप मुझे उससे मिलने का आदेश न देवें। जो सब तरह सत्कर्म के स्थान मेरे बन्धुगण हैं वे कहाँ निवास करते हैं ? धृष्टद्युम्न आदि हमारे विशुद्ध सुहृद जहाँ निवास करते हैं कृपाकर वह स्थान मुझे दिखाइये। हमारा सहोदर बन्धु कर्ण जिस स्थान में निवास करता है, हम उसी स्थल में अपनी मित्रमंडली के साथ देवलोक में रहना चाहते हैं।

धर्मराज की बात सुन कर नारदमुनि प्रसन्न होकर बोले—हे राजन् ! देवराज की आज्ञा से आप सब यहाँ आये हैं। आप को जो अच्छा रुचे वही हमें भी करणीय है। जहाँ आप के बन्धुगण हैं देवदूत को साथ लेकर वहाँ प्रसन्नता से जाइये।

इन्द्र का आदेश नारदमुनि के द्वारा सुनकर धर्मराज देवदूत के साथ चले। राजा युधिष्ठिर को लिये हुए वे दूत यमपुरी में पहुँचे। वहाँ धर्मराज ने देखा कि रक्त मांस की नदी बहती है उसमें अनेक प्रकार के भयानक कृमि भरे हैं और ऊपर काक गिद्ध उड़ रहे हैं। भूत पिशाच डाकिनियाँ रक्त मांस खाकर इधर उधर विहार करती हैं। अन्धकार छाया है, पीड़ा से असंख्यों जीव चिल्ला रहे हैं। दुर्गन्ध से नाक फटी जा रही है, क्षण भर का ठहरना युग के समान प्रतीत हो रहा है। यह भीषण दृश्य देख धर्मराज ने घबराकर दूतों से कहा —

हे देवदूत! यह मार्ग तो बड़ा भयंकर है और तुम कहते हो कि अभी दूर चलना है, इसलिये हम आगे इस रास्ते से नहीं चलना चाहते लौट चलो। धर्मराज की आज्ञा पाकर दूत लौट पड़े, उस समय धर्मराज को आर्त्तनाद सुनाई पड़ा। बहुत से जीव साथ ही उन्हें पुकार रहे थे।

हे धर्मराज! हम लोगों के आनन्द के अर्थ थोड़ी देर यहाँ ठहर जाइये। आप के शरीर का अनुपम गन्ध प्राप्त होने से हमें कुछ चैन मिल रहा है। जब से आप यहाँ आये हैं तब से हम लोगों का कष्ट क्रमशः घटता जा रहा है। इस तरह की आर्त्त वाणी सुन कर धर्मराज ठहर गये और पुकारने-वालों से कहा—तुम लोग कौन हो? वे सब कहने लगे—महाराज! हम भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव और द्रौपदी हैं। धृष्टद्युम्न और कर्ण आदि भी यहीं यमयातना भोग रहे हैं।

यह सुन कर धर्मराज चिन्ता में डूब गये। वे मन में सोचने लगे कि इन लोगों ने कौन सा घोर पाप किया है जिससे नरक में दुःख उठा रहे हैं और पापी धृतराष्ट्र के पुत्र स्वर्गसुख भोगते हैं। ये धर्मात्मा इस बुरे स्थान में निवास करते हैं! मुझे भ्रम हुआ है या स्वप्न देख रहा हूँ, इस उलटी बात को देख कर मन में शान्ति नहीं आती है। इस तरह नाना प्रकार मन में तर्क वितर्क करते हुए धर्मराज देवताओं की निन्दा करने लगे। दूतों से क्रुद्ध होकर कहा—तुम लोग जाकर इन्द्र से कह दो हम यहीं रहेंगे, जहाँ हमारे बन्धुगण हैं।

राजा युधिष्ठिर की बात सुन कर दूतों ने तुरन्त जाकर इन्द्र से कहा। देवराज देवताओं के सहित जहाँ धर्मराज थे वहाँ आये। इन्द्र के आते ही रक्त मांस मज्जा आदि अपवित्र वस्तुओं का लोप हो गया। सुगन्धित वायु बहने लगी, नदी में स्वच्छ जल धारा बहने लगी और सारा स्थल अम-रावती के समान रमणीक दिखाई देने लगा। इन्द्र ने धर्मराज से कहा—हे राजन्! आपको अक्षयलोक प्राप्त हुआ है और सब सिद्धियाँ आप की सेवा करने के लिये उत्सुक हैं। क्रोध त्याग कर मेरी सच्ची बात सुनिये। राजाओं को नरक का भीषण दुःख देखना आवश्यक है। जो पहले पुण्य के फल से स्वर्गसुख भोगते हैं उन्हें पाप के फल से पीछे नरक भोगना पड़ता है।

हे धर्मराज! द्रोणाचार्य की मृत्यु के समय आपने सन्दिग्ध वचन कहा था, उसी के फल से नरक को देख एक घड़ी आप बेचैन हुए हैं। इसी कारण द्रौपदी, भीम, अर्जुन, नकुल, और सह-देव को भी नरक का स्पर्श करना पड़ा है। अब सब पाप से छूट गये हैं चल कर उन्हें देखिये दिव्य रूप से वे सब स्वर्ग में सुख से विहार करते हैं। जिस कर्ण के लिये आप दुखी हैं वह पूर्ण सिद्धि प्राप्त कर सुख भोग रहे हैं। जहाँ राजा मान्धाता, भगीरथ, हरिश्चन्द्र और भरत आदि विलास करते हैं उसी लोक में आप भी चल कर विहार करें। ये पवित्र स्वर्गगंगा दिखाई पड़ती हैं; इनमें स्नान करने से ईर्ष्या आदि मनुष्य भाव आप के हृदय से दूर हो जायगा। इन्द्र की बात सुन कर धर्म ने कहा—

हे युधिष्ठिर! तुम्हारी धर्मशीलता, क्षमा और दया देख कर हम बहुत प्रसन्न हैं। हमने तीन बार तुम्हारी परीक्षा की, पर तुम्हें अपने धर्म में अटल पाया। तुम्हारे भाई नरक के योग्य नहीं

हैं, इन्द्र ने अपनी माया से यह खेल तुम्हें दिखाया है। तुम चल कर स्वर्गगंगा में स्नान करो। जिससे दिव्य भाव को प्राप्त होकर प्रसन्न होगे। यह सुन कर देवगण के सहित धर्मराज गंगाजी के तट पर गये और स्नान कर मनुष्य देह त्याग दिव्य अनुपम रूप को प्राप्त हुए। वहाँ से चल कर जहाँ बन्धुलोग थे आये, देखा कि धृतराष्ट्र के सब पुत्र, भीम आदि स्वर्गसुख का उपभोग करते हुए प्रसन्न हैं। विष्णु-भगवान् का दर्शन पाकर और अर्जुन को उनकी सेवा करते देख धर्मराज को बड़ी खुशी हुई। आगे चल कर कर्ण को देखा कि वे बारहों सूर्य्य के साथ विनोद कर रहे हैं। मरुद्गणों के साथ भीमसेन, अश्विनी सहित नकुल सहदेव, लक्ष्मी के साथ द्रौपदी को विहार करते देख धर्मराज ने इन्द्र से कहा—

हे देवराज! यह आश्चर्य्यमय सब हम देख रहे हैं, कृपा कर बतलाइये कि ये सब कौन हैं? इन्द्र ने कहा—हे धर्मनरेश! यह अत्यन्त सुहावनी देवताओं की श्री तुम्हारी भलाई के लिये धरती पर द्रौपदी हुई थी। ये पाँचों गन्धर्व आप के पुत्र हुए थे। गन्धर्वों के स्वामी धृतराष्ट्र हुए थे यह आप के पिता के ज्येष्ठ बन्धु हैं। सात्यकि आदि वृष्णिवंशी मरुद्गण हैं। अभिमन्यु, कुन्ती, पाण्डु को देखो और वसुगणों में भीष्म तथा बृहस्पति के संग विराजमान द्रोणाचार्य का अवलोकन करो। सब पुण्य के प्रभाव से अनुपम आनन्द का भोग करते हैं। इन्द्र के दिखाये हुए स्वर्गानन्द को देख धर्मराज प्रसन्न हुए और सुखपूर्वक स्वर्ग में विहार करने लगे।

परीक्षित का राज्यकाल।

राजा परीक्षित ब्राह्मण मंत्रियों की सम्मति से शासन करने लगे। उनके शासन काल में अत्याचार का कहीं नाम तक नहीं सुनाई पड़ता था। प्रजा सुखपूर्वक निवास करती थी, उसको किसी प्रकार का भय नहीं, कोई उत्पीड़न नहीं, बाघ और बकरी एक घाट पानी पीते थे। इरावती रानी के गर्भ से जनमेजय आदि चार पुत्र राजा परीक्षित के हुए। गंगा तट पर कृपाचार्य के आदेशानुसार राजा ने तीन अश्वमेध यज्ञ किया और ब्राह्मणों को नाना प्रकार का दान दिया। दिग्विजय करके धरती के राजाओं को अपने अधीन कर लिया।

सूर्य के समान प्रतापी, अग्नि के समान तेजस्वी, पवन के सदृश बली और समुद्र के तुल्य गम्भीर राजा परीक्षित ने सुख से कुछ काल पर्यन्त राज्य किया। इन्हीं के शाशन काल में द्वापर और कलियुग का सन्धिकाल प्राप्त हुआ। धर्मात्मा राजा परीक्षित को यह ख़बर लगी कि कुरुजांगल में कलिराज डेरा डाले पड़ा है। तुरन्त अपनी सेना सजा कर और श्याम घोड़ों के रथ पर सवार होकर जिसकी ध्वजा में सिंह का चिन्ह फहरा रहा था, कलियुग को दंड देने की इच्छा से प्रस्थान किया। इस प्रकार चतुरङ्गिणी सेना लेकर राजा परीक्षित विजय के हेतु डंका बजा कर चले। अपने पूर्वपुरुषों और श्रीकृष्णचन्द्र का गुणानुवाद सुनते तथा ईश्वर चरणों में मन लगाये धर्म की रक्षा का दृढ़व्रत धारण किये, कुरुजांगल देश में डेरा डाल दिया।

प्रतिदिन राजा धनुष बाण हाथ में लेकर घोड़े पर सवार हो बन में शिकार के लिये जाते थे। एक दिन उन्हें बड़ा कुतूहल दिखाई पड़ा। उन्हों ने देखा कि तेजहीन एक पाँव का बैल और गैया दीन दशा को प्राप्त हैं। एक राजा के चिह्नों से युक्त शूद्र दोनों को लात मार रहा है। गैया और बैल दीन होकर थर थर काँपते हैं। इस अत्याचार को देखते ही राजा क्रोध से भर कर धनुष पर बाण चढ़ाय

ललकारते हुए दौड़े। उन्होंने कहा -अरे नीच! तू कौन है? इस लँगड़े गौओं को क्यों सताता है। वेष तेरा राजा का और कर्म शूद्र का करता है, सँभल जा मैं अभी तुझे प्राणहीन कर यमालय भेजता हूँ। चाहे तू देवता ही क्यों न हो, पर आज बिना तेरा बध किये न छोड़ूँगा।

राजा को कुपित देख कलियुग मन में डरा और शिर से प्रणाम करके हाथ जोड़ कर विनती करने लगा।

हे महाराज! आप दीनवत्सल और शरणागत की रक्षा करनेवाले हैं। आपके पिता और पितामह शरणागत रक्षक थे, आप को भी वैसा ही होना चाहिये। मैं कलियुग हूँ। आप मेरी रक्षा कर रहने को स्थान दीजिये।

कलियुग की दीन वाणी सुन कर राजा के मन में दया आ गयी, उन्होंने हँस कर कहा—डर मत, तुझे हम प्राणदंड न देंगे परन्तु तू हमारे देश से भाग जा, क्योंकि जहाँ तू रहता है वहाँ लोग, असत्य, अधर्म, दुष्टता, पाखंड, जुआ, चोरी आदि असंख्यों पाप होते हैं। तू इस पवित्र भारतवर्ष में रहने के योग्य नहीं है। यहाँ मुनि लोग यज्ञेश्वर भगवान् की उपासना करते हैं, तेरे रहते उनके इस शुभानुष्ठान में बाधा पड़ेगी। राजा परीक्षित की बात सुन कर कलियुग काँपते हुए हाथ जोड़ कर बोला—हे चक्रवर्त्ती महाराज! आप जहाँ आज्ञा देंगे हम वहीं निवास करेंगे। कृपा कर मेरे रहने योग्य स्थान बता दीजिये जिससे आपकी आज्ञानुसार निश्चल रूप से मैं वहाँ निवास करूँ।

कलियुग की प्रार्थना सुन कर दयार्द्र हो राजा ने कहा—जुआ, मदपान, व्यभिचारिणी स्त्री, हिंसा और सुवर्ण इन्हीं पाँच स्थानों में तुम निवास करो।

धर्म और धरती रूपी बैल गाय प्रसन्न होकर राजा की मन में सराहना करते हुए चल दिये। इस प्रकार धर्म की रक्षा करके राजा परीक्षित राजधानी में समाज के सहित लौट आये।

एक दिन राजा परीक्षित धनुष बाण धारण कर शिकार खेलने वन में गये। एक हिरण को बाण मारा, वह बिध कर जंगल में भागा और राजा भी उसके पीछे पीछे दौड़े गये। भूख और प्यास से व्याकुल हो मुनि के आश्रम में गये, वहाँ एक तपस्वी ध्यानावस्थित बैठे थे। उन्हों ने राजा का आगमन नहीं जाना, राजा को इस पर क्रोध हो आया। धनुष के अग्रभाग से एक मरे हुए साँप को उठा कर मुनि के गले में डाल राजा हस्तिनापुर को चले आये।

उस तेजस्वी मुनि का पुत्र शृंगी बालकों के संग खेल रहा था, किसी लड़के ने कहा—तुम्हारे पिता के गले में राजा परीक्षित ने मरा हुआ सर्प लपेट दिया है, वे उसी दशा में अब तक समाधि लगाये बैठे हैं।

यह सुन कर ऋषिकुमार को बड़ा क्रोध हुआ, उन्होंने कौशिकी नदी का जल ले आचमन कर शाप दिया कि इस प्रकार अधर्म करनेवाले राजा को आज से सातवें दिन तक्षक डसेगा। इसके बाद वह बालक पिता के समीप आश्रम में आकर उनके गले में साँप लिपटा देख रोने लगा। पुत्र का विलाप सुन कर मुनि ने आँख खोलीं तो देखा कि उनके गले में साँप लिपटा है। उस मृतक सर्प को फेंक कर पुत्र से पूछा—

हे पुत्र किस ने तेरा अनिष्ट किया जिससे तू रो रहा है? तब उस बालक ने शाप आदि की सारी बातें कह सुनाई। सुनते ही शमीक मुनि ने पुत्र का अनादर करते हुए कहा—अरे मूर्ख! तू ने बड़ी नादानी की। इतने तुच्छ अपराध के लिए परम धर्मात्मा भगवद्भक्त राजा को इतना भारी दण्ड दिया! राजा सामान्य पुरुष नहीं है, वह परमेश्वर के समान है। तेजस्वी राजा के प्रभाव से प्रजा

सुख से निवास करती है, चोरी, ठगी, आततायीपन आदि कुकर्मों की वृद्धि नहीं होती। बिना राजा के धरती पर भयंकर अधर्म फैलता है। राजा परीक्षित धर्मपालक, यशस्वी चक्रवर्ती, महाभागवत, राजर्षि और अश्वमेध का करनेवाला है। वह इस भीषण शाप के योग्य नहीं था।

उधर ज्यों ही महल में पहुँच कर राजा ने अपना मुकुट उतारा, त्यों ही उन्हें अपने किये कृत्य पर बड़ा पश्चात्ताप हुआ। मुकुट में सुवर्ण था, कलि ने धोखे से राजा की बुद्धि में भ्रम उत्पन्न कर अनर्थ करवा दिया। राजा शोक से विह्वल हो ही रहे थे कि इतने में शमीक मुनि के भेजे हुए शिष्यों ने आकर शाप की सारी बातें कह सुनाईं।

शाप की बात सुन कर राजा गंगाजी के किनारे जा अनशन व्रत धारण कर भगवान् के चरणों का ध्यान करने लगे।

अत्रि, वशिष्ठ, च्यवन, भृगु, अंगिरा, पराशर, विश्वामित्र, परशुराम, देवल, भरद्वाज, गौतम, पिप्पलाद, मैत्रेय, अगस्त, व्यास, नारदादि महर्षि राजा से मिलने आये। राजा ने प्रणाम कर ऋषियों की पूजा की और हाथ जोड़कर अपने कुत्सित कर्म तथा मुनि पुत्र के शाप की बात निवेदन कर कहा—मैं धन्य हूँ जिस पर आप के समान महात्माओं ने कृपा कर अन्त समय में दर्शन दिया। यह शाप नहीं, भगवान के चरणों में अनुरक्त होने के लिये मुझे ऋषिकुमार ने आशीर्वाद दिया है। आप दया करके हरिकथा वर्णन कीजिए जिससे मैं भवसागर से सहज में ही पार हो जाऊँ। मैं ने पुत्र को राज्यभार समर्पण कर जगत से नाता छोड़ भगवान के चरणों में मन लगाय उनकी कथा रूपी अमृत का पान करना चाहता हूँ।

राजा की बात सुन कर मुनि लोग प्रसन्न होकर बोले—हे राजन्! तुम्हारा कहना यथार्थ है, भगवान् के चरणों में स्नेह होने के बराबर राज्यसुख कदापि नहीं हो सकता। जब तक तुम इस शरीर को त्याग कर भगवान में लीन न हो जाओगे तब तक हम सब यहीं विद्यमान रहेंगे। उसी समय व्यासजी के पुत्र महा योगेश्वर शुकदेव मुनि आगये। उनकी सोलह वर्ष की अवस्था, अवधूत वेष, श्यामल रंग, सुन्दर रूप तेज को देख सब मुनि लोग अपने आसन पर से उठ कर खड़े हो गये। राजा परीक्षित ने स्वागत कर शुकदेव मुनि की पूजा की और आसन पर बिठाया। मुनिराज को प्रसन्न देख राजा ने हाथ जोड़ कर कहा—

हे महायोगेश्वर! क्या अपनी फूफी के पुत्र पाण्डवों पर प्रसन्न होनेवाले श्रीकृष्णचन्द्र भगवान ने मुझ पर कृपा की, जिससे आसन्नमृत्यु के समय आपका अकस्मात दर्शन हुआ है? मृत्यु समीप आने पर मोक्ष का सरल उपाय कौन सा है? वह आप दया कर मुझ से कहिये।

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! आत्मवेत्ता मनुष्यों के सुनने योग्य तुमने प्रश्न किया है। मैं भगवान् का पवित्र यश जो संसार से मुक्त करनेवाला है, वह तुमको सुनाता हूँ, उसके प्रभाव से तुम सहज ही भगवान् के लोक में निवास करोगे। इतना कह कर शुकदेवजी ने हरिकीर्त्तन करना आरम्भ किया। सात दिन में श्रीमद्भागवत की कथा उन्हों ने राजा परीक्षित को सुनाई।

सातवें दिन द्विजराज काश्यपजी वैद्यशास्त्री राजा परीक्षित की चिकित्सा के लिये चले। उन्हों ने सुना कि सर्पराज तक्षक आज महाराज को डसेगा, उससे वे यमलोक सिधार जाँयगे। मैं अपनी सुचारु चिकित्सा से सर्पविष का नाश करके राजा को जिला दूँगा जिससे मुझे धर्म और अपार धन प्राप्त होगा। मन में इस प्रकार सोचते वैद्यराज काश्यपजी मार्ग में चले जा रहे थे कि

तक्षक भी वृद्ध ब्राह्मण के रूप में जाते हुए उनसे मिला। तक्षक ने पूछा—हे मुनिराज काश्यप! आप इतनी शीघ्रता से कहाँ जा रहे हैं? काश्यप ने उस ब्राह्मण रूपधारी सर्प से कहा—

हे विप्रवर! हमने सुना है कि आज राजा परीक्षित को तक्षक डसेगा उससे उनकी मृत्यु होगी और मैं अपनी चिकित्सा से उन्हें जिला दूँगा। परीक्षित धर्मात्मा राजा और पाण्डवकुल-तिलक प्रजा-पालक है, उसको जिला कर मैं अपनी विद्या सार्थक करूँगा तथा धर्म के सिवा अपरिमित धन पाऊँगा।

तक्षक ने कहा—हे मुनिराज! तक्षक मैं हीं हूँ और मेरे डसने पर आप राजा को न जिला सकेंगे, इससे आप लौट जाइये व्यर्थ ही आप की मर्यादा में बट्टा लगेगा, ब्राह्मण का शाप मिथ्या नहीं हो सकता।

काश्यप ने कहा—मुझे दृढ़ विश्वास है कि तुम्हारे डसने पर मैं अपनी विद्या से नरनाथ को जिला दूँगा।

काश्यप की बात सुन कर तक्षक ने कहा—हे विप्र! मैं इस हरे लहलहे वट वृक्ष को डसता हूँ, यह मेरे विष की ज्वाला से क्षण भर में भस्म हो जायगा। यदि आप इसे ज्यों का त्यों कर देंगे तो राजा को भी जिला सकेंगे।

काश्यप ने कहा—हे सर्पराज! आप डसिये मैं तुरन्त इसको हरा कर दूँगा।

ब्राह्मण के इस प्रकार कहते ही तक्षक ने बड़ को डस लिया, डसते ही वह जल कर राख हो गया और ब्राह्मण ने अपनी विद्या के बल से उसको तुरन्त ज्यों का त्यों हरा भरा वृक्ष बना दिया। महात्मा काश्यप की विद्या का बल देख कर तक्षक को बड़ा आश्चर्य हुआ और वह बोला—

हे ब्राह्मणदेवता! राजा की आयु पूरी हो गयी है और ब्राह्मण का शाप हुआ है वह मिथ्या होने योग्य नहीं है। यदि आप विष दूर करेंगे तो भावी मिथ्या होगी और न दूर कर सकेंगे तो आप की कीर्त्ति में बट्टा लगेगा। आप किसलिये ऐसा करने की इच्छा रखते हैं, मैं आप की कामना पूरी कर दूँ और आप घर लौट जाँय। तक्षक की बात सुन कर और ब्राह्मण के शाप से राजा की आयु पूरी हुई जान कर मुनिराज काश्यप ने कहा—

हे सर्पराज! मैं प्रचुर धन पाने की इच्छा से यह काम करना चाहता हूँ। यदि आप मुझे पर्याप्त धन दे देवें तो मैं अपने स्थान को लौट जाऊँगा! तक्षक ने ब्राह्मण को काफ़ी सुवर्ण देकर सन्तुष्ट कर दिया, वे भावी को प्रबल अनुमान कर अपने आश्रम को लौट गये।

तक्षक ने मार्ग में सुन लिया कि राजा परीक्षित बड़े बड़े विद्वानों द्वारा तंत्र मंत्र से बचाये जा रहे हैं। उसने छल से कार्य साधन का विचार पक्का किया। अपने साथ चलनेवाले सर्पों को आज्ञा की कि तुम लोग मुनि का रूप बना कर और पुष्प फल लेकर राजा के समीप चलो और मैं अत्यल्प रूप धारण कर उन्हीं पुष्प फूलों के बीच छिप कर वहाँ प्रवेश करूँगा। निदान उन सर्पों ने तक्षक के कथनानुसार मुनि वेष बना लिया और राजा के समीप चले। मुनिमंडली से घिरे हुए जहाँ शुकदेव मुनि के द्वारा राजा भगवान का यश रूपी अमृत श्रवणपुट से पान कर रहे थे, जा पहुँचे। ठीक समय उपस्थित होने पर मुनियों ने पुष्प फल राजा के हाथ में दिया और वे उसे पुस्तक पर चढ़ाने लगे कि इतने ही में तक्षक ने उन्हें डस लिया। राजा को विदित हुआ, उन्हों ने शुकदेव जी से कहा—स्वामिन्! तक्षक ने अपना काम पूरा किया। शुकदेवजी ने कहा—महाराज! अब आप के स्वर्ग पधारने का समय आ गया, देखिये भगवच्चरित्र श्रवण करने के प्रभाव से विष्णु के पार्षद विमान लिये हुए आप की प्रतीक्षा कर रहे हैं। शुकदेव मुनि के मुख से यह सुन कर समस्त ऋषि

मंडली रामनाम का जयघोष करने लगी । राजा परीक्षित ६० वर्ष राज्य भोग करने के अनन्तर अनित्य शरीर को त्याग परमधाम सिधारे ।

राजा की क्रिया जनमेजय ने आचार्य और पुरोहित की आज्ञानुसार सविधान किया । राजा की अन्त्येष्टि क्रिया समाप्त हो जाने पर मुनि लोग अपने अपने आश्रम को चले गये ।

मंत्री, पुरोहित, आचार्य और नगर निवासियों ने मिल कर राजा परीक्षित के ज्येष्ठ पुत्र जनमेजय को राजतिलक कर गद्दी पर बिठाया ।

इति ।

उपसंहार।

जनमेजय का राज्य और सर्पयज्ञ।

सूतजी ने कहा—हे शौनक ! उदार मनवाले राजराजेश्वर कुरुकुल तिलक जनमेजय अपने परदादा धर्मराज युधिष्ठिर के समान मंत्रियों, पुरोहित और आचार्य की सम्मति से राजकार्य करने लगे। काशी के राजा सुवर्णवर्मा ने अपनी कन्या वपुष्टिमा को जनमेजय के साथ विवाह दिया। जैसे उर्वशी को पाकर पुरूरवा ने आनन्द से विहार किया था उसी प्रकार महाराज जनमेजय अपनी रूपवती पटरानी के साथ सुख से दिन बिताने लगे।

कुछ दिन बीतने पर राजा जनमेजय ने अपने पिता की अल्पायु का कारण पूछा—

मन्त्रियों ने कहा—महाराज ! आप के पिता परमपुण्यशाली, धर्मात्मा, जितेन्द्रिय, सत्यवादी और प्रजापालक थे। वे अपने अतुल पराक्रम से पृथ्वी की सदा रक्षा करते थे। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी राजा पर प्रेम रखते और अपनी मर्यादा के भीतर रह कर कार्य करते थे। उनके शासनकाल में विधवाओं, अनाथों और निर्धन दीन प्रजा आदि किसी को कुछ कष्ट नहीं होने पाता था, वे सब की रक्षा करते थे। उनके यश का पार न था कुरुवंश जिस समय परिक्षीण हुआ, उस समय वे वीर अभिमन्यु की धर्मपत्नी उत्तरा के गर्भ से उत्पन्न हुए और अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से गर्भ में ही श्रीकृष्ण भगवान् ने उनकी रक्षा की, तब उनका जन्म हुआ इसी से उनका परीक्षित नाम पड़ा। वे नीतिशास्त्र के अद्वितीय ज्ञाता थे।

फिर मंत्री ने मुनिपुत्र के शाप की बात और राजा परीक्षित के परलोकगमन की कथा विस्तार पूर्वक कह सुनाई।

मंत्री के मुख से पिता के मरण का समाचार पाकर राजा जनमेजय को बड़ा दुःख हुआ। उन्हों ने कहा—जिस अभिमानी ने मेरे पिता को जलाकर मार डाला है, मैं पिता के मारने का वैर बिना लौटाये उसे न छोड़ूँगा। यदि काश्यप मुनिराज आकर पिताजी को जिला देते तो इसमें तक्षक की कौन सी हानि थी ? उसने ढिठाई से उन्हें क्यों रोका और धन देकर लौटा दिया। तक्षक ने पिता के साथ पूरी शत्रुता की है इसलिये उसके इस अपराध को मैं क्षमा नहीं कर सकता। यह कह कर भरतवंशियों में शारदूल महाराज जनमेजय ने मंत्रियों की सलाह से सर्पयज्ञ करने का संकल्प किया।

च्यवन के वंशज चण्डभार्गव वेदज्ञ मुनि यज्ञ के होता हुए। वृद्ध विद्वान कौत्स उद्गाता, जैमिनि मुनि ब्रह्मा हुए ! शार्ङ्गरव और पिङ्गल अध्वर्यु तथा पुत्र और शिष्यों के साथ व्यासजी, उद्दालक, प्रमतक, देवल, नारद, पर्वत, आत्रेय आदि महर्षि जाप और वेदपाठ करनेवाले हुए। सुशील, कोहल, देवशर्मा और समसौरभ उस महायज्ञ के सदस्य बने।

विधि पूर्वक सर्पयज्ञ आरम्भ हुआ। वेदज्ञ मुनि लोग सविधि मन्त्र उच्चारण करके अग्निकुंड में आहुति करने लगे। जब महर्षि लोग सर्पों के नाम ले लेकर अग्नि में आहुति छोड़ते थे तब सहस्रों लक्षों विषधर सर्प नाना रंग के परस्पर लिपटे हुए कुंड में गिर कर भस्म होने लगे। उनकी चर्बी नदी बनगई। मन भिन्नानेवाली दुर्गन्धि सर्पों के जलने से चारों ओर फैलने लगी। आकाश में चारों ओर

से उड़ते आते सर्प ही दिखाई पड़ते थे और जलते समय उनके आर्त्तनाद से महा कोलाहल मच रहा था।

तक्षक घबराकर इन्द्र की शरण में गया और अपनी विपत्ति की बात रोकर कही। इन्द्र ने दयार्द्र होकर तक्षक को भरोसा दिया कि तुम डरो मत ! तुम्हें इस यज्ञ से कुछ भी भय न होगा। देवराज का बल पाकर तक्षक अमरावती में इन्द्र के पास प्रसन्नता से रहने लगा। उधर वंशक्षय होते देखकर वासुकि बहुत घबराये, उनके शोक का पारावार नहीं रह गया। उन्हों ने अपनी बहन जरत्कारु को बुलाया और कहा—बहन ! मेरा हृदय फटा जा रहा है, कुटुम्बियों का संहार देखकर मेरी चेतना लोप हो गयी है और आँख से दिखाई नहीं पड़ता है। अत्यन्त भीषण विपत्ति का समय आ गया, इसी दिन के लिये मैं ने तेरा विवाह जरत्कारु मुनि के साथ बड़े प्रयत्न से किया था। उनसे जो तेरे पुत्र हुआ तू ने कहा था कि मेरा पुत्र आस्तीक सर्पयज्ञ में जलते हुए सर्पों की रक्षा करेगा, वह वेदों का ज्ञाता बड़ा तेजस्वी मुनि है। अब तू कुल की और मेरी रक्षा के लिये उस तपस्वी पुत्र को शीघ्र बुलावे।

भाई की करुणा भरी बात सुन कर जरत्कारु ने पुत्र को बुला कर कहा—बेटा ! तुम्हारे मामा पर संकट आया है इसी दिन के लिये उन्हों ने बड़े प्रयत्न के साथ जरत्कारुमुनि (माता और पिता दोनों का नाम जरत्कारु ही था) के साथ मेरा विवाह किया था कि मुनि के वीर्य से जो बालक मेरी बहन के गर्भ से उत्पन्न होगा वह सर्प कुल को बचावेगा। कद्रु ने रुष्ट होकर अपने बेटों को शाप दिया था कि तुम सब जनमेजय के किये सर्पयज्ञ में जल कर यमलोक सिधारोगे। तुम उस शाप से अपने मामा और उनके कुटुम्ब की रक्षा कर यश के भागी बनो।

माता का आदेश स्वीकार कर आस्तीक मुनि वासुकि के समीप जाकर बोले—हे सर्पराज ! आप चिन्ता त्याग दें। मैं सर्पयज्ञ में जलने से आप की और आप के कुटुम्बियों की रक्षा करूँगा। मेरी बात कभी मिथ्या न होगी, आप विश्वास रक्खें मैं यज्ञशाला में जाता हूँ वहाँ अपने मधुर बचनों से राजा जनमेजय को अपने वश में कर के यज्ञ बन्द करवा दूँगा। आप स्वप्न में भी ऐसा अनुमान न करें कि मेरे कहने को राजा जनमेजय अस्वीकार करेंगे। निश्चय ही मैं सपरिवार आप की रक्षा करूँगा, आप निश्चिन्त रहें अब मैं जाता हूँ।

इस प्रकार द्विजराज आस्तीक मामा को सान्त्वना देकर चले और जहाँ राजा जनमेजय सर्पयज्ञ करते थे वहाँ आये। प्रथम उन्होंने यज्ञ की प्रशंसा कर नरनाथ की बड़ाई की और मुनि वेदज्ञ ब्राह्मण वृन्द की स्तुति करके दंडप्रणाम किया। आस्तीक ने कहा जिस प्रकार प्रयाग में प्रजापति ने सोम, आदि यज्ञ किया था वैसे आप का यह यज्ञ दस हजार यज्ञ के समान है। इस प्रकार आस्तीक मुनि ने राजा की भूरि भूरि प्रशंसा करके उनका तथा ऋषिगणों का चित्त अपनी ओर आकर्षित कर लिया। तब राजा जनमेजय उनके मन की बात समझ कर कहने लगे—हे मुनिवृन्द ! यह आस्तीक बालक होकर वृद्धों के समान बातें करते हैं। इनकी स्तुति से मेरा मन ऐसा कह रहा है कि इन्हें मनमाना बरदान दूँ। ब्राह्मणों ने कहा—ब्राह्मण तिस पर विद्वान् चाहे ये बालक हों या वृद्ध आप से सन्मान पाने योग्य हैं। मुनियों की बात सुन कर राजा कहना ही चाहते थे कि वर माँगो तब तक होताजी बोल उठे—राजन् ! थोड़ी देर ठहर जाइये। अभी तक्षक नहीं आया है, सूतपुत्र कहता है कि वह इन्द्र की शरण गया है और इन्द्र ने उसे अभयदान देकर अपनी रक्षा में रख लिया है। राजा की आज्ञा से मन्त्र पढ़ कर होता ने तक्षक के लिये आहुति दी। इन्द्र तक्षक की सहायता के हेतु विमान

पर चढ़ कर गन्धर्वों के साथ आकाशमार्ग में आये। इधर मुनियों ने इन्द्र के सहित तक्षक का नाम ले मंत्र पढ़ कर आहुति दी जिससे इन्द्र तो घबराकर भाग गये और तक्षक अग्नि के समीप मंत्र बल से जकड़ा हुआ आगया। तब होता ने यज्ञकर्त्ता से कहा—

हे राजन्! आपका संकल्प पूरा हो गया। अब इस ब्राह्मण को मनमाना वरदान देकर संतुष्ट कीजिये तब आगे कर्म कीजिये। राजा ने आस्तीक से कहा—

हे विप्रवर! आप को जो रुचे वही माँगिये मैं आप की इच्छा पूरी करूँगा। इस तरह राजा को प्रसन्न देख आस्तीक ने कहा—

हे राजराजेश्वर! आप यही वरदान मुझे दें कि अब सर्पयज्ञ बन्द कर दें। इसमें अब कोई भी सर्प जलाया न जाय। यह सुन कर राजा मधुर बचनों से मुनि को समझाने लगे कि दूसरा वर माँगिये, यज्ञ बिना पूर्णाहुति के कैसे बन्द हो सकता है? जब आस्तीक ने दूसरा वर नहीं माँगा तब विवश होकर राजा को वही वर मुनियों के आदेशानुसार देना पड़ा। इससे आस्तीक को बड़ी प्रसन्नता हुई और राजा जनमेजय ने यज्ञ बन्द कर दिया, तक्षक को चले जाने के लिये कह कर मुनियों का विविध प्रकार से सत्कार करके सब को बिदा किया।

आस्तीक ने अपने मामा वासुकि के समीप जाकर सब हाल कह सुनाया। वासुकि को यह सुन कर बड़ी प्रसन्नता हुई, उन्हों ने आस्तीक को हृदय से लगा कर बार बार उनकी सराहना की और आदर से बैठाया। पुत्र की करनी सुन कर माता जरत्कारु को बड़ी खुशी हुई। वासुकि ने कहा—

हे भानजे! तुमने हमें मृत्यु से बचाया है, इसके बदले में मैं तुम्हारा कौन सा उपकार करूँ। तुम्हारे मन में जो अच्छा लगे वह बरदान माँग लो।

आस्तीक ने कहा—हे मामा हम यही बर माँगते हैं कि मेरे इस सम्वाद तथा नाम का जो स्मरण करे उस को सर्प भय न हो। वासुकि के सहित सब सर्पों ने प्रसन्न होकर कहा—ऐसा ही हो। इस प्रकार वासुकि आदि सर्प समूह से वर पाकर आस्तीक प्रसन्न हुए और वन में जाकर तप करने लगे।

राजा जनमेजय ने बहुत काल पर्यन्त नीति से प्रजा और धरती का पालन किया। पिता के समान अक्षय यश अर्जन करके अन्त में पुत्र अश्वमेध को राज्य समर्पण कर वन में जा भगवान के चरणों में मन लगा कर परलोकगामी हुए।

॥इति॥

पाण्डव राजाओं की वंशावली।

श्रीमन्महाराजाधिराज युधिष्ठिर से लेकर तीस पीढ़ी पर्यन्त उनके वंशजों ने निम्नलिखित समय तक दिल्ली के राज्यासन पर शासन किया अर्थात् १७७० वर्ष ११ मास १० दिन तक पाण्डव वंश के अधीन दिल्ली का राज्य रहा।

संख्या	राजराजेश्वरों के नाम	शासनकाल			संख्या	राजराजेश्वरों के नाम	शासनकाल		
		वर्ष	मास	दिन			वर्ष	मास	दिन
१	महाराज युधिष्ठिर	३६	८	२५	१६	सुचिरथ	४२	११	२
२	राजा परीक्षित	६०	,,	,,	१७	सूरसेन (द्वितीय)	५८	१०	८
३	जनमेजय	८४	७	२३	१८	पर्वतसेन	५५	१८	१०
४	अश्वमेध	८२	८	२२	१९	मेधावी	५२	१०	१०
५	राम (द्वितीय)	८८	२	८	२०	सोनवीर	५०	८	२१
६	छत्रमल	८१	११	२७	२१	भीमदेव	४७	९	२०
७	चित्ररथ	७५	३	१८	२२	हरिदेव	४५	११	२३
८	दुष्टशैल्य	७२	१०	२४	२३	पूर्णमल	४४	८	७
९	उग्रसेन	७८	७	२१	२४	करदवी	४४	१०	८
१०	सूरसेन	८०	९	२१	२५	अलमिक	५०	११	८
११	भुवनपति	६९	५	५	२६	उदयपाल	३८	९	,,
१२	रणजीत	६५	१०	४	२७	दुवनपाल	४०	१०	२६
१३	ऋक्षक	६४	७	४	२८	दमात	३२	,,	,,
१४	सुखदेव	६२	,,	२४	२९	भीमपाल	५८	५	८
१५	नरहरिदेव	५१	१०	२	३०	क्षेमक	४८	११	२१

दिल्ली के आर्य राजाओं की वंशावली।

राजा क्षेमक के प्रधान विश्रवा ने क्षेमक को मार डाला और स्वयम् राजा हुआ। चौदह पीढ़ी तक उसके वंश में ५०० वर्ष ३ मास १७ दिन तक राज्य रहा।

संख्या	राजाओं के नाम	शासनकाल			संख्या	राजाओं के नाम	शासनकाल		
		वर्ष	मास	दिन			वर्ष	मास	दिन
१	विश्रवा	१७	३	२६	८	कदुत	४२	९	२४
२	पुरसेनी	४२	८	२१	९	सज्ज	३२	२	१४
३	वीरसेनी	५२	१०	७	१०	अमरचूड़	२७	३	१६
४	अनङ्गशायी	४७	८	२३	११	अमीपाल	२२	११	२५
५	हरिजित	३५	९	१७	१२	दशरथ	२५	४	१२
६	परमसेनी	४४	२	२३	१३	वीरसाल	३१	८	११
७	सुखपाताल	३०	२	२१	१४	वीरसाल सेन	४७	८	१४

राजा वीरसालसेन को वीरमहा अमात्य ने बध कर डाला और स्वयम् राजा हुआ, सोलह पीढ़ी तक ४४५ वर्ष ५ मास ३ दिन तक उसके वंशजों ने राज्य किया।

संख्या	राजाओं के नाम	शासनकाल			संख्या	राजाओं के नाम	शासनकाल		
		वर्ष	मास	दिन			वर्ष	मास	दिन
१	वीरमहा	३५	१०	८	९	तेजपाल	२८	११	१०
२	अजितसिंह	२७	७	१९	१०	माणिकचन्द	३७	७	११
३	सर्वदत्त	२८	३	१०	११	कामसेनी	४२	५	१०
४	भुवनपति	१५	४	१०	१२	शत्रुमर्दन	८	११	१३
५	वीरसेन	२१	२	१३	१३	जीवनलोक	२८	९	१७
६	महीपाल	४०	८	७	१४	हरिराव	२६	१०	२९
७	शत्रुपाल	२६	४	३	१५	वीरसेन (द्वितीय)	३५	२	२०
८	संघराज	१७	२	१०	१६	आदित्यकेतु	२३	११	१३

राजा आदित्यकेतु को प्रयाग के धन्धर नामक राजा ने मार कर राज्य किया। इसके वंशज ६ पीढ़ी तक ३७५ वर्ष ११ मास २३ दिन तक शासक रहे।

संख्या	राजाओं के नाम	शासनकाल			संख्या	राजाओं के नाम	शासनकाल		
		वर्ष	मास	दिन			वर्ष	मास	दिन
१	धन्धर	४२	७	२४	६	जीवनराज	४५	२	५
२	महर्षी	४१	२	२६	७	रुद्रसेन	४७	४	२८
३	सनरच्चो	५०	१०	१६	८	आरालक	५२	१०	८
४	महायुद्ध	३०	३	८	९	राजपाल	३६	...	...
५	दुरनाथ	२८	५	२५	...	...	...	...	...

राजा राजपाल को उसके सामन्त महानपाल ने मारकर एक पीढ़ी अर्थात्
चौदह वर्ष पर्यन्त राज्य किया था।

संख्या	राजाओं के नाम	शासनकाल			संख्या	राजाओं के नाम	शासनकाल		
		वर्ष	मास	दिन			वर्ष	मास	दिन
१	महानपाल	१४	...	...	...	...	...	...	...

राजा महानपाल पर अवन्तिका (उज्जैन) के महाराज विक्रमादित्य ने चढ़ाई की और युद्धभूमि में उसका बध करके एक पीढ़ी अर्थात् ९३ वर्ष राज्य किया था।

संख्या	राजाओं के नाम	शासनकाल			संख्या	राजाओं के नाम	शासनकाल		
		वर्ष	मास	दिन			वर्ष	मास	दिन
१	विक्रमादित्य	९३	...	...	...	...	...	...	...

शालिवाहन के उमराव समुद्रपाल योगी पैठणक ने राजा विक्रमादित्य को मार डाला और स्वयम् राजा हुआ। इसके वंशजों ने १६ पीढ़ी अर्थात् ३७२ वर्ष ४ मास २७ दिन पर्यन्त राज्य किया था।

संख्या	राजाओं के नाम	शासनकाल			संख्या	राजाओं के नाम	शासनकाल		
		वर्ष	मास	दिन			वर्ष	मास	दिन
१	समुद्रपाल	५४	२	२०	९	अमृतपाल	३६	१०	१३
२	चन्द्रपाल	३६	५	४	१०	बलीपाल	१२	५	२७
३	साहायपाल	११	४	११	११	महीपाल	१३	८	४
४	देवपाल	२७	१	२८	१२	हरीपाल	१४	८	४
५	नरसिंह पाल	१८	...	२०	१३	शीशपाल *	११	१०	१३
६	सामपाल	२७	१	१७	१४	मदनपाल	१७	१०	१९
७	रघुपाल	२२	३	२५	१५	कर्मपाल	१६	२	२
८	गोविन्दपाल	२७	१	१७	१६	विक्रमपाल	२४	११	१३

पश्चिम के राजा मलुखचन्द्र ने राजा विक्रमपाल पर चढ़ाई करके युद्ध में विक्रमपाल का संहार किया और राज्याधिकार कर लिया। दस पीढ़ी अर्थात् १९१ वर्ष १ मास १६ दिन तक इसके वंशज राजा रहे।

संख्या	राजाओं के नाम	शासनकाल			संख्या	राजाओं के नाम	शासनकाल		
		वर्ष	मास	दिन			वर्ष	मास	दिन
१	मलुखचन्द	५४	२	१०	६	कल्याणचन्द	१०	५	४
२	विक्रमचन्द	१२	७	१२	७	भीमचन्द	१६	२	९
३	अमीचन्द ×	१०	...	५	८	लोकचन्द	२६	३	२२
४	रामचन्द	१३	११	८	९	गोविन्द चन्द	३१	७	१२
५	हरीचन्द	१५	७	२४	१०	रानी पद्मावती (गोविन्दचन्द की रानी)	१	...	...

* कोई कोई इतिहासकार इन्हें भीमपाल भी कहते हैं। × कोई कोई मानकचन्द कहते हैं।

रानी पद्मावती के पुत्र नहीं था। उसके मरने पर दरबारियों ने सम्मति करके हरिप्रेम नामक वैरागी को गद्दी पर बैठाया और स्वयम् शासन करने लगे। चार पीढ़ी तक अर्थात् ५० वर्ष २१ दिन इसके वंशज शासक रहे।

संख्या	राजाओं के नाम	शासनकाल			संख्या	राजाओं के नाम	शासनकाल		
		वर्ष	मास	दिन			वर्ष	मास	दिन
१	हरिप्रेम	७	५	१६	३	गोपाल प्रेम	१५	७	२८
२	गोविन्द प्रेम	२०	२	८	४	महावाहु	६	८	२९

राजा महावाहु राज्य परित्याग कर वन में तप करने चले गये। बंगाल के राजा आधीसेन ने यह सुन कर इन्द्रप्रस्थ में सदल आकर राज्य अपने आधीन कर लिया। बारह पीढ़ी अर्थात् १५१ वर्ष ११ मास २ दि न पर्यन्त इसके वंशजों ने राज्य किया।

संख्या	राजाओं के नाम	शासनकाल			संख्या	राजाओं के नाम	शासनकाल		
		वर्ष	मास	दिन			वर्ष	मास	दिन
१	आधीसेन	१८	५	११	७	कल्याण सेन	४	८	२१
२	विलावल सेन	१२	४	२	८	हरीसेन	१२	,,	२५
३	केशवसेन	१५	७	१२	९	क्षेमसेन	८	११	१५
४	माघसेन	१२	४	२	१०	नारायण सेन	२	२	२९
५	मयूरसेन	२०	११	२७	११	लक्ष्मीसेन	२६	१०	,,
६	भीमसेन	५	१०	९	१२	दामोदरसेन	११	५	१९

राजा दामोदर सेन ने अपने दरबारियों को बहुत कष्ट दिया। दीपसिंह नामक एक उमराव ने सेना को मिला राजा से युद्ध कर उन्हें लड़ाई में मार डाला और आप राज्य करने लगा। ६ पीढ़ी अर्थात् १०७ वर्ष ६ मास २२ दिन इसके वंश में राज्य रहा।

संख्या	राजाओं के नाम	शासनकाल			संख्या	राजाओं के नाम	शासनकाल		
		वर्ष	मास	दिन			वर्ष	मास	दिन
१	दीपसिंह	१७	१	२६	४	नरसिंह	४५	...	१५
२	राजसिंह	१४	५	...	५	हरिसिंह	१३	२	२९
३	रणसिंह	९	८	११	६	जीवनसिंह	८	...	१

राजा जीवनसिंह ने अपनी सारी सेना आवश्यक कार्य के लिये उतर दिशा को भेज दी। वैराट के राजा पृथ्वीराज चौहान ने यह ख़बर पाकर इन्द्रप्रस्थ पर चढ़ाई कर दी। युद्ध में जीवनसिंह वीरगति को प्राप्त हुए। पृथ्वीराज दिल्ली का राज्य करने लगे। पाँच पीढ़ी अर्थात् ८६ वर्ष २० दिन पर्यन्त इनके वंश में राज रहा।

संख्या	राजाओं के नाम	शासनकाल			संख्या	राजाओं के नाम	शासनकाल		
		वर्ष	मास	दिन			वर्ष	मास	दिन
१	पृथ्वीराज	१२	२	१९	४	उदयपाल	११	७	३
२	अभयपाल	१४	५	१७	५	यशपाल	३६	४	२७
३	दुर्जनपाल	११	४	१४	...		...	...	...

इस प्रकार ४१५७ वर्ष ९ मास १४ दिन तक इन्द्रप्रस्थ का राज्य आर्य राजाओं के अधिकार में रहा। पहले पहल शहाबुद्दीन गोरी ने राजा यशपाल पर चढ़ाई की और उन्हें पकड़ कर सम्वत् १२४९ विक्रमाब्द में प्रयाग में क़ैदी बना रक्खा तथा आप दिल्ली का शासन करने लगा। ५३ पीढ़ी अर्थात ७४५ वर्ष १ मास १७ दिन पर्यन्त यमन शासकों के हाथ राज्य की बागडोर रही। पश्चात् ब्रिटिश सरकार का शासन आरम्भ हुआ है।*

*अंग्रेज़ इतिहास लेखकों ने लिखा है कि सन् ११९३ ई० में कन्नौज के राजा जयचन्द के उभाड़ने से शहाबुद्दीन ग़ोरी ने दूसरी बार पृथ्वीराज पर आक्रमण किया और युद्ध में उन्हें मार डाला। चन्द बरदाई का कथन है कि पृथ्वीराज को क़ैदी बना कर महम्मद ग़ोरी उन्हें ग़ज़नी ले गया। उनकी आँखें नष्ट करा कर क़ैदख़ाने में बड़ी दुर्दशा के साथ रक्खा। चन्द कवि किसी तरह ग़ज़नी पहुँचे और महम्मद ग़ोरी के दरबार में रसाई प्राप्त की। उन्हों ने पृथ्वीराज के शब्दवेधी बाण चलाने की बड़ी प्रशंसा की और बादशाह ने कुतूहल वश बन्दीख़ाने से उन्हें दरबार में बुलाया। चन्द के बतलाये संकेत से पृथ्वीराज ने शहाबुद्दीन को मार डाला तथा परस्पर खड्ग प्रहार कर चन्द कवि और पृथ्वीराज दोनों साथ ही परलोक गामी हुए।

संतबानी पुस्तकमाला

[जीवन-चरित्र हर महात्मा के उन की बानी के आदि में दिया है]

कबीर साहिब का साखी-संग्रह	१=)
कबीर साहिब की शब्दावली, पहिला भाग	।।।)
कबीर साहिब की शब्दावली, दूसरा भाग	।।।)
कबीर साहिब की शब्दावली, तीसरा भाग	।=)
कबीर साहिब की शब्दावली, चौथा भाग	≡)
कबीर साहिब की ज्ञान-गुदड़ी, रेख़ते और झूलने	।=)
कबीर साहिब की अखरावती	=)
धनी धरमदास जी की शब्दावली	।।-)
तुलसी साहिब (हाथरस वाले) की शब्दावली भाग १	१=)
तुलसी साहिब दूसरा भाग पद्मसागर ग्रंथ सहित	१=)
तुलसी साहब का रत्नसागर	१।-)
तुलसी साहब का घट रामायण पहला भाग	१।।)
तुलसी साहब का घट रामायण दूसरा भाग	१।।)
गुरु नानक की प्राण-संगली सटिप्पण पहला भाग	१।।)
गुरु नानक की प्राण संगली दूसरा भाग	१।।)
दादू दयाल की बानी, भाग १ "साखी"	१।।)
दादू दयाल की बानी, भाग २ "शब्द"	१।)
सुन्दर विलास	१-)
पलटू साहिब भाग १—कुंडलियाँ	।।।)
पलटू साहिब भाग २—रेख़ते, झूलने, अरिल, कवित्त सवैया	।।।)
पलटू साहिब भाग ३—भजन और साखियाँ	।।।)
जगजीवन साहिब की बानी, पहला भाग	।।।-)
जगजीवन साहिब की बानी, दूसरा भाग	।।।-)
दूलन दास जी की बानी	।)॥
चरनदास जी की बानी, पहला भाग	।।।-)
चरनदास जी की बानी, दूसरा भाग	।।।)
ग़रीबदास जी की बानी	१।-)
रैदास जी की बानी	।।।)

दरिया साहिब (बिहार) का दरिया सागर	।≡)॥
दरिया साहिब (बिहार) के चुने हुए पद और साखी	।–)
दरिया साहिब (माड़वाड़ वाले) की बानी	।≡)
भीखा साहिब की शब्दावली	॥=)॥
गुलाल साहिब की बानी	॥।=)
बाबा मलूकदास जी की बानी	।)॥
गुसाईं तुलसीदास जी की बारहमासा	–)
यारी साहिब की रत्नावली	=)
बुल्ला साहिब का शब्दसार	।)
केशवदास जी की अमीघूँट	–)॥
धरनीदास जी की बानी	।=)
मीरा बाई की शब्दावली	॥)
सहजो बाई का सहज-प्रकाश	।≡)॥
दया बाई की बानी	।)
संतबानी-संग्रह, भाग १ [साखी]	१॥)
[प्रत्येक महात्माओं के संक्षिप्त जीवन-चरित्र सहित]	
संतबानी-संग्रह भाग २ [शब्द]	१॥)
[ऐसे महात्माओं के संक्षिप्त जीवन-चरित्र सहित जो पहले भाग में नहीं हैं]	
	कुल ३३।–)
अहिल्या बाई	≡)
दुःख का मीठा फल	॥।=)
कर्मफल	॥।)
प्रेम तपस्या	॥)
विनय पत्रिका (सचित्र और सटीक)	**२॥)**
विनय कोश	**२)**
सचित्र द्रौपदी	॥।)
लोक परलोक हितकारी (चौथा छापा, सचित्र)	॥।=)

दाम में डाक महसूल व रजिस्टरी शामिल नहीं है वह इस के ऊपर लिया जायगा। कृपा कर अपना पता साफ़ साफ़ लिखिए।

मिलने का पता——

मैनेजर, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद।